॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



गुरुमण्डलग्रन्थमालाया विंशम्पुष्पम्

स्कन्दमहापुराणम्

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासविरचितम्

तस्य

माहेश्वरखण्डात्मकः

प्रथमो भागः

"पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्"

(मत्स्यपुराणम्)

मनसुखराय मोर

५, क्लाइव रो, कलकत्ता-१

विक्रम सम्वत् २०१६] [ईशवीय सन् १९५९



॥ श्रीगणेशायनमः ॥

गुरुमण्डलग्रन्थमालाया विंशंपुष्पम्

स्कन्द-पुराणम्

श्रीमन्महर्षि-कृष्णद्वैपायनव्यासविरचितम्

तस्य

माहेश्वरखण्डात्मकः

प्रथमोभागः

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम् ।
सिद्धौघं बटुकत्रयम्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् (शाम्भवम्)
वीरान्द्व्यष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम् ।
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्देगुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्लाइव रो,

कलकत्ता—१

वैक्रमाब्दः	प्रथमं संस्करणम्	ख्रैस्ताब्दः
२०१६	३०००	१९५९

Gurumandal Series No. XX

Skanda Puranam

First Volume



MAHESHWARKHAND

BY

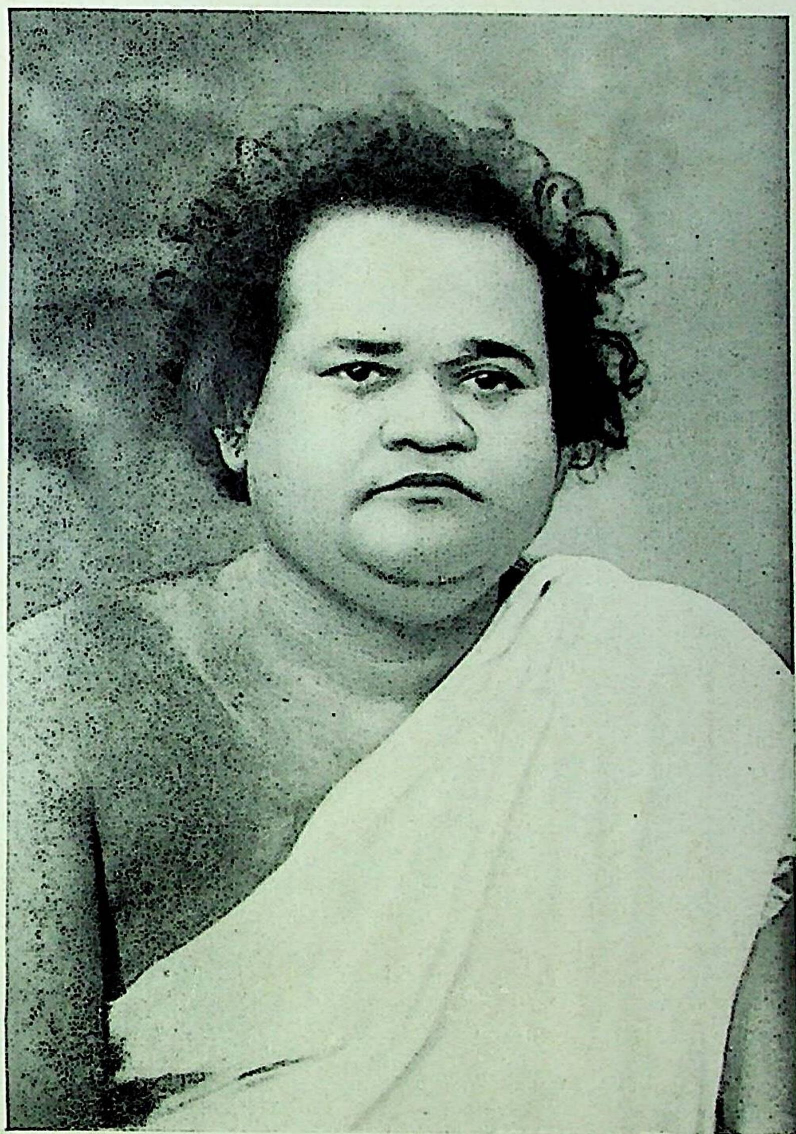
Shrimanmaharsi Krishna Dwaipayan Vedavyas.

PART I

5, CLIVE ROW
CALCUTTA-1

Vikram era	First Edition	Christian era
2016	3000	1959

अवधकिशोरसिंह द्वारा
गोपाल प्रिण्टिङ्गवर्क्स
८७।ए, राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट,
कलकत्ता–६ में मुद्रित।



अनन्त श्रीविभूषित १.१००८ श्रीमत्परमहंस अखण्डज्योतिर्विलसित
सर्वभूतात्मा वेदमूर्त्ति सर्वतन्त्रधुरन्धराचार्य महामहिम
श्रीमन्नारायणस्वामीजी महाराज

स्कन्दपुराण-माहेश्वर खण्ड अनुशीलन

[जगद्गुरु रामानुजाचार्य आचार्यपीठाधिपति स्वामी श्री राघवाचार्य महाराज]

स्कन्ददेवता

स्कन्द देव हैं। षण्मतस्थापक आचार्य शङ्कर ने जिन छः मतोंको मान्यता दी उनमें से एक के यह आराध्य एवं उपास्य देव हैं। वह शोषक हैं असत् के, असद्वृत्तियों के एवं असुरों के। स्कन्दयति, शोषयति, अर्थात् जो शोषण करता है वही देव स्कन्द है। परमतत्त्व में असद्वृत्तियों को नष्ट करने की सामर्थ्य सदा विद्यमान रहती है। अतः परमतत्त्व स्कन्द है। विष्णुके सहस्र नामोंमें एक 'स्कन्द' नाम है। शिवके सहस्रनामोंमें भी एक स्कन्द नाम है। देववृत्त के अनुसार भूतभावन शङ्कर के आत्मज हैं षडानन स्कन्द, जो देवोंके सेनापति हैं। 'सेनानीनामहंस्कन्दः' अर्थात् सेनापतियोंमें मैं स्कन्द हूं, के अनुसार भगवान् की विभूति हैं।

स्कन्दपुराण

पुराण वाङ्मय में स्कन्द के नाम से दो ग्रन्थ मिलते हैं एक खण्डोंमें विभक्त है। दूसरा संहिताओं में विभक्त है। नारदीयपुराण अपनी सूची में खण्डात्मक पुराणका ग्रहण किया है। नारदीयपुराण में स्कन्दपुराण के सात खण्ड गिनाये गये है—(१) माहेश्वर, (२) वैष्णव, (३) ब्राह्म, (४) काशी, (५) अवन्ती, (६) नागर, (७) प्रभास। अन्य मतानुसार अवन्ती और नागर के स्थानपर रेवा और तापी खण्ड गिने जाते हैं। यह सप्तखण्डात्मक पुराण महापुराण माना जाता है। छः संहिताओंवाला स्कन्दपुराण पुराण है। दोनों ही पुराणवाङ्मय के जाज्वल्यमान रत्न है। दोनों के श्लोकों की संख्या ८१ हजार बतायी जाती है।

विषय

विषय की दृष्टि से सम्पूर्ण पुराण में महेश्वर शिव और माहेश्वरधर्म। प्रधानता है। कहा भी है—

(१) यस्मिन्प्रतिपदं साक्षान्महादेवो व्यवस्थितः। (नारदीयपुराण)
(२) यत्र माहेश्वराधर्माः षण्मुखेन प्रकाशिताः। (नारदीयपुराण)
(३) यत्र माहेश्वरान्धर्मानधिकृत्य च षण्मुखः। (मत्स्यपुराण)

अर्थ यह है कि (१) स्कन्दपुराण के प्रत्येक पद में शिव प्रतिष्ठित है (२) षड़ानन स्कन्दने इस पुराण में माहेश्वर (शैव) धर्मका प्रतिपादन किया है (३) शैव धर्म को ही लक्ष्य में रखकर स्कन्दने इस पुराण का उपदेश दिया।

माहेश्वरखण्ड

महापुराण का प्रथम खण्ड माहेश्वर खण्ड है। इसमें तीन उपखण्ड हैं— (१) केदारखण्ड, (२) कुमारीखण्ड और (३) अरुणाचल माहात्म्य। जहां स्कन्द महापुराण के सात खण्ड सप्तद्वीपवती पृथ्वी का संकेत करते हैं, माहेश्वर खण्ड के तीनों उपखण्ड भारतभूमिके प्रतीक हैं। केदार उत्तर में है। महीसागर संगम (कुमारी) पश्चिम में है। अरुणाचल दक्षिण में है। केदारखण्ड में ३५ अध्याय हैं। कुमारिकाखण्ड में ६६ अध्याय हैं। अरुणाचल माहात्म्य के पूर्वार्ध में तेरह और उत्तरार्ध में चौबीस कुल ३७ अध्याय हैं।

दक्ष यज्ञ विध्वंस से केदारखण्ड की कथा आरम्भ होती है विषभक्षण का वर्णन करती हुई कथा पार्वती के चरित्रतक पहुंचती है तब स्कन्द का चरित्र आता है। शिव पार्वती के राज्याभिषेक पर खण्डका उपसंहार होता है।

कुमारिकाखण्ड में महीसागरसंगम का माहात्म्य है। अर्जुन की यात्रा से प्रसंग आरम्भ होता है। क्रमशः यहां के एक एक तीर्थ एवं एक एक आराध्यदेव का वर्णन किया गया है। अर्जुन ने यहां के पाँच तीर्थों के पाँच ग्राहों का उद्धार

किया। नारदने कलाप ग्रामके ब्राह्मणों को यहां लेजाकर बसाया। कुमार कार्तिकेय, भरतपुत्र शशशृङ्ग की कन्या कुमारी इन्द्रद्युम्न और उनके सहयोगी, ऐतरेय आदि ने यहां साधना की। शिवलिङ्गों के अतिरिक्त विष्णु, सूर्य एवं देवी की भी यहां प्रतिष्ठा हुई।

अरुणाचल माहात्म्य का विषय स्पष्ट है। अरुणाचल के नाम से शिवके प्रकट होने से माहात्म्य का आरम्भ होता है। देवताओं ऋषियों की आराधना का तथा यहां के तीर्थों का वर्णन करते हुए वज्राङ्ग की साधना पर माहात्म्य की पूर्ति होती है।

माहेश्वरधर्म

जहां तक माहेश्वर धर्मका सम्बन्ध है प्रत्येक प्रसङ्ग में किसी न किसी रूप में शैव धर्म की चर्चा आगई है। भस्मधारण, रुद्राक्षधारण, शिवत्रयोदशी, शिवपूजा, आदि शैवधर्म के आचरणों का प्रतिपादन किया गया है। आचारवान् व्यक्ति ही नहीं प्रत्युत अनाचारपरायण लोग भी शैवधर्म के अनुष्ठान से सुगति प्राप्त करने में समर्थ हुए इसके उदाहरणों से खण्ड परिपूर्ण है।

शिवतत्त्व

शैवधर्म के दर्शन का सर्वस्व है शिवतत्त्व। शिवतत्त्व के आधिभौतिक, आधिदैविक, एवं आध्यात्मिक तीनों ही रूपों की विशद मीमांसा इस खण्ड में उपलब्ध होती है।

दक्ष यज्ञ विध्वंस से शुष्क कर्म का निषेध तथा ज्ञानपूर्वक कर्म का समर्थन किया गया है। दक्ष को पुनः जीवित कर शङ्कर ने बताया :—

केवलं कर्मणा त्वं हि संसारात्तर्तुमिच्छसि ॥

... ...

न शक्नुवन्ति मां प्राप्तुं मूढा कर्मवशा नराः।

तस्माज्ज्ञानपरोऽभूत्वा कुरु कर्म समाहितः ॥ केदारखण्ड ५।४१,४२, ४३

आशय यह है कि तुम केवल कर्म के द्वारा संसार सागर से पार जाना चाहते हो। कर्म के वशीभूत हुए मनुष्य मुझे प्राप्त नहीं कर पाते इसलिये तुम ज्ञानपरायण होकर कर्म करो।

ज्ञान के द्वारा प्राप्त होनेवाला आत्मसाक्षात्कार ही वास्तविक अमरत्व है। इनसे भिन्न केवल कर्मके द्वारा समुद्र मथन होनेपर कालकूट विष ही प्रकट होता है। शिवकी पराशक्ति प्रकृति से जन्मे हुए (साक्षात्प्रकृत्या सम्भूतः) गणेश ने यह विघ्न उपस्थित किया था (मया विघ्नं विनोदेन कृतं तेषां सुदुर्जयम्) यह गणेश माया पुत्रोऽपि निर्मायः हैं अर्थात् मायासे उत्पन्न होकर भी माया से रहित हैं। उनकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर शिवने विषके भय को दूर किया और गणेशोपासना का विधान किया। यह भी बताया गया है कि शिवने गणेशके अज्ञानं के मस्तक को काटकर और ज्ञान का मस्तक लगाकर गजानन गणेश बना दिया। (केदारखण्ड १०।२८-३६)।

दक्ष कन्या सती वस्तुतः शिवकी पराशक्ति थीं। हिमालय के यहां यही सती पार्वती के रूप में अवतीर्ण हुईं। शङ्कर के द्वारा काम के भस्म किये जानेके पश्चात् पार्वती ने तपस्या की। तब शङ्कर और पार्वती का विवाह हुआ। शङ्कर विशुद्ध आत्मा और पार्वती महाविद्या के संयोग से जो तेज प्रकट हुआ उसने अग्नि और कृत्तिकाओं के माध्यम से गंगामें पहुंचकर स्कन्द (षडानन कुमार) रूप ग्रहण किया। इन्हीं कुमार के द्वारा तारकासुर का वध हुआ। केदारखण्ड में यह कथा विस्तारपूर्वक वर्णित है। कुमारिका खण्डमें इनकी पुनरावृत्ति की गई है। यह कुमार शिवके अपर रूप हैं। (कुमारोह्यपरः शम्भुः केदार खण्ड ३१।२)। कुमार का दर्शन तत्काल सफलता प्रदान करनेवाला है। स्कन्द दर्शन का यही सिद्धान्त है।

केदारखण्ड के चौतीसवें अध्याय में शङ्कर-पार्वती की जिस द्यूतक्रीडा का वर्णन है वह स्पष्टतः माया विरचित वितान है। "अहं शिवात्मिका मूढ शिवो-

* श्रीगणेशायनमः *

अथ स्कन्दपुराणान्तर्गत-प्रथम-माहेश्वरखण्डस्थ-

विषयानुक्रमणिका

प्रारभ्यते



द्वितीयं कौमारिकाखण्डम्

तृतीयारुणाचलमाहात्म्यस्थ (पूर्वार्धस्थ) विषयानां सूचिका

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

स्कन्दपुराणम्

तत्रादौ प्रथमं माहेश्वरखण्डम्प्रारभ्यते

प्रथमोऽध्यायः

मङ्गलाचरणवर्णनम्

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरंचैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतींचैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

व्यास उवाच

यस्याज्ञयाजगत्स्रष्टाविरिञ्चिःपालकोहरिः । संहर्त्ता कालरुद्राख्योनमस्तस्मैपिनाकिने

तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणांक्षेत्रमुत्तमम् । तत्रैव नैमिषारण्येशौनकाद्यास्तपोधनाः ॥

दीर्घसत्रं प्रकुर्वन्तः सत्रिणः कर्मचेतसः ॥३॥

तेषांसन्दर्शनौत्सुक्यादागतो हि महातपाः । व्यासशिष्योमहाप्राज्ञोलोमशोनामनामतः

तत्रागतं ते दद्दृशुर्मुनयो दीर्घसत्रिणः । उत्तस्थुर्युगपत्सर्वे सार्घ्यहस्ताः समुत्सुकाः ॥

दत्त्वाऽर्घ्यपाद्यंसत्कृत्य मुनयोवीतकल्मषाः । तं पप्रच्छुर्महाभागाःशिवधर्मंसविस्तरम्

ऋषय ऊचुः

कथयस्व महाप्राज्ञ ! देवदेवस्य शूलिनः । महिमानं महाभागध्यानार्चनसमन्वितम् ॥

सम्मार्जने किं फलं स्यात्तथारङ्गावलीषु च । प्रदाने दर्पणस्याऽथतथा वै चामरस्य
प्रदाने च वितानस्यतथाधारागृहस्य च । दीपदाने किं फलंस्यात्पूजायांकिंफलंभवे
कानि कानि च पुण्यानि कथ्यतां शिवपूजने । इतिहासपुराणानि वेदाध्ययनमेव
शिवस्याग्रे प्रकुर्वन्तिकारयन्त्यथवानराः । किं फलं च नृणांतेषां कथ्यतांविस्तरेण
शिवाख्यानपरो लोके त्वत्तो नान्योऽस्ति वै मुने ! ॥११॥

इति श्रुत्वा वचस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
उवाच व्यासशिष्योऽसौ शिवमाहात्म्यमुत्तमम् ॥१२॥

लोमश उवाच

अष्टादशपुराणेषुगीयते वै परः शिवः । तस्माच्छिवस्यमाहात्म्यंवक्तुंकोऽपि न पार्यते
शिवेति व्यक्षरंनामव्याहरिष्यन्तियेजनाः । तेषांस्वर्गश्चमोक्षश्च भविष्यतिनचान्यथा
उदारो हि महादेवो देवानां पतिरीश्वरः । येन सर्वं प्रदत्तं हि तस्मात्सर्व इतिस्मृतः
ते धन्यास्ते महात्मानो ये भजन्ति सदाशिवम् ॥१६॥
विनासदाशिवं यो हि संसारंतर्तुमिच्छति । स मूढो हि महापापःशिवद्वेषी न संशयः
भक्षितं हि गरं येन दक्षयज्ञो विनाशितः । कालस्य दहनं येन कृतं राज्ञः प्रमोचनम् ॥

ऋषय ऊचुः

यथागरं भक्षितं च यथायज्ञो विनाशितः । दक्षस्य च तथा ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः

सूत उवाच

दाक्षायणी पुरादत्ता शङ्कराय महात्मने । वचनाद्ब्रह्मणो विप्रा दक्षेण परमेष्ठिना ॥
एकदाहि स दक्षो वै नैमिषारण्यमागतः । यदृच्छावशमापन्न ऋषिभिः परिपूजितः ॥
स्तुतिभिःप्रणिपातैश्चतथासर्वैः सुरासुरैः । तत्र स्थितोमहादेवोनाभ्युत्थानाभिवादने
चकाराऽस्य ततः क्रुद्धो दक्षो वचनमब्रवीत् ॥२२॥

सर्वत्र सर्वे हि सुरासुरा भृशं नमन्ति मां विप्रवराः समुत्सुकाः ।
कथं ह्यसौ दुर्जनवन्महात्मा भूतादिभिः प्रेतपिशाचयुक्तः ॥
श्मशानवासी निरपत्रपो ह्ययं कथं प्रणामं न करोति मेऽधुना ॥२३॥

पाखण्डिनो दुर्जनाः पापशीला विप्रं दृष्ट्वा चोद्धता उन्मदाश्च ।
वध्यास्त्याज्याः सद्भिरेवंविधा हि तस्मादेनं शापितुं चोद्यतोऽस्मि ॥२४॥
इत्येवमुक्त्वा स महातपास्तदा रुषान्वितो रुद्रमिदं बभाषे ॥२५॥
शृण्वन्त्वमी विप्रतमा ! इदानीं वचो हि मे कर्तुमिर्हार्हथैतत् ।
रुद्रो ह्ययं यज्ञबाह्यो वृतो मे वर्णातीतो वर्णपरो यतश्च ॥२६॥

न्दीनिशम्यतद्वाक्यं शैलादोहिरुषान्वितः । अब्रवीत्त्वरितोदक्षं शापदंतंमहाप्रभम् ॥

नन्द्युवाच

यज्ञबाह्यो हि मे स्वामीमहेशोऽयंकृतः कथम् । यस्य स्मरणमात्रेणयज्ञाश्चसफलाह्यमी
यज्ञो दानं तपश्चैव तीर्थानि विविधानि च ।
यस्य नाम्ना पवित्राणि सोऽयं शप्तोऽधुना कथम् ॥२९॥
था ते ब्रह्मचापल्याच्छप्तोऽयंदक्ष दुर्मते । येनेदं पालितं विश्वं सर्वेण च महात्मना
शप्तोऽयं स कथं पाप ! रुद्रोऽयं ब्राह्मणाधम ! ॥३०॥
एवं निर्भर्त्सितस्तेन नन्दिना हि प्रजापतिः । नन्दिनश्चशशापाथ दक्षोरोषसमन्वितः
यूयं सर्वे रुद्रवरा वेदबाह्याश्च वै भृशम् । शप्ता हि वेदमार्गैश्च तथात्यक्ता महर्षिभिः॥
पाखण्डवादसंयुक्ताः शिष्टाचारबहिष्कृताः । कपालिनःपानरतास्तथा कालमुखाह्यमी
इतिशप्तास्तदातेन दक्षेण शिवकिंकराः । तदा प्रकुपितो नन्दी दक्षं शप्तुं प्रचक्रमे ॥३४
शप्ता वयं त्वया विप्र साधवः शिवकिंकराः । वृथैव ब्रह्मचापल्यादहं शापं ददामिते
वेदवादरता यूयं नान्यदस्तीति वादिनः । कामात्मनः स्वर्गपरा लोभमोहसमन्विताः
वैदिकश्च पुरस्कृत्य ब्राह्मणाः शूद्रयाजकाः । दरिद्रिणो भविष्यन्ति प्रतिग्रहरताः सदा
दक्ष ! केचिद्ध भविष्यन्ति ब्राह्मणाः ब्रह्मराक्षसाः ॥

लोमश उवाच

विप्रास्ते शापितास्तेन नन्दिना कोपिना भृशम् ॥३८॥
अथाकर्ण्येश्वरो वाक्यं नन्दिनः प्रहसन्निव ।
उवाच वाक्यं मधुरं बोधयुक्तं सदाशिवः ॥३९॥

महादेव उवाच

कोपं नार्हसि वै कर्त्तुं ब्राह्मणान्प्रति वै सदा । ब्राह्मणाः गुरवोह्येते वेदवादरताः स
वेदोमन्त्रमयः साक्षात्तथासूक्तमयो भृशम् । सूक्ते प्रतिष्ठितोह्यात्मासर्वेषामपिदेहि
तस्मान्नात्मविदो निन्द्या आत्मैवाहं नचेतरः ।
कोऽयं कस्तं क्व चाहं वै कस्माच्छप्ता हि वै द्विजाः ॥४२॥
प्रपञ्चरचनां हित्वा बुद्धो भव महामते !। तत्त्वज्ञानेन निर्वर्त्यस्वस्थः क्रोधादि व
एवं प्रबोधितस्तेन शम्भुना परमेष्ठिना । विवेकपरमो भूत्वा शैलादो हि महातपा
शिवेन सह संगम्य परमानन्दसम्प्लुतः ॥ ४४ ॥
दक्षोऽपिहि रुषाविष्टऋषिभिः परिवारितः । ययौस्थानंस्वकं तत्र प्रविवेशरुषान्वि
श्रद्धां विहाय परमां शिवपूजकानां निन्दापरः स हि बभूव नराधमश्च ।
सर्वैं महर्षिभिरुपेत्य स तत्र शर्वम् देवं निनिन्द न बभूव कदापि शान्तः

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरख
केदारखण्डे पुराणप्रस्तावदक्षवृत्तान्तवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

—————

द्वितीयोऽध्यायः

दक्षयज्ञवर्णनम्

लोमश उवाच

एकदा तु तदा तेनयज्ञःप्रारम्भितो महान् । तत्राऽऽहूतास्तदा सर्वे दीक्षितेनतपस्वि
ऋषयोविविधास्तत्रवशिष्ठाद्याःसमागताः । अगस्त्यःकश्यपोऽत्रिश्चवामदेवस्तथाभृ
दधीचो भगवान्व्यासो भरद्वाजोऽथ गौतमः । एते चान्ये च बहवः समाजग्मुर्महर्ष

तथा सर्वे सुरगणालोकपालास्तथाऽपरे । विद्याधराश्चगन्धर्वाः किंनराप्सरसागणाः
सप्तलोकात्समानीतो ब्रह्मालोकपितामहः । वैकुण्ठाच्च तथाविष्णुःसमानीतोमखम्प्रति
देवेन्द्रो हि समानीतइन्द्राण्यासह सुप्रभः । तथा चन्द्रो हि रोहिण्यावरुणःप्रिययासह

कुबेरः पुष्पकारूढो मृगारूढोऽथ मारुतः ।
वस्तारूढः पावकश्च प्रेतारूढोऽथ निर्ऋतिः ॥७॥

एते सर्वे समायातायज्ञवाटे द्विजन्मनः । ते सर्वे सत्कृतास्तेन दक्षेण च दुरात्मना॥८
भवनानिमहार्हाणि सुप्रभाणिमहान्तिच । त्वष्ट्राकृतानिदिव्यानिकौशल्येन महात्मना

तेषु सर्वेषु धिष्ण्येषु यथाजोषं समास्थिताः ॥ १० ॥

वर्त्तमाने महायज्ञे तीर्थे कनखले तथा । ऋत्विजश्च कृतास्तेनभृग्वाद्याश्चतपोधनाः॥११
दीक्षायुक्तस्तदा दक्षः कृतकौतुकमङ्गलः । भार्ययासहितोविप्रैःकृतस्वस्त्ययनोभृशम्
रेजे महत्त्वेन तदा सुहृद्भिः परितःसदा । एतस्मिन्नन्तरे तत्र दधीचिर्वाक्यमब्रवीत् ॥

दधीचिरुवाच

एते सुरेशा ऋषयो महत्तराः सलोकपालाश्च समागतास्तव ।
तथाऽपि यज्ञस्तु न शोभते भृशं पिनाकिना तेन महात्मना विना ॥१४॥
येनैव सर्वाण्यपि मङ्गलानि जातानि शंसन्ति महाविपश्चितः ।
सोऽसौ न दृष्टोऽत्र पुमान्पुराणो वृषध्वजो नीलकण्ठः कपर्दी ॥१५॥
अमङ्गलान्येव च मङ्गलानि भवन्ति येनाधिकृतानि दक्ष! ॥
त्रियम्बकेनाऽथ सुमङ्गलानि भवन्ति सद्यो ह्यपमङ्गलानि ॥१६॥

तस्मात्त्वयैव कर्तव्यमाह्वानं परमेष्ठिना । त्वरितंचैवशक्रेण विष्णुना प्रभविष्णुना॥१७

सर्वैरेव हि गन्तव्यं यत्र देवो महेश्वरः ॥१८॥

दाक्षायण्यासमेतं तमानयध्वंत्वरान्विताः । तेनसर्वंपवित्रंस्याच्छम्भुनायोगिनाभृशम्
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्यासमग्रंसुकृतंभवेत् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेनसमानेयो वृषध्वजः
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रहसन्नाह दुष्टधीः । मूलंविष्णुर्हि देवानां यत्रधर्मःसनातनः॥२१
यस्मिन्वेदाश्चयज्ञाश्चकर्माणिविविधानिचप्रतिष्ठितानिसर्वाणिसोऽसौविष्णुरिहागतः

सत्यलोकात्समायातोब्रह्मालोकपितामहः । वेदैश्चोपनिषद्भिश्चआगमैर्विविधैःसह।
तथा सुरगणैः साकमागतःसुरराट्स्वयम् । तथा यूयं समायाता ऋषयोवीतकल्म
येयेयज्ञोचिताः शान्तास्तेतेसर्वे समागताः । वेदवेदार्थतत्त्वज्ञाःसर्वेयूयं दृढव्रताः।
अत्रैव च किमस्माकंरुद्रेणाऽपिप्रयोजनम् । कन्यादत्ता मयाविप्रा ब्रह्मणानोदिते
अकुलीनो ह्यसौ विप्रानष्टोनष्टप्रियःसदा । भूतप्रेतपिशाचानां पतिरेको दुरत्ययः॥

आत्मसम्भावितो मूढः स्तब्धो मौनी समत्सरः ॥
कर्मण्यस्मिन्नयोग्योऽसौ नानीतो हि मयाऽधुना ॥२८॥

तस्मात्त्वया न वक्तव्यं पुनरेवंवचोद्विज !। सर्वैर्भवद्भिः कर्तव्यो यज्ञोमे सफलोमह
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य दधीचिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३० ॥

दधीचिरुवाच

सर्वेषामृषिवर्याणांसुराणांभावितात्मनाम् । अनयोऽयंमहाञ्जातोविनातेनमहात्मना
विनाशोऽपिमहान्सद्योह्यत्रत्यानांभविष्यति । एवमुक्त्वादधीचोऽसावेकएवविनिर्ग
यज्ञवाटाच्च दक्षस्यत्वरितः स्वाश्रमंययौ । मुनौ विनिर्गते दक्षः प्रहसन्निदमब्रवीत्
गतः शिवप्रियोवीरोदधीचिर्नामनामतः । आविष्टचित्तामन्दाश्च मिथ्यावादरताःखल
वेदबाह्या दुराचारास्त्याज्यास्तेह्यत्रकर्मणि । वेदवादरता यूयं सर्वेविष्णुपुरोगमाः
यज्ञं मे सफलं विप्राः कुर्वन्तु ह्यचिरादिव । तदा ते देवयजनं चक्रुःसर्वे महर्षयः॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र पर्वतेगन्धमादने । धारागृहे विमानेन सखीभिःपरिवारिता ॥
दाक्षायणीमहादेवीचकारविविधास्तदा । क्रीडाविमानमध्यस्थाकन्दुकाद्याःसहस्र
क्रीडासक्ता तदा देवीददर्शाऽथमहासती । यज्ञं प्रयान्तं सोमंच रोहिण्यासहितंप्रभु
क्वगमिष्यतिचन्द्रोऽयंविजये पृच्छसत्त्वरम् । तयोक्ताविजयादेवीतंपप्रच्छयथोचित
कथितं तेनतत्सर्वंदक्षस्यैवमखादिकम् । तच्छ्रुत्वा त्वरिता देवीविजया जातसम्भ्रम

कथयामास तत्सर्वं यदुक्तं शशिना भृशम् ॥ ४१ ॥
विमृश्य कारणं देवी किमाह्वानं करोति न ।
दक्षः पिता मे ;माता च विस्मृता मां कुतोऽधुना ॥ ४२ ॥

पृच्छामि शङ्करं चाऽद्य कारणं कृतनिश्चया ।
स्थापयित्वा सखीस्तत्र आगता शङ्करम्प्रति ॥ ४३ ॥

ददर्श तं सभामध्येत्रिलोचनमवस्थितम् । गणैः परिवृतं सर्वैश्चण्डमुण्डादिभिस्तदा
गणोभृङ्गिस्तथानन्दीशैलादोहिमहातपाः । महाकालो महाचण्डोमहामुण्डोमहाशिराः
धूम्राक्षो धूम्रकेतुश्च धूम्रपादस्तथैवच । एतेचान्ये च बहवो गणा रुद्रानुवर्त्तिनः ॥ ४६

केचिद् भयानका रौद्राः कवन्धाश्च तथा परे ।
विलोचनाश्च केचिच्च वक्षोहीनास्तथा परे ॥ ४७ ॥

एवं भूताश्च शतशः सर्वे ते कृत्तिवाससः । जटाकलापसम्भूताः सर्वे रुद्राक्षभूषणाः
जितेन्द्रिया वीतरागाः सर्वे विषयवैरिणः । एभिः सर्वैः परिवृतः शङ्करो लोकशङ्करः

दृष्टस्तया उपाविष्ट आसने परमाद्भुते ॥ ४९ ॥
आक्षिप्तचित्ता सहसा जगाम शिवसन्निधिम् ।
शिवेन स्थापिता स्वाङ्के प्रीतियुक्तेन वल्लभा ॥ ५० ॥

प्रेम्णोदिता वचोभिः सा बहुमानपुरःसरम् । किमागमनकार्यं मे वद शीघ्रं सुमध्यमे

एवमुक्ता तदा तेन उवाचासितलोचना ॥ ५२ ॥

सत्युवाच

पितुर्मम महायज्ञे कस्मात्तव न रोचते । गमनं देवदेवेश ! तत्सर्वं कथय प्रभो ॥ ५३
सुहृदामेष वै धर्मः सुहृद्भिः सह संगतिम् । कुर्वन्ति यन्महादेवसुहृदां प्रीतिवर्धिनीम्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन अनाहूतोऽपि गच्छ भोः । यज्ञवाटं पितुर्मेऽद्य वचनान्मे सदाशिव
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा बभाषे सूनृतं वचः । त्वया भद्रे न गन्तव्यं दक्षस्य यजनं प्रति
तस्य ये मानिनः सर्वे ससुरासुरकिंनराः । ते सर्वे यजनं प्राप्ताः पितुस्तव न संशयः
अनाहूताश्च ये सुभ्रु गच्छन्ति परमन्दिरम् । अपमानं प्राप्नुवन्ति मरणादधिकं ततः
परेषां मन्दिरं प्राप्त इन्द्रोऽपिलघुतां व्रजेत् । तस्मात्त्वया न गन्तव्यं दक्षस्य यजनंशुभे
एवमुक्ता सती तेन महेशेन महात्मना । उवाच रोषसंयुक्तं वाक्यं वाक्यविदांवरा
यज्ञो हि सत्यंलोकेत्वं स त्वं देववरेश्वर ! । अनाहूतोऽसितेनाऽद्य पित्रामेदुष्टचारिणा

तत्सर्वं ज्ञातुमिच्छामि तस्य भावं दुरात्मनः ॥ ६१ ॥
तस्माच्चाऽद्यैव गच्छामियज्ञवाटंपितुर्म्मम । अनुज्ञां देहि मे नाथ देवदेव! जगत्प
इत्युक्तोभगवान्रुद्रस्तया देव्याशिवःस्वयम् । विज्ञाताखिलदृग्द्रष्टा भगवान्भूतभा
स तामुवाच देवेशो महेशः सर्वसिद्धिदः । गच्छ देवि ! त्वरायुक्तावचनान्ममसु
एवंनन्दिनमारुह्य नानाविधगणान्विता । गणाः षष्टिसहस्राणिजग्मू रौद्राःशिवा
तैर्गणैः संवृता देवी जगाम पितृमन्दिरम् । निरीक्ष्यतद्बलंसर्वंमहादेवोऽतिविस्मि
भूषणानि महार्हाणि तेभ्यो देव्यै परन्तपः । प्रेषयामास चाव्यग्रो महादेवोऽनुग्र
देव्या गतं वै स्वपितुर्गृहं तदा विमृश्य सर्वं भगवान् महेशः ।
दाक्षायणी पित्रवमानिता सती न यास्यतीति स्वपुरं पुनर्जगौ ॥ ६८ ॥

इति स्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे दक्षयज्ञम्प्रति सतीदेव्या गमनवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः

सत्या दक्षयज्ञसदने प्रवेशः

लोमश उवाच

दाक्षायणी गतातत्र यत्र यज्ञो महानभूत् । तत्पितुःसदनं गत्वा नानाश्चर्यसमन्वित
द्वारिस्थितातदादेवीअवतीर्य निजासनात् । नंदिनोहि महाभागा देवलोकं निरीक्ष्य
मातरं पितरं दृष्ट्वा सुहृत्सवन्धिबान्धवान् । अभिवाद्यैव पितरं मातरं च मुदान्वि
बभाषे वचनं देवी प्रस्तावसदृशं तदा । अनादृतस्त्वया कस्माच्छम्भुःपरमशोभनः ॥
येन पूतमिदं सर्वं समग्रं सचराचरम् । यज्ञो यज्ञविदां श्रेष्ठो यज्ञाङ्गो यज्ञदक्षिणः
द्रव्यं मन्त्रादिकं सर्वं हव्यं कव्यं च यन्मयम् । विना तेन कृतं सर्वमपवित्रं भविष्य

शंभुना हि विना तात कथं यज्ञः प्रवर्तते । एते कथं समायाता ब्रह्मणा सहिताःपितः
हे भृगो! त्वं न जानासि हे कश्यप महामते । अत्रेवशिष्ठ एकस्त्वं शक्र किं कृतमद्यते

हे विष्णो त्वं महादेवं जानासि परमेश्वरम् ।
ब्रह्मन् किं त्वन्न जानासि महादेवस्य विक्रमम् ॥ ६ ॥

पुरा पञ्चमुखो भूत्वा गर्वितोऽसिसदाशिवम् । कृतश्चतुर्मुखस्तेनविस्मृतोऽसितदद्भुतम्
भिक्षाटनंकृतंयेन पुरा दारुवने विभुः । शप्तोऽयं भिक्षुको रुद्रो भवद्भिःसखिभिस्तदा
शप्तेनाऽपि च रुद्रेण भवद्भिर्विस्मृतं कथम् । यस्यावयवमात्रेण पूरितं सचराचरम्
लिङ्गभूतं जगत्सर्वं जातं तत्क्षणमेवहि । लयनाल्लिङ्गमित्याहुः सर्वे देवाः सवासवाः
सर्वे देवाश्च सम्भूता यतो देवस्य शूलिनः । सोऽसौवेदान्तगोदेवस्त्वयाज्ञातुंनपार्यते
तस्यावचनमाकर्ण्यदक्षःक्रुद्धोऽब्रवीद्वचः । किंत्वयावहुनोक्तेनकार्यंनास्तीहसाम्प्रतम् ॥

गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे ! कस्मात्त्वं हि समागता ।
अमङ्गलो हि भर्ता ते अशिवोऽसौ सुमध्यमे !॥ १६ ॥

अकुलीनो वेदवाह्यो भूतप्रेतपिशाचराट् । तस्मान्नाकारितो भद्रे यज्ञार्थं चारुभाषिणि
मया दत्ताऽसिसुश्रोणिपापिनामन्दवुद्धिना । रुद्रायाविदितार्थाय उद्धताय दुरात्मने

तस्मात्कार्यं परित्यज्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ! ।
दक्षेणोक्ता तदा पुत्री सा सती लोकपूजिता ॥ १६ ॥

निंदायुक्तंस्वपितरंविलोक्य रुषिताभृशम् । चिंतयन्तीतदा देवी कथंयास्यामि मन्दिरे
शङ्करं द्रष्टुकामाऽहं किं वक्ष्येतेनपृच्छिता । योनिंदतिमहादेवंनिंद्यमानं शृणोतियः ।

तावुभौ नरके यातो यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ २१ ॥
तस्मात्त्यक्ष्याम्यहं देहं प्रवक्ष्यामि हुताशनम् ॥ २२ ॥

एवंमीमांसमानासाशिवरुद्रेतिभाषिणी । अपमानाभिभूतासाप्रविवेशहुताशनम् ॥२३॥
हाहाकारेण महता व्याप्तमासीद्दिगन्तरम् । सर्वे ते मञ्चमारूढाःशस्त्रैर्व्याप्तानिरन्तराः

शस्त्रैः स्वैर्जघ्नुरात्मानं स्वानि देहानि चिच्छिदुः ।
केचित्करतले गृह्य शिरांसि स्वानि चोत्सुकाः ॥ २५ ॥

नीराजयन्तस्त्वरिता भस्मीभूताश्च जज्ञिरे। एवमूचुस्तदा सर्वे जगर्ज्जुरतिभीषणाः।

शस्त्रप्रहारैः स्वाङ्गानि चिच्छिदुश्चातिभीषणाः।

ते तथा विलयं प्राप्ता दाक्षायण्या समन्ततः॥ २७॥

गणास्तत्रायुतेद्वे च तदद्भुतमिवाऽभवत्। ते सर्वे ऋषयो देवा इन्द्राद्याः समरुद्गणाः।

विश्वेऽश्विनौ लोकपालास्तूष्णीं भूतास्तदाऽभवन्।

विष्णुं वरेण्यं केचिच्च प्रार्थयन्तः समन्ततः॥ २९॥

एवं भूतस्तदा यज्ञोजातस्तस्य दुरात्मनः। दक्षस्य ब्रह्मबन्धोश्चऋषयो भयमागताः।

एतस्मिन्नन्तरे विप्रा! नारदेन महात्मना। कथितंसर्वमेवैतद्दक्षस्य च विचेष्टितम्।

तदाकर्ण्येश्वरो वाक्यंनारदस्यमुखोद्गतम्। चुकोपपरमंक्रुद्ध आसनादुत्पतन्निव॥३३॥

उद्धृत्यचजटांरुद्रो लोकसंहारकारकः। आस्फोटयामास रुषा पर्वतस्य शिरोपरि॥

ताड़नाच्चसमुद्भूतोवीरभद्रोमहायशाः। तथा कालीसमुत्पन्नाभूतकोटिभिरावृता॥३४॥

कोपान्निःश्वसितेनैवरुद्रस्य च महात्मनः। ज्ञातं ज्वराणांचशतंसन्निपातास्त्रयोदश॥

विज्ञप्तो वीरभद्रेणरुद्रोरौद्रपराक्रमः। किंकार्यं भवतःकार्यं शीघ्रमेव वद प्रभो! ॥३६॥

इत्युक्तोभगवान्रुद्रोप्रेषयामास सत्वरम्। गच्छवीरमहाबाहोदक्षयज्ञंविनाशय ॥३७॥

शासनंशिरसाधृत्वादेवदेवस्यशूलिनः। कालिकाऽऽलिहितो वीरःसर्वभूतैःसमावृतः।

वीरभद्रो महातेजा ययौ दक्षमखं प्रति॥ ३८॥

तदानीमेवसहसादुर्निमित्तानि चाऽभवन्। रूक्षोववौतदा वायुः शर्कराभिःसमावृतः।

असृग्वर्षति देवश्च(पर्जन्य) तिमिरेणाऽऽवृता दिशः।

उल्कापाताश्च बहवः पेतुरुर्व्यां सहस्रशः॥ ४०॥

एवं विधान्यरिष्टानि ददृशुर्विबुधादयः। दक्षोऽपिभयमापन्नोविष्णुंशरणमाययौ॥४१॥

रक्षरक्षमहाविष्णोत्वंहिनःपरमोगुरुः। यज्ञोऽसि त्वंसुरश्रेष्ठ!भयान्मांपरिमोचय॥४२॥

दक्षेण प्रार्थ्यमानोहिजगाद मधुसूदनः। मयारक्षा विधातव्याभवतोनात्र संशयः॥४३॥

अवज्ञा हि कृतादक्ष त्वयाधर्ममजानता। ईश्वरावज्ञया सर्वं विफलंचभविष्यति ॥४४॥

(अपूज्यायत्र पूज्यन्तेपूजनीयोन पूज्यते॥ त्रीणि तत्रप्रवर्तन्तेदुर्भिक्षं मरणं भयम्॥४५॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेनमाननीयोवृषध्वजः । अमानितान्महेशात्त्वांमहद्भयमुपस्थितम् ॥४६
अधुनैव वयं सर्वे प्रभवोन भवामहे । भवतो दुर्न्नयेनैव नाऽत्रकार्या विचारणा॥४७॥

विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा दक्षश्चिन्तापरोऽभवत् ।
विवर्णवदनो भूत्वा तूष्णीमासीद्भुवि स्थितः ॥४८॥

वीरभद्रो महावाहू रुद्रेणैवप्रचोदितः । काली कात्यायनीशानाचामुण्डा मुण्डमर्द्दिनी
भद्रकालीतथाभद्रात्वरितावैष्णवी तथा । नवदुर्गादिसहितोभूतानांचगणोमहान्॥५०॥
शाकिनी डाकिनी चैवभूतप्रमथगुह्यकाः । तथैवयोगिनीचक्रंचतुःषष्ट्या समन्वितम्
निर्जग्मुः सहसा तत्र यज्ञवाटं महाप्रभम् । वीरभद्रसमेता ये गणाः शतसहस्रशः॥५२॥
पार्षदाःशङ्करस्यैतेसर्वेरुद्रस्वरूपिणः । पञ्चवक्त्रा नीलकण्ठाःसर्वेतेशस्त्रपाणयः ॥५३॥
छत्रचामरसंवीताः सर्वे हरपराक्रमाः । दशवाहवस्त्रिनेत्रा जटिला रुद्रभूषणाः॥५४॥
अर्धचन्द्रधराः सर्वे सर्वे चैव महौजसः । सर्वे ते वृषभारूढाः सर्वे ते वेषभूषणाः॥५५॥

सहस्रबाहुर्भुजगाधिपैर्वृतस्त्रिलोचनो भीमबलो भयावहः ।
एभिः समेतश्च तदा महात्मा स वीरभद्रोऽभिजगाम यज्ञम् ॥५६॥

युग्यानां च सहस्रेण द्विप्रमाणेनस्यंदनम् । सिंहानांप्रयुतेनैववाह्यमानं च तस्य तत् ॥
तथैव दंशिताः सिंहावहवः पार्श्वरक्षकाः । शार्दूलामकरामत्स्यागजाश्चैव सहस्रशः ॥

छत्राणि विविधान्येव चामराणि तथैव च ॥ ५८ ॥

मूर्द्धनिध्रियमाणानिसर्वतोऽग्राणिसर्वशः । ततोभेरी महानादाःशङ्खाश्चविविधस्वनाः ॥

पटहा गोमुखाश्चैव श्रृङ्गाणि विविधानि च ॥५९॥

ततोऽवाद्यन्तततान्येवघनानिसुषिराणि च । कलगानपराः सर्वे सर्वे मृदंगवादिनः॥६०॥
अनेकलास्यसंयुक्ता वीरभद्राग्रतोऽभवन् । रणवादित्रनिर्घोषैर्जगर्जुरमितौजसः ॥६१॥
तेन नादेन महता नादितं भुवनत्रयम् । एवं सर्वे समायाता गणारुद्रप्रणोदिताः॥६२॥
यज्ञवाटं च दक्षस्यविनाशार्थंप्रहारिणः । रजसाचाऽऽवृतंव्योमतमसा च वृतादिशः ॥
सप्तद्वीपवती पृथ्वी चचाल साद्रिकानना । ते दृष्ट्वा महदाश्चर्यं लोकक्षयकरं तदा॥६४॥
उत्तस्थुर्युगपत्सर्वे देवदैत्यनिशाचराः । ते वै ददृशुरायांतींरुद्रसेनां भयावहाम् ॥६५॥

पृथ्वीं केचित्समायाता गगने केचिदागताः। दिशश्च प्रदिशश्चैव समावृत्य तथा प
अनंता ह्यक्षयाः सर्वे शूरा रुद्रसमा युधि। एवं भूतं च तत्सैन्यं रुद्रैश्च परिवारितम्
दृष्ट्वोचुर्विस्मिताः सर्वे यामोऽद्य शस्त्रपाणयः ॥६७॥
इन्द्रो हि गजमारूढो मृगारूढः सदागतिः। यमो महिषमारूढो यमदण्डसमन्वितः
कुबेरः पुष्पकारूढः पाशीमकरमेवच। अग्निर्वस्तसमारूढो निर्ऋतिः प्रेतमेव च॥६
तथाऽन्येसुरसङ्घाश्चयक्षचारणगुह्यकाः। आरुह्यवाहनान्येव स्वानि स्वानि प्रतापिन
स्वेषामुद्योगमालोक्यदक्षश्चाश्रुमुखस्ततः। दण्डवत्पतितोभूमौ सर्वानेवाऽभ्यभाषत
युष्मद्बलेनैवमयायज्ञः प्रारम्भितो महान्। सत्कर्मसिद्धये यूयं प्रमाणं सुमहाप्रभाः
विष्णो त्वं कर्मणःसाक्षाद्यज्ञानांपरिपालकः। धर्मस्य वेदगर्भस्यब्रह्मण्यस्त्वंचमाध
तस्माद्रक्षाविधातव्या यज्ञस्याऽस्यमहाप्रभो!। दक्षस्यवचनंश्रुत्वा उवाचमधुसूदनः
मया रक्षा विधातव्याधर्मस्यपरिपालने। तत्सत्यं तु त्वयोक्तं हिकिंतुतस्यव्यतिक्रम
यातस्त्वद्यैव यज्ञस्ययत्त्वयोक्तंसदाशिवम्। नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रेतदा किं न स्मृतंत्व
योऽयं रुद्रोमहातेजा यज्ञरूपःसदाशिवः। यज्ञबाह्यःकृतो मूढ! तच्च दुर्मन्त्रितं तव
रुद्रकोपाच्चकोह्यत्र समर्थो रक्षणे तव। न पश्यामि च तं विप्रत्वां वै रक्षति दुर्मति
किं कर्म किमकर्मेति तन्न पश्यतिदुर्मते। समर्थं केवलं कर्म न भविष्यति सर्वदा॥७
सेश्वरं कर्म विद्ध्येत तत्समर्थत्वेन जायते।
नह्यन्यः कर्मणो दाता ईश्वरेण विना भवेत् ॥ ८० ॥
ईश्वरस्य चयेभक्ताः शान्तास्तद्गतमानसाः। कर्म्मणोहि फलं तेषांप्रयच्छति सदाशि
यज्ञबाह्यःकृतोमूढ तच्च दुर्मन्त्रितं तव। केवलं कर्मचाश्रित्य निरीश्वरपरा जनाः
निरयन्ते च गच्छन्ति कोटियज्ञशतैरपि ॥ ८२ ॥
पुनः कर्ममयैःपाशैर्बद्धा जन्मनि जन्मनि। निरयेषु प्रपच्यन्ते केवलं कर्म्मरूपिणः॥८
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीति साहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरख
केदारखण्डे वीरभद्रप्रादुर्भाववर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

———

चतुर्थोऽध्यायः

देवैःसह शिवगणानां युद्धवर्णनम्

लोमश उवाच

विष्णुनोक्तं वचः श्रुत्वादक्षोवचनमब्रवीत् । वेदानामप्रमाणं च कृतं ते मधुसूदन ! ॥१
वैदिकंकर्मचोत्सृज्यकथंसेश्वरतां व्रजेत् । तदुच्यतांमहाविष्णो ! येनधर्मःप्रतिष्ठितः ॥
दक्षेणोक्तो महाविष्णुरुवाच परिसान्त्वयन् ।
त्रैगुण्यविषया वेदाः सम्भवन्ति न चान्यथा ॥ ३ ॥
वेदोदितानिकर्माणिईश्वरेणविना कथम । सफलानि भविष्यन्तिविफलान्येव तानिच
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ईश्वरं शरणं व्रज । एवं ब्रुवति गोविन्द आगतः सैन्यसागरः ॥
वीरभद्रेण सदृशो ददृशुस्तं तदा सुराः ॥ ५ ॥
इन्द्रोऽपि प्रहसन्विष्णुमात्मवादरतंतदा । वज्रपाणिःसुरैःसार्धंयोद्धुकामोऽभवत्तदा
भृगुणाचारितः शीघ्रमुच्चाटनपरेणहि । तदा गणाः सुरैः सार्धं युयुधुस्ते गणान्विताः
शरतोमरनाराचैर्जघ्नुस्तेच परस्परम् । नेदुः शङ्खाश्च बहुशस्तस्मिन्रणमहोत्सवे ॥८
तथा दुन्दुभयोनेदुः पटहाडिण्डिमादयः । तेन शब्देन महताश्लाघ्यमानास्तदा सुराः
लोकपालैश्च सहिता जघ्नुस्ताञ्छिवकिङ्करान् ॥ ९ ॥
खड्गैश्चाऽपि हताः केचिद्गदाभिश्च विपोथिताः । देवैःपराजिताःसर्वेगणाःशतसहस्रशः
इन्द्राद्यैर्लोकपालैश्चगणास्तेचपराङ्मुखाः । कृताश्चतत्क्षणादेवभृगोर्मन्त्रबलेनहि॥११॥
उच्चाटनंकृतंतेषांभृगुणायज्विना तदा । यजनार्थं च देवानांतुष्ट्यर्थंदीक्षितस्य च॥१२॥
तेनैव देवा जयिनोजातास्तत्क्षणमेवहि । स्वानां पराजयं दृष्ट्वा वीरभद्रोरुषान्वितः ॥
भूतान्प्रेतान्पिशाचांश्च कृत्वातानेव पृष्ठतः । वृषभस्थान्पुरस्कृत्य स्वयं चैव महाबलः ॥
तीक्ष्णं त्रिशूलमादाय पातयामास तान्रणे ॥१४॥
देवान्यक्षान्पिशाचांश्चगुह्यकान्राक्षसांस्तथा । शूलघातैश्च ते सर्वेगणादेवान्प्रजघ्निरे ॥

केचिद् द्विधाकृताः खड्गैर्मुद्गरैश्चाऽपि पोथिताः ।
परश्वधैः खण्डशश्च कृताः केचिद्रणाजिरे ॥ १६ ॥
शूलैर्भिन्नाश्चशतशःकेचिच्चशकलीकृताः । एवं पराजिताः सर्वे पलायनपरायणाः ॥१७
परस्परं परिष्वज्यगतास्तेऽपित्रिविष्टपम् । केवलंलोकपालाश्चइन्द्राद्यास्तस्थुरुत्सुकाः
बृहस्पतिं पृच्छमानाः कुतोऽस्माकं जयो भवेत् ॥ १८ ॥
बृहस्पतिरुवाचेदं सुरेन्द्रं त्वरितस्तदा ॥
बृहस्पतिरुवाच
यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तत्सत्यं जातमद्य वै ॥ १९ ॥
अस्ति चेदीश्वरः कश्चित्फलरूप्यस्य कर्म्मणः । कर्तारंभजतेसोऽपिनह्यकर्तुः प्रभुर्हिसः
न मन्त्रौषधयःसर्वेनाभिचारानलौकिकाः । न कर्माणि न वेदाश्च न मीमांसाद्वयंतथा॥
ज्ञातुमीशाः सम्भवन्ति भक्त्या ज्ञेयास्त्वनन्यया ।
शान्त्या च परया तुष्ट्या ज्ञातव्यो हि सदाशिवः ॥ २२ ॥
तेन सर्वंसम्भवन्तिसुखदुःखात्मकं जगत् । परन्तु सम्वदिष्यामिकार्याकार्यविवक्षया
त्वमिन्द्र ! बालिशो भूत्वा लोकपालैः सहाद्य वै ।
आगतो बालिशो भूत्वा इदानीं किं करिष्यसि ॥ २४ ॥
एतेरुद्रसहायाश्च गणाःपरमशोभनाः । कुपिताश्च महाभागा न तु शेषं प्रकुर्वते ॥२५॥
एवं बृहस्पतेर्वाक्यंश्रुत्वातेऽपिदिवौकसः । चिन्तामापेदिरेसर्वेलोकपाला महेश्वराः॥
ततोऽब्रवीद्वीरभद्रोगणैःपरिवृतो भृशम् । सर्वे यूयं बालिशत्वादवदानार्थमागताः॥
अवदानानिदास्यामितृप्त्यर्थंभवतांत्वरन् । एवमुक्त्वा शितैर्बाणैर्जघानाऽथ रुषान्वितः
तैर्बाणैर्निहताः सर्वे जग्मुस्ते च दिशो दश ॥ २९ ॥
गतेषु लोकपालेषु विद्रुतेषु सुरेषु च । यज्ञवाटे समायातो वीरभद्रो गणान्वितः ॥३०
तदा त ऋषयः सर्वे सर्वमेवेश्वरेश्वरम् । विज्ञप्तुकामाःसहसाऊचुरेवं जनार्दनम् ॥३१॥
रक्ष यज्ञंहि दक्षस्ययज्ञोऽसित्वं न संशयः । एतच्छ्रुत्वातु वचनमृषीणांवै जनार्दनः॥
योद्धुकामःस्थितोयुद्धेविष्णुरध्यात्मदीपकः । वीरभद्रोमहाबाहुःकेशवंवाक्यमब्रवीत् ॥

अत्रत्वयागतंकस्माद्विष्णो! वेत्त्रामहावलम्। दक्षस्यपक्षमाश्रित्यकथंजेष्यसितद्वद ॥
दाक्षायण्याकृतंयच्च न दृष्टं किं त्वयाऽनघ ! । त्वंचाऽपियज्ञेदक्षस्यअवदानार्थमागतः
अवदानं प्रयच्छामि तव चाऽपि महाभुज ! ॥ ३५ ॥
एवमुक्त्वा प्रणम्यादौ विष्णुं सद्वशरूपिणम् ।
वीरभद्रोऽग्रतो भूत्वा विष्णुं वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥ ३६ ॥
यथाशम्भुस्तथात्वंहिममनास्त्यत्रसंशयः।तथाऽपित्वंमहावाहोयोद्धुकामोऽग्रतःस्थितः
नेष्याम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेस्त्वमात्मना ॥ ३७ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वीरभद्रस्यधीमतः । उवाच प्रहसन्देवोविष्णुःसर्वेश्वरेश्वरः ॥३८॥

विष्णुरुवाच

रुद्रतेजःप्रसूतोऽसि पवित्रोऽसि महामते । अनेन प्रार्थितः पूर्वं यज्ञार्थं च पुनः पुनः ॥
अहंभक्तपराधीनस्तथासोऽपि महेश्वरः । तेनैव कारणेनाऽत्रदक्षस्य यजनं प्रति ॥४०॥
आगतोऽहं वीरभद्र! रुद्रकोपसमुद्भव! । अहं निवारयामित्वां त्वंवामां विनिवारय ॥
इत्युक्तवतिगोविन्दे प्रहस्य स महाभुजः । प्रश्रयावनतोभूत्वा इदमाह जनार्दनम् ॥४२॥
यथा शिवस्तथा त्वं हि यथा त्वं च तथा शिवः ।
सेवकाश्च वयं सर्वे तव वा शङ्करस्य च ॥४३॥
तच्छ्रुत्वा वचनंतस्यसोऽच्युतः सम्प्रहस्यच । इदं विष्णुर्महावाक्यं जगादपरमेश्वरः ॥
योधयस्वमहावाहोमयासार्धमशङ्कितः । तवाऽस्त्रैःपूर्यमाणोऽहंगच्छामिभवनंस्वकम्॥
तथेत्युक्त्वा तु वीरोऽसौ वीरभद्रो महावलः । गृहीत्वा परमास्त्राणिसिंहनादैर्जगर्जह
विष्णुश्चाऽपिमहाघोषंशङ्खनादंचकारसः । तच्छ्रुत्वा ये गतादेवारणंहित्वाऽऽययुःपुनः
व्यूहं चक्रुस्तदा सर्वे लोकपालाः सवासवाः । तदेन्द्रेण हतो नन्दी वज्रेण शतपर्वणा
नन्दिना च हतः शक्रस्त्रिशूलेन स्तनान्तरे । वायुनाच हतो भृङ्गी भृङ्गिणा वायुराहतः
शूलेन सितधारेण संनद्धो दण्डधारिणा । यमेन सह संग्रामं महाकालो वलान्वितः
कुवेरेण च संगम्य कूष्माण्डानां पतिः स्वयम् । वरुणेन समं युद्धं मुण्डश्चैवमहावलः
युयुधे परया शक्त्या त्रैलोक्यं विस्मयन्निव । नैर्ऋतेन समागम्य चण्डश्च वलवत्तरः

युयुधेपरमास्त्रेण नैर्ऋत्यं च विडम्बयन्। योगिनीचक्रसंयुक्तो भैरवो नायकोमहान्
विदार्य देवानखिलान्पपौ शोणितमद्भुतम्। क्षेत्रपालास्तथा चान्ये भूतप्रमथगुह्यकाः
शाकिनी डाकिनी रौद्रा नवदुर्गास्तथैव च।
योगिन्यो यातुधान्यश्च तथा कूष्माण्डकादयः॥
नेदुः पपुः शोणितं च बुभुजुः पिशितं बहु॥५५॥
भक्ष्यमाणंतदासैन्यंविलोक्यसुरराट् स्वयम्। विहायनन्दिनंपश्चाद्वीरभद्रंसमाक्षिपत्
वीरभद्रो विहायैव विष्णुं देवेन्द्रमास्थितः। तयोर्युद्धमभूद्धोरं बुधाङ्गारकयोरिव॥
वीरभद्रंपदाशक्रो हन्तुकामस्त्वरान्वितः। तावच्छक्रं गजस्थं हि पूरयामास मार्गणैः
वीरभद्रो रुषाविष्टो दुर्निवार्यो महाबलः। तदेन्द्रेणाहतः शीघ्रं वज्रेण शतपर्वणा॥ ५९
सगजश्च सवज्रं च वासवंगन्तुमुद्यतः। हाहाकारोमहानासीद् भूतानांतत्रपश्यताम्॥
वीरभद्रं तथाभूतं हन्तुकामं पुरन्दरम्। त्वरमाणस्तदा विष्णुर्वीरभद्राग्रतः स्थितः॥
शक्रं च पृष्ठतः कृत्वा योधयामास वै तदा। वीरभद्रस्य विष्णोश्च युद्धं परमभूत्तदा
शस्त्रास्त्रैर्विविधाकारैर्योधयामासतुस्तदा। पुनर्नन्दिनमालोक्य शक्रो युद्धविशारदः
द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलं देवानां प्रमथैः सह। प्रमथा मथिता देवैः सर्वे ते प्राद्रवद्रणात्।
गणान्पराङ्मुखान्दृष्ट्वासर्वेतेव्याधयो भृशम्। रुद्रकोपात्समुद्भूतादेवाश्चाऽपिप्रदुद्रुवुः
ज्वरैस्तु पीड़ितान्देवान्दृष्ट्वाविष्णुर्हसन्निव। जीवग्राहेण जग्राह देवांस्तांश्चपृथक्पृथक्
देवाश्विनौ तदाऽऽहूय व्याधीन्हन्तुं तदाभृतिम्।
ददौ ताभ्यां प्रयत्नेन गणयित्वा सुबुद्धिमान्॥६७॥
ज्वरांश्चसन्निपातांश्चअन्येभूतद्रुहस्तदा। तान्सर्वान्निगृहीत्वाऽथअश्विनौतौमुदान्वितौ
विज्वरानथ देवांश्च कृत्वा मुमुदतुश्चिरम्॥६८॥
तैर्जितं योगिनीचक्रं भैरवं व्याकुलीकृतम्। तीक्ष्णाग्रैः पातयामासुः शरैर्भूतगणानपि
सुरैर्विद्रावितं सैन्यं विलोक्य पतितं भुवि। वीरभद्रो रुषाविष्टो विष्णुंवचनमब्रवीत्
त्वं शूरोऽसिमहाबाहो! देवानांपालकोह्यसि। युध्यस्वमांप्रयत्नेनयदि ते मतिरीदृशी
इत्युक्त्वा तं समासाद्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्। ववर्ष निशितैर्बाणैर्वीरभद्रोमहाबलः

तदा चक्रेण भगवान्वीरभद्रं जघान सः। आयान्तं चक्रमालोक्यग्रसितं तत्क्षणाच्चतत्
ग्रसितं चक्रमालोक्य विष्णुः परपुरञ्जयः। मुखंतस्य परामृज्य विष्णुनोद्गलितं पुनः

स्वचक्रमादाय महानुभावो दिवंगतोऽक्षो भुवनैकभर्त्ता।
ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं च विष्णुः कृती कृतं दुष्प्रसहं परेषाम् ॥७५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीति साहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे वीरभद्रादीनां विष्ण्वादिभिः सह युद्धवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः

पञ्चमोऽध्यायः

वीरभद्रेणदक्षशिरश्छेदनम्

लोमश उवाच

विष्णौ गते तदा सर्वे देवाश्च ऋषिभिः सह।
विनिर्जिता गणैः सर्वे ये च यज्ञोपजीविनः ॥१॥
भृगुश्च पातयामास श्मश्रूणां लुञ्चनं कृतम्।
द्विजांश्चोत्पाटयामास पूष्णो विकृतविक्रियान् ॥२॥

विडम्बिता स्वधा तत्र ऋषयश्चविडम्बिताः। ववृषुस्ते पुरीषेणवितानाग्नौरुषान्विताः
अनिर्वाच्यं तदाचक्रुर्गणाः क्रोधसमन्विताः। अन्तर्वेद्यन्तरगतो दक्षो वै महतो भयात्
तं निलीनं समाज्ञाय आनिनाय रुषान्वितः। कपोलेषु गृहीत्वा तं खड्गेनोपहतंशिरः

अभेद्यं तच्छिरो मत्वा वीरभद्रः प्रतापवान्।
स्कन्धं पद्भ्यां समाक्रम्य कन्धरेऽपीडयत्तदा ॥६॥

कन्धरात्पाट्यमानाच्च शिरश्छिन्नं दुरात्मनः। दक्षस्य च तदा तेन वीरभद्रेणधीमता

तच्छिरः सुहुतं कुण्डे ज्वलिते तत्क्षणात्तदा ॥७॥

ये चान्ये ऋषयो देवाः पितरो यक्षराक्षसाः । गणैरुपद्रुताः सर्वे पलायनपरा ययुः
चन्द्रादित्यगणाः सर्वे ग्रहनक्षत्रतारकाः । सर्वे विचलिताह्यासन् गणैस्तेऽपिह्युपद्रु
सत्यलोकंगतो ब्रह्मा पुत्रशोकेन पीडितः । चिन्तयामासचाव्यग्रः किं कार्यंकार्यम
मनसा दूयमानेन शं न लेभे पितामहः । ज्ञात्वा सर्वं प्रयत्नेन दुष्कृतं तस्य पापि
गमनाय मतिं चक्रे कैलासं पर्वतं प्रति । हंसारूढो महातेजाः सर्वदेवैः समन्वित
प्रविष्टः पर्वतश्रेष्ठं स ददर्श सदाशिवम् । एकान्तवासिनं रुद्रं शैलादेन समन्वि
कपर्दिनं श्रियायुक्तंवेदाङ्गानां च दुर्गमम् । तथाविधं समालोक्यब्रह्माक्षोभपरोऽभ
दण्डवत्पतितो भूमौ क्षमापयितुमुद्यतः । संस्पृशं तत्पदाब्जं च चतुर्मुकुटकोटिभि
स्तुतिं कर्तुं समारेभे शिवस्य परमात्मनः ॥१५॥

ब्रह्मोवाच

नमोरुद्राय शान्तायब्रह्मणेपरमात्मने । त्वं हि विश्वसृजांस्रष्टा धाता त्वं प्रपिताम
नमो रुद्राय महते नीलकण्ठाय वेधसे । विश्वाय विश्वबीजाय जगदानन्दहेतवे ॥१
ओङ्कारस्त्वं वषट्कारः सर्वारम्भप्रवर्त्तकः । यज्ञोऽसि यज्ञकर्माऽसियज्ञानांचप्रवर्त्त
सर्वेषां यज्ञकर्तॄणां त्वमेव प्रतिपालकः । शरण्योऽसिमहादेव ! सर्वेषां प्राणिनां प्र
रक्ष रक्ष महादेव ! पुत्रशोकेन पीडितम् ॥१६॥

महादेव उवाच

शृणुष्वाऽवहितोभूत्वाममवाक्यं पितामह ! । दक्षस्ययज्ञभङ्गोऽयंनकृतश्चमयाक्वचि
स्वीयेन कर्मणा दक्षो हतो ब्रह्मन्न संशयः ॥२१॥
परेषां क्लेशदं कर्म न कार्यं तत्कदाचन । परमेष्ठिन् परेषां यदात्मनस्तद्भविष्यति ॥२
एवमुक्त्वा तदा रुद्रो ब्रह्मणा सहितः सुरैः । ययौ कनखलं तीर्थं यज्ञवाटं प्रजापतेः
रुद्रस्तदा ददर्शाऽथ वीरभद्रेण यत्कृतम् । स्वाहा स्वधा तथा पूषा भृगुर्मतिमतांव
तदाऽन्यऋषयः सर्वे पितरश्च तथाविधाः । येऽन्ये च बहवस्तत्र यक्षगन्धर्वकिन्न
त्रोटिता लुञ्चिताश्चैव मृताः केचिद्रणाजिरे ॥२६॥
शम्भुं समागतं दृष्ट्वा वीरभद्रो गणैः सह । दण्डप्रणामसंयुक्तस्तस्थावग्रे सदाशिव

दृष्ट्वा पुरःस्थितं रुद्रो वीरभद्रं महाबलम् । उवाच प्रहसन्वाक्यं किं कृतं वीरनन्विदम्
दक्षमानय शीघ्रं भो येनेदं कृतमीदृशम् । यज्ञे विलक्षणं तात यस्येदं फलमीदृशम् ॥
एवमुक्तः शङ्करेण वीरभद्रस्त्वरान्वितः ।
कबन्धमानयित्वाऽथ शम्भोरग्रे तदाक्षिपत् ॥३०॥
तदोक्तः शङ्करेणैव वीरभद्रो महामनाः । शिरः केनापनीतं च दक्षस्याऽस्य दुरात्मनः
दास्यामि जीवनं वीर कुटिलस्याऽपि चाधुना ।
एवमुक्तः शङ्करेण वीरभद्रोऽब्रवीत्पुनः ॥३२॥
मया शिरोहुतंचाग्नौतदानीमेव शङ्कर ! । अवशिष्टं शिरःशम्भो पशोश्च विकृताननम्
इतिज्ञात्वा ततोरुद्रःकबन्धोपरिचाक्षिपत् ॥ शिरःपशोश्चविकृतं कूर्चयुक्तं भयावहम् ॥
स दक्षो जीवितं लेभे प्रसादाच्छङ्करस्यच । सदृष्ट्वाऽग्रे तदारुद्रं दक्षोलज्जासमन्वितः ॥
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा शङ्करं लोकशङ्करम् ॥ ३५ ॥

दक्ष उवाच

नमामि देवं वरदं वरेण्यं नमामि देवेशवरं सनातनम् ।
नमामि देवाधिपमीश्वरं हरं नमामि शम्भुं जगदेकबन्धुम् ॥ ३६ ॥
नमामि विश्वेश्वर ! विश्वरूपं सनातनं ब्रह्म निजात्मरूपम् ।
नमामि सर्वं निजभावभावं वरं वरेण्यं वरदं नतोऽस्मि ॥ ३७ ॥

लोमश उवाच

दक्षेण संस्तुतो रुद्रो बभाषे प्रहसन्हरः ॥ ३८ ॥

हर उवाच

चतुर्विधाभजन्तेमांजनाःसुकृतिनः सदा । आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थीज्ञानी च द्विजसत्तम! ॥
तस्मान्मेज्ञानिनःसर्वेप्रियाःस्युर्नाऽत्रसंशयः । विनाज्ञानेनमांप्राप्तुंयतन्तेतेहिबालिशाः ॥
केवलं कर्मणा त्वं हि संसारात्तर्तुमिच्छसि ॥ ४१ ॥
न वेदैश्चनदानैश्च न यज्ञैस्तपसाकचित् । न शक्नुवन्तिमांप्राप्तुंमूढाःकर्मवशा नराः ॥४२
तस्माज्ज्ञानपरोभूत्वाकुरुकर्मसमाहितः । सुखदुःखसमो भूत्वासुखीभव निरन्तरम् ॥

लोमश उवाच

उपदिष्टस्तदा तेन शम्भुनापरमेष्ठिना । दक्षं तत्रैवसंस्थाप्ययया रुद्रः स्वपर्वतम् ॥४
ब्रह्मणाऽपितथासर्वैर्भृग्वाद्याश्चमहर्षयः । आश्वासिताबोधिताश्चज्ञानिनश्चाऽभवन्क्षा
गतः पितामहो ब्रह्मा ततश्च सदनं स्वकम् ॥ ४६ ॥
दक्षोऽपिच स्वयं वाक्यात्परंबोधमुपागतः । शिवध्यानपरोभूत्वातपस्तेपे महामना
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संसेव्यो भगवाञ्छिवः ॥ ४८ ॥
सम्मार्जनंचकुर्वन्तिनराये च शिवाङ्गणे । ते वै शिवपुरंप्राप्यजगद्वन्द्या भवन्ति च॥
ये शिवाय प्रयच्छन्तिदर्प्पणंसुमहाप्रभम् । भविष्यन्तिशिवस्याग्रेपार्षदत्वेन ते नरा
चामराणि प्रयच्छन्तिदेवदेवस्यशूलिनः । चामरैर्वीज्यमानास्तेभविष्यन्ति जगत्रं
दीपदानं प्रयच्छन्ति महादेवालये नराः । तेजस्विनोभविष्यन्ति ते त्रैलोक्ये प्रदीप
धूपं ये वै प्रयच्छन्तिशिवायपरमात्मने । यशस्विनोभविष्यन्ति उद्धरन्ति कुलद्वय
नैवेद्यं ये प्रयच्छन्तिभक्त्या हरिहराग्रतः । सिक्थेसिक्थेक्रतुफलंप्राप्नुवन्तिहितेनर
* भग्नंशिवालयं ये च प्रकुर्वन्तिनरोत्तमाः । प्राप्नुवन्तिफलं ते वै द्विगुणंनात्र सं
नूतनं ये प्रकुर्वन्ति इष्टकैरश्मनाऽपि वा ।
स्वर्गेहितेप्रमोदन्तेयावत्तिष्ठति निर्मलम् । यशो भूमौद्विजश्रेष्ठानात्रकार्या विचार
कारयन्ति च येविप्राःप्रासादंबहुभूमिकम् । शिवस्याथमहाप्राज्ञाःप्राप्नुवन्तिपरांग
शुद्धंधवलितंये च कुर्वन्तिहरमन्दिरम् । स्वीयं परकृतंचाऽपितेऽपियान्तिपरां गति
वितानं येप्रयच्छन्तिनराःसुकृतिनोऽपि हि । तारयन्तिकुलंकृत्स्नंशिवलोकंगताःपु
येचनादमयींघण्टांनिबध्नन्तिशिवालये । तेजस्विनःकीर्तिमन्तोभविष्यन्तिजगत्र
एककालंद्विकालंवात्रिकालंचानुपश्यति । आढ्योवाऽपिदरिद्रोवासुखंदुःखात्प्रमु
श्रद्धावान्भजतेयो वा शिवायपरमात्मने । कुलकोटिं समुद्धृत्यशिवेनसहमोदते॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासंपुरातनम् । ऐन्द्रद्युम्नेश्च सम्वादं यमस्य च महात्म
पुरा कृतयुगे ह्यासीदिन्द्रसेनोनराधिपः । प्रतिष्ठानाधिपो वीरोमृगयारसिकः स

*जीर्णोद्धारं प्रकुर्वन्तीत्यर्थः ।

अब्रह्मण्यः सदाक्रूरः केवलासुतृपः सदा । परप्राणैर्निजप्राणान्पुष्णातिस खलःसदा ॥
परस्त्रीलम्पटोऽत्यन्तंपरद्रव्येषुलोलुपः । ब्राह्मणाघातितास्तेन सुरापश्च निरन्तरम् ॥
गुरुतल्पगतोऽत्यर्थं सदा सौवर्णतस्करः । तथाभूतानुगाः सर्वे राज्ञस्तस्यदुरात्मनः ॥
एवं बहुविधं राज्यं चकार स दुरात्मवान् । ततःकालेन महतापञ्चत्वं प्राप दुर्मतिः ॥
तदायमस्यैश्चनीतोऽसाविन्द्रसेनो दुरात्मवान् । यमान्तिकमनुप्राप्तस्तदाराजा सकल्मषः
यमेन दृष्टस्तत्रासाविन्द्रसेनोऽग्रतःस्थितः । अभ्युत्थानपरोभूत्वाननामशिरसाशिवम् ॥
दूतान् सम्भर्त्सयामास यमो धर्मभृतांवरः । पाशैर्बद्धं चेन्द्रसेनं मुक्त्वाप्रोवाचधर्मराट्

गच्छ पुण्यतमाँल्लोकान्भुङ्क्ष्व राजन्यसत्तम !।
यावदिन्द्रश्च नाकेऽस्ति यावत्सूर्यो नभस्तले ॥ ७२ ॥

पञ्चभूतानियावच्चतावत्त्वंचसुखीभव । सुकृती त्वं महाराजशिवभक्तोऽसि नित्यदा ॥
यमस्य वचनंश्रुत्वा इन्द्रसेनोऽभ्यभाषत । अहं शिवं न जानामिमृगयारसिकोह्यहम् ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्ययमो भाष्यमभाषत । आहर प्रहरस्वेति उक्तं चेदं सदा त्वया ॥
तेन कर्मविपाकेनसदापूतोऽसिमानद ! । तस्मात्त्वंगच्छकैलासपर्वतंशङ्करम्प्रति ॥७६॥
एवं सम्भाषमाणस्य यमस्य च महात्मनः आगताः शिवदूतास्ते वृषारूढा महाप्रभाः ॥
नीलकण्ठाः दशभुजाःपञ्चवक्त्रास्त्रिलोचनाः। कपर्द्दिनःकुण्डलिनःशशाङ्काङ्कितमौलयः॥
तान्दृष्ट्वा सहसोत्थाय यमो धर्मभृतांवरः । पूजयामास तान्सर्वान्महेन्द्रप्रतिमांस्तदा ॥
त्वरितेनैव ते सर्वे ऊचुर्वैवस्वतं यमम् । अत्रागतो महाभाग इन्द्रसेनोऽमितद्युतिः ॥

नाम्नः प्रवर्तको नित्यं रुद्रस्य च महात्मनः ॥ ८० ॥

श्रुत्वा च वचनंतेषां यमेन च पुरस्कृतः । इन्द्रसेनोविमानस्थःप्रेषितो हि शिवालयम् ॥
आनीतोऽयं तदातैश्च पार्षदप्रवरोत्तमैः । शम्भुना हि तदा दृष्ट इन्द्रसेनोऽमितद्युतिः ॥
अभ्युत्थायागतोरुद्रः परिष्वज्यतदानृपम् । अर्द्धासनगतंकृत्वाइन्द्रसेनं ततोऽब्रवीत् ॥
किं दातव्यंनृपश्रेष्ठ! प्रयच्छामि तवेप्सितम् । इति श्रुत्वावचस्तस्यमहेशस्यतदा नृपः ॥

आनन्दाश्रुकणान्मुंचन्प्रेम्णा नोवाच किञ्चन ॥ ८४ ॥

तदाकृतोमहेशेनपार्षदोहिमहात्मना । चण्डोनाम्नाचविख्यातोमुण्डस्य च सखाप्रियः॥

नामोच्चारणमात्रेण रुद्रस्य परमात्मनः। सिद्धिम्प्राप्तो हि पापिष्ठइन्द्रसेनोनराधिपः।
हरे हरेति वै नाम्ना शम्भोश्चक्रधरस्यच। रक्षिता बहवोमर्त्याः शिवेन परमात्मना।
महेशान्नापरो देवो दृश्यते भुवनत्रये। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजनीयः सदाशिवः ॥८
पत्रैः पुष्पैःफलैर्वाऽपि जलैर्वा विमलैः सदा। करवीरैःपूज्यमानः शङ्करोवरदोभवेत्।
करवीराद्दशगुणमर्कपुष्पं विशिष्यते। विभूत्यादिकृतं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥९
शिवस्याङ्गणलग्नायातस्मात्तांधारयेत्सदा। ततस्त्रिपुण्ड्रे यत्पुण्यंतच्छृणुध्वंद्विजोत्तमाः
सर्वपापहरं पुण्यं तच्छृणुध्वंद्विजोत्तमाः। स्तेनः कोऽपि महापापोघातितोराजदूतकैः
तं खादितुंसमायातःश्वाशिरस्युपरि स्थितः। नखान्तरालसंलग्नारक्षातस्यैव पापिनः।
ललाटे पतिता तस्य त्रिपुण्ड्राङ्कितमुद्रया। चैतन्येन विनातस्य देहमात्रैकलग्नया।
कैलासं तस्करो नीतो रुद्रदूतैस्ततस्तदा। विभूतेर्महिमानं तु को विशेषितुमर्हति।
विभूत्यामण्डिताङ्गानांनराणांपुण्यकर्मणाम्। मुखेपञ्चाक्षरोयेषांरुद्रास्तेनाऽत्रसंशयः
जटाकलापिनोयेच ये रुद्राक्षविभूषणाः। ते वै मनुष्यरूपेणरुद्रानास्त्यत्र संशयः॥९७
तस्मात्सदाशिवःपुम्भिःपूजनीयोहिनित्यशः। प्रातर्मध्याह्नकालेचसायंसंध्याविशिष्यते
प्रातस्तु दर्शनाच्छम्भोर्नैशमेनोव्यपोहति। मध्याह्नेदर्शनाच्छम्भोःसप्तजन्मार्जितंनृणाम्
पापंप्रणाशमायातिनिशायां नैव गण्यते। शिवेति द्व्यक्षरं नाम महापापप्रणाशनम्
येषां मुखोद्गतं नृणां तैरिदं धार्यते जगत् ॥ १०० ॥
शिवाङ्गणे तु या भेरी स्थापिता पुण्यकर्मभिः। तस्यानादेनपूतावैये च पापरताजनाः
पाषण्डिनोऽप्यसद्वादास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ १०१ ॥
पशोर्यस्यच सम्बद्धा चर्मणा च शिवालये। नृभिर्यास्थापिताभेरी मृदंग मुरजादि च
स पशुः शिवसान्निध्यमाप्नोत्यत्र न संशयः ॥ १०२ ॥
तस्मात्ततं च विततं घनं सुषिरमेव च। चामराणि महार्हाणि मञ्चकाः शयनानि च
गाथाश्च इतिहासाश्च गायनंचयथाविधि। बहुरूपादिकंशम्भोःप्रियान्येतानिकल्पयेत्
कल्पयित्वाचगच्छन्तिशिवलोकंहिपापिनः। सुधर्माणोमहात्मानःशिवपूजाविशारदाः
गुरोर्मुखाच्च सम्प्राप्तशिवपूजारताश्च ये। शिवरूपेण ये विश्वं पश्यन्ति कृतनिश्चयाः

सम्यग्बुद्ध्या समाचारा वर्णाश्रमयुता नराः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चान्ये तथा नराः ॥ १०७ ॥

श्वपचोऽपिवरिष्ठःसशम्भोः प्रियतरोभवेत्। शम्भुनाऽधिष्ठितं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥
तस्मात्सर्वं शिवमयं ज्ञातव्यं सुविशेषतः। वेदैः पुराणैः शास्त्रैश्च तथौपनिषदैरपि ॥
आगमैर्विविधैःशम्भुर्ज्ञातव्योनात्र संशयः। निष्कामैश्च सकामैश्च पूजनीयः सदाशिवः

लोमश उवाच

कथयामि पुरावृत्तमितिहासं पुरातनम्। नंदी नाम पुरा वैश्यो ह्यवन्तीपुरमावसत्
शिवध्यानपरो भूत्वा शिवपूजां चकार सः। नित्यंतपोवनस्थंहि लिङ्गमेकं समर्चयत्
उषस्युषसि चोत्थाय प्रत्यहं शिववल्लभः। नंदी लिङ्गार्च्चनरतो बभूवातिशयेन हि ॥
लिङ्गंपञ्चामृतेनैव यथोक्तेनाभ्यषेचयत्। विप्रैः समावृतो नित्यं वेदवेदाङ्गपारगैः ॥

यथा शास्त्रेण विधिना लिङ्गार्च्चनपरोऽभवत्।
स्नापयित्वा ततः पुष्पैर्नानाश्चर्यसमन्वितैः ॥११५॥

मुक्ताफलैरिन्द्रनीलैर्गोमेदैश्चनिरन्तरम्। वैडूर्यैश्चैव नीलैश्चमाणिक्यैश्च तथाऽर्चयत् ॥
एवं नन्दीमहाभागोबहून्यब्दानिचार्च्चयत्। विजनस्थंतदा लिङ्गंनानाभोगसमन्वितम्
एकदा मृगयासक्तः किरातो भूतहिंसकः। अविवेकपरोभूत्वा मृगयारसिकः सदा ॥
पापी पापसमाचारो विचरन्गिरिकन्दरे। अनेकश्वापदाकीर्णे हन्यमान इतस्ततः ॥
एवंविचरमाणोऽसौ किरातोभूतहिंसकः। यदृच्छयागतस्तत्रयत्र लिङ्गं सुपूजितम् ॥
उदकंवीक्षमाणोऽसौतृषया पीडितो भृशम्। ततो वनेचरः शीघ्रंदृष्ट्वा तोयेसमाविशत्

तीरे संस्थाप्य दुष्टात्मा तत्सर्वं मृगयादिकम्।
गण्डूषोत्सर्जनं कृत्वा पीत्वा तोयं च निर्गतः ॥१२२॥

शिवालयं ददर्शाग्रे अनेकाश्चर्यमण्डितम्। दृष्टंसुपूजितंलिङ्गं नानारत्नैः पृथक्पृथक्
तथालिङ्गं समालक्ष्य यदा पूजां समाहरत्। रत्नानि सर्वभूतानि विधूतानि इतस्ततः
स्नपनं तस्य लिङ्गस्य कृतं गण्डूषवारिणा। करेणैकेन पूजार्थं बिल्वपत्राणिसोऽर्पयत्
द्वितीयेन करेणैव मृगमांसं समर्पयत्। दण्डप्रणामसंयुक्तः सङ्कल्पं मनसाऽकरोत्

अद्यप्रभृति पूजां वै करिष्यामिप्रयत्नतः । त्वं मे स्वामी च भक्तोऽहमद्यप्रभृति शङ्क
एवं नैयमिको भूत्वा किरातो गृहमागतः । नन्दी ददर्श तत्सर्वं किरातेन इतस्त
चिन्तायुक्तोऽभवन्नंदी जातं किं छिद्रमद्यमे । कथितानि च विघ्नानिशिवपूजारतस्

उपस्थितानि तान्येव मम भाग्यविपर्ययात् ॥१२६॥

एवं विमृश्य सुचिरं प्रक्षाल्य शिवमन्दिरम् । यथागतेन मार्गेण नंदी स्वगृहमाग
ततो नन्दिनमागत्य पुरोधा गतमानसम् । अब्रवीद्वचनं तं तु कस्मात्त्वं गतमान

पुरोहितं प्रति तदा नन्दी वचनमब्रवीत् ॥१३२॥

अद्य दृष्टं मया विप्र अमेध्यं शिवसन्निधौ । केनेदं कारितं तत्र न जानामि कथ
ततः पुरोधा वचनं नन्दिनं चाब्रवीत्तदा । येन विस्खलितं तत्ररत्नादीनां प्रपूजनम्

सोऽपि मूढो न सन्देहः कार्याकार्येषु मन्दधीः ॥१३४॥

तस्माच्चिन्तानकर्तव्यात्वयाअणुरपि प्रभो । प्रभाते च मयासार्द्धंगस्यतांतच्छिवालय
निरीक्षणार्थं दुष्टस्यतत्कार्यंविदधाम्यहम् । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नन्दी तस्यपुरोध

आस्थितः स्वगृहे नक्तं दूयमानेन चेतसा ।

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामाहूय च पुरोधसम् ॥१३७॥

गतः शिवालयं नंदीसमं तेन महात्मना । ततो दृष्टं पूर्वदिनं कृतं तेन दुरात्मना
सम्यक्प्रपूजनं कृत्वा नानारत्नपरिच्छदम् । पञ्चोपचारसंयुक्तं चैकादश्यन्वितं त
अनेकस्तुतिभिः स्तुत्वा गिरीशं ब्राह्मणैः सह । तदा यामद्वयं जातंस्तूयमानस्यनन्दि
आयातो हि महाकालस्तथारूपोमहाबलः । कालरूपोमहारौद्रोधनुष्पाणिः प्रतापव
तं दृष्ट्वा भयवित्रस्तो नन्दी स विललाप ह । पुरोधाश्चैव सहसाभयभीतस्तदाऽभ
किरातेन कृतंतत्र यथापूर्वमविस्खलम् । तां पूजां प्रपदाऽऽहत्य बिल्वपत्रंसमर्पयत
स्नपनं तस्य कृत्वा च ततोगण्डूषवारिणा । नैवेद्यं तत्पलं चैव किरातः शिवमर्प
दण्डवत्पतितो भूमावुत्थाय स्वगृहं गतः । तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यंचिन्तयामास वैचि
पुरोधसा सह तदा नन्दी व्याकुलचेतसा । तेन चाकारिता विप्रा बहवो वेदवादि
निवेद्यतेषुतत्सर्वंकिरातेन च यत्कृतम् । किं कार्यमथ भो विप्राःकथ्यतांचयथात

सम्प्रधार्य ततः सर्वे मिलित्वा धर्मशास्त्रतः ।
ऊचुः सर्वे तदा विप्रा नन्दिनं चातिशङ्किनम् ॥१४८॥
इदं विघ्नं समुत्पन्नं दुर्निवार्यं सुरैरपि । तस्मादानय लिङ्गंस्त्वं स्वगृहं वैश्यसत्तम ! ॥
तथेतिमत्वाऽसौनन्दीशिवस्योत्पाटनं तदा । कृत्वास्वगृहमानीयप्रतिष्ठाप्ययथाविधि
सुवर्णपीठिकां कृत्वा नवरत्नसुशोभिताम् । उपचारैरनेकैश्च पूजयामास वै तदा ॥
अथापरेद्युरायातः किरातः शिवमन्दिरम् । यावद्विलोकयामास लिङ्गमैशं न दृष्टवान्
मौनं विहाय सहसा ह्याक्रोशन्निदमब्रवीत् ।
हे शम्भो ! क्व गतोऽसि त्वं दर्शयात्मानमद्य वै ॥१५३॥
न दृष्टोऽसि मया त्वं हि त्यजाम्यद्यकलेवरम् ।
हे शम्भो ! हे जगन्नाथ ! त्रिपुरान्तकर ! प्रभो ! ॥१५४॥
हे रुद्र ! हे महादेव ! दर्शयात्मानमात्मना ॥१५५॥
एवं साक्षेपमधुरैर्वाक्यैः क्षिप्तः सदाशिवः ।
किरातेनततोरङ्गैर्वीरोऽसौजागरंस्वकम् । बिभेदाऽशुततोबाहूनास्फाल्यैवरुषाऽब्रवीत्
हे शम्भो दर्शयात्मानं कुतो मां त्यज्य यास्यसि ॥१५७॥
इतिक्षिप्त्वाततोऽन्त्राणिमांसमुत्कृत्यसर्वतः । तस्मिन्गर्तेकरेणैव किरातःसहसाक्षिपत्
स्वस्थं च हृदयं कृत्वासस्नौतत्सरसि ध्रुवम् । तथैव जलमानीयबिल्वपत्रंत्वरान्वितः
पूजयित्वा यथान्यायं दण्डवत्पतितो भुवि ॥१६०॥
ध्यानस्थितस्ततस्तत्र किरातः शिवसन्निधौ । प्रादुर्भूतस्तदा रुद्रः प्रमथैःपरिवारितः
कर्पूरगौरो द्युतिमान् कपर्दी चन्द्रशेखरः । तं गृहीत्वा करे रुद्र उवाच परिसान्त्वयन्
भो भो वीर ! महाप्राज्ञमद्भक्तोऽसिमहामते । वरंवृणीष्वात्महितंयत्तेऽभिलषितंमहत् ।
एवमुक्तः स रुद्रेण महाकालो मुदान्वितः । पपात दण्डवद्भूमौ भक्त्या परमयायुतः
ततो रुद्रं बभाषे स वरं सम्प्रार्थयाम्यहम् ।
अहं दासोऽस्मि ते रुद्र ! त्वं मे स्वामी न संशयः ॥१६५॥
एतद्बुद्ध्वाऽऽत्मनो भक्तिं देहि जन्मनि जन्मनि ।

त्वं माता च पिता त्वं च त्वं बन्धुश्च सखा हि मे ॥१६६॥

त्वं गुरुस्त्वंमहामन्त्रोमन्त्रवेद्योऽसि सर्वदा । तस्मात्त्वदपरंनान्यत्त्रिषुलोकेषुकिञ्च
निष्कामं वाक्यमाकर्ण्य किरातस्य तदा भवः । ददौ पार्षदमुख्यत्वं द्वारपालत्वमेव
तदा डमरुनादेन नादितं भुवनत्रयम् । भेरीझाङ्कारशब्देन शङ्खानां निनदेन च ॥१६
तदा दुन्दुभयो नेदुःपटहाश्च सहस्रशः । नन्दी तं नादमाकर्ण्य विस्मयात्त्वरितोयय
तपोवनं यत्र शिवःस्थितः प्रमथसम्वृतः । किरातो हि तथादृष्टोनन्दिना च तदाभृश

उवाच प्रश्रितो वाक्यं स नन्दी विस्मयान्वितः ।

किरातं स्तोतुकामोऽसौ परमेण समाधिना ॥१७२॥

इहानीतस्त्वया शम्भुस्त्वंभक्तोऽसिपरन्तप ! । त्वंभक्तोऽहमिहप्राप्तो मां निवेदयशङ्क
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य किरातस्त्वरयान्वितः । नन्दिनंच करे गृह्य शङ्करं समुपागत
प्रहस्यभगवान्रुद्रःकिरातंवाक्यमब्रवीत् । कोऽयं त्वया समानीतोगणानामिहसन्निधौ

किरात उवाच

विज्ञप्तोऽसौकिरातेन शङ्करो लोकशङ्करः । तव भक्तः सदा देव! तव पूजारतो ह्यसौ
प्रत्यहं रत्नमाणिक्यैः पुष्पैश्चोच्चावचैरपि । जीवितेन धनेनाऽपि पूजितोऽसिन संशयः

तस्माज्जानीहि मन्मित्रं नन्दिनं भक्तवत्सल ! ॥ १७८ ॥

महादेव उवाच

न जानामि महाभाग नन्दिनंवैश्यचर्च्चितम् । त्वं मेभक्तःसखाचेति महाकाल!महामते
उपाधिरहिता ये च येऽपिचैवमनस्विनः । तेऽतीव मे प्रियाभक्तास्तेविशिष्टानरोत्तमाः

किरात उवाच

तव भक्तो ह्यहं तात स च मे प्रियकृत्तरः । तावुभौ स्वीकृतौ तेन पार्षदत्वेन शम्भुना

ततो विमानानि बहूनि तत्र समागतान्येव महाप्रभाणि ।

किरातवर्येण स वैश्यवर्य उद्धारितस्तेन महाप्रभेण ॥ १८२ ॥

कैलासं पर्वतंप्राप्तौ विमानैर्वेगवत्तरैः । सारूप्यमेव सम्प्राप्तावीश्वरेण महात्मना ॥
नीराजितौ गिरिजयाशिवेन सहितौ तदा । उवाचेदं ततो देवी प्रहस्य गजगामिनी ॥

था त्वं हि महादेव! तथा चैतौन संशयः । स्वरूपेण च गत्याचहास्यभावैःसुपूजितौ
या त्वमेक एवाऽऽसीः सेवितोवैनसंशयः । देव्यास्तद्वचनंश्रुत्वाकिरातोवैश्यएव च

सद्यः पराङ्मुखौ भूत्वा शङ्करस्य च पश्यतः ।
भवावस्त्वनुकम्प्यौ च भवता हि त्रिलोचन ! ॥ १८७ ॥
तव द्वारि स्थितौ नित्यं भवावस्ते नमोनमः ॥ १८८ ॥

योर्भावं स भगवान्विदित्वा प्रहसन्भवः । उवाचपरया भक्त्याभवतोरस्तुवाञ्छितम्
दा प्रभृति द्वावेतौ द्वारपालौवभूवतुः । शिवद्वारिस्थितौ विप्रा मध्याह्ने शिवदर्शिनौ
को नंदी महाकालो द्वावेतौशिववल्लभौ । ऊचतुस्तौ मुदा युक्तावेक एव सदाशिवः
काङ्गुलिं समुद्धृत्य महादेवोऽभ्यभाषत । तथा नन्दी उवाचेदमुद्धृत्यस्वाङ्गुलिद्वयम्

एवं सञ्ज्ञान्वितौ द्वारि तिष्ठतस्तौ महात्मनः ।
शङ्करस्य महाभागाः श्रृण्वन्तु ऋषयो ह्यमी ॥१९३॥

लादेन पुराप्रोक्तं शिवधर्ममनन्तकम् । प्राणिनां कृपया विप्राःसर्वेषांदुष्कृतात्मनाम्

ये पापिनोऽप्यधर्मिष्ठा अन्धा मूकाश्च पङ्गवः ।
कुलहीना दुरात्मानः श्वपचा अपि मानवाः ॥ १९५ ॥

दृशास्तादृशाश्चान्येशिवभक्तिपुरस्कृताः । तेऽपिगच्छन्ति सान्निध्यंदेवदेवस्यशूलिनः
लिङ्गंसिकतामयं ये च पूजयन्ति विपश्चितः । तेरुद्रलोकंगच्छन्तिनात्रकार्याविचारणा
ति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
केदारखण्डे शिवशास्त्रे शिवभक्तिमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

लिङ्गप्रतिष्ठावर्णनम्

ऋषय ऊचुः

लिङ्गे प्रतिष्ठा च कथं शिवंहित्वाप्रवर्तिता । तत्कथ्यतां महाभाग ! परं शुश्रूषतांहिनः

लोमश उवाच

यदा दारुवने शम्भुर्भिक्षार्थं प्राचरत्प्रभुः ॥२॥
दिगम्बरो मुक्तजटाकलापो वेदान्तवेद्यो भुवनैकभर्ता ।
स ईश्वरो ब्रह्मकलापधारो योगीश्वराणां परमः परश्च ॥३॥
अणोरणीयान्महतो महीयान्महानुभावो भुवनाधिपो महान् ।
स ईश्वरो भिक्षुरूपी महात्मा भिक्षाटनं दारुवने चकार ॥४॥

मध्याह्नऋषयोविप्रास्तीर्थंजग्मुःस्वकाश्रमात् ।तदानीमेवसर्वास्ताऋषिभार्याःसमागत
विलोकयन्त्यःशम्भुंतमाचख्युश्चपरस्परम् । कोऽसौ भिक्षुकरूपोऽयमागतोऽपूर्वदर्श
अस्मैभिक्षांप्रयच्छामोवयं च सखिभिः सह । तथेतिगत्वासर्वास्तागृहेभ्यआनयन्मु
भिक्षान्नं विविधं श्लक्ष्णं सोपचारं च शक्तितः । प्रदत्तं भक्षितं तेन देवदेवेनशूलि
काचित्प्रियतमंशम्भुंबभाषेविस्मयान्विता।कोऽसित्वंभिक्षुकोभूत्वाआगतोऽत्रमहाम
ऋषीणामाश्रमं शुद्धं किमर्थं नो निषीदसि । तयोक्तोऽपि तदाशम्भुर्बभाषेप्रहसन्निव
ईश्वरोऽहं सुकेशान्ते पावने प्राप्तवानिमम् । ईश्वरस्य वचःश्रुत्वा ऋषिभार्याउवाचत
ईश्वरोऽसि महाभाग कैलासपतिरेव च । एकाकिनः कथं देव ! भिक्षार्थमटनं तव
एवमुक्तस्तया शम्भुः पुनस्तामब्रवीद्वचः । दाक्षायण्या विरहितो विचरामि दिगम्ब

भिक्षाटनार्थं सुश्रोणि ! सङ्कल्परहितः सदा ।
तया सत्या विना किञ्चित् स्त्रीमात्रं मम भामिनि ! ॥
न रोचते विशालाक्षि ! सत्यं प्रति वदामि ते ॥१४॥

तस्योक्तं वचनं श्रुत्वाउवाचकमलेक्षणा । स्त्रियो हि सुखसंस्पर्शाःपुरुषस्य न संश
ताःस्त्रियो वर्जिताः शम्भो ! त्वादृशेन विपश्चिता ॥१६॥

इति च प्रमदाःसर्वामिलितायत्र शङ्करः । भिक्षापात्रं च तच्छम्भोःपूरितं च महागु
अन्नैश्चतुर्विधैः षड्भी रसैश्च परिपूरितम् । यदा शम्भुर्गन्तुकामः कैलासं पर्वतं प्र

तदा सर्वा विप्रपत्न्यो ह्यन्वगच्छन्मुदान्विताः ॥१८॥

गृहकार्यं परित्यज्य चेरुस्तद्गतमानसाः । गतासु तासु सर्वासु पत्नीषु ऋषिसत्तम

यावदाश्रममभेत्य तावच्छून्यंव्यलोकयन् । परस्परमथोचुस्ते पत्न्यः सर्वाः कुतोगताः
न विद्मोऽथवैसर्वाःकेननष्टेन चाहृताः । एवं विमृश्यमानास्तेविचिन्वन्तस्ततस्ततः
समपश्यंस्ततःसर्वेशिवस्यानुगताश्चताः । शिवं दृष्ट्वा तु सम्प्राप्ताऋषयस्ते रुषान्विताः

शिवस्याथाग्रतो भूत्वा ऊचुःसर्वे त्वरान्विताः ।
किं कृतं हि त्वया शम्भो ! विरक्तेन महात्मना ॥
परदारापहर्त्ताऽसि त्वमृषीणां न संशयः ॥२३॥

एवंक्षिप्तःशिवोमौनीगच्छमानोऽपिपर्वतम् । तदासऋषिभिःप्राप्तोमहादेवोऽव्ययस्तथा
यस्मात्कलत्रहर्ता त्वं तस्मात्षण्ढो भवत्वरम् । एवं शप्तः समुनिभिर्लिङ्गंतस्यापतद्भुवि

भूमिप्राप्तं च तल्लिङ्गं ववृधे तरसा महत् ॥२५॥

आवृत्यसप्तपातालान्क्षणाल्लिङ्गमधोर्ध्वतः । व्याप्यपृथ्वींसमग्रांचअन्तरिक्षंसमावृणोत्
स्वर्गाःसमावृताःसर्वेस्वर्गातीतमथाभवत् । न मही न च दिक्चक्रं न तोयंनचपावकः
नचवायुर्नवाऽऽकाशंनाहंकारो न वा महत् । न चाव्यक्तंनकालश्च न महाप्रकृतिस्तथा
(नासीद्द्वैतविभागंचसर्वंलीनंचतत्क्षणात् । यस्माल्लीनंजगत्सर्वंतस्मिंल्लिङ्गेमहात्मनः)
लयनाल्लिङ्गमित्येवं प्रवदन्ति मनीषिणः । तथाभूतं वर्द्धमानं दृष्ट्वा तेऽपि सुरर्षयः ॥
ब्रह्मेन्द्रविष्णुवाय्वग्निलोकपालाः सपन्नगाः । विस्मयाविष्टमनसःपरस्परमथाऽब्रुवन्
किमायामंचविस्तारंक्वश्चान्तःक्वचपीठिका । इतिचिन्तान्वितोविष्णुमूचुःसर्वेसुरास्तदा

देवा ऊचुः

अस्य मूलं त्वया विष्णो ! पद्मोद्भव ! च मस्तकम् ।
युवाभ्यां च विलोक्यं स्यात्स्थाने स्यात्परिपालकौ ॥३३॥

श्रुत्वा तुतौमहाभागौवैकुण्ठकमलोद्भवौ । विष्णुर्गतो हि पातालं ब्रह्मा स्वर्गंजगामह
स्वर्गं गतस्तदा ब्रह्मा अवलोकनतत्परः । नापश्यत्तत्र लिङ्गस्य मस्तकं च विचक्षणः
तथागतेन मार्गेण प्रत्यावृत्याब्जसम्भवः । मेरुपृष्ठमनुप्राप्तः सुरभ्या लक्षितस्ततः
स्थिता या केतकीच्छायामुवाच मधुरंवचः । तस्या वचनमाकर्ण्य सर्वलोकपितामहः

उवाच प्रहसन्वाक्यं छलोक्त्या सुरभिं प्रति ॥ ३७॥

लिङ्गं महाद्भुतंदृष्टंयेनव्याप्तंजगत्त्रयम् । दर्शनार्थं च तस्यान्तं देवैःसम्प्रेषितोऽस्
न दृष्टं मस्तकं तस्यव्यापकस्यमहात्मनः । किं वक्ष्येऽहं च देवाग्रे चिन्तामेचाति
लिङ्गस्य मस्तकंदृष्टंदेवानां च मृषा वदेः । ते सर्वे यदि वक्ष्यन्तिइन्द्राद्यादेवता
ते सन्ति साक्षिणो देवा अस्मिन्नर्थे वद त्वरम् ।
अर्थेऽस्मिन्भव साक्षी त्वं केतक्या सह सुव्रते ! ॥४१॥
तद्वचः शिरसागृह्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । केतकी सहिता तत्र सुरभी तदमानयत् ॥
एवं समागतो ब्रह्मा देवाग्रे समुवाच ह ॥ ४३ ॥
लिङ्गस्य मस्तकं देवा दृष्टवानहमद्भुतम् । समीचीनं चर्चितं च केतकीदलसंयुत
विशालं विमलंश्लक्ष्णं प्रसन्नतरमद्भुतम् । रम्यं च रमणीयं च दर्शनीयं महाप्रमम् ॥
एतादृशं मयादृष्टं न दृष्टंतद्विनाकचित् । ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वा सुराविस्मयमाय
एवं विस्मयपूर्णास्तेइन्द्राद्यादेवतागणाः । तिष्ठन्ति तावत्सर्वेशोविष्णुरध्यात्मदीप
पातालादागतः सद्यः सर्वेषामवदत्त्वरन् । तस्याप्यन्तो न दृष्टो मे ह्यवलोकनतत्पर
विस्मयोमे महाञ्जातः पातालात्परतश्चरन् । अतलं सुतलं चापि वितलं च रसात
तथा गतस्तलंचैव पातालं च तथातलम् । तलातलानि तान्येवं शून्यवद्यद्विभा
शून्यादपि च शून्यं च तत्सवंसुनिरीक्षितम् । न मूलं च नमध्यश्चचान्तोह्यस्यनवि
लिङ्गरूपी महादेवो येनेदं धार्यते जगत् । यस्य प्रसादादुत्पन्ना यूयं च ऋषयस्तथा
श्रुत्वा सुराश्च ऋषयस्तस्यवाक्यमपूजयन् । तदा विष्णुरुवाचेदं ब्रह्माणं प्रहस
दृष्टं हि चेत्त्वया ब्रह्मन् मस्तकंपरमार्थतः । साक्षिणःकेत्वयातत्रअस्मिन्नर्थेप्रकल्पि
आकर्ण्यवचनं विष्णोर्ब्रह्मालोकपितामहः । उवाच त्वरितेनैव केतकी सुरभीति च
तेदेवा मम साक्षित्वे जानीहिपरमार्थतः । ब्रह्मणो हि वचःश्रुत्वासर्वेदेवास्त्वरान्वि
आह्वानं चक्रिरे तस्याः सुरभ्याश्च तया सह । आगते तत्क्षणादेवकार्यार्थंब्रह्मणस्त
इन्द्राद्यैश्च तदादेवैरुक्ता च सुरभीततः । उवाच केतकी सार्द्धं दृष्टो वै ब्रह्मणा सु
लिङ्गस्य मस्तको देवाःकेतकीदलपूजितः । तदा नभोगता वाणीसर्वेषां शृण्वतामभ
सुरभ्याचैवयत्प्रोक्तंकेतक्याचतथा सुराः । तन्मृषोक्तं च जानीध्वंनदृष्टोह्यस्यमस्त

तदा सर्वेऽथविवुधाःसेन्द्रा वै विष्णुना सह । शेपुश्च सुरभिंरोषान्मृषावादनतत्पराम्
मुखेनोक्तं त्वयाऽद्यैवमनृतं च तथा शुभम् । अपवित्रं मुखंतेऽस्तु सर्वधर्मवहिष्कृतम्
सुगन्धकेतकीचाऽपिअयोग्या त्वं शिवार्चने । भविष्यसि न सन्देहोअनृताचैवभामिनि
तदानभोगतावाणीब्रह्माणं च शशाप वै । मृषोक्तं च त्वया मन्द ! किमर्थंवालिशेनहि
भृगुणा ऋषिभिःसाकंतथैव च पुरोधसा । तस्माद्यूयं न पूज्याश्चभवेयुःक्लेशभागिनः

ऋषयोऽपि च धर्मिष्ठास्तत्त्ववाक्यवहिष्कृताः ।
विवादनिरता मूढ़ा अतत्त्वज्ञाः समत्सराः ॥६६॥
याचकाश्चावदान्याश्च नित्यं स्वज्ञानघातकाः ।
आत्मसंभाविताःस्तब्धाः परस्परविनिन्दकाः ॥६७॥

एवं शप्ताश्च मुनयो ब्रह्माद्या देवतास्तथा । शिवेन शप्तास्ते सर्वेलिङ्गं शरणमाययुः॥ ६८
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीति साहस्र्यां सहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे श्रीशिवलिङ्गमाहात्म्ये ब्रह्मादिशापवृत्तान्तवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ६॥

सप्तमोऽध्यायः

देवैःलिङ्गस्तुतिकरणम्

लोमश उवाच

तदा च ते सुराः सर्व ऋषयोऽपिभयान्विताः । ईडिरे लिङ्गमैशंचब्रह्माद्याज्ञानविह्वलाः

ब्रह्मोवाच

त्वं लिङ्गरूपी तु महाप्रभावो वेदान्तवेद्योऽसि महात्मरूपी ।
येनैव सर्वं जगदात्ममूलं कृतं सदानन्दपरेण नित्यम् ॥२॥

त्वं साक्षीसर्वलोकानांहर्ता त्वं च विचक्षणः । रक्षणोऽसिमहादेवभैरवोऽसिजगत्पते

त्वया लिङ्गस्वरूपेणव्याप्तमेतज्जगत्त्रयम् । क्षुद्राश्चैव वयं नाथ ! मायामोहितचेत
अहं सुराऽसुराः सर्वे यक्षगन्धर्वराक्षसाः । पन्नगाश्च पिशाचाश्च तथा विद्याधरा
त्वं हि विश्वसृजांस्रष्टा त्वं हि देवोजगत्पतिः । कर्त्तात्वंभुवनस्यास्यत्वंहर्तापुरुष
त्राह्यस्माकं महादेव ! देवदेवनमोऽस्तुते । एवं स्तुतो हि वै धात्रा लिङ्गरूपीमहे
ऋषयःस्तोतुकामास्तेमहेश्वरमकल्मषम् । अस्तुवन्गीर्भिरग्र्याभिः श्रुतिगीताभिरा

ऋषय ऊचुः

अज्ञानिनो वयं कामान्न विदामोऽस्य संस्थितिम् ।
त्वं ह्यात्मा परमात्मा च प्रकृतिस्त्वं विभाविनी ॥९॥
त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमीश्वरो वेदविदेकरूपो महानुभावैः परिचिन्त्यमानः ॥१०॥
त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम् ।
सर्वं भवति यस्मात्त्वत्तस्मात्सर्वोऽसि नित्यदा ॥११॥
यस्माच्च सम्भवत्येतत्तस्माच्छम्भुरिति प्रभुः ॥१२॥

त्वत्पादपङ्कजं प्राप्ता वयं सर्वे सुरादयः । ऋषयो देवगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः

तस्माच्च कृपया शम्भो पाह्यस्माञ्जगतःपते ! ॥१४॥

महादेव उवाच

शृणुध्वं तु वचोमेऽद्य क्रियतां च वरान्वितैः । विष्णुं सर्वेप्रार्थयन्तुत्वरितेनतपोध
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शङ्करस्य महात्मनः । विष्णुं सर्वे नमस्कृत्यईडिरे च तदा सु

देवा ऊचुः

विद्याधराः सुरगणा ऋषयश्च सर्वे त्रातास्त्वयाऽद्य सकला जगदेकव
तद्वत्कृपाकर ! जनान्परिपालयाऽद्य त्रैलोक्यनाथ! जगदीश!जगन्निवा

प्रहस्य भगवान्विष्णुरुवाचेदं वचस्तदा । दैत्यैः प्रपीड़िता यूयं रक्षिताश्च पुरा
अद्यैवभयमुत्पन्नं लिङ्गादस्माच्चिरन्तनम् । न शक्यतेमयात्रातुमस्माल्लिङ्गभयात्सु
अच्युतेनैवमुक्तास्तेदेवाश्चिन्तान्विताभवन् । तदानभोगतावाणीउवाचाश्वास्यवैसु

एतल्लिङ्गं संवृणुष्व पूजनाय जनार्दन। पिण्डीभूत्वा महाबाहोरक्षस्व सचराचरम्
तथेति मत्वा भगवान्वीरभद्रोऽभ्यपूजयत् ॥२१॥
ब्रह्मादिभिः सुरगणैः सहितैस्तदानींसम्पूजितः शिवविधानरतो महात्मा।
स वीरभद्रः शशिशेखरोऽसौ शिवप्रियो रुद्रसमस्त्रिलोक्याम् ॥२२॥
लिङ्गस्यार्चनयुक्तोऽसौ वीरभद्रोऽभवत्तदा। तद्रूपस्यैव लिङ्गस्य येन सर्वमिदं जगत्
उद्भाति स्थितिमाप्नोतितथाविलयमेति च। तल्लिङ्गंलिङ्गमित्याहुर्लयनात्तत्त्वचित्तमाः
ब्रह्माण्डगोलकैर्व्याप्तं तथा रुद्राक्षभूषितम्। तथा लिङ्गं महज्जातं सर्वेषां दुरतिक्रमम्
तदा सर्वेऽथ विबुधा ऋषयो वै महाप्रभाः। तुष्टुवुश्च महालिङ्गं वेदवादैःपृथक्पृथक्
अणोरणीयांस्त्वंदेवतथा त्वं महतोमहान्। तस्मात्त्वयाविधातव्यंसर्वेषांलिङ्गपूजनम्
तदानीमेव सर्वेण लिङ्गं च बहुशःकृतम्। सत्ये ब्रह्मेश्वरं लिङ्गं वैकुण्ठे च सदाशिवः
अमरावत्यां सुप्रतिष्ठममरेश्वरसञ्ज्ञकम्। वरुणेश्वरं च वारुण्यां याम्यांकालेश्वरंप्रभुम्
नैर्ऋतेश्वरं च नैर्ऋत्यां वायव्यांपावनेश्वरम्। केदारं मृत्युलोके च तथैव अमरेश्वरम्
ओङ्कारं नर्मदायां च महाकालं तथैव च। काश्यां विश्वेश्वरं देवं प्रयागेललितेश्वरम्
त्र्यम्बकं ब्रह्मगिरौ कलौ भद्रेश्वरं तथा। द्राक्षारामेश्वरंलिङ्गं गङ्गासागरसङ्गमे॥
सौराष्ट्रे च तथा लिङ्गंसोमेश्वरमितिस्मृतम्। तथासर्वेश्वरंविन्ध्येश्रीशैलेशिखरेश्वरम्
कान्त्यामल्लालनाथं च सिंहनाथं च सिंगले ॥३३॥
विरूपाक्षं तथा लिङ्गंकोटिशङ्करमेव च। त्रिपुरान्तकं च भीमेशममरेश्वरमेव च ॥३४॥
नागेश्वरं च पाताले हाटकेश्वरमेव च। एवमादीन्यनेकानि लिङ्गानि भुवनत्रये॥
स्थापितानि तदा देवैर्विश्वोपकृतिहेतवे ॥३५॥
लिङ्गैश्च तथा सर्वैः पूर्णमासीज्जगत्त्रयम्। तथा च वीरभद्रांशाः पूजार्थममरैःकृताः
विंशति संस्कारास्तेषामष्टाधिकाभवन्। कथिताःशङ्करेणैव लिङ्गस्यार्चनसूचकाः
सन्ति रुद्रेण कथिताः शिवधर्माः सनातनाः।
वीरभद्रो यथा रुद्रस्तथाऽन्ये गुरवःस्मृताः ॥३८॥
तेर्जाताश्च गुरवो विख्याता भुवनत्रये। लिङ्गस्य महिमानं तु नन्दीजानातितत्त्वतः

तथास्कन्दोहिभगवानन्येतेनामधारकाः । यथोक्ताःशिवधर्माहिनन्दिनापरिकी
शैलादेन महाभागा विचित्रा लिङ्गधारकाः । शवस्योपरिलिङ्गं च ध्रियते च पु
लिङ्गेन सहपञ्चत्वं लिङ्गेन सह जीवितम् । एते धर्माः सुप्रतिष्ठाः शैलादेन प्रति
धर्मः पाशुपतः श्रेष्ठः स्कन्देन प्रतिपालितः ॥४३॥

*शुद्धापञ्चाक्षरीविद्याप्रासादी तदनन्तरम् । षडक्षरी तथा विद्याप्रासादस्यचर्दी
स्कन्दात्तत्समनुप्राप्तमगस्त्येन महात्मना । पश्चादाचार्यभेदेनह्यागमा बहवो
किं नु वै बहुनोक्तेन शिव इत्यक्षरद्वयम् । उच्चारयन्ति ये नित्यं ते रुद्रा नात्र
सतांमार्गंपुरस्कृत्य ये सर्वे ते पुरान्तकाः । वीरा माहेश्वरा ज्ञेयाः पापक्षयकरा
प्रसङ्गेनानुषङ्गेणश्रद्धयाचयदृच्छया । शिवभक्तिम्प्रकुर्वन्ति ये वै ते यान्तिसद्
शृणुध्वं कथयामीह इतिहासं पुरातनम् ।
कृतं शिवालये यच्च पतंग्या मार्जनं पुरा ॥४६॥

आगता भक्षणार्थं हि नैवेद्यं केन चार्पितम् । मार्जनं रजसस्तस्याःपक्षाभ्यामभ
तेन कर्मविपाकेन उत्तमं स्वर्गमागता । भुक्त्वा स्वर्गसुखं चोग्रं पुनः संसार
काशिराजसुता जातासुन्दरी नामविश्रुता । पूर्वाभ्यासाच्च कल्याणी बभूवपर
उषस्युषसि तन्वंगीशिवद्वाररतासदा । सम्मार्जनं च कुरुते भक्त्या परमया यु
स्वयमेव तदा देवी सुन्दरीराजकन्यका । तथाभूतां च तां दृष्ट्वाऋषिरुद्दालको
सुकुमारी सती बाले स्वयमेव कथं शुभे ! संमार्जनं च कुरुषे कन्यकेत्वंशुचि
दासी दास्यश्चबहवःसन्ति देवि ! तवाग्रतः । तवाज्ञयाकरिष्यन्तिसर्वसंमार्जन
ऋषेस्तद्वचनंश्रुत्वा प्रहस्येदमुवाच ह । शिवसेवां प्रकुर्वाणाः शिवभक्तिपुरस्
ये नराश्चैव नार्यश्च शिवलोकं व्रजन्तिवै ॥५८॥

संमार्जनंचपाणिभ्यांपद्भ्यांयानंशिवालये । तस्मान्मया च क्रियतेसम्मार्जनम
अन्यत्किञ्चिन्न जानामिएकंसम्मार्जनंविना । ऋषिस्तद्वचनंश्रुत्वामनसा च वि
अनया किं कृतं पूर्वं केयं कस्य प्रसादतः । तदा ज्ञातं च ऋषिणा तत्सर्वं ज्ञान

*प्रासादः प्रणवः—इति मन्त्रशास्त्रे प्रणवस्य प्रासाद बीजसञ्ज्ञा ।

विस्मयेन समाविष्टस्तूष्णींभूतोऽभवत्तदा ॥६१॥
सविस्मयोऽभूदथ तद्विदित्वा उद्दालको ज्ञानवतां वरिष्ठः ।
शिवप्रभावं मनसा विचिन्त्य ज्ञानात्परं बोधमवाप शान्तः ॥६२॥

ते श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे दारखण्डे शिवशास्त्रे शिवालयसम्मार्जनमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

तस्करवृत्तान्तवर्णनम्

लोमश उवाच

स्करोऽपि पुरा ब्रह्मन्सर्वधर्मबहिष्कृतः । ब्रह्मघ्नोऽसौ सुरापश्च सुवर्णस्य च तस्करः ॥
म्पटोहि महापाप उत्तमस्त्रीषु सर्वदा । द्यूतकारी सदा मन्दः कितवैः सह संगतः ॥
कदा क्रीड़तातेनहारितं द्यूतमद्भुतम् । कितवैर्मर्द्यमानो हि तदा नोवाच किञ्चन ॥३
डितोऽप्यभवत्तूष्णींतैरुक्तःपापकृत्तमः । द्यूते त्वया च तद्द्रव्यंहारितं किं प्रयच्छसि
वा तत्कथ्यतांशीघ्रं याथातथ्येनदुर्मते ॥ यद्धारितंप्रयच्छामि रात्रावित्यब्रवीच्चसः
मुक्तस्तेन वाक्येन गतास्ते कितवादयः । तदा निशीथसमयेगतोऽसौ शिवमन्दिरम्
रोऽधिरुह्यशम्भोश्चघण्टामादातुमुद्यतः । तावत्कैलासशिखरे शम्भुःप्रोवाचकिंकरान्
नेन यत्कृतं चाद्य सर्वेषामधिकं भुवि । सर्वेषामेव भक्तानां वरिष्ठोऽयं च मत्प्रियः॥
तिप्रोक्त्वाऽऽनयामासवीरभद्रादिभिर्गणैः ।ते सर्वेत्वरिताजग्मुःकैलासाच्छिववल्लभात्
र्वैर्डमरुनादेन नादितं भुवनत्रयम् । तान्दृष्ट्वा सहसोत्तीर्य तस्करोऽसौदुरात्मवान् ॥
लिङ्गस्य मस्तकात्सद्यः पलायनपरोऽभवत् ॥१०॥
पलायमानं तं दृष्ट्वा वीरभद्रः समाह्वयत् ॥ ११ ॥

कस्माद्विभेषि रे मन्द देवदेवो महेश्वरः । प्रसन्नस्तवजातोऽद्य उदारचरितो
इत्युक्त्वा तं विमानेचकृत्वाकैलासमाययौ । पार्षदो हि कृतस्तेनतस्करो हि म
तस्माद् भाव्या शिवे भक्तिः सर्वेषामपि देहिनाम् ।
पशवोऽपि हि पूज्याः स्युः किम्पुनर्मानवा भुवि ॥ १४ ॥
येतार्किकास्तर्कपरास्तथामीमांसकाश्च ये। अन्योन्यवादिनश्चान्येचान्येवात्मवित्
एकवाक्यं न कुर्वन्तिशिवार्चनवहिष्कृताः । तर्को हि क्रियतेयैश्च ते सर्वेकिं शि
तथा किं वहुनोक्तेनसर्वेऽपिस्थिरजंगमाः । प्राणिनोऽपि हि जायन्तेकेवलंलिङ्ग
पिण्डीयुक्तं यथा लिङ्गं स्थापितं च यथाऽभवत् ।
तथा नरा लिङ्गयुक्ताः पिण्डीभूतास्तथा स्त्रियः ॥ १८ ॥
शिवशक्तियुतं सर्वं जगदेतच्चराचरम् । तं शिवंमौढ्यतस्त्यक्त्वामूढाश्चान्यंभजन्
धर्ममात्यन्तिकंतुच्छंनश्वरंक्षणभङ्गुरम् । यो विष्णुःसशिवोज्ञेयोयःशिवोविष्णुरे
पीठिका विष्णुरूपंस्याल्लिङ्गरूपीमहेश्वरः । तस्माल्लिङ्गार्चनं श्रेष्ठंसर्वेषामपि वै
ब्रह्मा मणिमयं लिङ्गं पूजयत्यनिशंशुभम् । इन्द्रो रत्नमयं लिङ्गंचन्द्रो मुक्तामयं
भानुस्ताम्रमयंलिङ्गं पूजयत्यनिशं शुभम् । रौक्मं लिङ्गं कुवेरश्च पाशीचारक्त
यमो नीलमयं लिङ्गं राजतं नैर्ऋतस्तथा । काश्मीरं पवनो लिङ्गमर्चयत्यनिशं
एवंतेलिङ्गिताःसर्वेलोकपालाःसवासवाः । तथा सर्वेऽपिपाताले गन्धर्वाः किंन
दैत्यानांवैष्णवाःकेचित्प्रह्लादप्रमुखाद्विजाः। तथाहिराक्षसानां च विभीषणपु
वलिश्च नमुचिश्चैव हिरण्यकशिपुस्तथा । वृषपर्वा वृषश्चैवसंह्लादोबाण एव च
एते चान्ये च बहवःशिष्या शुक्रस्य धीमतः । एवं शिवार्चनरताः सर्वे ते दैत्य
राक्षसा एवते सर्वे शिवपूजान्विताः सदा । हेतिः प्रहेतिः संयातिर्विघसः प्रघ
विद्युज्जिह्वस्तीक्ष्णदंष्ट्रोधूम्राक्षोभीमविक्रमः । मालीचैवसुमाली च माल्यवानति
विद्युत्केशस्तडिज्जिह्वो रावणश्च महावलः । कुम्भकर्णो दुराधर्षो वेगदर्शी प्रताप
एतेहिराक्षसाःश्रेष्ठाःशिवार्चनरताः सदा । लिङ्गमभ्यर्च्य च सदासिद्धिं प्राप्ताःपुर
रावणेन तपस्तप्तं सर्वेषामपि दुःसहम् । तपोधिपो महादेवस्तुतोष च तदा

ान्प्रायच्छत तदा सर्वेषामपि दुर्लभान् । ज्ञानं विज्ञानसहितं लब्धंतेन सदाशिवात्
जेयत्वं च संग्रामे द्वैगुण्यं शिरसामपि । पञ्चवक्त्रो महादेवोदशवक्त्रोऽथ रावणः
ान्नृषीन्पितॄंश्चैव निर्जित्यतपसा विभुः । महेशस्यप्रसादाच्चसर्वेषामधिकोऽभवत् ॥
जा त्रिकूटाधिपतिर्महेशेनकृतो महान् । सर्वेषांराक्षसानां च परमासनमास्थितः ॥
पस्विनां परीक्षार्थं यदृषीणां विहिंसनम् । कृतंतेन तदा विप्रा रावणेन तपस्विना ।
जेयो हि महाज्ञातो रावणो लोकरावणः । सृष्ट्यन्तरं कृतं येन प्रसादाच्छंकरस्य च
ोकपाला जितास्तेन प्रतापेन तपस्विना । ब्रह्माऽपि विजितोयेन तपसापरमेण हि ॥
मृतांशुकरोभूत्वाजितोयेनशशी द्विजाः । दाहकत्वाज्जितोवह्निरीशः कैलासतोलनात्
श्वर्येणजितश्चेन्द्रो विष्णुःसर्वगतस्तथा । लिंगार्चनप्रसादेनत्रैलोक्यंच वशीकृतम् ॥
दा सर्वे सुरगणा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ मेरुपृष्ठं समासाद्य सुमंत्रं चक्रिरे तदा ॥
ीडिताः स्मोरावणेनतपसादुष्करेण वै । गोकर्णाख्येगिरौदेवाः श्रूयतां परमाद्भुतम् ॥
ाक्षाल्लिंगार्चनं येन कृतमस्ति महात्मना । ज्ञानगेयं ज्ञानगम्यं यद्यत्परममद्भुतम् ॥
तत्कृतं रावणेनैव सर्वेषां दुरतिक्रमम् ॥ ४५ ॥
ैराग्यंपरमास्थायऔदार्यं च ततोऽधिकम् । तेनैव ममता त्यक्तारावणेनमहात्मना ॥
ंवत्सरसहस्राच्च स्वशिरो हि महाभुजः । कृत्त्वा करेणलिंगस्य पूजनार्थं समर्पयत् ॥
ावणस्य कबंधं चतदग्रे च समीपतः । योगधारणया युक्तं परमेण समाधिना ॥४८॥
िंगेलयंसमाधायकयापिकलया स्थितम् । अन्यच्छिरोविवृश्च्यैवंतेनापिशिवपूजनम्
कृतं नैवान्यमुनिना तथा चैवापरेण हि ॥ ४६ ॥
एवं शिरांस्येव बहूनि तेन समर्पितान्येव शिवार्चनार्थे ।
भूत्वा कबंधो हि पुनः पुनश्च तदा शिवोऽसौ वरदो बभूव ॥५०॥
या विनासुरस्तत्र पिंडीभूतेन वै पुरा । वरान्वरय पौलस्त्ययथेष्टं तान्ददाम्यहम् ॥
ावणेन तदा चोक्तः शिवः परममंगलः । यदि प्रसन्नोभगवन्देयो मे वर उत्तमः॥५२॥
कामयेऽन्यं च वरमाश्रये त्वत्पदांबुजम् । यथातथा प्रदातव्यं यद्यस्ति च कृपामयि
दा सदाशिवेनोक्तोरावणोलोकरावणः। मत्प्रसादाच्च सर्वंत्वंप्राप्स्यसेमनसेप्सितम् ॥

एवं प्राप्तं शिवात्सर्वं रावणेनसुरेश्वराः। तस्मात्सर्वैर्भवद्भिश्च तपसापरमेण हि।
विजेतव्योरावणोऽयमितिमे मनसिस्थितम्। अच्युतस्यवचःश्रुत्वाब्रह्माद्यादेवता
चिंतामापेदिरे सर्वे चिरंते विषयान्विताः। ब्रह्माऽपि चेंद्रियग्रस्तः सुतां रमितु
इन्द्रोहि जारभावाच्च चन्द्रोहि गुरुतल्पगः। यमः कदर्यभावाच्च चंचलत्वात्सदा
पावकःसर्वभक्षित्वात्तथाऽन्येदेवतागणाः। अशक्ता रावणंजेतुंतपसा च विजृंभि
शैलादो हि महातेजा गणश्रेष्ठः पुरातनः। बुद्धिमान्नीतिनिपुणो महाबलपराक्र
शिवप्रियो रूद्ररूपी महात्मा ह्युवाच सर्वानथ चन्द्रमुख्यान्।
कस्माद्यूयं संभ्रमादागताश्च एतत्सर्वं कथ्यतां विस्तरेण ॥ ६१ ॥
नंदिना च तदा सर्वे पृष्टाः प्रोचुस्त्वरान्विताः ॥ ६२ ॥

देवा ऊचुः

रावणेन वयंसर्वेनिर्जितामुनिभिः सह। प्रसादयितुमायाताः शिवं लोकेश्वरेश्वर
प्रहस्य भगवान्नंदी ब्रह्माणं वै ह्युवाच ह। क्वयूयं क्व शिवः शंभुस्तपसा परमेण
द्रष्टव्यो हृदि मध्यस्थः सोऽद्य द्रष्टुं न पार्यते ॥ ६४ ॥
यावद्भावा ह्यनेकाश्चइन्द्रियार्थास्तथैव च। यावच्च ममताभावस्तावदीशो हि दुर्लभ
जितेन्द्रियाणांशांतानांतन्निष्ठानांमहात्मनाम्। सुलभोलिंगरूपीस्याद्भवतांहिसुदुर्ल
तदा ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च विपश्चितः। प्रणम्यनंदिनं प्राहुः कस्मात्त्वं वानरा
तत्सर्वं कथयान्यं च रावणस्य तपोबलम् ॥ ६७ ॥

नंदीश्वर उवाच

कुबेरोऽधिकृतस्तेनशंकरेणमहात्मना। धनानामाधिपत्ये च तं द्रष्टुं रावणोऽत्र
आगच्छत्त्वरया युक्तः समारुह्यस्ववाहनम्। मां दृष्ट्वा चाब्रवीत्क्रुद्धः कुबेरोह्यत्रआ
त्वया दृष्टोऽथवाऽत्रासौकथ्यतामविलंबितम्। किंकार्यं धनदेनाद्यइतिपृष्टोमयाहि
तदोवाच महातेजा रावणो लोकरावणः। मय्यश्रद्धान्वितो भूत्वा विषयात्मासुख
शिक्षापयितुमारब्धोमैवंकार्यमितिप्रभो। यथाऽहं च श्रियायुक्तआढ्योऽहं बलवा
तथा त्वं भव रे मूढ मा मूढत्वमुपार्जय ॥ ७२ ॥

मूढः कृतस्तेन कुबेरेणमहात्मना । मया निराकृतो रोषात्तपस्तेपे स गुह्यकः॥७३॥
रः स हि नंदिन्किमागतस्तव मंदिरम् । दीयतां च कुबेरोऽद्यनात्रकार्याविचारणा
णस्यवचःश्रुत्वाह्यवोचंत्वरितोऽप्युहम् । लिंगकोसिमहाभागत्वमहं च तथाविधः
योः समतांज्ञात्वावृथाजल्पसि दुर्मते । यथोक्तः स त्ववादीन्मां वदनार्थेबलोद्धतः
। भवद्भिः पृष्टोऽहं वदनार्थे महात्मभिः । पुरावृत्तंमयाप्रोक्तंशिवार्चनविधेःफलम् ।
शिवेन दत्तं सारूप्यं न गृहीतं मया तदा ॥ ७७ ॥
चितं च मया शंभोर्वदनं वानरस्य च । शिवेन कृपया दत्तं मम कारुण्यशालिना ॥
ाभिमानिनो ये च निर्दंभानिष्परिग्रहाः। शंभोःप्रियास्तेविज्ञेयाह्यन्येशिवबहिष्कृताः
ावदन्मया सार्द्धं रावणस्तपसोबलात् मया च याचितान्येवदश वक्त्राणिधीमता॥
हासकरं वाक्यंपौलस्त्यस्यतदासुराः। मयातदा हि शप्तोऽसौरावणोलोकरावणः
शान्येव वक्त्राणि येषां वै संभवति हि । तैः समेतो यदाकोऽपिनरवर्यो महातपाः
मां पुरस्कृत्य सहसा हनिष्यति न संशयः ॥ ८२ ॥
ं शप्तोमया ह्यत्रावणो लोकरावणः। अर्चितं केवलं लिंगं विना तेन महात्मना ॥
ठिकारूपसंस्थेनविनातेनसुरोत्तमाः। विष्णुनाहिमहाभागास्तस्मात्सर्वं विधास्यति
देवोमहादेवो विष्णुरूपी महेश्वरः । सर्वे यूयंप्रार्थयन्तु विष्णुं सर्वगुहाशयम्॥८५॥
दं हि सर्वदेवानां पुरोवर्ती भवाम्यतः । ते सर्वे नंदिनो वाक्यंश्रुत्वा मुदितमानसाः
वैकुण्ठमागता गीर्भिर्विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रिरे ॥ ८६ ॥

देवा ऊचुः

ो भगवते तुभ्यं देवदेव ! जगत्पते ! । त्वदाधारमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ ८७
लिंगंत्वयाविष्णोधृतं वै पिण्डिरूपिणा । महाविष्णुस्वरूपेणघातितौ मधुकैटभौ
ा कमठरूपेण धृतो वै मंदराचलः । वराहरूपमास्थाय हिरण्याक्षो हतस्त्वया ॥
रण्यकशिपुर्दैत्यो हतोनृहरिरूपिणा । त्वयाचैव बलिर्बद्धो दैत्यो वामनरूपिणा ॥
गूणामन्वये भूत्वा कृतवीर्यात्मजोहतः। इतोप्यस्मान्महाविष्णो तथैव परिपालय ॥
रावणस्य भयादस्मात्त्रातुं भूयोऽर्हसि त्वरम् ॥ ९२ ॥

एवं संप्रार्थितो देवैर्भगवान्भूतभावनः । उवाच च सुरान्सर्वान्वासुदेवो जग-
हे देवाः श्रूयतां वाक्यंप्रस्तावसदृशंमहत् । शैलादिं च पुरस्कृत्यसर्वे यूयं त्वरा
अवतारान्प्रकुर्वन्तु वानरीं तनुमाश्रिताः ॥ ९४ ॥
अहंहिमानुषो भूत्वा ह्यज्ञानेन समावृतः। संभविष्याम्ययोध्यायां गृहे दशरथस्य
ब्रह्मविद्यासहायोऽस्मि भवतां कार्यसिद्धये ॥ ९५ ॥
जनकस्यगृहेसाक्षाद्ब्रह्मविद्याजनिष्यति । भक्तो हि रावणःसाक्षाच्छिवध्यानप
तपसा महता युक्तो ब्रह्मविद्यां यदेच्छति । तदा सुसाध्योभवति पुरुषो धर्मि
एवं संभाष्य भगवान्विष्णुः परममङ्गलः । बालीचेन्द्रांशसम्भूतः सुग्रीवोंऽशुमतः
तथा ब्रह्मांशसम्भूतो जाम्बवानृक्षकुञ्जरः । शिलादतनयोनन्दीशिवस्यानुचरः
यो वै चैकादशोरुद्रो हनूमान्स महाऋषिः। अवतीर्णः सहायार्थं विष्णोरमितते
मैन्दादयोऽथ कपयस्ते सर्वे सुरसत्तमाः। एवं सर्वेसुरगणाअवतेरुर्यथातथम् ॥
तथैव विष्णुरुत्पन्नः कौशल्यानन्दवर्द्धनः । विश्वस्य रमणाच्चैव राम इत्युच्य
शेषोऽपि भक्त्या विष्णोश्च तपसाऽवातरद्भुवि ॥ १०३ ॥
दोर्दण्डावपि विष्णोश्च अवतीर्णौप्रतापिनौ । शत्रुघ्नभरताख्यौ च विख्यातौभु
मिथिलाधिपतेःकन्यायाउक्ताब्रह्मवादिभिः । सा ब्रह्मविद्याऽवतरत्सुराणांकार्य
सीता जाता लाङ्गलस्य इयं भूमिविकर्षणात् ॥ १०५ ॥
तस्मात्सीतेति विख्याता विद्या सान्वीक्षिकी तदा ।
मिथिलायां समुत्पन्ना मैथिलीत्यभिधीयते ॥ १०६ ॥
जनकस्य कुले जाता विश्रुताजनकात्मजा । ख्याता वेदवती पूर्वं ब्रह्मविद्याऽघना
सा दत्ता जनकेनैव विष्णवे परमात्मने ॥ १०८ ॥
तयाऽथ विद्यया सार्द्धं देवदेवो जगत्पतिः । उग्रे तपसिलीनोऽसौविष्णुः परम
रावणं जेतुकामो वै रामो राजीवलोचनः । अरण्यवासमकरोद्देवानां कार्य
शेषावतारोऽपि महांस्तपः परमदुष्करम् । ततापं परयाशक्त्या देवानांकार्यसि
शत्रुघ्नो भरतश्चैव तेपतुः परमन्तपः ॥ ११२ ॥

ततोऽसौ तपसा युक्तः सार्द्धं तैर्देवतागणैः। सगणं रावणं रामः षड्भिर्मासैरजीहनत्
विष्णुना घातितः शस्त्रैः शिवसारूप्यमाप्तवान् ॥ ११३ ॥
सगणः स पुनः सद्यो बन्धुभिः सह सुव्रताः ॥ ११४ ॥
शिवप्रसादात्सकलं द्वैताद्वैतमवाप ह। द्वैताद्वैतविवेकार्थमृषयोऽप्यत्र मोहिताः ॥
तत्सर्वं प्राप्नुवन्तीह शिवार्चनरता नराः ॥ ११५ ॥
येऽर्चयन्तिशिवंनित्यंलिङ्गरूपिणमेवच। स्त्रियोवाऽप्यथवाशूद्राःश्वपचाह्यन्त्यवासिनः
तं शिवं प्राप्नुवन्त्येव सर्वदुःखोपनाशनम् ॥ ११६ ॥
पशवोऽपि परं याताः किं पुनर्मानुषादयः ॥ ११७ ॥
ये द्विजा ब्रह्मचर्येण तपःपरममास्थिताः। वर्षैरनेकैर्यज्ञानां तेऽपि स्वर्गपरा भवन् ॥
ज्योतिष्टोमो वाजपेयो ह्यतिरात्रादयो ह्यमी।
यज्ञाः स्वर्गं प्रयच्छन्ति सत्रिणां नात्र संशयः ॥११६॥
तत्र स्वर्गसुखं भुक्त्वापुण्यक्षयकरं महत्। पुण्यक्षयेऽपि यज्वानो मर्त्यलोकं पतन्तिवै
पतितानां च संसारे दैवाद्बुद्धिः प्रजायते। गुणत्रयमयी विप्रास्तासु तास्विहयोनिषु
यथा सत्त्वं संभवति सत्त्वयुक्तभवं नराः।
राजसाश्च तथा ज्ञेयास्तामसाश्चैव ते द्विजाः ॥१२३॥
एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमिता बहवो जनाः। यदृच्छयादैवगत्या शिवं संसेवते नरः ॥
शिवध्यानपराणां च नराणां यतचेतसाम्। मायानिरसनंसद्योभविष्यति न चान्यथा
मायानिरसनात्सद्यो नश्यत्येव गुणत्रयम्। यदागुणत्रयातीतोभवतीति स मुक्तिभाक्
तस्माल्लिङ्गार्चनं भाव्यंसर्वेषामपिदेहिनाम्। लिङ्गरूपी शिवोभूत्वात्रायते सचराचरम्
पुरा भवद्भिः पृष्टोऽहं लिङ्गरूपीकथंशिवः। तत्सर्वं कथितंविप्रायाथातथ्येन सम्प्रति ॥
कथं गरं भक्षितवाञ्छिवो लोकमहेश्वरः। तत्सर्वं श्रूयतां विप्रा यथावत्कथयामि वः
इतिश्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां प्रथमेमाहेश्वरखण्डेकेदारखण्डे शिवशास्त्रेशिवलिङ्गार्चनमाहात्म्यकथनेश्रीरामावतारकथावर्णनं नामाऽष्टमोऽध्यायः

नवमोऽध्यायः

गुरोरवज्ञयेन्द्रस्य राज्यभङ्गवर्णनम्

लोमश उवाच

एकदा तु सभामध्यआस्थितोदेवराट्स्वयम् । लोकपालैःपरिवृतोदेवैश्चऋषिभिस्तः
अप्सरोगणसंवीतो गन्धर्वैश्च पुरस्कृतः । उपगीयमानविजयः सिद्धविद्याधरैरपि॥
तदाशिष्यैः परिवृतो देवराजगुरुः सुधीः । आगतोऽसौ महाभागोवृहस्पतिरुदारधीः
तं दृष्ट्वा सहसा देवाःप्रणेमुःसमुपस्थिताः । इन्द्रोपिददृशे तत्र प्राप्तंवाचस्पतिंतदा ॥
नोवाच किञ्चिद्दुर्मेधावचो मानपुरःसरम् । नाह्वानं नासनं तस्य न विसर्जनमेवच
शक्रं प्रमत्तंज्ञात्वाऽथ मदाद्राज्यस्य दुर्मतिम् । तिरोधानमनुप्राप्तो वृहस्पतीरुषान्विहन्
गते देवगुरौतस्मिन्विमनस्काऽभवन्सुराः। यक्षानागाःसगन्धर्वाऋषयोऽपितथाद्विज
गान्धर्वस्यावसानेतु लब्धसञ्ज्ञोहरिःसुरान् । पप्रच्छत्वरितेनैव क्व गतो हि महातप
तदैव नारदेनोक्तः शक्रो देवाधिपस्तथा । त्वयाकृताह्यवज्ञा च गुरोर्नास्त्यत्र संश
गुरोरवज्ञया राज्यं गतं ते वलसूदन ! । तस्मात्क्षमापनीयोऽसौ सर्वभावेन हि त्व
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्यनारदस्य महात्मनः । आसनात्सहसोत्थायतैः सर्वैः परिवारि

आगच्छत्त्वरया शक्रो गुरोर्गेहमतन्द्रितः ॥ ११ ॥

पृष्ट्वा तारांप्रणम्यादौ क्व गतो हि महातपाः। न जानामीत्युवाचेदं तारा शक्रं निरीक्ष
तदा चिन्तान्वितोभूत्वाशक्रःस्वगृहमाव्रजत् । एतस्मिन्नन्तरे स्वर्गेह्यनिष्टान्यद्भुतानि
अभवन्सर्वदुःखार्थे शक्रस्य च महात्मनः। पातालस्थेन वलिना ज्ञातं शक्रस्य चेष्टित
ययौ दैत्यैः परिवृतः पातालादमरावतीम् तदा युद्धमतीवाऽऽसीद्देवानां दानवैः सह

देवाः पराजिता दैत्यैः राज्यं शक्रस्य तत्क्षणात् ।
सम्प्राप्तं सकलं तस्य मूढस्य च दुरात्मनः ॥ १६ ॥

नीतं सर्वप्रयत्नेन पातालं त्वरितं गताः । शुक्रप्रसादात्ते सर्वे तथा विजयिनोऽभव

शक्रोऽपि निःश्रिकोजातोदेवैस्त्यक्तस्ततोभृशम् । देवीतिरोधानगताबभूव कमलेक्षणा
ऐरावतो महानागस्तथैवोच्चैःश्रवा हयः । एवमादीनि रत्नानिअनेकानि वह्वन्यपि ॥
नीतानिसहसादैत्यैर्लोभादसाधुवृत्तिभिः । पुण्यभाञ्जि च तान्येवपतितानि च सागरे
तदा स विस्मयाविष्टो वलिराह गुरुम्प्रति ॥ २० ॥
देवान्निर्जित्य चास्माभिरानीतानिवह्वनि च । रत्नानि तु समुद्रेऽथपतितानि तदद्भुतम्
वलेस्तद्वचनं श्रुत्वा उशना प्रत्युवाच तम् ॥ २१ ॥
अश्वमेधशतेनैव सुरराज्यं भविष्यति । दीक्षितस्य न सन्देहस्तस्माद्वोक्ता स एवच ॥
अश्वमेधं विना किञ्चित्स्वर्गं भोक्तुं न पार्यते ॥ २३ ॥
गुरोर्वचनमाज्ञाय तूष्णींभूतो वलिस्ततः ।
वभूव देवैः सार्द्धं च यथोचितमकारयत् ॥ २४ ॥
इन्द्रोऽपिशोच्यतांप्राप्तोजगाम परमेष्ठिनम् । विज्ञापयामासतथासर्वं राज्यभयादिकम्
शक्रस्य वचनं श्रुत्वा परमेष्ठी उवाच ह ॥ २५ ॥
संमिलित्वा सुरान्सर्वांस्त्वया साकं त्वरान्विताः ।
आराधनार्थं गच्छामो विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥ २६ ॥
तथेति गत्वा ते सर्वेशक्राद्यालोकपालकाः । ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य तटं क्षीरार्णवस्य च
प्राप्योपविश्य ते सर्वे हरिं स्तोतुं प्रचक्रमुः ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच

देवदेव जगन्नाथ सुरासुरनमस्कृत । पुण्यश्लोकाव्ययानन्त परमात्मन्नमोऽस्तुते ॥२९
यज्ञोऽसि यज्ञरूपोऽसियज्ञांगोऽसि रमापते । ततोऽद्य कृपयाविष्णोदेवानां वरदोभव
गुरोरवज्ञयाचाद्य भ्रष्टराज्यः शतक्रतुः । जातः सुरर्षिभिःसाकं तस्मादेनं समुद्धर॥३१॥

श्रीभगवानुवाच

गुरोरवज्ञया सर्वं नश्यतीति किमद्भुतम् । ये पापिनोह्यधर्मिष्ठाः केवलं विषयात्मकाः॥
पितरौ निन्दितौ यैश्च निर्दैवास्ते न संशयः ॥ ३२ ॥
अनेन यत्कृतं ब्रह्मन्सद्यस्तत्फलमागतम् । कर्मणा चास्य शक्रस्य सर्वेषां संकटागमः

विपरीतो यदा कालः पुरुषस्य भवेत्तदा । भूतमैत्रीं प्रकुर्वन्ति सर्वकार्यार्थसिद्धये
तेन वै कारणेनेन्द्र मदीयं वचनं कुरु । कार्यहेतोस्त्वया कार्यो दैत्यैः सह समाग
एवं भगवताऽऽदिष्टः शक्रः परमबुद्धिमान् । अमरावतीं ययौहित्वा सुतलं दैवतै
इन्द्रं समागतं श्रुत्वा इन्द्रसेनो रुषान्वितः । बभूव सह सैन्येन हन्तुकामः पुरन्दर
नारदेन तदा दैत्या बलिश्च बलिनां वरः । निवारितस्तद्वधाच्च वाक्यैरुच्चावचैस्त
ऋषेस्तस्यैव वचनात्त्यक्तमन्युर्बलिस्तदा । बभूव सह सैन्येन आगतो हि शतक्र
इन्द्रसेनेन दृष्टोऽसौ लोकपालैः समावृतः । उवाच त्वरयायुक्तःप्रहसन्निव दैत्य
कस्मादिहागतः शक्र ! सुतलं प्रतिकथ्यताम् । तस्यैतद्वचनंश्रुत्वास्मयमानउवाच
वयं कश्यपदायादा यूयं सर्वे तथैव च । यथा वयं तथा यूयं विग्रहोहि निरर्थ
मम राज्यं क्षणेनैव नीतं दैववशात्त्वया । तथा ह्येतानि तान्येव रत्नानि सुबहून्या
गतानि तत्क्षणादेव यत्नानीतानि वै त्वया ॥ ४३ ॥
तस्माद्विमर्शःकर्तव्यःपुरुषेणविपश्चिता । विमर्शाज्जायते ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षो भविष
किंतु मे वत उक्तेन जाने नच तवाग्रतः । शरणार्थी ह्यहं प्राप्तः सुरैः सहतवान्ति
एतच्छ्रुत्वा तु शक्रस्यवाक्यंवाक्यविदां वरः । प्रहस्योवाचमतिमाञ्छक्रंप्रतिविदां
त्वमागतोऽसि देवेन्द्र ! किमर्थं तन्न वेद्म्यहम् ॥ ४७ ॥
शक्रस्तद्वचनं श्रुत्वा ह्यश्रुपूर्णाकुलेक्षणः । किञ्चिन्नोवाच तत्रैनं नारदो वाक्यमब्रवी
बले त्वं किंनजानासिकार्याकार्यविचारणाम् । धर्मो हि महतामेषशरणागतपाल
शरणागतं च विप्रं च रोगिणं वृद्धमेव च । य एतान्न च रक्षन्ति ते वै ब्रह्महणो न
शरणागतशब्देन आगतस्तव सन्निधौ । संरक्षणाय योग्यश्च त्वया नास्त्यत्र सं
एवमुक्तो नारदेन तदा दैत्यपतिः स्वयम् ॥ ५१ ॥
विमृश्य परया बुद्धया कार्याकार्यविचारणम् । शक्रं प्रपूजयामास बहुमानपुरःस
लोकपालैः समेतं च तथा सुरगणैः सह ॥ ५२ ॥
प्रत्ययार्थं च सत्त्वानि ह्यनेकानि व्रतानि वै । बलिप्रत्ययभूतानि स चकार पुरन्द
एवं स समयं कृत्वाशक्रःस्वार्थपरायणः । बलिना सहचावात्सीदर्थशास्त्रपरो मह

एवं निवसतस्तस्य सुतलेऽपि शतक्रतोः । वत्सरा बहवोह्यासंस्तदा बुद्धिमकल्पयत्
संस्मृत्य वचनं विष्णोर्विमृश्य च पुनःपुनः ॥ ५५ ॥
एकदातु सभामध्यआसीनोदेवराट् स्वयम् । उवाचप्रहसन्वाक्यंबलिमुद्दिश्यनीतिमान्
प्राप्तव्यानित्वयावीरअस्माकं च त्वयाबले । गजादीनिबहून्येव रत्नानि विविधानि च
गतानि तत्क्षणादेवसागरेपतितानि वै । प्रयत्नो हि प्रकर्तव्योह्यस्माभिस्त्वरयान्वितैः
तेषां चोद्धरणे दैत्य रत्नानामिह सागरात् । तर्हि निर्मथनं कार्यंभवताकार्यसिद्धये ॥
बलिः प्रवर्तितस्तेनशक्रेण सुरसूदनः । उवाच शक्रं त्वरितः केनेदं मथनं भवेत् ॥६०॥
तदा नभोगतावाणीमेघगंभीरनिःस्वना । उवाच देवादैत्याश्च मन्थध्वं क्षीरसागरम्
भवतां बलवृद्धिश्च भविष्यति न संशयः ॥६२॥
मन्दरञ्चैवमन्थानंरज्जुं कुरुतवासुकिम् । पश्चाद्देवाश्चदैत्याश्चमेलयित्वाविमथ्यताम्
नभोगतां च तां वाणींनिशम्याथतदा सुराः । दैत्यैः सार्द्धंततः सर्वे उद्यम चक्रुरुद्यताः
पातालान्निर्गताः सर्वे तदा तेऽथ सुरासुराः । आजग्मुस्तुलं सर्वे मन्दरं पर्वतोत्तमम्
दैत्याश्चकोटिसंख्याकास्तथादेवा न संशयः । उद्युक्ता सहसा प्राऽयुर्मंदरं कनकप्रभम्
सरत्नं वर्तुलाकारं स्थूलं चैव महाप्रभम् । अनेकरत्नसंवीतं नानाद्रुमनिषेवितम् ॥
चन्दनैः पारिजातैश्चनागपुन्नागचम्पकैः । नानामृगगणाकीर्णं सिंहशार्दूलसेवितम् ॥
एवंविधं महाशैलं दृष्ट्वा ते सुरसत्तमाः । ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे तदा ते सुरसत्तमाः ॥

देवाऊचुः

अद्रे सुरा वयं सर्वे विज्ञप्तुमिह चागताः । तच्छृणुष्वमहाशैल परेषामुपकारकः ॥७०॥
एवमुक्तस्तदा शैलो देवैर्दैत्यैः स मन्दरः । उवाच निःसृतो भूत्वा परं विग्रहवान्वचः
तेन रूपेणरूपी स पर्वतो मन्दराचलः । किमर्थमागताः सर्वे मत्समीपं तदुच्यताम्
तदा बलिरुवाचेदं प्रस्तावसदृशं वचः । इन्द्रोऽपि त्वरयायुक्तो बभाषे सूनृतंवचः॥७३॥
अस्माभिः सहकार्यार्थे भवत्वं मन्दराचल !। अमृतोत्पादनार्थे त्वं मंथानंभव सुव्रत
तथेति मत्वा तद्वाक्यं देवानां कार्यसिद्धये । ऊचेदेवासुरांश्चेदमिन्द्रंप्रतिविशेषतः ॥
छेदितौ चत्वयापक्षौ वज्रेणशतपर्वणा । गन्तुं कथं समर्थोऽहं भवतां कार्यसिद्धये ॥

तदा देवासुराः सर्वे स्तूयमाना महाचलम् । उत्पाटयेयुरतुलं मंदरं च ततोऽद्भु
क्षीरार्णवं नेतुकामा ह्यशक्तास्ते ततोऽभवन् । पर्वतः पतितःसद्यो देवदैत्योपरि
केचिद्भग्नामृताःकेचित्केचिन्मूर्छापराभवन् । परीवादरताःकेचित्केचित्क्लेशत्वमा
एवं भग्नोद्यमा जाता असुराः सुरदानवाः । चेतनां परमां प्राप्तास्तुष्टुवुर्जगदी
रक्ष रक्ष महाविष्णो शरणागतवत्सल । त्वया ततमिदं सर्वं जंगमाजंगमं च यत्
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं प्रादुर्भूतोहरिस्तदा । तान्दृष्ट्वासहसा विष्णुर्गरुडोपरिसं
लीलया पर्वतश्रेष्ठमुत्तभ्यारोपयत्क्षणात् । गरुत्मति तदा देवः सर्वेषामभयं ददौ ।
ततउत्थाय तान्देवान्क्षीरोदस्योत्तरं तटम् । नीत्वा तं पर्वतं वृद्धं निक्षिप्याप्सुततो
तदा सर्वे सुरगणाः स्वागत्य असुरैःसह । वासुकिंच समादायचक्रिरे समयं च त
मन्थानं मंदरं चैव वासुकिंरज्जुमेव च । कृत्वा सुराऽसुराःसर्वे ममन्थुः क्षीरसा
क्षीराब्धेर्मथ्यमानस्य पर्वतो हि रसातलम् । गतः सतत्क्षणादेव कूर्मो भूत्वारमा
उद्धृतस्तत्क्षणादेव तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ८७ ॥
भ्राम्यमाणस्ततः शैलो नोदितःसुरदानवैः। भ्रममाणो निराधारो बोधश्चेवगुरुं
परमात्मा तदाविष्णुराधारो मंदरस्यच । दोर्भिश्चतुर्भिःसंगृह्य ममन्थाब्धिं सुखा
तदा सुरासुराः सर्वे ममंथुः क्षीरसागरम् । एकीभूत्वा बलेनैवमतिमात्रं बलोत्क
पृष्ठकण्ठोरुजान्वन्तः कमठस्य महात्मनः । तथाऽसौ पर्वतश्रेष्ठो वज्रसारमयो दृढ
उभयोर्घर्षणादेव वडवाग्निः समुत्थितः ॥ ९१ ॥
हलाहलं च संजातं तद्दृष्ट्वा नारदेन हि । ततो देवानुवाचेदं देवर्षिरमितद्युतिः ॥
न कार्यं मथनं चाब्धेर्भवद्भिरधुनाऽखिलैः। प्रार्थयध्वंशिवं देवाः सर्वे दक्षस्य याज
तद्विस्मृतिं च वो यातं वीरभद्रेण यत्कृतम् ॥ ९३ ॥
तस्माच्छिवः स्मर्यतां चाशु देवाः परः पराणामपि वा परश्च ।
परात्परः परमानन्दरूपो योगिध्येयो निष्प्रपञ्चो ह्यरूपः ॥ ९४ ॥
तेमथ्यमानास्त्वरितादेवाःस्वात्मार्थसाधकाः।अभिलाषपराःसर्वेनश्रृण्वन्तियतोज
उपदेशैश्च बहुभिर्नोपदेश्याः कदाचन ! । ते रागद्वेषसंघाताः सर्वे शिवपराङ्मुखा

केवलोद्यमसंवीता ममंथुः क्षीरसागरम् । अति निर्मथनाज्जातं क्षीराब्धेश्च हलाहलम्
त्रैलोक्यदहनेप्रौढंप्राप्तंहन्तुं दिवौकसः । अत ऊर्ध्वं दिशःसर्वाव्याप्तं कृत्स्नंनभस्तलम्
ग्रसितुं सर्वभूतानां कालकूटं समभ्ययात् ॥ ९८ ॥
दृष्ट्वा बृहंतं स्वकरस्थमोजसा तं सर्पराजं सह पर्वतेन ।
तत्रैव हित्वा प्रययुस्तदानीं पलायमाना ह्यसुरैः समेताः ॥ ९९ ॥
तथैव सर्वं ऋषयो भृग्वाद्याः शतशस्ततः। दक्षस्य यजनं तेन यथा जातं तथा भवन् ॥
सत्यलोकं गताःसर्वे भृगुणानोदिताभृशम् । वेदवाक्यैश्च विविधैःकालकूटंप्रशाम्यति
देवा नास्त्यत्र सन्देहः सत्यं सत्यं वदामि वः ॥१०१॥
भृगुणोक्तं वचः श्रुत्वा कालकूटविषार्दिताः । सत्यलोकं समासाद्य ब्रह्माणंशरणंययुः
ददौ जाज्वल्यमानंवैकालकूटंप्रभोज्ज्वलम् । दृष्ट्वाब्रह्माऽथतान्दृष्ट्वाह्यकर्मज्ञान्सुरासुरान्
तेषां शपितुमारेभे नारदेन निवारितः ॥१०३॥

ब्रह्मोवाच

अकार्यंकिंकृतंदेवाःकस्मात्क्षोभोऽयमुद्यतः । ईश्वरस्यचजातोऽद्यनान्यथाममभाषितम्
ततो देवैः परिवृतो वेदोपनिषदैस्तथा । नानागनैः परिवृतः कालकूटभयार्दितौ ॥
ततश्चिन्तान्विता देवा इदमूचुः परस्परम् ।
अविद्याकामसंवीताः कुर्यामः शङ्करं च कम् ॥१०६॥
ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य तदा देवास्त्वरान्विताः । वैकुण्ठमाव्रजन्सर्वेकालकूटभयार्दिताः
ब्रह्मादयश्चर्षिगणाश्च तदा परेशं विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमीशम् ।
वैकुण्ठमश्रितमधोक्षजमाधवन्ते सर्वे सुरा सुरगणाःशरणं प्रयाताः॥१०८
तावत्प्रवृद्धं सुमहत्कालकूटंसमभ्ययात् । दग्ध्वादो ब्रह्मणो लोकं वैकुण्ठं च ददाह वै
कालकूटाग्निना दग्धो विष्णुः सर्वगुहाशयः । पार्षदैःसहितः सद्यस्तमालसदृशच्छविः
वैकुण्ठं च सुनीलंचसर्वलोकैः समावृतम् । जलकल्मषसंवीताः सर्वे लोकास्तदाभवन्
अष्टावरणसंवीतं ब्रह्माण्डं ब्रह्मणा सह । भस्मीभूतं चकाराशु जलकल्मषमद्भुतम् ॥

नोभूमिर्नजलं चाग्निर्न वायुर्न नभस्तदा । नाहङ्कारो न च महान्मूला विद्यातथै
शिवस्य कोपात्संजातं तदा भस्माकुलं जगत् ॥११३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीति साहस्र्यां संहितायां प्रथममाहेश्वरखण्डान्त
केदारखण्डे समुद्रमथनवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

दशमोऽध्यायः

समुद्रमथने गणेशकृतविघ्नवर्णनम्

मुनय ऊचुः

यत्त्वयाकथितंब्रह्मन्ब्रह्माण्डंसचराचरम् । भस्मीभूतंरुद्रकोपात्कालकूटाग्निनाऽखि
ब्रह्माण्डान्तरतः किं तु रुद्रं मन्यामहे वयम् । तदा चराचरं नष्टं ब्रह्मविष्णुपुरोग
भस्मीभूतं रुद्रकोपात्कथं सृष्टिःप्रवर्तिता । कुतो ब्रह्मा च विष्णुश्च कुतश्चन्द्रपुरोग
अन्ये सुरासुराः कुत्र भस्मीभूतालयंगताः । अत ऊर्ध्वं किमभवत्तत्सर्वं वक्तुमर्हसि
व्यासप्रसादात्सकलंवेत्थत्वंनापरोहितत् । तस्माज्ज्ञानमयंशास्त्रं तज्ज्ञानासिनचाप
इति पृष्टस्तदासर्वैर्मुनिभिर्भावितात्मभिः ॥ सूतो व्यासंनमस्कृत्यवाक्यंचेदमथाब्रवी

लोमश उवाच

यदा ब्रह्माण्डमध्यस्था व्याप्ता देवा विषाग्निना ।
हरिब्रह्मादयो ह्येते लोकपालाः सवासवाः ॥
तदा विज्ञापितः शम्भुर्हेरम्बेन महात्मना ॥७॥

हेरम्ब उवाच

हे रुद्र हे महादेव हे स्थाणो ! हे जगत्पते । मया विघ्नं विनोदेन कृतंतेषां सुदुर्ज
भयेनमतिमोहात्त्वांनाच्र्चयन्तिचमामपि । उद्योगंयेप्रकुर्वन्तितेषांक्लेशोऽधिकोभवे

वमभ्यर्थितस्तेन पिनाकी वृषभध्वजः। विघ्नान्धकारसूर्येण गणाधिपतिनातदा॥
ङ्गरूपोऽब्रवीच्छम्भुर्निराकारो निरामयः। निरञ्जनो व्योमकेशःकपर्दी नीललोहितः

महेश्वर उवाच

रम्ब शृणुमेवाक्यं श्रद्धया परयायुतः। अहङ्कारात्मकंचैव जगदेतच्चराचरम्॥१२
स्थितिं करोत्यहङ्कारः प्रलयोत्पत्तिमेव च। जगदादौ गणपते तदा विज्ञप्तिमात्रतः
याविरहितं शान्तं द्वैताद्वैतपरं सदा। ज्ञप्तिमात्रस्वरूपं तत्सदानन्दैकलक्षणम्॥

गणपतिरुवाच

दि त्वं केवलो ह्यात्मा परमानन्दलक्षणः। तस्मात्त्वदपरं किञ्चिन्नान्यदस्ति परंतप॥
नारूपं कथं जातं सुरासुरविलक्षणम्। विचित्रं मोहजननं त्रिभिर्देवैश्च लक्षितम्॥
श्रमैश्चतुर्भिश्च नानाभेदैःसमन्वितैः। जातंसंसारचक्रं च नित्यानित्यविलक्षणम्॥
रस्परविरोधेन ज्ञानवादेन मोहिताः। कर्मवादरताः केचित्केचित् स्वगुणमाश्रिताः
ाननिष्ठाश्च ये केचित्परस्परविरोधिनः। एवं संशयमापन्नं त्राहि मां वृषभध्वज॥
हं गणश्चकुत्रत्यः क्व चायं वृषभः प्रभो। एते चान्ये च बहवः कुतोजाताश्चकुत्रवै॥
ताः सर्वे महाभागाः सात्त्विकाराजसाश्च वै। प्रहस्यभगवाञ्छम्भुर्गणेशं वक्तुमुद्यतः

महेश्वर उवाच

ालशक्त्या च जातानि रजःसत्त्वतमांसि च। तैरावृतंजगत्सर्वंसदेवासुरमानुषम्
रिदृश्यमानमेतच्चानश्वरं परमार्थतः। विद्ध्येतत्सर्वसिद्ध्यैव कृतकत्वाच्च नश्वरम्॥

लोमश उवाच

यावद् गणेशसंयुक्तो भाषमाणःसदाशिवः।
लिङ्गरूपी विश्वरूपः प्रादुर्भूता सदाशिवात्॥२४॥

ोवरूपा जगद्योनिः कार्यकारणरूपिणी। लिङ्गरूपी स भगवान्निमग्नस्तत्क्षणादभूत्
का स्थिता पराशक्तिर्ब्रह्मविद्यात्मलक्षणा। गणेशोविस्मयाविष्टो ह्यवलोकनतत्परः

ऋषय ऊचुः

कृत्यन्तर्गतं सर्वं जगदेतच्चराचरम्। गणेशस्य पृथक्त्वं च कथं जातं तदुच्यताम्॥

लोमश उवाच

साक्षात्प्रकृत्याःसम्भूतोगणेशोभगवानभूत् । यथारूपः शिवःसाक्षात्तद्रूपो हि
शिवेन सहसंग्रामो ह्यभूत्तस्य महात्मनः । अज्ञानात्प्राकृतो भूत्वा बहुकालं नि
तस्य दृष्ट्वा ह्यजेयत्वं गजारूढस्यतत्तदा । त्रिशूलेनाहनच्छम्भुः सगजंतमपातयत्
तदा स्तुतो महादेवः परशक्त्या परन्तपः । परशक्तिमुवाचेदं वरं वरय शोभने
तदावृतो महादेवो वरेण परमेणहि । योऽयं त्वयाहतो देव मम पुत्रो न संशयः
त्वां न जानात्ययंमूढः प्रकृत्यंशसमुद्भवः । तस्मात्पुत्रं जीवयेमं मम तुष्ट्यर्थमे
प्रहस्य भगवान्रुद्रो मायापुत्रमजीवयत् । सिन्धुरवदनेनैव मुखे स समयोज
तदा गजाननो जातः प्रसादाच्छङ्करस्य च । मायापुत्रोऽपि निर्मायोज्ञानवान्सम

आत्मज्ञानामृतेनैव नित्यतृप्तो निरामयः ।
समाधिसंस्थितो रौद्रः कालकालान्तकोऽभवत् ॥३६॥

योगदण्डार्थमुत्पाट्य स्वकीयं दशनं महत् । करे गृह्य गणाध्यक्षः शब्दब्रह्माति

ऋद्धिसिद्धिद्वयेनैव एकत्वेन विराजितः ॥ ३७ ॥

ये ते गणाश्चविघ्नाश्चयेचान्येऽभ्यधिकाभुवि । तेषामपिपतिर्जातःकृतोऽसौशम्भुना
तस्माद्विलोकयामासप्रकृतिंविश्वरूपिणीम् । पृथक्स्थित्वाग्रतोजानाल्लिङ्गंप्रकृति

ददर्श विमलं लिङ्गं प्रकृतिस्थं स्वभावतः ॥ ३६ ॥

आत्मानं च गणैः सार्द्धं तथैव च जगत्त्रयम् लीनं लिङ्गे समस्तं तद्धेरम्बोज्ञान
मुमोह च पुनः सञ्ज्ञां प्रतिलभ्यप्रयत्नतः । ननामशिरसाताभ्यामीशाभ्यां स ग
तदा ददर्श तत्रैव लोकसंहारकारकम् । ब्रह्माणं चैव रुद्रं च विष्णुञ्चैवसदाशि
ददर्श प्रेततुल्यानि लिङ्गशक्त्यात्मकानि च । ब्रह्माण्डगोलकान्येवकोटिशः परमा
लीयन्ते च विलीयन्ते महेशे लिङ्गरूपिणि । प्रकृत्यन्तर्गतंलिङ्गं लिङ्गस्यान्तर्गतानिदं
शक्त्या लिङ्गञ्च संछन्नं तदा सर्वमदृश्यत । लिङ्गेन शक्तिः संछन्ना परस्परमभा
शिवाभ्यां संश्रितंलोकंजगदेतच्चराचरम् गणेशोवाऽपितज्ज्ञानं न परेऽपि तथा
तदोवाच महातेजा गणाध्यक्षोगणैःसह । सशक्तिकं स्तूयमानः शक्त्या च पर

गणेश उवाच

नमामि देवं शक्त्यान्वितं ज्ञानरूपं प्रसन्नं ज्ञानात्परं परमं ज्योतिरूपम्।
पात्परं परमं तत्त्वरूपंतत्त्वात्परं परमं मङ्गलञ्च आनन्दाख्यं निष्कलं निर्विषादम् ॥
मात्परमयो वह्निर्धूमवत्प्रतिभासते। प्रकृत्यन्तर्गतस्त्वं हि लक्ष्यसे ज्ञानसम्भवः ॥
प्रकृत्यन्तर्गस्त्वं हि मायाव्यक्तिरितीयसे ॥ ४९ ॥
एवंविधस्त्वं भगवन्स्वमायया सृजस्यथो लुम्पसि पासि विश्वम्।
अस्माद् गरात्सर्वमिदं प्रनष्टं सब्रह्मविप्रेन्द्रयुतं चराचरम् ॥ ५० ॥
तथा पुराऽऽसीर्भगवान्महेशस्त्रैलोक्यनाथोऽसि चराचरात्मा।
कुरुष्व शीघ्रं सहजीवकोशं चराचरं तत्सकलं प्रदग्धम् ॥ ५१ ॥

लोमश उवाच

वं स्तुतो गणेशेन भगवान्भूतभावनः। यदुत्थितं कालकूटं लोकसंहारकारकम् ॥
लिङ्गरूपेण तद्ग्रस्तं विमलंचाकरोत्तदा। सदेवासुरमर्त्याश्च सर्वाणित्रिजगन्तिच ॥
तत्क्षणाद्रक्षितान्येव कृपया परया युतः ॥ ५३ ॥
मुखा विष्णुःसुरेन्द्रश्चलोकपालाःसहर्षयः यक्षा विद्याधराःसिद्धागन्धर्वाप्सरसांगणाः
उत्थिताश्चैव ते सर्वे निद्रा परिगता इव ॥ ५४ ॥
स्मयेन समाविष्टा बभूवुर्जातसाध्वसाः। सर्वे देवा सुराश्चैवऊचुराश्चर्यवत्ततः॥५५॥
न कालकूटं सुमहद्येन विद्रावितावयम्। मृतप्रायाः कृताः सद्यः सलोकपालकाह्यमी॥
इत्यब्रुवंस्तदा दैत्यास्तूष्णींभूतास्तदा स्थिताः।
शक्रादयो लोकपाला विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥
ब्रह्माणञ्च पुरस्कृत्य इदमूचुः समेधिताः ॥ ५७ ॥
तानेदंकारितंविष्णो न विदामोऽल्पमेधसः। तदा प्रहस्य भगवान्ब्रह्मणा सहतैः सुरैः॥
माधिमगमन्सर्वेऽप्येकाग्रमनसस्तदा। तत्त्वज्ञानेन निर्हत्यकामक्रोधादिकान्द्विजाः
ात्मनि स्थितं लिङ्गमपश्यन्विबुधादयः। विष्णुं पुरस्कृत्य तदा तुष्टुवुः परमार्थतः
आत्मना परमात्मानं योगिनः पर्युपासते ॥ ६१ ॥

लिङ्गमेव परंज्ञानं लिङ्गमेव परंतपः। लिङ्गमेव परोधर्मो लिङ्गमेव परा

तस्माल्लिङ्गात्परतरं यच्च किञ्चिन्न विद्यते ॥ ६२ ॥

एवं ब्रुवन्तो हि तदा सुरासुराः सलोकपाला ऋषिभिश्च साकम्।

विष्णुं पुरस्कृत्य तमालवर्णं शम्भुं शरण्यं शरणं प्रपन्नाः ॥ ६३ ॥

त्राहि त्राहि महादेव!कृपालो परमेश्वर!। पुरा त्राता तथा सर्वे तथा त्वं त्रातु

तद्देवदेव भवतश्चरणारविन्दं सेवानुबन्धमहिमानमनन्तरूपम्।

त्वदाश्रितं यत्परमानुकम्पया नमोऽस्तु ते देववर ! प्रसीद ॥ ६५॥

लिङ्गस्वरूपमध्यस्थो भगवान्भूतभावनः। सर्वैः सुरगणैः साकं बभाषेदं रम

त्वं लिङ्गरूपी भगवाञ्जगतामभयप्रदः। विष्णुना संस्तुतो देवो लिङ्गरूपी महे

मृतास्त्राता गरात्सर्वे तस्मान्मृत्युञ्जय प्रभो। रक्ष रक्ष महाकालत्रिपुरांत नमो

विष्णुना संस्तुतो देवोलिङ्गरूपीमहेश्वरः। प्रादुर्बभूव साम्बोऽथ बोधयन्निव त

हे विष्णो हे सुराःसर्वेऋषयःश्रूयतामिदम्। मन्यतेऽपिहिसंसारेअनित्ये नित्यत

अविलोकयताऽऽत्मानमात्मनाविबुधादयः। किं यज्ञैःकिं तपोभिश्चकिमुद्योगेनक

एकत्वेन पृथक्त्वेन किञ्चिन्नैवप्रयोजनम्। यस्माद्भवद्भिर्मिलितैः कृतं यत्कर्मदु

क्षीराब्धेर्मथनं तत्तु अमृतार्थं कथं कृतम्। मृत्युञ्जयं निराकृत्य अवज्ञाय च मां

तस्मात्सर्वे मृत्युमुखंपतिता वै न संशयः। अस्माभिर्निर्मितोदेवोगणेशः कार्य

न नमन्तिगणेशं च दुर्गांचैवतथाविधाम्। क्लेशभाजोभविष्यन्तिनात्रकार्यावि

यूयं सर्वे त्वधर्मिष्ठाःस्तब्धाःपण्डितमानिनः। कार्याकार्यमविज्ञायकेवलं मान

तस्मात्कालमुखे सर्वे पतिता नात्र संशयः। सर्वे श्रुतिपरा यूयमिन्द्राद्या देव

प्ररोचनपराः सर्वेक्षुद्राश्चेन्द्रादयोवृथा। नात्मानं च प्रपञ्चेन वेत्सि त्वं हि

कृतः प्रयत्नो हि महानमृतार्थं त्वया शठ !। अश्वमेधशतेनैव यद्राज्यं प्राप्तव

अपि तच्च पराधीनं तन्न जानासि दुर्मते !॥ ७९ ॥

यैर्वेदवाक्यैस्त्वंमूढ संस्तुतोऽसितपस्विभिः। ते मूढास्तोषयन्तित्वांतत्तद्रागप

विष्णोत्वंचपक्षपातान्नजानासिहिताहितम्। केचिद्धतास्त्वयाविष्णोरक्षिताश्च

च्छायुक्तस्त्वमत्रैव सदाबालकचेष्टितः । येऽन्ये च लोकपाःसर्वेतेषांवार्ताकुतस्त्विह ।
न्यथा हि कृतेह्यर्थेअन्यथात्वंभविष्यति । कार्यसिद्धिर्भवेद्येनभवद्भिर्विस्मृतं च तत् ॥
नाद्य रक्षिताः सर्वे कालकूटमहाभयात् । ये न नीलीकृतो विष्णुर्येन सर्वे पराजिताः
लोका भस्मीकृता येन तस्माद्येनाऽपि रक्षिताः ।
तस्यार्च्चनाविधिः कार्यो गणेशस्य महात्मनः ॥ ८५ ॥
स्मात्स्मेतुविघ्नेशं ये नार्चन्तिगणाधिपम् । कार्यसिद्धिर्नतेषां वै भवेत्तु भवतां यथा
एतन्महेशस्य वचो निशम्य सुरासुराः किन्नरचारणाश्च ।
पूजाविधानं परमार्थतोऽपि पप्रच्छुरेनं च तदा गिरीशम् ॥ ८७ ॥
तिश्री स्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
समुद्रमन्थनाख्याने शिवकृतविषभक्षणवृत्तान्तवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥

एकादशोऽध्यायः

श्रीगणेशपूजाविधानवर्णनम्

माहेश्वर उवाच

प्रतिपक्षेचतुर्थ्यां तु पूजनीयो गणाधिपः । स्नात्वा शुक्लतिलैः शुद्धैःशुक्लपक्षेसदान्नृभिः
कृत्वा चावश्यकं सर्वं गणेशस्यार्चनक्रियाम् । प्रयत्नेनैव कुर्वीतगंधमाल्याक्षतादिभिः
ध्यानमादौ प्रकर्तव्यं गणेशस्य यथा विधि । आगमा बहवो जाता गणेशस्ययथामम्
बहुधोपासका यस्मात्तमःसत्त्वरजोन्विताः । गणभेदेन तान्येव नामानिबहुधाऽभवन्
पञ्चवक्त्रोगणाध्यक्षोदशबाहुस्त्रिलोचनः । कान्तस्फटिकसङ्काशोनीलकण्ठोगजाननः
मुखानि तस्य पञ्चैव कथयामि यथातथम् ॥ ६ ॥
मध्यमं तु मुखंगौरंचतुर्दन्तंत्रिलोचनम् । शुण्डादण्डमनोज्ञं च पुष्करे मोदकान्वितम्

तथान्यत् पीतवर्णं च नीलं च शुभलक्षणम् । पिङ्गलं च तथाशुभ्रं गणेशस्य शुभा
तथा दशभुजेष्वेव ह्यायुधानि ब्रवीमिवः । पाशं परशुपद्मे च अङ्कुशं दन्तमेव च
अक्षमालांलाङ्गलं च मुसलंवरदंतथा । पूर्णं च मोदकैःपात्रंपाणिना च विचि
लम्बोदरं विरूपाक्षं निवीतं मेखलान्वितम् । योगासने चोपविष्टं चन्द्रलेखाङ्कशे
ध्यानंचसात्त्विकंज्ञेयंराजसं हि नृणामिव । शुद्धचामीकराभासं गजाननमलौ
चतुर्भुजं त्रिनयनमेकदन्तं महोदरम् । पाशाङ्कुशधरं देवं दन्तमोदकपात्रकम् ॥
नीलंच तामसंध्यानमेवं त्रिविधमुच्यते । ततः 'पूजा प्रकर्तव्या भवद्भिःशीघ्रमेव
एकविंशतिदूर्वाभिर्द्वाभ्यां नाम्ना पृथक् पृथक् । सर्वनामभिरेकैवदीयते गणना
तथैवनामभिर्देया एकविंशतिमोदकाः । दशनामान्यहं वक्ष्ये पूजनार्थं पृथक् पृथ
गणाधिप नमस्तेऽस्तु उमापुत्राघनाशन !। विनायकेशपुत्रेति सर्वसिद्धिप्रदाय
एकदन्तेभवक्त्रेति तथा मूषकवाहन !। कुमारगुरवे तुभ्यं पूजनीयः प्रयत्नतः ॥
एवमुक्त्वासुरान्सद्यःपरिष्वज्य च सादरम् । विष्णुंगुहाशयंसद्योब्रह्माणं च सदा
तिरोधानं गतःसद्यः शम्भुः परमशोभनः । प्रणम्य शम्भुं ते सर्वेगणाध्यक्षार्च्चने
ततः सम्पूज्य विधिवद्गणाध्यक्षार्च्चने रताः । उपचारैरनेकैश्च दूर्वाभिश्च पृथक्पृ
सन्तुष्टो हि गणाध्यक्षो देवानां वरदोऽभवत् । प्रदक्षिणंनमस्कृत्यतैः सर्वैरभितो
तमोगुणान्विताः सर्वे ह्यसुरा नाभ्यपूजयन् । उपहासपरास्ते वै देवान्प्रत्यसुरो
पूजयित्वा शाङ्करिं ते पुनः क्षीरार्णवं ययुः । ब्रह्मा विष्णुश्च ऋषयोदेवदैत्याःसुरो

मन्थानं मन्दरं कृत्वा रज्जुं कृत्वाऽथ वासुकिम् ।
ममन्थुश्च तदा देवा विष्णुं कृत्वाऽथ सन्निधौ ॥ २५ ॥

मथ्यमाने तदाऽब्धौ च निर्गतश्चन्द्रअग्रतः । पीयूषपूर्णः सर्वेषां देवानां कार्यसिद्ध

शौनक उवाच

अर्णवे किं पुराचन्द्रोनिक्षिप्तःकेन सुव्रत !। गजादिकानि रत्नानिकथितानि त्वया
एतत्सर्वं समासेन आदौ कथय मे प्रभो !। ज्ञात्वा सर्ववयं सूत ! पश्चादावर्णया
तेषां तद्वचनं श्रुत्वासूतोवाक्यमुपाददे । रसचन्द्रआपोमयोविप्रा अत्रिपुत्रोगुणा

पन्नो ह्यनसूयायांब्रह्मणोंऽशात्समुद्भवः। रुद्रस्यांशाद्धिदुर्वासा विष्णोरंशात्तुदत्तकः
क्षीराब्धिं मथ्यमानं तु दृष्ट्वा चन्द्रो मुदान्वितः।
क्षीराब्धिरपि चन्द्रश्च दृष्ट्वा सोऽप्युत्सुकोऽभवत्॥ ३१॥
विप्रश्चोभयप्रीत्या शृण्वतां भो द्विजोत्तमाः। चन्द्रोह्यमृतपूर्णोऽभूदग्रतो देवसन्निधौ
दृष्ट्वा च कान्तिं त्वरितोऽथ चन्द्रो नीराजितो देवगणैस्तदानीम्।
वादित्रघोषैस्तुमुलैरनेकैर्मृदङ्गशंखैः पटहैरनेकैः॥ ३३॥
प्रश्चक्रुश्च ते सर्वे ससुरासुरदानवाः। तदागर्गं पृच्छमाना वलं चन्द्रस्य तत्त्वतः॥३४
गर्गेणोक्तास्तदा देवाः सर्वेषां बलमद्य वै। केन्द्रस्थानगताः सर्वे भवतामुत्तमा ग्रहाः
चन्द्रंगुरुः समायातो वुधश्चैव समागतः। आदित्यश्च तथा शुक्रः शनिरंगारकोमहान्
यस्माच्चन्द्रबलं श्रेष्ठं भवतां कार्यसिद्धये। गोमन्तसञ्ज्ञको नाम मुहूर्त्तोऽयं जयप्रदः
वमाश्वासिता देवागर्गेणैव महात्मना। ममन्थुरब्धिं त्वरितागर्जमाना महाबलाः॥
द्विगुणं बलमापन्ना महात्मानो दृढव्रताः। महेशं स्मरमाणास्ते गणेशं च पुनः पुनः॥
तैर्मथ्यमानादुदधेर्गर्जमानाच्च सर्वशः। निर्गता सुरभिः साक्षाद् देवानांकार्यसिद्धये॥
दृष्ट्वा कपिलवर्णा सा ऊधोभारेणभूयसा। तरंगोपरि गच्छन्ती शनकैःशनकैस्ततः॥
कामधेनुं समायान्तीं दृष्ट्वा सर्वे सुरासुराः। पुष्पवर्षेणमहता ववर्षुरमितप्रभाम्॥४२॥
तदा तूर्याण्यनेकानि नेदुर्वाद्यान्यनेकशः। आनीता जलमध्याच्च संवृता गोशतैरपि॥
सुनीलाश्चकृष्णाश्च कपिलाश्च कपिञ्जलाः। बभ्रवःश्यामकारक्ताजम्बूवर्णाश्चपिङ्गलाः
आभिर्युक्ता तदा गोभिः सुरभिः प्रत्यदृश्यत॥ ४४॥
सुरासुरसम्वीतां कामधेनुं ययाचिरे। ऋषयो हर्षसंयुक्तादेवान्दैत्यांश्च तत्क्षणात्
सर्वेभ्यश्चैवविप्रेभ्यो नानागोत्रेभ्य एवच। सुरभीसहिता गावोदातव्यो नात्रसंशयः
तैर्याचितास्तेऽत्र सुरासुराश्च ददुश्च ता गाः शिवतोषणाय।
तैः स्वीकृतास्ता ऋषिभिः सुमङ्गलैर्महात्मभिः पुण्यतमैः सुरभ्यः॥ ४७॥
पुण्याहंमुनिभिःसर्वैःकारितास्तेतदासुराः। देवानांकार्यसिद्ध्यर्थमसुराणांक्षयाय च॥
पुनः सर्वे सुसंरब्धाममन्थुः क्षीरसागरम्। मथ्यमानात्तदा तस्मादुदधेश्च तथाऽभवत्

कल्पवृक्षः पारिजातश्चूतः सन्तानकस्तथा । तान्द्रुमानेकतः कृत्वा गन्धर्वनगरो
ममन्थुरुग्रं त्वरिताः पुनः क्षीरार्णवं बुधाः ॥ ५० ॥
निर्मथ्यमानादुदधेरभवत्सूर्यवर्चसम् । रत्नानामुत्तमं रत्नं कौस्तुभाख्यं महाप्र
स्वकीयेन प्रकाशेन भासयन्तं जगत्त्रयम् । चिन्तामणिंपुरस्कृत्य कौस्तुभं दृ
सर्वेसुराददुस्तं वै कौस्तुभंविष्णवेतदा । चिन्तामणिंततःकृत्वा मध्ये चैवसुरा
ममन्थुः पुनरेवाब्धिं गर्जन्तस्ते बलोत्कटाः ॥ ५३ ॥
मथ्यमानात्ततस्तस्मादुच्चैः श्रवाःसमद्भुतम् । बभूव अश्वोरत्नानां पुनश्चैरावतो
तथैवगजरत्नं च चतुःषष्ट्यासमन्वितम् । गजानांपाण्डुराणां च चतुर्दन्तंमदा
तान्सर्वान्मध्यतः कृत्वा पुनश्चैव ममन्थिरे । निर्मथ्यमानादुदधेर्निर्गतानि बहू
मदिरा विजया भृंगी तथा लशुनगृंजनाः । अतीव उन्मादकरो धत्तूरः पुष्कर
स्थापितानैकपद्येनतीरेनदनदीपतेः । पुनश्चतेतत्रमहासुरेन्द्राममन्थुरब्धिंसुरसत्त
निर्मथ्यमानादुदधेस्तदासीत्सा दिव्यलक्ष्मीर्भुवनैकनाथा ।
आन्वीक्षिकीं ब्रह्मविदो वदन्ति तथा चान्ये मूलविद्यां गृणन्ति ॥ ५
ब्रह्मविद्यां केचिदाहुः समर्थाः केचित्सिद्धिमृद्धिमाज्ञामथाशाम् ।
यां वैष्णवींयोगिनः केचिदाहुस्तथा च मायां मायिनो नित्ययुक्ताः॥
*वदन्ति सर्वे केनसिद्धान्तयुक्तां यां योगमायां ज्ञानशक्त्यान्विता
ददृशुस्तांमहालक्ष्मीमायान्तींशनकैस्तदा । गौरां चयुवतींस्निग्धांपद्मकिंजल्कभू
सुस्मितांसुद्विजांश्यामांनवयौवन भूषणाम् । विचित्रवस्त्राभरणरत्नानेकोद्यतप्र
विम्बोष्ठीं सुनसांतन्वींसुग्रीवांचारुलोचनाम् । सुमध्यां चारुजघनांवृहत्कटितटां
नानारत्नप्रदीपैश्च नीराजितमुखाम्बुजाम् । चारुप्रसन्नवदनां हारनूपुरशोभिता
मूर्द्धनि ध्रियमाणेनच्छत्रेणऽपिविराजिताम् । चामरैर्वीज्यमानांतांगङ्गाकल्लोलल
पाण्डुरं गजमारूढां स्तूयमानां महर्षिभिः । सुरद्रुमपुष्पमालां बिभ्रतींमल्लिका
कराग्रे ध्रियमाणां तां दृष्ट्वादेवाःसमुत्सुकाः । आलोकनपरायावत्तावत्तान्ददृशे

* केनसिद्धान्तयुक्ताम्—केनोपनिषत्प्रतिपाद्योमाशब्दवाच्यब्रह्मविद्याम् इत्य

देवांश्च दानवांश्चैवसिद्धचारणपन्नगान्। यथा माता स्वपुत्रांश्चमहालक्ष्मीस्तथासती
आलोकितास्तथा देवास्तया लक्ष्म्या श्रियान्विताः।
सञ्जातास्तत्क्षणादेव राज्यलक्षणलक्षिताः॥
दैत्यास्ते निःश्रिका जाता ये श्रियाऽनवलोकिताः॥७०॥
निरीक्ष्यमाणा च तदा मुकुन्दं तमालनीलं सुकपोलनासम्।
विभ्राजमानं वपुषा परेण श्रीवत्सलक्ष्मं सदयावलोकम्॥७१॥
दृष्ट्वा तदैव सहसा वनमालयान्विता लक्ष्मीर्गजादवततार सुविस्मयन्ती।
कण्ठे ससर्ज पुरुषस्य परस्य विष्णोर्मालां श्रिया विरचितां भ्रमरैरुपेताम्
वामाङ्गमश्रित्य तदा महात्मनः सोपाविशत्तत्र समीक्ष्य ता उभौ।
सुराः सदैत्या मुदमापुरद्भुतां सिद्धाप्सरःकिन्नरचारणाश्च॥७३॥
सर्वेषामेवलोकानामैकपद्येन सर्वशः। हर्षो महानमभूत्तत्र लक्ष्मीनारायणागमे॥७४
लक्ष्म्यावृतो महाविष्णुर्लक्ष्मीस्तेनैव सम्वृता। एवं परस्परं प्रीत्याह्यवलोकनतत्परौ
शंखाश्च पटहाश्चैव मृदंगानकगोमुखाः। भेर्यश्च झर्झरीणां च स शब्दस्तुमुलोऽभवत्
बभूव गायकानां च गायनं सुमहत्तदा। ततानि विततान्येव घनानि सुषिराणि च॥
एवं वाद्यप्रभेदैश्चविष्णुं सर्वात्मना हरिम्। अतोषयन्सुगीतज्ञागन्धर्वाप्सरसांगणाः
तथा जगुर्नारदतुम्बुरादयो गन्धर्वयक्षाः सुरसिद्धसंघाः।
संसेवमानाः परमात्मरूपं नारायणं देवमगाधबोधम्॥७६॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमेमाहेश्वरखण्डे
केदारखण्डे समुद्रमन्थनाख्याने लक्ष्मीप्रादुर्भाववर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

समुद्रमन्थनवर्णनम्

लोमश उवाच

प्रणम्य परमात्मानं रमायुक्तं जनार्दनम् । अमृतार्थं ममन्थुस्ते सुरासुरगणाः पुन
उदधेर्मथ्यमानाच्च निर्गतः सुहायशाः । धन्वन्तरिरिति ख्यातो युवामृत्युञ्जयः पुनः
पाणिभ्यां पूर्णकलशंसुधायाः परिगृह्य वै । यावत्सर्वे सुराः सर्वे निरीक्षन्तेमनोह
तदा दैत्याः समं गत्वा हर्तुकामा बलादिव ।
सुधया पूर्णकलशं धन्वन्तरिकरे स्थितम् ॥ ४ ॥
यावत्तरंगमालाभिरावृतोऽभूद्भिषक्तमः । शनैः शनैः समायातो दृष्टोऽसौ वृषपर्वण
करस्थः कलशस्तस्य हृतस्तेन बलादिव । असुराश्च ततः सर्वे जगर्जुरतिभीषण
कलशं सुधया पूर्णं गृहीत्वातेसमुत्सुकाः । दैत्याःपातालमाजग्मुस्तदादेवाभ्रमान्वि
अनुजग्मुः सुसंनद्धायोद्धुकामाश्च तैः सह । तदा देवान्समालोक्य बलिरेवमभा

बलिरुवाच

वयं तु केवलं देवाः सुधया परितोषिताः । शीघ्रमेव प्रगन्तव्यं भवद्भिश्च सुरोत्तमै
त्रिविष्टपं मुदायुक्तैःकिमस्माभिःप्रयोजनम् । पुराऽस्माभिःकृतंमैत्रंभवद्भिःस्वार्थतत
अधुना विदितं तत्तु नात्र कार्या विचारणा ॥ १० ॥
एवं निर्भर्त्सितास्तेन बलिना सुरसत्तमाः । यथागतेन मार्गेण जग्मुर्नारायणं प्र
तं दृष्ट्वा विष्णुना सर्वे सुरा भग्नमनोरथाः । आश्वासितावचोभिश्चनानानुनयकोवि
मा त्रासं कुरुतात्रार्थं आनयिष्यामि तां सुधाम् ।
एवमाभाष्य भगवान्मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः ॥ १३ ॥
स्थापयित्वा सुरान्सर्वांस्तत्रैव मधुसूदनः । मोहिनीरूपमास्थायदैत्यानामग्रतोऽभ
तावद्दैत्याःसुसंरब्धाः परस्परमथाब्रुवन् । विवादः सर्वदैत्यानाममृतार्थे तदाऽभ

[ए]वं प्रवर्तमानेतु मोहिनीरूपमाश्रिताम् । दृष्ट्वा योषां तदा दैवात्सर्वभूतमनोरमाम् ॥
[वि]स्मयेन समाविष्टा बभूवुस्तृषितेक्षणाः । तां संमान्य तदा दैत्यराजो बलिरुवाच ह

बलिरुवाच

[सु]धा त्वया विभक्तव्या सर्वेषां गतिहेतवे । शीघ्रत्वेन महाभागे कुरुष्व वचनं मम ॥
[ए]वमुक्ता ह्युवाचेदं स्मयमाना बलिंप्रति । स्त्रीणांनैवचविश्वासः कर्तव्योहिविपश्चिता
[अ]नृतंसाहसं माया मूर्खत्वमतिलोभतां । अशौचं निर्घृणत्वंचस्त्रीणांदोषाःस्वभावजाः
[च]ञ्चलत्वं च विज्ञेयं धूर्तत्वंचैव तत्त्वतः । स्वस्त्रीणांचैवविज्ञेयादोषानास्त्यत्र संशयः
[य]थैव श्वापदानांचवृकाहिंसापरायणाः । काका यथाण्डजानांचश्वापदानांचजम्बुकाः
धूर्ता तथा मनुष्याणां स्त्री ज्ञेया सततं बुधैः ॥ २२ ॥
[म]या सह भवद्भिश्च कथं सख्यं प्रवर्तते । सर्वथाऽत्र न विज्ञेयाः के यूयं चैव काह्यहम्
[त]स्माद्भवद्भिः संचिन्त्य कार्याकार्यविचक्षणैः । कर्तव्यंपरयाबुद्ध्याप्रयातासुरसत्तमाः

बलिरुवाच

यास्त्वया कथिता नार्यो ग्राम्या ग्राम्यजनप्रियाः ।
तासां त्वं कथ्यमानानां मध्यगा नासि शोभने ! ॥ २५ ॥
किं त्वया बहुनोक्तेन कुरुष्व वचनंहिनः । सा मोहिनीदं प्रोवाच बलेर्वाक्यादनन्तरम्
करिष्यामि च ते वाक्यं सूक्तासूक्तमिति प्रभो ! ॥ २७ ॥.

बलिरुवाच

[त]द्यामृतं च सर्वेषां विभजस्व यथातथम् । त्वया दत्तं च गृह्णीमः सत्यं सत्यंवदामिते
[ए]वमुक्ता तदादेवीमोहिनीसर्वमङ्गला । उवाचाऽथासुरान्सर्वान्प्रोचयँल्लौकिकींस्थितिम्

भगवानुवाच

[य]ूयं सर्वेकृतार्थाश्च जातादैवेनकेनचित् । अद्योपवाससंयुक्ता अमृतस्याधिवासनम् ॥
[क्रि]यतामसुराःश्रेष्ठाः शुभेच्छाकिञ्चिदस्तिवः । श्वोभूते पारणंकुर्याद्व्रतार्चनरतिश्च वः
[न्]यायोपार्जितवित्तेन दशमांशेन धीमता । कर्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थहेतवे ॥
[त]थेति मत्वा ते सर्वे यथोक्तंदेवमायया । चक्रुस्तथैव दैतेया मोहिता नातिकोविदाः

मयासुरेण च तदा भवनानि कृतानिवै । मनोज्ञानि महार्हाणि सुप्रभाणि महांत
तेषूपविष्टास्ते सर्वे सुस्नाताः समलङ्कृताः । स्थापयित्वा सुसंरब्धाःपूर्णं कलश
रात्रौ जागरणं सर्वैः कृतं परमया मुदा । अथोषसि प्रवृत्ते च प्रातःस्नानयुता भ
असुरा बलिमुख्याश्च पङ्क्तिभूता यथाक्रमम् । सर्वमावश्यकंकृत्वातदा पानरताः
बलिश्च वृषपर्वाच नमुचिः शंख एव च । सुदंष्ट्रश्चैव संह्लादी कालनेमिर्विभीषण त

वातापिरिल्वलः कुम्भो निकुम्भः प्रच्छदस्तथा ।
तथा सुन्दोपसुन्दौ च निशुम्भः शुम्भ एव च ॥ ३९ ॥
महिषो महिषाक्षश्च विडालाक्षः प्रतापवान् ।
चिक्षुराख्यो महाबाहुर्जृम्भणोऽथ वृषासुरः॥४०॥

विबाहुर्बाहुकोघोरस्तथावै घोरदर्शनः । एते चान्येचबहवो दैत्यदानवराक्षस

यथाक्रमं चोपविष्टा राहुः केतुस्तथैव च ॥ ४१ ॥
तेषां तु कोटिसंख्यानां दैत्यानां पङ्क्तिरास्थिता ॥ ४२ ॥

ततस्तया तदा देव्या अमृतार्थंहिवैद्विजाः । यज्जातं तच्छृणुध्वंहितया देव्याकृतं
सर्वे विज्ञापिताःसद्योगृहीतकलशातदा । शोभया परयायुक्तासाक्षात्साविष्णुमो
करस्थेन तदा देवी कलशेन विराजिता । शुशुभे परया कान्त्या जगन्मङ्गलमङ्ग
परिवेषधराः सर्वे सुरास्तेह्यसुरान्तिकम् । आगतास्तत्क्षणादेव यत्र ते ह्यसुरोत्त

तान्दृष्ट्वा मोहिनी सद्य उवाच प्रमदोत्तमा ॥ ४७ ॥

मोहिन्युवाच

एते ह्यतिथयो ज्ञेया धर्मसर्वस्वसाधनाः । एभ्योदेयं यथाशक्त्या यदि सत्यंवचो

प्रमाणं भवतां चाद्य कुरुध्वं मा विलम्बथ ॥ ४८ ॥

परेषामुपकारं च ये कुर्वन्तिस्वशक्तितः । धन्यास्ते चैव विज्ञेयाः पवित्रालोकपाव
केवलात्मोदरार्थाय उद्योगंये प्रकुर्वते । ते क्लेशभागिनो ज्ञेया नात्रकार्या विचार
तस्माद्विभजनं कार्यं मयैतस्यशुभव्रताः । देवेभ्यश्च प्रयच्छध्वं यद्वि चात्मप्रियाः
इत्युक्ते वचने देव्यातथाचक्रुरतन्द्रिताः । आह्वयामासुरसुराः सर्वान्देवान्सवासव

उपविष्टाश्चते सर्वे अमृतार्थंचभोद्विजाः। तेषूपविश्यमानेषु ह्युवाच परमं वचः॥
मोहिनी सर्वधर्मज्ञा असुराणां स्मयन्निव ॥ ५३ ॥

मोहिन्युवाच

आदौ ह्यभ्यागताः पूज्या इति वै वैदिकी श्रुतिः ॥५४ ॥
तस्माद्यूयं वेदपराः सर्वे देवपरायणाः। ब्रुवन्तु त्वरितेनैव आदौ केषां ददाम्यहम् ॥
अमृतं हि महाभागा बलिमुख्या वदन्तु भोः ॥ ५५ ॥
बलिनोक्तातदादेवी यत्ते मनसिरोचते। स्वामिनी त्वं न सन्देहो ह्यस्माकंसुन्दराननने
एवं संमानिता तेन बलिना भावितात्मना। परिवेषणकार्यार्थं कलशं गृह्य सत्वरा
तस्मान्नरेन्द्रकरभोरुलसद्दुकूला श्रोणीतटालसगतिर्मदविह्वलाङ्गी।
सा कूजती कनकनूपुरसिञ्जितेन कुम्भस्तनी कलशपाणिरथाविवेश ॥५८॥
तदा तु देवी परिवेषयन्ती सा मोहिनी देवगणाय साक्षात्।
ववर्ष देवेषु सुधारसं पुनः पुनः सुधाहाररसामृतं यथा ॥ ५९ ॥
पुनश्च ते देवगणाः सुधारसं दत्तं तया परया विश्वमूर्त्या।
देवेन्द्रमुख्याः सह लोकपाला गन्धर्वयक्षाप्सरसां गणाश्च ॥ ६० ॥
सर्वे दैत्या आसनस्थास्तदानीं चिन्तान्विताः क्षुधया पीड़िताश्च।
तूष्णींभूता बलिमुख्या द्विजेन्द्रा मनस्विनो ध्यानपरा बभूवुः ॥ ६१ ॥
ततस्तथाविधान्दृष्ट्वा दैत्यास्तान्मोहमाश्रितान्। तदाराहुश्चकेतुश्चद्वावेतौ दैत्यपुङ्गवौ
देवानां रूपमास्थाय अमृतार्थंत्वरान्वितौ। उपविष्टौ तदा पङ्क्त्यांदेवानाममृतार्थिनौ
यदाऽमृतं पातुकामो राहुः परमदुर्जयः। चन्द्रार्काभ्यां प्रकथितो विष्णोरमिततेजसः
तदा तस्य शिरश्छिन्नं राहोर्दुर्विग्रहस्य च। शिरो गगनमापेदे कबन्धं च महीतले
भ्रममाणं तदा ह्यद्रींश्चूर्णयामास वै तदा ॥६५॥
साद्रिश्च सर्वभूलोकश्चूर्णितश्च तदाऽभवत्। तया तेन च देहेन चूर्णितं सचराचरम्
दृष्ट्वा तदा महादेवस्तस्योपरितुसंस्थितः। निवासः सर्वदेवानां तस्याः पादतलेऽभवत्
पीडनं तत्समीपेऽथ निवास इति नाम वै ॥६८॥

महतामालयंयस्माद्यस्यास्तच्चरणाम्बुजम् । महालयेतिविख्याता जगत्त्रयविमो
केतुश्चधूमरूपोऽसावाकाशे विलयं गतः । सुधां समर्प्य चन्द्राय तिरोधानगतोऽ
वासुदेवोजगद्योनिर्जगतांकारणंपरम् । विष्णोःप्रसादात्तज्जातं सुराणांकार्यसि
असुराणां विनाशाय जातं दैवविपर्ययात् । विना दैवेनजानीध्वमुद्यमो हि नि
यौगपद्येन तैः सर्वैःक्षीराब्धेर्मंथनंकृतम् । सिद्धिर्जाता हि देवानामसिद्धिरसुरा
ततश्च ते देववरान्प्रकोपिता दैत्याश्च मायाप्रविमोहिताः पुनः ।
अनेकशस्त्रास्त्रयुतास्तदाऽभवन्विष्णौ गते गर्जमानास्तदानीम् ॥७४॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरा
केदारखण्डे समुद्रमंथनाख्याने देवानामनृतप्राशनवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

देवदानवयुद्धवर्णनम्

लोमश उवाच

ततस्ते गर्ज्जमानाश्च आक्षिपन्तः सुरान्रणे । शतक्रतुप्रमुख्यांस्तान्महाबलपराक्र
विमानमारुह्य तदा महात्मा वैरोचनिः सर्वबलेन सार्द्धम् ।
दैत्यैः समेतो विविधैर्महाबलैः सुरान्प्रदुद्राव महाभयावहम् ॥२॥
स्वानि रूपाणिबिभ्रंतःसमापेतुः सहस्रशः । केचिद्व्याघ्रान्समारूढा महिषाश्चतथा
अश्वान्केचित्समारूढाद्विपान्केचित्तथापरे । सिंहांस्तथापरेरूढाःशार्दूलाञ्छरभांस्त
मयूरान्राजहंसांश्च कुक्कुटांश्च तथा परे । केचिद्धयान्समारूढा उष्ट्रानश्वतरानपि
गजान्खरान्परे चैव शकटांश्च तथा परे । पादाता बहवो दैत्याः खड्गशक्त्यृष्टिपाण
परिघायुधिनः पाशशूलमुद्गरपाणयः । असिलोमान्विताः केचिद्भुशुण्डीपरिघायुध

हयनागरथाश्चान्ये समारूढाः प्रहारिणः । विमानानि समारूढाबलिमुख्याः सहस्रशः
स्पर्द्धमानास्तथाऽन्योन्यं गर्जन्तश्च मुहुर्मुहुः । वृषपर्वा ह्युवाचेदं बलिनं दैत्यपुङ्गवम् ॥
त्वया कृतं महाबाहो इन्द्रेण सह सङ्गमम् । विश्वासो नैव कर्तव्योदुर्हृदा च कथञ्चन
ऊनेनाऽपि हि तुच्छेन वैरिणाऽपि कथञ्चन । मैत्रीबुद्धिमता कार्या आपद्यपिनिवर्तते
न विश्वसेत् पूर्वविरोधिना क्वचित्पराजिताः स्मोऽथ बले त्वयाऽधुना ॥
पुराणदुष्टाः कथमद्य वै पुनर्मन्त्रं विकर्तुं न च ते यतेरन् ॥१२॥
इत्यूचुस्तेदुराधर्षायोद्धुकामाव्यवस्थिताः । ध्वजैश्छत्रैः पताकैश्चरणभूमिममण्डयन्
चामरैश्चजिशःसर्वालोपितं च रणस्थलम् । तथा सर्वेसुरास्तत्रदैत्यान्प्रतिसमुत्सुकाः
पीत्वाऽमृतं महाभागावाहान्यारुह्यदंशिताः ।गजारूढोमहेन्द्रोऽपिवज्रपाणिःप्रतापवान्
सूर्यश्चोच्चैःश्रवारूढो मृगारूढश्च चन्द्रमाः ॥१५॥
छत्रचामरसंवीताःशोभिताविजयश्रिया । प्रणम्य विष्णुंते सर्वइन्द्राद्याजयकाङ्क्षिणः
ते विष्णुनाह्यनुज्ञाताअसुरान्प्रति वै रुषा । असुराश्च महाकायाभीमाक्षाभीमविक्रमाः
तेषां घोरमभूद्युद्धं देवानां दानवैः सह । तुमुलं च महाघोरं सर्वभूतभयावहम्॥
शरधारान्वितं सर्वं बभूव परमाद्भुतम् । ततश्चटचटाशब्दा बभूवुश्च दिशोदश ॥१६॥
ततो निमिषमात्रेण शरघातयुता भवन् । शरतोमरनाराचैराहताश्चापतन्भुवि ॥२०॥
विध्यमानास्तथाकेचिद्विविधुश्चापराङ्गणे । भल्लैर्भग्नाश्चपतितानाराचैः शकलीकृताः
क्षुरप्रहारिताः केचिद्दैत्या दानवराक्षसाः । शिलीमुखैर्मारिताश्च भग्नाः केचिच्चदानवाः
एवं भग्नं दानवानां च सैन्यं दृष्ट्वा देवा गर्जमानाः समन्तात् ।
हृष्टाः सर्वे संमिलित्वा तदानीं लब्ध्वा युद्धे ते जयं श्लाघयन्ते ॥२३॥
शङ्खवादित्रघोषेण पूरितं च जगत्त्रयम् । देवान्प्रति कृतामर्षा दानवास्ते महाबलाः
बलिप्रभृतयः सर्वे संभ्रमेणोत्थिताः पुनः । विमानैः सूर्यसंकाशैरनेकैश्च समन्विताः
द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलं देवानां दानवैः सह । सम्प्रवृत्तं पुनश्चैव परस्परजिगीषया ॥२६॥
बलिना दानवेन्द्रेण महेन्द्रोयुयुधे तदा । तथा यमो महाबाहुर्नमुच्या सह संगतः ॥
नैर्ऋतः प्रघसेनैव पाशी कुम्भेन सङ्गतः । निकुम्भेनैव सुमहद्युद्धं चक्रे सदारयः ॥२८

सोमेन सह राहुश्च युद्धं चक्रे सुदारुणम्। राहुणा चन्द्रदेहोत्थममृतं भक्षितं
सम्पर्कादमृतस्यैव यथा राहुस्तथाऽभवत् ॥२६॥
तानिसर्वाणि दृष्टानि शम्भुना परमेष्ठिना। आश्रयोऽहं च सर्वेषांभूतानांनात्र
असुराणां सुराणाञ्च सर्वेषामपि वल्लभः ॥३०॥
एवमुक्तस्तदाराहुःप्रणम्यशिरसा शिवम्। मौलौस्थितस्तदाचन्द्रोअमृतंव्यसृज
तेनतस्य हि जातानि शिरांसि सुवहून्यपि। ऐकपद्येन तेषां च स्रजंकृत्वा मनो
ववन्ध शम्भुः शिरसि शिरोभूषणवत्कृतम् ॥ ३२ ॥
अशनात्कालकूटस्य नीलकण्ठोऽभवत्तदा। देवानांकार्यसिद्ध्यर्थंमुण्डमाला तथ
दधार शिरसा तां च मुण्डमालां महेश्वरः ॥ ३४ ॥
तया स्रजाऽसौ शुशुभे महात्मा देवादिदेवस्त्रिपुरान्तको हरः।
गजासुरो येन निपातितो महानथान्धको येन कृतश्च चूर्णः ॥ ३५ ॥
गङ्गा धृता येन शिरस्सुमध्ये चन्द्रं च चूड़े कृतवान्भयापहः।
वेदाः पुराणानि तथाऽऽगमाश्च तथैव नानाश्रुतयोऽथ शास्त्रम् ॥ ३६
जल्पन्ति नानागमभेदभेदैर्मीमांसमानाश्च भवन्ति मूकाः।
नानागमाचार्यमतप्रभेदैर्निरूप्यमाणो जगदेकबन्धुः ॥ ३७ ॥
शिवं हि नित्यं परमात्मदैवं वेदैकवेद्यं परमात्मदिव्यम्।
विहाय तं मूढ़जनाः प्रमत्ताः शिवं न जानन्ति परमात्मरूपम् ॥ ३८ ॥
येनैव सृष्टं विधृतं च येन येन श्रितं येन कृतं समग्रम्।
यस्यांशभूतं हि जगत् कदाचिद्वेदान्तवेद्यः परमात्मा शिवश्च ॥ ३९ ॥
आढ्योवाऽपिदरिद्रो वा उत्तमोह्यधमोऽपिवा। शिवभक्तिरतोनित्यंशिवएवन संशय
योवापरकृतांपूजांशिवस्योपरिशोभिताम्। दृष्ट्वा सन्तोषमायातिदायं प्राप्नोतितत्स
ये दीपमालां कुर्वन्ति कार्तिक्यां श्रद्धयान्विताः।
यावत्कालं प्रज्वलन्ति दीपास्ते लिङ्गमग्रतः ॥
तावद्युगसहस्राणि दाता स्वर्गे महीयते ॥ ४२ ॥

ौसुम्भतैलसंयुक्ता दीपा दत्ताःशिवालये ।दातारस्तेऽपि कैलासेमोदन्तेशिवसन्निधौ
ातसीतैलसंयुक्ता दीपादत्ताःशिवालये । दातारस्तेऽपि कैलासे मोदन्ते शिवसन्निधौ
ज्ञानिनोऽपि हि जायन्ते दीपदानफलेन हि ॥४५॥
ेलतैलेन संयुक्तादीपादत्ताःशिवालये । तेशिवंयन्ति संयुक्ताः कुलानां च शतेन वै
ताक्तायैः कृतादीपादीपिताश्चशिवालये । ते यान्ति परमंस्थानंकुललक्षसमन्विताः ॥
र्पूरागुरुधूपैश्च ये यजन्तिसदाशिवम् । आरार्तिकां सकर्पूरां ये कुर्वन्ति दिने दिने ॥
ते प्राप्नुवन्ति सायुज्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ ४८ ॥
ककालं द्विकालंवात्रिकालं ये ह्यतन्द्रिताः । लिङ्गार्चनं प्रकुर्वन्ति ते रुद्रानात्र संशयः
द्राक्षधारणं ये च कुर्वन्ति शिवपूजने । दानेतपसि तीर्थे च पर्वकाले ह्यतन्द्रिताः ॥
तेषां यत्सुकृतं सर्वमनन्तं भवति द्विजाः ॥ ५० ॥
द्राक्षायेशिवेनोक्तास्ताञ्छृणुध्वंद्विजोत्तमाः ।आरभ्यैकमुखंतावद्यावद्वक्त्राणिषोडश
एतेषां द्वौ च विज्ञेयौ श्रेष्ठौ तारयितुं द्विजाः ॥ ५१ ॥
द्राक्षाणां पञ्चमुखस्तथा चैकमुखः स्मृतः । ये धारयन्त्येकमुखं रुद्राक्षमनिशं नराः
रुद्रलोकं च गच्छन्ति मोदन्ते रुद्रसन्निधौ ॥ ५२ ॥
पस्तपःक्रियायोगःस्नानं दानार्चनादिकम् क्रियते यच्छुभंकर्म्मह्यनन्तंचाक्षधारणात्
ुलः कण्ठनिबद्धोऽपिरुद्राक्षोयदिवर्तते । सोऽपि सन्तारितस्तेननात्र कार्याविचारणा
था रुद्राक्षसम्बन्धात्पापमपि क्षयं व्रजेत् । एवं ज्ञात्वा शुभंकर्मकार्यंरुद्राक्षबन्धनात्
त्रिपुण्ड्रधारणं येषां विभूत्या मन्त्रपूतया । ते रुद्रलोके रुद्राश्च भविष्यन्ति न संशयः
कपिलायाश्च संगृह्य गोमयंचान्तरिक्षगम् । शुष्कंकृत्वाऽथसंदाह्यंविभूत्यर्थं शिवप्रियैः
विभूतीति समाख्यातासर्वपापप्रणाशिनी । ललाटेऽङ्गुष्ठरेखा च आदौ भाव्या प्रयत्नतः
ध्यमां वर्जयित्वा तु अंगुलीकद्वयेन च । एवं त्रिरेखासंयुक्तो ललाटे यस्य दृश्यते
स शैवः शिववज्ज्ञेयो दर्शनात्पापनाशनः ॥ ५६ ॥
जटाधराश्चये शैवाः सप्त पञ्चतथा नव । जटा ये स्थापयिष्यन्ति शैवेन विधिनायुताः
े शिवं प्राप्नुवन्तीह नात्र कार्या विचारणा । रुद्राक्षधारणं कार्यं शिवभक्तैर्विशेषतः॥

अल्पेन वा महत्त्वेन पूजितो वा सदाशिवः । कुलकोटिं समुद्धृत्य शिवेन सह
तस्माच्छिवात्परतरंनास्तिकिञ्चिद्द्विजोत्तमाः। यदैवमुच्यतेशास्त्रेतत्सर्वंशिवका
शिवोदाताहिलोकानांकर्त्ताचैवानुमोदिता। शिवशक्त्यात्मकंविश्वंजानीध्वंहिद्विजो
शिवेतिद्व्यक्षरंनामत्रायतेमहतोभयात्। तस्माच्छिवश्चिन्त्यतांवैस्मर्यतांच द्विजो

ऋषय ऊचुः

सोमनाथस्यमाहात्म्यंज्ञातंतस्य प्रसादतः । राहोः शिरोभयात्सर्वे रक्षिताः परमे
सुराश्चेन्द्रादयश्चान्येतस्मिन्युद्धेसुदारुणे । अत ऊर्ध्वं सुराः सर्वे किमकुर्वत उच्य
शिवस्य महिमा सर्वःश्रुतस्त्वमुखोद्गतः । अथ युद्धस्य वृत्तान्तः कथ्यतां परमा

लोमश उवाच

यदा हि दैत्यैश्च पराजिताः सुराः शम्भुं च सर्वे शरणं प्रपन्नाः ।
शिवं प्रणेमुः सहसा सुरोत्तमा युद्धाय सर्वे च मनो दधुस्तदा ॥ ६९ ॥
तथैव दैत्या अपि युध्यमाना उत्साहयुक्तातिबलाश्च सर्वे ।
देवैः समेताश्च पुनः पुनश्च युद्धं प्रचक्रुः परमास्त्रयुक्ताः ॥ ७० ॥
एवं च सर्वे ह्यसुराः सुराश्च शक्त्यृष्टिशूलैःपरिघैः परश्वधैः ।
जयार्थिनो मर्षयुताः परस्परं सिंहा यथा हैमवतीं दुरत्ययाः ।
निहन्यमाना ह्यसुराः सुरैस्तदा नानास्त्रयोगैः परमैर्निपेतुः ॥ ७१ ॥

चक्रुस्ते सकलामुर्वीं मांसशोणितकर्दमाम् । महीं वृक्षाद्रिसंयुक्तां ससागरवनाक
शिरांसि च कवन्धानिकवचानिमहान्तिच । ध्वजारथाःपताकाश्चगजवाजिशिरांसि
वहन्त्यश्चापगा ह्यासन्नद्यो भीरुभयावहाः। अगाधाः शोणितोदाश्च तरंतो ब्रह्मराक्षसि
ते नयन्ति परान्भूतप्रेतप्रमथराक्षसान् ॥ ७४ ॥
शाकिनीडाकिनीसङ्घायक्षिण्योऽथसहस्रशः । नानाकेलिषुसंयुक्ताःपरस्परमुदान्वि
एवं संक्रीडमानास्ते भूतप्रमथराक्षसाः । रणेतस्मिन्महारौद्रे देवासुरसमागमे ॥
वलिना सह देवेन्द्रो युयुधेऽद्भुतविक्रमः । शक्त्या जघान देवेन्द्रं वैरोचनिरमर्ष
तां शक्तिं वञ्चयामास महेन्द्रोलघुविक्रमः । जघान स बलिं यत्नाद्दैत्येन्द्रं परमेण

ज्रेण शितधारेण बाहुं चिच्छेद विक्रमी। गतासुरपतद्भूमौ विमानात्सूर्यसन्निभात्
तितंच बलिं दृष्ट्वा वृषपर्वा रुषान्वितः। ववर्ष शरधाराभिः पयोद इव पर्वतम् ॥८०
हेन्द्रं सगजंचैव सहमानं शिताञ्छरान्। तदा युद्धमभूद्घोरं महेन्द्रवृषपर्वणोः ॥८१
निपात्य वृषपर्वाणमिन्द्रः परबलार्दनः ॥ ८२ ॥
तो वज्रेण महता दानवानवधीद्रणे। शिरसिच्छेदिताः केचित् केचित्कन्धरतो हताः
चिद्धलाश्चकृताःकेचिदिन्द्रेण कुपितेनच। तथा यमेन निहता वायुना वरुणेन च ॥८४
कुबेरेण हताश्चान्ये नैर्ऋतेन तथा परे। अग्निना निहताः केचिदीशेनैव विदारिताः ॥
एवं तदा तैर्निहता बलीयसो महासुरा विक्रमशालिनश्च।
सुरैस्तु सर्वैः सह लोकपालैः शिवप्रसादाभिहतास्तदानीम् ॥ ८६ ॥
ततो महादैत्यवरो दुरात्मा सकालनेमिः परमास्त्रयुक्तः।
ययौ तदानीं सुरसत्तमांस्तान्हन्तुं सदा क्रूरमतिः स एकः ॥ ८७ ॥
सिंहारूढो दंशितश्च त्रिशूलेनहिसंयुतः। दैत्यानामर्बुदेनैव सिंहारूढेन सम्वृतः ॥८८ ॥
तेसिंहादंशिताःसर्वे महाबलपराक्रमाः। तेषु सिंहेषु चारूढा महादैत्याश्च तत्समाः ॥
आयान्तीं दैत्यसेनां तां सर्वां सिंहविभूषिताम्। कालनेमियुतांदृष्ट्वा देवाइन्द्रपुरोगमाः
भयमाजग्मुरतुलं तदा ध्यानपरा भवन् ॥ ९० ॥
किं कुर्मोऽद्य वयं सर्वे कथं जेष्यामचाद्भुतम्। एतादृशमसंख्याकमनीकंसिंहसम्वृतम्
एवं विचिन्त्यमानास्ते ह्यागतस्तत्र नारदः। नारदेन च तत्सर्वं पुरावृत्तं महत्तरम् ॥
कथितं च महेन्द्राय कालनेमेस्तपोबलम्। अजेयत्वं च संग्रामे वरदानबलेन तु ॥
विष्णुं विना वयं देवा अशक्तारणमण्डले। जेतुंच स ततो विष्णुः स्मर्यतां परमेश्वरः
तमालनीलो वरदः सर्वैर्विजयकाङ्क्षिभिः ॥ ९४ ॥
नारदस्य वचःश्रुत्वा तदा देवास्त्वरान्विताः। ध्यानेनच महाविष्णुंततःपरबलार्दनम्
स्मरन्तः परमात्मानमिदमूचुश्च तं विभुम् ॥ ९५ ॥

देवा ऊचुः

नमस्तुभ्यं भगवते नमस्ते विश्वमङ्गलम्। श्रीनिवास नमस्तुभ्यं श्रीपते ते नमो नमः

अद्यास्मान्भयभीतांस्त्वं कालनेमिभयार्द्दितान् । त्रातुमर्हसि दैत्याच्च देवानामभय
एवं ध्यातः संस्मृतश्च प्रादुर्भूतोहरिस्तदा । नीलो गरुडमारुह्य जगतामभयप्रदः
चक्रपाणिस्तदायातो देवानां विजयाय च । गगनस्थं महाविष्णुं गरुडोपरिसं
श्रीवासमेनं दुर्द्धर्षं योद्‌धुकामं ददर्शिरे ॥ ९९ ॥
तथा दृष्ट्वा कालनेमिस्तदानीं प्रहस्यमानोऽतिरुषा बलान्वितः ।
कस्त्वं महाभाग ! वरेण्यरूपः श्यामो युवा वारणमत्तविक्रमः ।
करे गृहीतं निशितं महाप्रभं चक्रं च कस्मात्कथयस्व मे प्रभो ! ॥ १
श्रीभगवानुवाच
युद्धार्थमिह चायातो देवानां कार्यसिद्धये । त्वं स्थिरो भव रे मन्द दहाम्यद्यन
श्रुत्वा भगवतो वाक्यं कालनेमिः प्रतापवान् ।
उवाच रुषितो भूत्वा भगवन्तमधोक्षजम् ॥१०३॥
मूलभूतो हि देवानां भगवान्युद्धदुर्मदः । युद्धं कुरु मया सार्द्धं यदि शूरोऽसि
प्रहस्य भगवाविष्णुरुवाचेदं महाप्रभः । गगनस्थो भवत्वं हि महीस्थोऽहंभवा
अप्रशस्तं च विषमं युद्धं चैव यथाभवेत् । तथाकुरु महाबाहो ! गगने वा मही
तथेति मत्वा हि महानुभावो दैत्यैः समेतोऽर्बुदसंख्यकैश्च ।
सिंहोपरिस्थैश्च महानुभावैर्महाबलैः क्रूरतरैस्तदानीम् ॥ १०६ ॥
गगनमथ जगाहे मदमन्दं महात्मा ह्यसुरगणसमेतो विश्वरूपं जिघां
त्रिशिखमपरमुग्रं गृह्य सन्देशचेष्टादशनविकृतवक्त्रो योद्‌धुकामोहरि
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर
केदारखण्डे समुद्रमन्थनाख्याने देवासुरसंग्रामवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

विष्णुकालनेमियुद्धवर्णनम्

लोमश उवाच

ततो युद्धमतीवाऽऽसीदसुरैर्विष्णुना सह। ततः सिंहाःसपक्षास्ते दंशिताः परमाद्भुताः
असुरैरुह्यमानास्ते गरुत्मन्तं व्यदारयन्। सिंहास्ते दारितास्तेनखण्डशश्च विदारिताः
विष्णुना च तदादैत्याश्चक्रेणशकलीकृताः। हतांस्तानसुरान्दृष्ट्वाकालनेमिः प्रतापवान्
त्रिशूलेनाहनद्विष्णुं रोषपर्याकुलेक्षणः। तमायान्तं च जगृहे मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः
करेण वामेन जघान लीलया तं कालनेमिं ह्यसुरं महाबलम्।
तेनैव शूलेन समाहतोसौ मूर्छान्वितोऽसौ सहसा पपात ॥५॥
पतितः पुनरुत्थाय शनैरुन्मील्यलोचने। पुरतः स्थितमालोक्य विष्णुं सर्वगुहाशयम्
लब्धसञ्ज्ञोऽब्रवीद्वाक्यंकालनेमिर्महाबलः। तव युद्धंनदास्यामि नास्तिलोकेस्पृहामम
ये येऽसुरा हता युद्धे अक्षयंलोकमाप्नुयुः। ब्रह्मणोवचनात्सद्य इन्द्रेण सह संगताः
भुञ्जतो विविधान्भोगान्देववद्विचरन्तिते। इन्द्रेण सहिताः सर्वे संसारेच पतन्त्यथ
तस्माद्युद्धेन मरणं न काङ्क्षे क्षणभङ्गुरम्। अन्यजन्मनि मे वीर! वैरभावान्न संशयः
दातुमर्हसि मे नाथ! कैवल्यं केवलं परम् ॥१०॥
तथेति दैत्यप्रवरो निपातितः परेण पुंसा परमार्थदेन।
दत्त्वाऽभयं देवतानां तदानीं तथा सुधां देवताभ्यः प्रदत्त्वा ॥११॥
कालनेमिर्हतोदैत्योदेवाजाताह्यकण्टकाः। शल्यरूपो महान्सद्योविष्णुनाप्रभविष्णुना
तिरोधानं गतः सद्योभगवान्कमलेक्षणः। इन्द्रोऽपि कदनं कृत्वा दैत्यानांपरमाद्भुतम्
पतितानांक्लीबरूपाणांभग्नानां भीतचेतसाम्। मुक्तकच्छशिखानांचचक्रेसकदनक्रिय
अर्थशास्त्रपरोभूत्वा महेन्द्रो दुरतिक्रमः। दैत्यानां कालरूपोऽसौशचीपतिरुदायुधः ॥
एवं निहन्यमानानामसुराणां शचीपतेः। निवारणार्थं भगवानागतो नारदस्तदा ॥१६

नारद उवाच

युद्धहस्ताश्च ये वीरा ह्यसुरा रणमण्डले। तेषामनु कथं कर्त्ताभीतानां च विहिं
ये भीतांश्च प्रपन्नांश्च घातयन्ति मदोद्धताः।
ब्रह्मघ्नास्तेऽपि विज्ञेया महापातकसंयुताः ॥१८॥
तस्मात्त्वया न कर्तव्यं मनसाऽपि विहिंसनम्। एवमुक्तस्तदाशक्रोनारदेन महा
सुरसेनान्वितःसद्य आगतोहि त्रिविष्टपम्। तदा सर्वे सुरगणाः सुहृद्भ्यश्च परा
बभूवुर्मुदिताः सर्वे यक्षगन्धर्वकिन्नराः। ॥ २० ॥
तदा इन्द्रोऽमरावत्यां सह शच्याऽभिषेचितः ॥ २१ ॥
देवर्षिप्रमुखैश्चैव ब्रह्मर्षिप्रमुखैस्तथा। शक्रोऽपि विजयम्प्राप्तः प्रसादाच्छङ्करस
तदा महोत्सवो विप्रा देवलोके महानभूत्। शंखाश्च पटहाश्चैव मृदंगा मुरजाः
तथाऽऽनकाश्च भेर्यश्च नेदुर्दुन्दुभयः समम् ॥ २३ ॥
गायकाश्चैवगन्धर्वाःकिन्नराश्चाप्सरोगणाः। ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्चसिद्धचारणगुह्यके
एवं विजयमापन्नः शक्रोदेवेश्वरस्तदा। देवैर्हतास्तदादैत्याः पतितास्ते महीतले
गतासवो महात्मानो बलिप्रमुखतोह्यमी। तपस्तत्तु पुरा विप्रो भार्गवो मानसोत्त
गतः शिष्यैःपरिवृतस्तस्माद्युद्धं न वेद तत्। अवशेषाश्च ये दैत्यास्तेगताभार्गवं
कथितं वै महद्वृत्तमसुराणां क्षयावहम्। निशम्य मन्युमाविष्टो ह्यागतो भृगुनन्दि
शिष्यैः परिवृतोभूत्वामृतांस्तानसुरानपि। विद्यया मृतजीविन्यापतितान्समजीवय
निद्रापायगता यद्वदुत्थितास्ते तदाऽसुराः।
उत्थितः स बलिः प्राह भार्गवं ह्यमितद्युतिम् ॥ ३० ॥
जीवितेन किमद्यैव मम नास्ति प्रयोजनम्। पातितस्त्रिदशेन्द्रेण यथा कापुरुषस्त
बलिनोक्तं वचः श्रुत्वा शुक्रोवचनमब्रवीत्। मनस्विनो हि ये शूराःपतन्तिसमरेषु
ये शस्त्रेण हताः सद्योम्रियमाणा व्रजन्ति वै। त्रिविष्टपं न सन्देह इतिवेदानुशास
एवमाश्वासयामास बलिनं भृगुनन्दनः। ततस्तताप विविधं दैत्यानां सिद्धिदाय
तथा दैत्या गताःसर्वे भृगुणा च प्रचोदिताः।

पातालमवसन्सर्वे बलिमुख्याः सुखेन वै ॥ ३५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे शिवशास्त्रे देवासुरसंग्रामे भार्गवेण मृतदैत्यसञ्जीवनवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

गुरोरवज्ञयेन्द्रस्य राज्यनाशः

ऋषय ऊचुः

राज्यंप्राप्तो हि देवेन्द्रःकथितस्ते गुरुंविना। गुरोरवज्ञयाजातोराज्यभ्रंशो हि तस्यतु
केन प्रणोदितश्चेन्द्रो बभूव चिरमासने। तत्सर्वं कथयाऽऽशुत्वं परं कौतूहलं हि नः

लोमश उवाच

गुरुणाऽपि विना राज्यं कृतवान्स शचीपतिः।
विश्वरूपोक्तविधिना इन्द्रो राज्ये स्थितो महान् ॥ ३ ॥

त्वविश्वकर्मसुतो विप्रा विश्वरूपो महातपः। पुरोहितोऽथ शक्रस्य याजकश्चाभवत्तदा
तस्मिन्यज्ञेऽवदानैश्च यजने असुरान्सुरान्। मनुष्यांश्चैव त्रिशिरा अपरोक्षं शचीपतेः

देवान्ददाति साक्रोशं दैत्यांस्तूष्णीमथाददात्।
मनुष्यान्मध्यपातेन प्रत्यहं स ग्रहान् द्विजः ॥ ६ ॥

एकदा तु महेन्द्रेण सूचितो गुरुलाघवात्। अलक्ष्यमाणेन तदाज्ञातं तस्यचिकीर्षितम्
दैत्यानां कार्यसिद्ध्यर्थमवदानंप्रयच्छति। असौपुरोहितोऽस्माकंपरेषां च फलप्रदः
इति मत्वा तदा शक्रो वज्रेण शतपर्वणा। चिच्छेद तच्छिरांस्येव तत्क्षणादभवद्बधः
येनाकरोत्सोमपानमजायन्तकपिञ्जलाः। ततोऽन्येनसुरापानात्कलविङ्काभवन्मुखात्
अन्याननादजायन्त तित्तिरा विश्वरूपिणः। एवं हतो विश्वरूपः शक्रेणमन्दभागिना

ब्रह्महत्या तदोद्भूताद्दुर्धर्षा च भयावहा । दुर्धर्षा दुर्मुखाद्दुष्टाचण्डालरजसा
ब्रह्महत्या सुरपानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । इत्येषामप्यघवतामिदमेव च निष्कृ
नाम व्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषयामतिः । त्रिशिरा धूम्रहस्ता सा शक्रंग्रस्तुमुद्यः
ततो भयेन महता पलायनपरोऽभवत् । पलायमानं तं दृष्ट्वा ह्यनुयाता भयावहा
यतो धावति साऽधावत्तिष्ठन्तमनुतिष्ठति । अंगकृता यथा छायाशक्रस्य परि

आयाति तावत्सहसा इन्द्रोऽप्यप्सु न्यमज्जत ॥ १६ ॥
शीघ्रत्वेन यथा विप्राश्चिरन्तनजलेचरः ॥ १७ ॥

एवं दिव्यशतं पूर्णं वर्षाणां च शचीपतेः । वसतस्तस्य दुःखेन तथा चैव शतक्रतोः

अराजकं तदा जातं नाकपृष्ठे भयावहम् ॥ १८ ॥
तदा चिन्तान्विता देवा ऋषयोऽपि तपस्विनः ।
त्रैलोक्यं चाऽऽपदा ग्रस्तं बभूव च तदा द्विजाः ॥ १९ ॥

एकोऽपि ब्रह्महा यत्र राष्ट्रे वसति निर्भयः । अकालमरणं तत्र साधूनामुपजाय
राजा पापयुतो यस्मिन्राष्ट्रे वसति तत्र वै । दुर्भिक्षं चैव मरणं तथैवोपद्रवास्त्र
भवन्ति वहवोऽनर्थाः प्रजानां नाशहेतवे । तस्माद्राज्ञा तु कर्तव्यो धर्मःश्रद्धापरम्
तथा प्रकृतयो राज्ञः शुचित्वेन प्रतिष्ठिताः । इन्द्रेण च कृतं पापं तेन पापेन वै द्वि

नानाविधैर्महातापैः सोपद्रवमभूज्जगत् ॥ २३ ॥

शौनक उवाच

अश्वमेधशतेनैव प्राप्तं राज्यं महत्तरम् । देवानामखिलं सूत कस्माद्विघ्नमजा

शक्रस्य च महाभाग ! यथावत्कथयस्व नः ॥ २४ ॥

सूत उवाच

देवानां दानवानां च मनुष्याणां विशेषतः । कर्म्मैव सुखदुःखानां हेतुभूतं न संश
इन्द्रेण च कृतं विप्रा महद्भूतं जुगुप्सितम् । गुरोरवज्ञा च कृता विश्वरूपवधः
गौतमस्य गुरोः पत्नीसेवितातस्यतत्फलम् । प्राप्तंमहेन्द्रेण चिरंयस्यनास्तिप्रति
ये हि दुष्कृतमर्म्माणोनकुर्वन्ति च निष्कृतिम् । दुर्दशां प्राप्नुवन्त्येतेयथैवेन्द्रःशत

कृतोपार्जितस्यातःप्रायश्चित्तंहितत्क्षणात् । कर्तव्यंविधिवद्विप्राःसर्वपापोपशान्तये
उपपातकमध्यस्तं महापातकतां व्रजेत् ॥ ३० ॥
नः स्वधर्मनिष्ठांच ये कुर्वन्ति सदा नराः । प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने तेषां पापं विनश्यति
प्राप्नुवन्त्युत्तमं लोकं नात्र कार्या विचारणा ।
तस्मादसौ दुराचारः प्राप्तो वै कर्मणः फलम् ॥ ३२ ॥
स्यश्चार्थं तदासर्वेलोकपालास्त्वरान्विताः । बृहस्पतिमुपागम्यसर्वमात्मनिधिष्ठितम्
कथयामासुरव्यग्रा इन्द्रस्य च गुरुम्प्रति ॥ ३३ ॥
वैरुक्तं वचोविप्रानिशम्य च बृहस्पतिः । अराजकं च सम्प्राप्तंचिन्तयामासबुद्धिमान्
किं कार्यं चाद्य कर्तव्यं कथं श्रेयो भविष्यति ।
देवानां चाद्य लोकानामृषीणां भावितात्मनाम् ॥ ३५ ॥
नसैव च तत्सर्वं कार्याकार्यं विचार्य च । जगाम शक्रं त्वरितो देवैः सह महायशाः
प्राप्तो जलाशयंतंचयत्राऽऽस्ते हि पुरन्दरः । यस्यतीरेस्थिताहत्याचण्डालीवभयावहा
त्रोपविष्टास्ते सर्वेदेवाऋषिगणान्विताः । आह्वानं च कृतं तस्यशक्रस्यगुरुणास्वयम्
मुत्थितस्ततः शक्रो ददर्श स्वगुरुं तदा । वाष्पपूरितवक्त्रो हि बृहस्पतिमभाषत
णिपत्य च तत्रत्यान्कृताञ्जालिरभाषत । तदा दीनमुखो भूत्वा मनसा संविमृश्यच
वयमेव कृतं पूर्वमज्ञानलक्षणं महत् । अधुनैव मया कार्यं किं कर्तव्यं वद प्रभो ! ॥
हस्योवाच भगवान्बृहस्पतिरुदारधीः । पुरा त्वया कृतं यच्च तस्येदं कर्मणः फलम्
ांच उद्दिश्यभोइन्द्रतद्भोगादेवसंक्षयः । प्रायश्चित्तं हि हत्याया न दृष्टं स्मृतिकारिभिः
ज्ञानतो हि यज्ञातं पापं तस्य प्रतिक्रिया । कथिता धर्मशास्त्रज्ञैःसकामस्य न विद्यते
कामेन कृतं पापमकामं नैव जायते । ताभ्यां विषयभेदेन प्रायश्चित्तं विधीयते ॥४५
रणान्तो विधिः कार्योकामेन हि कृतेन हि । अज्ञानजनिते पापे प्रायश्चित्तंविधीयते
स्मात्त्वया कृतं यच्च स्वयमेवहतो द्विजः । पुरोहितश्चविद्वांश्चतस्मान्नास्तिप्रतिक्रिया
यावन्मरणमप्येति तावदप्सु स्थिरो भव ॥ ४८ ॥
ताश्वमेधसञ्ज्ञश्च यत्फलं तव दुर्मते । तन्नष्टं तत्क्षणादेव घातितो हि द्विजो यदा

सच्छिद्रे च यथातोयं न तिष्ठति घटेऽण्वपि। तथैव सुकृतं पापे हीयते च प्र
तस्माच्च दैवसंयोगात्प्राप्तं स्वर्गादिकं च यैः। यथोक्तं तद्भवेत्तेषां धर्मिष्ठानां न
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शक्रो वचनमब्रवीत्। कुकर्मणा मदीयेनप्राप्तमेतन्न
अमरावतीमाशु त्वं गच्छदेवर्षिभिःसह। लोकानांकार्यसिद्ध्यर्थेदेवानां च

इन्द्रं कुरु महाभाग! यस्ते मनसि रोचते॥ ५३॥

यथा मृतस्तथाऽहं वै ब्रह्महत्यावृतोमहान्। रागद्वेषसमुत्थेन पापेनास्मिर्ण
तस्मात्त्वरान्विता यूयं देवराजानमाशु वै। कुर्वन्तु मदनुज्ञाताः सत्यं प्रति व
एवमुक्तास्तदा सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः। एत्यामरावतीं तूर्णं पुरन्दरविचे

कथयामासुरव्यग्राः शचीं प्रति यथा तथा॥ ५६॥

राज्यस्य हेतोः किं कार्यं विमृशन्तः परस्परम्॥ ५७॥

एवं विमृश्यमानानां देवानां तत्र नारदः। यदृच्छयागतस्तत्र देवर्षिरमित

उवाच पूजितो देवान् कस्माद्यूयं विचेतसः।

तेनोक्ताः कथयामासुः सर्वं शक्रस्य चेष्टितम्॥ ५९॥

गतमिन्द्रस्य चेन्द्रत्वमेनसा परमेण तु। ततः प्रोवाच तान्देवान्देवर्षिर्नारदो
यूयं देवाश्च सर्वज्ञास्तपसां विक्रमेण च। तस्मादिन्द्रोहिकर्तव्यो नहुषःसो
सोऽस्मिन्राष्ट्रे प्रतिष्ठाप्यस्त्वरितेनैवनिर्जराः। एकोनमश्वमेधानांशतं तेन मह

कृतमस्ति महाभागा नहुषेण च यज्वना॥ ६२॥

शच्या श्रुतं च तद्वाक्यं नारदस्य मुखोद्गतम्। गतान्तःपुरमव्यग्राबाष्पपूरितल

नारदस्य वचः श्रुत्वा सर्वे देवान्वमोदयन्॥ ६४॥

नहुषं राज्यमारोढुमैकपद्येन ते यदा। आनीतो हि तदा राजा नहुषो ह्यमरा
राज्यं दत्तं महेन्द्रस्य सुरैः सर्वैर्महर्षिभिः। तदाऽगस्त्यादयः सर्वे नहुषं पर्युपा

गन्धर्वाप्सरसो यक्षा विद्याधरमहोरगाः।

यक्षाः सुपर्णाः पतगा ये चान्ये स्वर्गवासिनः॥ ६७॥

तदा महोत्सवोजातो देवपुर्यां निरन्तरः। शंखतूर्यमृदङ्गानि नेदुर्दुन्दुभयः स

यकाश्च जगुस्तत्र तथा वाद्यानि वादकाः । नर्तकाननृतुस्तत्र तथा राज्यमहोत्सवे
अभिषिक्तस्तदा तत्र वृहस्पतिपुरोगमैः ॥ ७० ॥
ततो देवसूक्तैश्च यथावद् ग्रहपूजनम् । कृतवांश्चैवऋषिभिर्विद्वद्भिर्भावितात्मभिः
तथा च सर्वैः परिपूजितो महाराजा सुराणां नहुषस्तदानीम् ।
इन्द्रासने चेन्द्रसमानरूपः संस्तूयमानः परमेण वर्चसा ॥ ७२ ॥
सुगन्धदीपैश्च सुवाससा युतोऽलङ्कारभोगैः सुविराजिताङ्गः ।
बभौ तदानीं नहुषो मुनीन्द्रैः संस्तूयमानो हि तथाऽमरेन्द्रैः ॥ ७३ ॥
इति परमकलान्वितोऽसौ सुरमुनिवरगणैश्च पूज्यमानः ।
नहुषनृपवरोऽभवत्तदानीं हृदि महता हृच्छयेन तप्तः ॥ ७४ ॥

नहुष उवाच

द्राणी कथमद्यैव नायातिममसन्निधौ । तां चाह्वयतशीघ्रं भो मा विलम्बितुमर्हथ ॥
ुषस्यवचःश्रुत्वा वृहस्पतिरुदारधीः । शचीभवनमासाद्य उवाच च सविस्तरम् ॥
कस्य दुर्निमित्तेन ह्यानीतो नहुषोऽत्रवै । राज्यार्थेभामिनित्वंच अर्द्धासनगताभव ॥
ची प्रहस्य चोवाच वृहस्पतिमकल्मषम् । असौ न परिपूर्णोहियज्ञैः शक्रासनेस्थितः
एकोनमश्वमेधानां शतं कृतमनेन वै ॥ ७८ ॥
मान्नयोग्योमां प्राप्तुं तत्त्वतोहिविमृश्यताम् । यदिमांसाभिलाषोहिपरस्त्रियमचेतनः
अवाह्यवाहनेनैव अत्रागत्य लभेत माम् ॥ ७९ ॥
येति गत्वा त्वरितो वृहस्पतिरुवाचतम् । नहुषं कामसन्तप्तं शच्योक्तं च यथातथम्
येति मत्वा राजाऽसौ नहुषःकाममोहितः । विमृश्य परयाबुद्ध्याअवाह्यंकिंप्रशस्यते
स बुद्ध्या च चिरं स्मृत्वा ब्राह्मणाश्च तपस्विनः ।
अवाह्याश्च भवन्त्यस्मादात्मानं वाहयाम्यहम् ॥ ८२ ॥
भ्यांचतस्याःप्राप्त्यर्थमितिमेहृदिवर्तते। शिविकांचददौताभ्यांद्विजाभ्यांकाममोहितः
विश्यतदातस्यां शिविकायांसमाहितः । सर्पसर्पेति वचनाच्चोदयामास तौ तदा॥
गस्त्यः शिविकावाहीततःक्रुद्धोऽशपन्नृपम् । विप्राणामवमन्तात्वमुन्मत्तोऽजगरोभव

शापोक्तिमात्रतोराजा पतितोब्राह्मणस्यहि । तथैवाजगरो भूत्वा विप्रशापो
यथाहिनहुषोजातस्तथा सर्वेऽपिताद्दशाः । विप्राणामवमानेन पतन्ति निरये
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पदं प्राप्यविचक्षणैः । अप्रमत्तैर्नरैर्भाव्यमिहामुत्र च लभ्यं
तथैवनहुषःसर्पो ज़ातोऽरण्येमहाभये । एवं चैवाभवत्तत्र देवलोके ह्यराजकम्
तथैव ते सुराःसर्वे विस्मयाविष्टचेतसः । अहो वत महत्कष्टं प्राप्तं राज्ञा ह्यथ
न मर्त्यलोकोनस्वर्गो जातोह्यस्य दुरात्मनः । सतामवज्ञयासद्यः सुकृतं दग्धोऽस्य
याज्ञिको ह्यपरोलोके कथ्यतांच महामुने । तदोवाच महातेजा नारदो मुनिसत्त

यथातिं च महाभागा आनयध्वं त्वरान्विताः ।
देवदूतास्तु वै तूर्णं ययातिं द्रुतमानयन् ॥ ६३ ॥
विमानमारुह्य तदा महात्मा ययौ दिवं देवदूतैः समेतः ।
पुरस्कृतो देववरैस्तदानीं तथोरगैर्यक्षगन्धर्वसिद्धैः ॥ ६४ ॥

आयातःसोऽमरावत्यां त्रिदशैरभितोषितः । इन्द्रासने चोपविष्टोवभाषेच स
नारदेनैवमुक्तस्तु त्वं राजाह्याज्ञिकोह्यसि । सतामवज्ञया प्राप्तो नहुषो दन्दशू
ये प्राप्नुवन्तिधर्मिष्ठा दैवेनपरमं पदम् । प्राक्तनेनैव मूढास्ते न पश्यन्ति शुभा

पतन्ति नरके घोरे स्तब्धा वै नात्र संशयः । ॥ ६८ ॥

ययातिरुवाच

यैःकृतं चामितं पुण्यं तेषां विघ्नःप्रजायते । अल्पकत्वेन देवर्षे विद्धि सर्वं परं
महादानानि दत्तानि अन्नदानयुतानिच । गोदानानि बहून्येव भूमिदानयुता

तथैव सर्वाण्यपि चोत्तमानि दानानि चोक्तानि मनीषिभिर्यदा ।
एतानि सर्वाणि मया तदैव दत्तानि काले च महाविधानतः ॥ १०
यज्ञैरिष्टं वाजपेयातिरात्रैर्ज्योतिष्टोमै राजसूयादिभिश्च ।
शास्त्रप्रोक्तैरश्वमेधादिभिश्च यूपैरेषाऽलङ्कृता भूः समन्तात् ॥ १०२

देवदेवोजगन्नाथ इष्टो यज्ञैरनेकशः । गालवाय पुरा दत्ता कन्या त्वेषा च मा
पत्नीत्वेन चतुर्भ्यश्च दत्ताः कन्यामुनेतदा । गालवस्यगुरोरर्थे विश्वामित्रस्य धी

भूतान्यनेकानि सुकृतानि मयापुरा । महान्ति च बहून्येव तानि वक्तुं न पार्यते ॥
भूयः पृष्टः सर्वदेवैः स राजा कृतं सर्वं गुप्तमेवं यथार्थम् ।
विज्ञातुमिच्छाम यथार्थतोऽपि सर्वे वयं श्रोतुकामा ययाते ॥ १०६ ॥
नेनिशम्यदेवानां ययातिरमितद्युतिः । कथयामास तत्सर्वं पुण्यशेषं यथार्थतः ॥
थितं सर्वमेतच्चनिःशेषं व्यासवत्तदा । स्वपुण्यकथनेनैव ययातिरपतद्भुवि ॥ १०८ ॥
क्षणादेव सर्वेषां सुराणांतत्र पश्यताम् । एवमेव तथा जातमराजकमतन्द्रितम् ॥९॥
योनदृश्यते लोके याज्ञिको योहितत्रवै । शक्रासनेऽभिषेकार्थं श्रूयतांहिद्विजोत्तमाः१०॥
सर्वे सुराश्च ऋषयोऽथ महाफणीन्द्रा गन्धर्वयक्षखगचारणकिन्नराश्च ।
विद्याधराःसुरगणाप्सरसां गणाश्च चिन्तापराः समभवन्मनुजास्तथैव ॥ ११ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे शिवशास्त्रे देवेन्द्रस्वाराज्याभिषेकवृत्तान्ते देवेन्द्रस्य-ब्रह्महत्योपद्रुतौ नहुषशापययातिभूपपुण्यक्षयवृत्तान्तवर्णनं नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

बृहस्पतिम्प्रतिइन्द्राण्याःशापः

लोमश उवाच

ततः शची तान्प्रोवाचवाचंधर्मार्थसंयुताम् । मा चिंता क्रियतांदेवावृहस्पतिपुरोगमाः
गच्छत त्वरिताःसर्वे शक्रंद्रष्टुं विचक्षणाः । ब्रह्महत्याभिभूतोऽसौयत्रास्तेसुरसत्तमः
बहूनां कारणेनैव विश्वरूपो हि मंदधीः । हतस्तेन महेन्द्रेण सर्वैःसोऽपि निराकृतः
तस्मात्सर्वैर्भवद्भिश्च गंतव्यं यत्र स प्रभुः । अवज्ञा हि कृता पूर्वं महेन्द्रेण तवानघ ॥
अवज्ञामात्रक्षुब्धेन त्वया शप्तः पुरंदरः । तथैव शापितश्चासि मया त्वं हि वृहस्पते

निरस्तोऽपि हि तस्मात्त्वमवसानपरो भव ॥ ६ ॥
यथा मदर्थमानीतौ शक्रे जीवति तावुभौ । त्वयि जीवति भो ब्रह्मन्कार्यंतव
कोऽपिसौभाग्यवाँल्लोकेतवक्षेत्रे जनिष्यति । पुत्रं विख्यातनामानमत्र नैवा
गच्छ शीघ्रंसुरैसार्द्धंशक्रमानय मा चिरम् । प्रयासि त्वरितो नो चेत्पुनःशापं
शच्योक्तं वचनं श्रुत्वा सुरैः सार्द्धंजगाम सः । पुरंदरं गताःसर्वे ब्रह्महत्यामि
सरस्वतीरमासाद्य ते शक्रं चाभ्यवादयन् ।
दृष्टाः शक्रेण ते सर्वे तदा ह्यप्सु स्थितेन वै ॥ ११ ॥
उवाच देवान्देवेशः कस्माद्यूयमिहागताः । अहं हि पातकग्रस्तो ब्रह्महत्यापरि
अप्सु तिष्ठामि भो देवा एकाकी तपसान्वितः ॥ १२ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सर्वे देवाः शतक्रतोः । ऊचुर्विह्वलिता एनं देवराजान
एतादृशं न वाच्यं ते परेषामुपकारतः । कृतं त्वयैव यत्कर्म विश्वरूपवधा
विश्वकर्मसुतेनैव कृतं याजनमद्भुतम् । येन देवाः क्षयं यांति ऋषयोऽपि म
तस्माद्धतस्त्वया देव परेषामुपकारतः । ततः सर्वे वयं प्राप्तास्त्वां नेतुममरा
एवं विवदमानेषुदेवेषु च तदाऽब्रवीत् । ब्रह्महत्या त्वरायुक्ता देवेन्द्रं वरयाम्य
तदा बृहस्पतिर्वाक्यमुवाच सहसैव तु ॥ १८ ॥

बृहस्पतिरुवाच

वासार्थं च करिष्यामः स्थानानि तव सांप्रतम् ।
प्रसांत्विता तदा हत्या देवैस्तत्कार्यगौरवात् ॥ १९ ॥
विमृश्य सर्वे विभजुश्चतुर्द्धा हत्यां सुरास्ते ऋषयो मनीषिणः ।
यक्षाः पिशाचा उरगाः पतंगास्तथा च सर्वे सुरसिद्धचारणाः ॥२०
आदौ क्षमांप्रतितदाऊचुःसर्वे दिवौकसः । हे क्षमेंऽशस्त्वयाग्राह्योहत्यायाःकार्यं
सुराणां तद्वचः श्रुत्वा धरित्री कंपिताऽवदत् ।
कथं ग्राह्यो मया ह्यंशो हत्यायास्तद्विमृश्यताम् ॥ २२ ॥
अहं हि सर्वभूतानां धात्रीविश्वं धराम्यहम् । अपवित्राभविष्यामिएनसा संवृता

यास्तद्वचनंश्रुत्वाबृहस्पतिरुवाचतम् । मामैषीश्चारुसर्वांगिनिष्पापासिनचान्यथा
यदुकुलेश्रीमान्वासुदेवोभविष्यति । तदातत्पदविन्यासान्निष्पापा त्वं भविष्यसि
कुरु वाक्यं त्वमस्माकं नात्र कार्या विचारणा ॥ २६ ॥
क्ता पृथिवी तेषां निष्पापासाकरोद्वचः । ततोवृक्षान्समाहूय सर्वे देवाऽब्रुवन्वचः
ांशो हि ग्रहीतव्यो भवद्भिः कार्यसिद्धये । एवमुक्ताऽब्रुवन्वृक्षादेवान्सर्वेसमागताः
सर्वे तथाभूतास्तापसानांफलप्रदाः । तदा हत्यान्विताः सर्वे भविष्यंतितपस्विनः
पापिनो हि महाभागास्तस्मात्सर्वं विमृश्यताम् ।
तदा पुरोधसा चोक्ताः सर्वे वृक्षाः समागताः ॥ ३० ॥
चिंता क्रियतां सर्वैः प्रसादाच्चशतक्रतोः । छेदिताश्चैव सर्वे वै ह्यनेकांशत्वमागताः
विटपिनो नित्यं यूयं सर्वे भविष्यथ । इत्युक्तास्तेतदासर्वेऽगृह्णन्हत्यांविभागशः
ह्यपः समाहूय ऊचुः सर्वे दिवौकसः । अद्भिश्च गृह्यतामद्य हत्यांशः कार्यसिद्धये
ह्यापोमिलित्वाथऊचुःसर्वाः पुरोधसम् । यानिकानिचपापानितथादुश्चरितानिच
स्मत्संपर्कसंबंधात्स्नानशौचाशनादिभिः । पुनंति प्राणिनः सर्वे पापेनपरिवेष्टिताः
सां वचनमाकर्ण्य बृहस्पतिरुवाच ह । मा भयं क्रियतामाप एनसा दुस्तरेण हि ॥
पः पुनंतु सर्वेषां चराचरनिवासिनाम् । तदा स्त्रियः समाहूय बृहस्पतिरुवाच ह ॥
वैव ग्राह्यो हत्यांशः सर्वकायार्थसिद्धये । निशम्य तद्गुरोर्वाक्यमूचुःसर्वाश्चयोषितः
पमाचरते योषा तेन पापेन नान्यथा । लिप्यंते बहवः पक्षा इति वेदानुशासनम् ॥
श्रुतमस्ति न ते किंचिद्धे पुरोधो विमृश्यताम् ।
योषिद्भिः प्रोच्यमानोऽपि उवाचाथ बृहस्पतिः ॥ ४० ॥
भयंक्रियतांसर्वाःपापादस्मात्सुलोचनाः । भविष्याणांतथान्येषांभविष्यतिफलप्रदः
हत्यांशो यो हि सर्वासां यथाकामित्वमेव च ॥ ४१ ॥
मंशाश्चहत्यायाश्चत्वारः कल्पिताःसुरैः । निवासमकरोत्सद्यस्तेषुहत्याद्विजोत्तमाः
ष्पापो हि यदा जातो महेंद्रो ह्यभिषेचितः । देवपुर्यां सुरगणैस्तथैव ऋषिभिःसह
शच्या समेतो हि तदा पुरंदरो बभूव विश्वाधिपतिर्महात्मा ।

देवैः समेतो हि महानुभावैर्मुनीश्वरैः सिद्धगणैस्तदानीम् ॥ ४४ ॥
तदाऽग्नयः शोभना वायवश्च सर्वे ग्रहाः सुप्रभाः शांतियुक्ताः ।
जाताः सद्यः पृथिवी शोभमाना तथाऽद्रयो मणिप्रभवा बभूवुः ॥
प्रसन्नानि तथा ह्यासन्मनांसि च मनस्विनाम् ॥ ४६ ॥
नद्यश्चामृतवाहिन्यो वृक्षा ह्यासन्सदाफलाः । अकृष्टपच्यौषधयो बभूवुश्चामृ
ऐकपद्येन सर्वेषामिंद्रलोकनिवासिनाम् । बभूव परमोत्साहो महामोदकरस्तथ

लोमश उवाच

एतस्मिन्नंतरे त्वष्टा दृष्ट्वा चेन्द्रमहोत्सवम् । बभूव रुषितोऽतीव पुत्रशोकप्र
जगाम निर्वेदपरस्तपस्तप्तुं सुदारुणम् । तपसा तेन संतुष्टो ब्रह्मा लोकपिता
त्वष्टारमब्रवीत्तुष्टो वरं वरय सुव्रत । तदा वव्रे वरं त्वष्टा सर्वलोकभया
वरं पुत्रो हि दातव्यो देवानां हि भयावहः ॥ ५१ ॥
तथेति च वरो दत्तो ब्रह्मणा परमेष्ठिना । वरदानात्सद्य एव बभूव पुरुषस्तदा
वृत्रनामांकितस्तत्र दैत्यो हि परमाद्भुतः । धनुषां शतमात्रं हि प्रत्यहं ववृधे
पातालान्निर्गतादैत्याये पुराऽमृतमंथने । घातिताःसुरसङ्घैश्चभृगुणाजीविताः
सर्वं महीतलं व्याप्तं तेनैकेन महात्मना ॥ ५५ ॥
तदा सर्वेऽपि ऋषयोवध्यमानास्तपस्विनः । ब्रह्माणंत्वरिताः सर्वेऊचुर्व्यसन
तथा चेंद्रादयो देवा गंधर्वाः समरुद्गणाः । ब्रह्मणा कथितंसर्वंत्वष्टुश्चैतच्चिकी
भवद्वधार्थंजनितस्तपसा परमेण तु । वृत्रोनाम महातेजाः सर्वदैत्याधिपो म
तथापि यत्नः क्रियतांयथावध्यो भवेदसौ । निशम्य ब्रह्मणोवाक्यमूचुर्देवाःसव

देवा ऊचुः

यदाइन्द्रोहिहत्यायाविमुक्तःस्थापितोदिवि । तदास्माभिरकार्यं वै कृतमस्तिदु
शस्त्राण्यस्त्राण्यनेकानि संक्षिप्तानिह्यबुद्धितः । दधीचस्याश्रमेब्रह्मकिन्ककार्यं क
तच्छ्रुत्वा प्रहसन्वाक्यं देवान्ब्रह्मा तदाऽब्रवीत् ।
चिरं स्थितानि विज्ञायागच्छध्वं तानि वै सुराः ॥ ६२ ॥

गत्वा देवास्तदा सर्वे नापश्यन्स्वं स्वमायुधम् ।
पप्रच्छुश्च दधीचिं ते सोऽवादीन्नैव वेद्म्यहम् ॥ ६३ ॥
पुनर्ब्रह्माणमागत्य ऊचुः सर्वे मुनेर्वचः ॥ ६४ ॥
ह्मोवाच तदा देवान्सर्वेषांकार्यसिद्धये । तस्यास्थीन्येव याचध्वंप्रदास्यति न संशयः
तच्छ्रुत्वा ब्रह्मणो वाक्यं शक्रो वचन मब्रवीत् ॥ ६६ ॥
श्वरूपो हतो देव देवानां कार्यसिद्धये । एक एव तदा ब्रह्मन्पापिष्ठोऽहं कृतः सुरैः
था पुरोधसा चैव निःश्रीकस्तत्क्षणात्कृतः । दिष्ट्यापरमयाचाहंप्रविष्टोनिजमंदिरम्
दधीचं घातयित्वा वै तस्यास्थीनि बहून्यपि ।
अस्त्राणि तानि भगवन्कृतानि ह्यशुभानि वै ॥ ६९ ॥
वष्ट्रा हि जनितो यो वै वृत्रोनामैष दैत्यराट् । कथं तं घातयाम्येवंसततंपापभीरुणा
शक्रेणोक्तं निशम्याथ ब्रह्मा वाक्यमुवाच ह ॥ ७० ॥
मर्थशास्त्रपरेणैव विधिना तमबोधयत् । आततायिनमायांतं ब्राह्मणं वा तपस्विनम्
हंतुकामं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥ ७१ ॥

इन्द्र उवाच

दधीचस्य वधाद्ब्रह्मन्नहं भीतो न संशयः । तस्माद्ब्रह्मवधात्सत्यंमहदेनोभविष्यति
अतो न कार्यमस्माभिर्ब्राह्मणानां तु हेलनम् ।
हेलनाद्बहवो दोषा भविष्यंति न चान्यथा ॥ ७३ ॥
अदृष्टं परमं धर्म्यं विधिना परमेण हि । कर्तव्यं मनसा चैवं पुरुषेण विजानता ॥
निःस्पृहं तस्य तद्वाक्यं श्रुत्वा ब्रह्मा ह्युवाच तम् ।
शक्र ! स्वबुद्ध्या वर्तस्व दधीचिं गच्छ सत्वरम् ॥ ७५ ॥
याचस्व तस्यचास्थीनिदधीचेःकार्यगौरवात् । गुरुणा सहितःशक्रोदेवैःसहसमन्वितः
तथेति गत्वा ते सर्वे दधीचस्याश्रमं शुभम् । नानासत्त्वसमायुक्तं वैरभावविवर्जितम्
मार्जारमूषकाश्चैव परस्परमुदान्विताः । ऐकपद्येन सिंहाश्च गजिन्यः कलभैः सह ॥
तथाजात्यश्चविविधाःक्रीडायुक्ताःपरस्परम् । नकुलैः सहसर्पाश्चक्रीडायुक्ताःपरस्परम्

एवंविधान्यनेकानि ह्याश्चर्याणि तदाश्रमे। पश्यंतो विबुधाः सर्वे विस्मयं प
अथासने मुनिश्रेष्ठं ददृशुः परमास्थितम्। तेजसापरमेणैव भ्राजमानं यथा
विभावसुं द्वितीयं वा सुवर्चासहितंतदा। यथाब्रह्मा हि सावित्र्यातथासौमुनि
तं प्रणम्य ततो देवा वचनं चेदमब्रुवन्। त्वं दाता त्रिषु लोकेषुत्वत्सकाशमि
निशम्य वचनं तेषां देवानां मुनिरब्रवीत्। किमर्थमागताः सर्वे वदध्वं तत्सु

प्रयच्छामि न संदेहो नान्यथा मम भाषितम्।

तदोचुः सहिताः सर्वे दधीचिं स्वार्थकामुकाः॥ ८५॥

भयभीता वयं विप्र भवद्दर्शनकांक्षिणः। त्रातारं त्वां समाकर्ण्यब्रह्मणानोदित

सम्प्राप्ता विद्धि तत्सर्वं दातुमर्होऽथ सुव्रत !॥ ८७॥

निशम्य वचनं तेषां किं दातव्यं तदुच्यताम्॥ ८८॥

ततो देवाब्रुवन्विप्र दैत्यानां निधनाय नः। शस्त्रनिर्माणकार्यार्थं तवास्थीनिप्र
प्रहस्योवाच विप्रर्षिस्तिष्ठध्वं क्षणमेव हि। स्वयमेव त्वहं देवास्त्यक्ष्याम्यद्यकले
इत्युक्त्वा तानथो पत्नींसमाहूय सुवर्चसम्। प्रोवाचसमहातेजाःशृणुदेविशुचि
अस्थ्यर्थं याचितो देवैस्त्यजाम्येतत्कलेवरम्। ब्रह्मलोकं व्रजाम्यद्य परमेणसमा

मयि याते ब्रह्मलोकं त्वं स्वधर्मेण तत्र माम्।

प्राप्स्यस्येव न संदेहो वृथा चिन्तां च मा कृथाः॥ ९३॥

इत्युक्त्वा तां स्वपत्नींसम्प्रेषयामासचाश्रमम्। ततोदेवाग्रतोविप्रःसमाधिमगम
समाधिना परेणैव विसृज्य स्वं कलेवरम्। ब्रह्मलोकं गतः सद्यः पुनर्नाचतंते य

दधीचिनामा मुनिवृन्दवर्यः शिवप्रियः शिवदीक्षाभियुक्तः।
परोपकारार्थमिदं कलेवरं शीघ्रं स विप्रोऽत्यजदात्मना तदा॥ ९६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर
केदारखण्डे देवैरस्थिकृताऽभ्यर्थितस्यदधीचेर्योगेनस्वदेहविसर्जनंनामषोडशोऽध्या

———

सप्तदशोऽध्यायः

दधीचिशरीरत्यागानन्तरं तत्पत्न्या देवान्प्रतिशापः

लोमश उवाच

ः सर्वे सुरगणा दृष्ट्वा तं विलयं गतम् । चिंतयंतः सुरगणाः कथं च विदधामहे
रभिं चाहूयित्वाथ तदोवाच शचीपतिः । कलेवरं दधीचस्य लिह्यास्त्वंवचनान्मम
ति च वचोमत्वातत्क्षणादेवलिह्य तत् । निर्मांसं च कृतंसद्यस्तयाधेन्वाकलेवरम्
गृहुस्तानिचास्थीनिचक्रुःशस्त्राणि वै सुराः । तस्य वंशोद्भवंवज्रंशिरोब्रह्मशिरस्तथा

अन्यानि चास्थीनि बहूनि तस्य ऋषेस्तदानीं जगृहुः सुराश्च ।
तथा शिराजालमयांश्च पाशांश्चक्रुः सुरा वैरयुताश्च दैत्यान् ॥ ५ ॥

स्त्राणि कृत्वा ते सर्वे महाबलपराक्रमाः । ययुर्देवास्त्वरायुक्ता वृत्रघातनतत्पराः

ततः सुवर्चाश्च दधीचिपत्नी या प्रेषिता सा सुरकार्यसिद्धये ।
व्यलोकयत्तत्र समेत्य सर्वं मृतं पतिं देहमथो ददर्श तम् ॥ ७ ॥
ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं सुराणां कृत्यं तदानीं च चुकोप साध्वी ।
ददौ सती शापमतीव रुष्टा तदा सुवर्चा ऋषिवर्यपत्नी ॥ ८ ॥
अहो सुरा दुष्टतराश्च सर्वे सर्वे ह्यशक्ताश्च तथैव लुब्धाः ।
तस्माच्च सर्वेऽप्रजसो भवंतु दिवौकसोऽद्यप्रभृतीत्युवाच सा ॥ ९ ॥

वं शापं ददौ तेषां सुराणां सा तपस्विनी । प्रविश्याश्वत्थमूलेसास्वोदरंदारयत्तदा
र्गतो जठराद्गर्भो दधीचस्य महात्मनः । साक्षाद्रुद्रावतारोऽसौ पिप्पलादोमहाप्रभः
हस्य जननी गर्भमुवाच रुषितेक्षणा । सुवर्चा तं पिप्पलादं चिरं तिष्ठास्य सन्निधौ
श्वत्थस्य महाभाग सर्वेषां सफलो भवेः । तथैवभाषमाणा सा सुवर्चा तनयं प्रति

पतिमन्वगमत्साध्वी परमेण समाधिना ॥ १३ ॥
एवं दधीचपत्नी सा पतिना स्वर्गमाव्रजत् ॥ १४ ॥

ते देवाः कृतशस्त्रास्त्रादैत्यान्प्रतिसमुत्सुकाः । आजग्मुश्चेंद्रमुख्यास्तेमहाबल

गुरुं पुरस्कृत्य तदाज्ञया ते गणाः सुराणां बहवस्तदानीम् ।
भुवं समागत्य च मध्यदेशमूचुश्च सर्वे परमास्त्रयुक्ताः ॥ १६ ॥

समागतानुपसृत्य देवांश्चेंद्रपुरोगमान् । ययौ वृत्रो महादैत्यो दैत्यवृन्दस
यथा मेरोश्च शिखरं परिपूर्णं प्रदृश्यते । तथा सोऽपि महातेजाविश्वकर्मसुत
तेन दृष्टो महेन्द्रश्च महेन्द्रेण महासुरः । देवानां दानवानां च दर्शनं च मह
तदा ते बद्धवैराश्च देवदैत्याः परस्परम् । अन्योन्यमभिसंरब्धा जगर्जुः परम
वादित्राणि च भीमानिवाद्यमानानि सर्वशः । श्रूयन्तेऽत्र गभीराणिसुरासुर
वाद्यमानेषु तूर्येषु ते सर्वे त्वरयान्विताः । अनेकः शस्त्रसंघातैर्जघ्नुरन्योन्य
तदा देवासुरे युद्धे त्रैलोक्यं सचराचरम् । भयेन महता युक्तं बभूव गतचे

छेदिताः स्फोटिताश्चैव केचिच्छस्त्रैर्द्विधा कृताः ।
नाराचैश्च तथा केचिच्छस्त्रास्त्रैः शकलीकृताः ॥ २४ ॥

भल्लैश्चैरुर्हताः केचिद्व्यंगभूता दिवौकसः । रश्मयो मेघसंभूताः प्रकाशंतेनभ
शिरांसि पतितान्येव बहूनि च नभस्तलात् । नक्षत्राणीव च यथामहाप्रलय
प्रवर्तितं मध्यदेशे सर्वभूतक्षयावहम् । शक्रेण सह संग्रामं चकार नमुचिस्त
वज्रेण जघ्ने तरसा नमुचिं देवराट् स्वयम् । न रोमैकं च त्रुटितं नमुचेस्सु
वज्रेणापि तदा सर्वे विस्मयं परमं गताः । असुराश्च सुराश्चैव महेन्द्रो व्रीडि
गदया नमुचिं जघ्ने गदा सापि विचूर्णिता । नमुचेरङ्गलग्नाऽपि पपात वसुध
तथा शूलेन महता तं जघान पुरंदरः । तच्छूलं शतधा चूर्णं नमुचेरङ्गमाश्रि
एवं तं विविधैः शस्त्रैराजघान सुरारिहा । प्रहस्यमानो नमुचिर्न जघान
तूष्णींभूतस्तदा चेन्द्रश्चिंतयापरयायुतः । किं कार्यंकिमकार्यं वा इतीन्द्रोनावि
एतस्मिन्नन्तरे तत्र महायुद्धे महाभये । जाता नभोगता वाणी इन्द्रमुद्दिश्य

जह्येनमद्याशु महेंद्र ! दैत्यं दिवौकसां घोरतरं भयावहम् ।
फेनेन चैवाशु महासुरेन्द्रमपां समीपेन दुरासदेन ॥ ३५ ॥

अन्येन शस्त्रेण च आहतोऽसौ वध्यः कदाचिन्न भवत्ययन्तु ।
तस्माच्च देवेश ! वधार्थमस्य कुरु प्रयत्नं नमुचेर्दुरात्मनः ॥ ३६ ॥
निशम्य वाचं परमार्थयुक्तां दैवीं सदानंदकरीं शुभावहाम् ।
चक्रे परं यत्नवतां वरिष्ठो गत्वोदधेः पारमनन्तवीर्यः ॥ ३७ ॥
ागतं समीक्ष्याथ नमुचिः क्रोधमूर्च्छितः । हत्वा शूलेन देवेन्द्रं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥
ुद्रस्य तटः कस्मात्सेवितःसुरसत्तम । विहाय रणभूमिं च त्यक्तशस्त्रोऽभवद्भवान्
त्वदीयेनैव वज्रेण किं कृतं मम दुर्मते !॥ ४० ॥
ान्यानि च शस्त्राणि अस्त्राणि सुबहूनि च । गृहीतानि पुरामंद हंतुंमामेवचाधुना
ं करिष्यसिमांहंतुंयुद्धायसमुपस्थितः । केन शस्त्रेण रे मंद योद्धुमिच्छसिसंयुगे
ां घातयामि चाद्यैवयदितिष्ठसि संयुगे । नो चेद्गच्छ मया मुक्तश्चिरं जीवसुखीभव
ं स गर्वितं तस्य वाक्यमाहवशोभिनः । श्रुत्वा महेंद्रोऽपि रुषा जगृहे फेनमद्भुतम्
फेनं करस्थं दृष्ट्वा तु असुरा जहसुस्तदा ॥ ४५ ॥
यं गतानि चास्त्राणि फेनेनैव पुरंदरः । हंतुमिच्छति मामद्य शतक्रतुरुदारधीः ॥
ं प्रहस्य नमुचिरवज्ञाय पुरंदरम् । सावज्ञं पुरतस्तस्थौ नमुचिर्दैत्यपुंगवः ॥ ४७ ॥
तदैव तं स फेनेन शीघ्रमिन्द्रो जघान ह ॥ ४८ ॥
े तु नमुचौदेवाः सर्वे चैव मुदान्विताः । साधुसाध्विति शब्देनऋषयश्चाभ्यपूजयन्
ा सर्वे जयंप्राप्ताहत्वानमुचिमाहवे । दैत्यास्तेकोपसंरब्धायोद्धुकामामुदान्विताः
ः प्रववृते युद्धं देवानां दानवैः सह । शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैः परस्परवधैषिभिः ॥
ा ते ह्यसुरा देवैः पातिताश्च पुनःपुनः । तदा वृत्रो महातेजाः शतक्रतुमुपाव्रजत् ॥
ं दृष्ट्वा तदा सर्वे ससुरासुरमानवाः । भयेन महताविष्टाः पतिता भुवि शेरते ॥
ं भीतेषु सर्वेषु सुरसिद्धेषु वै तदा । इन्द्रश्चैरावणारूढो वज्रपाणिः प्रतापवान् ॥
त्रेण ध्रियमाणेन चामरैण विराजितः । तदा सर्वैः समेतो हि लोकपालैः प्रतापितः
ं विलोक्य ते सर्वे लोकपाला महेश्वराः । भयभीताश्च ते सर्वे शिवं शरणमन्वयुः
नसाचिन्तयन्सर्वे शंकरं लोकशंकरम् । लिंगं संपूज्य विधिवन्महेन्द्रो जयकामुकः

गुरुणा विदितः सद्यो विश्वासेन परेण हि । उवाच च तदा शक्रं बृहस्पतिरु

बृहस्पतिरुवाच

कार्तिके शुक्लपक्षे तु मंदवारे त्रयोदशी । समग्रो यदि लभ्येत सर्वप्राप्त्यै न
तस्यां प्रदोषसमये लिंगरूपी सदाशिवः । पूजनीयो हि देवेंद्र सर्वकामार्थसि
स्नात्वा मध्याह्नसमयेतिलामलकसंयुतम् । शिवस्य चार्चनंकुर्याद्गंधपुष्पफला
पश्चात्प्रदोषवेलायां स्थावरंलिंगमर्च्चयेत् । स्वयंभुस्थापितं चापिपौरुषेयम
जने वा विजने वापि अरण्ये वा तपोवने । तल्लिंगमर्च्चयेद्भक्त्या प्रदोषे तु विशे

ग्रामाद् बहिः स्थितं लिंगं ग्रामाच्छतगुणं फलम् ।
बाह्याच्छतगुणं पुण्यमरण्ये लिंगमद्भुतम् ॥ ६४ ॥

आरण्याच्छतगुणं पुण्यमर्चितंपार्वतंतथा । पार्वताच्चैव लिंगाच्चफलंचायुतसं

तपोवनाश्रितं लिंगं पूजितं वा महाफलम् ॥ ६५ ॥

तस्मादेतद्विभागेन शिवपूजनार्चनं बुधैः । कर्तव्यं निपुणत्वेन तीर्थस्नानादिकं
पंचपिंडान्समुद्धृत्य स्नानमात्रेण शोभनम् । कूपे स्नानं प्रकुर्वीत उद्धृतेन वि
तडागे दश पिंडांश्च उद्धृत्यस्नानमाचरेत् । नदीस्नानंविशिष्टं च महानद्यांवि
सर्वेषामपि तीर्थानां गंगास्नानं विशिष्यते । देवखाते च तत्तुल्यं प्रशस्तंस्नानम
प्रदीपानां सहस्रेण दीपनीयः सदाशिवः । तथा दीपशतेनापि द्वात्रिंशद्दीपमार
घृतेन दीपयेद्दीपाञ्छिवस्य परितुष्टये । तथा फलैश्च दीपैश्च नैवेद्यैर्गंधधूपकैः ॥
उपचारैः षोडशभिर्लिंगरूपी सदाशिवः । पूज्यः प्रदोषवेलायां नृभिः सर्वार्थि
प्रदक्षिणं प्रकुर्वीत शतमष्टोत्तरं तथा । नमस्कारान्प्रकुर्वीत तावत्संख्यान्प्रयत
प्रदक्षिणनमस्कारैः पूजनीयः सदाशिवः । नाम्नां शतेन रुद्रोऽसौस्तवनीयो यथा
नमो रुद्राय भीमाय नीलकण्ठाय वेधसे । कपर्दिने सुरेशाय व्योमकेशाय वै न
वृषध्वजाय सोमाय नीलकण्ठाय वै नमः । दिगंबराय भर्गाय उमाकांतकप
तपोमयाय व्याप्ताय शिपिविष्टाय वै नमः । व्यालप्रियाय व्यालायव्यालानांपत
महीधराय व्याघ्राय पशूनां पतये नमः । त्रिपुरांतकसिंहाय शार्दूलोग्ररवाय व

[म]ीनाय मीननाथाय सिद्धाय परमेष्ठिने। कामांतकाय बुद्धायबुद्धीनां पतये नमः ॥
[क]पोताय विशिष्टाय शिष्टाय परमात्मने। वेदाय वेदबीजाय देवगुह्याय वै नमः ॥
[द]ीर्घाय दीर्घदीर्घाय दीर्घार्घाय महाय च। नमो जगत्प्रतिष्ठाय व्योमरूपाय वै नमः
[ग]जासुरविनाशाय ह्यंधकासुरभेदिने। नीललोहितशुक्लाय चण्डमुण्डप्रियाय च ॥
[भ]क्तिप्रियाय देवाय ज्ञानज्ञानाव्ययाय च। महेशाय नमस्तुभ्यं महादेवहराय च ॥
[त्रि]नेत्राय त्रिवेदाय वेदांगाय नमोनमः। अर्थाय अर्थरूपाय परमार्थाय वै नमः ॥
[वि]श्वरूपाय विश्वाय विश्वनाथाय वै नमः। शंकराय च कालाय कालावयवरूपिणे
अरूपाय च सूक्ष्माय सूक्ष्मसूक्ष्माय वै नमः।
श्मशानवासिने तुभ्यं नमस्ते कृत्तिवाससे ॥ ८६ ॥
[श]शांकशेखरायैव रुद्रविश्वाश्रयाय च। दुर्गाय दुर्गसाराय दुर्गावयवसाक्षिणे ॥८७॥
[लि]ङ्गरूपाय लिंगाय लिंगानां पतये नमः। नमः प्रणवरूपाय प्रणवार्थाय वै नमः ॥
नमोनमः कारणकारणाय ते मृत्युंजयायात्मभवस्वरूपिणे।
त्रियम्बकायासितकंठ भर्ग ! गौरीपते ! सकलमंगलहेतवे नमः ॥ ८९ ॥

बृहस्पतिरुवाच

[स]हस्रांशतं महेशस्य उच्चार्यं व्रतिना तदा। प्रदक्षिणनमस्कारैरेतत्संख्यैः प्रयत्नतः ॥
कार्यं प्रदोषसमये तुष्ट्यर्थं शंकरस्य च ॥ ९० ॥
[ए]वं व्रतं समुद्दिष्टं तव शक्र ! महामते। शीघ्रं कुरु महाभाग पश्चाद्युद्धं कुरु प्रभो ॥
शंभो प्रसादात्सर्वं ते भविष्यति जयादिकम् ॥ ९२ ॥
[वृ]त्रो ह्ययं महातेजा दैतेयस्तपसापुरा। शिवं प्रसादयामास पर्वते गंधमादने ॥९३
नाम्ना चित्ररथो राजा वनं चित्ररथस्य तत्।
एतज्जानीहि भो इन्द्र शिवपुर्याः समीपतः ॥ ९४ ॥
[त]स्मिन्वने महाभाग न संति च षडूर्मयः। तस्माच्चैत्ररथं नाम वनं परममंगलम् ॥
तस्य राज्ञः शिवेनैव दत्तं यानं महाद्भुतम् ॥ ९५ ॥
कामगं किंकिणीयुक्तं सिद्धचारणसेवितम्। गंधर्वैरप्सरोयक्षैः किंनरैरुपशोभितम्

ततस्तेनैव यानेन पृथिवीं पर्यटन्पुरा। तथा गिरीशमुख्यांश्च द्वीपांश्च विविधां
एकदा पर्यटन्राजा नाम्ना चित्ररथो महान्। कैलाशमागतस्तत्र स ददर्श
सभातलं महेशस्य गणैश्चैव विराजितम्। अर्द्धांगलग्नया देव्या शोभितं च
निरीक्ष्य देव्या सहितं सदाशिवं देव्यान्वितं वाक्यमिदं बभाषे।
वयं च शंभो! विषयान्विताश्च मंत्र्यादयः स्त्रीजिताश्चापि चान्ये।
न लोकमध्ये वयमेव चाज्ञाः स्त्रीसेवनं लज्जया नैव कुर्मः ॥ १०१ ॥
एतद्वाक्यं निशम्याथ महेशः प्रहसन्निव। उवाच न्यायसंयुक्तं सर्वेषामपि
भयं लोकापवादाच्च सर्वेषामपि नान्यथा। ग्रासितं कालकूटं च सर्वेषामपि
तथापि उपहासो मे कृतो राज्ञा हि दुर्जरः। तं चित्ररथमाहूयगिरिजा वाक्यम

गिरिजोवाच

रे दुरात्मन्कथं त्वञ्च शंकरश्चोपहासितः। मया सहैव मंदात्मन्द्रक्ष्यसेकर्मणः

साधूनां समचित्तानामुपहासं करोति यः।
देवो वाप्यथवा मर्त्यः स विज्ञेयोऽधमाधमः ॥ १०६ ॥
एते मुनींद्राश्च महानुभावस्तथा ह्यमी ऋषयो वेदगर्भाः।
तथैव सर्वे सनकादयो ह्यमी अज्ञाश्च सर्वे शिवमर्चयन्ते ?॥ १०७ ॥
रे मूढ सर्वेषु जनेष्वभिज्ञस्त्वमेक एवाद्य न चापरे जनाः।
तस्मादभिज्ञं हि करोमि दैत्यं देवैर्द्विजैश्चापि वहिष्कृतं त्वाम् ॥ १

एवं शप्तस्तया देव्या भवान्या राजसत्तमः। राजा चित्ररथः सद्यः पपातसहसा
आसुरीं योनिमासाद्य वृत्रोनाम्नाऽभवत्तदा। तपसा परमेणैवत्वष्ट्रासंयोजितः
तपसा तेन महता अजेयो वृत्र उच्यते। तस्माच्छंभुं समभ्यर्च्य प्रदोषेविधिना
जहि वृत्रं महादैत्यं देवानां कार्यसिद्धये। गुरोस्तद्वचनं श्रुत्वा उवाचाथ शत

सोद्यापनविधिं ब्रूहि प्रदोषस्य च मेऽधुना ॥ ११२ ॥

बृहस्पतिरुवाच

कार्तिके मासि संप्राप्ते मंदवारे त्रयोदशी। संपूर्तिस्तु भवेत्तत्र संपूर्णव्रतसि

वृषभो राजतः कार्यः पृष्ठे तस्य सुपीठकम् । तस्योपरिन्यसेद्देवमुमाकांतंत्रिलोचनम्
पंचवक्त्रं दशभुजमर्द्धाङ्के गिरिजां सतीम् । एवं चोमामहेशं च सौवर्णं कारयेद्बुधः
सवृषं ताम्रपत्रेच वस्त्रेण परिगुंठिते । स्थापयित्वोमया सार्द्धं नानाभोगसमन्वितम्
विधिना जागरं कुर्याद्रात्रौ श्रद्धासमन्वितः । पंचामृतेन स्नपनं कार्यमादौप्रयत्नतः ॥
गोक्षीरस्नानं देवेश ! गोक्षीरेण मयाकृतम् । स्नपनं देवदेवेश गृहाण परमेश्वर !॥
दध्ना चैव मयादेव स्नपनं क्रियतेऽधुना । गृहाण च मया दत्तं सुप्रसन्नो भवाद्य वै ॥
सर्पिषा च मया देव स्नपनं क्रियतेऽधुना । गृहाण श्रद्धयादत्तं तव प्रीत्यर्थमेव च ॥
इदं मधु मया दत्तं तव प्रीत्यर्थमेव च । गृहाण त्वं हि देवेश मम शांतिप्रदो भव ॥
सितया देवदेवेश स्नपनं क्रियतेऽधुना । गृहाण श्रद्धया दत्तां सुप्रसन्नो भव प्रभो ॥
एवं पंचामृतेनैव स्नपनीयो वृषध्वजः । पश्चादर्घ्यं प्रदातव्यं ताम्रपात्रेणधीमता ॥
अनेनैव च मंत्रेण उमाकान्तस्य तुष्टये ॥ १२३ ॥
अर्घ्योऽसि त्वमुमाकान्त अर्घेणानेन वै प्रभो । गृहाणत्वं मया दत्तं प्रसन्नो भवशंकर
मया दत्तं च ते पाद्यं पुष्पगन्धसमन्वितम् । गृहाण देवदेवेश प्रसन्नो वरदो भव ॥
विष्टरं विष्टरेणैव मया दत्तं च वै प्रभो । शांत्यर्थं तव देवेश वरदो भव मे सदा ॥
आचमनीयं मया दत्तं तव विश्वेश्वर प्रभो । गृहाण परमेशान तुष्टो भव ममाद्य वै ॥
ब्रह्मग्रन्थिसमायुक्तं ब्रह्मकर्मप्रवर्तकम् । यज्ञोपवीतं सौवर्णं मया दत्तं तव प्रभो ॥
सुगन्धं चन्दनं देव ! मया दत्तं च वै प्रभो !।
भक्त्या परमया शंभो ! सुगन्धं कुरु मां भव !॥ १२९ ॥
दीपं हि परमं शंभो घृतप्रज्वलितं मया । दत्तं गृहाण देवेश मम ज्ञानप्रदो भव ॥
दीपं विशिष्टं परमं सर्वौषधिविजृंभितम् । गृहाण परमेशान मम शांत्यर्थमेव च ॥
दीपावलिं मया दत्तां गृहाण परमेश्वर । आरार्तिकप्रदानेन मम तेजःप्रदो भव ॥
फलदीपादिनैवेद्यतांबूलादिक्रमेण च । पूजनीयो विधानज्ञैस्तस्यां रात्रौ प्रयत्नतः ॥
पश्चाज्जागरणं कार्यं गृहे वा देवतालये । वितानमंडपं कृत्वा नानाश्चर्यसमन्वितम् ॥
गीतवादित्रनृत्येन अर्चनीयः सदाशिवः ॥ १३४ ॥

अनेनैव विधानेन प्रदोषोद्यापनेविधिः । कार्यो विधिमता शक्र सर्वकार्यार्थसि
गुरुणा कथितं सर्वं तच्चकार शतक्रतुः । तेनैव च सहायेन इन्द्रो युद्धपरा
वृत्रं प्रति सुरैः सार्द्धं युयुधे च शतक्रतुः । तुमुलं युद्धमभवद्देवानां दानवैः
तस्मिन्सुतुमुले गाढे देवदैत्यक्षयावहे । द्वंद्वयुद्धं सुतुमुलमतिवेलं भयावहम् ॥
व्योमो यमेन युयुधे ह्यग्निना तीक्ष्णकोपनः । वरुणेन महादंष्ट्रोवायुना च महा
द्वन्द्वयुद्धरताः सर्वे अन्योन्यवलकांक्षिणः ॥ १४० ॥
तथैव ते देववरा महाभुजाः संग्रामशूरा जयिनस्तदाऽभवन् ।
पराजयं दैत्यवराश्च सर्वे प्राप्तास्तदानीं परमं समंतात् ॥ १४१ ॥
दृष्ट्वा सुरैर्दैत्यवरान्पराजितान्पलायमानानथ कान्दिशीकान् ।
तदैव वृत्रः परमेण मन्युना महावलो वाक्यमिदं वभाषे ॥ १४२ ॥

वृत्र उवाच

हे दैत्याः परमार्ताश्च कस्माद्यूयं भयातुराः । पलायनपराः सर्वे विसृज्य रणम
स्वंस्वं पराक्रमं वीरा युद्धाय कृतनिश्चयाः । दर्शयध्वं सुरगणास्सूदयध्वं महाव
गदाभिः पट्टिशैः खड्गैः शक्तितोमरमुद्गरैः । असिभिर्भिंदिपालैश्च पाशतोमरमु
तदा देवाश्च युयुधुर्दधीचास्थिसमुद्भवैः । शस्त्रैरस्त्रैश्च परमैरसुरान्समदार
पुनर्दैत्याहता देवैः प्राप्तास्तेऽपि पराजयम् । पुनश्च तेन वृत्रेणनोद्यमानाः सुरा
यदा हि ते दैत्यवराः सुरेशैर्निहन्यमानाश्च विदुद्रुवुर्दिशः ।
केचिद् दृष्ट्वा दानवास्ते तदानीं भीतित्रस्ताः क्लीबरूपाः क्रमेण ॥ १४
वृत्रेण कोपिना चैवं धिक्कृता दैत्यपुंगवाः । हे पुलोमन्महाभागवृषपर्वन्नमोस्तु
हे धूम्राक्ष महाकाल महादैत्य वृकासुर । स्थूलाक्ष हे महादैत्य स्थूलदंष्ट्र नमोस्
स्वर्गद्वारं विहायैव क्षत्रियाणांमनस्विनाम् । पलायध्वंकिमर्थंवासंग्रामाङ्गणमु
संगरे मरणं येषां ते यांति परमं पदम् । यत्र तत्र च लिप्सेत संग्रामे मरणं बु
त्यजन्ति संगरं ये वै ते यांति निरयं ध्रुवम् ॥ १५३ ॥
ये ब्राह्मणार्थे भृत्यार्थे स्वार्थे वै शस्त्रपाणयः । संग्रामं ये प्रकुर्वंति महापातकिनो

शस्त्रघातहता ये वै मृता वा संगरे तथा । ते यांति परमंस्थानं नात्रकार्याविचारणा
शस्त्रैर्विच्छिन्नदेहा ये गवार्थेस्वामिकारणात् । रणेमृताः क्षतायेवैतेयांतिपरमांगतिम्
तस्माद्रणेऽपि ये शूराः पापिनोनिहताःपुरः । प्राप्नुवंतिपरं स्थानंदुर्लभं ज्ञानिनामपि
अथवा तीर्थगमनं वेदाध्ययनमेव च । देवतार्चनयज्ञादिश्रेयांसि विविधानि च ॥
एकपद्येन तान्येव कलांनार्हन्ति षोडशीम् । संग्रामे पतितानांचसर्वशास्त्रेष्वयंविधिः
तस्माद्युद्धावदानं च कर्तव्यमविशंकितैः । भवद्भिर्नान्यथा कार्यं देववाक्यप्रमाणतः ॥ वेद

यूयं सर्वे शौरवृत्त्या समेताः कुलेन शीलेन महानुभावाः ।
पदानि तान्येव पलायमाना गच्छंत्यशूरा रणमंडलाच्च ॥ १६१ ॥
त एव सर्वे खलु पापलोकान्गच्छंति नूनं वचनात्स्मृतेश्च ॥ १६२ ॥

ये पापिष्ठास्त्वधर्म्मस्था ब्रह्मघ्ना गुरुतल्पगाः । नरकं यांतिते पापं तथैवरणविच्युताः
तस्माद्भवद्भिर्योद्धव्यं स्वामिकार्यभरक्षमैः । एवमुक्तास्तदा तेन वृत्रेणापि महात्मना ॥
चक्रुस्ते वचनं तस्य असुराश्च सुरान्प्रति । चक्रुः सुतुमुलं युद्धं सर्वलोकभयंकरम् ॥

तस्मिन्प्रवृत्ते तुमुले विगाढे वृत्रो महादैत्यपतिः स एकः ।
उवाच रोषेण महाद्भुतेन शतक्रतुं देववरैः समेतम् ॥ १६६ ॥

वृत्र उवाच

शृणुवाक्यंमयाचोक्तंधर्म्मार्थसहितंहितम् । त्वंदेवानांपतिर्भूत्वानजानासिहिताहितम्
केवलार्थपरो भूत्वा विश्वरूपो हतस्त्वया । प्राप्तमद्यैव भो इन्द्र तस्येदंकर्म्मणःफलम्
ये दीर्घदर्शिनोमंदामूढाधर्मबहिष्कृताः । अकल्पाः कार्यसिद्ध्यर्थंयत्कुर्वंतिचनिष्फलम्
तत्सर्वं विद्धि देवेंद्र ! मनसा संप्रधार्यताम् ॥ १६९ ॥

तस्माद्धर्म्मपरो भूत्वा युध्यस्वगतकल्मषः । भ्रातृहात्वंममैवेंद्रतस्मात्त्वांघातयाम्यहम्
मा प्रयाहि स्थिरो भूत्वा देवैश्च परिवारितः । एवमुक्तस्तुवृत्रेणशक्रोऽतीवरुषान्वितः
ऐरावतं समारुह्य ययौ वृत्रजिघांसया ॥ १७१ ॥

इन्द्रमायांतमालोक्य वृत्रो बलवतां वरः । उवाच प्रहसन्वाक्यं सर्वेषां शृण्वतामपि
आदौ मां प्रहरस्वेति तस्मात्त्वां घातयाम्यहम् ॥ १७३ ॥

इत्येवमुक्तो देवेंद्रो जघ्नान गद्या भृशम् । वृत्रं बलवतां श्रेष्ठं जानुदेशे महाब
तामांपतंतीं जग्राह करेणैकेन लीलया । तयैवैनं जघानाशु गद्या त्रिदिवेश्व
सा गदा पातयामास सवज्रं च पुरंदरम् । पतितं शक्रमालोक्य वृत्र ऊचेसुरान्
नयध्वं स्वामिनं देवाः ! स्वपुरोममरावतीम् ॥ १७७ ॥
एतच्छ्रुत्वावचःसत्यं वृत्रस्य च महात्मनः । तथाचक्रुःसुराःसर्वेरणाच्चेंद्रंसमुत्
अपोवाह्य गजस्थं हि परिवार्य भयातुराः । सुराः सर्वेरणंहित्वाजग्मुस्तेत्रिदि
ततो गतेषु देवेषु ननर्त च महासुरः । वृत्रो जहास च परं तेनापूर्यंत दिक्
चचाल च मही सर्वा सशैलवनकानना । चुक्षुभे च तदा सर्वं जंगमं स्थावरं त
श्रुत्वा प्रयातं देवेंद्रं ब्रह्मा लोकपितामहः । उपयातोऽथ देवेंद्र स्वकमण्डलुवा
अस्पृशल्लब्धसंज्ञोऽभूत्तत्क्षणाच्च पुरंदरः ॥ १८२ ॥
दृष्ट्वा पितामहं चाग्रे व्रीडायुक्तोऽभवत्तदा । महेंद्रं त्रपया युक्तं ब्रह्मोवाच पिताम

ब्रह्मोवाच

वृत्रो हि तपसा युक्तो ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः । त्वष्टुश्चतपसायुक्तोवृत्रश्चायं महा
अजेयस्तपसोग्रेण तस्मात्त्वं तपसा जय ॥ १८४ ॥
वृत्रासुरो दैत्यपतिश्च शक्र ! ते समाधिना परमेणैव जय्यः ।
निशम्य वाक्यं परमेष्ठिनो हरिः सस्मार देवं वृषभध्वजं तदा ॥ १८
स्तुत्या तदा तं स्तवमानो महात्मा पुरंदरो गुरुणा नोदितो हि ॥१

इन्द्र उवाच

नमो भर्गाय देवायदेवानामतिदुर्गम । वरदो भव देवेश ! देवानां कार्यसिद्धये ॥
एवं स्तुतिपरो भूत्वा शचीपतिरुदारधीः । स्वकार्यदक्षो मंदात्माप्रपंचाभिरत
प्रपंचाभिरता मूढाः शिवभक्तिपरा ह्यपि । न प्राप्नुवंति ते स्थानंपरमीशस्यरा
निर्मला निरहंकारा ये जनाः पर्युपासते । मृडं ज्ञानप्रदं चेशं परेशं शंभुमेवं
तेषां परेषां वरद इहामुत्र च शंकरः । महेंद्रेण स्तुतः शर्वो रागिणा परमेण
रागिणांहिसदाशंभुर्दुर्लभोनात्रसंशयः । तस्माद्विरागिणांनित्यंसन्मुखोहिसदा

राजा सुराणां हि महानुरागी स्वकर्मसंसिद्धिमहाप्रवीणः ।
तस्मात्सदा क्लेशपरः शचीपतिः स्वकामभावात्मपरो हि नित्यम् ॥१९३॥

स्तवमानं तदा चेंद्रमब्रवीत्कार्यगौरवात् । विज्ञायाखिलदृग्द्रष्टा महेशो लिंगरूपवान्
न्द्र गच्छ सुरैः सार्द्धं वृत्रं वै दानवं प्रति । तपसैव च साध्योऽयं रणे जेतुं शतक्रतो

इन्द्र उवाच

केनोपायेन साध्योऽयं वृत्रो दैत्यवरो महान् ।
तच्छीघ्रं कथ्यतां शम्भो ! येन मे विजयो भवेत् ॥ १९६ ॥

रुद्र उवाच

णे न शक्यते हन्तुमपि देववरैरपि । तस्मात्त्वया हि कर्तव्यं कुत्सितं कर्म चाद्य वै

अस्य शापः पुरा दत्तः पार्वत्या मम सन्निधौ ।
असौ चित्ररथो नाम्ना विख्यातो भुवनत्रये ॥ १९८ ॥

र्यटन्सुविमानेन मया दत्तेन भास्वता । उपहासादिमां योनिं संप्राप्तो दैत्यपुंगवः
तस्मादजेयं जानीहि रणे रणविदाम्वर । एवमुक्तो महेंद्रोऽयं शम्भुना योगिना भृशम्

तथेति मत्वा शक्रोऽसौ नियमं तमुपाददे ॥ २०१ ॥

न्ध्रं प्रतीक्ष्य वृत्रस्य तत्समीपे सहस्रकम् । वत्सराणां महाभागा वसन्हंतुं मनोदधे
अन्तर्वेद्यां वहिः स्थित्वावज्रपाणिरनुज्ञया । गुरोः पुरोधसश्चैवस्वकार्यमकरोद्भृशम्
एकदा नर्म्मदायां वै वृत्रो दानवपुंगवः । दैत्यैः परिवृतः सर्वैः समायातो यदृच्छया
इन्द्रः पराभवंप्राप्तो नीतो देवैर्दिवं प्रति । अहमेव हतारिश्च नान्योऽस्ति सदृशो मम
मन्यमानः सदावृत्रः पौरुषेण समन्वितः । प्रदोषसमये विप्रा नर्मदायामुपस्थितः ॥
दृष्टश्चेंद्रेण सुमहानसुरैः परिवारितः । वृत्रो वलवतां श्रेष्ठः प्रदोषसमये तदा ॥ २०७
तस्मिन्प्रदोषे संयुक्ता मंदवारेत्रयोदशी । नोदितो गुरुणा चेन्द्रः करे गृह्य वृहस्पतिः
प्रदक्षिणानमस्कारैर्यथोक्तविधिना तदा । पूजितो लिंगरूपी च ओंकारो नर्मदातटे
प्रदोषव्रतमाहात्म्याद्वज्रपाणिः प्रतापवान् । संजातस्ततत्क्षणादेवप्रसादाच्छंकरस्यच
वृत्रोऽपि तपसा युक्तःप्रदोषसमये महान् । निद्रासक्तोऽभवत्तत्र शुंडेन प्रतिवोधितः ॥

स्वापात्प्रदोषवेलायां तपसा चार्जितं फलम् । प्रनष्टंतत्क्षणादेवनिःश्रीकत्वमु

देव्याः शापाच्च सञ्जातो वृत्रो भग्नमनोरथः ॥ २१३ ॥

संध्यापादो गतो यावद्वृत्रस्तीर्थमुपाविशत् ।

परीतो विविधैर्दैत्यैर्नानायुधसमन्वितैः ॥ २१४ ॥

तस्य तत्कर्मणश्छिद्रं छिद्रान्वेषी शचीपतिः । ज्ञात्वा गतः शनैर्हन्तुमात्मशत्रुं

तावद्दैत्याः सुसंरब्धा भीमा भीमपराक्रमाः । उत्तस्थुर्युगपत्सर्वे दुःसहाश्च श

ततस्तैरभवद्युद्धमतिप्रबलदंडिभिः । सर्वे देवाः सहायार्थं तदाऽऽजग्मुः शतक्र

तदा दैत्याश्च देवाश्च युयुधुस्ते तरस्विनः । रात्रौ युद्धं समभवत्सुरासुरविमर्द

अनेकशस्त्रसंवीतं महारौद्रमवर्तत । एवं प्रवर्तमाने तु संग्रामे रौद्रदारुण

तदा वृत्रोऽथ सन्नद्धो गृहीत्वा शूलमुल्बणम् ॥ २१६ ॥

इन्द्रप्रमुखतो भूत्वा जगर्जातिविभीषणम् । तस्य नादप्रणादेन त्रासितं भुवन

ऐरावणं समारुह्य महेन्द्रः शुशुभे तदा । ध्रियमाणेन च्छत्रेण चंद्रमण्डलशोभि

चामरैर्वीज्यमानोऽथ वभाषे दैत्यपुंगवम् ॥ २२२ ॥

इन्द्र उवाच

संग्रामं कुरु मे वृत्र वलेन महता वृतः । शूरस्त्वमसि शूराणां तपसा परमेण

एवमुक्तस्तदा तेन वृत्रो वाक्यमुवाच ह । आदौ प्रहर मामिंद्रपश्चात्त्वां घातया

तथेति मत्वा तदतीव दुःसहं वज्रं तदानीं शतधारमेव ।

स मोक्तुकामो हि तदा पुरंदरो निवारितस्तेन महाप्रभेण ॥

पुरोधसा बुद्धिमतां वरेण तथेति मत्वा स चकार चेन्द्रः ॥ २२५ ॥

गदां प्रगृह्य देवेन्द्रो वृत्रं विव्याधतां गदाम् । वारयामास वृत्रोसावतिथिक्रूपर्णा

व्यर्थां च स्वगदां दृष्ट्वा इन्द्रश्चिंतामवाप ह ॥ २२७ ॥

तं चिन्त्यमानं स तदा पुरंदरं वृत्रो वभाषे परिभर्त्समानः ।

पुरा कृतं शक्र ! महाद्भुतं त्वया जुगुप्सितं कर्म च विस्मृतं किम् ॥

येनैव जातोऽसि सहस्रनेत्रः शापान्महर्षेरथ गौतमस्य ॥ २२८ ॥

शूराश्चेन्द्रियग्रामं वर्तन्ते हि नियस्य तु । ते जयं प्राप्नुवंतीह नेतरे हि भवादृशाः
रणाजिरं महाघोरं पापिनां नात्र संशयः ॥ २३० ॥
त्रं निर्भर्त्सयामास देवेन्द्रं दैत्यपुंगवः । त्रिशूलं धूनयामास देवेन्द्रो हि तडित्समम्
न शूलेन महता वृत्रोऽद्भुतपराक्रमः । बभौ तीव्रेण तपसा यथा रुद्रो युगांतकृत् ॥
थाभूतं समालक्ष्य देवराजः शतक्रतुः । अभ्युद्ययौ हन्तुकामो वृत्रं दानवपुङ्गवम् ॥
मायांतमभिप्रेक्ष्य हन्तुकामं पुरन्दरम् । जहास परमं तत्र शक्रस्य च भयावहम् ॥
मुखं प्रसार्य सुमहदागतो हि पुरन्दरम् ॥ २३४ ॥
हन्तुकामो महातेजादैत्यानामधिपस्तदा । आगत्य सहसा शक्रंग्रासयित्वासकुञ्जरम्
वज्रं सकिरीटं च ननर्त च जगर्ज च । निमिषांतरमात्रेण ग्रसितोऽसौ पुरन्दरः ॥
हाहाकारो महानासीद्देवानां तत्र पश्यताम् ।
भूकम्पो हि तदा ह्यासीदुल्कापातः सहस्रशः ॥ २३७ ॥
मिरेणावृतं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् । नर्तमानस्तदा वृत्रो बभूव परमद्युतिः ॥
ध्यमानास्तदा सर्वे देवा ब्रह्माणमागताः । शशंसुः सर्वमेवैतद्वृत्रासुरविचेष्टितम्
श्रुत्वा भगवान्ब्रह्माव्यथितोऽतीवविस्मितः । कथं जातंमहेन्द्रस्यव्यसनंपरमाद्भुतम्
णैः सह तदा ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः । तुष्टाव गिरिशं देवं परमेण समाधिना ॥

ब्रह्मोवाच

नमोलिङ्गरूपाय महादेवाय वै नमः । विश्वरूपाय देवाय विरूपाक्षाय वै नमः ॥
हित्राहि त्रिलोकेश वृत्रग्रस्तं पुरन्दरम् । तदा नभोगतावाणीसर्वेषामेवशृण्वताम्
ाच हितकामाय विधिं लिंगार्चने सती । प्रदोषव्रतयुक्तेन इन्द्रेण विकृतं कृतम् ॥
र्माल्यं पीठिकां चैव च्छायाप्रासादमेव च । प्रदक्षिणांकृतवतापीठिकालंघनं कृतम्
लंघयन्ति च ये मूढास्ते वै दंड्या न संशयः ।
चण्डस्य गणमुख्यस्य तस्मात्कुर्यात्प्रयत्नतः ॥
प्रदक्षिणानमस्कारौ लिङ्गार्च्चनसमन्वितः ॥ २४६ ॥
ःप्राप्त्येकबुद्ध्या वै प्रयत्नाल्लिंगपूजनम् । कार्यं दीक्षा परैर्नित्यं सर्वपापोपशांतये

आशरीरं च तद्वाक्यं श्रुत्वा ब्रह्मादयः सुराः ।
पप्रच्छुस्ते प्रांजल्यो नभो वाणीं शुभावहाम् ॥ २४८ ॥
कथमर्चामहे लिंगं केनैव विधिना ततः । प्रातर्मध्याह्नसमये सायंकाले तथै
कानि पुष्पाणि सायाह्ने मध्याह्ने च तथैव हि ।
प्रातःकाले तु तान्येव कथयस्व यथातथम् ॥ २५० ॥
तदा नभोगता वाणी कथयामास विस्तरम् ॥ २५१ ॥
करवीरं चार्कपुष्पं वृहतीपुष्पमेव च । धत्तूरकुसुमं चैव शतपत्रं तथै
आरग्वधं च पुन्नागं बकुलं नागकेशरम् । ब्रध्नोत्पलं कदम्बं च मंदारकुसुमं
बहूनि वरपुष्पाणि बहूनि कमलान्यपि । त्रिकाले च पवित्राणि ज्ञेयानिसत
जातीपुष्पं मल्लिकायाश्च पुष्पं पुष्पं मोगरकं नीलपुष्पं तथैव ।
तथा पुष्पं कुटजं कर्णिकारं कौसुम्भाख्यं वारिजं रक्तवर्णम् ॥ २५५ ॥
एतान्येव च पुष्पाणिमध्याह्नेलिङ्गपूजने । विशिष्टानिमयोक्तानिसायाह्नेकथ
चंपकानित्रिकाले च पवित्राणि न संशयः । रात्रौमोगरकाण्येवपवित्राणि
एवमर्च्चनभेदांश्च ज्ञात्वा तल्लिंगपूजने । कार्योविधिर्विधिज्ञैश्च सततं च वि
वृषभांतरितो भूत्वा पीठिकांतरमेव च । प्रदक्षिणां च कुर्वीत कुर्वन्किल्बि
तथा ह्यनेन शक्रेण कृतंचैवप्रदक्षिणम् । राजसंभावमाश्रित्यतस्माज्जातं च वि
ग्रसितोऽद्यैव वृत्रेण सगजो हि पुरंदरः । भवद्भिरेव तत्कार्यं येन इन्द्रः प्रमुच्
महारुद्रविधानेन मुक्तोभवति तत्क्षणात् । पुरंदरो ह्ययं देवा नात्र कार्यवि
तेनैव वचसा देवा रुद्रमभ्यर्च्य यत्नतः । यथोक्तेन विधानेन रुद्रसूक्तेन
तथा चैकादशीरुद्रया रुद्रमभ्यर्च्य वै सुराः । हवनं प्रत्यहं चक्रुर्दशांशेन द्वि
जपं च पूजां हवनं च चक्रुर्विमोक्तुकामाः सहसा पुरंदरम् ।
शम्भोः प्रसादात्सहसा विनिर्गतः कुक्षिं भित्त्वा देवराजस्तदा
तं निर्गतं समीक्ष्याथदेवदेवेन्द्रमोजसा । सगजं च स वज्रं च सकिरीटंस
श्रिया परमया युक्तं पुरंदरं महौजसम् ॥ २६६ ॥

वदुंदुभयो नेदुस्तथा शंखा ह्यनेकशः । गन्धर्वाप्सरसो यक्षा ऋषयश्च मुदान्विताः ॥
कपद्येन सर्वेषां महाहर्षो दिवौकसाम् । संजातस्तत्क्षणादेव यदा मुक्तः पुरंदरः ॥
तदा शची समायाता यत्र मुक्तः पुरंदरः ॥ २६८ ॥
त्र शच्या समेतोऽसावभिषिक्तो महर्षिभिः । पुण्याहवाचनं तस्य कृतंसर्वैः प्रयत्नतः
वं तदाभिषिक्तोऽसौ महेन्द्र ऋषिभिःपुनः । मही मंगलभूयिष्ठातदाजाताद्विजोत्तमाः
दिशः प्रसन्नतां याता निर्मलञ्चाभवन्नभः ।
शांतास्तदाऽग्नयो ह्यासन्मनांसि च महात्मनाम् ॥ २७१ ॥
वमादीन्यनेकानि मंगलानि ततोऽभवन् । मुक्ते शतक्रतौ तस्मिन्वभूव परमाद्भुतम् ॥
वं प्रवर्तमाने तु महतां च महोत्सवे । तावद्वृत्रस्य पतितं शरीरं च भयानकम् ॥
त्रैव ब्रह्महत्या च पापिष्ठा पतिता भुवि । गंगायमुनयोर्मध्ये अंतर्वेदीति कथ्यते ॥
ण्यभूमिरितिख्याताप्रसिद्धा लोकपावनी । वृत्रहत्याप्रतिष्ठासायस्मिन्देशेसपापवान्
लस्य वहु संभूत्या मालवेति प्रकीर्तिता । तस्यांतुमलभूम्यां वैवृत्रस्यचमहच्छिरः
ण्मासेष्वपतत्सर्वैः कृत्तं देवैः सवासवैः । एवं वृत्रवधं कृत्वा शक्रो जयमवाप ह ॥
न्द्रासने चोपविष्टोनिरातंकः शचीपतिः । एतस्मिन्नंतरेदैत्याः पातालवासिनंवलिम्
शशंसुः सर्वमागत्य शक्रस्य च विचेष्टितम् ॥ २७८ ॥
षां तद्वचनं श्रुत्वा वैरोचनी रुषान्वितः । शुक्रं प्रपच्छ स तदा कथमिंद्रो वशीभवेत्
मुनोक्तं वलये राजञ्जयस्यन्दनलब्धये । महायज्ञं कुरुष्वाद्य तेन ते विजयो भवेत् ॥
विनोक्तो भृगुणा चैव वलिर्यज्ञार्थमुद्यतः । दधौ यानीह द्रव्याणि यज्ञयोग्यानितानिवै
मेलयित्वा त्वरेणैव वैरोचनिरुदारधीः ॥ २८१ ॥
वर्तितो महायज्ञो भार्गवेण महात्मना । दीक्षायुक्तो वलिरभूज्जुहुवे हव्यवाहनम् ॥
यमाने तदाग्नौ तु कर्मणा विधिहेतुना । तस्माद्वलेःसमुत्पन्नः स्यंदनः परमाद्भुतः ॥
यैश्चतुर्भिः संयुक्तो ध्वजे सिंहो महाप्रभः । शस्त्रास्त्रैःसंयुतःश्रीमान्हयैःश्वेतैरलंकृतः
तश्चावभृथस्नानं चक्रेशुक्रप्रणोदितः । स्यंदनं पूजयित्वाऽथ आरुरोह वलिस्तदा ॥
त्यैः परिवृतः सद्यो योद्धुकामः पुरंदरम् । सद्य एव दिवं प्राप्तो वलिर्वैरोचनोमहान्

आगत्य सेनया सार्द्धमारुरोहामरावतीम् । संरुद्धां तां पुरीं दृष्ट्वा तदा ते सुरस
विमर्शयित्वा सुचिरमूचुः सर्वे वृहस्पतिम् ॥ २८७ ॥
किं कुर्मोऽद्य महाभाग आगतादैत्यपुंगवाः । योद्धुकामामहाघोराःसर्वे युद्धवि
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वृहस्पतिरभाषत ॥ २८६ ॥
एते घृतमुखा घोरा भृगुणा नोदिताः सुराः । अजेयाश्चैव ते सर्वे तपसा वि
एतन्निशम्य वचनं च गुणाभियुक्तं सर्वे सुराः समभवंस्त्रपयाभियु
इन्द्रोऽपि वुद्धिविकलः परिचिंतया च व्रीडायुतः समभवत्परिभत
इति श्रीस्कांदे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरख
केदारखंडे बलिदैत्यस्य संग्रामोद्योगवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

वुद्धिविकलानां देवानां नानारूपधारणम्

लोमश उवाच

कर्मणा परिभूतो हि महेंद्रो गुरुमब्रवीत् । विनायत्नेनसंक्लेशात्तुंकर्म्मकिमुच्य
वृहस्पतिरुवाचेदं त्यक्त्वा चैवामरावतीम् । यास्यामोऽन्यत्रसर्वेवैसकुटुंब्राजि
तथा चक्रुः सुराः सर्वे हित्वा चैवामरावतीम् । बर्हिणो रूपमास्थायगतःसद्यःपुर
काको भूत्वा यमः साक्षात्कृकलासो धनाधिपः ।
अग्निः कपोतको भूत्वा भेको भूत्वा महेश्वरः ॥ ४ ॥
नैर्ऋतस्तत्क्षणादेवकपोतोऽभूत्ततोगतः । पाशीकपिंजलोभूत्वावायुःपारावतो
एवं नानातनुभृतो हित्वाते त्रिदिवं गताः । कश्यपस्याश्रमंपुण्यंसंप्राप्तास्तेभय
अदितिं मातरं सर्वे शशंसुर्दैत्यचेष्टितम् ॥ ७ ॥
अप्रियं तदुपाकर्ण्य ह्यदितिः पुत्रलालसा । उवाच कश्यपं सा तु सुराणांव्यसनं
महर्षे ! श्रूयतां वाक्यं श्रुत्वा तत्कर्तुमर्हसि ॥ ८ ॥

दैत्यैः पराजिता देवा हित्वा चैवामरावतीम् । त्वदीयमाश्रमंप्राप्तास्तान्रक्षस्वप्रजापते
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वाकश्यपोवाक्यमब्रवीत् । तपसामहतातन्विजानीहित्वंचभामिनि
अजेया ह्यसुराः साध्वि ! भृगुणा ह्यनुमोदिताः ॥ १० ॥
तेषां जयो हि तपसा उग्रेणाऽद्येन भामिनि । कुरु शीघ्रतरेणैव सुराणां कार्यसिद्धये
व्रतमेतन्महाभागे कथयाम्यर्थसिद्धये । तत्कुरुष्व प्रयत्नेन यथोक्तविधिना शुभे ॥१२
मासि भाद्रपदे देवि दशम्यां नियता शुचिः । एकभक्तं प्रकुर्वीतविष्णोःप्रीत्यर्थमेव च
प्रार्थनीयो हरिः साक्षात्सर्वकामवरेश्वरः । मंत्रेणानेन सुभगे तद्भक्तैर्वरवर्णिनि ॥१४॥
तव भक्तोऽस्म्यहं नाथ दशम्यादिदिनत्रयम् । व्रतं चराम्यहंविष्णोअनुज्ञांदातुमर्हसि
अनेनैव च मंत्रेण प्रार्थनीयो जगत्पतिः । एकभक्तं प्रकुर्वीत तच्च भक्तं च केवलम् ॥
रंभापत्रे च भोक्तव्यं वर्जितं लवणेन हि । एकादश्यां चोपवासं प्रकुर्वीत प्रयत्नतः ॥
रात्रौ जागरणं कुर्यात्प्रयत्नेन सुमध्यमे । द्वादश्यां निपुणत्वेन पारणा तु विधानतः
कर्तव्या ज्ञातिभिः सार्द्धं भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥ १८ ॥
एवं द्वादशमासांस्तु कुर्याद्व्रतमतंद्रितः । मासि भाद्रपदे प्राप्ते एकादश्यां प्रयत्नतः ॥
विष्णुमभ्यर्च्य यत्नेन कलशोपरि संस्थितम् ॥ १९ ॥
सौवर्णं राजतं वापि यथाशक्त्या प्रकल्पयेत् । श्रवणेनतुसंयुक्तांद्वादशींपापनाशिनीम्
व्रती उपवसेद्यत्नात्सर्वदोषप्रशांतये ॥ २० ॥
एवं हि कश्यपेनोक्तं श्रुत्वाऽदितिरथाचरत् । व्रतं सांवत्सरं यावन्नियमेन समन्विता
वर्षांतेन व्रतेनैव परितुष्टो जनार्दनः । प्रादुर्बभूव द्वादश्यां श्रवणेन तदा द्विजाः ॥२२॥
वटुरूपधरः श्रीशो द्विभुजः कमलेक्षणः । अतसीपुष्पसंकाशो वनमालाविभूषितः ॥
तंदृष्ट्वाविस्मयाविष्टापूजामध्येऽदितिस्तदा । कश्यपेनसमायुक्तासाऽस्तौपीत्कमलेक्षणा

अदितिरुवाच

नमोनमः कारणकारणाय ते विश्वात्मने विश्वसृजे चिदात्मने ।
वरेण्यरूपाय परावरात्मने ह्यकुंठबोधाय नमो नमस्ते ॥ २५ ॥
इति स्मृतस्तदाऽदित्या देवानां पतिरच्युतः । प्रहस्य भगवानाह अदितिं देवमातरम्

श्रीभगवानुवाच

तपसा परमेणैव प्रसन्नोऽहं तवानघे। अमुना वपुषा चैव देवानां कार्यसिद्धये।
श्रुत्वा भगवतो वाक्यमदितिस्तमुवाचह। भगवन्पराजिता देवा असुरैर्बलव
तान्रक्ष शरणापन्नान्सुरान्सर्वाञ्जनार्दन ॥ २८ ॥
निशम्य वाक्यं किल तच्च तस्या विष्णुर्विकुंठाधिपतिः स एकः ॥
ज्ञात्वा च सर्वं सुरचेष्टितं तदा बलेश्च सर्वं च चिकीर्षितं च ॥ २९ ॥
किं कार्यमद्यैव मया हि कार्यं येनैव देवा जयमाप्नुवंति।
पराजयं दैत्यवराश्च सर्वे विष्णुः परात्मैव विचिंत्य सर्वम् ॥ ३० ॥
गदामुवाच भगवान्गच्छस्वाद्य वधं प्रति। वैरोचनिं महाभागे घातयस्वत्वरा
गदोवाच हृषीकेशं प्रहसन्तीव भामिनी। मया ह्यशक्यो वधितुं ब्रह्मण्योहिबलि
चक्रं प्रति तदा विष्णुरुवाच परिसांत्वयन्। त्वं गच्छ बलिनं हंतुं शीघ्रमेव सु
तदोवाच त्वरेणैव चक्रपाणिं सुदर्शनम्। न शक्यते मया हंतुं बलिनं तं महाप्र
ब्रह्मण्योऽसियथाविष्णोतथाऽसौदैत्यपुंगवः। धनुषाचतथैवोक्तः शार्ङ्गपाणिश्चवि
चिंतयामास बहुधा विमृश्य सुचिरं बहु ॥ ३५ ॥

अत्रिरुवाच

तदा ते ह्यसुराः सर्वे किमकुर्वंस्तदुच्यताम् ॥ ३६ ॥

लोमश उवाच

तदा ते ह्यसुराः सर्वे बलिप्रभृतयो दिवि। रुरुधुर्नगरीं रम्यां योद्धुकामाः पुरं
न विदुर्ह्यसुराः सर्वेगतान्देवांस्त्रिविष्टपात्। नानारूपधरांस्तस्मात्कश्यपस्याश्र
प्राकारमारुह्य तदा हि संभ्रमाद्दैत्याः सुरेशं प्रति हंतुकामाः।
यावत्प्रविष्टा ह्यमरावतीं तां शून्यामपश्यन्परितुष्टमानसाः ॥ ३९ ॥
इन्द्रासने च शुक्रेण ह्यभिषिक्तो बलिस्तदा। महाभिषेकविधिना ह्यसुरैः परिवृ
तथैवाधिष्ठितो राज्ये बलिर्वैरोचनो महान्। शुशुभे परया भूत्या महेंद्राधिष्ठि
नागैश्चासुरसंघैश्च सेव्यमानो महेंद्रवत्। सुरद्रुमो चिंतितेन कामधेनुर्मणिर

दानैर्दाता च सर्वेषां येऽन्ये दानित्वमागताः । सर्वेषामेवभूतानांदानैर्दातावलिर्महान्

यान्यान्कामयते कामांस्तान्सर्वान्वितरत्यसौ ।

सर्वेभ्योऽपि स चार्थिभ्यो दानवानामधीश्वरः ॥ ४४ ॥

शौनक उवाच

देवेंद्रो हि महाभाग न ददाति कदाचन । कथं वलिरसौदाता कथयस्व यथातथम् ॥

लोमश उवाच

यत्नतो येन यत्किंचित्क्रियते सुकृतं नरैः । शुभंवाप्यशुभंवापिज्ञातव्यं हि विपश्चिता

शक्रो हि याज्ञिको विप्रा अश्वमेधशतेन वै । प्राप्तराज्योऽमरावत्यांकेवलंभोगलोलुपः

अर्थितं तत्फलंविद्धिपुनः कार्पण्यमाविशत् । पुनर्मरणमाविश्यक्षीणपुण्योभविष्यति

य इन्द्र कृमिरेव स्यात्कृमिरिंद्रो हि जायते । तस्माद्दानात्परतरं नान्यदस्तीहमोचनम्

दानाद्धिप्राप्यतेज्ञानंज्ञानान्मोक्षोनसंशयः । मोक्षात्परतराभक्तिः शूलपाणौहिवैद्विजाः

ददाति सर्वं सर्वेशः प्रसन्नात्मा सदाशिवः । किंचिदल्पेन तोयेन परितुष्यति शंकरः

अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । विरोचनसुतेनेदं कृतमस्ति न संशयः ॥ ५२ ॥

कितवो हि महापापो देवब्राह्मणनिंदकः । निकृत्या परयोपेतः परदाररतो महान् ॥

एकदा तु महापापात्कैतवाच्च जितं धनम् । गणिकार्थे च पुष्पाणितांबूलं चंदनंतथा

कौपीनमात्रं तस्यैवकितवस्यप्रदृश्यते । कराभ्यांस्वस्तिकंकृत्वागंधमाल्यादिकंचयत्

गणिकार्थमुपादाय धावमानो गृहं प्रति । तदाप्रस्खलितोभूमौनिपपातचतत्क्षणात् ॥

पतनान्मूर्च्छयायुक्तःक्षणमात्रंतदाऽभवत् । ततोमूर्छागतस्यास्यपापिनोऽनिष्टकारिणः

बुद्धिः सद्यः समुत्पन्ना कर्मणा प्राक्तनेन हि । निर्वेदं परमापन्नः कितवो दुःखसंयुतः

भूम्यां निपतितं यच्च गंधपुष्पादिकं महत् । समर्पितं शिवायेति कितवेनाप्यबुद्धिना

तेनैव सुकृतेनैव याम्यैर्नीतो यमालयम् । तं पापीति यमोऽवोचत्सर्वलोकभयावहः ॥

पचनीयोसि मे मंद नरकेषु महत्सु च । इत्युक्तो धर्मराजेन कितवो वाक्यमब्रवीत् ॥

पापाचारो हि भगवन्कश्चिन्नैव मया कृतः । विमृश्यतां मे सुकृतं याथातथ्येनभोयम

चित्रगुप्तेन चाख्यातं दत्तमस्ति त्वया पुनः । पतितं चैव देहांते शिवाय परमात्मने ॥

तेन कर्मविपाकेन घटिकात्रयमेव च । शचीपतेः पदं विद्धि प्राप्स्यसि त्वं न सं
आगतस्तत्क्षणाद्देवः सुरैः सर्वैः समन्वितः । ऐरावतं समारूढोनीतोऽसौशक्रमं
शक्रः प्रबोधितस्तेन गुरुणा भावितात्मना ॥ ६५ ॥
घटिकात्रितयं यावत्तावत्कालं पुरंदर । निजासनेऽपिसंस्थाप्यःकितवोऽपिमम
गुरोर्वचनमाकर्ण्यकृत्वाशिरसितत्क्षणात् । गतोऽन्यत्रैवशक्रोऽसौकितवोहिप्रवे
भवनं देवराजस्य नानाश्चर्यसमन्वितम् ॥ ६७ ॥
शक्रासनेऽभिषिक्तोऽसौ राज्यंप्राप्तःशतक्रतोः । शंभोर्गंधप्रदानाच्च पुष्पतांबूलसं
किं पुनः श्रद्धया युक्ताः शिवाय परमात्मने । अर्पयंतिसदाभक्त्या गंधपुष्पादिकं
शिवसायुज्यमायाताः शिवसेनासमन्विताः । प्राप्नुवंतिमहामोदं शक्रोह्येषांचकिं
शिवपूजारतानां च यत्सुखं शांतचेतसाम् । ब्रह्मशक्रादिकानांच तत्सुखंदुर्लभं मह
वराकास्ते न जानन्ति मूढा विषयलोलुपाः । वंदनीयो महादेवो ह्यर्चनीयः सदा
पूजनीयो महादेवः प्राणिभिस्तत्त्ववेदिभिः । तस्मादिंद्रत्वमगमत्कितवोघटिका
पुरोधसाभिषिक्तोऽसौ पुरंदरपदे स्थितः । तदानीं नारदेनोक्तः कितवोऽसौ महा
इन्द्राणीमानयस्वेति यथा राज्यं सुशोभितम् । ततःप्रहस्यचोवाचकितवः शिवव
इन्द्राण्या नास्ति मे कार्यं न वाच्यं ते महामते । एवमुक्त्वाथकितवःप्रदातुमुपच
ऐरावतमगस्त्याय प्रददौ शिववल्लभः । विश्वामित्राय कितवो ददौ हयमुदार
उच्चैःश्रवससंज्ञं च कामधेनुं महायशाः । ददौ वशिष्ठाय तदा चिंतामणिं महा
गालवाय महातेजास्तदा कल्पतरुं च सः । कौंडिन्याय महाभागः कितवोपिगृह
एवमादीन्यनेकानि रत्नानि विविधानि च । ददावृषिभ्यो मुदितः शिवप्रीत्यर्थमे
घटिकात्रितयं यावत्तावत्कालं ददौ प्रभुः ।
घटिकात्रितयादूर्ध्वं पूर्वस्वामी समागतः ॥ ८१ ॥
पुरंदरोऽमरावत्यामुपविश्य निजासने । ऋषिभिः संस्तुतश्चैव शच्या सह तदाऽ
शचीमुवाच दुर्मेधाः कितवेनासि भामिनि । भुक्ता ह्यस्यैव कथय याथातथ्येनशो
तदा प्रहस्य चोवाच पुरंदरमकलमषा । आत्मौपम्येन सर्वत्र पश्यसि त्वं पुरंद

असौ महात्मा कितवस्वरूपी शिवप्रसादात्परमार्थविज्ञः ।
वैराग्ययुक्तो हि महानुभावो येनापि सर्वं परमं प्रसन्नम् ॥ ८५ ॥
राज्यादिकं मोहमयं च पाशं त्यक्त्वा परेभ्यो विजयी स जातः ॥ ८६ ॥
चो निशम्य देवेश इन्द्राण्याःस पुरंदरः । व्रीडायुक्तोऽभवत्तूष्णीमिंद्रासनगतस्तदा
हस्पतिमुवाचेदं वाक्यं वाक्यविदां वरः । ऐरावतो न दृश्येत तथैवोच्चैःश्रवाहयः
ारिजातादयः सर्वे पदार्थाः केन वा हृताः । ततो गुरुरुवाचेदं कितवेन कृतं महत् ॥
ऋषिभ्यो दत्तमद्यैव यावत्सत्ता हितस्यवै । स्वसत्तायां महत्यांचस्वसत्तायेभवंति च
प्रमत्ताश्च ये नित्यं शिवध्यानपरायणाः । ते प्रियाः शंकरस्यैवहित्वाकर्मफलानिवै
केवलं ज्ञानमाश्रित्य ते यांति परमं पदम् ॥ ९१ ॥
एतच्छ्रुत्वा वचनं तस्य चेंद्रो बृहस्पतेर्वाक्यमिदं बभाषे ।
प्रायो यमो वक्ष्यति सर्वमेतत्समृद्धये ह्यात्मनश्चैव शक्रः ॥ ९२ ॥
तथेति मत्वा गुरुणा सहैव राजा सुराणां सहसा जगाम ।
स्वकार्यकामो हि तथा पुरंदरो ययौ पुरीं संयमनीं तदानीम् ॥ ९३ ॥
मेन पूज्यमानो हि शक्रो वाक्यमुवाच ह । त्वया दत्तं मम पदं कितवाय दुरात्मने
नेनैतत्कृतं कर्म्म जुगुप्सितं महत्तरम् । मदीयानि च रत्नानि यानि सर्वाण्यनेन वै
एभ्य एभ्यः प्रदत्तानि धर्म्म ! जानीहि तत्त्वतः ॥ ९५ ॥
वं धर्मनामासि कथं कितवाय प्रदत्तवान् । ममराज्यविनाशायकृतमस्तित्वयाऽधुना
ानयस्व महाभाग गजादीनि च सत्वरम् । अन्यानिचैवरत्नानिदत्तानि चयतस्ततः
नेशम्य वाक्यं शक्रस्ययमो वचनमब्रवीत् । कितवंचरुषाविष्टःकिंत्वयापापिनाकृतम्
गोगार्थं चैव यद्दत्तं शक्रराज्यं त्वयाऽधुना । प्रदत्तं च द्विजातिभ्योह्यन्यथावैकृतंमहत्
अकार्यं वै त्वया मूढ परद्रव्यापहारणम् । तेन पापेन महता निरयं प्रतिगच्छसि ॥
यमस्य वचनं श्रुत्वा कितवो वाक्यमब्रवीत् । अहंनिरयगामीच नात्रकार्याविचारणा
यावत्सत्ता मम विभो ! जाता शक्रासने तथा ।
तावद्दत्तं हि यत्किंचिद्द्विजेभ्यो हि यथातथम् ॥ १०२ ॥

यम उवाच

दानं प्रशस्तं भूम्यां च दृश्यते कर्म्मणः फलम् ।
स्वर्गे दानं न दातव्यं केनचित्कस्यचित्क्वचित् ॥
तस्माद्दण्ड्योऽसि रे मूढ अशास्त्रीयं कृतं त्वया ॥ १०३ ॥
गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् ।
सर्वेषां पापशीलानां शास्ताऽहं नात्र संशयः ॥ १०४ ॥

एवं निर्भर्त्सयित्वा तं कितवं धर्मराट्स्वयम् । उवाचचित्रगुप्तं च नरकेपच्यता
तदा प्रहस्य चोवाच चित्रगुप्तो यमं प्रति ॥ १०५ ॥

कथं निरयगामित्वं कितवस्य भविष्यति । येन दत्तो ह्यगस्त्याय गज ऐराव
तथाश्वो ह्यब्धिसंभूतो गालवाय महात्मने । विश्वामित्राय भद्रं ते चिंतामणि
एवमादीनि रत्नानि दत्तानि कितवेन हि । तेन कर्मविपाकेन पूजनीयो जग
शिवमुद्दिश्य यद्दत्तं स्वर्गे मर्त्ये च यैर्नरैः । तत्सर्वं त्वक्षयंविद्यान्निश्छिद्रं कर्म
तस्मान्नरकगामित्वं कितवस्य न विद्यते ॥ १०६ ॥

यानियानिच पापानिकितवस्यमहात्मनः । भस्मीभूतानिसर्वाणिजातानिस्मर
शंभोःप्रसादात्सर्वाणिसुकृतानिचतत्क्षणात् । तद्वचश्चित्रगुप्तस्यनिशम्यप्रेतरा
प्रहस्यावाङ्मुखो भूत्वा इदमाह शतक्रतुम् । त्वंहिराजासुरेंद्राणांस्थविरोरा
अश्वमेधशतेनैव एकं जन्मार्जितं कृतम् । त्वया नास्त्यत्र संदेहो ह्यर्जितं तेन वै
प्रार्थयित्वाह्यगस्त्यादीन्मुनीन्सर्वान्विशेषतः । अर्थेनप्रणिपातेनत्वयालभ्यानि
गजादिकानि रत्नानि येन त्वं च सुखी त्वरन् ॥ ११४ ॥
तथेति मत्वा वचनं पुरंदरो गतः पुरीं स्वामविवेकदृष्टिः ।
अभ्यर्थयामास विनम्रकंधरश्चर्षींस्ततो लब्धवान्पारिजातम् ॥ ११५

अनेनैव प्रकारेण लब्धराज्यः पुरंदरः । जातस्तदामरावत्यां राजा सह महात्म
कितवस्य पुनर्जन्म दत्तं वैवस्वतेन हि ।
किंचित्कर्मविपाकेन विरोचनसुतोऽभवत् ॥ ११७ ॥

रुचिर्जननी तस्य कितवस्याभवत्तदा। विरोचनस्य महिषी दुहिता वृषपर्वणः॥
तस्थौ जठरमास्थाय तस्याः सोऽपि महात्मनः॥ ११८॥
दाप्रभृति तस्यैव प्रह्लादस्यात्मजात्स वै। सुरुचेश्च तथाप्यासीद्धर्मे दाने महामतिः
नैव जठरस्थेन कृता मतिरनुत्तमा। कितवेन कृता विप्रा दुर्लभा या मनीषिणाम्॥
कदा वै तदा शक्रोययौ वैरोचनं प्रति। हंतुकामोहि दैत्येंद्रं विप्रोभूत्वाऽथयाचकः
वैरोचनगृहं प्राप्त इन्द्रो वाक्यमुवाच ह। स्थविरो ब्राह्मणो भूत्वा देहीति मम सुव्रत
मनस्वी त्वं च दैत्येंद्र! दाता च भुवनत्रये॥ १२२॥
तव विप्रा महाभाग चरितं परमाद्भुतम्। वर्णयन्तिसमाजेषुस्थित्वाकीर्तिचनिर्मलाम्
याचकोऽहं च दैत्येंद्र दातुमर्हसि सुव्रत! ॥ १२३॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दैत्येन्द्रो वाक्यमब्रवीत्। किं दातव्यं तव विभोवदशीघ्रंममाधुना
इन्द्रो हि विप्ररूपेण विरोचनमुवाच ह। याचयामि च दैत्येन्द्र! यदहं परिभावितः॥
आत्मप्रीत्याच दातव्यंममनास्त्यत्रसंशयः। उवाचप्रहसन्वाक्यंप्रह्लादस्यात्मजोऽसुरः
ददाम्यात्मशिरो विप्र यदिकामयसेऽधुना। इदं राज्यमनायासमियंश्रीर्नान्यगामिनी
अहं समर्पयिष्यामि तव नास्त्यत्र संशयः॥ १२७॥
इत्युक्तस्तेन दैत्येन विमृश्य च तदा हरिः। उवाच देहि मे स्वीयंशिरोमुकुटसेवितम्
एवमुक्ते तु वचने शक्रेण द्विजरूपिणा। त्वरन्महेन्द्राय तदा शिर उत्कृत्य वै मुदा॥
स्वकरेण ददौ तस्मै प्रह्लादस्यात्मजोऽसुरः॥ १२९॥
प्रह्लादेन पुरा यस्तु कृतोधर्म्मःसुदुष्करः। केवलां भक्तिमाश्रित्यविष्णोस्तत्परचेतसा
दानात्परतरं चान्यत्क्वचिद्वस्तु न विद्यते। तद्दानं च महापुण्यमार्तेभ्यो यत्प्रदीयते॥
स्वशक्त्या यच्च किंचिच्च तदानन्त्याय कल्पते। दानात्परतरंनान्यत्त्रिषुलोकेषुविद्यते
सात्त्विकं राजसं चैव तामसं च प्रकीर्तितम्। तथा कृतमनेनैवदानंसात्त्विकलक्षणम्
शिर उत्कृत्य चेन्द्राय प्रदत्तं विप्ररूपिणे। किरीटः पतितस्तत्र मणयो हि महाप्रभाः
ऐकपद्येन पतितास्ते जाता मण्डलाय वै। दैत्यानां च नरेन्द्राणां पन्नगानां तथैव च
विरोचनस्य तद्दानं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। गायंत्यद्यापि कवयो दैत्येंद्रस्यमहात्मनः

विरोचनस्यपुत्रोऽभूत्कितवोऽसौमहाप्रभः । मृते पितरिजातोऽसौमातातस्य
कलेवरं च तत्याज पतिलोकं गता ततः । भार्गवेणाभिषिक्तोऽसौजनकस्य
नाम्ना वलिरिति ख्यातो वभूव च महायशाः । तेनसर्वेसुरगणास्त्रासिताःसुम
गतास्ते कथिताः पूर्वं कश्यपस्याश्रमं शुभम् । तदा वलिरभूदिन्द्रो देवपुर्यां म

स्वयं तताप तपसा सूर्यो भूत्वा तदाऽसुरः ।
ईशो भूत्वा स्वयं चास्ते ऐशान्यां दिशि पालयन् ॥ १४१ ॥
तथा च नैर्ऋतो भूत्वा तथा त्वंवुपतिः स्वयम् ।
धनाध्यक्ष उदीच्यां वै स्वयमास्ते बलिस्तदा ॥
एवमास्ते बलिः साक्षात्स्वयमेव त्रिलोकभुक् ॥ १४२ ॥

शिवार्चनरतेनैव कितवेन वलिर्द्विजाः । पूर्वाभ्यासेन तेनैव महादानरतोऽ

एकदा तु सभामध्ये आस्थितो भृगुणा सह ।
दैत्येन्द्रैः संवृतः श्रीमाञ्छंडामर्कौ वचोऽब्रवीत् ॥ १४४ ॥

आवासः क्रियतामत्र असुरैर्म्मम सन्निधौ । हित्वा पातालमद्यैव मा विलंवितु
भार्गवस्तदुपश्रुत्य प्रहस्येदमुवाच ह । यज्ञैश्च विविधैश्चैव स्वर्गलोके महीयते॥
याज्ञिकैश्च महाराज नान्यथास्वर्गमेव हि । भोक्तुं हि पार्यतेराजन्नान्यथाममभा
गुरोर्वचनमाज्ञाय दैत्येन्द्रो वाक्यमब्रवीत् । मया कृतं च यत्कर्म तेन सर्वे मह

स्वर्गे वसंतु सुचिरं नात्र कार्या विचारणा ॥ १४८ ॥

प्रहस्योवाच भगवान्भार्गवाणां महातपाः । बलिनं बालिशं मत्वा शुक्रोवुद्धिमत
यत्त्वयोक्तं च वचनं वले मम न रोचते । इहैव त्वं समागत्य वस्तुं चेच्छसि
अश्वमेधशतेनैव यज त्वं जातवेदसम् । कर्म्मभूमिं गतो भूत्वा मा विलंवितुमह

तथेति मत्वा स वलिर्महात्मा हित्वा तदानीं त्रिदिवं मनस्वी ।
दैत्यैः समेतो गुरुणा च संगतो ययौ भुवं सोऽनुचरैः समेतः ॥ १५
तन्नर्मदाया गुरुकुल्यसंज्ञकं तीरे महातीर्थमुदारशोभम् ।
गत्वा तदा दैत्यपतिर्महात्मा जित्वा समग्रं वसुधातलञ्च ॥ १५३ ॥

ततोऽश्वमेधैर्बहुभिर्विचक्षणो गुरुप्रयुक्तः स महायशा बलिः ।
ईजे च दीक्षां परमामुपेतो वैरोचनिं सत्यवतां वरिष्ठः ॥ १५४ ॥
ा ब्राह्मणमाचार्यमृत्विजःषोडशाऽभवन् । सुपरीक्षितेन तेनैव भार्गवेणमहात्मना
नामूनमेकेन शतं दीक्षापरेण हि । बलिना चाश्वमेधानां पूर्णं कर्तुं समादधे ॥
यज्ञशतं पूर्णं तस्य राज्ञो भविष्यति । पुरा प्रोक्तं मया चात्र ह्यदित्या व्रतमुत्तमम्
न तेन संतुष्टो भगवान्हरिरीश्वरः । बटुरूपेण महता पुत्रभूतो बभूव ह ॥ १५८ ॥
देत्याः कश्यपेनैव उपनीतस्तदा प्रभुः । उपनीतेऽथ संप्राप्तो ब्रह्मा लोकपितामहः
यज्ञोपवीतं च ब्रह्मणा परमेष्ठिना । दंडकाष्ठं प्रदत्तं हि सोमेन च महात्मना ॥
ला च समानीता अजिनं च महाद्भुतम् । तथा च पादुके चैवमह्या दत्ते महात्मनः
भिक्षा समानीता भवान्या चार्थसिद्धये । एवं भगवते दत्तं विष्णवे बटुरूपिणे ॥
भिवंद्य तथा श्रीशो वामनो ह्यदितिं तथा । कश्यपं च महातेजा यज्ञवाटं जगाम च
याज्ञिकस्य बलेराह च्छलनार्थं स्वयं प्रभुः ॥ १६३ ॥
तदा महेशः स जगाम स्वर्गं प्रकंपयन्गां प्रपदा भरेण ।
स वामनो बटुरूपी च साक्षाद्विष्णुः परात्मा सुरकार्यहेतोः ॥ १६४ ॥
गीर्भिर्यथार्थाभिरभिष्टुतो जनैर्मुनीश्वरैर्देवगणैर्महात्मा ।
त्वरेण गच्छन्स च यज्ञवाटं प्राप्तस्तदानीं जगदेकबन्धुः ॥ १६५ ॥
उद्गापयन्साम यतो हि साक्षाच्चकार देवो बटुरूपवेषः ।
उद्गीयमानो भगवान्स ईश्वरो वेदान्तवेद्यो हरिरीश्वरः प्रभुः ॥ १६६ ॥
र्शे तं महायज्ञमश्वमेधं बलेस्तदा । द्वारि स्थितो महातेजा वामनो बटुरूपधृक् ॥
रूपेण महता व्याप्तमासीद्दिगन्तरम् । पवमानस्य च बटोर्वामनस्य महात्मनः ॥
तच्छ्रुत्वा च बलिः प्राह शंडामर्कौ च बुद्धिमान् ।
ब्राह्मणाः कतिसंख्याश्च आगताः सन्ति ईक्ष्यताम् ॥ १६९ ॥
येतिमत्वात्वरितावुत्थितौतौतदाद्विजाः । शण्डामर्कौसमागम्यमंडपद्वारिसंस्थितौ
दृशाते महात्मानं श्रीहरिं बटुरूपिणम् । त्वरितौ पुनरायतौ बलेः शंसयितुं तदा ॥

ब्रह्मचारी समायात एक एव न चापरः। पठनादौ महाराज चागतस्तव
किमर्थं तन्न जानीवो जानीहि त्वं महामते ! ॥ १७२ ॥
एवमुक्ते तु वचने ताभ्यां स च महामनाः। उत्थितस्तत्क्षणादेव दर्शनार्थं
स ददर्श महातेजा विरोचनसुतो महान्। दण्डवत्पतितो भूमौ ननाम शि
आनयित्वा वटुं सद्यः संनिवेश्य निजासने। अर्घ्यपाद्येनमहताभ्यर्चयामास
विनम्रकंधरोभूत्वाउवाचश्लक्ष्णयागिरा। कुतःकस्माच्चकस्यासितच्छीघ्रंकथ
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य विरोचनसुतस्य वै। मनसा हर्षितश्चासौ वामनोव

भगवानुवाच

त्वं हि राजात्रिलोकेशोनान्योभवितुमर्हसि। स्वकुलंन्यूनतांगच्छेद्योवैकापुरुष
समं वा चाधिकोवापि यो गच्छेत्पुरुषःस्मृतः। त्वयाकृतं च यत्कर्मनकृतं
दैत्यानां च वरिष्ठा ये हिरण्यकशिपादयः। कृतं महत्तपो येन दिव्यं वर्षसह
शरीरं भक्षितं यस्य जुषाणस्य तपो महत्। पिपीलिकाभिर्बहुभिर्दंशैश्चैव स
अभवत्तस्य तज्ज्ञात्वा सुरेन्द्रो ह्यगमत्पुरा। नगरं तस्य च तदा सैन्येन मह
तत्सन्निधौहताःसर्वेअसुरा दैत्यशत्रुणा। विन्ध्या तु महिषीतस्यनीयमाना
नारदेन पुराराजन्किंचित्कार्यंचिकीर्षुणा। शम्भोःप्रसादादखिलंमनसायत्स
दैत्येन्द्रेण च तत्सर्वं तपसैव वशीकृतम् ॥ १८४ ॥
तस्याः पुत्रोमहातेजा येननीतोऽभवत्सभाम्। तस्य पुत्रोमहाभागपितातेपि
नाम्ना विरोचनो विद्वानिन्द्रो येन महात्मना ॥ १८५ ॥
दानेन तोषितो राजन्स्वेनैव शिरसा तदा। तस्यात्मजोसिभोराजन्कृतं ते
यशोदीपेन महता दग्धाः शलभवत्सुराः। इन्द्रोपि निर्जितो येनत्वयानास्त्य
श्रुतमस्ति मया सर्वं चरितं तव सुव्रत। अल्पकोऽहमिहायातो ब्रह्मचर्यंव्रते
उटजार्थं च मे देहि भूमिं भूमिभृतांवर। वटोस्तस्यैव तद्वाक्यं श्रुत्वा बलि
हे वटो पंडितो भूत्वा यदुक्तं वचनं पुरा। शिशुत्वात्तन्न जानासिश्रुत्वामन्ये
वद शीघ्रं महाभाग कियन्मात्रां महीं तव। दास्यामि त्वरितेनैवमनसातद्धि

ह वामनो वाक्यं स्मयन्मधुरयागिरा। असन्तोषपरा ये च विप्रा नष्टा न संशयः
तुष्टा ये हि विप्रास्ते नान्ये वेषधरा ह्यमी। स्वधर्मनिरता राजन्निर्दम्भानिरवग्रहाः
त्सरा जितक्रोधा वदान्या हि महामते। विप्रास्ते हि महाभाग तैरियंधार्यतेमही
स्वी त्वं बहुत्वाच्च दातासि भुवनत्रये। तथापि मे प्रदातव्यामही त्रिपदसंमिता
त्वे नास्ति मे कार्यं मह्या वै सुरसूदन। प्रवेशमात्रमुटजं तथा मम भविष्यति॥
पदं पूर्यतेऽस्माकंवस्तुंनास्त्यत्र संशयः। देहि मे क्रमतोराजन्यावद्भूमिभविष्यति
तावत्संख्या प्रदातव्या यदि दाताऽसि भो बले! ॥ १६७॥
स्य तमुवाचेदं बलिर्वैरोचनात्मजः। दास्यामि ते महीं कृत्स्नां सशैलवनकाननाम्
यां वै महाभाग मया दत्तां गृहाण वै। याचकोऽसिवटोपश्यदानंदैत्यात्प्रयाचसे
याचको ह्यल्पको वाऽस्तु दाता सर्वं विमृश्य वै।
तथा विलोक्य चात्मानं ह्यर्थिभ्यश्च ददाति वै॥ २००॥
त्मौपम्येन सर्वत्र यो ददातिह्युदारधीः। तस्मान्नयाचितव्यं हि अर्थिनामंदभागिना
टो ददाम्यहं तेऽद्य सशैलवनकाननाम्। पृथ्वीं सपर्वतांसाब्धिनान्यथाममभाषितम्
नः प्रोवाच स बटुर्विरोचनसुतं प्रति। पूर्यते मम दैत्येन्द्र क्रमतो हि पदैस्त्रिभिः॥
टोस्तद्वचनं श्रुत्वा असुरेन्द्रो बलिस्तदा। उवाच प्रहसन्वाक्यं मन्यमानोबलिर्भृशम्
गृह्यतां च मया दत्तां पदैस्त्रिभिरलंकृताम्॥ २०४॥
त्युक्तो वामनः प्राह प्रहसन्नसुरं प्रति। संकल्प्य सकलां पृथ्वीं दातुमर्हसि सुव्रत॥
तथेति मत्वा बलिना सुपूजितः स वामनः कश्यपनन्दनो महान्।
बलिस्तदानीं सहसा नितांतं संस्तूयमानस्त्वृषिभिर्मुनींद्रैः॥ २०६॥
तं पूजयित्वा स बलिर्यावद्दातुं समुद्यतः। गुरुणा वारितस्तावद्विरोचनसुतो महान्
न दातव्यं त्वया दानं विष्णवे बटुरूपिणे। इन्द्रार्थमागतः सद्यो यज्ञविघ्नं करोति ते
तस्मात्त्वया न पूज्यो हि विष्णुरध्यात्मदीपकः॥ २०८॥
पुरा कृतमनेनैव मोहिनीरूपधारिणा। देवेभ्यश्चामृतं दत्तं राहुर्येन हतो महान्॥
येन विद्राविता दैत्याः कालनेमिर्हतो बली॥ २१०॥

एवंविधोऽयं पुरुषो महात्मा स ईश्वरो विश्वपतिः स एव।
विमृश्य सर्वं मनसा महामते ! हिताहितं कर्तुमिहार्हसि त्वम् ॥३६॥

इति श्री स्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे बलियज्ञे वामनगमनवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

ऊनविंशोऽध्यायः

बलिम्प्रति गुरोः शापकथनम्

लोमश उवाच

एवं सम्बोधितो दैत्यो गुरुणा भार्गवेण हि। उवाच प्रहसन्वाक्यंमेघगम्भीरया गिरा ॥१॥

त्वयोक्तोऽहं हितार्थाय यैर्वाक्यैश्चालितोऽस्म्यहम्।
तव वाक्यं मम प्रीत्यै हितमप्यहितं भवेत् ॥ २ ॥

दास्यामि भिक्षितं चास्मै विष्णवेवटुरूपिणे। पात्रीभूतोह्ययंविष्णुः सर्वकर्मफलप्रदः ॥३॥
येषां हृदिस्थितोविष्णुस्ते वै पात्रतमा ध्रुवम्। यस्यनाम्नासर्वमिदंपवित्रमिव
येन वेदाश्चयज्ञाश्चमन्त्रतन्त्रादयो ह्यमी। सर्वे संपूर्णतां यान्तिसोऽयंविश्वेश्वर
आगतः कृपया मेऽद्य सर्वात्मा हरिरीश्वरः। उद्धर्तुं मां न सन्देह एतज्जानीहि
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा चुकोप च रुषान्वितः। भार्गवः शप्तुमारेभे दैत्येन्द्रंधर्मव
मम वाक्यमतिक्रम्य दातुमिच्छस्यरिंदम। विगुणो भवसैमन्दतस्मात्त्वंनिःश्रि

एवं शशाप च तदा परमार्थविज्ञं शिष्यं महात्मानमगाधबोधम्।
स वै जगामाथ महाकविस्त्वरात्स्वमाश्रमं धर्म्मविदां वरिष्ठः ॥ ९

गते तु भार्गवे तस्मिन्बलिर्विरोचनात्मजः। वामनंचार्चयित्वा स महीं दातुं प्र
विन्ध्यावलिः समागत्यबलेरर्द्धांगशोभिता। अवनिज्यबटोः पादौप्रददौ विष्णवे

कल्पपूर्वेण तदा विधिना विधिकोविदः । संकल्पेनैव महता ववृधे भगवानजः ॥
द्वैकेन मही व्याप्ताविष्णुना प्रभविष्णुना । सर्वं स्वर्गाद्वितीयेनव्याप्तास्तेनमहात्मना
त्यलोकगतो विष्णोश्चरणः परमेष्ठिना । कमण्डलुगतेनैव अंभसा चावनेनिजे ॥

तत्पादसम्पर्कजलाच्च जाता भागीरथी सर्वसुमंगला च ।
यया त्रिलोकी च कृता पवित्रा यया च सर्वे सगराः समुद्धृताः ॥
यया कपर्दः परिपूरितो वै शंभोस्तदानीं च भगीरथेन ॥ १५ ॥

र्थानां तीर्थसाद्यं च गंगाख्यमवतारितम् । तद्विष्णोश्चरणेनैव समेतं ब्रह्मणा कृतम्

त्रिविक्रमात्परो ह्यात्मा नाम्ना त्रिविक्रमोऽभवत् ।
त्रिविक्रमक्रमाक्रान्तं त्रैलोक्यं च तदाऽभवत् ॥ १७ ॥

दद्वयेन वा पूर्णं जगदेतच्चराचरम् । विहाय तत्स्वरूपं च देवदेवो जनार्दनः ॥
पुनश्च वटुरूपोऽसावुपविश्य निजासने ॥ १८ ॥

दा देवाः सगंधर्वा मुनयः सिद्धचारणाः । आगताश्च बलेर्यज्ञं द्रष्टुं यज्ञपतिं प्रभुम्
त्र ब्रह्मा समागत्यस्तुतिंचक्रेपरात्मनः । बलेस्तत्रैवचान्ये च दैत्येन्द्राश्चागतास्त्वरम्
भिः सर्वैः परिवृतो वामनो बलिसद्मनि । उपविश्यासने सोऽथ उवाच गरुडं प्रति
त्योऽसौ बालिशो भूत्वा दत्ताऽनेन मही मम । त्रिपदक्रमणेनैव गृहीतं च पदद्वयम्
दमेकं प्रतिश्रुत्य न ददाति हि दुर्मतिः । तस्मात्त्वया गृहीतव्यं तृतीयं पदमेव च ॥
त्युक्तो गरुडस्तेन वामनेन महात्मना । वैरोचनिं विनिर्भर्त्स्य वाक्यं चेदमुवाचह ॥
बले किं त्वयामूढकृतमस्तिजुगुप्सितम् । अविद्यमानेह्यर्थे हि किं ददासिपरमात्मने

औदार्येण हि किं कार्यमल्पकेन त्वयाऽधुना ॥ २५ ॥

त्युक्तोबलिराविष्टःस्मयमानः खगेश्वरम् । वक्ष्यमाणमिदंवाक्यंगरुत्मन्तंतदाऽब्रवीत्
समर्थोऽस्मि महापक्ष कृपणो न भवाम्यहम् । येनेदं कारितंसर्वं तस्मैकिं प्रददाम्यहम्
समर्थो ह्यहं तात कृतोऽनेन महात्मना । तदोवाच बलिं सोऽपिताक्ष्यपुत्रोमहामनाः
ानन्नपिचदैत्येन्द्रगुरुणाऽपिनिवारितः। विष्णवेऽपिमहींप्रादास्त्वयाकिंविस्मृतंमहत्
ातव्यं तत्पदं विष्णोस्तृतीयं यत्प्रतिश्रुतम् । न ददासिकथंवीर निरये च पतिष्यसि

नददासितृतीयं च पदं मे स्वामिनःकथम् । वलाद्गृह्णामि रे मूढइत्युक्त्वातं
ववन्ध वारुणैः पाशैर्विरोचनसुतं तदा ॥ ३१ ॥
नितरांनिष्ठुरोभूत्वागरुडोजयतांवरः । बद्धंस्वपतिमालोक्यविन्ध्यावलिःस
बाणमेकं समारोप्य वामनस्याग्रतः स्थिता । वामनेनतदापृष्टा केयं चात्राग्रत
तदोवाच महातेजाः प्रह्लादो ह्यसुराधिपः । वलेःपत्नीतित्वांप्राप्ताइयंविन्ध्याव
प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा वामनो वाक्यमब्रवीत् ।
ब्रूहि विंध्यावले ! वाक्यं किं कार्यं ते करोम्यहम् ॥
एवमुक्ता भगवता विंध्यावलिरभाषत ॥ ३५ ॥

विन्ध्यावलिरुवाच

कस्माद्बद्धो मम पतिर्गरुडेन महात्मना । तत्कथ्यतां महाभाग त्वरन्नेव ज
तदोवाच महातेजा वटुवेषधरो हरिः ॥ ३६ ॥

श्रीभगवानुवाच

अनेनैव प्रदत्तामे मही त्रिपदलक्षणा । पदद्वयेन च मयाक्रांतं त्रैलोक्यमद्य वै ।
अनेन मम दातव्यं तृतीयं पदमेव च । तस्माद्बद्धो मया साध्वि गरुडेनैव ते
श्रुत्वा भगवतो वाक्यमुवाच परमं वचः । प्रतिश्रुतमनेनैव न दत्तं हि तव
क्रान्तंत्रिभुवनं चाद्यत्वया विक्रमरूपिणा । तदस्माकंविजह्नीथाःस्वर्गंवाप्यथ
किंचिन्न दत्ता हि विभो देवदेव जगत्पते । प्रहस्य भगवानाह तदा विंध्याव
पदानि त्रीणि मे चाद्य दातव्यानि कुतोऽधुना । शीघ्रं वदविशालाक्षियत्तेमन
तदोवाच च सा साध्वी ह्युरुक्रममवस्थिता ॥ ४२ ॥
(त्वया कुतो चेयमुरुक्रमेण क्रान्ता त्रिलोकी भुवनैकनाथ ! ।
तथैव सर्वं जगदेकबन्धो देयं किमस्माभिरतुल्यरूपिणे ॥ ४३ ॥
तस्माद्विहाय तद्विष्णो त्वमेवं कुरुसंप्रति । प्रतिश्रुतानि मे भर्त्रापदानित्रीणिव
ददाति मे पतिस्तेद्य नात्र कार्या विचारणा ॥ ४४ ॥
निधेहि मे पदं त्वं हि शीर्ष्णिदेववरप्रभो । द्वितीयं मे शिशोस्त्वंहिकुरुमूर्ध्निज

तीयं च जगन्नाथ कुरु शीर्षिण पतेर्मम । एवं त्रीणि पदानीश तवदास्यामि केशव
स्यास्तद्वचनं श्रुत्वा परितुष्टो जनार्दनः । उवाच श्लक्ष्णया वाचाविरोचनसुतंप्रति

भगवानुवाच

तलं गच्छ दैत्येन्द्र मा विलंबितुमर्हसि । सर्वैश्चासुरसंघैश्च चिरंजीवसुखी भव ॥
रितुष्टोऽस्म्यहं तात किं कार्यं करवाणि ते । सर्वेषामपिदातॄणांवरिष्ठोऽसिमहामते
रं वरय भद्रं ते सर्वान्कामान्ददामि ते । त्रिविक्रमेणैवमुक्तो विरोचनसुतस्तदा ॥
मुक्तो हि परिष्वक्तो देवदेवेन चक्रिणा । तदा बलिरुवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः
त्वया कृतमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम् । तस्मान्न कामये किंचित्त्वत्पदाब्जं विनाप्रभो
क्तिरस्तु पदांभोजे तव देव जनार्दन । भूयोभूयश्च देवेश भक्तिर्भवतु शाश्वती ॥
वमभ्यर्थितस्तेन भगवान्भूतभावनः । उवाच परमप्रीतो विरोचनसुतं तदा ॥५४॥

भगवानुवाच

ले त्वं सुतलं याहि ज्ञातिसंबंधिभिर्वृतः । एवमुक्तस्तदा तेन असुरो वाक्यमब्रवीत्
सुतले किं नु मे कार्यं देवदेव वदस्व मे । तिष्ठामि तव सांनिध्ये नान्यथा वक्तुमर्हसि
दोवाच हृषीकेशो बलिं तं कृपयाऽन्वितः । अहं तव समीपस्थो भवामि सततंनृप

द्वारि स्थितस्तव विभो ! निवसामि नित्यं माखिद्यतामसुरवर्य बलेश्शृणुष्व
वाक्यं तु मे वरमहो वरदस्तवाद्य वैकुंठवासिभिरलं च भजामि गेहम् ॥

च्छ्रुत्वावचनं तस्य विष्णोरतुलतेजसः । जगाम सुतलं दैत्यो ह्यसुरैः परिवारितः ॥
दा पुत्रशतेनैव वाणमुख्येन सत्वरम् । वसमानो महाबाहुर्दातॄणां च परा गतिः ॥

त्रैलोक्ये याचका ये च सर्वे यान्ति बलिं प्रति ।
द्वारि स्थितस्तस्य विष्णुः प्रयच्छति यथेप्सितम् ॥ ६१ ॥

मुक्तिकामाश्चयेकेचिन्मुक्तिकामास्तथा परे । येषांयज्ञे च ते विप्रास्तत्तेभ्यःसंप्रयच्छति
एवंविधो बलिर्जातः प्रसादाच्छंकरस्य च । पुरा हि कितवत्वेन यद्दत्तं परमात्मने ॥
अशुचिं भूमिमासाद्य गन्धपुष्पादिकं महत् । पतितं चार्पितं तेन शिवाय परमात्मने
किं पुनःपरयाभक्त्याचार्चयन्तिमहेश्वरम् । गंधं पुष्पंफलं तोयं ते यांतिशिवसन्निधिम्

शिवात्परतरो नास्ति पूजनीयो हि भो द्विजाः ! ।
ये हि मूकास्तथांधाश्च पंगवो ये जडास्तथा ॥ ६६ ॥
जातिहीनाश्चचण्डालाःश्वपचाह्यंत्यजाह्यमी । शिवभक्तिपरानित्यंतेयान्तिपरा
तस्मात्सदाशिवःपूज्यःसर्वैरेवमनीषिभिः । पूजनीयो हि सम्पूज्योह्यर्चनीयः
महेशं परमार्थज्ञाश्चिंतयंति हृदिस्थितम् । यत्र जीवो भवत्येव शिवस्तत्रैव
विना शिवेन यत्किंचिदशिवं भवति क्षणात् । ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्चगुणकार्य
रजोगुणान्वितोब्रह्माविष्णुःसत्त्वगुणान्वितः । तमोगुणाश्रितोरुद्रोगुणातीतो
(लिंगरूपो महादेवो ह्यर्चनीयो मुमुक्षुभिः । शिवात्परतरो नास्ति भुक्तिमुक्ति

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्व
केदारखण्डे बलये वरप्रदानवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९॥

विंशोऽध्यायः

लिङ्गरूपीशिवस्य कथं निर्गुणत्वमिति वर्णनम्

ऋषय ऊचुः

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्चसगुणाःकीर्तितास्त्वया । लिङ्गरूपीतथैवेशो निर्गुणोऽसौ
त्रिभिर्गुणैर्व्याप्तमिदं चराचरं जगन्महद्व्याप्यथ वाल्पकं वा ।
मायामयं सर्वमिदं विभाति लिङ्गं विना केन कुतो विभाति ॥ २॥
यद्दृश्यमानं महदल्पकं च तन्नश्वरं कृतकत्वाच्च सूत ! ॥ ३ ॥
तस्माद्विमृश्य भोः सूत संशयं छेत्तुमर्हसि । व्याससप्रसादात्सकलंजानासित्वं

सूत उवाच

व्यासेन कथितं सर्वमस्मिन्नर्थे शुकं प्रति ॥

शुक उवाच

रूपी कथं शम्भुर्निर्गुणः कथते त्वया। एतन्मे संशयं तात च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः॥

व्यास उवाच

वत्स ब्रवीम्येतत्पुरा प्रोक्तं च नंदिना। अगस्त्यं पृच्छमानं च येन सर्वंश्रुतंशुक

निर्गुणं परमात्मानं विद्धि लिङ्गस्वरूपिणम्।

परा शक्तिस्तथा ज्ञेया निर्गुणा शाश्वती सती॥ ७॥

कृतमिदं सर्वं गुणत्रयविभावितम्। एतच्चराचरं विश्वं नश्वरं परमार्थतः॥८॥

एव परो ह्यात्मा लिङ्गरूपी निरंजनः। प्रकृत्या सह ते सर्वे त्रिगुणा विलयंगताः

स्मन्नेव ततो लिङ्गं लयनात्कथितं पुरा। तस्माल्लिंगे लयं प्राप्तापराशक्तिःकुतोऽपरे

ता गुणाश्च रुद्रोक्त्या यैरिदं बद्धमेव च। चराचरं महाभाग तस्माल्लिंगं प्रपूजयेत्

लिङ्गं च निर्गुणं साक्षाज्जानीध्वं भो द्विजोत्तमाः!।

लयाल्लिङ्गस्य माहात्म्यं गुणानां परिकीर्त्यते॥ १२॥

रः सुखदाता हि उच्यमानोमनीषिभिः। सर्वोहिकथ्यतेविप्राःसर्वेषामाश्रयोहिसः

शम्भुर्हि कथ्यते विप्रा यस्माच्च शुभसंभवः॥ १४॥

सर्वाणि नामानि सार्थकानि महात्मनः। तेनावृतं जगत्सर्वं शम्भुना परमेष्ठिना

ऋषय उचुः

दा दाक्षायणी चाग्नौ पतिता यज्ञकर्मणि। दक्षस्य च महाभागातिरोधानगतासती

दुर्भूता कदा सूत कथ्यतां तत्त्वयाऽधुना। परा शक्तिर्महेशस्य मिलिता च कथंपुनः

तत्सर्वं महाभाग पूर्ववृत्तं च तत्त्वतः। कथनीयं च अस्माकं नान्योवक्ताऽस्तिकश्चन

सूत उवाच

ज्ञे दाक्षायणी ब्रह्मन्विदग्धावयवा यदा। विना शक्त्या महेशोऽपितताप परमं तपः

लागृहीतवपुषा पर्वते हिमवद्गिरौ। भृङ्गिणा सहविश्वेन नंदिना च तथैव च॥

था चण्डेन मुण्डेन तथान्यैर्बहुभिर्वृतः। दशभिः कोटिगुणितैर्गणैश्च परिवारितः॥

णानां चैव कोट्या च तथा षष्टिसहस्रकैः। एवं तत्र गणैर्देव आवृतो वृषभध्वजः

तपो जुषाणः सहसा महात्मा हिमालयस्याग्रगतस्तथैव।
गणैर्वृतो वीरभद्रप्रधानैः स केवलो मूलविद्याविहीनः ॥ २३ ॥

एतस्मिन्नंतरेदैत्याःप्रादुर्भूता ह्यविद्यया। विष्णुना हि बलिर्बद्धस्तथा ते दै
जाता दैत्यास्ततो विप्राइन्द्रोपद्रवकारकाः। कालखंजामहारौद्राःकालका
निवातकवचाः सर्वे खरावकसंज्ञकाः। अन्ये च बहवो दैत्याः प्रजासंहार
तारको नमुचेः पुत्रस्तपसा परमेण हि। ब्रह्माणं तोषयामास ब्रह्मा तस्य तु
वरान्ददौ यथेष्टांश्च तारकाय दुरात्मने। वरं वृणीष्व भद्रं ते सर्वान्कामान्
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। वरयामास च तदा वरं लोक
यदि मे त्वं प्रसन्नोऽसि अजरामरतांप्रभो। देहि मे यद्विजानासि अजेयत्वं
एवमुक्तस्तदा तेन तारकेण दुरात्मना। उवाच प्रहसन्वाक्यममरत्वं कुतस्
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युरेतज्ज्ञानीहि तत्त्वतः। प्रहस्य तारकः प्राह अजेयत्वं
ब्रह्मोवाच तदा दैत्यमजेयत्वं तवानघ। विनाऽर्भकेण दत्तं वै ह्यर्भकस्त्वां
तदा स तारकः प्राह ब्रह्माणं प्रणतः प्रभो। कृतार्थोऽहं हि देवेश प्रसादात्त
एवं लब्धवरो भूत्वा तारको हि महाबलः। देवान्युद्धार्थमाहूय युयुधे तैः
मुचुकुन्दं समाश्रित्य देवास्ते जयिनोऽभवन्। पुनःपुनर्विकुर्वाणा देवास्ते
मुचुकुन्दबलेनैव जयमापुः सुरास्तदा। किं कर्तव्यं हि चास्माकं युध्यमानै
भवितव्यमिति स्मृत्वागतास्ते ब्रह्मणः पदम्। ब्रह्मणश्चाग्रतोभूत्वाह्यब्रुवंस्ते

देवा ऊचुः

बलिना सहपातालमास्तेऽसौमधुसूदनः। विष्णुंविना हिते सर्वे वृषाद्याःप
दैत्येन्द्रैश्च महाभाग त्रातुमर्हसि नः प्रभो। तदा नभोगता वाणीह्युवाचपरि
हे देवाः क्रियतामाशु ममवाक्यं हि तत्त्वतः। शिवात्मजोयदादेवाभविष्यति
युद्धे पुनस्तारकं च वधिष्यति न संशयः। येनोपायेन भगवाञ्छंभुः सर्व
दारापरिग्रही देवास्तथा नीतिर्विधीयताम्। क्रियतां च परो यत्नोभवद्भिर्नात्
यूयं देवा विजानीध्वमित्युवाचाशरीरवाक्। परं विस्मयमापन्ना ऊचुर्देवाः

ा नभोगतांवाणीमाजग्मुस्तेहिमालयम् । वृहस्पतिंपुरस्कृत्यसर्वेदेवावचोऽब्रुवन्
ालयं महाभागाः सर्वे कार्यार्थगौरवात् । हिमालय महाभागश्रूयतांनोऽधुनावचः
कस्त्रासयत्यस्मान्साहाय्यंतद्वधेकुरु । त्वंशरण्योभवास्माकंसर्वेषां च तपस्विनाम्
तस्मात्सर्वे वयं याता महेन्द्रसहिता विभो ! ॥ ४७ ॥

लोमश उवाच

भ्यर्थितो देवैर्हिमवान्गिरिसत्तमः । उवाच देवान्प्रहसन्वाक्यं वाक्यविदांवरः
द्रमुद्दिश्य तदा ह्युपहाससमन्वितः । अक्षमाश्च वयं सर्वे महेन्द्रेण कृताः सुराः
कुर्मः सुरकार्यं च तारकस्य वधं प्रति । पक्षयुक्ता वयं सर्वे यदिस्यामसुरोत्तमाः
वयं घातयामस्तारकं सह बांधवैः । अचलोऽहं विपक्षश्चकिं कार्यं करवाणि वः
तद्वचनं श्रुत्वा सर्वे देवास्तमब्रुवन् । सर्वे यूयं वयं चैव असमर्था वधं प्रति ॥
तारकस्य महाभाग ! एतत्कार्यं विचिन्त्यताम् ॥ ५२ ॥
साध्यो भवेच्छत्रुस्तारको हि महाबलः । तदोवाच महातेजाहिमवान्ससुरान्प्रति
पायेन भो देवास्तारकं हन्तुमिच्छथ । कथयन्तु त्वरेणैव कार्यं वेत्तुं ममैव हि ॥
तदा सुरैः कथितं सर्वमेतद्वाण्या चोक्तं यत्पुरा कार्यहेतोः ।
श्रुतं तदा गिरिणा वाक्यमेतत्प्रोवाचेदं हिमवान्पर्वतो हि ॥ ५५ ॥
शिवस्य पुत्रेण च धीमता यदा वध्यो दैत्यस्तारको वै महात्मा ।
तदा सर्वं सुरकार्यं शुभं स्याद्वाण्या चोक्तं सत्यमेतद्भवेच्च ॥ ५६ ॥
तस्मात्तदेनत्क्रियतां भवद्भिर्यथा महेशः कुरुते परिग्रहम् ।
कन्या यथा तस्य शिवस्य योग्या निरीक्ष्यतामाशु सुरैरिदानीम् ॥ ५७ ॥
तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्योचुःसुरास्तदा । जनितव्यात्वयाकन्याशिवार्थंकार्यसिद्धये
गां च गिरे वाक्यंकुरुशीघ्रंमहामते । आधारस्त्वं तु देवानांभविष्यसिनसंशयः
को गिरिराजोऽथ देवैः स्वगृहमाविशत् । पत्नींमेनां च पप्रच्छसुरकार्यंसमागतम्
न्यासुकन्यैकासुरकार्यार्थसिद्धये । देवानां च ऋषीणां च तथैव च तपस्विनाम्
न भवति स्त्रीणांकन्याजननमेव च । तथाऽपि जनितव्या च कन्यैका च वरानने

प्रहस्यमेना प्रोवाचस्वपतिं च हिमालयम् । यदुक्तं भवतावाक्यंश्रूयतां मे त
कन्या सदा दुःखकरी नृणां पते ! स्त्रीणां तथा शोककरी महा
तस्माद्विमृश्य सुचिरं स्वयमेव बुद्ध्या यथा हितं शैलपते ! क
हिमवांस्तदुपश्रुत्य प्रियाया वचनं तदा । उवाच वाक्यं मेधावी परोपका
येनयेन प्रकारेण परेषामुपजीवनम् । भविष्यति च तत्कार्यं धीमता पु
स्त्रियापि चैव तत्कार्यं परोपकरणान्वितम् । एवं प्रवर्तिता तेन गिरिणा
दधार जठरे कन्यां मेना भाग्यवती तदा ॥ ६७ ॥
महाविद्या महामायामहामेधास्वरूपिणी । रुद्रकाली च अम्बा च सतीदा
तां विभूतिं विशालाक्षी जठरे परमां सती । बभार सा महाभागामेनाचा
स्तुतिं चक्रुस्तदा देवा ऋषयो यक्षकिन्नराः ।
मेनाया भूरिभाग्यायास्तथा हिमवतोगिरेः ॥ ७० ॥
एतस्मिन्नन्तरे जाता गिरिजा नाम नामतः । प्रादुर्भूता यदा देवी सर्वेषां
देवदुंदुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः । जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोग
पुष्पवर्षेण महता ववृषुर्विबुधास्तथा । तदा प्रसन्नमभवत्सर्वं त्रैलोक्यमे
यदाऽवतीर्णा गिरिजा महासती तदैव दैत्या भयमाविशंस्ते।
प्राप्ता मुदं देवगणा महर्षयः सचारणाः सिद्धगणास्तथैव ॥ ७
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे मा
केदारखण्डे श्रीभवान्युत्पत्तिवर्णनंनाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

———

एकविंशोऽध्यायः

हिमालयस्य शिवसमीपे गमनम्

लोमश उवाच

र्द्धमाना तदा साध्वी रराज प्रतिवासरम् । अष्टवर्षा यदा जाता हिमालयगृहे सती ॥
हेशो हिमवद्द्रोण्यां तताप परमं तपः । सर्वैर्गणैः परिवृतो वीरभद्रादिभिस्तदा ॥
तत्तपो जुषाणं तं महेशं हिमवान्ययौ । तत्पादपल्लवं द्रष्टुं पार्वत्या सह बुद्धिमान्
ावत्समागतोद्रष्टुंनंदिनासौनिवारितः । द्वारिस्थितेन च तदाक्षणमेकंस्थिरोऽभवत्
नर्विज्ञापयामास नन्दिना हिमवान्गिरिः । विज्ञप्तो नंदिना शम्भुरचलो द्रष्टुमागतः
दाकर्ण्य वचस्तस्य नन्दिनः परमेश्वरः । आनयस्व गिरिं चात्र नंदिनंवाक्यमब्रवीत्
थेति मत्वा नन्दी तं पर्वतं च हिमाचलम् । आनयामास सतथा शंकरं लोकशंकरम्

दृष्ट्वा तदानीं सकलेश्वरं प्रभुं तपो जुषाणं विनिमीलितेक्षणम् ॥ ८ ॥
कपर्दिनं चन्द्रकलाविभूषणं वेदान्तवेद्यं परमात्मनि स्थितम् ।
ववंद शीर्ष्णा च तदा हिमाचलः परां मुदं प्रापदहीनसत्त्वः ॥ ९ ॥
उवाच वाक्यं जगदेकमंगलं हिमालयो वाक्यविदां वरिष्ठः ॥ १० ॥

भाग्योऽहं महादेव प्रसादात्तव शंकर ! । प्रत्यहं चागमिष्यामि दर्शनार्थं तव प्रभो
नया सह देवेश अनुज्ञां दातुमर्हसि । श्रुत्वा तु वचनं तस्य देवदेवो महेश्वरः ॥
ागंतव्यं त्वया नित्यं दर्शनार्थं ममाचल । कुमारीं च गृहेस्थाप्यनान्यथाममदर्शनम
चलः प्रत्युवाचेदं गिरीशं नतकंधरः । कस्मान्मयानया सार्द्धं नागन्तव्यंतदुच्यताम

अचलं च व्रती शंभुः प्रहसन्वाक्यमब्रवीत् ॥ १४ ॥

यं कुमारी सुश्रोणी तन्वी चारुप्रभाषिणी । नानेतव्या मत्समीपे वारयामिपुनःपुनः

एतच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शम्भोर्निरामयं निःस्पृहनिष्ठुरं वा ।
तपस्विनोक्तं वचनं निशम्य उवाच गौरी च विहस्य शम्भुम् ॥ १६ ॥

गौर्युवाच

तपःशक्त्यान्वितःशम्भोकरोषि विपुलं तपः। तव बुद्धिरियं जातातपस्तमु

कस्त्वं का प्रकृतिः सूक्ष्मा भगवंस्तद्विमृश्यताम्।

पार्वत्यास्तद्वचः श्रुत्वा महेशो वाक्यमब्रवीत्॥ १८॥

तपसा परमेणैव प्रकृतिंनाशयाम्यहम्। प्रकृत्या रहितः सुभ्रु! अहं तिष्ठामि

तस्माच्च प्रकृतेः सिद्धैर्न कार्यः संग्रहः क्वचित्॥ १९॥

पार्वत्युवाच

यदुक्तं परया वाचा वचनं शंकर! त्वया।

सा किं प्रकृतिर्नैव स्यादतीतस्तां भवान्कथम्॥ २०॥

यच्छृणोषि यदश्नासियच्चपश्यसिशंकर। वाग्वादेन च किं कार्यमस्माकं चा

तत्सर्वं प्रकृतेः कार्यं मिथ्यावादो निरर्थकः। प्रकृतेः परतो भूत्वा किमर्थंतप

त्वया शम्भोऽधुना ह्यस्मिन्गिरौ हिमवति प्रभो!।

प्रकृत्या मिलितोऽसि त्वं न जानासि हि शंकर!॥ २३॥

वाग्वादेन च किं कार्यमस्माकं चाधुनाप्रभो। प्रकृतेः परतस्त्वं च यदिसत्यं

तर्हि त्वया न भेतव्यं मम शंकर! संप्रति॥ २४॥

प्रहस्य भगवान्देवो गिरिजां प्रत्युवाच ह॥ २५॥

महादेव उवाच

प्रत्यहं कुरु मे सेवां गिरिजे! साधुभाषिणि!॥ २६॥

इत्येवमुक्त्वा गिरिजां महेशो हिमालयं वाक्यमथो बभाषे।

अत्रैव सोऽहं तपसा परेण चरामि भूम्यां परमार्थभावः॥ २७॥

तपस्तप्तुमनुज्ञा मे दातव्या पर्वताधिप। अनुज्ञया विना किंचित्तपः कर्तुं न प

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य देवदेवस्य शूलिनः। प्रहस्य हिमवाञ्छंभुमिदं वचनम

त्वदीयं हि जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्। किमहं तु महादेव तुच्छो भूत्वा द

एवमुक्तो हिमवता शंकरो लोकशंकरः। प्रहस्य गिरिराजं तं याहीति प्राह

ंकरेणाभ्यनुज्ञातः स्वगृहं हिमवान्ययौ । सार्द्धं गिरिजयासोऽपिप्रत्यहं दर्शनेस्थितः

एवं कतिपयः कालो गतश्चोपासनात्तयोः ॥ ३३ ॥

ुतापित्रोश्च तत्रैव शङ्करो दुरतिक्रमः । पार्वतीं प्रति तत्रैव चिन्तामापेदिरे सुराः ॥

ते चिन्त्यमानाश्च सुरास्तदानीं कथं महेशो गिरिजां समेष्यति ।

किं कार्यमद्यैव वयं च कुर्मो बृहस्पते ! तत्कथयस्व मा चिरम् ॥ ३५ ॥

बृहस्पतिरुवाचेदं महेन्द्रं प्रति सद्वचः । एवमेतत्त्वया कार्यं महेन्द्र ! श्रूयतां तदा ॥

एतत्कार्यं मदनेनैव राजन्नान्यः समर्थो भविता त्रिलोके ।

विप्लावितं तापसानां तपो हि तस्मात्त्वरात्प्रार्थनीयो हि मारः ॥ ३७ ॥

गुरोर्वचनमाकर्ण्य आह्वयन्मदनं हरिः । आह्वानादाजगामाथ मदनः कार्यसाधकः ॥३८

रत्या समेतः सह माधवेन स पुष्पधन्वा पुरतः सभायाम् ।

महेन्द्रमागम्य उवाच वाक्यं सगर्वितं लोकमनोहरं च ॥ ३९ ॥

अहमाकारितः कस्माद् ब्रूहि मेऽद्य शचीपते ! ।

किं कार्यं करवाण्यद्य कथ्यतां मा विलंवितम् ॥ ४० ॥

मम स्मरणमात्रेण विभ्रष्टा हि तपस्विनः । त्वमेव जानासि हरे मम वीर्यपराक्रमौ ॥

मम वीर्यं च जानातिशक्तेःपुत्रः पराशरः । एवं चान्ये च बहवो भृग्वाद्याऋषयोह्यमी

गुरुरप्यभिजानाति भार्योतथ्यस्य चैव हि ।

तस्यां जातो भरद्वाजो गुरुणा संकरो हि सः ॥ ४३ ॥

भर द्वाजो महाभाग इत्युवाच गुरुस्तदा । जानातिमम वीर्यं च शौर्यं चैव प्रजापतिः

क्रोधो हि मम बन्धुश्च महाबलपराक्रमः । उभाभ्यां द्रावितं विश्वं जंगमाजंगमंमहत्

ब्रह्मादिस्तंबपर्यंतं प्लावितं सचराचरम् ॥ ४५ ॥

देवा उचुः

मदनत्वं समर्थोसि अस्माञ्जेतुं सदैव हि । महेशं प्रति गच्छाशु सुरकार्यार्थसिद्धये

पार्वत्या सहितं शम्भुं कुरुष्वाद्य महामते ॥ ४६ ॥

एवमभ्यर्थितो देवैर्मदनो विश्वमोहनः । जगाम त्वरितो भूत्वा अप्सरोभिःसमन्वितः

तत्तो जगामाशु महाधनुर्द्धरो विस्फार्य चापं कुसुमान्वितं महत्।
तथैव बाणांश्च मनोरमांश्च प्रगृह्य वीरो भुवनैकजेता।
तस्मिन्हिमाद्रौ परिदृश्यमानोऽवनौ स्मरो योधयतां वरिष्ठः॥ ४८
तत्रागता तदारम्भाउर्वशीपुंजिकस्थली। सुम्लोचामिश्रकेशी च सुभगा च
अन्याश्च विविधा जाताः साहाय्ये मदनस्य च। अप्सरसोगणैर्दृष्टामदनेन सं
सर्वे गणाश्च सहसा मदनेन विमोहिताः। भृङ्गिणा च तदा रंभा चण्डेनसह
मेनका वीरभद्रेण चण्डेन पुंजिकस्थली। तिलोत्तमादयस्तत्र संवृताश्च गणै
उन्मत्तभूतैर्बहुभिस्त्रपांत्यक्त्वामनीषिभिः। अकालेकोकिलाभिश्चव्याप्तमासीन्मह
अशोकाश्चंपकाश्चूता यूथ्यश्चैव कदंबकाः। नीपाःप्रियालाःपनसाराजवृक्षाश्च
द्राक्षावल्ल्यः प्रदृश्यंते बहुला नागकेशराः। तथा कदल्यः केतक्यो भ्रमरैरुपशो
मत्तामदनसंगेन हंसीभिः कलहंसकाः। करेणुभिर्गजा ह्यासञ्छिखंडीभिः शि
निष्कामा ह्यातुरा ह्यासञ्छिवसंपर्कजैर्गुणैः। अकस्माच्च तथाभूतं कथंजातंवि
शैलादो हि महातेजानंदीह्यमितविक्रमः। रक्षसांविबुधानां वा कृत्यमस्तीत्यचि
एतस्मिन्नंतरे तत्र मदनो हि धनुर्द्धरः। पंचबाणान्समारोप्य स्वकीये धनुषि
तरोश्छायां समाश्रित्य देवदारुगतां तदा॥ ५९॥
निरीक्ष्य शंभुं परमासने स्थितं तपो जुषाणं परमेष्ठिनां पतिम्।
गङ्गाधरं नीलतमालकंठं कपर्दिनं चन्द्रकलासमेतम्॥ ६०॥
भुजंगभोगांकितसर्वगात्रं पंचाननं सिंहविशालविक्रमम्।
कर्पूरगौरं परयान्वितं च स वेद्धुकामो मदनस्तपस्विनम्॥ ६१॥
दुरासदं दीप्तिमतां वरिष्ठं महेशमुग्रं सह माधवेन।
यावच्छिवं वेद्धुकामः शरेण तावद्याता गिरिजा विश्वमाता॥
सखीजनैः संवृता पूजनार्थं सदाशिवं मंगलं मंगलानाम्॥ ६२॥
कनककुसुममालां संदधे नीलकण्ठेसितकिरणमनोज्ञादुर्ल्लभा सात
स्मितविकसितनेत्रा चारुवक्त्रं शिवस्य सकलजनजनित्रीवीक्षमाणा

तावद्विद्धः शरेणैव मोहनाख्येन च त्वरात्। विध्यमानस्तदाशम्भुःशनैरुन्मील्यलोचने
दद्दर्श गिरिजां देवोऽब्धिर्यथा शशिनः कलाम् ॥ ६४ ॥
चारुप्रसन्नवदनां विंबोष्ठींसस्मितेक्षणाम्। सुद्विजामग्निजांतन्वींविशालवदनोत्सवाम्
गौरीं प्रसन्नमुद्रां च विश्वमोहनमोहनाम्। यया त्रिलोकरचना कृता ब्रह्मादिभिःसह
उत्पत्तिपालनविनाशकरी च या वै कृत्वाऽग्रतः सत्त्वरजस्तमांसि।
सा चेतनेन दद्दृशे पुरतो हरेण संमोहनी सकलमंगलमंगलैका ॥ ६७ ॥
तां निरीक्ष्य भवो देवो गिरिजां लोकपावनीम्। मुमोहदर्शनात्तस्यामदनेनातुरीकृतः
विस्मयोत्फुल्लनयनो बभूव सहसा शिवः ॥ ६८ ॥
एवं विलोकमानोऽसौ देवदेवो जगत्पतिः। मनसा दूयमानेन इदमाह सदाशिवः ॥
अनया मोहितः कस्मात्तपःस्थोऽहंनिरामयः। कुतःकस्माच्चकेनेदंकृतमस्तिंममाप्रियम्
ततो व्यलोकयच्छंभुर्दिक्षु सर्वासुसादरम्। तावद्दृष्टोदक्षिणस्यांदिशिह्यात्तशरासनः
चक्रीकृतधनुः सज्जं चक्रे वेद्धुं सदाशिवम्। यावत्पुनः संधयति मदनो मदनांतकम् ॥
तावद् दृष्टो महेशेन सरोषेण तदा द्विजाः ॥ ७२ ॥
निरीक्षितस्तृतीयेन चक्षुषा परमेण हि। मदनस्तत्क्षणादेव ज्वालामालावृतोऽभवत्
हाहाकारो महानासीद्देवानां तत्र पश्यताम् ॥ ७३ ॥

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव देवानां वरदो भव। गिरिजायाः सहायार्थं प्रेषितो मदनोऽधुना ॥
वृथा त्वयाऽथ दग्धोऽसौ मदनो हि महाप्रभः ॥ ७५ ॥
त्वया हि कार्यं जगदेकबंधो ! कार्यं सुराणां परमेण वर्चसा।
अस्यां समुत्पत्स्यति देव ! शंभो ! तेनैव सर्वं भवतीह कार्यम् ॥ ७६ ॥
तारकेण महादेव देवाः संपीडिता भृशम्। तदर्थंजीवितंचास्यदत्त्वा च गिरिजांप्रभो
वरयस्व महाभाग देवकार्ये भव क्षमः। गजासुरात्त्वया त्राता वयं सर्वे दिवौकसः
कालकूटाच्चनूनंहिरक्षिताः स्मो न चान्यथा। भस्मासुराच्चसर्वेशत्वयात्रातानसंशयः
मदनोयं समायातः सुराणां कार्यसिद्धये। तस्मात्त्वया रक्षणीय उपकारः परोहिनः

विनातेनजगत्सर्वंनाशमेष्यतिशंकरः । निष्कामस्त्वंकथंशंभोस्वबुद्ध्याचविमृश्य
तदोवाच रुषाविष्टो देवान्प्रति महेश्वरः । विना कामेन भो देवा भवितव्यंनचान्
यदाकामं पुरस्कृत्य सर्वे देवाः सवासवाः । पदभ्रष्टाश्चदुःखेनव्याप्ता दैन्यंसमाश्रि

कामो हि नरकायैव सर्वेषां प्राणिनां ध्रुवम् ।
दुःखरूपी ह्यनंगोऽयं जानीध्वं मम भाषितम् ॥ ८४ ॥

तारकोऽपि दुराचारो निष्कामोऽद्य भविष्यति । विनाकामेनच कथं पापमाचरते
तस्मात्कामो मया दग्धः सर्वेषां शांतिहेतवे । युष्माभिश्च सुरैः सर्वैरसुरैश्च महर्षि
अन्यैः प्राणिभिरेवात्र तपसे धीयतां मनः । कामक्रोधविहीनं च जगत्सर्वं मयाकृ

तस्मादेनं पापिनं दुःखमूलं न जीवयिष्यामि सुराः प्रतीक्ष्यताम् ।
निरन्तरं चात्मसुखप्रबोधमानंदलक्षणमगाधमनन्यरूपम् ॥ ८८ ॥

एवमुक्तास्तदा तेन शंभुना परमेष्ठिना । ऊचुर्महर्षयः सर्वे शंकरं लोकशंकरम् ॥८
यदुक्तं भवता शंभो परं श्रेयस्करं हि नः । किंतुवक्ष्याम देवेश श्रूयतां चावधार्यतां
यथा सृष्टमिदं विश्वं कामक्रोधसमन्वितम् । तत्सर्वं कामरूपं हि सकामो नतुहन्य
धर्मार्थकाममोक्षाश्चचत्वारो ह्येकरूपताम् । नीता येन महादेव स कामोऽयं न हन्यं
कथं त्वयाहि संदग्धः कामोहि दुरतिक्रमः । येनसंघटितंविश्वमाब्रह्मस्थावरात्मकं
कामेन हीयते विश्वंविश्वं कामेनपाल्यते । कामेनोत्पद्यतेविश्वंतस्मात्कामोमहाबल
यस्मात्क्रोधो भवत्युग्रो येनत्वं च वशीकृतः । तस्मात्काममंमहादेवसंबोधयितुमर्हसि
त्वया संपादितो देव मदनो हि महाबलः । समर्थोहि समर्थत्वात्तत्सामर्थ्यंकरिष्यति
ऋषिभिश्चैवमुक्तोऽपि द्विगुणं रूपमास्थितः । चक्षुषा हि तृतीयेन दग्धुकामोहरस्तदा
मुनिभिश्चारणैः सिद्धैर्गणैश्चापि सदाशिवः । स्तुतश्च वंदितोरुद्रः पिनाकी वृषवाहनः
मदनं च तथादग्ध्वा त्यक्त्वा तं पर्वतं रुषा । हिमवंताभिधंसद्यस्तिरोधानगतोऽभवत्
तिरोधानगतं देवी वीक्ष्य दग्धं च मन्मथम् । सकोकिलं सचूतंच सभृंगंसहचंपकम्

तथैव दग्धं मदनं विलोक्य रत्या विलापं च तदा मनस्विनी ।
सबाष्पदीर्घं विमना विमृश्य कथं स रुद्रो वशगो भवेन्मम ॥ १०१ ॥

एवं विमृश्य सुचिरं गिरिजा तदानीं संमोहमाप च सती हि तथा बभाषे
संमुह्यमाना रुदतीं निरीक्ष्य रतिर्महारूपवतीं मनस्विनीम् ॥ १०२ ॥
मा विषादं कुरु सखि ! मदनं जीवयाम्यहम् ।
त्वदर्थं भो विशालाक्षि ! तपसाऽऽराधयाम्यहम् ॥ १०३ ॥
हरं रुद्रं विरूपाक्षं देवदेवं जगद्गुरुम् । मा चिंतां कुरु सुश्रोणि मदनं जीवयाम्यहम्
एवमाश्वास्य तां साध्वी गिरिजां रतिरंजसा । तपस्तेपे च सुमहत्पतिंप्राप्तुंसुमध्यमा
मदनो यत्र दग्धश्च रुद्रेण परमात्मना । तप्यमानां तपस्तत्र नारदो ददृशे तदा ॥
उवाच गत्वा सहसा भामिनीं रतिमंतिके । कस्यासित्वंविशालाक्षिकेनवातप्यतेतपः
तरुणी रूपसंपन्ना सौभाग्येन परेण हि । नारदस्य वचः श्रुत्वा रोषेण महता तदा
उवाच वाक्यं मधुरं किंचिन्निष्ठुरमेव च ॥ १०८ ॥

रतिरुवाच

नारदोऽसि मया ज्ञातः कुमारस्त्वं न संशयः । स्वस्वरूपादर्शनं च कर्तुमर्हसि सुव्रत
यथागतेनमार्गेणगच्छत्वंमाविलंबितम् । वटोनकिंचिज्ज्ञानासिकेवलंकलिकृन्महान् ॥
परस्त्रीकामुकाःक्षुद्राविटाव्यसनिनश्चये । तथाह्यकर्मिणःस्तब्धास्तेषांमध्येत्वमग्रणीः
एवं निर्भर्त्सितो रत्या नारदो मुनिसत्तमः । स्वयं जगाम त्वरितं शंवरं दैत्यपुंगवम्
शशंस दैत्यराजाय दग्धं मदनमेव च । रुद्रेण क्रोधयुक्तेन तस्य भार्या मनस्विनी ॥
तामानय महाभाग भार्यां कुरु महाबलः । अतीव रूपसंपन्ना या आनीतास्त्वयाऽनघ
तासां मध्ये रूपवती रतिः सा मदनप्रिया ॥ ११४ ॥
एवमाकर्ण्य वचनं देवर्षेर्भावितात्मनः । जगाम सहसा तत्र यत्रास्ते सा सुशोभना ॥
तां दृष्ट्वा सुविशालक्षीं रतिं मदनमोहिनीम् । उवाच प्रहसन्वाक्यं शंवरो देवसंकटः ॥
एहि तन्वि ! मया सार्द्धं राज्यं भोगान्यथेष्टतः ।
भुंक्ष्व देवि ! प्रसादान्मे तपसा किं प्रयोजनम् ॥ ११७ ॥
एवमुक्ता तदा तेन शंवरेण महात्मना । उवाच तन्वी मधुरं महिषी मदनस्य सा ॥
विधवाऽहं महावाहो नैव भाषितुमर्हसि । राजा त्वं सर्वदैत्यानां लक्षणैःपरिवारितः

एतत्तद्वचनं श्रुत्वा शंबरः काममोहितः । करे ग्रहीतुकामोऽसौ तदा रत्या नि
विमृश्य मनसा सर्वमजेयत्वं च तस्य वै । मा स्पृश त्वं च रे मूढ ममसंस्पर्श
संपर्केण च दग्धोऽसि नान्यथा मम भाषितम् । तदोवाच महातेजाःशंबरःप्रह
विभीषिकाभिर्बह्वीभिर्माभीषयसिमानिनि । गच्छ शीघ्रंमम गृहं बहूक्त्याकिंप्रयो
इत्युच्यमानेन तदा नीता सा प्रसभं तथा । स्वपुरं परमं तन्वी शंबरेण मनस्वि
कृता महानसेऽध्यक्षा नाम्ना मायावतीति च ॥ १२५ ॥

ऋषय ऊचुः

पार्वत्याधिकृतं सर्वं मदनानयनं प्रति । शंबरेण हृता तन्वी मदनस्य प्रिया स
अत ऊर्ध्वं तदा सूत किं जातं तत्र वर्ण्यताम् ॥ १२६ ॥

सूत उवाच

गतं तदा शिवं दृष्ट्वा दग्ध्वा मदनमोजसा । पार्वती तपसायुक्ता स्थितातत्रैवभा
पित्रा तेन तदा तन्वी मात्रा चैव विचारिता । बाले एहि गृहं शीघ्रं मा श्रमंकर्तुम
उक्ता ताभ्यां तदा साध्वी गिरिजा वाक्यमब्रवीत् ॥ १२९ ॥

पार्वत्युवाच

नागच्छामि गृहं मातस्तात मे शृणु तत्त्वतः । वाक्यंधर्मार्थयुक्तंचयेनत्वं तोषमे
शंभुः परेषां परमो दग्धो येन महाबलः । मदनो मम सान्निध्यमानयेऽत्रैव तं
दुर्लभो हि तदा शंभुः प्राणिनां गृहमिच्छताम् ।
नागच्छामि गृहं मातस्तस्मात्सर्वं विमृश्यताम् ॥ १३२ ॥

तदोवाच महातेजा हिमवान्स्वसुतां प्रति । दुराराध्यः शिवः साक्षात्सर्वदेवनमा
त्वया प्राप्तुमशक्यो हि तस्मात्त्वं स्वगृहं व्रज ॥ १३३ ॥

सा बाष्पपूरितेनैव कंठेन स्वसुतां प्रति । उवाच मेना तन्वंगि ! याहि शीघ्रं गृ
तदा प्रहस्य चोवाच मातरं प्रति पार्वती । प्रतिज्ञां शृणु मे मातस्तपसा परमेणगुर
अत्रैव तं समानीय वरयामि विचक्षणम् । नाशयामि च रुद्रस्य रुद्रत्वं वरवर्णि
सुखरूपं परित्यज्य गिरिजा च मनस्विनी । शंभोराराधनं चक्रे परमेण समाधि

[ज]या च विजया चैव माधवी च सुलोचना । सुश्रुता च श्रुता चैव तथैव च शुकीपरा
प्रम्लोचा सुभगा श्यामा चित्रांगी चारुणी स्वधा ।
एताश्चान्याश्च बहवः सख्यस्ता गिरिजां प्रति ॥
उपासांचक्रिरे सा च देवगर्भा च भामिनी ॥ १३९ ॥
[त]पसा परमोग्रेण चरंती चारुहासिनी । मदनो यत्र दग्धश्च रुद्रेण च महात्मना ॥
तत्रैव वेदिं कृत्वा च तस्योपरि सुसंस्थिता ॥ १४० ॥
त्यक्त्वा जलाशनं बाला पर्णादा ह्यभवच्च सा ।
ततः साऽर्द्राणि पर्णानि त्यक्त्वा शुष्काणि चाददे ॥ १४१ ॥
[शु]ष्काणि चैव पर्णानि नाशितानि तया यदा । अपर्णेतिचविख्यातावभूवतनुमध्यमा
[व]ायुपानरता जाता अंबुपानादनंतरम् । कालक्रमेण महता बभूव गिरिजा सती ॥
एकांगुष्ठेन च तदा दधार च निजं वपुः ॥ १४३ ॥
[ए]वमुग्रेण तपसा शंकराराधनं सती । चकार परया तुष्ट्या शंभोः प्रीत्यर्थमेव च ॥
[प]रं भावं समाश्रित्य जगन्मंगलमंगला । तुष्ट्यर्थं च महेशस्य तताप परमं तपः ॥
[ए]वं दिव्यसहस्राणि वर्षाणि च ततापं वै । हिमालयस्तदागत्य पार्वतीं कृतनिश्चयाम्
[स]भार्यः स सुतामाह उवाच च महासतीम् । मा खिद्यतां महादेवितपसानेनभामिनि
[न]हि रुद्रो दृश्यते बाले विरक्तोनात्रसंशयः । त्वं तन्वी तरुणीबाला तपसाचविमोहिता
[भ]विष्यति न संन्देहः सत्यं प्रतिवदामि ते । तस्मादुत्तिष्ठ याह्याशु स्वगृहं वरवर्णिनि
किं तेन तव रुद्रेण येनदग्धः पुराऽनघे । मदनो निर्विकारित्वात्तं कथं प्रार्थयिष्यसि
[य]थागनस्थो यथा चंद्रो ग्रहीतुं न हि शक्यते । तथैव दुर्गमःशंभुर्जानीहित्वंशुचिस्मिते
[त]थैव मेनया चोक्ता तथा सह्याद्रिणा सती । मेरुणा मंदरेणैव मैनाकेन तथैव च ॥
[ए]भिरुक्ता तदातन्वी पार्वती तपसिस्थिता । उवाच प्रहसन्तीव हिमवंतं शुचिस्मिता
[प]ुरा प्रोक्तं त्वया तात अंब किं विस्मृतं त्वया । अधुनैवप्रतिज्ञाञ्चश्रृणुध्वंममबांधवाः
[अ]विरक्तोऽसौ महादेवो मदनोयेन वै हतः । तं तोषयामि तपसा शंकरं लोकशंकरम्
[सर्वे]सर्वे यूयं च गच्छन्तु नात्र कार्या विचारणा । दग्धोहि मदनोयेन येनदग्धं गिरेर्वनम्

तमानयामि चात्रैव तपसा केवलेन हि। तपोबलेन महता सुसेव्यो हि सदा

तं जानीध्वं महाभागाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ १५८ ॥

संभाषमाणा जननीं तदानीं हिमालयं चैव तथा च मेनाम्।

तथैव मेरुं मितभाषिणी तदा सा मन्दरं पर्वतराजकन्या ॥

जग्मुस्तदा तेन पथा च पर्वता यथागतेनापि विचक्षमाणाः ॥ १५

गतेषु तेषु सर्वेषु सखीभिः परिवारिता। तत्रैव च तपस्तेपे परमार्था सती

तपसा तेन महता तप्तमासीच्चराचरम्। तदा सुरासुराः सर्वे ब्रह्माणं शरणं

देवा ऊचुः

त्वया सृष्टमिदं सर्वं जगद्देव! चराचरम्। त्रातुमर्हसि देवान्नस्त्वदन्यो नोप

अस्माकं रक्षणे शक्त इत्याकर्ण्य वचस्तदा। विमृश्य च तदा ब्रह्मा मनसा पर

गिरिजातपसोद्भूतं दावाग्निपरमं महत्। ज्ञात्वा ब्रह्मा जगामाशुक्षीराब्धिपर

तत्र सुप्तं सुपल्यंके शेषाख्ये चातिशोभने। लक्ष्म्या पादोपयुगलंसेव्यमानं कि

दूरस्थेनापि तार्क्ष्येण नतकन्धरधारिणा।

सेव्यमानं श्रिया कान्त्या क्षान्त्या वृत्त्या दयादिभिः ॥ १६६ ॥

नवशक्तियुतं विष्णुं पार्षदैः परिवारितम्। कुमुदोऽथ कुमुद्वांश्च सनकश्च सन

सनातनो महाभागः प्रसुप्तो विजयोऽरिजित्। जयन्तश्च जयत्सेनो जयश्चैव म

सनत्कुमारः सुतपा नारदश्चैव तुम्बुरुः। पाञ्चजन्यो महाशंखो गदाकौमोद

सुदर्शनं तथा चापं शार्ङ्गं च परमाद्भुतम्। एतानि वै रूपवन्ति दृष्टानि परमे

विष्णोः समीपे परमामनो भृशं समेत्य सर्वे सुरदानवास्तदा।

विष्णुञ्चाहुः परमेष्ठिनां पतिं तीरे तदानीमुदधेर्महात्मनः ॥ १७१ ॥

त्राहित्राहि महाविष्णो तप्तान्नः शरणागतान्। तपसोग्रेण महतापार्वत्याः पर

शेषासने चोपविष्ट उवाच परमेश्वरः ॥ १७२ ॥

युष्माभिः सहितश्चापि व्रजामि परमेश्वरम्। महादेवंप्रार्थयामो गिरिजांप्रति

पाणिग्रहार्थमधुना देवदेवः पिनाकधृक्। यथा नेष्यति तत्रैव करिष्यामोऽधुन

स्माद्वयं गमिष्यामो यत्र रुद्रो महाप्रभुः । तपसोग्रेण संयुक्तो ह्यास्ते परममंगलः ॥
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा ऊचुः सर्वे सुरासुराः ।
न यास्यामो वयं सर्वे विरूपाक्षं महाप्रभम् ॥ १७९ ॥
यदा दग्धः पुरातेनमदनो दुरतिक्रमः । तथैव धक्ष्यत्यस्माकं नात्र कार्या विचारणा
तस्य भगवान्विष्णुरुवाच परमेश्वरः । मा भयं क्रियतां सर्वैः शिवरूपी सदाशिवः
स न धक्ष्यति सर्वेषां देवानां भयनाशनः। तस्माद्भवद्भिर्गंतव्यं मया सार्द्धं विचक्षणाः
शम्भुं पुराणं पुरुषं ह्यधीशं वरेण्यरूपं च परं पराणाम् ।
तपो जुषाणं परमार्थरूपं परात्परं तं शरणं व्रजामि ॥ १८० ॥

इति श्रीस्कांदे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे पार्वतीतपश्चर्यावर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

ब्रह्मादिदेवानां शिवसमीपे गमनम्

सूत उवाच

एवमुक्तास्तदा देवाविष्णुना परमेष्ठिना । जग्मुः सर्वेमहेशं च द्रष्टुकामाःपिनाकिनम्
परे पारे समुद्रस्य परमेण समाधिना । योगपीठे स्थितं शम्भुं गणैश्च परिवारितम्
यज्ञोपवीतविधिना उरसा बिभ्रतं वृतम् । वासुकिं सर्पराजं च कम्बलाश्वतरौ तथा
कर्णद्वये धारयंतं तथा कर्कोटकेन हि । पुलहेन च बाहुभ्यां धारयंतं च कङ्कणे ॥४॥
सन्नूपुरे शङ्खकपद्मकाभ्यां संधारयन्तं च विराजमानम् ।
कर्पूरगौरं शितकण्ठमद्भुतं वृषान्वितं देववरं ददर्शुः ॥ ५ ॥
तदा ब्रह्मा च विष्णुश्च ऋषयो देवदानवाः। तुष्टुवुर्विविधैः सूक्तैर्वेदोपनिषदन्वितैः ॥

ब्रह्मोवाच

नमो रुद्राय देवाय मदनान्तकराय च । भर्गाय भूरिभाग्याय त्रिनेत्राय त्रि
शिपिविष्टाय भीमाय शेषशायिन्नमोनमः । त्र्यंबकाय जगद्धात्रे विश्वरूपाय वे
त्वं धाता सर्वलोकानांपितामातात्वमीश्वरः । कृपयापरयायुक्तःपाह्यस्मांस्त्व
इत्थं स्तुवत्सु देवेषु नन्दी प्रोवाच तान्प्रति । किमर्थमागता यूयं किं वा मनसि
ते प्रोचुर्देवकार्यार्थं विज्ञप्तुं शम्भुमागताः । विज्ञप्तो नन्दिनातेन शैलादेन महात्
ध्यानस्थितो महादेवः सुरकार्यार्थसिद्धये ॥ ११ ॥

ब्रह्मादयः सुरगणाः सुरसिद्धसंघास्त्वां द्रष्टुमेव सुरवर्य! विशेषतः
कार्य्यार्थिनोऽसुरवरैः परिभर्त्स्यमाना अभ्यागताः सपदि शत्रुभिरा
तस्मात्त्वया हि देवेश त्रातव्याश्चाधुना सुराः । एवं तेनतदाशम्भुर्विज्ञप्तोनंदिना
शनैःशनैरुपरमच्छंभुः परमकोपनः । समाधेः परमात्माऽसावुवाच परमेश्वरः ॥

महादेव उवाच

कस्माद्यूयं महाभागा ह्यागता मत्समीपगाः । ब्रह्मादयो ह्यमी देवा ब्रूत कारणम्
तदा ब्रह्मा ह्युवाचेदं सुरकार्यं महत्तरम् । तारकेण कृतं शम्भो देवानां परमाद्भुत
कष्टात्कष्टतरं देव तद्विज्ञप्तुमिहागताः । हे शम्भो तव पुत्रेण औरसेन हतो भ
तारको देवशत्रुश्च नान्यथा मम भाषितम् ॥ १७ ॥

तस्मात्त्वया गिरिजा देव ! शम्भो ! ग्रहीतव्या पाणिना दक्षिणेन।
पाणिग्रहेणैव महानुभाव ! दत्ता गिरीन्द्रेण च तां कुरुष्व ॥ १८ ॥

ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वा प्रहसन्नब्रवीच्छिवः । यदा मया कृता देवीगिरिजासर्वसु
तदा सर्वे सुरेन्द्राश्च ऋषयो मुनयस्तथा । सकामाश्च भविष्यंति अक्षमाश्च परे
मदनो हि मया दग्धःसर्वेषां कार्यसिद्धये । मयाह्यधिकृतातन्वीगिरिजा च सुमध्य
तदानीमेव भो देवाःपार्वतीमदनं च सा । जीवयिष्यति भो ब्रह्मन्नात्रकार्याविचारय
एवं विमृश्य भो देवाः कार्या कार्यविचारणा । मदनेनैव दग्धेन सुरकार्यं महत्कृत
यूयं सर्वे च निष्कामा मयानास्त्यत्र संशयः । यथाऽहं च सुराःसर्वे तथायूयंप्रचे

पः परमसंयुक्ताः कारयामः सुदुष्करम् । परमानन्दसंयुक्ताः सुखिनः सर्व एव हि ॥
यंसमाधिनातेनमदनेन च विस्मृतम् । कामो हि नरकायैवतस्मात्क्रोधोऽभिजायते
ोधाद्भवति संमोहः सम्मोहाद्भ्रमते मनः । कामक्रोधौ परित्यज्यभवद्भिःसुरसत्तमैः
सर्वैरेव च मन्तव्यं मद्वाक्यं नान्यथा क्वचित् ॥ २७ ॥
वं विश्राव्यभगवान्स हि देवोवृषध्वजः । सुरान्प्रबोधयामासतथाऋषिगणान्मुनीन्
ूष्णींभूतोऽभवच्छंभुर्ध्यानमाश्रित्य वै पुनः । आस्ते पुरा यथावच्चगणैश्चपरिवारितः
यानस्थितं च तं दृष्ट्वानन्दीसर्वान्विसृज्यतान् । सब्रह्मसेन्द्रान्विबुधानुवाचप्रहसन्निव
यथागतेन मार्गेण गच्छध्वं मा विलंबितम् ।
तथेति मत्वा ते सर्वे स्वं स्वं स्थानमथाऽव्रजन् ॥ ३१ ॥
तेषु तेषु सर्वेषुसमाधिस्थोऽभवद्भवः । आत्मानमात्मनाकृत्वाआत्मन्येव विचिंतयन्
रात्परतरं स्वच्छं निर्मलं निरवग्रहम् । निरञ्जनं निराभासं यस्मिन्मुह्यन्ति सूरयः ॥
भानुर्नभात्यग्निरथो शशी वा न ज्योतिरेवं न च मारुतो न हि ।
यं केवलं वस्तुविचारतोऽपि सूक्ष्मात्परं सूक्ष्मतरात्परं च ॥ ३४ ॥
मनिर्देश्यमचिन्त्यं च निर्विकारंनिरामयम् । ज्ञप्तिमात्रस्वरूपं च न्यासिनोयांतितत्रवै
शब्दातीतं निर्गुणं निर्विकारं सत्तामात्रं ज्ञानगम्यं त्वगम्यम् ।
यत्तद्वस्तु सर्वदा मथ्यते वै वेदातीतैश्चागमैर्मन्त्रभूतैः ॥ ३६ ॥
तद्वस्तुभूतो भगवान्स ईश्वरः पिनाकपाणिर्भगवान्वृषध्वजः ।
येनैव साक्षान्मकरध्वजो हतस्तपो जुषाणः परमेश्वरः सः ॥ ३७ ॥

लोमश उवाच

गिरिजा हि तदा देवी तताप परमं तपः । तपसा तेन रुद्रोऽपि उत्तमं भयमागतः ॥
विजित्य तपसा देवी पार्वतीपरमेण हि । शम्भुं सर्वार्थदं स्थाणुंकेवलंस्वस्वरूपिणम्
यदा जितस्तया देव्यातपसावृषभध्वजः । समाधेश्चलितोभूत्वा यत्रसापार्वतीस्थिता
जगाम त्वरितेनैव देवदेवःपिनाकधृक् । तत्रापश्यत्स्थितांदेवींसखीभिःपरिवारिताम्
वेदिकोपरिविन्यस्तांयथैवशशिनःकलाम् । सदेवस्तांनिरीक्ष्याथवटुर्भूत्वाथतत्क्षणात्

ब्रह्मचारिस्वरूपेण महेशो भगवान्भवः। सखीनां मध्यमाश्रित्य ह्युवाच व
किमर्थमालिमध्यस्था तन्वी सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ ४३ ॥
केयं कस्य कुतो याता किमर्थंतप्यते तपः। सर्वं मे कथ्यतांसख्योयाथातथ्ये
तदोवाच जया रुद्रं तपसः कारणं परम् ॥ ४५ ॥
हिमाद्रेर्दुहितेयं वै तपसा रुद्रमीश्वरम्। प्राप्तुकामा पतित्वेन सेयमत्रोपवि
तपस्तताप सुमत्हसर्वेषां दुरतिक्रमम्। बटो जानीहि मे वाक्यं नान्यथामम
तच्छ्रुत्वा वचनंतस्याः प्रहस्येदमुवाच ह। शृण्वतीनां सखीनां वै महेशो व
मूढेयं पार्वतीसख्यो न जानाति हिताहितम्। किमर्थं च तपः कार्यंरुद्रप्राप्त्य
सोऽमंगलः कपाली च श्मशानालय एव च। अशिवःशिवशब्देनभण्यते च कु
अनया हि वृतो रुद्रो यदा सख्यः समेष्यति। तदेयमशुभा तन्वीभविष्यति
यो दक्षशापाद्धिक्कृतो यज्ञबाह्योऽभवद्धिटः। येह्यंगभूताः शर्वस्य सर्पाह्यासन्
शवभस्मान्वितो रुद्रः कृत्तिवासा ह्यमंगलः। पिशाचैः प्रमथैर्भूतैरावृतो हि
तेन रुद्रेण किं कार्यमनया सुकुमारया। निवार्यतां सखीभिश्च मर्तुकामापि
इन्द्रं हित्वा मनोज्ञं च यमं चैवमहाप्रभम्। नैर्ऋतं च विशालाक्षंवरुणं च अ
कुवेरं पवनं चैव तथैव च विभावसुम्। एवमादीनि वाक्यानि उवाच पर
सखीनां शृण्वतीनां च यत्र सा तपसि स्थिता ॥ ५६ ॥
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य रुद्रस्य बटुरूपिणः। चुकोप च शिवासाध्वीमहेशं व
जये त्वं विजये साध्विप्रम्लोचेऽप्यथ सुन्दरि। सुलोचनेमहाभागेसमीचीनं
किमेतस्य बटोः कार्यं भवतीनामिहाधुना। बटुस्वरूपमास्थाय आगतो देववि
अयं विसृज्यतां सख्यः किमनेन प्रयोजनम्। बटुस्वरूपिणं रुद्रंकुपितासाततो
बटो गच्छाशुत्वरितो न स्थेयं च त्वयाऽधुना। किमनेनप्रलापेनतवनास्तिप्र
बटुर्निर्भर्त्सितस्तत्रतया चैवं तदा पुनः। प्रहस्य वै स्थिरीभूत्वापुनर्वाक्यमथा
शनैःशनैरवितथं विजयां प्रति सत्वरम्। कस्मात्कोपस्तयातन्वि कृतः केनैव
सर्वेषामपि तद्वाच्यं वचनंसूक्तमेव यत्। यथोक्तेन च वाक्येनकस्मात्तन्वी प्र

शम्भुरुच्यतेलोके भिक्षुको भिक्षुकप्रियः। यदि मे ह्यनृतं प्रोक्तं तदाकोपइहोचितः
तावत्सुरूपाचविरूपोऽसौसदाशिवः। विशालाक्षीत्वियंबालाविरूपाक्षो भवस्तथा
वं भूतेन रुद्रेण मोहितेयंकथं भवेत्। सभाग्यो हि पतिःस्त्रीणांसदाभाव्योरतिप्रियः
यं कथंमोहितास्तिनिर्गुणेनगुणात्मिका। न श्रुतो न च विज्ञातो न दृष्टःकेनवाशिवः
कामानां च भूतानां दुर्लभो हि सदाशिवः। तपसा परमेणैव गर्वितेयं सुमध्यमा

निःस्तंभो हि सदा स्थाणुः कथं प्राप्स्यति तं पतिम्।
मयोक्तं किं विशालाक्षि! कस्मान्मे रुषिताऽधुना ॥ ७० ॥
यावद्रोषो भवेन्नृणां नारीणाञ्च विशेषतः।
तेन रोषेण तत्सर्वं भस्मीभूतं भविष्यति ॥ ७१ ॥

कृतं चोर्जितं तन्वि सत्यमेवोदितं सति। कामः क्रोधश्चलोभश्चदम्भोमात्सर्यमेवच
ईर्ष्या च प्रपंचश्च तेनसर्वं विनश्यति। तस्मात्तपस्विभिर्युक्तं कामक्रोधादिवर्जनम्

यदीश्वरो हृदि मध्ये विभाव्यो मनीषिभिः सर्वदा ज्ञप्तिमात्रः।
तदा सर्वैर्मुनिवृत्त्या विभाव्यस्तपस्विभिर्नान्यथा चिंतनीयः ॥ ७४ ॥
एतच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शंभोस्तदाऽब्रवीद्विजया तं च सर्वम्।
गच्छात्र किंचित्तव नास्ति कार्यं न वक्तव्यं वचनं वालिशान्यत् ॥ ७५ ॥

वं विवदमानं तं वटुरूपं सदाशिवम्। विसर्जयामास तदा विजया वाक्यकोविदा
तरोधानं गतः सद्यो महेशो गिरिजां प्रति। अलक्ष्यमाणःसर्वासांसखीनांपरमेश्वरः
ादुर्बभूव सहसा निजरूपधरस्तदा। यदा ध्यानस्थिता देवी निजध्यानपरा सती ॥
दा हृदिस्थोदेवेशोबहिर्दृष्टिचरोऽभवत्। नेत्रेउन्मील्यसासाध्वीगिरिजायतलोचना

अपश्यद्देवदेवेशं सर्वलोकमहेश्वरम् ॥ ७६ ॥

द्विभुजं चैकवक्त्रं च कृत्तिवाससमद्भुतम्। कपर्दं चंद्ररेखाङ्कं निवीतं गजचर्मणा ॥८०
कर्णस्थौ हि महानागौ कंवलाश्वतरौ तदा। वासुकिः सर्पराश्च कृताहारो महाद्युतिः
वलयानि महार्हाणि तदा सर्पमयानि च। कृतानि तेन रुद्रेण तथा शोभाकराणि च
एवंभूतस्तदा शंभुः पार्वतीं प्रति चाग्रतः। उवाच त्वरया युक्तो वरंवरय भामिनि! ॥

व्रीडया परया युक्ता साध्वीप्रोवाच शंकरम् । त्वंनाथोममदेवेशत्वयाकिंवि
दक्षयज्ञविनाशं च यदर्थं कृतवान्प्रभो । स त्वं साहं समुत्पन्ना मेनायां कार्य
देवानां देवदेवेश तारकस्य वधं प्रति । भवतो हि मया देव भविष्यति कु
तस्मात्त्वया हि कर्तव्यंममवाक्यं महेश्वर । गंतव्यंहिमवत्पार्श्वंनात्रकार्याऽवि
याचस्व मां महादेव ऋषिभिः परिवारितः । करिष्यति न संदेहस्तववाक्यं
दक्षकन्या पुराऽहं वै पित्रादत्ता यदा तव । यथोक्तविधिना तत्र विवाहोनकृ
न ग्रहाः पूजितास्तेनदक्षेण च महात्मना । ग्रहाणां विपथत्वेन सच्छिद्रोऽयंम
तस्माद्यथोक्तविधिना कर्तुमर्हसि सुव्रत । विवाहं स्वं महाभागं देवानांकार्य
तदोवाच महाबाहो गिरिजां प्रहसन्निव । स्वभावेनैव तत्सर्वं जंगमाजंगमं

जातं त्वया मोहितं च त्रिगुणैः परिवेष्टितम् ॥ ६२ ॥

अहंकारात्समुत्पन्नं महत्तत्त्वं च पार्वति । महत्तत्त्वात्तमो जातं तमसा वेष्टितं
नभसो वायुरुत्पन्नो वायोरग्निरजायत । अग्नेरापः समुत्पन्ना अद्भ्योजाता
मह्यादिकानि स्थास्नूनि चराणि च वरानने । दृश्यं यत्सर्वमेवैतन्नश्वरं विद्धि

एकोऽनेकत्वमापन्नो निर्गुणो हि गुणावृतः ।
स्वज्योतिर्भाति यो नित्यं परज्योत्स्नान्वितोऽभवत् ॥
स्वतंत्रः परतंत्रश्च त्वया देवि महत्कृतम् ॥ ६६ ॥
मायामयं कृतमिदं च जगत्समग्रं सर्वात्मना अवधृतं परया च बुद्ध्या
सर्वात्मभिः सुकृतिभिः परमार्थभावैः संसक्तिरिंद्रियगणैः परिवेष्टि

के ग्रहाः के उडुगणाः के वाध्यंते त्वया कृताः । विमुक्तश्चाधुनादेविशर्वार्थंवच
गुणकार्यप्रसंगेन आवां प्रादुर्भवः कृतः । त्वं हि वै प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतम
व्यापारदक्षा सततमहं चैव सुमध्यमे । हिमालयं न गच्छामि न याचामि कथं
देहीति वचनात्सद्यः पुरुषो याति लाघवम् । इत्थंज्ञात्वाचभोदेविकिमस्माकंवद
कार्यं त्वदाज्ञया भद्रे तत्सर्वं वक्तुमर्हसि । तेनोक्तात्र तदा साध्वी उवाच कमले
त्वमात्मा प्रकृतिश्चाहं नात्र कार्या विचारणा । तथापिशंभो कर्तव्यं ममचोद्वह

हो ह्यविद्ययाक्षिप्तो विदेहो हि भवान्परः। तथाप्येवं महादेव शरीरावरणं कुरु॥
पञ्चरचनां शंभो कुरु वाक्यान्मम प्रभो। याचस्व मां महादेव सौभाग्यं चैवदेहिमे

इत्येवमुक्तः स तया महात्मा महेश्वरो लोकविडंबनाय।
तथैव मत्वा प्रहसञ्जगाम स्वमालयं देववरैः सुपूजितः॥ १०६॥

तस्मिन्नंतरे तत्र हिमवान्गिरिभिः सह। मेनया भार्यया सार्द्धमाजगाम त्वरान्वितः
र्वतीदर्शनार्थं च सुतैश्च परिवारितः। तेन दृष्टा महादेवी सखीभिः परिवारिता॥
र्वत्या च तदादृष्टोहिमवान्गिरिभिःसहः। अभ्युत्थानपरासाध्वीप्रणम्यशिरसातदा

पितरौ च तदा भ्रातृन्बन्धूंश्चैव च सर्वशः॥ १०६॥
स्वमंकमारोप्य महायशास्तदा सुतां परिष्वज्य च वाष्पपूरितः।
उवाच वाक्यं मधुरं हिमालयः किं वै कृतं साध्वि! यथातथेन॥ ११०॥

त्कथ्यतां महाभागे सर्वं शुश्रूषतां हि नः। तच्छ्रुत्वा मधुरं वाक्यमुवाच पितरं प्रति
पसा परमेणैव प्रार्थितो मदनांतकः। शांतं च मे महत्कार्यं सर्वेषामपि दुर्ल्लभम्॥
त्र तुष्टो महादेवो वरणार्थं समागतः। स मयोक्तस्तदा शंभुर्मम पाणिग्रहः कथम्॥
क्रियते च तदा शंभो मम पित्रा विनाऽधुना। यथागतेनमार्गेणगतोऽसौत्रिपुरांतकः
स्यास्तद्वचनं श्रुत्वा अवाप परमां मुदम्। वंधुभिः सहधर्मात्मा उवाचस्वसुतांपुनः
स्वगृहं चाद्य गच्छामो वयं सर्वे च भूधराः। अनयाराधितोदेवः पिनाकीवृषभध्वजः
त्यूचुस्ते सुराः सर्वे हिमालयपुरोगमाः। पार्वतीसहिताः सर्वे तुष्टुवुर्वाग्भिरादृताः

तां स्तूयमानां च तदा हिमालयो ह्यारोप्य चांसं वरवर्णिनीं च।
सर्वेऽथ शैलाः परिवार्य चोत्सुकाः समानयामासुरथ स्वमालयम्॥११८

देवदुंदुभयो नेदुः शंखतूर्याण्यनेकशः। वदित्राणि वहून्येव वाद्यमानानि सर्वशः॥

पुष्पवर्षेण महता तेनानीता गृहं प्रति॥ १२०॥
सा पूज्यमाना बहुभिस्तदानीं महाविभूत्युल्लसिता तपस्विनी।
तथैव देवैः सह चारणैश्च महर्षिभिः सिद्धगणैश्च सर्वशः॥ १२१॥

पूज्यमाना तदा देवीउवाचकमलासनम्। देवानृषीन्पितॄन्यक्षानन्यान्सर्वान्समागतान्

गच्छध्वं सर्व एवैते येऽन्ये ह्यत्र समागताः। स्वंस्वंस्थानंयथाजोषंसेव्यता

एवं तदानीं स्वपितुर्गृहं गता संशोभमाना परमेण वर्चसा।

सा पार्वती देववरैः सुपूजिता संचिन्तयन्ती मनसा सदाशिवम्॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहे

केदारखण्डे पार्वत्यै शङ्करेण स्वरूपदर्शनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२

त्रयोविंशोऽध्यायः

सप्तर्षीणां कन्यादर्शनार्थं हिमालयगृहगमनम्

लोमश उवाच

एतस्मिन्नंतरे तत्र महेशेन प्रणोदिताः। आजग्मुः सहसा सद्य ऋषयोऽपिहिम

तान्दृष्ट्वा सहसोत्थाय हिमाद्रिः प्रीतमानसः। पूजयामास तान्सर्वानुवाच

किमर्थमागता यूयं ब्रूतागमनकारणम्। तदोचुः सप्त ऋषयो महेशप्रेरिता

समागतास्त्वत्सकाशं कन्यायाश्च विलोकने।

तानस्मान्विद्धि भोः शैल! स्वां कन्यां दर्शयाशु वै॥ ४॥

तथेत्युक्त्वा ऋषिगणानानीता तत्र पार्वती। स्वोत्संगेपरिगृह्याशुगिरीन्द्रःपुत्र

हिमवान्गिरिराजोऽथ उवाच प्रहसन्निव॥ ५॥

इयं सुता मदीया हि वाक्यं शृणुत मे पुनः। तपस्विनांवरिष्ठोऽसौविरक्तोमद

कथमुद्वहनार्थी च येनानंगः कृतः स्मरः। अत्यासन्नेचातिदूरे आढ्ये धनविव

वृत्तिहीने च मूर्खे च कन्यादानं न शस्यते॥ ७॥

मूढाय च विरक्ताय आत्मसंभाविताय च। आतुराय प्रमत्ताय कन्यादानं न

तस्मान्मया विचार्यैव भवद्भिर्ऋषिसत्तमाः। प्रदातव्या महेशाय एतन्मे व्रत

[त]च्छ्रुत्वा गिरिराजस्य वचनं ते महर्षयः। ऐकपद्येन ऊचुस्ते प्रहस्य च हिमालयम् ॥
[त]या कृतं तपस्तीव्रं यया चाराधितः शिवः। तपसा तेन सन्तुष्टःप्रसन्नोऽद्यसदाशिवः
[त]स्यास्तस्य च भोःशैल न जानासि च किंचन। महिमानं परंचैवतस्मादेनांप्रयच्छवै
शिवाय गिरिजामेनांकुरुष्ववचनं हि नः। तच्छ्रुत्वावचनंतेषामृषीणांभावितात्मनाम्
उवाच त्वरया युक्तः पर्वतान्पर्वतेश्वरः। हेमेरो हेनिषध किं गन्धमादन मन्दर ॥
मैनाक! क्रियतामद्य शंसध्वं च यथातथम् ॥ १४ ॥
मेना तदा उवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदा। अधुना किं विमर्शेन कृतं कार्यं तदेवहि
उत्पन्नेयं महाभागा देवकार्यार्थमेव च। प्रदातव्या शिवायेति शिवस्यार्थेऽवतारिता
अनयाराधितो रुद्रो रुद्रेण परिभाविता। इयं सती महाभागा शिवाय प्रतिदीयताम्
निमित्तमात्रं च कृतंतया वै शिवपूजने। एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्यामेनायाःपरिभाषितम्
परितुष्टो हिमाद्रिश्च वाक्यं चेदमुवाच ह। ऋषीन्प्रति निरीक्षंस्तां कन्येयंममसंप्रति

ततः समानीय सुलोचनां तां श्यामां नितंबार्पितमेखलां शुभाम्।
वैडूर्यमुक्तावलयान्दधानां भास्वत्प्रभां चांद्रमसीं व रेखाम् ॥ २० ॥
लावण्यामृतवापिकां सुवदनां गौरीं सुवासां शुभां
दृष्ट्वा ते ह्यृषयोऽपि मोहमगमन्भ्रांतास्तदा सम्भ्रमात्।
नोचुः किञ्चन वाक्यमेव सुधियो ह्यासन्प्रमत्ता इव
स्तब्धाः कान्तिमतीमतीव रुचिरां त्रैलोक्यनाथप्रियाम् ॥ २१ ॥
एवं तदा ते ह्यृषयोऽपि मोहिता रूपेण तस्याः किमुताथ देवताः ॥
तथैव सर्वे च निरीक्ष्य तन्वीं सतीं गिरीन्द्रस्य सुतां शिवप्रियाम् ॥२२॥
ततः पुनश्चैत्य शिवं शिवप्रियाः शशंसुरस्मा ऋषयस्तदानीम् ॥ २३ ॥

ऋषय ऊचुः

भूषिता हि गिरीन्द्रेण स्वसुता नास्ति संशयः। उद्वोढुं गच्छ देवेशदेवैश्चपरिवारितः
गच्छ शीघ्रं महादेव पार्वतीमात्मजन्मने। तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां प्रहस्येदमुवाच ह ॥
विवाहो हि महाभागानदृष्टो न श्रुतोऽपि वा। मयापुराचऋषयःकथ्यतां च विशेषतः

तदोचुर्ऋषयः सर्वे प्रहसंतः सदाशिवम् । विष्णुमाह्वय वै देव ब्रह्माणं च श
तथा ऋषिगणांश्चैव यक्षगन्धर्वपन्नगान् । सिद्धविद्याधरांश्चैवकिंनरांश्चाप्सरोगि
एतांश्चान्यांश्च सुबहूनानयस्वेतिसत्वरम् । तदाकर्ण्यऋषिप्रोक्तंवाक्यंवाक्यविशार
उवाच नारदं देवो विष्णुमानय सत्वरम् । ब्रह्माणं च महेन्द्रं च अन्यांश्चैव ऋ
शम्भोर्वचनमादाय शिरसा लोकपावनः । जगामत्वरितो भूत्वा वैकुण्ठंविष्णुप

दद‍र्श देवं परमासने स्थितं श्रिया च देव्या परिसेव्यमानम् ।
चतुर्भुजं देववरं महाप्रभं नीलोत्पलश्यामतनुं वरेण्यम् ॥ ३२ ॥
महार्हरत्नावृतचारुकुण्डलं महाकिरीटोत्तमरत्नभास्वतम् ।
सुवैजयन्त्या वनमालया वृतं स नारदस्तं भुवनैकसुन्दरम् ॥ ३३ ॥

उवाच नारदोऽभ्येत्य शम्भोर्वाक्यमथादरात् । ब्रह्मवीणांवाद्यमानःसर्वज्ञऋ

एह्येहि त्वं महाविष्णो! महादेवं त्वरान्वितः ।
उद्वाहनार्थं शम्भोश्च त्वमेकः कार्यसाधकः ॥ ३५ ॥

प्रहस्य भगवान्प्राह नारदं प्रति वै तदा । कथमुद्वहने बुद्धिरुत्पन्ना तस्य शू

विज्ञातार्थोऽपि भगवान्नारदं परिपृष्टवान् ॥ ३६ ॥

नारद उवाच

तपसा महता रुद्रः पार्वत्या परितोषितः । स्वयमेवागतस्तत्र यत्रास्ते गिरि
दासोऽहमवदच्छंभुः पार्वत्या परितोषितः । पार्वतीं च समभ्यर्थ्यवरयस्वचभा
त्वरितेनावदच्छंभुस्त्वामाह्वयति सम्प्रति । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो जना

नारदेन समायुक्तः पार्षदैः परिवारितः ॥ ३९ ॥
सुपर्णमारुह्य तदा महात्मा योगीश्वराणां ;प्रभुरच्युतो महान् ।
ययौ तदाऽऽकाशपथा हरिः स्वयं सनारदो देववरैः समेतः ॥ ४० ॥
तं दृष्ट्वा त्वरितं देवो योगिध्येयांघ्रिपङ्कजः ।
अभ्युत्थाय मुदा मुक्तः परिष्वज्य च शार्ङ्गिणम् ॥ ४१ ॥

तदा हरिहरौ देवावैकपद्येन तिष्ठतः । ऊचतुः स्म तदाऽन्योन्यं क्षेमं कुशलमे

ईश्वर उवाच

गिरिजातपसाविष्णोजितोऽहंनात्रसंशयः । पाणिग्रहार्थमेवाद्य गन्तुकामोहिमालयम्
तदर्थेन च भो विष्णोकथयामितवाग्रतः । यदा दक्षेण भो विष्णोप्रदत्ताचपुरासती
तदा च संकल्पविधिना मया पाणिग्रहः कृतः । अधुनैव मया कार्यं कर्मविस्तारणं बहु
यत्कार्यं तन्न जानामि सर्वं पाणिग्रहोचितम् । शम्भोस्तद्वचनं श्रुत्वाप्रहस्यमधुसूदनः
यावद्वक्तुं समारेभे तावद्ब्रह्मा समागतः । इन्द्रेण सह सर्वैश्च लोकपालैस्त्वरान्वितः

तथैव देवासुरयक्षदानवा नागाः पतंगाप्सरसो महर्षयः ।
समेत्य सर्वे परिवक्तुमीशमूचुस्तदानीं शिरसा प्रणम्य ॥ ४८ ॥

गच्छगच्छ महादेव अस्माभिः सहितः प्रभो । ततो विष्णुरुवाचेदं प्रस्तावसदृशंवचः

गृह्योक्तविधिना शंभो कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥ ५० ॥
नान्दीमुखं मण्डपस्थापनं च तथा चैतत्कुरु धर्मेण युक्तम् ।
महानदीसंगमं वर्जयित्वा कुर्वन्ति केचिद्वेदमनीषिणश्च ॥ ५१ ॥

मण्डपस्थापनंचैवक्रियतां ह्यधुना विभो । तथोक्तोविष्णुना शम्भुश्चकारात्महितायवै
ब्रह्मादिभिः कृतं तेन सर्वमभ्युदयोचितम् । ग्रहाणां पूजनं चक्रे कश्यपो ब्रह्मणायुतः
तथाऽत्रिश्च वशिष्ठश्च गौतमोऽथ गुरुर्भृगुः । कण्वोवृहस्पतिःशक्तिर्जमदग्निःपराशरः ॥

मार्कण्डेयः शिलाधाकः शून्यपालोऽक्षतश्रमः ।
अगस्त्यश्च्यवनो गर्गः शिलादोऽथ महामुनिः ॥ ५५ ॥
एते चान्ये च बहवो ह्यागताः शिवसन्निधौ ।
ब्रह्मणा नोदितास्तत्र चक्रुस्ते विधिवत्क्रियाम् ॥ ५६ ॥

वेदोक्तविधिना सर्वे वेदवेदांगपारगाः । चक्रू रक्षां महेशस्य कृतकौतुकमंगलाम् ॥
ऋग्यजुःसामसहितैः सूक्तैर्नानाविधैस्तथा । मंगलानि च भूरीणि ऋषयस्तत्त्ववेदिनः
अभ्यंजनादिकं सर्वं चक्रुस्तस्य परात्मनः । ख्यातः कपर्दस्तस्यैव शिवस्यपरमात्मनः
अनेकैर्मौक्तिकैर्युक्ता मुण्डमालाऽभवत्तदा । ये सर्पा ह्यंगभूताश्च ते सर्वे तत्क्षणादिव

बभूवुर्मंडनान्येव जातरूपमयानि च ॥ ६० ।

सर्वभूषणसंपन्नो देवदेवो महेश्वरः । ययौ देवैः परिवृतःशैलराजपुरं प्रति ॥
चण्डिका वरभगिनी तदा जाता भयावहा । प्रेतासना गताचण्डी सर्पाभरण
हैमं कलशमादाय पूर्णं मूर्ध्ना महाप्रभा । परिवारैर्महाचण्डी दीप्तास्या
तत्र भूतान्यनेकानि विरूपाणि सहस्रशः । तैः समेताग्रतश्चण्डी जगाम वि
तस्याः सर्वे पृष्ठतश्च गणाः परमदारुणाः । कोट्येकादशसंख्याकारौद्रारुद्र
तदा डमरुनिर्घोषव्याप्तमासीज्जगत्त्रयम् । भेरीभांकारशब्देन शंखानां निन
तथा दुंदुभिनिर्घोषैःशब्दःकोलाहलोऽभवत् । गणानांपृष्ठतोभूत्वासर्वेदेवाःसमु
अन्वयुः सर्वसिद्धाश्च लोकपालैः समन्विताः ॥ ६७ ॥
मध्ये व्रजन्महेन्द्रोऽथ ऐरावतमुपास्थितः । शुभ्रेणोच्छ्रियमाणेन छत्रेण प
चामरैर्वीज्यमानोऽसौ सुरैर्बहुभिरावृतः । तदा तु व्रजमानास्त ऋषयोवहवो
भरद्वाजादयो विप्राः शिवस्योद्वहनं प्रति । शाकिन्योयातुधानाश्चवेतालाब्रह्म
भूतप्रेतपिशाचाश्च तथान्यप्रमथादयः । पृच्छमानास्तदाचण्डीं पृष्ठतोऽन्वगमं
क्व गता साऽधुना चण्डी धावमानास्तदा भृशम् ।
प्राप्ता गता व्रजंतीं तां प्रणिपत्य महाप्रभाम् ॥ ७२ ॥
अथ प्रोचुस्तदा सर्वे चण्डीं भैरवसंयुताम् ।
विनाऽस्माभिः कुतो यासि वद चण्डि ! यथा तथा ॥ ७३ ॥
प्रहस्योवाच सा चंडी भूतानां तत्रश्रृण्वताम् । शम्भोरुद्वहनार्थायप्रेतारूढाव्रजा
हैमं कलशमादाय शिरसा बिभ्रती स्वयम् । करवालीस्वरूपेण चंडीजाता तत
भूतैः परिवृता सर्वैः सर्वेषामग्रतोऽव्रजत् । गणास्तामनुजग्मुस्ते गणानांपृष्ठत
इन्द्रादयो लोकपाला ऋषयस्तेऽग्रपृष्ठतः । ऋषीणांपृष्ठतो भूत्वा पार्षदाश्च मह
विष्णोरमितभावज्ञा मुकुंदाद्य मनोरमाः । सर्वे पयोदसंकाशाःस्रग्विणोवनमा
श्रीवत्सांकधराः सर्वे पीतवासोन्विताश्च ते ॥ ७८ ॥
चतुर्भुजाः कुंडलिनः किरीटकटकांगदैः । हारनूपुरसूत्रैश्च कटिसूत्राङ्गुलीय
शोभिताः सर्व एवैते महापुरुषलक्षणाः ॥ ७९ ॥

तेषां मध्ये गतो विष्णुः श्रियोपेतः सुरारिहा ॥ ८० ॥
बभौ त्रिलोकीकृतविश्वमंगलो महानुभावैर्हृदि कृत्य धिष्ठितः ।
शिवेन साकं परमार्थदस्तदा हरिः परात्मा जगदेकवन्धुः ॥ ८१ ॥
स तार्क्ष्यपुत्रोपरि संस्थितो महाँल्लक्ष्म्या समेतो भुवनैकभर्ता ।
स चामरैर्वीज्यमानो मुनींद्रैः सर्वैः समेतो हरिरीश्वरो महान् ॥ ८२ ॥
तथा विरंचिर्निजवाहनस्थो वेदैः समेतः सह षड्भिरंगैः ।
तथाऽऽगमैः सेतिहासैः पुराणैः स संवृतो हेमगर्भो बभूव ॥ ८३ ॥
वेधोहरिभ्यां च तदा सुरेन्द्रैः समावृतश्चर्षिभिः संपरीतः ।
वृषारूढो वृषकेतुर्दुरापो योगीश्वरैरपि सर्वैरगम्यः ॥ ८४ ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं वृषभं धर्मवत्सलम् । समेतो मातृभिश्चैव गोभिश्च कृतलक्षणम् ॥
एभिस्समेतोऽसुरदानवैः सह ययौ महेशो विबुधैरलंकृतः ।
हिमालयं गिरिवर्यं तदानीं पाणिग्रहार्थं प्रमदोत्तमायाः ॥८६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे श्रीशिवस्य विवाहवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

हिमालयगृहे गर्गाचार्येण मण्डपरचनाकरणम्

लोमश उवाच

तथैव सर्वं परया मुदान्वितश्चक्रे गिरीन्द्रः स्वसुतार्थमेव ।
गर्गं पुरस्कृत्य महानुभावो मांगल्यभूमिं परया विभूत्या ॥ १ ॥
आहूय विश्वकर्माणं कारयामास सादरम् । मंडपं च सुविस्तीर्णवेदिकाभिर्मनोरमम् ॥

अयुतेनैव विस्तारं योजनानां द्विजोत्तमाः । मंडपं च गुणोपेतं नानाश्चर्यसमन्वितम्
स्थावरं जंगमं चैव सदृशं च मनोहरम् । जंगमं च जितं तत्र स्थावरेण तथा...
जंगमेन च तत्रैव जितं स्थावरमेव च । पयसा च जिता तत्र स्थलभूमिश्च वि...

जलं किं नु स्थलं तत्र न विदुस्तत्त्वतो जनाः ।
क्वचित्सिंहाः क्वचिद्धंसाः सारसाश्च महाप्रभाः ॥ ६ ॥
क्वचिच्छिखंडिनस्तत्र कृत्रिमाः सुमनोहराः ।
तथा नागाः कृत्रिमाश्च हयाश्चैव तथा मृगाः ॥ ७ ॥

के सत्याः के असत्याश्चसंस्कृताविश्वकर्मणा । तथैवचैवं विधिनाद्वारपाश्च...

पुंसो धनूंषि चोत्कृष्य स्थावरा जंगमोपमाः ।
तथाश्वाः सादिभिश्चैव गजाश्च गजसादिभिः ॥ ९ ॥

चामरैर्वीज्यमानाश्चकेचित्पुष्पांकुरान्विताः । केचिच्चपुरुषास्तत्रविरेजुःसवि...

कृत्रिमाश्च तथा बह्व्यः पताकाः कल्पितास्तथा ।
द्वारि स्थिता महालक्ष्मीः क्षीरोदधिसमुद्भवा ॥ ११ ॥
गजाः स्वलंकृता ह्यासन्कृत्रिमा ह्यकृतोपमाः ।
तथाऽश्वाः सादिभिश्चैव गजाश्च गजसादिभिः ॥ १२ ॥

रथा रथियुता ह्यासन्कृत्रिमा ह्यकृतोपमाः । सर्वेषां मोहनार्थायतथा च संस्कृ...
महाद्वारि स्थितो नंदी कृतस्तेन हि मंडपे । शुद्धस्फटिकसंकाशो यथानन्दी...
तस्योपरि महद्दिव्यं पुष्पकं रत्नभूषितम् । राजितं पल्लवच्छत्रैश्चामरैश्चसुशोभि...
वामपार्श्वेगजौ द्वौ च शुद्धकाश्मीरसन्निभौ । चतुर्दन्तौषष्टिवर्षौमहात्मानौ म...
तथैव दक्षिणे पार्श्वे द्वावश्वौ दंशितौ कृतौ । रत्नालंकारसंयुक्ताँल्लोकपालांस्...
षोडश प्रकृतीस्तेन याथातथ्येन धीमता । सर्वे देवा यथार्थेन कृता वै विश्वक...
तथैव ऋषयः सर्वे भृग्वाद्याश्च तपोधनाः । विश्वे च पार्षदैःसाकमिंद्रो हि प...
कृताः सर्वे महात्मानो याथातथ्येन धीमता । एवंभूतः कृतस्तेन मंडपो दिव्य...
अनेकाश्चर्यसंभूतो दिव्यो दिव्यविमोहनः । एतस्मिन्नंतरे तत्र आगतो नारदो...

ह्मणा नोदितस्तत्र हिमालयगृहं प्रति । नारदोऽथ ददर्शाग्रे आत्मानं विनयान्वितम्
तो हि नारदस्तेन कृत्रिमेण महायशाः । अवलोकपरस्तत्र चरितं विश्वकर्मणेः ॥
विष्टो मण्डपं तस्य हिमाद्रे रत्नचित्रितम् । सुवर्णकलशैर्जुष्टं रंभाद्यैरुपशोभितम् ॥
हस्रस्तम्भसंयुक्तं ततोऽद्रिः स्वगणैर्वृतः । तमृषिं पूजयामास किं कार्यमितिपृष्टवान्

नारद उवाच

गतास्ते महात्मानो देवा इन्द्रपुरोगमाः । तथा महर्षयः सर्वे गणैश्च परिवारिताः
महादेवो वृषारूढो ह्यागतोद्वहनं प्रति ॥ २६ ॥
तस्तद्वचनं श्रुत्वा हिमवान्गिरिसत्तमः । उवाच नारदं वाक्यं प्रशस्तमधुरं महत् ॥
पूजयित्वा यथान्यायं गच्छ त्वं शंकरं प्रति ॥ २८ ॥
तस्तद्वचनं श्रुत्वा मुनिर्हिमवतो गिरेः । तथैव मत्वा वचनं शैलराजानमब्रवीत् ॥
मैनाकेन च सह्येन मेरुणा गिरिणा सह ॥ २६ ॥
एभिः समेतो ह्यधुना महामते ! यतस्व शीघ्रं शिवमत्र चानय ।
देवैः समेतं च महर्षिवर्यैः सुरासुरैरर्चितपादपंकजम् ॥ ३० ॥
तथेति मत्वा स जगाम तूर्णं सहैव तैः पर्वतराजभिश्च ।
त्वरागतश्चैकपदेन शंभुं प्राप्नोदृषीणां प्रवरो महात्मा ॥ ३१ ॥
वद्दृष्टो महादेवो देवैश्च परिवारितः । तदा ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैव सुरैःसह ॥
प्रच्छुर्नारदं सर्वे येऽन्ये रुद्रचरा भृशम् । कथ्यतांपृच्छमानानामस्माकंकथ्यतेनहि
एकैकस्यात्मजाः स्वाः स्वाः सह्यमैनाकमेरवः ।
कन्या दास्यंति वा शम्भोः किं त्विदानीं प्रवर्तते ॥ ३४ ॥
तोऽवोचन्महातेजा नारदश्चर्षिसत्तमः । ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा विष्णुम्प्रति सहेतुकम्
एकांतमाश्रित्य तदा सुरेन्द्रं स नारदो वाक्यमिदं बभाषे ।
त्वष्ट्रा कृतं वै भवनं महत्तरं येनैव सर्वे च विमोहिता वयम् ॥ ३६ ॥
पुरा कृतं तस्य महात्मनस्त्वया किं विस्मृतं तत्सकलं शचीपते ! ।
तस्मादसौ त्वां विजिगीषुकामो गृहे वसंस्तस्य गिरेर्महात्मनः ॥ ३७ ॥

अहो विमोहितस्तेन प्रतिरूपेण भास्वता । तथा विष्णुः कृतस्तेन शंखचक्र
ब्रह्मा चैव तथाभूतस्तं चैव कृतवानसौ ॥ ३९ ॥
मायामयो वृषभस्तेन वेषात्कृतो हि नागोऽश्वतरस्तथैव ।
तथा चान्यान्यप्यनेनामरेन्द्र सर्वाण्येवोल्लिखितान्यत्र विद्धि ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य देवेन्द्रो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४१ ॥
विष्णुं प्रति तदा शीघ्रं दृष्ट्वा यामि वसात्र भोः ।
पुत्रशोकेन तप्तोऽसौ व्याजेनान्येन वाऽकरोत् ॥ ४२ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवो जनार्द्दनः । उवाच प्रहसन्वाक्यं शक्रमात्मभ
निवातकवचैः पूर्वं मोहितोऽसि शचीपते । विद्याऽमृता तत्र मया समानीता
महाविद्याबलेनैव प्रविश्य मण्डपेऽधुना । पर्वतो हिमवानेष तथाऽन्ये पर्वता
विपक्षा हि कृताः सर्वे मम वाक्याच्च वासव ! ।
हेतुं स्मृत्वाऽथ वै त्वष्टा मायया ह्यकरोदिदम् ॥ ४६ ॥
जयमिच्छंति वै मूढा न च भेतव्यमण्वपि ॥ ४७ ॥
एवंविवदमानांस्तान्देवाञ्छक्रपुरोगमान् । सांत्वयामास वै विष्णुर्नारदं
ददाति वा न ददाति कन्यां गिरीन्द्रः स्वां वै कथ्यतां शीघ्रमेव।
किं तेन दृष्टं किं कृतं चाद्य शंस तत्सर्वं भो नारद ! ते नमोऽस्तु
तच्छ्रुत्वा प्रहसञ्छंभुरुवाच वचनं तदा । कन्यां दास्यति चेन्मह्यं पर्वतो हि
मायया मम किं कार्यं वद विष्णो ! यथातथम् ॥ ५० ॥
केनाप्युपायेन फलं हि साध्यमित्युच्यते पंडितैर्न्यायविद्भिः ।
तस्मात्सर्वैर्गम्यतां शीघ्रमेव कार्यार्थिभिश्चेन्द्रपुरोगमैश्च ॥ ५१ ॥
तदा शिवोऽपि विश्वात्मा पंचवाणेन मोहितः । महाभूतेनभूतेशस्त्वन्येषां
एवं च विद्यमानेऽसौ शंभुः परमशोभनः । कृतो ह्यनंगेनवशे यथाऽन्यः प्रा
मदनो हि वली लोके येन सर्वमिदं जगत् । जितमस्तिनिजप्रौढ्यासदेवर्षि
सर्वेषामेव भूतानां देवानां च विशेषतः । राजा ह्यनंगो बलवान्यस्य

र्वतीस्त्रीस्वरूपेण अजेयो भुवनत्रये। तां दृष्ट्वा हि स्त्रियं सर्वेऋषयोऽपिविचक्षणाः
। मनुष्यागन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः। आज्ञानुल्लंघिनःसर्वे मदनस्य महात्मनः
ेवलेन महता तथा दानवलेन च। वेत्तुं न शक्यो मदनो विनयेन विना द्विजाः॥
ादनंगस्य महान्क्रोधो हि वलवत्तरः। ईश्वरं मदनेनैव मोहितं वीक्ष्य माधवः॥
ाच वाक्यं वाक्यज्ञो मा चिन्तां कुरु वै प्रभो। यदुक्तं नारदेनैव मंडपं प्रतिसर्वशः
ष्ट्रा कृतं विचित्रं च तत्सर्वं मदनात्प्रभोः। तदानीं शंकरो वाक्यमुवाच मधुसूदनम्
वेच्छया वृतं तेन कृतं त्वष्ट्रा हि मण्डपम्। किंतुवक्ष्यामहेविष्णोमण्डपःकेवलेनहि
वाहो हि महाभाग अविद्यामूल एव च। तस्मात्सर्वे वयंयाम उद्वाहार्थं च संप्रति
ादं च पुरस्कृत्य सर्वे देवाः सवासवाः। हिमाद्रिसहिता जग्मुर्मन्दिरं परमाद्भुतम्

अनेकाश्चर्यसंयुक्तं विचित्रं विश्वकर्मणा॥ ६४॥
कृतं च तेनाद्य पवित्रमुत्तमं तं यज्ञवाटं वहुभिः पुरस्कृतम्।
विचित्रचित्रं मनसो हरं च तं यज्ञवाटं स चकार बुद्धिमान्॥ ६५॥
प्रवेक्ष्यमाणास्ते सर्वे सुरेन्द्रा ऋषिभिः सह।
दृष्टा हिमाद्रिणा तत्र अभ्युत्थानगतोऽभवत्॥ ६६॥
तथैव तेषां च मनोहराणि हर्म्याणि तेन प्रतिकल्पितानि।
गन्धर्वयक्षाः प्रमथाश्च सिद्धा देवाश्च नागाप्सरसां गणाश्च॥
वसंति यत्रैव सुखेन तेभ्यः स तत्र तत्रोपवनं चकार॥ ६७॥

ामर्थे महार्हाणि धाराजिरगृहाणि च। अत्यद्भुतानि शोभंते कृतान्येव महात्मना

निवासार्थे कल्पितानि सावकाशानि तत्र वै।
देवानां चैव सर्वेषामृषीणां भावितात्मनाम्॥ ६९॥

ं विस्तारयामास विश्वकर्मा बहून्यपि। मन्दिराणि यथायोग्यं यत्रतत्रैवतिष्ठताम्

भैरवाः क्षेत्रपालाश्च येऽन्ये च क्षेत्रवासिनः।
श्मशानवासिनश्चान्ये येऽन्ये न्यग्रोधवासिनः॥ ७१॥

श्वत्थसेविनश्चान्ये खेचराश्च तथा परे। येये यत्रोपविष्टाश्च तत्रतत्रैव तेन वै॥

कृतानि च मनोज्ञानि भवनानि महांति वै। तेषामेवानुकूलानि भूतानां वि...

तत्रैव ते सर्वगणैः समेता निवासितास्तेन हिमाद्रिणा स्वयम्।

सेंद्राः सुरा यक्षपिशाचरक्षसां गन्धर्वविद्याप्सरसां समूहाः॥ ...

इति श्रीस्कांदे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर...
केदारखण्डे पार्वतीपरिणयने हिमाद्रिणा देवानां निवासस्थानकरण...
नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

शङ्करस्य नीराजनार्थं मेनाया आगमनम्

लोमश उवाच

तत्रोपविविशुः सर्वे सत्कृताश्च हिमाद्रिणा। तेदेवाःसपरीवाराः सहर्षाश्च स...

तत्रैव च महामात्रं निर्मितं विश्वकर्मणा। दीप्त्यापरमयायुक्तं निवासार्थं स्व...

तथैव विष्णोस्त्वपरं भवनं स्वयमेव हि। भास्वरं सुविचित्रं च कृतंत्वष्ट्रा म...

-चण्डीगृहं मनोज्ञं च तथैव कृतवान्स्वयम्॥ ३॥

तथैव श्वेतं परमं मनोज्ञं महाप्रभं देववरैः सुपूजितम्।

कैलासलक्ष्मीप्रभया महत्या सुशोभितं तद्भवनं चकार॥ ४॥

तत्रैव शंभुः परया विभूत्या स स्थापितस्तेन हिमाद्रिणा वै॥ ५॥

एतस्मिन्नंतरे मेना समायाता सखीगणैः। नीराजनार्थं शंभुं च ऋषिभिः परि...

तदा वादित्रनिर्घोषैर्नादितं भुवनत्रयम्। नीराजनं कृतं तस्य मेनया च तप...

अवलोक्य परा साध्वी मेनाऽजानाद्वरं तदा।

गिरिजोक्तमनुस्मृत्य मेना विस्मयमागता॥ ८॥

पुरोक्तं च तया पार्वत्या मम सन्निधौ। ततोऽधिकं प्रपश्यामि सौंदर्यं परमेष्ठिनः
महेशस्य मया दृष्टमनिर्वाच्यं च संप्रति ॥ ९ ॥
विस्मयमापन्ना विप्रपत्नीभिरावृता। अहतांबरयुग्मेन शोभिता वरवर्णिनी ॥१०॥
की परमा दिव्या नानारत्नैश्च शोभिता। अंगीकृता तदा देव्या रराजपरयाश्रिया
ती च तदा हारं दिव्यरत्नविभूषितम्। वलयानि महार्हाणि शुद्धचामीकराणि च
पविष्टा सुभगा ध्यायंती परमेश्वरम्। सखीभिः सेव्यमाना सा विप्रपत्नीभिरेवच
स्मिन्नंतरे तत्र गर्गो वाक्यमभाषत। पाणिग्रहार्थं शंभुं च आनयध्वं स्वमंदिरम् ॥
त्वरितेनैव वेलायामस्यामेव विचक्षणाः ॥ १४ ॥
श्रुत्वा वचनं तस्य गर्गस्य च महात्मनः। अभ्युत्थानपराः सर्वेपर्वताःसकलत्रकाः
विभूत्या संयुक्ताः सर्वेमंगलपाणयः। सालंकृतास्तदातेषांपत्न्योऽलंकारमंडिताः
यनान्यनेकानि जगृहुः स्निग्धलोचनाः। तदा वादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेणभूयसा ॥
जग्मुः सकलत्रास्ते यत्र देवो महेश्वरः। प्रमथैरावृतस्तत्र चंड्या चैवाभिसेवितः
ा महर्षिभिस्तत्र तथा देवगणैः सह। एभिः परिवृतः श्रीमाञ्छंकरो लोकशंकरः
वा वादित्रनिर्घोषं सर्वे शंकरसेवकाः। उत्थिता ऐकपद्येन देवैर्ऋषिभिरावृताः ॥
तथोद्यतो योगिनीचक्रयुक्तो गणो गणानां पतिरेकवर्चसाम्।
शिवं पुरस्कृत्य तदानुभावास्तथैव सर्वे गणनायकाश्च ॥ २१ ॥
तद्योगिनीचक्रमतिप्रचण्डं टंकारभेरीरवनिस्वनेन।
चण्डीं पुरस्कृत्य भयानकां तदा महाविभूत्या समलंकृतां तदा ॥ २२ ॥
डे कर्कोटकं नागं हारभूतं चकार सा। पदकं वृश्चिकानां च दंदशूकांश्च बिभ्रती
र्णावतंसान्सा दध्रे पाणिपादमयांस्तथा। रणेहतानांवीराणांशिरांस्युरसिचापरान्
पिचर्मपरीधाना योगिनीचक्रसंयुता। क्षेत्रपालावृता तद्वद्भैरवैः परिवारिता ॥२५॥
या प्रेतैश्च भूतैश्च कपटैः परिवारिता। वीरभद्रादयश्चैव गणाः परमदारुणाः ॥
ये दक्षयज्ञनाशार्थे शिवेनाज्ञापितास्तदा ॥ २६ ॥
था काली भैरवी च माया चैव भयावहा। त्रिपुरा च जया चैव तथा क्षेमकरी शुभा

अन्याश्चैव तथासर्वाः पुरस्कृत्य सदाशिवम् । गंतुकामाश्चाग्रतराभूतैः प्रेतै
एताः सर्वा विलोक्याथ शिवभक्तो जनार्दनः । महर्षींश्च पुरस्कृत्य ह्यमरांश्च
अनसूयां पुरस्कृत्य तथैव च ह्यरुन्धतीम् ॥ २९ ॥

विष्णुरुवाच

चण्डीं कुरु समीपस्थां लोकपालनतां प्रभो ! ॥ ३० ॥

तदुक्तं विष्णुना वाक्यं निशम्य जगदीश्वरः । उवाच प्रहसन्नेव चंडीं प्रति
अत्रैव स्थीयतां चण्डि यावदुद्वहनंभवेत् । ममभावान्विजानासिकार्याका
एवमाकर्ण्य वचनं शंभोरमिततेजसः । उवाच कुपिता चंडी विष्णुमुद्दिश्य
तथान्ये प्रमथाः सर्वे विष्णुमूचुः प्रकोपिताः । यत्रयत्र शिवो भाति तत्रतत्र
त्वया निवारिताः कस्माद्वयमाभ्युदये परे । तेषां तद्वचनं श्रुत्वा केशवोवा
चण्डीमुद्दिश्य प्रमथानन्यांश्चैव तथाविधान् । यूयं चैव मया प्रोक्तामाकोपं
एवमुक्तास्तदातेनचंडीमुख्यागणास्तदा । एकांतमाश्रिताःसर्वेविष्णुवाक्या
तावत्सर्वे समायाताः पर्वतेंद्रस्य मंत्रिणः । सकलत्राः संभ्रमेण महेशं प्रति
पंचवाद्यप्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा । योषिद्भिः संवृतास्तत्र गीतशब्दे
एवं प्राप्ता यत्र शंभुः सकलैः परिवारितः । आगत्यकलशैःसाकंस्नापितोहि
स्त्रीभिर्मंगलगीतेन सर्वाभरणभूषितः ॥ ४० ॥
ऋषयो देवगंधर्वास्तथान्ये पर्वतोत्तमाः । शंभ्वग्रगास्तदा जग्मुः स्त्रियश्चैव
बभौ छत्रेण महता ध्रियमाणेन मूर्द्धनि ॥ ४१ ॥
चामरैर्वीज्यमानोऽसौ मुकुटेनविराजितः । ब्रह्माविष्णुस्तथाचंद्रोलोकपाला
अग्रगा ह्यपि शोभंतः श्रिया परमया युताः । तथा शंखाश्च भेर्यश्च पटहानक
तथैव गायकाः सर्वे जग्मुः परममंगलम् । पुनः पुनरवाद्यंत वादित्राणि मह
अरुन्धती महाभागा अनसूया तथैव च । सावित्रीचतथालक्ष्मीर्मातृभिःपरि
एभिः समेतो जगदेकवंधुर्बभौ तदानीं परमेण वर्चसा ।
सचन्द्रसूर्यानिलवायुना वृतः सलोकपालप्रवरैर्महर्षिभिः ॥ ४६ ॥

स वीज्यमानः पवनेन साक्षाच्छत्रं च तस्मै शशिना ह्यधिष्ठितम् ।
सूर्यः पुरस्तादभवत्प्रकाशकः श्रियान्वितो विष्णुरभूच्च सन्निधौ ॥ ४७ ॥
पुष्पैर्ववर्षुर्ह्यवकीर्यमाणा देवास्तदानीं मुनिभिः समेताः ।
ययौ गृहं कांचनकुट्टिमं महन्महाविभूत्या परिशोभितं तदा ॥
विवेश शंभुः परया सपर्यया संपूज्यमानो नरदेवदानवैः ॥ ४८ ॥

...वं समागतः शंभुः प्रविष्टो यज्ञमण्डपम् । संस्तूयमानो विबुधैः स्तुतिभिः परमेश्वरः
...जादुत्तारयामास महेशं पर्वतोत्तमः । उपविश्य ततः पीठे कृत्वा नीराजनं महत् ॥
...नया सखिभिः साकं तथैव च पुरोधसा । मधुपर्कादिकं सर्वं यत्कृतं चैव तत्र वै ॥
...ह्मणा नोदितः सद्यः पुरोधाः कृतवान्प्रभुः । मंगलं शुभकल्याणं प्रस्तावसदृशं बहु
...तर्वेद्यां संप्रवेश्य यत्र सा पार्वती स्थिता । वेदिकोपरि तन्वंगी सर्वाभरणभूषिता
...त्रानीतोहरः साक्षाद्विष्णुना ब्रह्मणासह । लग्नंनिरीक्षमाणास्तेवाचस्पतिपुरोगमाः
...गर्गो मुनिश्चोपविष्टस्तत्रैव घटिकालये । यावत्पूर्णा घटी जाता तावत्प्रणवभाषणम्
...ॐपुण्येति प्रणिगदन्गर्गो वध्वंजलिं दधे । पार्वत्यक्षतपूर्णं च शिवोपरि ववर्ष वै ॥
...था संपूजितो रुद्रो दध्यक्षतकुशादिभिः । मुदा परमया युक्ता पार्वती रुचिरानना
...वलोकयंती शंभुं तं यदर्थे परमं तपः । कृतं पुरा महादेव्या परेषां परमं महत् ॥५८॥
...पसा तेन संप्राप्तो जगज्जीवनजीवनः । नारदेन ततः प्रोक्तो महादेवो वृषध्वजः ॥
...त्या गंगादिभिश्चान्यैर्मुनिभिः सनकादिभिः । प्रतिपूजांकुरुक्षिप्रंपार्वत्याश्चत्रिलोचन
तदा शिवेन सा तन्वी पूजितार्घ्याक्षतादिभिः ॥ ६० ॥

...वं परस्परं तौ च पार्वतीपरमेश्वरौ । अर्च्यमानौ तदानीं च शुशुभाते जगन्मयौ ॥
त्रैलोक्यलक्ष्म्या संवीतौ निरीक्षंतौ परस्परम् ।
तदा नीराजितौ लक्ष्म्या सावित्र्या च विशेषतः ॥
अरुन्धत्या तदा तौ च दंपती परमेश्वरौ ॥ ६२ ॥
अनसूया तथा शंभुं पार्वतीं च यशस्विनीम् ।
दृष्ट्वा नीराजयामास प्रीत्युत्कलितलोचना ॥ ६३ ॥

तथैव सर्वा द्विजयोषितश्च नीराजयामासुरहो पुनःपुनः।
सतीं च शम्भुञ्च विलोकयंत्यस्तथैव सर्वा मुदिता हसन्त्यः॥

लोमश उवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र गर्गाचार्यप्रणोदितः। हिमवान्मेनया सार्द्धं कन्यां दातुं
हैमं कलशमादाय मेना चार्द्धांगमाश्रिता। हिमाद्रेश्च महाभागा सर्वाभरण
तदा हिमाद्रिणा प्रोक्तो विश्वनाथो वरप्रदः। ब्रह्मणा सह संगत्य विष्णुना
सार्द्धं पुरोधसा चैव गर्गेण सुमहात्मना। कन्यादानं करोम्यद्य देवदेवस्य
प्रयोगो भण्यतां ब्रह्मन्नस्मिन्समय आगते। तथेति मत्वा तेसर्वेकालज्ञा द्वि
कथ्यतां तात गोत्रं स्वं कुलं चैव विशेषतः। कथयस्व महाभागइत्याकर्ण्य
सुमुखो विमुखः सद्यो ह्यशोच्यः शोच्यतां गतः॥ ७०॥
एवंविधः सुरवरैर्ऋषिभिस्तदानीं गंधर्वयक्षमुनिसिद्धगणैस्तथैव
दृष्टो निरुत्तरमुखो भगवान्महेशो हास्यं चकार सुभृशं त्वथ ना
वीणां प्रकटयामास ब्रह्मपुत्रोऽथ नारदः। तदानीं वारितोधीमान्वीणांमाव
इत्युक्तः पर्वतेनैव नारदो वाक्यमब्रवीत्। त्वया पृष्टो भवःसाक्षात्स्वगोत्र
अस्य गोत्रं कुलं चैव नाद एव परं गिरे। नादे प्रतिष्ठितः शम्भुर्नादोह्यस्मि
तस्मान्नादमयः शम्भुर्नादाच्चप्रतिलभ्यते। तस्माद्वीणा मयाचाद्य वादिता
अस्य गोत्रं कुलंनाम न जानंति हि पर्वत। ब्रह्मादयो हि विबुधा अन्येषांचैव
त्वं हि मूढत्वमापन्नोनजानासि हि किंचन। वाच्यावाच्यंमहेशस्यविषयाहि
येये आगमिकाश्चाद्रे नष्टास्ते नात्र संसयः। आरूपोयंविरूपाक्षोह्यकुलीनो
अगोत्रोऽयं गिरिश्रेष्ठ जामाता ते न संशयः। न कर्त्तव्योविमर्शोऽत्रभवता
न जानंति हरं सर्वे किं बहूक्त्या ममप्रभो। यस्याज्ञानान्महाभागमोहिताश्च
ब्रह्माऽपि तं न जानाति मस्तकं परमेष्ठिनः। विष्णुर्गतो हि पातालंन दृष्टो
तेन लिङ्गेन महता ह्यगाधेन जगत्त्रयम्। व्याप्तमस्तीतितद्विद्धि किमनेन प्रयो
अनयाऽराधितं नूनं तव पुत्र्या हिमालय!। तत्त्वतो हि न जानासिकथंचैव

आभ्यामुत्पाद्यते विश्वमाभ्यां चैव प्रतिष्ठितम्।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य नारदस्य महात्मनः ॥ ८४ ॥
हिमाद्रिप्रमुखाः सर्वे तथा चेंद्रपुरोगमाः। साधुसाध्विति तेसर्वेऊचुर्विस्मितमानसाः
ईश्वरस्य तु गांभीर्यं ज्ञात्वासर्वे विचक्षणाः। विस्मयेनसमाश्लिष्टाऊचुःसर्वेपरस्परम्

ऋषय ऊचुः

यस्याज्ञया जगदिदं च विशालमेव जातं परात्परमिदं निजबोधरूपम्।
सर्वं स्वतंत्रपरमेश्वरभावगम्यं सोऽसौ त्रिलोकनिजरूपयुतो महात्मा ॥८७

इति श्रीस्कांदे महापुराण एकाशीतिसहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे शिवशास्त्रे शिवपार्वतीविवाहवर्णनंनाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

ब्रह्मणो वाक्याद्धिमालयकृतकन्यादानवर्णनम्

लोमश उवाच

अथ ते पर्वतश्रेष्ठा मेर्वाद्या जातसंभ्रमाः। ऊचुस्ते चैकपद्येन हिमवन्तं महागिरिम् ॥

पर्वता ऊचुः

कन्यादानं क्रियतां चाद्य शैल! श्रीमाञ्छम्भुर्भाग्यतस्तेऽद्य लब्धः।
हृन्मध्ये वै नात्र कार्यो विमर्शस्तस्मादेषा दीयतामीश्वराय ॥ २ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनंतेषां सुहृदां वै हिमालयः। सम्यक्संकल्पमकरोद्ब्रह्मणानोदितस्तदा
इमां कन्यां तुभ्यमहं ददामि परमेश्वर! ॥ ३ ॥
भार्यार्थं प्रतिगृह्णीष्व मंत्रेणानेन दत्तवान्। अस्मै रुद्राय महते देवदेवाय शंभवे ॥
कन्या दत्ता महेशाय गिरींद्रेण महात्मना ॥ ४ ॥

वेद्यां च वहिरानीतौ दंपती कमलेक्षणौ। उपवेशितौ बहिर्वेद्यां पार्वतीप
आचार्येणाथ तत्रैव कश्यपेन महात्मना। आह्वानं हवनार्थाय कृतमग्नेस्त
ब्रह्मा ब्रह्मासनगतो बभूव शिवसन्निधौ। प्रवर्तमाने हवन ऋषयश्च विचक्ष
ऊचुः परस्परं तत्र नानादर्शनवेदिनः। वेदवादरताः केचिद्वदन्संमतेन
एवमेव न चाप्येवमेवमेव न चान्यथा। कार्यमेव न वा कार्यं कार्याकार्यं त
इत्येवं ब्रुवतां शब्दः श्रूयते शिवसन्निधौ। स्वकीयं मतमास्थाय ह्यब्रुवंस्ते
तत्त्वज्ञानविहीनास्ते केवलं वेदबुद्धयः ॥ १० ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा परस्परजयैषिणाम्। प्रहस्य नारदो वाक्यमुवाच शि
यूयं सर्वे वादिनश्च वेदवादरतास्तथा। मौनमास्थायभो विप्राहृदि कृत्यस
आत्मानं परमात्मानं पराणां परमं च तत्। येनेदं कारितं विश्वं यतः स
यस्मिन्निलीयते विश्वं तस्मै सर्वात्मने नमः ॥ १३ ॥
सोऽयमास्तेऽधुना गेहे पर्वतेंद्रस्य भो द्विजाः।
मुखादस्यैव संजाताः सर्वे यूयं विचक्षणाः ॥ १४ ॥
एवमुक्तास्तदा तेन नारदेन द्विजोत्तमाः। उपदेशकरैर्वाक्यैर्बोधितास्ते द्विजो
वर्तमाने च यज्ञे च ब्रह्मा लोकपितामहः। ददर्श चरणौ देव्या नखेन्दुं च मनो
दर्शनात्स्खलितः सद्यो बभूवाम्बुजसंभवः। मदनेन समाविष्टो वीर्यं च प्राच्य
रेतसा क्षरमाणेन लज्जितोऽभूत्पितामहः। चरणाभ्यां ममर्दाथ महद्गोप्यं दुर
बहवश्चर्षयो जाता वालखिल्याः सहस्रशः। उपतस्थुस्तदा सर्वे ताततातेति
नारदेन तदोक्तास्ते वालखिल्याः प्रकोपिना। गच्छंतु बटवो यूयं पर्वतं गंध
न स्थातव्यं भवद्भिश्च भवतां न प्रयोजनम्। इत्येवमुक्तास्ते सर्वे वालखिल्याश्च
नारदेन समादिष्टा ययुः सर्वे त्वरान्विताः ॥ २१ ॥
नारदेन ततो ब्रह्माऽऽश्वासितो वचनैः शुभैः। तावच्च हवनं पूर्णं जातं तस्य म
महेशस्य तथा विप्राः शांतिपाठपरा बभुः। ब्रह्मघोषेण महता व्याप्त मासीद्
ततो नीराजितो देवो देवपत्नीभिरुत्तमः। तथैव ऋषिपत्नीभिरर्चितः पूजितस्

तथा गिरीन्द्रस्य मनोरमाः शुभा नीराजयामासुरथैव योषितः ।
गीतैः सुगीतज्ञविशारदाश्च तथैव चान्ये स्तुतिभिर्महर्षयः ॥ २५ ॥

रत्नानि च महार्हाणि ददौ तेभ्यो महामनाः । हिमालयो महाशैलः संहृष्टः परितोषयन्
बभौ तदानीं सुरसिद्धसंघैर्वेद्यां स्थितोऽसौ सकलत्रको विभुः ।
सर्वैरुपेतो निजपार्षदैर्गणैः प्रहृष्टचेता जगदेकसुन्दरः ॥ २७ ॥

एतस्मिन्नंतरे तत्र ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः । ऋषिगंधर्वयक्षाश्च येऽन्ये तत्र समागताः ॥
सर्वान्समभ्यर्च्य तदा महात्मा महान्गिरीशः परमेण वर्चसा ।
सद्रत्नवस्त्राभरणानि सम्यग्ददौ च ताम्बूलसुगन्धवार्यपि ॥ २६ ॥

तदा शिवं पुरस्कृत्याभ्यवजह्रुः सुरेश्वराः । तथासर्वे मिलित्वातु ऐकपद्येन मोदिताः
पंक्तीभूताश्च बुभुजुर्लिंगिना श्रृंगिणा सह । केचिद्गणाःपृथग्भूतानानाहास्यरसैर्विभुम्
अतोषयन्नारदाद्या अनेकालीकसंयुताः । तथा चण्डीगणाः सर्वे बुभुजुः कृतभाजनाः
वैताला क्षेत्रपालाश्च बुभुजुःकृतभाजनाः । शाकिनीडाकिनीचैवयक्षिण्योमातृकादयः
योगिन्योऽथ चतुःषष्टिर्योगिनो हि तथा परे ।
दश कोट्यो गणानां च कोट्येका च महात्मनाम् ॥ ३४ ॥

एवं तु ऋषयः सर्वे तथाऽन्ये विबुधादयः । योगिनोहि मयाचान्येकथिताःपूर्वमेवहि
योगिन्यश्चैव कथितास्तासां भक्ष्यंवदामि वः । खड्गानांकेचिदानीयक्रव्यंपवित्रमेवच
भुञ्जन्ति चास्थिसंयुक्तं तथांत्राणि बुभुक्षिताः ।
आनीय केचिच्छीर्षाणि महिषाणां गुरूणि च ॥ ३७ ॥
तथा केचिन्नृत्यमानास्तदानीं रोरूयमाणाः प्रथमाश्चैव चान्ये ।
केचित्तूष्णीमास्थिता रुद्ररूपाः परेचान्याँल्लोकमानास्तथैव ॥ ३८ ॥

योगिनीचक्रमध्यस्थो भैरवो हि ननर्त च । तथान्ये भूतवेताला मामेत्येवं प्रलापिनः
एवं तेषामुद्धवं हि निरीक्ष्य मधुसूदनः । उवाच प्रहसन्वाक्यं शंकरं लोकशंकरम् ॥
एतान्गणान्वारय भो अत्र मत्तांश्च संप्रति ।
अस्मिन्काले च यत्कार्यं सर्वैस्तत्कार्यमेवच ॥ ४१ ॥

पांडित्येन महादेव तस्मादेतान्निवारय। तच्छ्रुत्वाभगवान्रुद्रो वीरभद्रमुवाच

रुद्र उवाच

वारयस्व प्रमत्तांश्च क्षीबांश्चैव विशेषतः। तेनोक्तो वीरभद्रश्च शंभुना पर

आज्ञापिताः प्रमत्ताश्च वीरभद्रेण धीमता।
प्रमथा वारितास्तेन तूष्णीमाश्रित्य ते स्थिताः ॥ ४४ ॥
निश्चला योगिनीमध्ये भूतप्रमथगुह्यकाः।
शाकिन्यो यातुधानाश्च कूष्माण्डाः कोपिकर्पटाः ॥ ४५ ॥

तथाऽन्ये भूतवेतालाः क्षेत्रपालाश्च भैरवाः। सर्वे शान्ताः प्रमत्ताश्च बभूवुः प्र
एवं विस्तारसंयुक्तं कृतमुद्वहनं तदा। हिमाद्रिणा परं विप्राः सुमंगल्यं सुशो
चत्वारो दिवसा जाताः परिपूर्णेन चेतसा। हिमाद्रिणा कृतापूजा देवदेवस्य
वस्त्रालंकाराभरणै रत्नैरुच्चावचैस्ततः। पूजयित्वा महादेवं विष्णोर्वचनपरो
लक्ष्मीसमेतं विष्णुं च वस्त्रालंकरणैः शुभैः। पूजयामास हिमवांस्तथा ब्रह्माणं

इन्द्रं पुरोधसा सार्द्धमिंद्राण्या सहितं विभुम्।
तथैव लोकपालांश्च पूजयित्वा पृथक्पृथक् ॥ ५१ ॥

तथैव पूजिता चण्डी भूतप्रमथगुह्यकैः। वस्त्रालंकरणैश्चैव रत्नैर्नानावि

ये चान्य आगतास्तत्र ते च सर्वे प्रपूजिताः ॥ ५२ ॥
एवं तदानीं प्रतिपूजिताश्च देवाश्च सर्वे ऋषयश्च यक्षाः।
गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणास्तथैव मर्त्त्याप्सरसां गणाश्च ॥ ५३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्व
केदारखण्डे शिवपार्वतीविवाहमंगलोत्सववर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २

सप्तविंशोऽध्यायः

विवाहानन्तरे सर्वेषां देवानां स्वेस्वे स्थाने गमनम्

लोमश उवाच

तथैव विष्णुना सर्वे पर्वताश्च प्रपूजिताः। सह्याचलश्च विंध्यश्च मैनाको गंधमादनः
माल्यवान्मलयश्चैव महेंद्रो मंदरस्तथा। मेरुश्चैव प्रयत्नेन पूजितो विष्णुना तदा ॥२॥
श्वेतः कृतः श्वेतगिरिर्नीलाद्रिश्च तथैव च। उदयाद्रिश्च शृंगश्च अस्ताचलवरोमहान्
मानसाद्रिस्तथा शैलः कैलासः पर्वतोत्तमः। लोकालोकस्तथा शैलःपूजितःपरमेष्ठिना
एवं ते पर्वतश्रेष्ठाः पूजिता सर्व एव हि। तथान्ये पूजितास्तेन सर्वे पर्वतवासिनः ॥
विष्णुना ब्रह्मणा सार्द्धं कृतं सर्वं यथोचितम्।
अन्येऽहनि च संप्राप्ते वरयात्रा कृता तथा ॥ ६ ॥
हिमाद्रिणा वंधुभिश्च पर्वतं गंधमादनम्। ययुः सर्वे सुरगणा गणाश्च बहवस्तथा ॥
प्रमथाश्च तथा सर्वे तथा चंडीगणाः परे। ये चान्ये बहवस्तत्र समायाता हिमालयम्
शिवस्योद्वहनं विप्राः शिवेन परिभाविताः। परं हर्षं समापन्ना दृष्ट्वा तौ दंपती तदा ॥
पार्वतीसहितः शंभुः शंभुना सह पार्वती। पुष्पगन्धौयथास्यातां वागर्थाविवतत्त्वतः
तथा प्रकृतिपुंसौ च ऐकपद्येन नान्यथा। दंपती तौ गजारूढौ शुशुभाते महाप्रभौ ॥
विमानस्थस्तदा ब्रह्मा विष्णुश्च गरुडोपरि। ऐरावतगतश्चेंद्रः कुबेरः पुष्पकोपरि ॥
पाशी च मकरारूढो यमो महिषमेव च। प्रेतारूढो नैर्ऋतः स्यादग्निर्वस्तगतो महान्
मृगारूढोऽथ पवन ईशो वृषभमेव च। इत्येवं लोकपालाश्च सग्रहाः परमेष्ठिनः ॥१४
स्वैः स्वैर्वलैः परिक्रांतास्तथान्ये प्रमथादयः। हिमाद्रिश्च महाशैल ऋषभो गंधमादनः
सह्याचलो नीलगिरिर्मंदरो मलयाचलः। कैलासो हि महातेजा मैनाकश्च महाप्रभः ॥
एते चान्ये च गिरयः श्रीमन्तो हि महाप्रभाः। सकलत्राश्चतेसर्वे ससुताश्च मनोरमाः
वलिनो रूपिणः सर्वे मेर्वाद्यास्तत्र पर्वताः। वरयात्राप्रसंगेन शिवार्चनपराभवन् ॥

नंदिना ह्युपविष्टास्ते मेर्वाद्यास्तत्र पर्वताः । वरयात्रा कृतातेन यथोक्ताच हि
सर्वैस्तैर्बंधुभिः सार्द्धं पुनरागमनं कृतम् ॥ १९ ॥
स्वकालयस्थो हिमवान्स रेजे हि महायशाः । शिवसंपर्कजेनैव महसा पर
विख्यातो हि महाशैलस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ २० ॥
कन्यादानेन महता तुष्टो यस्य च शंकरः । ते धन्यास्ते महात्मानः कृतकृत्यास्
द्व्यक्षरं नाम येषां च जिह्वाग्रे संस्थितं सदा । शिवेति द्व्यक्षरं नाम यैर्हृदीरि
ते वै मनुष्यरूपेण रुद्रा एव न संशयः ॥ २२ ॥
किंचिद्दानेन संतुष्टः पत्रेणापि तथैव च । तोयेनापि हि संतुष्टो महादेवो नि
पत्रेण पुष्पेण तथा जलेन प्रीतो भवत्येष सदाशिवो हि ।
तस्माच्च सर्वैः प्रतिपूजनीयः शिवो महाभाग्यकरो नृणामिह ॥ २४
एको महाज्ज्योतिरजः परेशः परापराणां परमो महात्मा ।
निरंतरो निर्विकारो निरीशो निराबाधो निर्विकल्पो निरीहः ॥ २५
निरंजनो नित्यरूपो निरोधो नित्यानन्दो नित्यमुक्तः सदैव ।
एवंभूतो देवदेवोऽर्चितश्च तैर्देवाद्यैर्विश्ववेद्यो भवश्च ॥
स्तुतो ध्यातः पूजितश्चिंतितश्च सर्वज्ञोऽसौ सर्वदा सर्वदश्च ॥ २६
यथा वरिष्ठो हिमवान्प्रसिद्धः सर्वैर्गुणैः सर्वगुणो महात्मा ।
विश्वेशवंद्यो हि तदा हिमालयो जातो गिरीणां प्रवरस्तदानीम् ॥
मेनया सह धर्मात्मा यथास्थानगतस्ततः । सर्वान्विसर्जयामास पर्वतान्पर्वते
गतेषु तेषु हिमवान्पुत्रैः पौत्रैः प्रपौत्रकैः । राजा गिरीणां प्रवरो महादेवप्रसा
अथो गिरिजया सार्द्धं महेशो गन्धमादने । एकान्ते च मतिं चक्रे रमणार्थं स्व
सुरतेनैव महता तपसा हि समागमे । द्वयोः सुरतमारब्धं तद्द्वयोश्च तदाऽ
अनिष्टं महदाश्चर्यं प्रलयोपममेव च । तस्मिन्महारते प्राप्ते नाविंदंत सुखं
सर्वे ब्रह्मादयो देवाः कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
रेतसा च जगत्सर्वं नष्टं स्थावरजंगमम् ॥ ३३ ॥

सस्मार चाग्निं ब्रह्मा च विष्णुश्चाध्यात्मदायकः ।
मनसा संस्मृतः सद्यो जगामाग्निस्त्वरान्वितः ॥ ३४ ॥
ताभ्यां संप्रेषितोऽपश्यद्रुचिरं शिवमंदिरम् ।
द्वारि स्थितं नंदिनं च ददर्शाग्रे महाप्रभम् ॥ ३५ ॥

अग्निर्ह्रस्वस्तदा भूत्वा काश्मीरसदृशच्छविः । प्रविष्टोन्तःपुरंशंभोर्नानाश्चर्यसमन्वितम् ।
अनेकरत्नसंवीतं प्रासादैश्च स्वलंकृतम् । तदंगणमनुप्राप्य उपविश्याह हव्यवाट् ॥
पाणिपात्रस्य मे ह्यत्र भिक्षांदेह्यवरोधतः । तच्छ्रुत्वावचनंतस्यपाणिपात्रस्यवालिका
यावद्दातुंचसारेभेभिक्षांतस्मैततः स्वयम् । उत्थायसुरतात्तस्माच्छिवोहिकुपितोभृशम्
रुद्रस्त्रिशूलमुद्यम्य भैरवो ह्यभवत्तदा । निवारितोगिरिजयावधात्तस्माच्छिवःस्वयम्
भिक्षां तस्मै ददौ वाचा अग्नये जातवेदसे ॥ ४० ॥

पाणौ भिक्षां गृहीत्वाथप्रत्यक्षंतेनचाग्निना । भिक्षिताकुपितातंवैशशापगिरिजा ततः
रे भिक्षो भविताशापात्सर्वभक्षोममाशुवै । अनेन रेतसासद्यः पीडांप्राप्स्यसि सर्वतः
इत्युक्तो भक्षयित्वाग्नी रेत ईशस्य हव्यवाट् ।
यत्र देवाः स्थिताः सर्वे ब्रह्माद्याश्चैव सर्वशः ॥ ४३ ॥

आगत्याकथयत्सर्वं तद्रेतोभक्षणादिकम् । सर्वे सगर्भा ह्यभवन्निन्द्राद्या देवतागणाः
अग्नेर्यथा हविश्चैव सर्वेषामुपतिष्ठति । अग्नेर्मुखोद्भवेनैव रेतसा ते सुरेश्वराः ॥४५॥
सगर्भाह्यभवन्सर्वे चिंतया च प्रपीडिताः । विष्णुं शरणमाजग्मुर्देवदेवेश्वरं प्रभुम् ॥

देवा उचुः

त्वं त्राता सर्वदेवानां लोकानां प्रभुरेव च । तस्माद्रक्षा विधातव्या शरणागतवत्सल
वयं सर्वे मर्तुकामा रेतसाऽनेन पीडिताः । असुरेभ्यः परित्रस्ता वयंसर्वेदिवौकसः ॥
शरणं शंकरं याताः परित्रातुं कृतोद्यमाः । यदा पुत्रो हिरुद्रस्य भविष्यति तदावयम्
सुखिनः स्याम सर्वे वै निर्भयाश्च त्रिविष्टपे ॥ ४६ ॥

एवं विष्टभ्यमानानां सर्वेषां भयमागतम् । अनेन रेतसा विष्णो जीवितुंशक्यतेकथम्
त्रिवर्गो हि यथा पुंसां कृतो हि सुपरिष्कृतः । विपरीतोभवत्येवविनादेवेननान्यथा

तस्मात्तद्वै बलं मत्वा सर्वेषामपिदेहिनाम्। कार्याकार्यव्यवस्थायांसर्वेमन्यामहे
तथा निशम्य देवानां परेशः परिदेवनम्। उवाचप्रहसन्वाक्यं देवानां देवता
स्तूयतां वै महादेवो महेशः कार्यगौरवात्॥ ५४॥
तथेति गत्वा ते सर्वे देवा विष्णुपुरोगमाः। तथा ब्रह्मादयः सर्वे ईडिरे ऋषयो
ॐनमो भर्गाय देवाय नीलकंठाय मीढुषे। त्रिनेत्राय त्रिवेदाय लोकत्रितय
त्रिस्वराय त्रिमात्राय त्रिवेदाय त्रिमूर्त्तये। त्रिवर्गाय त्रिधाम्नाय त्रिपदाय त्रि
त्राहि त्राहि महादेव! रैतसो जगतः पते!॥ ५८॥
ब्रह्मणा तु स्तुतो यावत्तावद्देवो वृषध्वजः। प्रादुर्बभूव तत्रैव सुराणां कार्यसि
दृष्टस्तदानीं जगदेकबंधुर्महात्मभिर्देववरैः सुपूजितः।
संस्तूयमानो विविधैर्वचोभिः प्रत्यग्रूपैः श्रुतिसंमतैश्च॥ ६०॥
स्तुवतां चैव देवानामुवाच परमेश्वरः। त्रासं कुर्वंतु मा सर्वे रैतसाऽनेन पीडि
वमनं वै भवद्भिश्च कार्यमद्यैव भोः सुराः। तथेति मत्वा ते सर्वे इन्द्राद्या देवता
वेमुः सर्वे तदा विप्रास्तद्रेतः शंकरस्य च॥ ६२॥
ऐकपद्येन तद्रेतो महापर्वतसन्निभम्। तप्तचामीकरप्रख्यं बभूव परमाद्भुतम्॥
सर्वे चसुखिनोजाताइन्द्राद्यादेवतागणाः। विनाह्यग्निंचतेसर्वे परितुष्टास्तदाऽभ
तेनाग्निनापि चोक्तस्तु शंकरो लोकशंकरः। किं मयाद्य महादेव कर्तव्यं देवत
तद्ब्रूहि मे प्रभोऽद्य त्वं येनाहं सर्वदा सुखी। भविष्यामि चयेनाहंदेवानांहव्यवाहने
तदोवाच शिवः साक्षाद्देवानामिहश्रृण्वताम्। रैतोविसृज्यतांयोनौतदाग्निःप्रह
उवाच शंकरं देवं भवत्तेजो दुरासदम्। इदमुल्बणवत्तेजो धार्यते प्राकृतैः क
ततः प्रोवाच भगवानग्निं प्रति महेश्वरः। मासिमासि प्रतप्तानां देहेतेजोविसृज्य
तथेति मत्वा वचनं महाप्रभः स जातवेदाः परमेण वर्चसा।
समुज्ज्वलंस्तत्र महाप्रभावो ब्राह्मे मुहूर्त्ते हि स चोपविष्टः॥ ७०॥
तदाप्रातःसमुत्थाय प्रातःस्नानपराःस्त्रियः। ययुःसदाऋषीणांचसत्यस्ताजातवे
दृष्टाप्रज्वलितंतत्रसर्वास्ताःशीतकर्षिताः। तप्तुकामास्तदासर्वाह्यरुन्धत्यानिवा

यानिवारिताश्चापितास्तेपुःकृत्तिकाःस्वयम् । यावत्तेपुश्चताःसर्वारेतसःपरमाणवः ॥
विविशू रोमकूपेषु तासां तत्रैव सत्वरम् ॥ ७३ ॥
नीरेतोऽग्निस्तदा जातो विश्रान्तः स्वयमेव हि ॥ ७४ ॥
तस्ता ऋषिभार्या हि ययुः स्वभवनंप्रति । ऋषिभिस्तुतदाशप्ताःकृत्तिकाखेचराभवन्
दानीमेव ताः सर्वा व्यभिचारेण दुःखिताः । तत्ससर्जुस्तदा रेतःपृष्ठे हिमवतोगिरेः
केपद्येन तद्रेतस्तप्तचामीकरप्रभम् । गंगायां च तदा क्षिप्रं कीचकैः परिवेष्टितम् ॥
ण्मुखं बालकं ज्ञात्वा सर्वे देवा मुदान्विताः । गर्गेणोक्तास्तदंतेवैसुखेनह्रियतामिति
भोः पुत्रः प्रसादेन सर्वो भवति शाश्वतः । गंगायाःपुलिनेजातःकार्त्तिकेयोमहाबलः
उपविष्टोऽथ गांगेयो ह्यहोरात्रोषितस्तदा ।
शाखो विशाखोऽतिबलः षण्मुखोऽसौ महाबलः ॥ ८० ॥
जातो यदाथ गंगायां षण्मुखः शंकरात्मजः । तदानीमेवगिरिजासंजाताप्रस्नुतस्तनी
शिवं निरीक्ष्य सा प्राह हे शंभो ! प्रस्नवो महान् ।
संजातो मे महादेव ! किमर्थस्तन्निरीक्ष्यताम् ॥
सर्वज्ञोऽपि महादेवो ह्यब्रवीत्तामथाज्ञवत् ॥ ८२ ॥
नारदस्तत्र चागत्य प्रोक्तवाञ्जन्म तस्य तत् । शिवाय च शिवायैचपुत्रोजातोहिसुंदरः
तदाकर्ण्य वचो विप्रा हर्षनिर्भरमानसाः । बभूवुः प्रमथाः सर्वे गंधर्वा गीततत्पराः ॥
अनेकाभिः पताकाभिश्चैलपल्लवतोरणैः । तथा विमानैर्बहुभिर्बभौ प्रज्वलितो महान्
पर्वतः पुत्रजननाच्छंकरस्य महात्मनः ॥ ८५ ॥
तदा सर्वे सुरगणा ऋषयः सिद्धचारणाः । रक्षोगंधर्वयक्षाश्च अप्सरोगणसेविताः ॥
ऐकपद्येन ते सर्वे सहिताः शंकरेण तु । द्रष्टुं गांगेयमधिकं जग्मुः पुलिनसंस्थितम्
ततो वृषभमारुह्य ययौ गिरिजया सह । अन्यैः समेतो भगवान्सुरैरिंद्रादिभिस्तथा ॥
तदा शंखाश्च भेर्यश्च नेदुस्तूर्याण्यनेकशः ॥ ८६ ॥
तदानीमेव सर्वेशं वीरभद्रादयो गणाः । अन्वयुः केलिसंरब्धा नानावादित्रवादकाः ॥
वादयन्तश्च वाद्यानि ततानि विततानि च ॥ ६० ॥

केचिन्नृत्यपरास्तत्र गायकाश्च तथा परे। स्तावकाःस्तूयमानाश्चचक्रुस्तेगुण
एवंविधास्ते सुरसिद्धयक्षा गंधर्वविद्याधरपन्नगा ह्यमी।
शिवेन सार्द्धं परिहृष्टचित्ता द्रष्टुं ययुस्तं वरदं च शांकरिम्॥ ९
यावत्समीक्षयामासुर्गांगेयं शंकरोपमम्। ददृशुस्ते महत्तेजो व्याप्तमासीज्जगत
तत्तेजसावृतं बालं तप्तचामीकरप्रभम्। सुमुखं सुश्रिया युक्तं सुनसं सुस्मितेक्ष
चारुप्रसन्नवदनं तथा सर्वाङ्गसुन्दरम्। तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं गांगेयं प्रथितात्म
ववंदिरे तदा बालं कुमारं सूर्यवर्चसम्। प्रमथाश्च गणाः सर्वे वीरभद्रादयस्त
परिवार्योपतस्थुस्ते वामदक्षिणभागतः। तथा ब्रह्मा च विष्णुश्च इन्द्रश्चापि सु
ऋषयो यक्षगंधर्वाः परिवार्य कुमारकम्। दंडवत्पतिता भूमौ केचिच्च नतकं
प्रणेमुः शिरसा चान्ये मत्वा स्वामिनमव्ययम्।
अवाद्यंत विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे॥
एवमभ्युदये तस्मिन्नृषयः शांतिमापठन्॥ ९९॥
एतस्मिन्नंतरे जातः शंकरो गिरिजापतिः। अवतीर्य वृषाच्छीघ्रं पार्वत्या सह
पुत्रं निरैक्षत तदा जगदेकबंधुः प्रीत्या युतः परमया सह वै भवान्या
स्नेहान्वितो भुजगभोगयुतो हि साक्षात्सर्वेश्वरः परिवृतः प्रमथैः
उपगुह्य गुहं तत्र पार्वती जातसंभ्रमा। प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लु
तदा नीराजितो देवैः सकलत्रैर्मुदान्वितैः। जयशब्देन महता व्याप्तमासीन्नभस्त
ऋषयो ब्रह्मघोषेण गीतेनैव च गायकाः। वाद्यैश्च वादकाश्चैव उपतस्थुःकुमार
स्वमंकमारोप्य तदा गिरीशः कुमारकं तं प्रभया महाप्रभम्।
बभौ भवानीपतिरेव साक्षाच्छ्रिया युतः पुत्रवतां वरिष्ठः॥ १०५॥
दंपती तौ तदा तत्र ऐकपद्येन नंदतुः। अभिषिच्यमान ऋषिभिरावृतः सुरस
कुमारः क्रीडयामास उत्संगे शंकरस्यच। कंठेस्थितंवासुकिंचपाणिभ्यांसमर्पी
मुखंप्रपीडयित्वाऽसौ पाणीनगणयत्तदा। एकं त्रीणि दशाष्टौ च विपरीतक्रमे
प्रहस्य भगवाञ्छंभुरुवाच गिरिजां तदा॥ १०६॥

मंदस्मितेन च तदा भगवान्महेशः प्राप्तो मुदं च परमां गिरिजासमेतः ।
प्रेम्णा सगद्गदगिरा जगदेकबंधुर्नोवाच किंचन तदा भुवनैकभर्ता ॥ ११० ॥

ति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे कार्त्तिकेयस्वामिकुमारोत्पत्तिवर्णनंनाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

देवैः सह कुमारस्य गमनम्

लोमश उवाच

मारं स्वांकमारोप्य उवाच जगदीश्वरः। देवान्प्रति तदा रुद्रःसेन्द्रान्भर्गः प्रतापवान्
कार्यं कथ्यतां देवाः कुमारेणाधुना मम । तदोचुः सहिताः सर्वे देवं पशुपतिंप्रति
रकाद्भयमुत्पन्नं सर्वेषांजगतांविभो । त्रातात्वंजगतांस्वामीतस्मात्त्राणंविधीयताम्
मारेण हतोऽद्यैव तारको भविता प्रभो । तस्मादद्यैव यास्यामस्तारकं हंतुमुद्यताः ॥
थेतिमत्वा सहसा निर्जग्मुस्ते तदा सुराः । कार्त्तिकेयं पुरस्कृत्य शंकरात्मजमेव हि
र्वे मिलित्वा सहसा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः । देवानामुद्यमंश्रुत्वा तारकोऽपिमहाबलः
न्येन महता चैव ययौ योद्धुं सुरान्प्रति । देवैर्दृष्टं समायातं तारकस्य महद्बलम्
दा नभोगता वाणी ह्युवाच परिसांत्व्यतान् । शांकरिंचपुरस्कृत्यसर्वेयूयंप्रतिष्ठिताः
दैत्यान्विजित्य संग्रामे जयिनो हि भविष्यथ ॥ ६ ॥
चं तु खेचरीं श्रुत्वा देवाः सर्वे समुत्सुकाः । कुमारंचपुरस्कृत्यसर्वेतेगतसाध्वसाः
द्धकामाः सुरा यावत्तावत्सर्वे समागताः । वरणार्थं कुमारस्यसुता मृत्योर्दुरत्यया
ह्मणा नोदिता पूर्वं तपः परममाश्रिता । तपसा तेन महता कुमारं प्रति वै तदा ॥
आगता दुहिता मृत्योः सेना नामैकसुंदरी ॥ १२ ॥

तां दृष्ट्वा तेऽब्रुवन्सर्वे देवं पशुपतिं प्रति । एनं कुमारमुद्दिश्य आगता ह्यवि
ब्रह्मणो वचनाच्चैव कुमारेण तदा वृता । अथ सेनापतिर्जातः कुमारः शां
तदा शंखाश्च भेर्यश्च पटहानकगोमुखाः । तथा दुंदुभयो नेदुर्मृदंगाश्च महा
तेन नादेन महता पूरितं च नभस्तलम् । तदा गौरी च गंगा च कृत्तिका मा

परस्परमथोचुस्ताः सुतो मम ममेति च ॥ १६ ॥

एवं विवादमापन्नाः सर्वास्ता मातृकादयः । निवारिता नारदेन मौढ्यं मा कु
पार्वत्यां शंकराज्ञातो देवकार्यार्थसिद्धये । तूष्णींभूतास्तदासर्वाःकृत्तिकामा

गुहेनोक्तास्तदा सर्वा ऋषिपत्न्यश्च कृत्तिकाः ।
नक्षत्राणि समाश्रित्य भवद्भिः स्थीयतां चिरम् ॥ १९ ॥
तथा मातृगणस्तेन स्वामिना स्थापितो दिवि ।
मृत्योः कन्याश्च संगृह्य कार्त्तिकेयस्त्वरान्वितः ॥ २० ॥

इन्द्रं प्रोवाच भगवान्कुमारः शंकरात्मजः । दिवं याहि सुरैः सार्द्धं राज्यं कुर्व
इन्द्रेणोक्तः कुमारो हि तारकेण प्रपीडिताः । स्वर्गाद्विद्राविताः सर्वे वयं याता
किं पृच्छसि महाभाग अस्मान्पदपरिच्युतान् । एवमुक्तस्तदातेनवज्रिणा शं

प्रहस्येन्द्रं प्रति तदा मा भैषीत्यभयं ददौ ॥ २३ ॥

यावत्कथयतस्तस्य शांकरेश्च महात्मनः । कैलासं तु गते रुद्रे पार्वत्या प्रम
आजगाम महादैत्यो दैत्यसेनाभिरावृतः । रणदुंदुभयो नेदुस्तथा प्रलय
रणकर्कशतूर्याणि डिंडिमान्यद्भुतानि च । गोमुखाः खरशृङ्गाणि काहलान्येव
वाद्यभेदा अवाद्यन्त तस्मिन्दैत्यसमागमे । गर्जमानास्तदा वीरास्तारकेण स

उवाच नारदो वाक्यं तारकं देवकण्टकम् ॥ २८ ॥

नारद उवाच

पुरा देवैः कृतो यत्नो वधार्थं नात्र संशयः । तवैव चासुरश्रेष्ठ मयोक्तं नान्य
कुमारोऽयं च शर्वस्य तवार्थं चोपपादितः । एवं ज्ञात्वामहाबाहो कुरुयत्नं स
नारदोक्तं निशम्याथ तारकः प्रहसन्निव । उवाच वाक्यं मेधावी गच्छ त्वं

म वाक्यं महर्षे त्वं वद शीघ्रं यथातथम्। कुमारंचपुरस्कृत्यमयायोद्धुं त्वमिच्छसि
ढभावं समाश्रित्य कर्तुमिच्छसि नान्यथा। मनुष्यमेकमाश्रित्य मुचुकुन्दाख्यमेवच
तत्प्रभावेऽमरावत्यां स्थितोऽसि त्वं न चान्यथा।
कौमारं बलमाश्रित्य तिष्ठसे त्वं ममाग्रतः॥ ३४॥
वां हनिष्याम्यहं मन्द लोकपालैः सहैव हि। एवं कथय देवेन्द्रं देवर्षे नान्यथा वद
तथेति मत्वा भगवान्स नारदो ययौ सुराञ्छक्रपुरोगमांश्च।
आचष्ट सर्वं ह्यसुरेन्द्रभाषितं सहोपहासं मतिमांस्तथैव॥ ३६॥

नारद उवाच

वद्भिः श्रूयतां देवा वचनं मम नान्यथा। तारकेण यदुक्तं च सानुगेनावधार्यताम्॥

तारक उवाच

त्वां हनिष्यामि रे मूढ नान्यथा मम भाषितम्॥ ३८॥
चुकुन्दं समासाद्य लोकपालैश्च पूजितः। नत्वयाभीरुणायोत्स्येदेवोभूत्वानराश्रितः
स्य वाक्यं निशम्योचुः सर्वे देवाः सवासवाः। कुमारंचपुरस्कृत्यनारदंचर्षिसत्तमम्
जानासि त्वं हि देवर्षे कुमारस्य बलाबलम्। अज्ञोभूत्वाकथंवाक्यमुक्तंतस्यममाग्रतः
हस्य नारदो वाक्यमुवाच तस्य सन्निधौ। अहमप्युपहासं च वाक्यं तारकमुक्तवान्
जानीध्वममराः सर्वे कुमारं जयिनं सुराः। भविष्यत्यत्रमेवाक्यंनात्रकार्याविचारणा
नारदस्य वचः श्रुत्वा सर्वेदेवा मुदान्विताः। ऐकपद्येनचोत्तस्थुर्योद्धुकामाश्चतारकम्
कुमारं गजमारोप्य देवेन्द्रो ह्यग्रगोऽभवत्। सुरसैन्येन महता लोकपालैः समावृतः॥
दा दुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः। वीणावेणुमृदंगानि तथा गन्धर्वनिस्वनाः॥
जं दत्त्वा महेंद्राय कुमारो यानमारुहत्। अनेकरत्नसंवीतं नानाश्चर्यसमन्वितम्॥
विचित्रचित्रं सुमहत्तथाश्चर्यसमन्वितम्॥ ४७॥
विमानमारुह्य तदा महायशाः स शांकरिः सर्वगणैरुपेतः।
श्रिया समेतः परया बभौ महान्स वीज्यमानश्चमरैर्महाप्रभैः॥ ४८॥
प्राचेतसं छत्रमहामणिप्रभं रत्नैरुपेतं बहुभिर्विराजितम्।

धृतं तदा तेन कुमारमूर्द्धनि चन्द्रेण चान्द्रैः किरणैः सुशोभितम्
संमीलितास्तदा सर्वेदेवाइन्द्रपुरोगमाः । बलैःस्वैःस्वैःपरिक्रांतायोद्धुकामा
यमोऽपि स्वगणैः सार्द्धं मरुद्भिश्च सदागतिः । पाथोभिर्वरुणस्तत्र कुवेरो गु
ईशोऽपि प्रमथैः सार्द्धं नैर्ऋतो व्याधिभिः सह ॥ ५१ ॥
एवं तेऽष्टौ लोकपा योद्धुकामाः सर्वे मिलित्वा तारकं हंतुमेव।
पुरस्कृत्वा शांकरिं विश्ववंद्यं सेनापतिं चात्मविदां वरिष्ठम् ॥ ५
एवं ते योद्धुकामा हि अवतेरुश्च भूतलम् । अंतर्वेद्यां स्थिताःसर्वेगंगायमु
पातालाच्च समायातास्तारकस्योपजीविनः । चेरुरंगबलोपेता हन्तुकामाः
तारको हि समायातो विमानेन विराजितः । छत्रेण च महातेजा ध्रियमाणे
चामरैर्वीज्यमानो हि शुशुभे दैत्यराट् स्वयम् ॥ ५६ ॥
एवं देवाश्च दैत्याश्च अंतर्वेद्यां स्थितास्तदा । सैन्येनमहतातत्रव्यूहान्कृत्वापृ
गजान्कृत्वा ह्येकतश्चहयांश्च विविधांस्तथा । स्यंदनानिविचित्राणिनानार
पदाता वहवस्तत्र शक्तिशूलपरश्वधैः । खड्गतोमरनाराचैः पाशमुद्गरशोभित
ते सेने सुरदैत्यानां शुशुभाते परस्परम् । हंतुकामास्तदा ते वैस्तूयमानाश्च
इति श्री स्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहे
शिवशास्त्रे देवैः सहतारकासुरस्य संग्रामे देवदैत्यसेनासन्नाहवर्णनं
[नामाष्टाविंशोऽध्यायः

ऊनत्रिंशोऽध्यायः

मुचुकुन्दतारकयुद्धवर्णनम्

लोमश उवाच

उभे सेने तदा तेषां सुराणां चामरद्विषाम् । अनेकाश्चर्यसंवीते चतुरंगव

विरेजतुस्तदाऽन्योन्यं गर्जंतो चाम्बुदागमे ॥ १ ॥
तस्मिन्नन्तरे तत्र वल्गमानाः परस्परम् । देवासुरास्तदा सर्वे युयुधुश्च महाबलाः ॥
युद्धं सुतुमुलं ह्यासीद्देवदैत्यसमाकुलम् । रुण्डमुण्डांकितं सर्वं क्षणेन समपद्यत ॥
भूमौ निपतितास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः । केषांचिद्बाहवश्छिन्नाःखड्गपातैःसुदारुणैः
मुचुकुंदो हि बलवांस्त्रैलोक्येऽमितविक्रमः ॥ ५ ॥
तारको हि तदा तेन मुचुकुंदेन धीमता । खड्गेन चाहतस्तत्र सर्वप्राणेन वक्षसि ॥
प्रसह्य तत्प्रहारं च प्रहसन्वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥
किं रे मूढ त्वयाचाद्यकृतमस्तिबलादिदम् । न त्वयायोद्धुमिच्छामिमानुषेणैवलज्जया
तारकस्य वचः श्रुत्वा मुचुकुंदोऽभ्यभाषत । मया हतोऽसिदैत्येंद्रनान्योभवितुमर्हसि
दृष्ट्वा मे खड्गसंपातं न त्वं तिष्ठसिचाग्रतः । त्वांहन्मिपश्यमेशौर्यंदैत्यराजस्थिरोभव
एवमुक्त्वा तदा वीरो मुचुकुंदो महाबलः । यावज्जघान खड्गेनतावच्छक्त्यासमाहतः
मान्धातुस्तनयस्तत्र पपात रणमण्डले ॥ १० ॥
पतितस्तत्क्षणादेव चोत्थितः परवीरहा ॥ ११ ॥
स लज्जमानोतिमहाबलो वै हन्तुं तदा दैत्यपतिं च तारकम् ।
ब्रह्मास्त्रमुद्यम्य धनुर्गृहीत्वा मांधातृपुत्रो भुवनैकजेता ॥ १२ ॥
स तारकं योद्धुकामस्तरस्वी रुषान्वितोत्फुल्लविलोचनो महान् ।
स नारदो ब्रह्मसुतो बभाषे तदा नृवीरं मुचुकुन्दमेवम् ॥ १३ ॥
न तारको हन्यते मानुषेण तस्मादेतन्मा विमोचीर्महास्त्रम् ॥ १४ ॥
निशम्य वचनं तस्य देवर्षेर्नारदस्य च । मुचुकुंद उवाचेदं भविता कोऽस्य मारकः ॥
तदोवाच महातेजा नारदो दिव्यदर्शनः । एनं हंता कुमारश्च कुमारोऽयं शिवात्मजः
तस्माद्भवद्भिः स्थातव्यमैकपद्येन युध्यताम् । तिष्ठ त्वं चायतो भूत्वामुचुकुंदमहामते
निशम्य वाक्यं च मनोहरं शुभं ह्युदीरितं तेन महाप्रभेण ।
सर्वे सुराः शांतिपरा बभूवुस्तेनैव साकं नृवरेण यत्नात् ॥ १८ ॥
ततो दुन्दुभयो नेदुः शंखाश्च कृतनिश्चयाः । ताडिता विविधैर्वाद्यैःसुरासुरसमन्वितैः

जगर्जुरसुरास्तत्र देवान्प्रति कृतोद्यमाः । शिवकोपोद्भवो वीरो वीरभद्रो ...
गणैर्बहुभिरासाद्य तारकं च महाबलम् । मुचुकुन्दं पृष्ठतः कृत्वा तथैव च ...
तदा ते प्रमथाः सर्वे पुरस्कृत्य कुमारकम् । युयुधुः संयुगे तत्र वीरभद्रादय...
त्रिशूलैर्ऋष्टिभिः पाशैः खड्गैःपरशुपट्टिशैः । निजघ्नुःसमरेऽन्योन्यंसुरासुरपि...
तारको वीरभद्रेण त्रिशूलेन हतो भृशम् । पपात सहसा तत्र क्षणमूर्च्छापरि...
उत्थाय च मुहूर्त्ताच्च तारको दैत्यपुंगवः । लब्धसंज्ञो बलाविष्टो वीरभद्रं ज...
स शक्तिं च महातेजा वीरभद्रो हि तारकम् । त्रिशूलेन च घोरेणशिवस्यानु...
एवं संयुध्यमानौ तौ जघ्नतुश्चेतरेतरम् । द्वंद्वयुद्धं सुतुमुलं तयोर्जातं महा...
सुरास्तत्रैव समरे प्रेक्षका ह्यभवंस्तदा । तयोर्भेरीमृदंगाश्च पटहानकगोमुखाः
तथा डमरुनादेन व्याप्तमासीज्जगत्त्रयम् । तेन घोषेण महता युध्यमानौमहाः
शुशुभातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैर्जर्जरीकृतौ । अन्योन्यमभिसंरब्धौ तौ बुधांगारका...
नारदेन तदा ख्यातो वीरभद्रस्य तद्वधः । न रोचते च तद्वाक्यं वीरभद्रस्य वै...
नारदेन यदुक्तं हि तारकस्य वधं प्रति । यथा रुद्रस्तथा सोऽपि वीरभद्रो म...
एवं प्रयुध्यमानौ तौ जघ्नतुश्चेतरेतरम् । अन्योन्यं स्पर्द्धमानौ तौगजंतौसिंहाः

एवं तदा तौ भुवि युध्यमानौ महात्मना ज्ञानवतां वरेण ।
स वीरभद्रो हि तदा निवारितो वाक्यैरनेकैरथ नारदेन ॥ ३४ ॥

तथा निशम्य तद्वाक्यं नारदस्य मुखोद्गमम् । वीरभद्रोरुषाविष्टो नारदंप्रत्यु...
तारकं च वधिष्यामि पश्य मेऽद्य पराक्रमम् । आनयंतिचयेवीराःस्वामिनंरणा...
ते पापिनो ह्यधर्मिष्ठा विमृशंति रणं गताः ॥ ३६ ॥

भीरवस्ते तु विज्ञेयानवाच्यास्तेकदाचन । त्वंनजानासिदेवर्षेयोधानांचप्रति...
मृत्युं च पृष्ठतः कृत्वारणभूमौगतव्यथाः । शस्त्राशस्त्रैर्भिन्नगात्राःप्रशस्तानात्र...
इत्युक्त्वा चावदद्देवान्वीरभद्रो महाबलः । शृण्वन्तु मम वाक्यानिदेवाइन्द्रपु...
अतारकां महीञ्चाद्य करिष्ये नात्र संशयः ॥ ४० ॥

अथ त्रिशूलमादाय तारकेण युयोध सः । वृषारूढैरनेकैश्च त्रिशूलवरधारिभिः

र्द्दिनो वृषांकाश्च गणास्तेतिप्रहारिणः। वीरभद्रं पुरस्कृत्य वीरभद्रपराक्रमाः ॥
शूलधारिणः सर्वे सर्वे सर्पाङ्गभूषणाः। सचंद्रशेखराः सर्वे जटाजूटविभूषिताः ॥
ळकण्ठा दशभुजाः पञ्चवक्त्रास्त्रिलोचनाः। छत्रचामरसंवीताःसर्वेतेऽत्युग्रवाहवः
भद्रं पुरस्कृत्य सर्वे हरपराक्रमाः। युयुधुस्ते तदा दैत्यास्तारकासुरजीविनः ॥

पुनःपुनस्तैश्च तदा बभूवुर्गणैर्जितास्ते ह्यसुराः पराङ्मुखाः।
बभूव तेषां च तदातिसंगरो महाभयो दैत्यवरैस्तदानीम् ॥ ४६ ॥
अमृष्यमाणाः परमास्त्रकोविदैस्ततो गणास्ते जयिनो बभूवुः।
गणैर्जितास्ते ह्यसुराः पराभवं तं तारकं ते व्यथिताः शशंसुः ॥ ४७ ॥
विनाम्य चापं हि तथा च तारकः स योद्धुकामः प्रविवेश सेनाम्।
यथा झषो वै प्रविवेश सागरं तथा ह्यसौ दैत्यवरो महात्मा ॥ ४८ ॥
गणैः समेतो युयुधे तदानीं स वीरभद्रो हि महाबलश्च।
सर्वान्सुरांश्चेन्द्रमुखान्महाबलस्तथा गणान्यक्षपिशाचगुह्यकान्।
स दैत्यवर्योऽतिरुषं प्रविष्टः संमर्दयामास महाबलो हि ॥ ४९ ॥

ः समभवद्युद्धं देवदानवसंकुलम्। देवदानवयक्षाणां सन्निपातकरं महत् ॥ ५० ॥
ावृषागर्जमानाअश्वाञ्जघ्नुश्चसादिभिः। रथिभिश्चरथाञ्जघ्नुःकुञ्जरान्सादिभिःसह

वृषारूढैः सरथैस्ते च सर्वे निष्पाटिता ह्यसुराः पोथिताश्च ॥ ५२ ॥
क्षयं प्रणीता बहवस्तदानीं पेतुः पृथिव्यां निहताश्च केचित्।
केचित्प्रविष्टा हि रसातलं च पलायमाना बहवस्तथैव ॥ ५३ ॥

चिच्च शरणं प्राप्ता रुद्रानुचरकिंकरान्। एवं नष्टं तदा सैन्यंविलोक्यासुरपालकः
तारको हि रुषाविष्टो हन्तुं देवगणान्ययौ ॥ ५४ ॥

जानामयुतं कृत्वा दैत्यराजो हि तारकः। आरुह्य सिंहं सहसा घातयामास तान्रणे
शितेन च सिंहेन वृषाः केचिद्विदारिताः तथैव तारकेणैव घातिता बहवो गणाः ॥
वं कृतं तदा तेन तारकेण महात्मना। सर्वेषामेव देवानामशक्यस्तारको महान् ॥
ातस्तदा महाबाहुस्त्रैलोक्यक्षयकारकः। तारकस्यानुगा दैत्या अजेया बलवत्तराः

महारूढा दंशिताश्च करालास्ते प्रहारिणः । तैराद्रुता गणाःसर्वे सिंहैश्च
एवं निहन्यमाना वै गणास्ते रणमण्डले । प्रहस्य विष्णुः प्रोवाच कुमारं

विष्णुरुवाच

नान्यो हंतास्य पापस्य त्वद्विना कृत्तिकासुत । तस्मात्त्वयाहिकर्त्तव्यंवचन
तारकस्य वधार्थाय उत्पन्नोऽसि शिवात्मज । तस्मात्त्वयैवकर्त्तव्यनिधनं
तच्छ्रुत्वाभगवान्क्रुद्धःपार्वतीनन्दनोमहान् । उवाचप्रहसन्वाक्यंविष्णुंप्रति

मया निरीक्ष्यते सम्यक् चित्रयुद्धं महात्मनाम् ।
अनभिज्ञोऽस्म्यहं विष्णो ! कार्याकार्यविचारणे ॥ ६४ ॥

केऽस्मदीयाः परे चैव न जानामि कथंचन । किमर्थंयुध्यमानावै परस्परव

कुमारस्य वचः श्रुत्वा नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६६ ॥

नारद उवाच

कुमारोऽसि महाबाहो शंकरस्यांशसंभवः । त्वंत्राताजगतांस्वामीदेवानांच
तारकेण पुरा वीर तपस्तप्तं सुदारुणम् । येनैव विजिता देवा येनस्वर्गस्त
तपसा तेन चोग्रेण अजेयत्वमवाप्तवान् । अनेनापि जितश्चेंद्रो लोकपाला
त्रैलोक्यं च जितं सर्वं ह्यनेनैव दुरात्मना । तस्मात्त्वया निहंतव्यस्तारकः
सर्वेषां शं विधातव्यं त्वया नाथेन चाद्य वै । नारदस्यवचःश्रुत्वाकुमारःप्र

विमानादवतीर्याथ पदातिः परमोऽभवत् ॥ ७१ ॥

पद्भ्यां तदाऽसौ परिधावमानः शिवात्मजोऽयं च कुमाररूपी ।
करे समादाय महाप्रभावां शक्तिं महोल्कामिव दीप्तियुक्ताम् ॥ ७
दृष्ट्वा तमायांतमतीव चंडमव्यक्तरूपं बलिनां वरिष्ठम् ।
दैत्यो बभाषे सुरसत्तमानामसौ कुमारो द्विषतां निहंता ॥ ७३ ॥
अनेन सार्द्धं ह्यहमेव वीरो योत्स्यामि सर्वानहमेव वीरान् ।
गणांश्च सर्वानपि घातयामि महेश्वराँल्लोकपालांश्च सद्यः ॥ ७४ ॥
इत्येवमुक्त्वा सततं महाबलः कुमारमुद्दिश्य ययौ च योद्धुम् ।

जग्राह शक्तिं परमाद्भुतां च स तारको वाक्यमिदं बभाषे ॥ ७५ ॥

तारक उवाच

कुमारो मेऽग्रतश्चाद्य भवद्भिश्च कथं कृतः । यूयं गतत्रपा देवा येषां राजापुरन्दरः ॥
पुरा येन कृतं कर्म विदितं सर्वमेव तत् । प्रसुप्ताश्चार्द्दिता गर्भे जठरस्था निपातिताः
कश्यपस्यात्मजेनैव बहुरूपो हतोऽसुरः । नमुचिश्च हतो वीरो वृत्रश्चैव तथा हतः ॥
कुमारं हंतुकामोऽसौ देवेन्द्रो बलघातकः । कुमारोऽयं मया देवाघातितोऽद्यनसंशयः
पुरा हतास्त्वया विप्रा दक्षयज्ञेन ह्यनेकशः । तत्कर्मणः फलं चाद्य वीरभद्र महामते ॥
दर्शयिष्यामि ते वीर ! रणे रणविशारद ! ॥ ८० ॥

इत्येवमुक्त्वा स तदा महात्मा दैत्याधिपो वीरवरः स एकः ।
जग्राह शक्तिं परमाद्भुतां च स तारको युद्धविदां वरिष्ठः ॥ ८१ ॥
इति परमरुषाभिभूतो दितितनयः परीवृतोऽसुरेन्द्रैः ।
युधि मतिमकरोत्तदा निहंतुं समरविजयी स तारको बलीयान् ॥ ८२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे केदारखण्डे शिवशास्त्रे सुरतारकासुरसंग्रामवर्णनंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

इन्द्रतारकासुरयुद्धवर्णनम्

लोमश उवाच

वल्गमानं तमायांतं तारकासुरमोजसा । आजघान च वज्रेण इन्द्रोमतिमतां वरः ॥
तेन वज्रप्रहारेण तारको विह्वलीकृतः । पतितोऽपि समुत्थाय शक्त्या तं प्राहरद्द्विपम्
पुरन्दरं गजस्थं हि अपातयत भूतले । हाहाकारो महानासीत्पतिते च पुरन्दरे ॥३॥

तारकेणापि तत्रैव यत्कृतं तच्छृणु प्रभो । पतितं च पदाकस्य हस्ताद्वज्रं प्र
हतं देवेन्द्रमालोक्य तारको रिपुसूदनः । वज्रघातेन महताऽताडयत्तु पुरन्दरम्
त्रिशूलमुद्यम्य महाबलस्तदा स वीरभद्रो रुषितः पुरन्दरम् ।
संरक्षमाणो हि जघान तारकं शूलेन दैत्यं च महाप्रभेण ॥ ६ ॥
शूलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले । पतितोऽपि महातेजास्तारकः पुनरुत्थितः
जघान परया शक्त्या वीरभद्रं तदोरसि । वीरभद्रोऽपि पतितः शक्तिघातेन तत्क्षणात्
सगणाश्चैव देवाश्च गंधर्वोरगराक्षसाः । हाहाकारेण महता चुक्रुशुश्च पुनः पुनः
तदोत्थितः सहसा महाबलः स वीरभद्रो द्विषतां निहंता ।
त्रिशूलमुद्यम्य तडित्प्रकाशं जाज्वल्यमानं प्रभया निरन्तरम् ॥
स्वरोचिषा भासितदिग्वितानं सूर्येन्दुबिम्बाग्न्युडुमण्डलाभम् ॥ १०
त्रिशूलेन तदा यावद्धंतुकामो महाबलः । निवारितः कुमारेण मावधीस्त्वं महा
जगर्ज च महातेजाः कार्त्तिकेयो महाबलः ॥ १२ ॥
तदा जयेत्यभिहितो भूतैराकाशसंस्थितैः । शक्त्या परमया वीरस्तारकं हंतुमुद्यतः
तारकस्य कुमारस्य संग्रामस्तत्र दुःसहः । जातस्ततो महाघोरः सर्वभूतभयं
शक्तिहस्तौ च तौ वीरौयुयुधातेपरस्परम् । शक्तिभ्यांभिन्नहस्तौतौमहासाहसि
परस्परं वञ्चयन्तौ सिंहाविव महाबलौ । वैतालिकीं समाश्रित्य तथावै खेचरीं
पार्वतं मतमाश्रित्य शक्त्या शक्तिं निजघ्नतुः । एभिर्मतैर्महावीरौ चक्रतुर्युद्धमुत्तम
अन्योन्यसाधकौ भूत्वा महाबलपराक्रमौ । जघ्नतुः शक्तिधाराभी रणे रणवि
मूर्ध्नि कण्ठे तथा बाह्वोर्जान्वोश्चैव कटीतटे । वक्षस्युरसिपृष्ठेचचिच्छिदतुःपरस्
तदा तौ युध्यमानौ च हन्तुकामौ महाबलौ । प्रेक्षका ह्यभवन्सर्वे देवगन्धर्वगु
ऊचुः परस्परं सर्वे कोऽस्मियुन्द्धेविजेष्यते । तदानभोगतावाणीउवाचपरिसां
तारकं हि सुराश्चाद्यकुमारोऽयंहनिष्यति । माशोच्यतांसुरासर्वैःसुखेनस्थीयता
श्रुत्वा तदा तां गगने समीरितां तथैव वाचं प्रमथैः परीतः ।
कुमारकस्तं प्रति हन्तुकामो दैत्याधिपं तारकमुग्ररूपम् ॥ २३ ॥

त्या तया महाबाहुराजघान स्तनांतरे। तारकं ह्यसुरश्रेष्ठं कुमारो बलवत्तरः॥
प्रहारमनादृत्य तारको दैत्यपुङ्गवः। कुमारं चाऽपि संक्रुद्धः स्वशक्त्याचाजघानवै
न शक्तिप्रहारेण शांकरिर्मूर्च्छितोऽभवत्। मुहूर्ताच्चेतनां प्राप्तःस्तूयमानोमहर्षिभिः
था सिंहो मदोन्मत्तो हंतुकामस्तथैव च। कुमारस्तारकं दैत्यमाजघान प्रतापवान्
वं परस्परेणैव कुमारश्चैव तारकः। युयुधातेऽतिसंरब्धौ शक्तियुद्धपरायणौ॥२८॥
भ्यासपरमावास्तामन्योन्यविजिगीषया। तथातौयुध्यमानौचचित्ररूपौ तपस्विनौ
धाराभिश्च अणीभिश्च सुप्रयुक्तौ च जघ्नतुः। अवलोकपराः सर्वे देवगन्धर्वकिन्नराः
विस्मयं परमं प्राप्ता नोचुः किंचन तस्य वै। नववौचतदावायुर्निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः
हेमालयोऽथ मेरुश्च श्वेतकूटश्च दर्दुरः। मलयोऽथ महाशैलो मैनाको विंध्यपर्वतः
लोकालोको महाशैलो मानसोत्तरपर्वतः। कैलासो मन्दरो माल्यो गन्धमादनएवच
उदयाद्रिर्महेंद्रश्च तथैवास्तगिरिर्महान्॥ ३४॥
ते चान्ये च बहवः पर्वताश्च महाप्रभाः। स्नेहार्द्दितास्तदाजग्मुः कुमारं चपरीप्सवः
ततः स दृष्ट्वा तान्सर्वान्भयभीतांश्चशांकरिः। पर्वतान्गिरिजापुत्रोबभाषेप्रतिबोधयन्

कुमार उवाच

मा खिद्यतमहाभागामाचिंताक्रियतांनगाः। घातयाम्यद्यपापिष्ठंसर्वेषामिहपश्यताम्

एवं समाश्वास्य तदा मनस्वी तान्पर्वतान्देवगणैः समेतान्।
प्रणम्य शम्भुं मनसा हरिप्रियः स्वां मातरं चैव नतः कुमारः॥ ३८॥
कार्त्तिकेयस्ततः शक्त्या निचकर्त रिपोः शिरः।
तच्छिरो निपपातोर्व्यां तारकस्य च तत्क्षणात्।
एवं स जयमापेदे कार्त्तिकेयो महाप्रभुः॥ ३९॥

ददृशुस्तं सुरगणा ऋषयोगुह्यकाःखगाः। किंनराश्चारणाःसर्पास्तथाचैवाप्सरोगणाः
हर्षेणमहताविष्टास्तुष्टुवुस्तं कुमारकम्। विद्याधर्यश्च ननृतुर्गायकाश्च जगुस्तदा॥
एवं विजयमापन्नं दृष्ट्वा सर्वेमुदायुताः। ततोहर्षात्समागम्यस्वांकमारोप्य चात्मजम्
परिष्वज्य तु गाढेन गिरिजापि तुतोष वै। स्वोत्संगे चसमारोप्यकुमारंसूर्यवर्चसम्

लालयामास तन्वंगी पार्वती रुचिरेक्षणा। ऋषिभिःसत्कृतःशंभुःपार्वत्यासहित
आर्यासनगता साध्वी शुशुभे मितभाषिणी। संस्तूयमानामुनिभिःसिद्धचारण
नीराजिता तदा देवैः पार्वती शंभुना सह। कुमारेण सहैवाथ शोभमाना तदा
हिमालयस्तदागत्य पुत्रैश्च परिवारितः। मेर्वाद्यैः पर्वतैश्चैव स्तूयमानः परो
तदा देवगणाः सर्वे इन्द्राद्या ऋषिभिः सह। पुष्पवर्षेण महता ववर्षुरमितद्युति
कुमारमग्रतः कृत्वा नीराजनपरा बभुः॥ ४८॥
गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा। संस्तूयमानो विविधैः सूक्तैर्वेदविदां
कुमारविजयंनाम चरित्रं परमाद्भुतम्। सर्वपापहरं दिव्यं सर्वकामप्रदं नृणाम्
ये कीर्त्तयंति शुचयोऽमितभाग्ययुक्ताश्चानंत्यरूपमजरामरमादधानाः
कौमारविक्रममहात्म्यमुदारमेतदानन्ददायकमनोर्थकरं नृणां हि॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि कुमारस्य महात्मनः। चरितं तारकाख्यं च सर्वपापैःसमु
इति श्रीस्कांदे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर
केदारखण्डे शिवशास्त्रे तारकासुरवधपूर्वकं स्वामिकार्त्तिकेयविजयोत्सववर्णन
त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

———

एकत्रिंशोऽध्यायः

तारकवधानन्तरं शौनकादीनाम्प्रश्नः

शौनक उवाच

हत्वा तं तारकं संख्ये कुमारेण महात्मना। किं कृतं सुमहद्विप्र तत्सर्वं वक्तुम
कुमारो ह्यपरः शंभुर्येन सर्वमिदं ततम्। तपसा तोषितः शंभुर्ददाति परमं पदम्
कुमारो दर्शनात्सद्यः सफलो हिनृणांसदा। येपापिनोह्यधर्मिष्ठाःश्वपचाअपि
दर्शनाद्भूतपापास्ते भवन्त्येव न संशयः॥ ३॥

शौनकस्य वचः श्रुत्वा उवाच चरितंतदा । व्यासशिष्योमहाप्राज्ञःकुमारस्यमहात्मनः

लोमश उवाच

हत्वा तं तारकं संख्ये देवानामजयं ततः । अवध्यं च द्विजश्रेष्ठाःकुमारोजयमाप्तवान्
महिमा हि कुमारस्य सर्वशास्त्रेषु कथ्यते । वेदैश्च स्वागमैश्चापि पुराणैश्च तथैव च ॥
तथोपनिषदैश्चैव मीमांसाद्वितयेन तु । एवंभूतः कुमारोयमशक्यो वर्णितुं द्विजाः ॥
यो हि दर्शनमात्रेण पुनाति सकलंजगत् । त्रातारंभुवनस्यास्यनिशम्यपितृराट्स्वयम्
ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य विष्णुं चैव सवासवम् । स ययौ त्वरितेनैवशंकरं लोकशंकरम्
तुष्टाव प्रयतो भूत्वा दक्षिणाशापतिः स्वयम् ॥ ९ ॥
नमो भर्गाय देवाय देवानां पतये नमः । मृत्युंजयाय रुद्राय ईशानाय कपर्दिने ॥१०॥
नीलकंठाय शर्वाय व्योमावयवरूपिणे । कालाय कालनाथाय कालरूपाय वै नमः ॥
यमेन स्तूयमानो हि उवाच प्रभुरीश्वरः । किमर्थमागतोऽसि त्वं तत्सर्वंकथयस्व नः

यम उवाच

श्रूयतां देवदेवेश वाक्यं वाक्यविशारद । तपसा परमेणैव तुष्टिं प्राप्तोऽसिशंकर ॥१३
कर्मणा परमेणैव ब्रह्मा लोकपितामहः । तुष्टिमेति न संदेहो वराणां हि सदा प्रभुः
तथा विष्णुर्हि भगवान्वेदवेद्यः सनातनः । यज्ञैरनेकैः संतुष्ट उपवासव्रतैस्तथा ॥
ददाति केवलं भावं येन कैवल्यमाप्नुयुः । नराः सर्वे मम मतं नान्यथा हि वचो मम
ददाति तुष्टोवैंभोगंतथास्वर्गादिसंपदः । सूर्योनमस्ययाऽऽरोग्यंददातीहनचान्यथा
गणेशो हि महादेव अर्घ्यपाद्यादिचंदनैः । मंत्रावृत्त्या तथा शंभो निर्विघ्नंचकरिष्यति
तथान्ये लोकपाः सर्वे यथाशक्त्या फलप्रदाः । यज्ञाध्ययनदानाद्यैःपरितुष्टाश्च शंकर ॥
महदाश्चर्यसंभूतं सर्वेषां प्राणिनामिह । कृतं च तव पुत्रेण स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥२०
दर्शनाच्च कुमारस्य सर्वे स्वर्गौकसो नराः । पापिनोऽपिमहादेवजातानास्त्यत्रसंशयः
मया किंक्रियतांदेवकार्याकार्यव्यवस्थितौ । ये सत्यशीलाःशांताश्चवदान्यानिरवग्रहाः
जितेंद्रिया अलुब्धाश्च कामरागविवर्जिताः । याज्ञिका धर्मनिष्ठाश्च वेदवेदांगपारगाः
यां गतिं यांति वै शंभो सर्वे सुकृतिनोपि हि । तांगतिंदर्शनात्सर्वेश्वपचाअधमाअपि

कुमारस्य च देवेश महदाश्चर्यकर्मणः । कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगसहितायां शिव
शिवस्य तनयं दृष्ट्वा ते यांति स्वकुलैः सह । कोटिभिर्बहुभिश्चैवमत्स्थानंपरि
कुमारदर्शनात्सर्वे श्वपचा अपि यांति वै । सद्गतिं त्वरितेनैव किं क्रियेतमया
यमस्य वचनं श्रुत्वा शङ्करो वाक्यमब्रवीत् ॥ २८ ॥

शङ्कर उवाच

येषां त्वगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् । विशुद्धभावो भो धर्म्म तेषां मनसि
सत्तीर्थगमनायैव दर्शनार्थं सतामिह । वाञ्छाचमहती तेषां जायतेपूर्वकारिता ॥
बहूनां जन्मनामन्ते मयि भावोऽनुवर्त्तते । प्राणिनां सर्वभावेन जन्माभ्यासेनभो
तस्मात्सुकृतिनः सर्वे येषां भावोऽनुवर्त्तते । जन्मजन्मानुवृत्तानां विस्मयंनैवका
स्त्रीबालशूद्राः श्वपचाधमाश्च प्राग्जन्मसंस्कारवशाद्धि धर्म्म ! ।
योनिं गताः पापिषु वर्त्तमानास्तथाऽपि शुद्धा मनुजा भवंति ॥ ३३ ॥
तथा सितेन मनसा च भवन्ति सर्वे सर्वेषु चैव विषयेषु भवन्ति तज्ज्ञाः
दैवेन पूर्वचरितेन भवन्ति सर्वे सुराश्चेंद्रादयो लोकपालाः प्राक्तनेन ॥
जाता ह्यमी भूतगणाश्च सर्वे ह्यमी ऋषयो ह्यमी देवताश्च ॥ ३५ ॥
विस्मयो नैव कर्त्तव्यस्त्वया वापि कुमारके । कुमारदर्शने चैव धर्मराज निबोध
वचनं कर्मसंयुक्तं सर्वेषां फलदायकम् । सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च दानानि विविधानि
कार्याणि मनःशुद्ध्यर्थं नात्र कार्या विचारणा ॥ ३७ ॥
मनसाभावितोह्यात्माआत्मनात्मानमेवच । आत्माअहंचसर्वेषांप्राणिनांहिव्यवस्थि
अहं सदा भावयुक्त आत्मसंस्थो निरंतरः । जंगमाजंगमानां च सत्यं प्रति वदा
द्वन्द्वातीतो निर्विकल्पो हि साक्षात्स्वस्थो नित्यो नित्ययुक्तो निरीह
कूटस्थो वै कल्पभेदप्रवादैर्बहिष्कृतो बोधबोध्यो ह्यनन्तः ॥ ४० ॥
विस्मृत्यचैनंस्वात्मानंकेवलंबोधलक्षणम् । संसारिणो हि दृश्यंतेसमस्ताजीवरा
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्चत्रयोऽमीगुणकारिणः । सृष्टिपालनसंहारकारकानान्यथा
अहंकारवृतेनैव कर्मणा कारिताचयम् । यूयं च सर्वे विबुधा मनुष्याश्च खगाद

पश्वादयः पृथग्भूतास्तथान्ये वहवो ह्यमी । पृथक्पृथक्समीचीना गुणवन्तश्च संसृतौ
पतिता मृगतृष्णायां मायया च वशीकृताः । वयं सर्वेचविबुधाःप्राज्ञाः पंडितमानिनः
परस्परं दूषयन्तो मिथ्यावादरताः खलाः ॥ ४६ ॥
त्रैगुणा भवसंपन्ना अतत्त्वज्ञाश्च रागिणः । कामक्रोधभयद्वेषमदमात्सर्यसंयुताः ॥
परस्परं दूषयन्तो ह्यतत्त्वज्ञा वहिर्मुखाः । तस्मादेवं विदित्वाथ असत्यं गुणभेदतः ॥
गुणातीते च वस्त्वर्थे परमार्थैकदर्शनम् ॥ ४६ ॥
यस्मिन्भेदोह्यभेदंचयस्मिन्रागोविरागताम् । क्रोधो ह्यक्रोधतांयातितद्धाम परमं श्रृणु
न तद्भासयते शब्दः कृतकत्वाद्यथा घटः । शब्दो हि जायते धर्म्मः प्रवृत्तिपरमो यतः
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च तथा द्वन्द्वानि सर्वशः । विलयंयांतियत्रैवतत्स्थानंशाश्वतं मतम्
निरंतरं निर्गुणं ज्ञप्तिमात्रं निरंजनं निर्विकारं निरीहम् ।
सत्तामात्रं ज्ञानगम्यं स्वसिद्धं स्वयंप्रभं सुप्रभं बोधगम्यम् ॥ ५३ ॥
एतज्ज्ञानं ज्ञानविदो वदन्ति सर्वात्मभावेन निरीक्षयन्ति ।
सर्वातीतं ज्ञानगम्यं विदित्वा येन स्वस्थाः समबुद्ध्या चरन्ति ॥ ५४ ॥
अतीत्य संसारमनादिमूलं मायामयं मायया दुर्विचार्यम् ।
मायां त्यक्त्वा निर्ममा वीतरागा गच्छन्ति ते प्रेतराण्निर्विकल्पम् ॥ ५५ ॥
संसृतिः कल्पनामूलं कल्पना ह्यमृतोपमा । यैःकल्पनापरित्यक्तातेयांति परमांगतिम्
शुक्त्यां रजतबुद्धिश्च रज्जुबुद्धिर्यथोरगे । मरीचौ जलबुद्धिश्चमिथ्यामिथ्यैवनान्यथा
सिद्धिः स्वच्छंदवर्त्तित्वंपारतंत्र्यंहिवैमृषा । बद्धोहिपरतंत्राख्योमुक्तःस्वातंत्र्यभावनः
एको ह्यात्मा विदित्वाथ निर्ममो निरवग्रहः । कुतस्तेषां वंधनं च यथाखेपुष्पमेव च
शशविषाणमेवैतज्ज्ञानं संसार एव च । किं कार्यं वहुनोक्तेन वचसा निष्फलेन हि
ममतां च निराकृत्यप्राप्तुकामाःपरंपदम् । ज्ञानिनस्तेहिविद्वांसोवीतरागाजितेंद्रियाः
यैस्त्यक्तो ममताभावोलोभकोपौनिराकृतौ । तेयांतिपरमंस्थानंकामक्रोधविवर्जिताः
यावत्कामश्च लोभश्चरागद्वेषौन्यवस्थितौ । नाप्नुवंतिचतासिद्धिंशब्दमात्रैकबोधकाः

यम उवाच

शब्दाच्छब्दः प्रवर्त्तेत निःशब्दं ज्ञानमेव च । अनित्यत्वंहिशब्दस्यकथंप्रोक्तंत्वया
अक्षरं ब्रह्म परमं शब्दोवै ह्यक्षरात्मकः । तस्माच्छब्दस्त्वया प्रोक्तोनिरीक्षकइति
प्रतिपाद्यंहियत्किंचिच्छब्देनैवविनाकथम् । तत्सर्वंकथ्यतांशंभोकार्याकार्यव्यवस्थि

शङ्कर उवाच

शृणुष्वावहितो भूत्वा परमार्थयुतं वचः । यस्य श्रवणमात्रेण ज्ञातव्यं नावशिष्य
ज्ञानप्रवादिनः सर्वे ऋषयो वीतकल्मषाः ज्ञानाभ्यासेन वर्तंते ज्ञानं ज्ञानविदोवि
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं ज्ञात्वा च परिगीयते । कथं केन च ज्ञातव्यं किंतद्वक्तुंविवक्षि
एतत्सर्वं समासेन कथयामि निबोध मे । एको ह्यनेकधा चैव दृश्यते भेदभाव
यथा भ्रमरिकादृष्टा भ्रम्यते च मही यम । तथात्मा भेदबुद्ध्या च प्रतिभातिह्यनेक
तस्माद्विमृश्य तेनैव ज्ञातव्यः श्रवणेन च । मंतव्यः सुप्रयोगेण मननेन विशेषत
निर्द्धार्य चात्मनात्मानं सुखं बंधात्प्रमुच्यते । मायाजालमिदं सर्वं जगदेतच्चराच
मायामयोऽयं संसारो ममतालक्षणो महान् । ममतांचबहिःकृत्वासुखंबंधात्प्रमुच्य
कोऽहं कस्त्वं कुतश्चान्ये महामायावलंबिनः । अजागलस्तनस्येव प्रपंचोऽयंनिरर्थ
निष्फलोऽयं निराभासो निःसारो धूमडंबरः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेनआत्मानंस्मरवै

लोमश उवाच

एवंप्रचोदितस्तेन शंभुना प्रेतराट्स्वयम् । बुद्धोभूत्वायमः साक्षादात्मभूतोऽभव
कर्म्मणां हि च सर्वेषां शास्ता कर्मानुसारतः । बभूव डंबरो नृणांभूतानांचसमाहि

ऋषय ऊचुः

हत्वा तु तारकं युद्धे कुमारेण महात्मना । अत ऊर्ध्वं कथ्यतां भोकिं कृतं महद्भु

सूत उवाच

हते तु तारके दैत्ये हिमवत्प्रमुखाद्रयः । कार्त्तिकेयं समागत्य गीर्भीं रम्याभिरैड

गिरय ऊचुः

नमः कल्याणरूपाय नमस्ते विश्वमंगल । विश्वबंधो नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभा
वरिष्ठाः श्वपचा येन कृता वै दर्शनात्त्वया । त्वां नमामो जगद्वन्धुंत्वांवयंशरणाग

नमस्ते पार्वतीपुत्र शंकरात्मज ते नमः। नमस्ते कृत्तिकासूनो अग्निभूत नमोऽस्तु ते
नमोऽस्तु ते देववरैः सुपूज्य नमोऽस्तु ते ज्ञानविदां वरिष्ठ !।
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद शरण्यं सर्वार्तिविनाशदक्ष ! ॥ ८४ ॥
एवं स्तुतोगिरिभिःकार्त्तिकेयोह्युमासुतः। तान्गिरीन्सुप्रसन्नात्मा वरंदातुंसमुत्सुकः

कार्त्तिकेय उवाच

भोभो गिरिवरा यूयं शृणुध्वंमद्वचोऽधुना। कर्मिभिर्ज्ञानिभिश्चैवसेव्यमानाभविष्यथ
भवत्स्वेवहि वर्त्तंते दृषदो यत्नसेविताः। पुनन्तु विश्वं वचनान्मम ता नात्र संशयः
पर्वतीयानितीर्थानिभविष्यंतिनचान्यथा। शिवालयानिदिव्यानिदिव्यान्यायतनानिच
अयनानि विचित्राणि शोभनानि महांति च। भविष्यंति न संदेहः पर्वता वचनान्मम
योऽयं मातामहो मेऽद्यहिमवान्पर्वतोत्तमः। तपस्विनांमहाभागःफलदोहि भविष्यति
मेरुश्च गिरिराजोऽयमाश्रयो हि भविष्यति। लोकालोकोगिरिवरउदयाद्रिर्महायशाः
लिंगरूपो हि भगवान्भविष्यतिन चान्यथा। श्रीशैलोहिमहेंद्रश्चतथासह्याचलोगिरिः
माल्यवान्मलयो विन्ध्यस्तथासौ गंधमादनः। श्वेतकूटस्त्रिकूटो हि तथादर्दुरपर्वतः
एते चान्ये च बहवः पर्वता लिंगरूपिणः। मम वाक्याद्भविष्यन्ति पापक्षयकरा ह्यमी
एवं वरं ददौ तेभ्यः पर्वतेभ्यश्च शांकरिः। ततो नंदी ह्युवाचाथ सर्वांगमपुरस्कृतम्

नन्द्युवाच

त्वया कृता हि गिरयो लिंगरूपिण एवते। शिवालयाःकथंनाथपूज्याःस्युःसर्वदैवतैः

कुमार उवाच

लिंगं शिवालयं ज्ञेयं देवदेवस्य शूलिनः। सर्वैर्नृभिर्दैवतैश्च ब्रह्मादिभिरतन्द्रितैः ॥
नीलं मुक्ता प्रवालं च वैडूर्यं चन्द्रमेव च। गोमेदं पद्मरागं च मारतं कांचनं तथा ॥
राजतं ताम्रमारं च तथा नागमयं परम्। रत्नधातुमयान्येव लिंगानिकथितानि ते ॥
पवित्राण्येव पूज्यानि सर्वकामप्रदानि च। एतेषामपि सर्वेषां काश्मीरंहिविशिष्यते
ऐहिकामुष्मिकं सर्वं पूजाकर्तुः प्रयच्छति ॥ १०१ ॥

नन्द्युवाच

लिंगानामपि पूज्यं स्याद्बाणलिंगं त्वया कथम् । कथितं चोत्तमत्वेन तत्सर्वं वद

कुमार उवाच

रेवायां तोयमध्ये च दृश्यंते दृषदो हिया: । शिवप्रसादात्तास्तु स्युर्लिंगरूपानचान्

श्लक्ष्णमूलाश्च कर्तव्याः पिंडिकोपरिसंस्थिताः । पूजनीयाःप्रयत्नेनशिवदीक्षायुतैः

पिण्डीयुक्तंचशास्त्रेणविधिनाचयजेच्छिवम् । वरदो हिजगन्नाथःपूजकस्यनचान्

पंचाक्षरी यस्य मुखे स्थिता सदा चेतोनिवृत्तिः शिवचिन्तने च ।
भूतेषु साम्यं परिवादमूकता षण्ढत्वमेवं परयोषितासु ॥ १०६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्रयां संहितायां प्रथमे माहेश्वर
केदारखण्डे शिवशास्त्रे कार्त्तिकेयप्रोक्तशिवलिङ्गमाहात्म्यवर्णनं
नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

सश्वेतराजचरितवर्णनं कालदहनवृत्तान्ते शिवभक्तिमहिमप्रतिपादनम्

लोमश उवाच

एवं तेशिवधर्माश्चकथितास्तेनवैद्विजाः । सविशेषाःपाशुपताःप्रसादाच्चैव विस्तरात्

अनेकागमसंवीता यथातत्त्वमुदाहृताः । कापालिकानांभेदाश्च प्रोक्ता व्याससमा

धर्मा नानाविधाः प्रोक्ता नन्दिनं प्रति वै तदा ॥ ३ ॥

ऋषय ऊचुः

श्रुतं कुमारचरितमविशेषं सुमङ्गलम् । अस्माभिश्च महाभाग किंचित्पृच्छामहे व

श्वेतस्य राजसिंहस्य चरितं परमाद्भुतम् । येन संतोषितो रुद्रःशिवोभक्त्याऽप्रमेय

ते भक्तास्ते महात्मानोज्ञानिनस्ते च कर्मिणः । येऽर्चयंतिमहाशंभुंदेवंभक्त्यासमावृताः
तस्मात्पृच्छामहे सर्वंचरितंशंकरस्यच । व्यासप्रसादात्सर्वं यज्जानासित्वंन चापरः
निशम्य वचनं तेषां मुनीनां लोमशोऽब्रवीत् ॥ ८ ॥

लोमश उवाच

आकर्ण्यतां महाभागाश्चरितं परमाद्भुतम् । तस्यराज्ञोहिभजतोराजभोगांश्च सर्वशः
मतिर्धर्मे समुत्पन्ना श्वेतस्य च महात्मनः ॥ ६ ॥
पृथ्वीं पालयामास प्रजा धर्मेणपालयन् । ब्रह्मण्यःसत्यवाक्छूरःशिवभक्तोनिरंतरम्
राज्यं शशासाऽथ स शक्तितो नृपो भक्त्या तदा चैव समर्चयत्सदा ।
शंभुं परेशं परमं परात्परं शांतं पुराणं परमात्मरूपम् ॥ ११ ॥
आयुस्तस्य परिक्षीणमर्चतःपरमेश्वरम् । अथैतच्च महाभाग चरितंश्रूयतां मम ॥१२ ॥
वाणी शिवकथायुक्ता परमाश्चर्यसंयुता । न वाऽऽधयोहि तस्यैवव्याधयोहिमहीपतेः
तस्य राज्ञोनवाधन्ते तथा चोपद्रवास्त्वमी । निरीतिको जनो ह्यासीन्निरुपद्रवएव च
अकृष्टपच्यौषधयस्तस्य राज्ञोऽभवन्भुवि । तपस्विनो ब्राह्मणाश्चवर्णाश्रमयुताजनाः
न पुत्रमरणेदुःखंनापमानंनमारकाः । न दारिद्र्यं चतेसर्वे प्राप्नुवन्तिकदाचन ॥ १६ ॥
एवं बहुतरः कालस्तस्य राज्ञो महात्मनः । गतो हि सफलो विप्राःशिवपूजारतस्यवै
एकदा पूजमानं तं शंकरं परमार्थदम् । यमो हि प्रेषयामास यमदूतान्नृपंप्रति ॥१८ ॥
वचनाच्चित्रगुप्तस्य श्वेत आनीयतामिति । तथेति मत्वा ते दूताआगताः शिवमंदिरम्
राजानंनेतुकामास्तेपाशहस्तामहाभयाः । यावत्समागतायाम्याराजानं ददृशुस्त्वरात्
न चक्रिरे तदा दूता आज्ञां धर्मस्य चैव हि । ज्ञात्वा सर्वं यमश्चैव आगतःस्वयमेवहि
उद्धृत्य दंडं सहसा नेतुकामस्तदा नृपम् । ददर्श च महाबाहुः शिवध्यानपरायणम्
शिवभक्तियुतं शांतं केवलं ज्ञानसंयुतम् । यमोऽपि दृष्ट्वा राजानं परं क्षोभमुपागमत्
चित्रस्थो ह्यभवत्सद्यःप्रेतराजोऽतिविह्वलः । कालरूपश्च यो नित्यंप्रजानांक्षयकारकः
आगतस्तत्क्षणादेवनृपं प्रति रुषान्वितः । खड्गेन सितधारेणचर्मणापरमेणहि ॥२५॥
तावत्तं ददृशे सोऽपि स्थितं द्वारि भयावृतम् । उवाच कालोहितदायमंवैवस्वतंप्रति

कस्मात्त्वया धर्मराज नो नीतोऽयं नृपोमहान् । यम दूतसहायश्चभीतवत्प्रतिभा
कालात्ययो न कर्त्तव्यो वचनान्मम सुव्रत । कालेनोक्तस्तदा धर्म उवाच प्रस्तुतं
तवाज्ञां च करिष्यामिनात्रकार्याविचारणा । असौदुरत्ययोऽस्माकंशिवभक्तोनि
चित्रस्था इव तिष्ठाम भयाद्देवस्य शूलिनः । यमस्य वचनंश्रुत्वाकालःक्रोधसम
राजानं हंतुमारेभे त्वरितः खड्गमाददे ॥ ३० ॥
त्रिगुणाष्टार्कसंकाशं प्रविवेश शिवालयम् । यावत्कोपेन महतातावद्दृष्टः पिना
स्वभक्तं हन्तुकामोऽसौ श्वेतराजानमुत्तमम् ॥ ३१ ॥
ध्यानस्थितं चात्मनि तं विशुद्धज्ञानप्रदीपेन विशुद्धचित्तम् ।
आत्मानमात्मात्मतया निरन्तरं स्वयं प्रकाशं परमं पुरस्तात् ॥ ३२ ॥
एवंविधं तं प्रसमीक्ष्य कालं संचिंत्यमानं मनसाऽचलेन ।
शैवं पदं यत्परमार्थरूपं कैवल्यसायुज्यकरं स्वरूपतः ॥ ३३ ॥
सदाशिवेन दृष्टोऽसौ कालःकालान्तकेनच । उच्छृंखलःखलोदर्पाद्विशमानोनिजां
नन्दिकेश्वरमध्यस्थो यावद्दृष्टो निजांतिके । शिवेन जगदीशेन भक्तवत्सलबन्धुना
निरीक्षितस्तृतीयेन चक्षुषा परमेष्ठिना । स्वभक्तं रक्षमाणेन भस्मसादभवत्क्षणात्
ददाह तं कालमनेकवर्णं व्यात्ताननं भीमवदुग्ररूपम् ।
ज्वालावलीभिः परिदह्यमानमतिप्रचण्डं भुवनैकभक्षणम् ॥ ३७ ॥
ददर्शिरे देवगणाः समेताः सयक्षगंधर्वपिशाचगुह्यकाः ।
सिद्धाप्सरःसर्वखगाश्च पन्नगाः पतत्रिणो लोकपालास्तथैव ॥ ३८ ॥
ज्वालामालावृतंकालमीश्वरस्याग्रतःस्थितम् । लब्धसंज्ञस्तदाराजाकालंस्वंहंतुमाग
पुनःपुनर्ददर्शाऽथ दह्यमानं कृशानुना । प्रार्थयामास स व्यग्रो रुद्रं कालाग्निसन्नि

राजोवाच

नमोरुद्रायशांतायस्वज्योत्स्नायात्मवेधसे । निरंतराय सूक्ष्माय ज्योतिषां पतये न
त्राता त्वं हि जगन्नाथपितामातासुहृत्सखा । त्वमेववंधुःस्वजनोलोकानांप्रभुरीश्व
किं कृतं हि त्वया शंभोकोऽसौदग्धोममाग्रतः । नजानामिचकिंजातंकृतंकेनमहत्

एवं प्रार्थयतस्तस्य श्रुत्वा च परिदेवनम् । उवाच शङ्करो वाक्यं बोधयन्निव तंनृपम्

रुद्र उवाच

मया दग्धो ह्ययं कालस्तवार्थेचतवाग्रतः । दह्यमानोहिदृष्टस्तेज्वालामालाकुलोमहान्

एवमुक्तस्तदा तेन शंभुना राजसत्तमः । उवाच प्रश्रितो भूत्वा वचनं शिवमग्रतः ॥४६

किमनेन कृतं शंभो अकृत्यं वद तत्त्वतः । य इमां प्रापितोऽवस्थां प्राणात्ययकरींभव

एवं विज्ञापितस्तेन ह्युवाच परमेश्वरः । भक्षकोऽयं महाराज सर्वेषां प्राणिनामिह ॥

भक्षणार्थंतवविभोसोऽयंक्रूरोऽधुनाऽऽगतः । ममांतिकंमहाराजतस्माद्दग्धोमयाविभो

बहूनां क्षेममन्विच्छंस्तवार्थेऽन्हं विशेषतः ॥ ५० ॥

ये पापिनो ह्यधर्मिष्ठा लोकसंहारकारकाः । पाषंडवादसंयुक्ता वध्यास्ते मम चैव हि

वाक्यं निशम्य रुद्रस्य श्वेतो वचनमब्रवीत् ॥ ५१ ॥

कालेनैव हि लोकोऽयं पुण्यमाचरते सदा । धर्मनिष्ठाश्च केचित्तु भक्त्यापरमयायुताः

उपासनारताः केचिज्ज्ञानिनो हि तथा परे । केचिदध्यात्मसंयुक्ताश्चान्येमुक्ताश्चकेचन

कालो हि हर्ता च चराचराणां तथा ह्यसौ पालकोऽप्यद्वितीयः ।

स स्रष्टा वै प्राणिनां प्राणभूतस्तस्मादेनं जीवयस्वाशु भूयः ॥ ५४ ॥

यदिसृष्टिपरोऽसित्वंकालंजीवयसत्वरम् । यदिसंहारभूतोऽसिसर्वेषांप्राणिनामिह ॥

तथैवं कुरु शंभो त्वं कालस्यचमहात्मनः । विना कालेनयत्किंचिद्भविष्यति न शंकर

इति विज्ञापितस्तेन राज्ञा शंभुः प्रतापिना । चकार वचनं तस्यभक्तस्यचचिकीर्षितम्

शंभुः प्रहस्याऽथ तदा महेशः संजीवयामास पिनाकपाणिः ।

चकार रूपं च यथा पुरासीदालिङ्गितोऽसौ यमदूतमध्ये ॥ ५८ ॥

उपस्थितोऽसौ त्वथ लज्जमानस्तुष्टाव देवं वृषभध्वजं तम् ।

नत्वा पुरःस्थाग्निमयं हि कालः सविस्मयो वाक्यमिदं बभाषे ॥ ५९ ॥

काल उवाच

कालांतक त्रिपुरेश त्रिपुरांतकर प्रभो । मदनो हि त्वया देव कृतोऽनंगो जगत्पते ॥

दक्षयज्ञविनाशश्च कृतो हि परमाद्भुतः । कालकूटं दुःप्रसहं सर्वेषां क्षयकृन्महत् ॥६१॥

ग्रसितं तत्त्वया शंभो अन्येषामपि दुर्द्धरम् । लिंगरूपेण महताव्याप्तमासीज्जगत्त्र
लयनाल्लिंगमित्युक्तं सर्वैरपि सुरासुरैः । यस्यान्तं न विदुर्द्देवा ब्रह्मविष्णुपुरोग
लिंगस्य देवदेवस्य महिमानं परस्य च । नमस्ते परमेशाय नमस्ते विश्वमंग
नमस्ते शितिकण्ठाय नमस्तस्मै कपर्दिने ॥ ६४ ॥

नमोनमः कारणकारणाय ते नमोनमो मङ्गलमङ्गलात्मने ।
ज्ञानात्मने ज्ञानविदां मनीषिणां त्वमादिदेवोऽसि पुमान्पुराणः ॥ ६५ ॥
त्वमेव सर्वं जगदेकवन्धो वेदान्तवेद्योऽसि महानुभावः ।
महानुभावैः परिकीर्त्तनीयस्त्वमेव विश्वेश्वर ! विश्वमान्यः ॥ ६६ ॥
त्वं पासि लुम्पसि जगत्त्रितयं महेश स्रष्टाऽसि भूतपतिरेव न कश्चिद

इति स्तुतस्तदा तेन कालेन जगदीश्वरः । उवाच कालो राजानं श्वेतं संबोधयन्नि

काल उवाच

मनुष्यलोके सकले नान्यस्त्वत्तो हि विद्यते । येन त्वया जितो देवो ह्यजेयो भुवन
मया हतमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम् । जेताऽहं सर्वदेवानां सर्वेषां दुरतिक्रमः ॥
स हि ते चानुगो जातो महाराज प्रयच्छ मे । अभयं देवदेवाच्च शूलिनः परमेष्ठिनः
एवमुक्तस्तदा तेन श्वेतः कालेन चैव हि । उवाच प्रहसन्वाचा मेघनादगभीरया

राजोवाच

शिवस्य परमं रूपंत्वमेकोनास्तिसंशयः । कालस्त्वमसिभूतानां स्थितिसंहाररूपवा
तस्मात्पूज्यतमोऽसि त्वं सर्वेषां च नियामकः । त्वद्भयात्कृतिनःसर्वेशरणंपरमेश्वर
व्रजन्ति विविधैर्भावैरात्मलक्षणतत्पराः ॥ ७४ ॥

सूत उवाच

तेनैवं रक्षितः कालो राज्ञा परमधर्मिणा । शिवप्रसादमात्रेण लब्धसञ्ज्ञो बभूव ह
तदा यमेन स्तवितो मृत्युना यमदूतकैः । शिवं प्रणम्य संस्तुत्य श्वेतं राजानमेवच
ययौ स्वमालयं विप्रा मेने स्वं जनितं पुनः ॥ ७६ ॥
मायया सह पत्न्या च शिवस्य चरितंमहत् । अनुसंस्मृत्यसंस्मृत्यविस्मयंपरमंययौ

थयामास सर्वेषां दूतानां स्वयमेव हि । आकर्ण्यतां मम वचो हे दूतास्त्वरितेनहि
कर्त्तव्यं च प्रयत्नेन नान्यथा मम भाषितम् ॥ ७९ ॥

काल उवाच

त्रिपुण्ड्रं धारयंति तथा ये वै जटाधराः । ये रुद्राक्षधराश्चैव तथा येशिवनामिनः
पर्जीवनहेतोश्च भिया ये ह्यपि मानवाः । पापिनोऽपि दुराचाराः शिववेषधराह्यमी
नेतव्या भवद्भिश्च मम लोकं कदाचन । वर्ज्यास्ते हि प्रयत्नेन पापिनोऽपिसदैवहि
न्येषां का कथा दूता येऽर्चयंति सदाशिवम् । भक्त्यापरमयाशंभुंरुद्रास्तेनात्रसंशयः
रुद्राक्षमेकं शिरसा बिभर्ति यस्तथा त्रिपुंण्ड्रं च ललाटमध्यके ।
पंचाक्षरीं ये प्रजपन्ति साधवः पूज्या भवद्भिश्च न चान्यथाक्वचित् ॥८४॥
स्मिन्राष्ट्रेऽथवादेशे ग्रामेचापिविचक्षणः । शिवभक्तोनदृश्येतस्मशानात्तुविशिष्यते
तद्राष्ट्रं देशमित्याहुः सत्यं प्रतिवदामि वः ॥ ८५ ॥
स्मिन्नसंतिनित्यंहिशिवभक्तिसमन्विताः । तद्ग्रामस्थाजनाःसर्वेशासनीयानसंशयः
वमाज्ञापयामासयमोऽपिनिजकिंकरान् । तथेतिमत्वातेसर्वेतूष्णीमासन्सुविस्मिताः
एवंविधोऽयं भुवनैकभर्ता सदाशिवो लोकगुरुः स एकः ।
दाता प्रहर्ता निजभावयुक्तः सनातनोऽयं जगदेकबन्धुः ॥ ८८ ॥
ध्वा कालं महादेवो निर्भयं च ददौ विभुः । श्वेतस्यराजराजस्यमहीपालवरस्य च
दा निर्भयमापन्नः श्वेतराजो महामनाः । भक्त्या च परया मुक्तो बभूव कृतनिश्चयः
दा देवैः पूज्यमानऋषिभिःपन्नगैस्तथा । श्वेतोराजन्यवर्योऽसौशिवसायुज्यमाप्तवान्
वं भक्तिपराणां च महेशे च जगद्गुरौ । सिद्धिः करतले तेषां सत्यं प्रतिवदामिवः
पचोऽपि वरिष्ठःस्यात्प्रसादाच्छंकरस्य च । तस्मात्सर्वप्रयत्नेनपूजनीयोहि शंकरः
बहूनां जन्मनामन्ते शिवभक्तिः प्रजायते ॥९४॥
ज्ञानिनां कृतबुद्धीनां जन्मजन्मनि शंकरः । किं मया बहुनोक्तेन पूजनीयः सदाशिवः
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । किरातेन कृतं यच्च व्रतं च परमाद्भुतम् ।
येनैव तारितं विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ ९६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर
केदारखण्डे श्वेतराजचरिते शिवभक्तिप्रभावेण कालदहनवृत्तान्तवर्णनं नाम
द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

महाशिवरात्रिव्रतमाहात्म्ये चण्डलुब्धकस्य वृत्तवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

किन्नामा च किरातोऽभूत्किं तेन व्रतमाहितम् । तत्त्वं कथय विप्रेंद्रपरंकौतूहलं
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामोयाथातथ्येनकथ्यताम् । नह्यन्योविद्यतेलोकेत्वद्विनावक्ता
तस्मात्कथय भो विप्र ! सर्वं शुश्रूषतां हि नः ॥ २ ॥
एवमुक्तस्तदा तेन शौनकेन महात्मना । कथयामास तत्सर्वं पुष्कसेन कृतं च

लोमश उवाच

आसीत्पुरा महारौद्रश्चण्डोनाम दुरात्मवान् । क्रूरसंगोनिष्कृतिकोभूतानांभयव
जालेन मत्स्यान्दुष्टात्मा घातयत्यनिशं खलु ।
भल्लैर्मृगाञ्छ्वापदांश्च कृष्णसारांश्च शल्लकान् ॥ ५ ॥
खड्गांश्चैव च दुष्टात्मा दृष्ट्वा कांश्चिच्च पापवान् ।
पक्षिणोऽघातयत्क्रुद्धो ब्राह्मणांश्च विशेषतः ॥ ६ ॥
लुब्धको हि महापापो दुष्टो दुष्टजनप्रियः । भार्यातथाविधातस्यपुष्कसस्यमहा
एवं विहरतस्तस्य बहुकालोऽत्यवर्तत । गते बहुतिथे काले पापौघनिरतस्य च
निषङ्गंजलमादायक्षुत्पिपासार्दितोभृशम् । एकदानिशिपापीयाञ्छ्रीवृक्षोपरिसं
कोलं हन्तुं धनुष्पाणिर्जाग्रच्चाऽनिमिषेण हि ॥ ९ ॥

माघमासेऽसितायांवैचतुर्दश्यामथाऽग्रतः । मृगमार्गविलोकार्थीविल्वपत्राण्यपातयत्

श्रीवृक्षपर्णानि बहूनि तत्र स सञ्च्छेदयामास रुषान्वितोऽपि ।
श्रीवृक्षमूले परिवर्तमानो लिङ्गं च तस्योपरिदुष्टभावः ॥ ११ ॥
ववर्ष गण्डूषजलं दुरात्मा यदृच्छया तानि शिवे पतन्ति ।
श्रीवृक्षपर्णानि च दैवयोगाज्जातं च सर्वं शिवपूजनं तत् ॥ १२ ॥

गण्डूषवारिणा तेन स्नपनं च कृतं महत् । विल्वपत्रैरसंख्यातैरर्चनं च महत्कृतम् ॥१३
अज्ञानेनापि भो विप्राः पुष्कसेन दुरात्मना । माघमासेऽसितेपक्षेचतुर्दश्यांविधूदये ॥
पुष्कसोऽथ दुराचारो वृक्षादवततार सः । आगत्य जलसंकाशं मत्स्यान्हन्तुंप्रचक्रमे
लुब्धकस्याऽपि भार्याभून्नाम्ना चैव घनोदरी । दुष्टासापापनिरता परद्रव्यापहारिणी
गृहान्निर्गत्य सायाह्ने पुरद्वारवहिः स्थिता । वनमार्गंप्रपश्यन्ती पत्युरागमनेच्छया ॥
चिराद् भर्त्तरिनायातेचिन्तयामासलुब्धकी । अद्यसायाह्नवेलायामागताःसर्वलुब्धकाः

तमःस्तोमेन संछन्नाश्चतस्रोविदिशोदिशः ।
रात्रौ यामद्वयं यातं किं मतङ्गः समागतः ॥ १९ ॥

किं वा केसरलोभेन सिंहेनैव विदारितः । किंभुजंगफणारत्नहारीसर्पविषार्दितः ॥२०
किं वा वराहदंष्ट्राग्रघातैः पंचत्वमागतः । मधुलोभेन वृक्षाग्रात्स वै प्रपतितो भुवि
काऽन्वेषयामि पृच्छामि क्व गच्छामिचकम्प्रति । एवंविलप्यवहुधानिवृत्तास्वंगृहंप्रति
नैवान्नं नो जलं किंचिन्नभुक्तंतद्दिनेतया । चिंतयंतीपतिंचापिलुब्धकीत्वनयन्निशाम्
अथ प्रभाते विमले पुष्कसी वनमाययौ । अशनार्थं च तस्यान्नमादाय त्वरिता सती
भ्रममाणा वने तस्मिन्ददर्श महतीं नदीम् । तस्यास्तीरे समासीनंस्वपतिंप्रेक्ष्यहर्षिता
तदन्नं कूलतः स्थाप्य नदींततुंप्रचक्रमे । निरीक्ष्यचाथमत्स्यान्सजालप्रोतान्समानयत्
तावत्तयोक्तश्चण्डोऽसावेहि शीघ्रंचभक्षय । अन्नं त्वदर्थमानीतमुपोष्यदिवसं मया ॥
कृतं किमद्य रे मंद गतेऽहनि च किं कृतम् । नाऽशितंचत्वयामूढलंघितेनाद्य पापिना
नद्यांस्नातौतथातौचदम्पतीचशुचिव्रतौ । यावद्गतश्चभोक्तुंसतावच्छ्वा स्वयमागतः
तेन सर्वं भक्षितं च तदन्नं स्वयमेव हि । चण्डी प्रकुपिता चैव श्वानंहन्तुमुपस्थिता

आवयोर्भक्षितं चान्नमनेनैव च पापिना । किं च भक्षयसे मूढ! भविताद्य बुभुक्षित
एवं तयोक्तश्चण्डोऽसौ बभाषे तांशिवप्रियः । यच्छुनाभक्षितंचान्नंतेनाहंपरितोषितः
किमनेन शरीरेण नश्वरेण गतायुषा । शरीरं दुर्लभं लोके पूज्यतेक्षणभङ्गुरम् ॥३३॥
ये पुष्णन्ति निजं देहं सर्वभावेन चाहताः । मूढास्ते पापिनोज्ञेयालोकद्वयवहिष्कृताः
तस्मान्मानंपरित्यज्यक्रोधं च दुरवग्रहम् । स्वस्थाभवविमर्शेनतत्त्वबुद्ध्यास्थिराभव
बोधिता तेन चंडी सा पुष्कसेन तदा भृशम् ।
जागरादि च संप्राप्तः पुष्कसोऽपि चतुर्दशीम् ॥ ३६ ॥
शिवरात्रिप्रसंगाच्च जायते यद्भयसंशयम् । तज्ज्ञानं परमं प्राप्तः शिवरात्रिप्रसंगतः
यामद्वयं च संजातममावास्यां तु तत्र वै । आगताश्च गणास्तत्र बहवःशिवनोदिताः
विमानानि बहून्यत्र आगतानि तदन्तिकम् । दृष्टानि तेनतान्येवविमानानिगणास्तथा
उवाच परयाभक्त्यापुष्कसोऽपिचतान्प्रति । कस्मात्समागतायूयंसर्वे रुद्राक्षधारिणः
विमानस्थाश्च केचिच्च वृषारूढाश्च केचन । सर्वेस्फटिकसंकाशाःसर्वे चन्द्रार्द्धशेखराः
कपर्द्दिनश्चर्मपरीतवाससो भुजङ्गभोगैः कृतहारभूषणाः ।
श्रियान्विता रुद्रसमानवीर्या यथातथं भो वदतात्मनोचितम् ॥ ४२ ॥
पुष्कसेन तदा पृष्टा ऊचुः सर्वे च पार्षदाः । रुद्रस्य देवदेवस्य संनम्राः कमलेक्षणाः

गणा ऊचुः

प्रेषिताः स्मो वयं चंड शिवेनपरमेष्ठिना । आगच्छत्वरितोभूत्वासस्त्रीको यानमारुह
लिंगार्च्चनं कृतंयच्च त्वयारात्रौशिवस्यच । तेनकर्मविपाकेनप्राप्तोऽसिशिवसन्निधिम्
तथोक्तो वीरभद्रेण उवाच प्रहसन्निव । पुष्कसोऽपि स्वया बुद्ध्याप्रस्तावसदृशं वचः

पुष्कस उवाच

किं मया कृतमद्यैव पापिना हिंसकेन च । मृगयारसिकेनैव पुष्कसेन दुरात्मना॥
पापाचारो ह्यहं नित्यं कथं स्वर्गंव्रजाम्यहम् । कथंलिंगार्चनमिदंकृतमस्तितदुच्यताम्
परं कौतुकमापन्नः पृच्छामि त्वां यथातथम् । कथयस्वमहाभागसर्वं चैवयथाविधि
इत्येवं पृच्छतस्तस्य पुष्कसस्य यथाविधि । कथयामास तत्सर्वंशिवधर्मंमुदान्वितः

वीरभद्र उवाच

देवदेवो महादेवो देवानां पतिरीश्वरः। परितुष्टोऽद्य हे चण्ड स महेश उमापतिः॥
प्रासंगिकतया माघे कृतं लिंगार्चनंत्वया। शिवतुष्टिकरं चाद्य पूतोऽसित्वं नसंशयः
शिवरात्र्यां प्रसंगेन कृतमर्चनमेव च॥ ५२॥
कोलं निरीक्षमाणेन बिल्वपत्राणि चैव हि। च्छेदितानि त्वयाचंडपतितानितदैवहि
लिङ्गस्य मस्तके तानि तेन त्वं सुकृती प्रभो!॥ ५३॥
ततश्च जागरो जातो महान्वृक्षोपरि ध्रुवम्। तेनैव जागरेणैव तुतोष जगदीश्वरः॥
छलेनैव महाभाग कोलसंदर्शनेन हि। शिवरात्रिदिने चाऽत्र स्वप्नस्ते न च योषितः
तेनोपवासेन च जागरेण तुष्टो ह्यसौ देववरो महात्मा।
तव प्रसादाय महानुभावो ददाति सर्वान्वरदो महांश्च॥ ५६॥
एवमुक्तस्तदा तेन वीरभद्रेण धीमता। पुष्कसोऽपि विमानाग्र्यमारुरोहच पश्यताम्
गणानां देवतानां च सर्वेषां प्राणिनामपि। तदा दुंदुभयो नेदुर्भेर्यस्तूर्याण्यनेकशः॥
वीणावेणुमृदंगानि तस्य चाग्रे गतानि च। जगुर्गंधर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥
विद्याधरगणाः सर्वे तुष्टुवुः सिद्धचारणाः। चामरैर्वीज्यमानोहिच्छत्रैश्चविविधैरपि
महोत्सवेन महता आनीतो गन्धमादनम्॥ ६०॥
शिवसान्निध्यमगमच्चण्डोऽसौ तेनकर्मणा। शिवरात्र्युपवासेन परं स्थानं समागमत्
पुष्कसोऽपि तथा प्राप्तः प्रसंगेन सदाशिवम्। किंपुनःश्रद्धयायुक्ताःशिवायपरमात्मने
पुष्पादिकं फलं गंधंतांवूलंभक्ष्यमृद्धिमत्। येप्रयच्छंतिलोकेऽस्मिन्रुद्रास्तेनात्रसंशयः
चंडेन वै पुष्कसेन सफलं तस्य चाऽभवत्। प्रसंगेनापि तेनैवकृतंतच्चाऽल्पबुद्धिना॥

ऋषय ऊचुः

किं फलं तस्य चोद्देशः केन चैव पुरा कृतम्। कस्माद्व्रतमिदंजातंकृतंकेनपुरा विभो

लोमश उवाच

यदा सृष्टं जगत्सर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना। कालचक्रं तदा जातं पुरा राशिसमन्वितम्
द्वादश राशयस्तत्र नक्षत्राणि तथैव च।

सप्तविंशतिसंख्यानि मुख्यानि कार्यसिद्धये ॥ ६७ ॥
एभिः सर्वं प्रचंडं च राशिभिरुडुभिस्तथा । कालचक्रान्वितःकालः क्रीडयन्सृजते
आब्रह्मस्तंबपर्यंतं सृजत्यवति हंति च । निबद्धमस्ति तेनैव कालेनैकेन भो द्विज
कालो हि बलवाँल्लोकेएकएवनचापरः । तस्मात्कालात्मकंसर्वमिदंनास्त्यत्रसंश
आदौकालः कालनाच्च लोकनायकनायकः । ततोलोकाहिसंजाताःसृष्टिश्च तदनं
सृष्टेर्लवो हि संजातो लवाच्च क्षणमेव च । क्षणाच्च निमिषंजातंप्राणिनांहिनिरं
निमिषाणां च षष्ट्या वै पल इत्यभिधीयते । पंचदश्या अहोरात्रैः पक्षइत्यभिधी
पक्षाभ्यां मास एव स्यान्मासाद्वादशवत्सरः । तंकालंज्ञातुकामेनकार्यंज्ञानंविचक्ष
प्रतिपद्दिनमारभ्य पौर्णमास्यन्तमेव च । पक्षः पूर्णो हि यस्माच्च पूर्णिमेत्यभिधी
पूर्णचंद्रमसी या तु सा पूर्णा देवताप्रिया । नष्टस्तुचंद्रोयस्यांवाअमासाकथिता
अग्निष्वात्तादिपितॄणां प्रियातीव बभूव ह । त्रिंशद्दिनानि ह्येतानिपुण्यकालयुतानि
तेषां मध्ये विशेषो यस्तं शृणुध्वं द्विजोत्तमाः ॥ ७७ ॥
योगानां वा व्यतीपात ऊडूनां श्रवणस्तथा । अमावास्यातिथीनांचपूर्णिमावैतथै
संक्रांतयस्तथा ज्ञेयाः पवित्रा दानकर्मणि । तथाष्टमी प्रिया शंभोर्गणेशस्यचतुर्थि
पञ्चमी नागराजस्य कुमारस्य च षष्ठिका । भानोश्चसप्तमीज्ञेयानवमीचण्डिका
ब्रह्मणो दशमी ज्ञेया रुद्रस्यैकादशी तथा । विष्णुप्रिया द्वादशी च अंतकस्यत्रयो
चतुर्दशी तथा शंभोः प्रिया नास्त्यत्र संशयः । निशीथसंयुतायातुकृष्णपक्षे चतुर्द
उपोष्या सा तिथिः श्रेष्ठा शिवसायुज्यकारिणी ॥ ८२ ॥
शिवरात्रितिथिः ख्याता सर्वपापप्रणाशिनी । अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातन
ब्राह्मणी विधवा काचित्पुराह्यासीच्चचंचला । श्वपचाभिरतासाचकामुकी कामहे
तस्यां तस्य सुतो जातःश्वपचस्यदुरात्मनः । दुःसहोदुष्टनामात्मा सर्वधर्मबहि
महापापप्रयोगाच्च पापमारभते सदा । कितवश्च सुरापायी स्तेयी च गुरुतल्प
मृगयुश्च दुरात्मासौ कर्मचण्डाल एव सः । अधर्मिष्ठोह्यसद्वृत्तःकदाचिच्चशिवाल
शिवरात्र्यां च संप्राप्तो ह्युषितः शिवसन्निधौ ॥ ८७ ॥

श्रवणं शैवशास्त्रस्य यदृच्छाजातमंतिके। शिवस्य लिंगरूपस्य स्वयंभुवो यदा तदा
स एकत्रोषितो दुष्टः शिवरात्र्यांतुजागरात्। तेनकर्मविपाकेनपुण्यां योनिमवाप्तवान्
भुक्त्वापुण्यतमाँल्लोकानुषित्वाशाश्वतीःसमाः। चित्रांगदस्यपुत्रोऽभूद्भूपालेश्वरलक्षणः

नाम्ना विचित्रवीर्योऽसौ सुभगः सुन्दरीप्रियः।
राज्यं महत्तरं प्राप्यनिःस्तम्भो हि महानभूत्॥ ९१ ॥

शिवे भक्तिं प्रकुर्वाणः शिवकर्मपरोऽभवत्। शैवशास्त्रं पुरस्कृत्य शिवपूजनतत्परः
रात्रौ जागरणं यत्नात्करोति शिवसन्निधौ ॥ ९२ ॥

शिवस्य गाथा गायंस्तु आनंदाश्रुकणान्मुहुः। प्रमुचंश्चैवनेत्राभ्यां रोमांचपुलकावृतः
आयुष्यं च गतं तस्य शिवध्यानपरस्य च। शिवोहिसुलभोलोकेपशूनां ज्ञानिनामपि
संसेवितुं सुखप्राप्त्यै ह्येक एव सदाशिवः। शिवरात्र्युपवासेन प्राप्तो ज्ञानमनुत्तमम्
ज्ञानात्सर्वमनुप्राप्तं भूतसाम्यं निरन्तरम्। सर्वभूतात्मकंज्ञात्वाकेवलं च सदाशिवम्
विना शिवेन यत्किंचिन्नास्ति वस्त्वत्र न कचित्॥ ९६ ॥

एवं पूर्णं निष्प्रपञ्चं ज्ञानं प्राप्नोति दुर्लभम्। प्राप्तज्ञानस्तदा राजाजातोहिशिववल्लभः
मुक्तिं सायुज्यतां प्राप्तः शिवरात्रेरुपोषणात्। तेन लब्धंशिवाज्जन्मपुरायत्कथितंमया
दाक्षायणीवियोगाच्च जटाजूटेन विस्तरात्। यउत्पन्नोमस्तकाच्चशिवस्यपरमात्मनः
वीरभद्रेति विख्यातो दक्षयज्ञविनाशनः ॥ ९९ ॥

शिवरात्रिव्रतेनैव तारिता बहवः पुरा। प्राप्ताः सिद्धिं पुरा विप्राभरताद्याश्चदेहिनः ॥
मान्धाता धुन्धुमारिश्च हरिश्चन्द्रादयो नृपाः। प्राप्ताः सिद्धिमनेनैव व्रतेनपरमेणहि ॥

ततो गिरीशो गिरिजासमेतः क्रीडान्वितोऽसौ गिरिराजमस्तके।
द्यूतं तथैवाक्षयुतं परेशो युक्तो भवान्या स भृशं चकार ॥ १०२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
केदारखण्डे शिवरात्रिव्रतमाहात्म्यवर्णनंनाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

———

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

कैलासशिखरे शिवदर्शनाय नारदगमनम्

लोमश उवाच

राज्यं चकार कैलासे देवदेवो जगत्पतिः । गणैः समेतो बहुभिर्वीरभद्रान्वितो
ऋषिभिः सहितो रुद्रो देवैरिन्द्रादिभिः सह ।
ब्रह्मा यस्य स्तुतिपरो विष्णुः प्रेष्यवदास्थितः ॥ २ ॥
इन्द्रो देवगणैः सार्द्धं सेवाधर्मपरोऽभवत् । यस्य च्छत्रधरश्चंद्रो वायुश्चामरधृ
सूपान्नकर्ता सततं जातवेदा निरन्तरम् । गंधर्वा गायका यस्यस्तावकाश्चपिना
विद्याधराश्च बहवस्तथा चाप्सरसां गणाः । ननृतुश्चाग्रगा यस्य सोऽसौकैलास
पुत्रैर्गणेशस्कंदाद्यैस्तथागिरिजयासह । राज्यं प्रतापिभिश्चक्रेऽशंकरश्चंक्रमणेन
येनांधको महादैत्यः स देवानामरिर्महान् । दुष्टो विद्धस्त्रिशूलेनगगने स्थापितो
हत्वा गजासुरं येन उत्कृत्त्य चर्म वै कृतम् । चिरं प्रावरणं दिव्यं तथा त्रिपुर
विष्णुना पाल्यभूतेन रेजे सर्वाङ्गसुन्दरः ॥ ८ ॥
तं द्रष्टुकामो भगवान्नारदो दिव्यदर्शनः । ययौ च पर्वतश्रेष्ठं कैलासं चन्द्रपा
सुधया परया चापि सेवितं परमाद्भुतम् । कर्पूरगौरं च तदा दृष्ट्वा तं सुमहाबल
नारदो विस्मयाविष्टः प्रविष्टो गन्धमादनम् ॥ १० ॥
अनेकाश्चर्यसंयुक्तं तपनैश्च सुशोभितम् । गायद्भिश्चाधरीभिश्च पूरितं च महाप्र
कल्पद्रुमाश्च बहवो लताभिः परिवेष्टिताः । घनच्छायासु तास्वेवविशिष्टाःकाम
पारिजातवनामोदलम्पटा बहवोऽलयः । कलहंसाश्च बहवः क्रीडमानाः सरस्सु
शिखंडिनो महच्चक्रुस्तत्र केकारवं मुदा । पंचमालापिनः सर्वे विहंगाः संमदा
करिणः करिणीभिश्च मोदमानाःसुवर्चसः । सिंहास्तथागर्जमानाःशार्दूलैःसह

वृषभा नंदिमुख्याश्च रेभमाना निरन्तरम् । देवद्रुमाश्च बहवस्तथा चंदनवाटिकाः ॥
नागपुंनागबकुलाश्चंपका नागकेसराः । तथा च वनजम्ब्वश्च तथा कनककेतकाः ॥
कह्लाराः करवीराश्च कुमुदानि ह्यनेकशः । मंदाराश्च बदर्यश्च क्रमुकाः पाटलास्तथा ॥
तथान्ये बहवो वृक्षाः शम्भोस्तोषकराह्यमी । ऐकपद्येन दृष्टास्ते नानाद्रुमलतान्विताः
आरामा बहवस्तत्र द्विगुणाश्च बभूविरे ॥ १६ ॥

गगनान्निस्सृतः सद्यो गंगौघः परमाद्भुतः । पतितो मस्तके तस्य पर्वतस्य सुशोभिते
कूपो हि पयसां येन पवित्रं वर्तते जगत् । सोपि द्विधा तदा दृष्टो नारदेनमहात्मना
सर्वं तदा द्विधाभूतं दृष्टं तेन महात्मना । नारदेन तदा विप्राः परमेण निरीक्षितः ॥
एवं विलोकमानोऽसौ नारदो भगवानृषिः । त्वरितेन तथायातःशिवालोकनतत्परः
यावद्द्वारि स्थितोऽपश्यन्महदाश्चर्यमेव च । द्वारपालौ तदा दृष्टौ कृतकौ विश्वकर्मणा
नारदो मोहितो ह्यासीत्पप्रच्छ च सतौ तदा । अहंप्रवेष्टुमिच्छामिशिवदर्शनलालसः
तस्मादनुज्ञा दातव्यादर्शनार्थंशिवस्यच । अशृण्वन्तौतदादृष्ट्वानारदोविस्मितोऽभवत्
ज्ञानदृष्ट्याविलोक्याथतूष्णींभूतोऽभवत्तदा । कृत्रिमौहिचतौज्ञात्वाप्रविष्टोहिमहामनाः
तथान्ये तत्सरूपाश्च दृष्टास्तेन महात्मना ।
ऋषिः प्रणमितस्तैश्च नारदो भगवान्मुदा ॥ २८ ॥

एवमादीन्यनेकानि आश्चर्याणि ददर्श सः । ददर्शाथचसुव्यक्तंत्र्यम्बकंगिरिजान्वितम्
अर्धासनगता साध्वी शंकरस्य महात्मनः । तनयागिरिराजस्य ययाव्याप्तंजगत्त्रयम्
गौरी सितेक्षणा बाला तन्वंगी चारुलोचना । ययारूपीकृतःशम्भुरुपादेयःकृतोमहान्
निर्विकारो विकारैश्च बहुभिर्विकलीकृतः । अर्द्धांगलग्ना सा देवी दृष्टा तेन शिवस्यच
नारदेन तथा शम्भुर्दृष्टस्त्रिभुवनेश्वरः । शुद्धचामीकरप्रख्यः सेव्यमानः सुरासुरैः ॥
शंखेन भोगिवर्येण सेवितंचांघ्रिपंकजम् । धृतराष्ट्रेण च तथा तक्षकेण विशेषतः ॥
तथा पद्मेन महता शेषेणाऽपि विशेषतः ॥ ३४ ॥

अन्यैश्च नागवर्यैश्च सेवितो हि निरन्तरम् । वासुकिः कंठलग्नो हि हारभूतोमहाप्रभः
कंबलाश्वतरौ नित्यं कर्णभूषणभूषितौ । जटामूलगताश्चान्ये महाफणिवरा ह्यमी ॥

अनेकजातिसंवीता नानावर्णाश्च पन्निनः । तक्षकः कुलिकः शंखो धृतराष्ट्रो महा
पद्मो दंभः सुदंभश्च करालो भीषणस्तथा । एते चान्येचवहवोनागाश्चाशीविषा
अंगभूताहरस्याऽऽसन्पूज्यस्यास्यजगत्त्रये । फणैकयाशोभमानाःकेचिद्द्विपन्नगो
फणानां द्वितयं केषां त्रितयं च महाप्रभम् । चतुष्कं पंचकं षट्कं सप्तकंचाष्टकं
नवकं दशकं चैव तथैकादशकं त्वथ । द्वादशकं चाष्टादशकमेकोनविंशकं तथा

चत्वारिंशत्फणाः केऽपि पंचाशत्कं च षष्टिकम् ।
सप्ततिश्चाप्यशीतिश्च नवतिश्च तथैव च ॥ ४८ ॥

तथा शतसहस्राणि ह्ययुतप्रयुतानि च । अर्बुदानि च रत्नानि तथा शङ्कुमिताविः
अनंताश्च फणा येषां ते सर्पाः शिवभूषणाः । दृष्टास्तदानीं ते सर्वे नारदेन महा
विद्यावंतोऽपितेसर्वेभोगिनोऽपिसुशोभिताः । हारभूषणभूतास्तेमणिमंतोऽमित
अर्द्धचंद्रांकितो यस्य कपर्द्दस्त्वतिसुन्दरः । चक्षुषा च तृतीयेन भालस्थेन विरा
पंचवक्त्रो महादेवोबाहुभिर्दशभिर्वृतः । तथामरकतश्यामकंधरोऽतीवसुन्दरम्
उरो यस्य विशालं च तथोरुजघनं परम् । चरणद्वयं च रुद्रस्य शोभितं परमंमह
तद्दृष्टं चरणारविंदमतुलं तेजोमयं सुन्दरंसंध्यारागसुमंगलंचपरमंतापापनुत्ति

तेजोराशिकरं परात्परमिदं लावण्यलीलास्पदं
सर्वेषां सुखवृद्धिकारणपरं शंभोः पदं पावनम् ॥ ४६ ॥
तथैव दृष्ट्वा परमं पराणां परा सती रूपवती च सुन्दरी ।
सौभाग्यलावण्यमहाविभूत्या विराजमाना ह्यतिसुन्दरी शुभा ॥ ५०

दृष्ट्वा तौ दम्पती शुद्धौ राजमानौ जगत्त्रये । अभिन्नौभेदमापन्नौनिर्गुणौगुणिनौ
साकारौ च निराकारौ निरातंकौ सुखप्रदौ । ववंदे च मुदातौसनारदो भगव

उत्थायोत्थाय च तदा तुष्टाव जगदीश्वरौ ॥ ५२ ॥

नारद उवाच

नतोऽस्म्यहं देववरौ युवाभ्यां परात्पराभ्यां कलया तथापि ।
दृष्टौ मया दम्पती राजमानौ यौ बीजभूतौ ... ॥ ५३ ॥

पितरौ सर्वलोकस्य ज्ञातौ चाद्यैव तत्त्वतः । मया नास्त्यत्र संदेहोभवतोःकृपयातथा
एवं स्तुतौ तदा तेन नारदेन महात्मना । तुतोष भगवाञ्छंभुः पार्वत्या सहितस्तदा

महादेव उवाच

सुखेन स्थीयते ब्रह्मन्किं कार्यं करवाणिते । तच्छ्रुत्वावचनंशंभोर्नारदोवाक्यमब्रवीत्
दर्शनं जातमद्यैव तेन तुष्टोऽस्म्यहं विभो । दर्शनात्सर्वमेवाद्य शंभो मम न संशयः ॥
क्रीडनार्थमिहायातःकैलासंपर्वतोत्तमम् । हृदिस्थोहिसदानॄणामास्थितोभगवन्प्रभो॥
तथापि दर्शनं भाव्यं सततं प्राणिनामिह ॥ ५९ ॥

गिरिजोवाच

का क्रीडा हि त्वया भाव्यावदशीघ्रंममाग्रतः । तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वाउवाचप्रहसन्निव
द्यूतक्रीडा महादेवि दृश्यतेविविधाऽत्र च । भवेद्द्वाभ्यां च द्यूतेहि रमणाच्चमहत्सुखम्
इत्येवमुक्त्वोपरतं सती भृशमुवाच वाक्यं कुपिता ऋषिं प्रति ।
कथं विजानासि परं प्रसिद्धं द्यूतं च दुष्टोदरकं मनस्विनाम् ॥ ६२ ॥
त्वं ब्रह्मपुत्रोऽसि मुनिर्मनीषिणां शास्ता हि वाक्यं विविधैः प्रसिद्धैः ।
चरिष्यमाणो भुवनत्रये सदा न हि त्वदन्यो ह्यपरो मनस्वी ॥ ६३ ॥
एवमुक्तस्तदा देव्या नारदो देवदर्शनः । उवाच वाक्यं प्रहसन्गिरिजां शिवसन्निधौ

नारद उवाच

द्यूतं न जानामि न चाश्रयामि ह्यहं तपस्वी शिवकिङ्करश्च ॥
कथं च मां पृच्छसि राजकन्यके योगीश्वराणां परमं पवित्रे ॥ ६५ ॥
निशम्य वाक्यं गिरिजा सती तदा ह्युवाच वाक्यं च विहस्य तं प्रति ॥
जानासि सर्वं च बटोऽद्य पश्य मे द्यूतं महेशेन करोमि तेऽग्रतः ॥ ६६ ॥
इत्येवमुक्त्वा गिरिराजकन्यका जग्राह चाक्षान्भुवनैकसुन्दरी ॥
क्रीडां चकाराऽथ महर्षिसाक्ष्यके तत्रास्थिता सा हि भवेन संयुता ॥६७॥
तौ दंपती क्रीडया सज्जमानौ दृष्टौ तदा ऋषिणा नारदेन
सविस्मयोत्फुल्लमना मनस्वी विलोकमानोऽतितरां तुतोष ॥ ६८ ॥

सखीजनेन संवीता तदा द्यूतपरा सती। शिवेन सह संगत्य च्छलाद्द्यूतमकारयत्॥
स पणं च तदा चक्रे छलेन महतावृतः। जिता भवानी च तदा शिवेन प्रहसन्
नारदोऽस्याः शिवेनाथ उपहासकरोऽभवत्। निशम्य हारितं द्यूतमुपहासं निशम्य
नारदस्य दुरुक्तैश्च कुपिता पार्वती भृशम्। उवाच त्वरिता चैव दत्त्वाचैवाङ्गदे
तथा शिरोमणी चैव तरले च मनोहरे।
मुखं सुशोभनं चैव तथाकुपितसुंदरम्। दृष्टं हरेणचपुनःपुनर्द्यूतमकारयत्
तथा गिरिजया प्रोक्तः शंकरो लोकशंकरः। हारितं च मया दत्तः पणएवच
क्रियते च त्वयाशंभो कःपणोहितदुच्यताम्। ततःप्रहस्यचोवाचपार्वतींचत्रिलोचनः
मया पणोऽयं क्रियते भवानी त्वदर्थमेतच्च विभूषणं महत्।
सा चंद्रलेखा हि महान्हि हारस्तथैव कर्णोत्पलभूषणद्वयम्॥ ७८॥
इदमेव त्वया तन्वि मां जित्वा गृह्यतां सुखम्। ततः प्रवर्तितं द्यूतं शंकरेण सहैव
एवं विक्रीडमानौ तावक्षविद्याविशारदौ। तदा जितो भवान्याथ शंकरो बहुभूषणः
प्रहस्य गौरी प्रोवाच शंकरं त्वतिसुंदरी। हारितं च पणं देहि मम चाद्यैव
तदा महेशः प्रहसन्सत्यं वाक्यमुवाचह। नजितोऽहंत्वयातन्वितत्त्वतोहिविमृश्य
अजेयोऽहं प्राणिनां सर्वथैव तस्मान्न वाच्यं तु वचो हि साध्वि!।
द्यूतं कुरुष्वाऽद्य यथेष्टमेव जेष्यामि चाहं च पुनः प्रपश्य॥ ८१॥
तदाम्बिकाऽऽह स्वपतिं महेशं मया जितोऽस्यद्य न विस्मयोऽत्र।
एवमुक्त्वा तदा शम्भुं करे गृह्य वरानना। जितोऽसित्वंनसंदेहस्त्वंनजानासि
एवं प्रहस्य रुचिरं गिरिजा तु शम्भुं सा प्रेक्ष्य नर्मवचसा स तयाऽभि
देहीति मे सकलमंगलमंगलेश यद्धारितं स्मररिपो वचसानुमोदितम्॥

शिव उवाच

अजेयोऽहंविशालाक्षितवनास्त्यत्रसंशयः। अहंकारेणयत्प्रोक्तंतत्त्वंतस्य विमृश्य
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रोवाच च विहस्य सा। अजेयो हि महादेवःसर्वेषामपि
मयैकया जितोऽसित्वंद्यूतेनविमलेन हि। नजानासिचकिंचिच्चकार्याकार्यंविघसि

एवं विवदमानौ तौ दंपती परमेश्वरौ । नारदः प्रहसन्वाक्यमुवाच ऋषिसत्तमः॥८७॥

नारद उवाच

आकर्णयाऽऽकर्णविशालनेत्रे वाक्यं तदेकं जगदेकमङ्गलम् ।
असौ महाभाग्यवतां वरेण्यस्त्वया जितः किं च मृषा ब्रवीषि ॥ ८८ ॥

अजितो हि महादेवो देवानां परमो गुरुः । अरूपोऽयं सुरूपोऽयं रूपातीतोऽयमुच्यते
एक एव परंज्योतिस्तेषामपिचयन्महः । त्रैलोक्यनाथोविश्वात्माशंकरोलोकशंकरः॥
कथं त्वया जितो देवि ह्यजेयो भुवनत्रये । शिवमेवं न जानासि स्त्रीभावाच्च वरानने
नारदेनैवमुक्ता सा कुपिता पार्वती भृशम् । बभाषे मत्सरग्रस्ता साक्षेपं वचनं सती

पार्वत्युवाच

चापल्याच्च न वक्तव्यं ब्रह्मपुत्र नमोऽस्तु ते । तव भीताऽस्मि भद्रं ते देवर्षेमौनमावह
कथं शिवो हि देवर्ष उक्तोऽतोहित्वयाबहु । मत्प्रसादाच्छिवोजातईश्वरोयोहिपठ्यते
मया लब्धप्रतिष्ठोऽयं जातो नास्त्यत्र संशयः । एवं बहुविधंश्रुत्वानारदोमौनमाश्रयत्
उपस्थितं च तं दृष्ट्वा भृङ्गी वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ९६ ॥

भृङ्ग्युवाच

त्वया बहु न वक्तव्यं पुनरेव च भामिनि । अजेयो निर्विकारो हिस्वामीममसुमध्यमे
स्त्रीभावयुक्ताऽसि वरानने त्वं देवं न जानासि परं पराणाम् ।
कामं पुरस्कृत्य पुरा भवानि ! समागताऽस्येव महेशमुग्रम् ॥ ९८ ॥
यथा कृतं तेन पिनाकिना पुरा एतत्स्मृतं किं सुभगे वदस्व नः ।
कृतो ह्यनंगो हि तदा ह्यनेन दग्धं वनं तस्य गिरेः पितुस्ते ॥ ९९ ॥
पश्चात्त्वयाऽऽराधित एव एष शिवः पराणां परमः परात्मा ।
भृंगिणेत्येवमुक्ता सा ह्युवाच कुपिता भृशम् ।
शृण्वतो हि महेशस्य वाक्यं रुष्टा च भृङ्गिणम् ॥ १०१ ॥

पार्वत्युवाच

हे भृङ्गिन्पक्षपातित्वाद्युक्तं वचनं मम । शिवप्रियोऽसि रे मन्द भेदबुद्धिरतो ह्यसि

अहं शिवात्मिका मूढ शिवो नित्यं मयि स्थितः ।
कथं शिवाभ्यां भिन्नत्वं त्वयोक्तं वाग्बलेन हि ॥ १०३ ॥

श्रुतं च वाक्यं शुभदं पार्वत्या भृङ्गिणातदा । उवाचपार्वतींभृङ्गीरुषितःशिव...
पितुर्यज्ञे च दक्षस्य शिवनिंदा त्वया श्रुता । अप्रियश्रवणात्सद्यस्त्वयात्यक्तं...
तत्क्षणादेव तन्वङ्गि ह्यधुना किं कृतं त्वया । संभ्रमात्किं नजानासिशिवनिं...
कथंवा पर्वतश्रेष्ठाज्जातासि वरवर्णिनि । कथं वा तपसोग्रेण संतप्ताऽसि...
सप्रेमा च शिवे भक्तिस्तव नास्तीहसांप्रतम् । शिवप्रियासितन्वंगितस्मादेवं...
शिवात्परतरं नान्यत्त्रिषु लोकेषु विद्यते । शिवे भक्तिस्त्वया कार्यासप्रेमाव...
भक्ताऽसि त्वं महादेवि महाभाग्यवतां वरे । संसेव्यतां प्रयत्नेन तपसोपार्जित...
शिवो वरेण्यः सर्वेशो नान्यथा कर्तुमर्हसि । भृङ्गिणो वचनंश्रुत्वागिरिजात...

गिरिजोवाच

रे भृङ्गिन्मौनमालम्ब्य स्थिरो भवाऽथ वा व्रज ।
वाच्यावाच्यं न जानासि किं ब्रवीषि पिशाचवत् ॥ ११२ ॥

तपसाकेनचानीतःकयाचापिशिवोह्ययम् । काहंकोऽसौन्वयाज्ञातोभेदबुद्ध्याब्र...
कोऽसि त्वंकेनयुक्तोऽसिकस्माच्चबहुभाषसे । शापंतवप्रदास्यामिशिवःकिंकुर्...
भृङ्गिणोक्ता तिरस्कृत्य तदा शापं ददौ सती । निर्मांसोभवरेमन्दरेभृङ्गिन्...
एवमुक्त्वा तदा देवी पार्वती शंकरप्रिया । अथ कोपेन संयुक्ता पार्वती शंकरं...
करे गृह्य च तन्वंगी भुजंगं वासुकिं तथा । उदतारयत्कंठात्सा तथान्यानि ब...
शंभोर्जग्राह कुपिता भूषणानि त्वरान्विता । हृता चंद्रकला तस्य गजाजिनम...
कम्बलाश्वतरौ नागौ महेशकृतभूषणौ । हृतौ तया महादेव्या छलोक्त्या च प्र...

कौपीनाच्छादनं तस्य च्छलोक्त्या च प्रहस्य वै ।
तदा गणाश्च सख्यश्च त्रपया पीडिता भवन् ॥ १२० ॥

पराङ्मुखाश्च संजाता भृङ्गी चैव महातपाः । तथाचण्डोहिमुण्डश्चमहालोमा...
एते चान्ये च बहवो गणास्ते दुःखिनोऽभवन् ।

तांश्च दृष्ट्वा तथाभूतान्महेशो लज्जितोऽभवत् ॥ १२२ ॥
उवाच वाक्यं रुषितः पार्वतीं प्रति शंकरः ॥ १२३ ॥

रुद्र उवाच

हासं प्रकुर्वंति सर्वे हि ऋषयो भृशम् । तथा ब्रह्मा चविष्णुश्चतथाचेन्द्रादयोह्यमीं
पहासपराः सर्वे किं त्वयाऽद्य कृतं शुभे । कुले जातासि तन्वंगिकथमेवंकरिष्यसि
त्वया जितो ह्यहं सुभ्रु यदि जानासि तत्त्वतः ।
तर्ह्येवं कुरु मे देहि कौपीनाच्छादनं परम् ।
देहि कौपीनमात्रं मे नान्यथा कर्तुमर्हसि ॥ १२६ ॥
वमुक्ता सती तेन शम्भुना योगिना तदा । प्रहस्य वाक्यं प्रोवाच पार्वतीरुचिरानना
कं कौपीनेन ते कार्यं मुनिना भावितात्मना । दिगम्बरेणैव तदा कृतं दारुवनं तथा
भिक्षाटनमिषेणैव ऋषिपत्न्यो विमोहिताः । गच्छतस्ते तदा शंभोपूजनंतैर्महत्कृतम्
कौपीनं पतितं तत्र मुनिभिर्नान्यथोदितम् । तस्मात्त्वया प्रहातव्यं द्यूते हारितमेवतत्
च्छ्रुत्वा कुपितो रुद्रः पार्वतीं परमेश्वरः । निरीक्षमाणोऽतिरुषा तृतीयेनैव चक्षुषा
कुपितं शङ्करं दृष्ट्वा सर्वे देवगणास्तदा । भयेन महताविष्टास्तथा गणकुमारकाः
चुः सर्वे शनैस्तत्र शङ्कितेन परस्परम् । अद्याऽयं कुपितो रुद्रो गिरिजांप्रतिसंप्रति॥
था हि मदनो दग्धस्तथेयं नान्यथा वचः । एवं मीमांसमानास्ते गणा देवर्षयस्तदा
विलोकितास्तया देव्या सर्वे सौभाग्यमुद्रया । उवाच प्रहसन्नेव सती सत्पुरुषं तदा
किमालोकपरो भूत्वा चक्षुषा परमेण हि । नाहं कालो नकामोऽहंनाहंदक्षस्यवैमखः
त्रिपुरो नैव वै शम्भो नान्धको वृषभध्वज !। वीक्षितेनैव किन्तेन तवचाद्यभविष्यति
वृथैव त्वं विरूपाक्षो जातोऽसि मम चाऽग्रतः ॥ १३७ ॥
एवमादीन्यनेकानि ह्युवाच परमेश्वरी । निशम्य देवो वाक्यानि गमनाय मनो दधे
वनमेव वरं चाद्य विजनं परमार्थतः । एकाकी यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः॥१३८॥
स सुखी परमार्थज्ञः सविद्वान्स च पण्डितः । येनमुक्तौकामरागौसमुक्तः ससुखीभवेत्
एवं विमृश्य च तदा गिरिजां विहाय श्रीशङ्करः परमकारुणिकस्तदानीम् ।

यातः प्रियाविरहितो वनमद्भुतं च सिद्धाटवीं परमहंसयुतां तथैव ॥
निर्गतं शंकरं दृष्ट्वा सर्वे कैलासवासिनः । निर्ययुश्च गणाःसर्वेवीरभद्रादयो
छत्रं भृङ्गी समादाय जगाम तस्य पृष्ठतः । चामरे वीज्यमाने च गंगायमुनस
ताभ्यां युक्तस्तदा नन्दी पृष्ठतोऽन्वगमत्सुधीः । वृषभोह्यग्रतोभूत्वापुष्पकेणवि
शोभमानो महादेव एभिः सर्वैः सुशोभनैः । अंतःपुरगता देवी पार्वती सा हि
सखीभिर्बहुभिस्तत्र तथान्याभिःसुसंवृता । गिरिजा चिन्तयामास मनसाप
ततो दूरं गतः शंभुर्विसृज्य च गणांस्तदा । गणेशं च कुमारं चवीरभद्रंतथा
भृङ्गिणं नन्दिनं चण्डं सोमनन्दिनमेव च । एतानन्यांश्च सर्वांश्च कैलासपुर
विसृज्य च महादेव एक एव महातपाः । गतो दूरं वनस्यान्ते तथा सिद्धव

काश्मीररत्नोपलसिद्धरत्नवैदूर्यचित्रं सुधया परिष्कृतम् ।
दिव्यासनं तस्य च कल्पितं भुवा तत्रास्थितो योगपतिर्महेशः ॥

पद्मासने चोपविष्टो महेशो योगवित्तमः । केवलं चात्मनात्मानंदध्यौमीलित
शुशुभे स महादेवः समाधौ चंद्रशेखरः । योगपट्टः कृतस्तेन शेषस्य च महा

वासुकिः सर्पराजश्च कटिवद्धः कृतो महान् ॥ १५२ ॥
आत्मानमात्मात्मतया च संस्तुतो वेदांतवेद्यो न हि विश्वचेष्टितः ।
एको ह्यनेको हि दुरन्तपारस्तथा ह्यतर्क्यो निजबोधरूपः ॥
स्थितस्तदानीं परमं पराणां निरीक्षमाणो भुवनैकभर्ता ॥ १५३ ॥

इति श्री स्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्व
केदारखंडेशिवशास्त्रेशिवपार्वतीद्यूतप्रसंगेनपार्वतीहारितसर्वस्वस्यशिवस्य
कैलासं विहाय तपोवनगमनवर्णनंनाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

पार्वत्या शबरीरूपेण शिवस्य गन्धमादनपर्वतं प्रत्यानयनपूर्वकं बृहस्पतिकृत-शिवराज्याभिषेकवर्णनम्

लोमश उवाच

वनं गते महादेवे गिरिजा विरहातुरा। सुखं न लेभे तन्वंगी हर्म्येष्वायतनेषु वा॥१॥
चिन्तयन्ती शिवंतन्वी सर्वभावेनशोभना। चिंतमानांशिवांज्ञात्वाह्युवाचविजयासखी

विजयोवाच

तपसा महता चैव शिवं प्राप्ताऽसि शोभने। मृषा द्यूतं कृतं तेन शंकरेण तपस्विना
द्यूते हि बहवो दोषा न श्रुताः किं त्वयाऽनघे। क्षमापय शिवंतन्वित्वरैणैवविचक्षणे

अस्माभिः सहिता देवि गच्छ गच्छ वरानने ! ॥ ५ ॥
यावच्छम्भुर्दूरतो नाभिगच्छेत्तावद्गत्वा शङ्करं क्षामयस्व।
नो चेत्तन्वि क्षामयेथाः शिवं त्वं दुःखं पश्चात्ते भविष्यत्यवश्यम् ॥ ६ ॥
निशम्य वाक्यं विजयाप्रयुक्तं प्रहस्यमाना समधीरचेताः।
उवाच वाक्यं विजयां सखीं च आश्चर्यभूतं परमार्थयुक्तम् ॥ ७ ॥
मया जितोऽसौ निरपत्रपश्च पुरा वृतो वै परया विभूत्या।
किञ्चिच्च कृत्यं मम नास्ति सद्यो मया विनाऽसौ च विरूपआस्थितः ॥८॥

रूपकृतो मया देवो महेशो नान्यथा वद। मया तेन वियोगश्च संयोगो नैव जायते

साकारो हि निराकारो महेशो हि मया कृतः ॥ १० ॥
कृतं मया विश्वमिदं समग्रं चराचरं देववरैः समेतम्।
क्रीडार्थमस्योद्भववृत्तिहेतुभिश्चिक्रीडितं मे विजये प्रपश्य ॥ ११ ॥

एवमुक्त्वा तदा देवी गिरिजा सर्वमङ्गला। शबरीरूपमास्थाय गन्तुकामा महेश्वरम्
श्यामा तन्वी शिखरदशना बिंबबिंबाधरोष्ठीसुग्रीवाढ्याकुचभरनतावर्द्धितस्निग्धकेशी
मध्ये क्षामा पृथुकटितटा हेमरम्भोरुगौरी पल्लीयुक्ता वरवलयिनीबर्हिबर्हावतंसा ॥१२

पाणौ मृणालसदृशं दधती च चापं पृष्ठे लसत्कृतककेतकिबाणकोशम्।
सा तं निरीशमवलोकयति स्म तत्र संसेविता सुवदना बहुभिःसखीभिः

भृङ्गीनादेन महता नादयन्ती जगत्त्रयम्। गिरिजा मन्मथं सद्यो जीवयन्ती पुनः
सकामना राजहंसा बभूवुस्तत्क्षणादपि। द्विरेफा बर्हिणश्चैव सर्वे ते हृच्छया...
एकाकी संस्थितो यत्रसमाधिस्थोमहेश्वरः। दृष्टस्ततस्तयादेव्याभृङ्गीनादेनमो...
प्रबुद्धो हि महादेवो निरीक्ष्य शबरीं तदा। समाधेरुत्थितः सद्यो महेशो मदना...
यावत्करे गृह्यमाणो गिरिजां स समीपगः। तावत्तस्य पुरःसद्यस्तिरोधानं...
तद्दृष्ट्वा तत्क्षणादेव देवोभ्रांतिविनाशनः। भ्रममाणस्तदाशंभुर्नापश्यदसिते...
विरहेण समायुक्तो हृच्छयेन समन्वितः। मदनारिस्तदा शंभुर्ज्ञानरूपो निर...
निर्मोहो मोहमापन्नो ददर्श गिरिजां पुनः। उवाच वाक्यं शबरीं प्रस्तावसदृशं...

शिव उवाच

वाक्यं मे शृणुतन्वंगि! श्रुत्वातत्कर्तुमर्हसि। कासिकस्यासितन्वंगिकिमर्थम...
तत्कथ्यतां महाभागे! याथातथ्यं सुमध्यमे!॥ २३॥

शिवोवाच

पतिमन्वेषयिष्यामि सर्वज्ञं सकलार्थदम्। स्वतंत्रं निर्विकारं च जगतामीश्वरं...
इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं गिरिजां वृषभध्वजः। अहं तवोचितो भद्रेपतिर्नान्योहिभा...
विमृश्यतां वरारोहे तत्त्वतो हि वरानने। वचो निशम्य रुद्रस्य स्मितपूर्वमभा...
मयार्थितो महाभाग पतिस्त्वं नान्यथावद। किंतुवक्ष्यामिभद्रंते निर्गुणोऽसिप...
मया पुरा वृतोऽसि त्वं तपसा च परेण हि। परित्यक्तात्वयारण्येक्षणमात्रेणभा...
दुराराध्योऽसि सततं सर्वेषां प्राणिनामपि। तस्मान्न वाच्यं हि पुनर्यदुक्तंतेमम...
शबर्या वचनं श्रुत्वाप्रत्युवाचवृषध्वजः। मैवं वद विशालाक्षि नत्यक्ता सा तपस्वि...
यदि त्यक्ता मया तन्वि किं वक्तुमिह पार्यते॥ ३०॥
एवं ज्ञात्वा विशालाक्षि कृपणं कृपणप्रियम्। तस्मात्त्वया हि कर्तव्यंवचनंमेसुम...
एवमभ्यर्थिता तेन बहुधा शूलपाणिना। प्रहस्य गिरिजा प्राह उपहासपरं व...
तपोधनोऽसियोगीश विरक्तोऽसिनिरञ्जनः। आत्मारामोहिनिर्द्वन्द्वोमदनोयेनघा...
स त्वं साक्षाद्विरूपाक्षो मया दृष्टोऽसिचाद्यवै। अशक्योहिमयाप्राप्तुंसर्वेषांदुर...

तस्मात्त्वया न वक्तव्यं यदुक्तं च पुरा मम ॥ ३४ ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रोवाच मदनान्तकः । मम भार्या भव त्वं हिनान्यथाकर्तुमर्हसि
इत्युक्त्वा तां करेऽगृह्णाच्छबरींमदनातुरः । उवाच तं स्मयंतीसामुञ्चमुञ्चेतिसादरम्
नोचितं भगवन्कर्तुं तापसेनबलादिदम् । याचयस्व पितुर्मे त्वंनान्यथाऽभिभविष्यसि

महादेव उवाच

पितरं कथयाऽऽशु त्वंस्थितःकुत्रशुभानने । द्रक्ष्यामितंविशालाक्षिप्रणिपातपुरःसरम्
एतदुक्तं तदा तेन निशम्याऽसितनेत्रया । आनीतो हि तया तन्व्या पितरं वृषभध्वजः
स्थितं कैलासशिखरे हिमवन्तं नगोत्तमम् । अहिभिर्बहुभिश्चैव संवृतं च महाप्रभम्
द्वारि स्थितं तया देव्या दर्शितंशंकरस्य च । असौ मम पिता देव याचस्वविगतत्रपः
दद्ाति मां न संदेहस्तपस्विन्मा विलम्बितम् ॥ ४१ ॥
तथेति मत्वा सहसा प्रणम्य हिमालयं वाक्यमिदं बभाषे ।
प्रयच्छ तां चाद्य गिरिशवर्य ! ह्यार्ताय कन्यां सुभगां महामते ! ॥ ४२ ॥
कृपणं वाक्यमाकर्ण्य समुत्थाय हिमालयः । महेशंचसमादायह्युवाचगिरिराट्स्वयम्
किं जल्पसि हि भोदेवतवायुक्तंचसांप्रतम् । त्वंदातात्रिषुलोकेषुत्वंस्वामीजगतांविभो
त्वया ततमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम् । एवं स्तुतिपरोऽभूच्च हिमालयगिरिर्महान्
आगतो नारदस्तत्र ऋषिभिः परिवारितः ॥ ४५ ॥
उवाच प्रहसन्वाक्यं शूलपाणे नमः प्रभो । हे शंभो शृणु मे वाक्यंतत्त्वसारमयंपरम्
योषिद्भिः संगतिःपुंसां विडम्बायोपकल्पते । त्वं स्वामीजगतांनाथःपराणांपरमःपरः
विमृश्य सर्वं देवेश यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ४७ ॥
एवं प्रबोधितस्तेन नारदेन महात्मना । प्रबोधमगमच्छम्भुर्जहास परमेश्वरः ॥ ४८ ॥

शिव उवाच

सत्यमुक्तं त्वया चात्र नान्यथा नारद क्वचित् । योषित्सङ्गतिमात्रेण नृणांपतनमेवच
भविष्यति न संदेहो नान्यथा वचनं तव । अनया मोहितोऽद्याहमानीतोगन्धमादनम्
पिशाचवत्कृतमिदं चरितं परमाद्भुतम् ॥ ५१ ॥

तस्मान्न तिष्ठामि गिरेः समीपे व्रजामि चाद्यैव वनान्तरं पुनः।
इत्येवमुक्त्वा स जगाम मार्गं दुरत्ययं योगिनामप्यगम्यम् ॥ ५२॥
निरालम्बं स विज्ञाय नारदो वाक्यमब्रवीत्। गिरिजांचगिरींद्रंचपार्षदान्प्रतिस
वन्दनीयश्च स्तुत्यश्च क्षाम्यतां परमार्थतः। महेशोऽयं जगन्नाथस्त्रिपुरारिर्महा
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नारदस्य मुखोद्गतम्। गिरिजां पुरतः कृत्वागिरयोहिमवा
दण्डवत्पतिताः सर्वे शङ्करं लोकशङ्करम्। तुष्टुवुः प्रणताः सर्वे प्रमथा गुह्य
स्तूयमानो हि भगवानागतोगन्धमादनम्। अङ्गिरसाहिसर्वेशोह्यभिषिक्तोमहात्म
तदा दुन्दुभयो नेदुर्वादित्राणि बहूनि च। इन्द्रादयः सुराः सर्वे पुष्पवर्षं व
ब्रह्मादिभिः सुरगणैर्बहुभिः परीतो योगीश्वरो गिरिजया सह विश्ववन्द
अभ्यर्थितः परमङ्गल मङ्गलैश्च दिव्यासनोपरि रराज महाविभूत्या ॥
एवंविधान्यनेकानि चरितानि महात्मनः। महेशस्यचभोविप्राःपापहारीणिशृण्व
यानियानीह रुद्रस्य चरितानि महान्त्यपि। श्रुतानि परमाण्येवभूयः किं कथया

ऋषय ऊचुः

एवमुक्तं त्वया सूत चरितं शङ्करस्य च। अनेन चरितेनैव सन्तृप्ताः स्मो न सं

सूत उवाच

व्यासप्रसादाच्छ्रुतमस्ति सर्वं मया ततं शंकररूपमद्भुतम्।
सुविस्तृतं चाद्भुतवेदगर्भं ज्ञानात्मकं परमं चेदमुक्तम् ॥ ६३ ॥
श्रद्धया परयोपेताःश्रावयन्तिशिवप्रियम्। शृण्वन्तिचैवयेभक्त्याशम्भोर्माहात्म्यमद्
शिवशास्त्रमिदं प्रीत्या ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ६४ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरख
केदारखण्डे शिवशास्त्रे पार्वत्या शबरीरूपेण शिवस्य गन्धमादनपर्वतं प्रत्यान
पूर्वकं बृहस्पतिकृतशिवराज्याभिषेकवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५॥
इति श्रीस्कान्दमहापुराणे प्रथमे माहेश्वरखण्डे प्रथमः केदारखण्डःसमाप्तः ॥

———

* श्रीगणेशाय नमः *

॥ ॐ नमो बृहस्पतये । नमस्तस्मै ब्रह्मणे । विष्णवे नमः ॥

अथ स्कन्दपुराणस्थमाहेश्वरखण्डे

द्वितीयं कौमारिकाखण्डम्

—०:*:०—

प्रथमोऽध्यायः

मुनीनामुग्रश्रवसा सम्वादे पञ्चतीर्थविषये प्रश्नस्तत्रपार्थद्वारा पञ्चाप्सरः समुद्धारवर्णनम्

श्रीमुनय ऊचुः ।

दक्षिणार्णवतीरेषु यानितीर्थानि पञ्च च । तानि ब्रूहि विशालाक्ष वर्णयंत्यति तानिच
सर्वतीर्थफलं येषु नारदाद्या वदन्ति च । तेषां चरितमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छामहे वयम्

उग्रश्रवा उवाच

शृणुध्वमत्यद्भुतपुण्यसत्कथं कुमारनाथस्य महाप्रभावम् ।
द्वैपायनो यन्मम चाह पूर्वं हर्षाम्बुरोमोद्गमचर्चिताङ्गः ॥ ३ ॥

कुमारगीता गाथाऽत्र श्रूयतां मुनिसत्तमाः । या सर्वदेवैर्मुनिभिः पितृभिश्च प्रपूजिता
मध्वाचारस्तम्भतीर्थं यो निषेवेत मानवः । नियतं तस्य वासःस्याद्ब्रह्मलोकेयथाहम
ब्रह्मलोकाद्विष्णुलोकस्तस्मादपिशिवस्य च । पुत्रप्रियत्वात्तस्यापिगुहलोकोमहत्तमः
अत्राऽऽश्चर्यकथायाचफाल्गुनस्यपुरेरिता। नारदेनमुनिश्रेष्ठास्तांवोवक्ष्यामिविस्तरात्
पुरानिमित्तेकस्मिंश्चित्किरीटीमणिकूटतः । समुद्रेदक्षिणेऽभ्यागात्स्नातुंतीर्थानिपञ्चच

वर्जयंति सदा यानि भयात्तीर्थानि तापसाः । कुमारेशस्य पूर्वंचतीर्थमस्तिमुनेःप्रि
स्तम्भेशस्य द्वितीयं च सौभद्रस्य मुनेःप्रियम् । वर्करेश्वरमन्यच्च पौलोमीप्रियमुत्त
चतुर्थं च महाकालं करंधमनृपप्रियम् । भरद्वाजस्य तीर्थं च सिद्धेशाख्यं हि पंच
एतानि पञ्च तीर्थानि ददर्श कुरुपुङ्गवः । तपस्विभिर्वर्जितानि महापुण्यानि तानि
दृष्ट्वा पार्श्वे नारदीयानपृच्छत महामुनीन् । तीर्थानीमानि रम्याणि प्रभावाद्भुतवन्ति
किमर्थं ब्रूत वर्ज्यंते सदैव ब्रह्मवादिभिः ॥

तापसा ऊचुः

ग्राहाः पञ्च वसन्त्येषु हरन्ति च तपोधनान् ॥ १४ ॥

अत एतानि वर्ज्यंते तीर्थानि कुरुनंदन । इति श्रुत्वा महाबाहुर्गमनाय मनो दधे॥
ततस्तं तापसाः प्रोचुर्गंतुं नार्हसि फाल्गुन । बहवो भक्षिता ग्राहैराजानोमुनयस्त
तत्त्वं द्वादश वर्षाणि तीर्थानामर्बुदेष्वपि । स्नातः किमेतैस्तीर्थैस्ते मा पतङ्गवतो

अर्जुन उवाच

यदुक्तं करुणासारैः सारंकिं तदिहोच्यताम् । धर्मार्थीमनुजोयश्चनस वार्योमहात्म
धर्मकामं हि मनुजं यो वारयति मंदधीः । तदाश्रितस्य जगतोनिःश्वासैर्भस्मसाद्भ
यज्जीवितं चाचिरांशुसमानक्षणभंगुरम् । तच्चेद्धर्मकृते याति यातु दोषोऽस्तिकोत्र
जीवितं च धनं दाराः पुत्राः क्षेत्रगृहाणिं च । यान्ति येषां धर्मकृतेतएवभुविमानवा

तापसा ऊचुः

एवं ते ब्रुवतः पार्थ दीर्घमायुः प्रवर्धताम् । सदाधर्मे रतिर्भूयाद्याहि त्वं कुरुवाञ्छित
एवमुक्तः प्रणम्यैतानाशीर्भिरभिसंस्तुतः । जगाम तानि तीर्थानि द्रष्टुं भरतसत्तम
ततः सौभद्रमासाद्य महर्षेस्तीर्थमुत्तमम् । विगाह्य तरसा वीरः स्नानं चक्रे परंतप
अथ तं पुरुषव्याघ्रमन्तर्जलचरो महान् । निजग्राह जले ग्राहः कुन्तीपुत्रं धनञ्जयम्
तमादायैव कौन्तेयो विस्फुरन्तं जलेचरम् । उदतिष्ठन्महाबाहुर्बलेन बलिनां वरः
उद्धृतश्चैव तु ग्राहः सोऽर्जुनेन यशस्विना । बभूव नारी कल्याणी सर्वाभरणभूषिता
दीप्यमानशिखा विप्रा दिव्यरूपा मनोरमा । तदद्भुतं महद्दृष्ट्वा कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः

तां स्त्रियं परमप्रीत इदं वचनमब्रवीत् । का वै त्वमसि कल्याणिकुतोवाजलचारिणी
किमर्थं च महत्पापमिदं कृतवती ह्यसि ॥

नार्युवाच

अप्सरा ह्यस्मि कौन्तेय देवारण्यनिवासिनी ॥ ३० ॥
इष्टा धनपतेर्नित्यं वर्चानाम महाबल । मम सख्यश्चतस्रोऽन्याः सर्वाःकामगमाःशुभाः
ताभिः सार्धंप्रयाताऽस्मिदेवराजनिवेशनात् । ततः पश्यामहे सर्वाब्राह्मणंचानिकेतनम्
रूपवन्तमधीयानमेकमेकांतचारिणम् । तस्य वै तपसा वीर तद्वनं तेजसावृतम् ॥३३
आदित्य इव तं देशं कृत्स्नमेवान्वभासयत् । तस्यदृष्ट्वातपस्तादृग्रूपंचाद्भुतदर्शनम् ॥
अवतीर्णास्मि तं देशं तपोविघ्नचिकीर्षया । अहं च सौरभेयी च सामेयीवुद्बुदालता
यौगपद्येन तं विप्रमभ्यगच्छाम भारत । गायंत्यो ललमानाश्च लोभयंत्यश्चतं द्विजम्
स च नास्मासु कृतवान्मनो वीरः कथंचन । नाकम्पतमहातेजाः स्थितस्तपसिनिर्मले
सोऽशपत्कुपितोऽस्मासु ब्राह्मणः क्षत्रियर्षभ । ग्राहभूताजले यूयं भविष्यथशतंसमाः
ततो वयं प्रव्यथिताः सर्वा भरतसत्तम । आयाताः शरणं विप्रं तपोधनमकल्मषम्
रूपेण वयसा चैव कन्दर्पेण च दर्पिताः । अयुक्तं कृतवत्यः स्म क्षन्तुमर्हसि नो द्विज
एष एव वधोऽस्माकं स पर्याप्तस्तपोधन । यद्वयं शंसितात्मानंप्रलोब्धुंत्वामुपागताः
अवध्याश्च स्त्रियःसृष्टा मन्यन्तेधर्मचिन्तकाः । तस्माद्धर्मेण धर्मज्ञएषवादोमनीषिणाम्
शरणं च प्रपन्नानां शिष्टाःकुर्वंतिपालनम् । शरण्यंत्वांप्रपन्नाःस्मस्तस्मात्त्वंक्षंतुमर्हसि
एवमुक्तस्तु धर्मात्मा ब्राह्मणः शुभकर्मकृत् । प्रसादं कृतवाञ्छूर रविसोमसमप्रभः

ब्राह्मण उवाच

भवतीनां चरित्रेण परिमुह्यामि चेतसि । अहो धार्ष्ट्यमहो मोहो यत्पापायप्रवर्तनम्
मस्तकस्थायिनं मृत्युं यदि पश्येदयंजनः । आहारोऽपिनरोचेतकिमुताकार्यकारिता॥
आहो मानुष्यकं जन्म सर्वजन्मसु दुर्लभम् । तृणवत्क्रियते कैश्चिद्योषिन्मूढैर्दुराधरैः
तान्वयंसमपृच्छामोजनिर्वःकिंनिमित्ततः । कोवालाभोविचार्यैतन्मनसासहप्रोच्यताम्
न चैताः परिनिन्दामो जनिर्याभ्यः प्रवर्तते । केवलं तान्विनिंदामो येचतासुनिर्गलाः

यतः पद्मभुवा सृष्टं मिथुनं विश्ववृद्धये। तत्तथा परिपाल्यं वै नात्रदोषोऽस्तिक
या बांधवैः प्रदत्ता स्याद्वह्निद्विजसमागमे। गार्हस्थ्यपालनं धन्यं तयासार्कंहिसं
यथाप्रकृति पुंयोगो यत्नेनापिपरस्परम्। साध्यमानोगुणायस्यादगुणायाप्यसा
एवं यत्नात्साध्यमानं स्वकंगार्हस्थ्यमुत्तमम्। गुणायमहतेभूयादगुणायाप्यसा
पुरे पंचमुखे द्वाःस्थ एकादशभटैर्युतः। साकं नार्या वह्नपत्यः स कथं स्याद
यश्च स्त्रिया समायोगः पंचयज्ञादिकर्मभिः। विश्वोपकृतये सृष्टामूढैर्हासाध्यते
अहो शृणुध्वं नो चेद्वः शुश्रूषा जायतेशुभा। तथापिवाहुमुद्धृत्यरोरूयामःशृणो
षड्धातुसारं तद्वीर्यं समानं परिहाय च। विनिक्षेपे कुयोनौ तु तस्येदं प्रोक्तवान

प्रथमं चौषधीद्रोग्धा आत्मद्रोग्धा ततः पुनः।
पितृद्रोग्धा विश्वद्रोग्धा यात्यन्धं शाश्वतीः समाः॥ ५८॥

मनुष्यं पितरो देवा मुनयो मानवा स्तथा। भूतानि चोपजीवन्ति तदर्थं नियतो
वचसा मनसा चैव जिह्वया करश्रोत्रकैः। दांतमाहुर्हिसत्तीर्थं काकतीर्थमतः
काकप्रायेनरैयस्मिन्नमंतेतामसाजनाः। हंसोऽयमितिदेवानांकोऽर्थस्तेनविचिन्त्य
एवंविधं हि विश्वस्य निर्माणं स्मरतो हृदि। अपि कृतेत्रिलोक्याश्चकथंपापेरमे
तदिदं चान्यमर्त्यानां शास्त्रदृष्टमहो स्त्रियः। यमलोके मया दृष्टं मुह्ये प्रत्यक्षत
भवतीषु च कः कोपो ये यदर्थे हि निर्मिताः। ते तमर्थं प्रकुर्वंति सत्यमस्तुभ
शतं सहस्रं विश्वं च सर्वमक्षयवाचकम्। परिमाणं शतं त्वेव नैतदक्षय्यवाचक
यदा च वो ग्राहभूता गृह्णतीः पुरुषाञ्जले। उत्कर्षति जलात्कश्चित्स्थले पुरुषस
तदा यूयं पुनः सर्वाः स्वं रूपं प्रतिपत्स्यथ। अनृतं नोक्तपूर्वं मे हसताऽपि कदा

कल्याणस्य सुपृक्तस्य शुद्धिस्तद्द्वारा हि वः॥ ६६॥

नार्युवाच

ततोऽभिवाद्य तं विप्रं कृत्वा चैव प्रदक्षिणम्॥ ६८॥

अचिन्तयामापसृत्य तस्माद्देशात्सुदुःखिताः। क्व नु नाम वयंसर्वाःकालेनाल्पेनतं
समागच्छेम यो नः स्वं रूपमापादयेत्पुनः। ता वयं चिंतयित्वेह मुहूर्तादिव

दृष्टवत्यो महाभागं देवर्षिमथ नारदम्। सर्वा हृष्टाः स्म तं दृष्ट्वादेवर्षिममितद्युतिम्
अभिवाद्यवतंपार्थस्थिताःस्मोव्यथितानना:। सनोऽपृच्छद्दुःखमूलमुक्तवत्योवयंचतम्
श्रुत्वा तच्च यथातत्त्वमिदं वचनमब्रवीत्। दक्षिणे सागरेऽनूपे पंच तीर्थानि संति वै
पुण्यानिरमणीयानितानिगच्छतमाचिरम्। तत्रस्थाःपुरुषव्याघ्रःपांडवो वो धनञ्जयः
मोक्षयिष्यतिशुद्धात्मादुःखादस्मान्नसंशयः। तस्यसर्वावयंवीरश्रुत्वावाक्यमिहागताः
त्वमिदं सत्यवचनं कर्तुमर्हसिपाण्डव। त्वद्विधानांहि साधूनां जन्म दीनोपकारकम्
श्रुत्वेतिवचनं तस्याः सस्नौ तीर्थेष्वनुक्रमात्। ग्राहभूताश्चोज्जहारयथापूर्वाःसपांडवः
ततः प्रणम्य ता वीरं प्रोच्यमाना जयाशिषः। गंतुं कृताभिलाषाश्चप्राहपार्थोधनञ्जयः
एष मे हृदि संदेहः सुदृढ़ः परिवर्तते। कस्माद्वो नारदमुनिरनुजज्ञे प्रवासितुम् ॥७६॥

सर्वः कोऽप्यतिहीनोऽपि स्वपूज्यस्याऽर्थसाधकः।
स्वपूज्यतीर्थेष्वावासंप्रोक्तवान्नारदः कथम् ॥८०॥

तथैव नवदुर्गासुसतीष्वतिवलासु च। सिद्धेशेसिद्धगणपे.चापिवोऽत्रस्थितिः कथम्
एकैक एषां शक्तोहिअपिदेवान्निवारितुम्। तीर्थसंरोधकारिण्यःसर्वानावारयत्कथम्
इति चिन्तयते मह्यं भृशं दोलायते मनः। महन्मे कौतुकं जातं सत्यं वा वक्तुमर्हथ

अप्सरस ऊचुः

योग्यं पृच्छसि कौन्तेय पुनः पश्योत्तरां दिशम् ॥ ८५ ॥
एषस्वविप्रैरभिसंवृतोऽर्च्यो मुनिः समायाति तथेति नारदः
सर्वं हि पृष्टं तव वै स वक्ता प्रोच्यैवमाकाशतलं गतास्ताः ॥ ८५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर खण्डे कौमारिकाखण्डे पार्थेन पञ्चाप्सरः समुद्धरणंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

———

द्वितीयोऽध्यायः

नारदद्वाराऽर्जुनायतीर्थप्रशंसनं तत्र च सत्यतपःशौचसांख्ययोगा[...] प्रशंसा धर्मेण सह दानस्य

सूत उवाच

ततो द्विजैः परिवृतं नारदं देवपूजितम् । अभिगम्योपजग्राह सर्वानथ स [...]
ततस्तं नारदः प्राह जयारातिधनञ्जय । धर्मे भवतु ते बुद्धिर्देवेषु ब्राह्मणेषु च [...]
कच्चिदेतां महायात्रां वीर द्वादशवार्षिकीम् । आचरन्खिद्यसे नैवमथ वा कुप्य[...]
मुनिनामपि चेतांसि तीर्थयात्रासु पाण्डव । खिद्यन्ति परिकुप्यंतिश्रेयसां विघ्न[...]
कच्चिन्नैतेनदोषेणसमाश्लिष्टोऽसिपांडव । अत्रचांगिरसा गीतां गाथामेतां[...]
यस्य हस्तौ च पादौचमनश्चैवसुसंयतम् । निर्विकाराःक्रियाःसर्वाःसतीर्थफल[...]
तदिदं हृदि धार्यं ते किंवात्वंतातमन्यसे । भ्रातायुधिष्ठिरोयस्यसखायस्यस[...]
पुनरेतत्समुचितं यद्विप्रैः शिक्षणं नृणाम् । वयं हि धर्मगुरवःस्थापितास्तेन वि[...]
विष्णुना चाऽत्र शृणुमो गीतां गाथां द्विजान्प्रति ॥ ६ ॥
यस्यामलामृतयशःश्रवणावगाहः सद्यः पुनाति जगदाश्वपचाद्विकुण्ठ[...]
सोऽहं भवद्भिरुपलब्धसुतीर्थकीर्तिश्छिन्द्यां स्वबाहुमपि यः प्रतिकूल[...]
प्रियं च पार्थ ते ब्रूमो येषा कुशलकामुकः । सर्वे कुशलिनस्ते च यादवाःपांडवा[...]
अधुना भीमसेनेन कुरूणामुपतापकः । शासनाद्धृतराष्ट्रस्य वीरवर्मा नृपो हत[...]
स हि राज्ञामजेयोऽभूद्यथापूर्वं बलिर्बली । कण्टकं कण्टकेनैव धृतराष्ट्रो जिगा[...]
इत्यादिनारदप्रोक्तां वाचमाकर्ण्य फाल्गुनः । अतीव मुदितः प्राह तेषामकुशलं[...]
ये ब्राह्मणमते नित्यं ये च ब्राह्मणपूजकाः । अहं च शक्त्या नियतस्तीर्थानि वि[...]
आगतस्तीर्थमेतद्धि प्रमोदोऽतीव मे हृदि । तीर्थानां दर्शनं धन्यमवगाहस्ततो[...]
माहात्म्यश्रवणंतस्मादौर्वोऽपिमुनिरब्रवीत् । तदहंश्रोतुमिच्छामितीर्थस्यास्यगुण[...]

एतेनैव श्राव्यमेतद्यत्त्वयांगीकृतं मुने। त्वं हि त्रिलोकीं विचरन्वेत्सिसर्वांहिसारताम्
तदेतत्सर्वतीर्थेभ्योऽधिकं मन्ये त्वदाहृतम् ॥ १६ ॥

नारद उवाच

उचितं तव पार्थैतद्यत्पृच्छसिगुणिन्गुणान्। गुणिनामेवयुज्यन्तेश्रोतुंधर्मोद्भवागुणाः
साधूनां धर्मश्रवणैः कीर्तनैर्याति चान्वहम् ॥ २० ॥
पापानामसदालापैरायुर्याति यथान्वहम्। तदहंकीर्तयिष्यामितीर्थस्यास्यगुणान्बहून्
यथा श्रुत्वा विजानासि युक्तमंगीकृतंमया। पुराऽहं विचरन्पार्थत्रिलोकींकपिलानुगः
गतवान्ब्रह्मणो लोकं तत्राऽपश्यं पितामहम्। स हि राजर्षिदेवर्षिमूर्तामूर्तैः सुसंवृतः
विभाति विमलो ब्रह्मा नक्षत्रैरुडुराडिव। तमहं प्रणिपत्याऽथ चक्षुषा कृतस्वागतः
उपविष्टः प्रमुदितः कपिलेन सहैव च। एतस्मिन्नन्तरे तत्र वार्तिकाः समुपागताः॥२५॥
प्रहीयंते हि ते नित्यं जगद्द्रष्टुंहि ब्रह्मणा। कृतप्रणामानथ तान्समासीनान्पितामहः
चक्षुषामृतकल्पेन प्लावयन्निव चाब्रवीत्। कुत्र कुत्र विचीर्णं वो दृष्टं श्रुतमथापि वा
किंचिदेवाद्भुतं ब्रूत श्रवणाद्येन पुण्यता। एवमुक्ते भगवता तेषां यः प्रवरो मतः॥२८॥
सुश्रवानाम ब्रह्माणं प्रणिपत्येदमूचिवान्। प्रभोरग्रे च विज्ञप्तिर्यथा दीपो रवेस्तथा॥
तथापि खलु वाच्यं मे परार्थं प्रेरितेन ते। मुनिः कात्यायनोनामश्रुत्वाधर्मान्पुनर्बहून्
सारजिज्ञासया तस्थावेकांगुष्ठः शतंसमाः। ततःप्रोवाचतंदिव्यावाणीकात्यायनश्शृणु
पुण्ये सरस्वतीतीरे पृच्छ सारस्वतं मुनिम्। सतेसारंधर्मसाध्यंधर्मज्ञोऽभिवदिष्यति
इति श्रुत्वा मुनिवरो मुनिश्रेष्ठमुपेत्य तम्। प्रणम्यशिरसाभूमौ पप्रच्छेदंहृदि स्थितम्
सत्यं केचित्प्रशंसंतितपःशौचंतथापरे। सांख्यंकेचित्प्रशंसंति योगमन्येप्रचक्षते ॥३४
क्षमां केचित्प्रशंसंति तथैव भृशमार्ज्जवम्। केचिन्मौनं प्रशंसंतिकेचिदाहुः परंश्रुतम्
सम्यग्ज्ञानं प्रशंसंति केचिद्वैराग्यमुत्तमम्। अग्निष्टोमादिकर्माणितथाकेचित्परं विदुः॥
आत्मज्ञानं परं केचित्समलोष्टाश्मकांचनम्।
इत्थंव्यवस्थितेलोकेकृत्याकृत्यविधौजनाः ॥३७ ॥
व्यामोहमेव गच्छंति किं श्रेय इति वादिनः। यदेतेषु परं कृत्यमनुष्ठेयं महात्मभिः॥

वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ मम सर्वार्थसाधकम् ॥ ३९ ॥

सारस्वत उवाच

यन्मां सरस्वती प्राह सारं वक्ष्यामि तच्छृणु । छायाकारं जगत्सर्वमुत्पत्तिक्षय
वारांगनानेत्रभंगस्वद्भङ्गुरमेव तत् ॥ ४० ॥

धनायुर्यौवनंभोगाञ्जलचंद्रवदस्थिरान् । बुद्ध्यासम्यक्परामृश्यस्थाणुदानंसमा
दानवान्पुरुषःपापंनालंकर्तुमितिश्रुतिः । स्थाणुभक्तोजन्ममृत्यू नाप्नोतीतिश्रुति
सावर्णिना च गाथेद्वेकीर्तितेश्रुणुयेपुरा । वृषो हि भगवान्धर्मो वृषभो यस्य
पूज्यते स महादेवः सः धर्मःपरउच्यते । दुखावर्ते तमोघोरे धर्माधर्मजले तथा
क्रोधपंके मदग्राहे लोभबुद्बुदसंकटे । मानगंभीरपाताले सत्त्वयानविभूषिते ॥
मज्जंतं तारयत्येको हरः संसारसागरात् । दानं वृत्तं व्रतं वाचः कीर्तिधर्मौ
परोपकरणं कायादसारात्सारमुद्धरेत् । धर्मे रागः श्रुतौ चिंता दाने व्यसनमु
इंद्रियार्थेषुवैराग्यंसंप्राप्तंजन्मनःफलम् । देशेऽस्मिन्भारते जन्म प्राप्य मानुष्य
नकुर्यादात्मनः श्रेयस्तेनात्मा वञ्चितश्चिरम् । देवासुराणांसर्वेषां मानुष्यमति
तत्संप्राप्य तथा कुर्यान्न गच्छेन्नरकं यथा । सर्वस्यमूलं मानुष्यंतथासर्वार्थसा
यदि लाभे न यत्नस्ते मूलं रक्ष प्रयत्नतः । महता पुण्यमूल्येन क्रीयते कायनौस्त
गंतुंदुःखोदधेः पारं तर यावन्न भिद्यते । अविकारिशरीरत्वं दुष्प्राप्यं प्राप्य वै
नापक्रामति संसारादात्महा स नराधमः । तपस्तप्यन्ति यतयो जुह्वते चात्र
दानानि चात्र दीयन्ते परलोकार्थमादरात् ॥ ५३ ॥

कात्यायन उवाच

दानस्य तपसो वाऽपिभगवन्किन्नु दुष्करम् । किंवामहत्फलंप्रेत्यसारस्वतब्रवी

सारस्वत उवाच

न दानाद्दुष्करतरं पृथिव्यामस्ति किञ्चन । मुने प्रत्यक्षमेवैतद्दृश्यते लोकसा
परित्यज्य प्रियान्प्राणान्धनार्थेहिमहाभयम् । प्रविशंतिमहालोभात्समुद्रमटवीं
सेवामन्ये प्रपद्यन्ते श्ववृत्तिरिति या स्मृता । हिंसाप्रायां बहुक्लेशां कृषिं चैव त

तस्य दुःखार्जितस्येह प्राणेभ्योपिगरीयसः । आयासशतलब्धस्यपरित्यागःसुदुष्करः
यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम् । अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि
अहन्यहनियाचंतमहं मन्ये गुरुं यथा । मार्जनं दर्पणस्येव यः करोति दिनेदिने॥ ६०॥

दीयमानं हि नापैति भूय एवाभिवर्धते ।

कूप उत्सिच्यमानो हि भवेच्छुद्धो बहूदकः ॥ ६१ ॥

एकजन्मसुखस्यार्थे सहस्राणि विलापयेत् । प्राज्ञो जन्मसहस्रेषुसंचिनोत्येकजन्मनि
मूर्खो हि न ददात्यर्थानिहदारिद्र्यशंकया । प्राज्ञस्तुविसृजत्यर्थानमुत्र तस्यशंकया
किं धनेन करिष्यंति देहिनो भंगुराश्रयाः । यदर्थं धनमिच्छन्ति तच्छरीरमशाश्वतम्
अक्षरद्वयमभ्यस्तं नास्तिनास्तीति यत्पुरा । तदिदं देहिदेहीति विपरीतमुपस्थितम्
बोधयन्ति च यावन्तो देहीति कृपणंजनाः । अवस्थेयमदानस्य मा भूदेवं भवानपि
दातुरेवोपकाराय वदत्यर्थीति देहि मे । यस्माद्दाता प्रयात्यूर्ध्वमधस्तिष्टेत्प्रतिग्रही
दरिद्रा व्याधिता मूर्खाः परप्रेष्यकराःसदा । अदत्तदानाज्जायंतेदुःखस्यैवहिभाजनाः
धनवंतमदातारं दरिद्रंवाऽतपस्विनम् । उभावम्भसि मोक्तव्यौकंठेबद्ध्वामहाशिलाम्
शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः । वक्ता शतसहस्रेषु दाता जायेत वा न वा
गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः । अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही
शिबिरौशीनरोऽङ्गानि सुतं च प्रियमौरसम् । ब्राह्मणार्थमुपाकृत्य नाकपृष्ठमितो गतः
प्रतर्दनः काशिपतिः प्रदाय नयने स्वके । ब्राह्मणायातुलां कीर्तिमिह चामुत्र चाश्नुते
निमी राष्ट्रं चवैदेहोजामदग्न्योवसुंधराम् । ब्राह्मणेभ्योददौचापिगयश्चोर्वीसपत्तनाम्
अवर्षति च पर्जन्ये सर्वभूतनिवासकृत् । वसिष्ठो जीवयामास प्रजापतिरिव प्रजाः
ब्रह्मदत्तश्चपांचाल्योराजाबुद्धिमतांवरः । निधिंशंखंद्विजाग्र्येभ्योदत्वास्वर्गमवाप्तवान्
सहस्रजिच्चराजर्षिः प्राणानिष्टान्महायशाः । ब्राह्मणार्थेपरित्यज्यगतो लोकाननुत्तमान्
एतेचान्येचबहवःस्थाणोर्दानेनभक्तितः । रुद्रलोकंगतानित्यंशान्तात्मानोजितेन्द्रियाः
एषांप्रतिष्ठिताकीर्तिर्यावत्स्थास्यतिमेदिनी । इतिसंचिन्त्य सारार्थीस्थाणुदानपरोभव॥

सोऽपि मोहं परित्यज्य तथा कात्यायनोऽभवत् ॥ ८० ॥

नारद उवाच

एवं सुश्रवसा प्रोक्तां कथामाकर्ण्य पद्मभूः। हर्षाश्रुसंयुतोऽतीव प्रशशंस मुहु
साधु ते व्याहृतं वत्स एवमेतन्न चान्यथा। सत्यं सारस्वतः प्राहसत्याच्चैवंतथा

दानं यज्ञानां वरूथं दक्षिणा लोके दातारंसर्वभूतान्युपजीवन्ति दानेनारातीरँपानुदंत दानेन द्विषंतो मित्रा भवंति दाने सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्दानं परमं वदन्तीति ॥ ८३ ॥

संसारसागरे घोरे धर्माधर्मोर्मिसंकुले। दानं तत्र निषेवेत तच्च नौरिव नि
इति संचिंत्यचमयापुष्करेस्थापिताद्विजाः। गङ्गायमुनयोर्मध्ये मध्यदेशे द्विजाः
स्थापिताः श्रीहरिभ्यांतुश्रीगौर्यावेदवित्तमाः। रुद्रेणनागराश्चैवपार्वत्याशक्तिपूर्व
श्रीमाले च तथालक्ष्म्याह्येवमादिसुरोत्तमैः। नानाग्रहाराःसंदत्तालोकोद्धरणकां
नहिदानफलेकांक्षाकाचिन्नोऽस्तिसुरोत्तमाः। साधुसंरक्षणार्थंहिदानंनःपरिकी
ब्राह्मणाश्च कृतस्थानानानाधर्मोपदेशनैः। समुद्धरंतिवर्णांस्त्रीस्ततः पूज्यतमाहि
दानं चतुर्विधं दानमुत्सर्गः कल्पितंतथा। संश्रुतंचेति विविधंतत्क्रमात्परिकी
वापीकूपतडागानां वृक्षविद्यासुरौकसाम्। मठप्रपागृहक्षेत्रदानमुत्सर्गइत्यसौ॥
उपजीवन्निमान्यश्च पुण्यं कोऽपि चरेन्नरः। षष्ठमंशं स लभते यावन्नो विसर्जई
तदेषामेव सर्वेषां विप्रसंस्थापनं परम्। देवसंस्थापनं चैव धर्मस्तन्मूल एव
देवतायतनं यावद्यावच्च ब्राह्मणगृहम्। तावद्दातुः पूर्वजानांपुण्यांशश्चोपतिष्ठति॥
एतत्स्वल्पं हि वाणिज्यं पुनर्बहुफलप्रदम्। जीर्णोद्धारे च द्विगुणमेतदेव प्रकी
तस्मादिदं त्वहमपि ब्रवीमि सुरसत्तमाः। नास्तिदानसमंकिंचित्सत्यंसारस्वतो

नारद उवाच

इति सारस्वतप्रोक्तां तथापद्मभुवेरिताम्। साधुसाध्वित्यमोदंतसुराश्चाहंसुविस्मि
ततः सभाविसर्गांते सुरम्ये मेरुमूर्धनि। उपविश्य शिलापृष्ठेअहमेतदचिन्तयम्।
सत्यमाह विरञ्चिस्तु स किमर्थं तु जीवति। येनैकमपि तद्वृत्तं नैव येन कृतार्थता
तदहं दानपुण्यं हि करिष्यामिकथंस्फुटम्। कौपीनदण्डात्मधनोधनंस्वल्पंहिना

अनर्हते यद्ददाति न ददाति तथार्हते। अर्हानर्हपरिज्ञानाद्दानधर्मो हि दुष्करः ॥१०१॥
देशे काले च पात्रे च शुद्धेन मनसा तथा। न्यायार्जितं च यो दद्याद्यौवने सतदश्नुते
तमोवृतस्तु यो दद्याद्भयात्क्रोधात्तथैव च। भुङ्क्ते दानफलं तद्धिगर्भस्थो नात्रसंशयः
बालत्वेऽपिचसोऽश्नातियद्दत्तंदम्भकारणात्। दत्तमन्यायतोवित्तंतथावैचार्थकारणम्
वृद्धत्वे हि समश्नाति नरो वै नात्र संशयः। तस्माद्देशे च कालेचसुपात्रेविधिनानरः
शुभार्जितं प्रयुञ्जीत श्रद्धया शाठ्यवर्जितः ॥ ५ ॥
तदेतन्निर्धनत्वाच्च कथं नाम भविष्यति। सत्यमाहुः पुरा वाक्यं पुराणमुनयोऽमलाः
नाधनस्यास्त्ययं लोको न परश्च कथञ्चन। अभिशस्तंप्रपश्यंतिदरिद्रंपार्श्वतःस्थितम्
दारिद्र्यं पातकं लोके कस्तच्छंसितुमर्हति। पतितः शोच्यतेसर्वैर्निर्धनश्चापिशोच्यते
यः कृशाश्वः कृशधनः कृशभृत्यः कृशातिथिः। स वै प्रोक्तःकृशोनामनशरीरकृशःकृशः
अर्थवान्दुष्कुलीनोऽपि लोके पूज्यतमो नरः। शशिनस्तुल्यवंशोऽपि निर्धनःपरिभूयते
ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धा ये च वृद्धाबहुश्रुताः। ते सर्वे धनवृद्धस्य द्वारि तिष्ठन्ति किंकराः
यद्यप्ययं त्रिभुवने अर्थोऽस्माकं पराग्रहि। तथाप्यन्यप्रार्थितो हितस्यैवफलदोभवेत्
अथवैतत्पुरासर्वंचिंतयिष्यामिसुस्फुटम्। विलोकयामिपूर्वंतुकिंचिद्योग्यंहिस्थानकम्
स चिंतयित्वेति बहुप्रकारं देशांश्च ग्रामान्नगराणि चाऽऽश्रमान्।
बहूनहं पर्यटन्नाप्तवान्हि स्थानं हितं स्थापये यत्र विप्रान् ॥ ११४ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे नारदार्जुनसंवादे दानप्रशंसावर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

नारदार्जुनसम्वादे महीसागरसङ्गमतीर्थमाहात्म्यम्

सूत उवाच

एवं स्थानानि पुण्यानि यानियानीह वै भुवि। निरीक्षंस्तत्र तत्राहं नारदोवीरसत्तमः

विचरन्मेदिनीं सर्वां प्राप्तोऽहमाश्रमं भृगोः । यत्र रेवानदी पुण्या सप्तकल्पस्मरा
महापुण्या पवित्रा च सर्वतीर्थमयी शुभा । पुनाति कीर्तनेनैवदर्शनेन विशेषतः
तत्रावगाहनात्पार्थ मुच्यते जंतुरंहसा । यथा सा पिङ्गला नाडी देहमध्येव्यव
इयं ब्रह्मांडपिण्डस्यस्थानेतस्मिन्प्रकीर्तिता । तत्रास्तेशुक्लतीर्थाख्यंरेवायांपापना
यत्र वै स्नानमात्रेण ब्रह्महत्या प्रणश्यति । तस्यापि सन्निधौ पार्थ रेवाया उत्त
नानावृक्षसमाकीर्णं लतागुल्मोपशोभितम् । नानापुष्पफलोपेतं कदलीखंडमं
अनेकश्वापदाकीर्णं विहगैरनुनादितम् । सुगंधपुष्पशोभाढ्यं मयूररवनादितम् ॥
भ्रमरैः सर्वमुत्सृज्य निलीनं रावसंयुतम् । यथा संसारमुत्सृज्य भक्तेन हरपा
कोकिलामधुरैःस्वानैर्नादयंतितथामुनीन् । यथाकथामृताख्यानैर्ब्राह्मणाभवभीरु
यत्र वृक्षा ह्लादयंति फलैः पुष्पैश्च पत्रकैः । छायाभिरपिकाष्ठैश्च लोकानिव हर
पुत्रपुत्रेति वाशन्ते यत्र पुत्रप्रियाः खगाः । यथा शिवप्रियाःशैवानित्यंशिवशिवे
एवंविधं मुनेस्तस्य भृगोराश्रममण्डलम् । विप्रैस्त्रैविद्यसंयुक्तैः सर्वतः समलङ्
ऋग्यजुःसामनिर्घोषैरापूरितदिगन्तरम् । रुद्रभक्तेन धीरेण यथैव भुवनत्रयम् ॥
तत्राहं पार्थ सम्प्राप्तो यत्रास्ते मुनिसत्तमः । भृगुः परमधर्मात्मातपसा द्योति
आगच्छन्तं तु मां दृष्ट्वा दीनं च मुदितंतथा । अभ्युत्थानं कृतं सर्वैर्विप्रैर्भृगुपुरोग

कृत्वा सुस्वागतं दत्त्वा अर्घाद्यं भृगुणा सह ।
आसनेषूपविष्टास्ते मुनीन्द्रा ग्राहिता मया ॥ १७ ॥

विश्रान्तं तु ततो ज्ञात्वा भृगुर्मामभ्युवाचह । क्व गन्तव्यं मुनिश्रेष्ठकस्मादिहसमा
आगमनकारणं सर्वं समाचक्ष्व परिस्फुटम् । ततस्तं चिंतयाविष्टोभृगुंपार्थाहम
श्रूयतामभिधास्यामि यदर्थमहमागतः । मया पर्यटिता सर्वा समुद्रान्ता च मेदिनी
द्विजानां भूमिदानार्थंमार्गमाणः पदे पदे । निर्दोषांचपवित्रां च तीर्थेष्वपिसमन्वि

रम्यां मनोरमां भूमिं न पश्यामि कथञ्चन ।

भृगुरुवाच

विप्राणां स्थापनार्थाय मयाऽपि भ्रमता पुरा ॥ २२ ॥

पृथ्वीसागरपर्यन्ता दृष्टा सर्वा तदानघ । महीनाम नदी पुण्या सर्वतीर्थमयी शुभा ॥
दिव्या मनोरमा सौम्या महापापप्रणाशिनी । नदीरूपेण तत्रैव पृथ्वीसानात्र संशयः
पृथिव्यां यानि तीर्थानि दृष्टादृष्टानि नारद । तानि सर्वाणि तत्रैव निवसन्तिमहीजले
सा समुद्रेण सम्प्राप्ता पुण्यतोया महानदी । सञ्जातस्तत्र देवर्षे महीसागरसंगमः ॥
स्तंभाख्यं तत्र तीर्थं तु त्रिषु लोकेषुविश्रुतम् । तत्र ये मनुजाःस्नानंप्रकुर्वन्तिविपश्चितः
सर्वपापविनिर्मुक्ता नोपसर्पंति वै यमम् । तत्राद्भुतं हि दृष्टं मे पुरा स्नातुं गतेन वै ॥
तदहं कीर्तयिष्यामि मुने श्रृणु महाद्भुतम् । यावत्स्नातुं व्रजाम्यस्मिन्महीसागरसंगमे

तीरे स्थितं प्रपश्यामि मुनीन्द्रं पावकोपमम् ।
प्रांशु वृद्धं चाऽस्थिशेषं तपोलक्ष्म्या विभूषितम् ॥ ३० ॥

भुजावूर्ध्वौ ततः कृत्वा प्ररुदन्तं मुहुर्मुहुः । तं तथा दुःखितंदृष्ट्वादुःखितोऽहमथाभवम्
सतां लक्षणमेतद्धि यद्दृष्ट्वा दुःखितं जनम् । शतसंख्यं तस्य भवेत्तथाऽहं विललाप ह

अहिंसा सत्यमस्तेयं मानुष्ये सति दुर्लभम् ।
ततस्तमुपसंगम्य पर्यपृच्छमहं तदा ॥ ३३ ॥

किमर्थं रोदिषि मुने शोके किं कारणंतव । सुगुह्यमपि चेद्ब्रूहि जिज्ञासा महतीहि मे
मुनिस्ततो मामवदद्भृगोनिर्भाग्यवानहम् । तेनरोदिमि मा पृच्छदुर्भाग्यंचालपेद्धिकः
तमहं विस्मयाविष्टः पुनरेवेदमब्रुवम् । दुर्लभं भारते जन्म तत्रापि च मनुष्यता॥३६॥
मनुष्यत्वे ब्राह्मणत्वं मुनित्वं तत्र दुर्लभम् । तत्रापिचतपःसिद्धिःप्राप्यैतत्पञ्चकं परम्
किमर्थं रोदिषि मुने विस्मयोऽत्र महान्मम । एवं संपृच्छते मह्यमेतस्मिन्नेव चान्तरे

सुभद्रोनाम नाम्ना च मुनिस्तत्राभ्युपाययौ ।
स हि मेरुं परित्यज्य ज्ञात्वा तीर्थस्य सारताम् ॥ ३९ ॥

कृताश्रमः पूजयति सदास्तम्भेश्वरंमुनिः । सोऽप्येवं मामिवापृच्छन्मुनिंरोदनकारणम्
अथाऽऽहाचम्य स मुनिः श्रूयतांकारणं मुनी । अहंहिदेवशर्माख्योमुनिःसंयतवाङ्मनाः
निवसामि कृतस्थानो गंगासागरसंगमे । तत्र दर्शे तर्पयामि सदैव च पितॄनहम् ॥
श्राद्धान्ते ते च प्रत्यक्षाह्याशिषोमेवदन्तिच । तत.कदाचित्पितरःप्रहृष्टा मामथाऽब्रुवन्

वयं सदाऽत्रचायामोदेवशर्मंस्तवान्तिके । स्थानेऽस्माकंकदाचित्त्वंनचायासिद्

स्थानं दिदृक्षुस्तच्चाहंनशक्तोऽस्मिनिवेदितुम् । ततःपरममित्युक्त्वागतवान्पितृ

पितॄणांमन्दिरंपुण्यंभौमलोकसमास्थितम् । तत्रतत्र स्थितश्चाहं तेजोमण्डलदु

दृष्ट्वाग्रतः पूजयाढ्यानपृच्छं स्वान्पितॄनिति । केह्यमीसमुपायान्ति भृशंतृप्ताभृशं

भृशं प्रमुदिता नैव तथा यूयं यथा ह्यमी ॥ ४७ ॥

पितर ऊचुः

भद्रं ते पितरः पुण्याः सुभद्रस्य महामुनेः । तर्पितास्तेन मुनिना महीसागरसं

सर्वतीर्थमयी यत्र निलीना ह्युदधौ मही । तत्र दर्शे तर्पयति सुभद्रस्तानमून्सुत

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां लज्जितोऽहं भृशं तदा ।

विस्मितश्च प्रणम्यैतान्पितॄन्स्वं स्थानमागतः ॥ ५० ॥

यथातथा चिन्तितंचतत्रयास्याम्यहंस्फुटम् । पुण्योयत्रापिविख्यातोमहीसागर

कृताश्रमश्च तत्रैव तर्पयिष्ये निजान्पितॄन् । दर्शेदर्शे यथा चासौ स्तुत्यनामासु

किं तेन ननु जातेनकुलांगारेणपापिना । यस्मिञ्जीवत्यपिनिजाःपितरोऽन्यस्पृह

इति सञ्चिन्त्य मुदितो रुचिं भार्यामथाब्रुवम् । रुचेत्वयासमायुक्तोमहीसागरसं

गत्वा स्थास्यामि तत्रैव शीघ्रं त्वं सम्मुखीभव ।

पतिव्रताऽसि शुद्धाऽसि कुलीनाऽसि यशस्विनि ।

तस्मादेतन्मम शुभे ! कर्तुमर्हसि चिन्तितम् ॥ ५५ ॥

रुचिरुवाच

हता तस्य जनिर्नाभूत्कथं पाप दुरात्मना ॥ ५६ ॥

श्मशानस्तंभ येनाऽहं दत्ता तुभ्यं कृतं त्वया । इहकंदफलाहारैर्यत्किंतेन व

नेतुमिच्छसि मां तत्र यत्र क्षारोदकं सदा । त्वमेवतत्र संयाहि नन्दन्तु तव

गच्छ वा तिष्ठ वा वृद्ध वस वा काकवच्चिरम् । तथाब्रुवन्त्यांतुकर्णावस्मिपि

विपुलं शिष्यमादिश्य गृह एकोऽत्र आगतः ।

सोऽहं स्नात्वाऽत्र सन्तर्प्य पितॄञ्छ्रद्धापरायणः ॥ ६० ॥

चिन्तां सुविपुलां प्राप्तो नरके दुष्कृती यथा । यदि तिष्ठामि चात्रैवअर्धदेहधरोह्यहम्
नरो हि गृहिणीहीनो अर्धदेह इति स्मृतः । यथात्मनाविनादेहेकार्यंकिंचिन्नसिध्यति
एवंगृहिण्या हीनो हि न स कर्मसु शस्यते । यो नरः स्त्रीषु देहेषुअनुरक्तस्त्वसौपशुः
अनयोर्हि फलं ग्राह्यं सारता नाऽत्र काचन । अर्धदेहीच मनुजस्त्वसंस्पृश्यःसतांमतः
औत्तानपादिरस्पृश्य उत्तमो हि सुरैः कृतः । अथ चेत्तत्र संयामि न महीसागरस्ततः
यामि वा तत्कथं पादौ चलतो मे कथञ्चन । एतस्मिन्मेमनोविद्धंखिद्यतेऽज्ञानसंकटे
अतोऽहमतिमुह्यामि भृशं शोचामि रोदिमि । इतिश्रुत्वावचस्तस्यभृशंरोमाञ्चपूरितम्
साधुसाध्वित्यथोवाच तं सुभद्रोऽप्यहं तथा । दण्डवच्च प्रणमितोमहीसागरसङ्गमम्
चिन्तयावश्च मनसि प्रतीकारं मुनेरुभौ । यो हि मानुष्यमासाद्य जलबुद्बुदभंगुरम्
परार्थाय भवत्येषपुरुषोऽन्ये पुरीषकाः । ततः संचिन्त्यप्राहेदं सुभद्रो मुनिसत्तमम्
मा मुने परिवद्यस्व देवशर्मन्स्थिरो भव । अहं ते नाशयिष्यामिशोकंसूर्यस्तमोयथा
गमिष्याम्याश्रमं त्वं च नात्रापिपरिहास्यते । शृणु तत्कारणंतुभ्यंतर्पयिष्येपितॄनहम्

देवशर्मोवाच

एवं ते वदमानस्य आयुरस्तु शतं समाः । यदशक्यं महत्कर्म कर्तुमिच्छिसि मत्कृते
हर्षस्थाने विषादश्च पुनर्मां बाधते शृणु । अपि वाक्यं शुभं सन्तो न गृह्णन्तिमुधामुने
कथमेतन्महत्कर्मकारयामि मुधा वद । पुनः किंचित्प्रवक्ष्यामियथा मे निष्कृतिर्भवेत्
शापितोऽसिमयाप्राणैर्यथावच्मितथाकुरु । अहं सदा करिष्यामिदर्शेचोद्दिश्यतेपितॄन्
श्राद्धं गंगार्णवे चाऽत्र मत्पितॄणांत्वमाचर । अहं चैवापि तपसःसंचितस्यापिजन्मना
चतुर्भागं प्रदास्यामि एवमेवैतदाचर ॥ ७७ ॥

सुभद्र उवाच

यद्येवं तव संतोषस्त्वेवमस्तु मुनीश्वर ! ।
साधूनां च यथा हर्षस्तथा कार्यं विजानता ॥ ७८ ॥

भृगुरुवाच

देवशर्मा ततोहृष्टोदत्त्वापुण्यंत्रिवाचिकम् । चतुर्थांशंययौधामस्वंसुभद्रोऽपिचस्थितः

एवंविधो नारदाऽसौ महीसागरसंगमः। यमनुस्मरतो मह्यं रोमाञ्चोऽद्यापि

नारद उवाच

इति श्रुत्वा फाल्गुनाहं हर्षगद्गदया गिरा। मृतोमृत इवावोचं साधुसाध्विति तं
यूयं वयं गमिष्यामो महीतीरं सुशोभनम्। आवामीक्षावहे सर्वं स्थानकं तद्
मम चैवं वचःश्रुत्वा भृगुः सह मयाययौ। समस्तं तु महापुण्यं महीकूलं निरीक्षि
तद्दृष्ट्वा चातिहृष्टोऽहमासं रोमांचकंचुकः। अब्रवं मुनिशार्दूलं हर्षगद्गदया गिरा
त्वत्प्रसादात्करिष्यामि भृगोस्थानमनुत्तमम्। स्वस्थानं गम्यतां ब्रह्मन्नतः कृत्यं विधि

एवं भृगुं चास्मि विसर्जयित्वा कल्लोलकोलाहलकौतुकीतटे।
अथोपविश्येदमचिन्तयं तदा किं कृत्यमात्मानसिवैकयोगी ॥ ८६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर
कौमारिकाखण्डे नारदार्जुनसम्वादे महीसागरसङ्गमतीर्थमाहात्म्ये
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

नारदार्जुनसम्वादे दानभेदप्रशंसावर्णनम्

नारद उवाच

ततस्त्वहं चिन्तयामि कथं स्थानमिदं भवेत्। ममायत्तं यतो राज्ञां भूमिरेषा सदा
यत्त्वहं धर्मवर्माणं गत्वा याचे ह मेदिनीम्। अर्पयत्येव सच मे याचितो न पुनः
तथा हि मुनिभिः प्रोक्तं द्रव्यं त्रिविधमुत्तमम्। शुक्लं मध्यं च शबलमधमं कृष्णमु
श्रुतेः संपादनाच्छिष्यात्प्राप्तं शुक्लं च कन्यया। तथा कुसीदवाणिज्यकृषियाचितं
शबलं प्रोच्यते सद्भिर्द्यूतचौर्येण साहसैः। व्याजेनोपार्जितं यच्च तत्कृष्णं समुदा
शुक्लवित्तेन यो धर्मं प्रकुर्याच्छ्रद्धयान्वितः। तीर्थपात्रं समासाद्य देवत्वे तत्सम

राजसेन च भावेन वित्तेन शवलेन च। प्रद्याद्दानमर्थिभ्यो मानुष्यत्वे तदश्नुते
तमोवृतस्तु यो दद्यात्कृष्णवित्तेनमानवः। तिर्यकक्त्वेतत्फलं प्रेत्यसंमश्नातिनराधमः
तत्तु याचितद्रव्यं मे राजसं हि स्फुटं भवेत्। अथ ब्राह्मणभावेन नृपं याचेप्रतिग्रहम्
तदप्यहो चातिकष्टं हेतुना तेन मे मतम्। अयं प्रतिग्रहो घोरोमध्वास्वादोविषोपमः
प्रतिग्रहेण संयुक्तं ह्यमीवमाविशेद्द्विजम्। तस्मादहं निवृत्तश्चपापादस्मात्प्रतिग्रहात्
ततः केनाप्युपायेन द्वयोरन्यतरेण तु। स्वायत्तं स्थानकं कुर्मे एतत्सञ्चितये मुहुः॥१२
यथा कुभार्यःपुरुषश्चिन्तान्तं न प्रपद्यते। तथैव विमृशंश्चाहंचिन्तान्तं न लभाम्यणु॥
एतस्मिन्नन्तरे पार्थ स्नातुं तत्र समागताः। वहवो मुनयः पुण्ये महीसागरसंगमे
अहं तानब्रवं सर्वान्कुतो यूयं समागताः। ते मामूचुः प्रणम्याथ सौराष्ट्रविषयेमुने
धर्मवर्मेति नृपतिर्योऽस्य देशस्य भूपतिः। स तु दानस्य तत्त्वार्थीतेपेवर्षगणान्वहून्
ततस्तं प्राह खे वाणी श्लोकमेकंनृप श्रृणु। द्विहेतु षडधिष्ठानं षडंगं चद्विपाकयुक्
चतुः प्रकारं त्रिविधं त्रिनाशं दानमुच्यते। इत्येकं श्लोकमाभाष्यखेवाणीविरराम ह
श्लोकस्यार्थं नावभाषे पृच्छमानाऽपि नारद। ततो राजाधर्मवर्मा पटहेनान्वघोषयत्
यस्तुश्लोकस्यचैवास्यलब्धस्यतपसामया। करोतिसम्यग्व्याख्यानंतस्यचैतद्ददाम्यहम्
गवां च सप्त नियुतं सुवर्णंतावदेवतु। सप्तग्रामान्प्रयच्छामिश्लोकव्याख्यांकरोतियः
पटहेनेति नृपतेः श्रुत्वा राज्ञो वचो महत्। आजग्मुर्बहुदेशीयाब्राह्मणाःकोटिशो मुने॥
पुनर्दुर्बोधविन्यासः श्लोकस्तैर्विप्रपुङ्गवैः। आख्यातुं शक्यते नैव गुडो मूकैर्यथा मुने
वयं च तत्र याताः स्मो धनलोभेननारद। दुर्बोधत्वान्नमस्कृत्यश्लोकंचात्रसमागताः
दुर्व्याख्येयस्त्वयंश्लोकोधनंलभ्यंनचैवनः। तीर्थयात्रांकथंयामीत्येवाचिंत्यात्रचागताः
एवंफाल्गुनतेषांतुवचःश्रुत्वामहात्मनाम्। अतीवसंप्रहृष्टोऽहं तान्विसृज्येत्यचिन्तयम्
अहोप्राप्तउपायोमेस्थानप्राप्तौनसंशयः। श्लोकंव्याख्यायनृपतेर्लप्स्येस्थानंधनं तथा

विद्यामूल्येन नैवं च याचितःस्यात्प्रतिग्रहः।
सत्यमाह पुराणर्षिर्वासुदेवो जगद्गुरुः॥ २८॥

धर्मस्य यस्यश्रद्धास्यान्न च सा नैव पूर्यते। पापस्ययस्यश्रद्धास्यान्न च सापिनपूर्यते

एवं विचिन्त्यविद्वांसः प्रकुर्वन्तियथारुचि । सत्यमेतद्विभोर्वाक्यंदुर्लभोऽपि
मनोरथोऽयंसफलःसंभूतोंऽकुरितःस्फुटम् । एनं च दुर्विदंश्लोकमहंजानामि
अमूर्तैः पितृभिः पूर्वमेष ख्यातो हि मे पुरा । एवंहर्षान्वितःपार्थसंचित्याऽहं
प्रणम्य तीर्थं चलितो महीसागरसंगमम् । वृद्धब्राह्मणरूपेण ततोऽहं यातवान्
इदं भणितवानस्मि श्लोकव्याख्यां नृप शृणु । यत्ते पटहविख्यातं दानंच प्र
एवमुक्ते नृपः प्राह प्रोचुरेवं हि कोटिशः । द्विजोत्तमाः पुनर्नास्य प्रोक्तुमर्थो
के द्विहेतूषडाख्यातान्यधिष्ठानानिकानिच । कानिचैवषडंगानिकौद्वौपाकौत
केचप्रकाराश्चत्वारःकिंस्वित्तत्त्रिविधंद्विज । त्रयोनाशाश्चकेप्रोक्तादानस्यैत
स्फुटान्प्रश्नानिमान्सप्त यदि वक्ष्यसि ब्राह्मण । ततो गवां सप्तनियुतं सुवर्ण
सप्तग्रामांश्चदास्यामिनोचेद्यास्यसिस्वंगृहम् । इत्युक्तवचनंपार्थसौराष्ट्रस्वामि
धर्मवर्माणमस्त्वेवं प्रावोचमवधारय । श्लोकव्याख्यां स्फुटां वक्ष्ये दानहेतू
अल्पत्वं वा बहुत्वंवादानस्याभ्युदयावहम् । श्रद्धाशक्तिश्चदानानांवृद्धध्यक्षय
तत्र श्रद्धाविषये श्लोका भवन्ति । कायक्लेशैश्च बहुभिर्न चैवाऽर्थस्य राशिभि

धर्मः संप्राप्यते सूक्ष्मः श्रद्धा धर्मोऽद्भुतं तपः ।
श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत् ॥ ४३ ॥

सर्वस्वं जीवितं चापि दद्यादश्रद्धयायदि । नाप्नुयात्सफलंकिंचिच्छ्रद्धानस्त
श्रद्धया साध्यते धर्मो महद्भिर्नार्थराशिभिः । अकिंचना हिमुनयः श्रद्धावन्तोदि
त्रिविधा भवतिश्रद्धादेहिनांसास्वभावजा । सात्त्विकीराजसीचैवतामसीचेति
यजन्ते सात्त्विकादेवान्यक्षरक्षांसिराजसाः । प्रेतान्भूतपिशाचांश्चयजन्तेतामस
तस्माच्छ्रद्धावता पात्रे दत्तंन्यायार्जितंहियत् । तेनैवभगवान्रुद्रःस्वल्पकेनापि

शक्तिविषये च श्लोका भवन्ति ।

कुटुंबभुक्तवसनाद्देयं यदतिरिच्यते । मध्वास्वादो विषं पश्चाद्दातुर्धर्मोऽन्यथा
शक्ते परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि । मध्वापानविषादः स धर्माणां प्रति
भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदैहिकम् । तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतोऽस्य

सामान्यं याचितंन्यासमाधिर्दाराश्चतद्धनम्। अन्वाहितंचनिक्षेपःसर्वस्वंचान्वयेसति
आपत्स्वपि न देयानि नववस्तूनि पण्डितैः। यो ददातिसमूढात्माप्रायश्चित्तीयतेनरः
इति ते गदितौ राजन्द्वौ हेतू श्रूयतामतः। अधिष्ठानानि वक्ष्यामि षडेवश्रृणुतान्यपि
धर्ममर्थं च कामं च व्रीडाहर्षभयानि च। अधिष्ठानानि दानानां षडेतानि प्रचक्षते
पात्रेभ्यो दीयते नित्यमनपेक्ष्य प्रयोजनम्। केवलं धर्मबुद्ध्या यद्धर्मदानं तदुच्यते
धनिनं धनलोभेन लोभयित्वाऽर्थमाहरेत्। तदर्थदानमित्याहुः कामदानमतः श्रृणु

प्रयोजनमपेक्ष्यैव प्रसंगाद्यत्प्रदीयते।
अनर्हेषु सरागेण कामदानं तदुच्यते ॥५८॥

संसदिव्रीडयाऽऽश्रुत्यअर्थिभ्यःप्रददाति च। प्रतिदीयतेचयद्दानंव्रीडादानमितिश्रुतम्
दृष्ट्वाप्रियाणि श्रुत्वा वा हर्षवद्यत्प्रदीयते। हर्षदानमिति प्रोक्तं दानं तद्धर्मचिंतकैः
आक्रोशानर्थहिंसानां प्रतीकाराय यद्भवेत्। दीयतेऽनुपकर्तृभ्यो भयदानं तदुच्यते॥
प्रोक्तानि षडधिष्ठानान्यंगान्यपि च षट्च्छृणु। दाताप्रतिग्रहीताचशुद्धिर्देयं चधर्मयुक्
देशकालौच दानानामंगान्येतानिषड्विदुः। अपरोगीचधर्मात्मादित्सुरव्यसनःशुचिः
अनिंद्याजीवकर्मा चषड्भिर्दाताप्रशस्यते। अनृजुश्चाश्रद्दधानोऽशान्तात्माधृष्टभीरुकः
असत्यसंधो निद्रालुर्दाताऽयंतामसोऽधमः। त्रिशुक्लःकृशवृत्तिश्चघृणालुःसकलेन्द्रियः

विमुक्तो योनिदोषेभ्यो ब्राह्मणः पात्रमुच्यते।

सौमुख्यादभिसंप्रीतिरर्थिनां दर्शने सदा। सत्कृतिश्चानसूया च तदा शुद्धिरितिस्मृता
अपराबाधमक्लेशं स्वयत्नेनार्जितं धनम्। स्वल्पं वा विपुलंवापिदेयमित्यभिधीयते
तेनापि किल धर्मेण उद्दिश्य किल किञ्चन। देयं तद्धर्मयुगिति शून्येशून्यं फलं मतम्
न्यायेन दुर्लभं द्रव्यं देशे कालेऽपिवापुनः। दानार्हौदेशकालौतौस्यातांश्रेष्ठौनचान्यथा
षंडगानीतिचोक्तानिद्वौ चपाकावतःश्रृणु। द्वौपाकौदानजौप्राहुःपरत्राऽथत्विहोच्यते
सद्भ्यो यद्दीयते किंचित्तत्परत्रोपतिष्ठति। असत्सु दीयते किंचित्तद्दानमिह भुज्यते
द्वौपाकावितिनिर्दिष्टौप्रकारांश्चतुरःश्रृणु। ध्रुवमाहुस्त्रिकंकाम्यंनैमित्तिकमितिक्रमात्
वैदिको दानमार्गोऽयं चतुर्धा वर्ण्यते द्विजैः। प्रपारामतडागादिसर्वकामफलं ध्रुवम्

तदाहुस्त्रिकमित्याहुर्दीयते यद्दिनेदिने। अपत्यविजयैश्वर्यस्त्रीबालार्थं प्रदीयते।
इच्छासंस्थं च यद्दानंकाम्यमित्यभिधीयते। कालापेक्षंक्रियापेक्षंगुणापेक्षमिति
त्रिधानैमित्तिकंप्रोक्तंसदाहोमविवर्जितम्। इति प्रोक्ताःप्रकारास्तेत्रैविध्यमभि

अष्टोत्तमानि चत्वारि मध्यमाधिविधानतः।
कानीयसानि शेषाणि त्रिविधत्वमिदं विदुः॥ ७७॥

गृहप्रासादविद्याभूगोकूपप्राणहाटकम्। एतान्युत्तमदानानि उत्तमद्रव्यदानतः।
अन्नारामं च वासांसिहयप्रभृतिवाहनम्। दानानि मध्यमानीति मध्यमद्रव्य

उपानच्छत्रपात्रादिदधिमध्वासनानि च॥ ८०

दीपकाष्ठोपलादीनि चरमं बहुवार्षिकम्। इति कानीयसान्यहुर्दाननाशत्रयं शृ
यद्दत्त्वा तप्यते पश्चादासुरं तद्वृथा मतम्। अश्रद्धया यद्ददाति राक्षसं स्याद्वृ
यच्चाऽऽक्रुश्यददात्यंगदत्त्वाचक्रोशतिद्विजम्। पैशाचंतद्वृथा दानंदानानाशास्त्रय
इति सप्तपदैर्बद्धं दानमाहात्म्यमुत्तमम्। शक्त्या ते कीर्तितंराजन्साधुवाऽसाधु

धर्मवर्मोवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः। अद्य ते कृतकृत्योऽस्मि कृतः कृतिम
पठित्वासकलंजन्मब्रह्मचारीयथा वृथा। बहुक्लेशात्प्राप्तभार्यःसावृथाऽप्रियवा
क्लेशेनकृत्वा कूपं वा सच क्षारोदकोवृथा। बहुक्लेशैर्जन्म नीतं विनाधर्मं तथा
एवं मे यद्वृथा नाम जातं तत्सफलं त्वया। कृतं तस्मान्नमस्तुभ्यंद्विजेभ्यश्चनमं

सत्यमाह पुरा विष्णुः कुमारान्विष्णुसद्मनि॥ ८६॥
नाहं तथाद्मि यजमानहविर्वितानश्च्योतद्घृतप्लुतमदन्हुतभुङ्मुखेन।
यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं तुष्टस्य मय्यपहितैर्निजकर्मपाकैः

तन्मयाऽशर्मणा वापि यद्विप्रेष्वप्रियं कृतम्। सर्वस्य प्रभवो विप्रास्तत्क्षमंतांऽ
त्वंच कोऽसिनसामान्यःप्रणम्याहं प्रसादये। आत्मानंख्यापयमुनेप्रोक्तश्चेत्य

नारद उवाच

नारदोऽस्मि नृपश्रेष्ठ स्थानकार्थी समागतः। प्रोक्तं च देहि मे द्रव्यंभूमिंवस्था

यद्यपीयं देवतानांभूमिर्द्रव्यंचपार्थिव !। तथापियस्मिन्यःकालेराजाप्रार्थ्यःसनिश्चितम्
स हीश्वरस्यावतारो भर्त्ता दाताऽभयस्य सः । तथैव त्वामहं याचेद्रव्यशुद्धिपरीप्सया
पूर्वं ममाऽऽलयं देहि देयार्थे प्रार्थनापरः ॥ ६६ ॥

राजोवाच

यदि त्वं नारदो विप्र राज्यमस्त्वखिलं तव । अहंहि ब्राह्मणानांतेदास्यंकर्तानसंशयः

नारद उवाच

यद्यस्माकं भवान्भक्तस्तत्ते कार्यं च नो वचः ॥ ६७ ॥
सर्वं यत्तद्देहि मे द्रव्यंमुक्तं भुवं च मे सप्तगव्यूतिमात्राम् ।
भूयात्त्वत्तोऽप्यस्य रक्षेति सोऽपि मेने त्वहं चिन्तये चाऽर्थशेषम् ॥६८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे नारदार्जुनसम्वादे दानभेदप्रशंसावर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

नारदार्जुनसम्वादे कलापग्रामवासिसुतनुब्राह्मणेननारदप्रश्नोत्तरकथनम्

नारद उवाच

ततोऽहं धर्मवर्माणंप्रोच्य तिष्ठेद्धनंत्वयि । कृत्यकालेग्रहीष्यामीत्यागमंरैवतं गिरिम्
आसं प्रमुदितश्चाहं पश्यंस्तंगिरिसत्तमम् । आह्लायाननंनरान्साधून्भूमेर्भुजमिवोच्छ्रितम्
यस्मिन्नानाविधा वृक्षाः प्रकाशंते समंततः । साधुं गृहपतिं प्राप्य पुत्रभार्यादयोयथा
मुदिता यत्र संतृप्ता वाशंते कोकिलादयः । सद्गुरोर्ज्ञानसंपन्नायथाशिष्यगणाभुवि
यत्र तप्त्वा तपो मर्त्यायथेप्सितमवाप्नुयुः । श्रीमहादेवमासाद्य भक्तोयद्वन्मनोरथम्
तस्याहं च गिरेः पार्श्वे समासाद्यमहाशिलाम् । शीतसौरभ्यमंदेनप्रीणितोऽचिंतयंहृदि
तावन्मया स्थानमाप्तं यदतीव सुदुर्लभम् । इदानीं ब्राह्मणार्थेऽहं कुर्वे तावदुपक्रमम्

ब्राह्मणाश्च विलोक्या मे ये हि पात्रतमा मताः। तथा हि चात्र श्रूयंते वचांसि श्रुतिवा
न जलोत्तरणे शक्ता यद्वन्नौः कर्णवर्जिता। तद्वच्छ्रेष्ठोऽप्यनाचारो विप्रो नोद्धा हि
ब्राह्मणो ह्यनधीयान स्तृणाग्निरिव शाम्यति। तस्मै हव्यं न दातव्यं नहि भस्मनि
दानपात्रमतिक्रम्य यदपात्रे प्रदीयते। तद्दत्तं गामतिक्रम्य गर्दभस्य गवाह्निकम्। य
ऊषरे वापितं बीजं भिन्नभाण्डे च गोदुहम्। भस्मनीव हुतं हव्यं मूर्खे दानम
विधिहीने तथाऽपात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम्। न केवलं हि तद्याति शेषं पुण्यं
भूराप्ता गौस्तथा भोगाः सुवर्णं देहमेव च। अश्वश्चक्षुस्तथा वासो घृतं तेजस्तिलाः
घ्नन्ति तस्मादविद्वांस्तु बिभियाच्च प्रतिग्रहात्। स्वल्पकेनाप्यविद्वांस्तु पङ्के गौरिव

तस्माद्ये गूढतपसो गूढस्वाध्यायसाधकाः।
स्वदारनिरताः शान्तास्तेषु दत्तं सदाऽक्षयम्॥ १६॥

देशे काल उपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम्। पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्ष
न विद्यया केवलया तपसा वाऽपि पात्रता। यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं
तेषां त्रयाणां मध्ये च विद्या मुख्यो महागुणः। विद्यां विनान्धवद्विप्राश्चक्षुष्मंतो हि
तस्माच्चक्षुष्मतो विद्वान्देशे देशे परीक्षयेत्। प्रश्नान्ये मम वक्ष्यंति तेभ्यो दास्या
इति संचिंत्य मनसा तस्माद्देशात्समुत्थितः। आश्रमेषु महर्षीणां विचराम्यसि

इमाञ्छ्लोकान्गायमानः प्रश्नरूपाञ्छृणुष्व तान्।
मातृकां को विजानाति कतिधा कीदृशाक्षराम्॥ २२॥

पंचपंचाद्भुतं गेहं को विजानाति वा द्विजः। बहुरूपां स्त्रियं कर्तुमेकरूपां च वे
को वा चित्रकथाबन्धं वेत्ति संसारगोचरः। को वार्णवमाहाग्राहं वेत्ति विद्याप
को वाऽष्टविधं ब्राह्मण्यं वेत्ति ब्राह्मणसत्तमः। युगानां च चतुर्णां वा को मूलदिवस
चतुर्दशमनूनां वा मूलवासरं वेत्ति कः। कस्मिंश्चैव दिने प्राप पूर्वं वा भास्क
उद्वेजयति भूतानि कृष्णाहिरिव वेत्ति कः। को वाऽस्मिन्घोरसंसारे दक्षदक्षतमो
पंथानावपि द्वौ कश्चिद्वेत्ति वक्ति च ब्राह्मणः। इति मे द्वादश प्रश्नान्ये विदुर्ब्राह्मणो
ते मे पूज्यतमास्तेषामहमाराधकश्चिरम्। इत्यहं गायमानो वै भ्रमितः सकल

वाहुर्दुःखदाःख्याताःप्रश्नास्तेकुर्महे नमः । इत्यहंसकलांपृथ्वींविचिंत्यालब्धब्राह्मणः
हिमाद्रिशिखरासीनो भूयश्चिंतामवाप्तवान् । सर्वेविलोकिताविप्राःकिमतःकर्तुमुत्सहे
ततो मे चिन्तयानस्य पुनर्जातामतिस्त्वियम् । अद्यापि न गतश्चाहंकलापग्राममुत्तमम्
यस्मिन्विप्राः संवसन्तिमूर्तानीवतपांसि च । चतुराशीतिसाहस्राःश्रुताध्ययनशालिनः
स्थाने तस्मिन्गमिष्यामीत्युक्त्वाहंचलितस्तदा । खेचरोहिममाक्रम्यपरंपारं गतस्ततः
अद्राक्षं पुण्यभूमिस्थं ग्रामरत्नमहं महत् । शतयोजनविस्तीर्णं नानावृक्षसमाकुलम्
यत्र पुण्यवतां सन्ति शतशः प्रवराश्रमाः । सर्वेषामपिजीवानां यत्रान्योन्यं न दुष्टता

यज्ञभाजां मुनीनां यदुपकारकरं सदा ।
सतां धर्मवतां यद्वदुपकारो न शाम्यति ॥ ३७ ॥

मुनीनां यत्र परसंस्थानंचाप्यविनाशकृत् । स्वाहास्वधावषट्कारहन्तकारोननश्यति॥
यत्र कृतयुगस्याऽर्थं बीजं पार्थाऽवशिष्यते । सूर्यस्य सोमवंशस्य ब्राह्मणानांतथैव च
स्थानकंतत्समासाद्यप्रविष्टोऽहंद्विजाश्रमान्। तत्रतेविविधान्वादान्विवदंतेद्विजोत्तमाः
परस्परं चिंतयाना वेदा मूर्तिधरा यथा । तत्र मेधाविनः केचिदर्थमन्यैः प्रपूरितम्
विचिक्षिपुर्महात्मानो नभोगतमिवामिषम् । तत्राऽहं करमुद्यम्य प्रावोचंपूर्यतांद्विजाः
काकारावैःकिमेतैर्वोयद्यस्तिज्ञानशालिता । व्याकुरुध्वं ततः प्रश्नान्ममदुर्विषहान्बहून्

ब्राह्मणा ऊचुः

वद ब्राह्मण प्रश्नान्स्वाञ्छ्रुत्वाऽऽधास्यामहे वयम् ।
परमो ह्येष नो लाभः प्रश्नान्पृच्छति यद्भवान् ॥ ४४ ॥

अहं पूर्विकया ते वै न्यषेधन्त परस्परम् । अहं पूर्वमहं पूर्वमिति वीरा यथा रणे॥४५
ततस्तानब्रवं प्रश्नानहं द्वादश पूर्वकान् । श्रुत्वा ते मामवोचन्त लीलायन्तोमुनीश्वराः

किं ते द्विज बालप्रश्नैरमीभिः स्वल्पकैरपि ।
अस्माकं यन्निहीनं त्वं मन्यसे स ब्रवीत्वमून् ॥ ४७ ॥

ततोऽतिविस्मितश्चाऽहंमन्यमानःकृतार्थताम् ।तेषांनिहीनंसञ्चिन्त्यप्रावोचंप्रब्रवीत्वयम्

ततः सुतनुनामा स बालोऽबालोऽभ्युवाच माम् ।

मम मन्दायते वाणी प्रश्नैः स्वल्पैस्तव द्विज ! ॥
तथापि वच्मि मां यस्मान्निहीनं मन्यते भवान् ॥ ४९ ॥

सुतनुरुवाच

अक्षरास्तु द्विपंचाशन्मातृकायाः प्रकीर्तिताः ॥ ५० ॥

ॐकारः प्रथमस्तत्र चतुर्दश स्वरास्तथा । स्पर्शाश्चैव त्रयस्त्रिंशदनुस्वारस्तथैव
विसर्जनीयश्च परो जिह्वामूलीय एव च । उपध्मानीय एवापि द्विपञ्चाशदमी
इति ते कथितासंख्याअर्थं चैषां श्रृणु द्विज । अस्मिन्नर्थे चेतिहासंतववक्ष्यामि
मिथिलायांप्रवृत्तोऽभूद्ब्राह्मणस्यनिवेशने । मिथिलायांपुरापुर्यांब्राह्मणःकौथुमो
येन विद्याः प्रपठितावर्तन्ते भुवि या द्विज !। एकत्रिंशत्सहस्राणि वर्षाणां स
क्षणमप्यनवच्छिन्नं पठित्वागेहवानभूत् । ततः केनाऽपि कालेनकौथुमस्याऽभ
जडवद्वर्त्तमानः स मातृकां प्रत्यपद्यत । पठित्वा मातृकामन्यन्नांध्येति स कथ
ततः पिता खिन्नरूपी जडं तं समभाषत । अधीष्वपुत्रकाधीष्वतवदास्यामिमो

अथाऽन्यस्मै प्रदास्यामि कर्णावुत्पाटयामि ते ॥ ५९ ॥

पुत्र उवाच

तात किं मोदकार्थाय पठ्यते लोभहेतवे । पठनं नाम यत्पुंसां परमार्थं हि तत्

कौथुम उवाच

एवं ते वदमानस्य आयुर्भवतुब्रह्मणः । साध्वी बुद्धिरियं तेऽस्तु कुतोनाध्येष्यत

पुत्र उवाच

तात सर्वं परिज्ञेयं ज्ञातमत्रैव वै यतः । ततः परं कण्ठशोषः किमर्थं क्रियते

पितोवाच

विचित्रंभाषसेवालज्ञातोऽत्रार्थश्चकस्त्वया । ब्रूहिब्रूहिपुनर्वत्सश्रोतुमिच्छामिते

पुत्र उवाच

एकत्रिंशत्सहस्राणि पठित्वापित्वयापितः । नानातर्कान्भ्रान्तिरेवसंधितामनसि
अयमयं चायमिति धर्मो यो दर्शनोदितः । तेषु वातायते चेतस्तव तन्नाशयामि

उपदेशं पठत्येव नैवार्थज्ञोऽसितत्त्वतः । पाठमात्रा हि ये विप्रा द्विपदाः पशवो हि ते
तत्ते ब्रवीमि तद्वाक्यं मोहमार्तण्डमद्भुतम् ॥ ६७ ॥
अकारः कथितोब्रह्मा उकारोविष्णुरुच्यते । मकारश्चस्मृतोरुद्रस्त्रयश्चैते गुणाःस्मृताः
अर्धमात्रा च या मूर्ध्नि परमः स सदाशिवः । एवमोंकारमाहात्म्यंश्रुतिरेषा सनातनी
ॐकारस्य च माहात्म्यं याथात्म्येननशक्यते । वर्षाणामयुतेनाऽपिग्रन्थकोटिभिरेववा
पुनर्यत्सारसर्वस्वं प्रोक्तं तच्छ्रूयतां परम् । अःकारांता अकाराद्या मनवस्ते चतुर्दश ॥
स्वायम्भुवश्च स्वारोचिरौत्तमोरैवतस्तथा । तामसश्चाक्षुषःषष्ठस्तथा वैवस्वतोऽधुना
सावर्णिर्ब्रह्मसावर्णी रुद्रसावर्णिरेव च । दक्षसावर्णिरेवाऽपि धर्मसावर्णिरेव च॥७३॥
रौच्यो भौत्यस्तथा चापि मनवोऽमी चतुर्दश ।
श्वेतः पाण्डुस्तथा रक्तस्ताम्रः पीतश्च कापिलः ॥ ७४ ॥
कृष्णः श्यामस्तथा धूम्रः सुपिशङ्गःपिशङ्गकः । त्रिवर्णःशवलोवर्णःकर्कन्धुरइतिक्रमात्
वैवस्वतः क्षकारश्च तात कृष्णः प्रदृश्यते । ककाराद्या हकारान्तास्त्रयस्त्रिंशच्च देवताः
ककाराद्याष्ठकारान्ताआदित्याद्वादशस्मृताः । धातामित्रोऽर्यमाशक्रोवरुणश्चांशुरेवच
भगो विवस्वान्पूषाच सवितादशमस्तथा । एकादशस्तथा त्वष्टा विष्णुर्द्वादशउच्यते
जघन्यजः स सर्वेषामादित्यानां गुणाधिकः । डकाराद्यावकारान्ता रुद्राश्चैकादशैवतु
कपाली पिङ्गलो भीमो विरूपाक्षो विलोहितः ।
अजकः शासनः शास्ता शम्भुश्चण्डो भवस्तथा ॥ ८० ॥
भकाराद्याः षकारान्ताअष्टौहिवसवोमताः । ध्रुवो घोरश्चसोमश्चआपश्चैवनलोऽनिलः
प्रत्यूषश्चप्रभासश्चअष्टौतेवसवःस्मृताः । सौ हश्चेत्यश्विनौख्यातौ त्रयस्त्रिंशदिमेस्मृताः
अनुस्वारो विसर्गश्च जिह्वामूलीयएव च । उपध्मानीयइत्येते जरायुजास्तथाऽण्डजाः
स्वेदजाश्चोद्भिजाश्चेतिततजीवाःप्रकीर्तिताः । भावार्थःकथितश्चायंतत्त्वार्थंश्रृणुसांप्रतम्
ये पुमांसस्त्वमून्देवान्समाश्रित्य क्रियापराः । अर्धमात्रात्मकेनित्येपदेलीनास्तएवहि
चतुर्णां जीवयोनीनां तदैव परिमुच्यते । यदाभून्मनसा वाचा कर्मणा च यजेत्सुरान्
यस्मिञ्छास्त्रे त्वमी देवा मानिता नैव पापिभिः ।

तच्छास्त्रं हि न मन्तव्यं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत् ॥ ८७ ॥
अमीचदेवाःसर्वत्र श्रौते मार्गे प्रतिष्ठिताः । पाषण्डशास्त्रे सर्वत्र निषिद्धाःपाप
तदमून्ये व्यतिक्रम्य तपो दानमथो जपम् । प्रकुर्वन्ति दुरात्मानो वेपन्ते मर
अहोमोहस्यमाहात्म्यंपश्यताऽविजितात्मनाम् । पठन्तिमातृकांपापामन्यन्तेनसु

सुतनुरुवाच

इति तस्यवचःश्रुत्वा पिताऽभूदतिविस्मितः । पप्रच्छचबहून्प्रश्नान्सोप्यवादीत्
मयापि तव प्रोक्तोऽयं मातृकाप्रश्न उत्तमः । द्वितीयं शृणु तं प्रश्नं पञ्चपञ्चाद्भुतं
पञ्चभूतानि पञ्चैव कर्मज्ञानेन्द्रियाणि च । पञ्च पञ्चाऽपि विषया मनोबुद्ध्यहं
प्रकृतिः पुरुषश्चैव पञ्चविंशः सदाशिवः । पञ्चपञ्चभिरेतैस्तु निष्पन्नं गृहमुच्यते
देहमेतदिदं वेद तत्त्वतो यात्यसौ शिवम् । बहुरूपां स्त्रियं प्राहुर्बुद्धिं वेदान्तवा
सा हि नानार्थभजनान्नानारूपं प्रपद्यते । धर्मस्यैकस्य संयोगाद्बहुधाऽप्येकि
इति यो वेद तत्त्वार्थं नाऽसौ नरकमाप्नुयात् । मुनिभिर्यच्च न प्रोक्तंयन्न मन्येतै
वचनं तद्बुधाः प्राहुर्वन्धंचित्रकथं त्विति । यच्चकामान्वितंवाक्यंपञ्चमंवाप्
एको लोभो महान्ग्राहोलोभात्पापंप्रवर्त्तते । लोभात्क्रोधःप्रभवतिलोभात्कामः

लोभान्मोहश्च माया च मानः स्तम्भः परेप्सुता ।
अविद्याऽप्रज्ञता चैव सर्वं लोभात्प्रवर्त्तते ॥ १०० ॥

हरणं परवित्तानां परदाराभिमर्शनम् । साहसानां च सर्वेषामकार्याणां क्रिया
स लोभः सह मोहेन विजेतव्योजितात्मना । दम्भोद्रोहश्चनिन्दाचपैशुन्यंमत्सर

भवन्त्येतानि सर्वाणि लुब्धानामकृतात्मनाम् ।
सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्ति बहुश्रुताः ॥ १०३ ॥

छेत्तारः संशयानांच लोभग्रस्ताव्रजन्त्यधः । लोभक्रोधप्रसक्ताश्च शिष्टाचारबहि
अन्तःक्षुरावाङ्मधुराःकूपाश्छन्नास्तृणैरिव । कुर्वतेयेबहून्मार्गांस्तांस्तान्हेतुबला

सर्वमार्गं विलुम्पन्ति लोभाज्ज्ञातिषु निष्ठुराः ।
धर्मावतंसकाः क्षुद्रा मुष्णन्ति ध्वजिनो जगत् ॥ १०६ ॥

एतेऽतिपापिनोज्ञेया नित्यं लोभसमन्विताः । जनको युवनाश्वश्चवृषादर्भिःप्रसेनजित्
लोभक्षयाद्दिवंप्राप्तास्तथैवान्येजनाधिपाः । तस्मात्त्यजंतियेलोभंतेऽतिक्रामंतिसागरम्
संसाराख्यमतोऽन्ये ये ग्राहग्रस्ता न संशयः । अथ ब्राह्मणभेदांस्त्वमष्टौ विप्रावधारय
मात्रश्च ब्राह्मणश्चैव श्रोत्रियश्च ततःपरम् । अनूचानस्तथा भ्रूण ऋषिकल्प ऋषिर्मुनिः
एते ह्यष्टौ समुद्दिष्टा ब्राह्मणाः प्रथमं श्रुतौ । तेषां परः परः श्रेष्ठो विद्यावृत्तविशेषतः
ब्राह्मणानां कुले जातो जातिमात्रोयदाभवेत् । अनुपेतःक्रियाहीनोमात्र इत्यभिधीयते
एकोद्देश्यमतिक्रम्य वेदस्याऽऽचारवानृजुः । स ब्राह्मणइतिप्रोक्तोनिभृतःसत्यवाग्घृणी
एकां शाखां सकल्पांचषड्भिरंगैरधीत्यच । षट्कर्मनिरतो विप्रःश्रोत्रियोनामधर्मवित्
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः शुद्धात्मा पापवर्जितः । श्रेष्ठः श्रोत्रियवान्प्राज्ञः सोऽनूचानइतिस्मृतः
अनूचानगुणोपेतोयज्ञस्वाध्याययन्त्रितः । भ्रूण इत्युच्यते शिष्टैःशेषभोजीजितेन्द्रियः
वैदिकंलौकिकं चैव सर्वज्ञानमवाप्य यः । आश्रमस्थो वशीनित्यमृषिकल्प इतिस्मृतः
ऊर्ध्वरेता भवत्यग्र्यो नियताशी न संशयी । शापानुग्रहयोःशक्तः सत्यसंधो भवेदृषिः

निवृत्तः सर्वतत्त्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः ।
ध्यानस्थो निष्क्रियो दान्तस्तुल्यमृत्काञ्चनो मुनिः ॥ ११९ ॥

एवमन्वयविद्याभ्यां वृत्तेन च समुच्छ्रिताः । त्रिशुक्लानामविप्रेन्द्राःपूज्यन्ते सवनादिषु
इत्येवंविधविप्रत्वमुक्तं शृणु युगादयः । नवमी कार्तिके शुक्ला कृतादिः परिकीर्तिता
वैशाखस्य तृतीया या शुक्ला त्रेतादिरुच्यते । माघे पञ्चदशीनाम द्वापरादिःस्मृताबुधैः
त्रयोदशी नभस्येच कृष्णासाहिकलेःस्मृता । युगादयःस्मृताह्येतादत्तस्याक्षयकारकाः

एताश्चतस्रस्तिथयो युगाद्या दत्तं हुतं चाऽक्षयमाशु विद्यात् ।
युगे युगे वर्षशतेन दानं युगादिकाले दिवसेन तत्फलम् ॥ १२४ ॥
युगाद्याः कथिता ह्येता मन्वाद्याः शृणु साम्प्रतम् ।
अश्वयुक्छुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा ॥ १२५ ॥

तृतीया चैत्रमासस्य तथाभाद्रपदस्य च । फाल्गुनस्यत्वमावास्यापौषस्यैकादशीतथा
आषाढस्याऽपिदशमीमाघमासस्य सप्तमी । श्रावणस्याष्टमीकृष्णातथाषाढीचपूर्णिमा

कार्तिकी फाल्गुनीचैत्री ज्येष्ठेपञ्चदशीसिता। मन्वन्तरादयश्चैतादत्तस्याक्षयक
यस्यां तिथौ रथं पूर्वं प्राप देवो दिवाकरः। सा तिथिः कथिता विप्रैर्माघेयारथ
तस्यां दत्तं हुतं चेष्टं सर्वमेवाऽक्षयं मतम्। सर्वदारिद्र्यशमनं भास्करप्रीतये
नित्योद्वेजकमाहुर्यं बुधास्तंश्रृणुतत्त्वतः। यश्चयाचनिकोनित्यंनस स्वर्गस्य
उद्वेजयति भूतानि यथा चौरास्तथैव सः। नरकंयातिपापात्मानित्योद्वेगकार

इहोपपत्तिर्मम केन कर्मणा क्व च प्रयातव्यमितो मयेति।

विचार्य चैवं प्रतिकारकारी बुधैः स चोक्तो द्विज! दक्षदक्षः॥ १३३॥

मासैरष्टभिरह्ना च पूर्वेण वयसाऽऽयुषा। तत्कर्म पुरुषः कुर्याद्येनान्तेसुखमेधते
अर्चिर्धूमश्च मार्गौ द्वावाहुर्वेदान्तवादिनः। अर्चिषा याति मोक्षञ्च धूमेनाऽऽवर्त
यज्ञैरासाद्यते धूमो नैष्कर्म्येणाचिराप्यते। एतयोरपरो मार्गः पाखंड इति
यो देवान्मन्यतेनैवधर्मांश्चमनुसूचितान्। नैतौ सयातिपंथानौतत्त्वार्थोऽयं
इतितेकीर्तिताःप्रश्नाःशक्त्याब्राह्मणसत्तम। साधुवाऽसाधुवाब्रूहिख्यापयाऽऽत्म
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर
कौमारिकाखण्डे कलापग्रामवासिसुतनुब्राह्मणेन नारदप्रश्नोत्तरकथनंनाम
पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

षष्ठोऽध्यायः

नारदद्वारा पृथ्वीसङ्गमतीर्थे ब्राह्मणानांप्रस्थापनं तत्र स्थानप्रतिष्ठावर्णनं

श्री नारद उवाच

इतिश्रुत्वा फाल्गुनाऽहं रोमाञ्चपुलकीकृतः। स्वरूपं प्रकटीकृत्य ब्राह्मणानिद
अहोधन्यःपिताऽस्माकंयस्यसृष्टस्यपालकाः। युष्मद्विधाब्राह्मणेन्द्राःसत्यमाहुर्प

मत्तोऽप्यनंतात्परतः परस्मात्समस्तभूताधिपतेर्न किञ्चित्।
तेषां किमु स्यादितरेण येषां द्विजेश्वराणां मम मार्गवादिनाम् ॥३॥

तत्सर्वथाऽद्य धन्योऽस्मिसंप्राप्तंजन्मनःफलम्। यद्भवन्तोमयादृष्टाःपापोपद्रववर्जिताः
ततस्ते सहसोत्थाय शातातपपुरोगमाः। अर्घ्यपाद्यादिसत्कारैःपूजयामासुर्मांद्विजाः
प्रोक्तवन्तश्चमांपार्थवचःसाधुजनोचितम्। धन्या वयं हि देवर्षे त्वमस्मान्यदिहागतः
कुतो वाऽऽगमनंतुभ्यं गन्तव्यंवा क्व साम्प्रतम्। अत्राप्यागमनेकार्यमुच्यतांमुनिसत्तम
श्रुत्वाप्रीतिकरंवाक्यंद्विजानामितिपाण्डव। प्रत्यवोचंमुनीन्द्रांस्ताञ्छ्रूयतांद्विजसत्तमाः
अहंहिब्रह्मणोवाक्याद्विप्राणांस्थानकं शुभम्। दातुकामो महातीर्थे महीसागरसंगमे
परीक्षन्ब्राह्मणानत्रप्राप्तो यूयंपरीक्षिताः। अहंवःस्थापयिष्यामिचानुजानीततद्द्विजाः
एवमुक्तो विलोक्यैव द्विजाञ्छातातपोऽब्रवीत्। देवानामपिदुष्प्राप्यंसत्यंनारदभारत
किं पुनश्चापि तत्रैव महीसागरसङ्गमः। यत्र स्नातो महातीर्थफलं सर्वमुपाश्नुते ॥१२
पुनरेको महान्दोषो विभीमो नितरां यतः। तत्रचौराःसुबहवोनिर्घृणाःप्रियसाहसाः
स्पर्शेषु षोडशं चैकविंशं गृह्णन्ति नोधनम्। धनेन तेन हीनानां कीदृशं जन्म नोभवेत्
वरं बुभुक्षया वासो मा चौर करगा(वशगाः)वयम्।

अर्जुन उवाच

अद्भुतं वर्ण्यते विप्र! के हि चौराः प्रकीर्तिताः ॥ १५ ॥
किं धनं च हरन्त्येते येभ्यो बिभ्यति ब्राह्मणाः।

नारद उवाच

कामक्रोधादयश्चौरास्तप एव धनं तथा ॥ १६ ॥
तस्यापहारभीतास्ते मामूचुरिति ब्राह्मणाः। तानहंप्राब्रवंपश्चाद्विजानीत द्विजोत्तमाः
जाग्रतां तु मनुष्याणां चौराःकुर्वंतिकिं खलाः। भयभीतश्चालसश्चतथाचाऽशुचिरेवयः
तेन किं नाम संसाध्यं भूमिस्तं ग्रसते नरम्।

शातातप उवाच

वयं चौरभयाद्भीतास्ते हरंति धनं महत्। कर्तुं तदा कथं शक्यमङ्ग! जागरणं तथा

खलाश्चौरागताःकापिततोनत्वाऽऽगतावयम् । तस्मात्सर्वंसंत्यजामोभयभीता
प्रतिग्रहश्च वै घोरः षष्ठांशफलदस्तथा । एवं ब्रुवति तस्मिंश्च हारीतोनाम चा
मूढबुद्ध्या हि कोनाममहीसागरसङ्गमम् । त्यजेच्च यत्र मोक्षश्च स्वर्गश्चकरगो
कलापादिषु ग्रामेषु को वसेत विचक्षणः । यदि वासः स्तम्भतीर्थेक्षणार्धम
भयं च चौरजं सर्वं किंकरिष्यति तत्र नः । कुमारनाथं मनसि पालकं कुर्वतां
साहसं च विना भूतिर्नकथश्चनप्राप्यते । तस्मान्नारदतत्राहमायास्ये तव
षड्विंशतिसहस्राणि ब्राह्मणामेपरिग्रहे । षट्कर्मनिरताः शुद्धा लोभदम्भविव
तैः सार्धमागमिष्यामिममेदंमतमुत्तमम् । इत्युक्ते वचने तांश्च कृत्वाऽहं दण्ड
निवृत्तः सहसा पार्थ खेचरोऽतिमुदान्वितः । शतयोजनमात्रं तु हिममार्गमती
केदारं समुपायातो युक्तस्तैर्द्विजसत्तमैः । आकाशेन सुशक्यश्च विलेनाऽथ स
अतिक्रान्तुं नान्यथा च तथा स्कन्दप्रसादतः ॥३१ ॥

अर्जुन उवाच

क्व कलापं च तद्ग्रामं कथं शक्यं विलेनच । कथंस्कंदप्रसादः स्यादेतन्मे ब्रूहि

नारद उवाच

केदाराद्धिमसंयुक्तं योजनानां शतं स्मृतम् । तदन्ते योजनशतं विस्तृतं तत्क
तदन्ते योजनशतं वालुकार्णवमुच्यते । शतयोजनमात्रः स भूमिस्वर्गस्ततः स
विलेन च यथा शक्यं गन्तुंतत्र शृणुष्व तत् । निरन्नं वै निरुदकं देवमाराध्ये
दक्षिणायां दिशि ततोनिष्पापंमन्यतेयदा । तदागुहोऽस्यदिशतिस्वप्नेगच्छेति
ततो गुहात्पश्चिमतो विलमस्ति बृहत्तरम् । तत्र प्रविश्य गन्तव्यं क्रमाणां शत
तत्र मारकतं लिंगमस्ति सूर्यसमप्रभम् । तदग्रे मृत्तिकाचाऽस्ति स्वर्णवर्णा सु
नमस्कृत्यचतल्लिङ्गंगृहीत्वामृत्तिकांचताम् । आगन्तव्यंस्तंभतीर्थेसमाराध्यकुमा
कोलं वा कूपतोग्राह्यंभूतायांनिशितज्जलम् । तेनोदकेन मृत्तिकयाकृत्वानेत्रद्वया
उद्वर्तनं च देहस्य कदाचित्षष्टिमे पदे । नेत्राञ्जनप्रभावाच्च बिलं पश्यति शोभ
तन्मध्येन ततो याति गात्रोद्वर्त्तप्रभावतः । कारीषैर्नाम चात्युग्रैर्भक्ष्यते नैव

विलमध्ये च संपश्यन्सिद्धान्भास्करसन्निभान् ।
यात्येवं यात्यसौ पार्थ कलापं ग्राममुत्तमम् ॥ ४३ ॥

तत्रवर्षसहस्राणित्यक्त्वार्यायुःप्रकीर्तितम् । फलानांभोजनंचस्यात्पुनःपुण्यंचनार्ज्जयेत्
इत्येकथितंतुभ्यमतश्चाभूच्छृणुष्वतत् । तपःसामर्थ्यतःसूक्ष्मान्दण्डस्याग्रेनिधायतान् ॥
द्विजानहं समायातो महीसागरसङ्गमम् ॥ ४६ ॥

तदोत्तार्य मया मुक्तास्तीरे पुण्यजलाशये । ततोमया कृतं स्नानं सह तैर्द्विजसत्तमैः
निःशेषदोषदावाग्नौ महीसागरसङ्गमे । पितॄणां देवतानां च कृत्वा तर्पणसत्क्रियाः
जपमानाः परं जप्यं निविष्टाः संगमेवयम् । भास्करं समवेक्षन्तश्चिन्तयन्तो हरिं हृदि
तस्मिश्चैवान्तरेपार्थ देवाःशक्रपुरोगमाः । आदित्याद्या ग्रहाः सर्वेलोकपालाश्चसंगताः
देवानां योजनो ह्यष्टौ गंधर्वाप्सरसां गणाः । महोत्सवे ततस्तस्मिन्गीतवादित्रउत्तमे
पादप्रक्षालनं कर्तुंविप्राणामुद्यतस्त्वहम् । तस्मिन्कालेचाश्रृणवमहमातिथ्यवाक्यताम्
सामध्वनिसमायुक्तांतृतीयस्वरनादिताम् । अतीवमनसो रम्यां शिवभक्तिमिवोत्तमाम्
विप्रैरुत्थायसंपृष्टः कस्त्वंविप्र क्व चाऽऽगतः । किंवा प्रार्थयसेब्रूहियत्ते मनसिरोचते ॥

विप्र उवाच

मुनिः कपिलनामाऽहं नारदाय निवेद्यताम् । आगतःप्रार्थनायैव तच्छ्रुत्वाहमथाऽब्रवम्
धन्योऽहं यदिहाऽऽयातः कपिलत्वंमहामुने ! ।
नास्त्यदेयंतवाऽस्माभिः पात्रं नास्ति तवाऽधिकम् ॥ ५६ ॥

कपिल उवाच

ब्रह्मपुत्र त्वया देयं यदि मे त्वं श्रृणुष्व तत् । अष्टौ विप्रसहस्राणि मम देहीति नारद
भूमिदानं करिष्यामिकलापग्रामवासिनाम् । ब्राह्मणानामहं चैषां तदिदंक्रियतांविभो
ततो मया प्रतिज्ञातमेवमस्तुमहामुने । त्वयाऽपि क्रियतांस्थानंकापिलं कपिलोत्तमम्
श्राद्धेवा प्राप्तकालेवा ह्यतिथिर्विमुखीभवेत् । यस्याश्रममुपायातस्तस्यसर्वंहिनिष्फलं
स गच्छेद्रौरवाँल्लोकान्योऽतिथिंनाभिपूजयेत् । अतिथिःपूजितो येन सदेवैरपिपूज्यते
दानैर्यज्ञैस्ततस्तस्मिन्भोजितःकपिलोमुनिः । ततोमहामुनिःश्रीमान्हारीतोह्वयितस्तदा

पादप्रक्षालनार्थाय सिद्धदेवसमागमे। हारीतश्च पुरस्कृत्य वामपादं तदा
ततोहासोमहाञ्जज्ञेसिद्धाप्सरःसुपर्वणाम्। विचिन्त्यबहुधापृथ्वींसाधुसाधुक
ततो ममाऽपि मनसि शोकवेगो महानभूत्। सत्यांचैवतथा मेने गाथांपूर्वगुरु
सर्वेष्वपि च कार्येषु हेतिशब्दो विगर्हितः। कुर्वतामतिकार्याणि शिलापातो
ततोऽहमब्रवं विप्रान्यूयं मूर्खा भविष्यथ। धनधान्याल्पसंयुक्तादारिद्र्यकलि
एवमुक्ते प्रहस्यैव हारीतः प्राब्रवीदिदम्। तवैवेयं मुने हानिर्यदस्माञ्छपते

कः शापो दीयते तुभ्यं शापोऽयमयमेव ते।

ततो विमृश्य भूयोऽहमब्रवं किमहं द्विज ! ॥ ६६ ॥

तथाविधस्य भवतो वामपादप्रदानतः ॥ ७० ॥

हारीत उवाच

शृणु तत्कारणं धीमञ्छून्यता मे यतोऽभवत् ॥ ७१ ॥

इति चिंतयतश्चित्ते हा दुःखोऽयं प्रतिग्रहः। प्रतिग्रहेणविप्राणांब्राह्मंतेजोहि
महादानं हि गृह्णानो ब्राह्मणःस्वंशुभंहियत्। ददातिदातुर्दाताचअशुभंयच्छति
दाता प्रतिग्रहिता च वचनं हि परस्परम्। मन्यतेऽधःकरो यस्य सोऽल्पबुद्धि
इतिचिंतयतो मह्यं शून्यताऽभूद्धि नारद। निद्रार्तश्चभयार्तश्च कामार्तः शोका
हृतस्वश्चाऽन्यचित्तश्च शून्या ह्येते भवन्तिच। तदेषु मतिमान्कोपं न कुर्वीत
कृतः कोपस्ततस्तुभ्यमेवं हानिरियं मुने। ततस्तापान्वितश्चाऽहं तान्विप्रानब्रवं
धिङ्मामस्तुचदुर्बुद्धिमविमृश्यार्थकारिणम्। कुर्वतामविमृश्यैवतत्किमस्ति
सहसा न क्रियां कुर्यात्पदमेतन्महापदाम्। विमृश्यकारिणं धीरं वृणतेसर्वं
सत्यमाह महाबुद्धिश्चिरकारीपुराहि सः। पुराहिब्राह्मणःकश्चित्प्रख्यातोऽङ्गिर
चिरकारी महाप्राज्ञो गौतमस्याऽभवत्सुतः। चिरेण सर्वकार्याणि यो विमृश्य

चिरकार्याभिसम्पत्तेश्चिरकारी तथोच्यते।

अलसग्रहणं प्राप्तो दुर्मेधावी तथोच्यते ॥ ८२ ॥

बुद्धिलाघवयुक्तेन जनेनाऽदीर्घदर्शिना। व्यभिचारेण कस्मिन्सव्यतिक्रम्यापरा

पित्रोक्तः कुपितेनाऽथजहीमांजननीमिति । स तथेति चिरेणोक्तःस्वभावाच्चिरकारकः विमृश्य चिरकारित्वाच्चिन्तयामास वै चिरम् । पितुराज्ञांकथंकुर्यांनहन्यांमातरंकथम् कथं धर्मच्छलेनाऽस्मिन्निमज्जेयमसाधुवत् । पितुराज्ञा परोधर्मो ह्यधर्मोमातृरक्षणम् अस्वंतत्रंचपुत्रत्वंकिं तु मां नाऽत्रपीडयेत् । स्त्रियंहत्वामातरंचकोहिजातुसुखीभवेत् पितरं चाऽप्यवज्ञाय कः प्रतिष्ठामवाप्नुयात् । अनवज्ञा पितुर्युक्ता युक्तंमातुश्चरक्षणम् क्षमायोग्यावुभावेतौनाऽतिवर्तेत वैकथम् । पिताह्यात्मानमाधत्तेजायायांजज्ञिवानिति शीलचारित्रगोत्रस्य धारणार्थंकुलस्यच । सोऽहमात्मास्वयंपित्रापुत्रत्वेपरिकल्पितः जातकर्मणि यत्प्राह पिता यच्चोपकर्मणि । पर्याप्तः स दृढीकारः पितुर्गौरवलिप्सया

शरीरादीनि देयानि पिता त्वेकः प्रयच्छति ।
तस्मात्पितुर्वचः कार्यं न विचार्यं कथञ्चन ॥ ९२ ॥

पातकान्यपि चूर्यन्ते पितुर्वचनकारिणः । पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता परमकंतपः पितरि प्रीतिमापन्ने सर्वाः प्रीणन्ति देवताः । आशिषस्ताभजंत्येनंपुरुषंप्राह याःपिता निष्कृतिः सर्वपापानां पिता यदभिनन्दति । मुच्यतेबन्धनात्पुष्पंफलंवृन्तात्प्रमुच्यते क्लिश्यन्नपि सुतःस्नेहं पिता स्नेहं न मुंचति । एतद्विचिन्त्यतंतावत्पुत्रस्यपितृगौरवम् पितानाल्पतरंस्थानंचिंतयिष्यामिमातरम् । योह्ययंमयिसंघातोमर्त्यत्वेपाञ्चभौतिकः अस्यमेजननी हेतुः पावकस्य यथाऽरणिः । मातादेहारणिःपुंसःसर्वस्याऽर्थस्यनिर्वृति मातृलाभे सनाथत्वमनाथत्वं विपर्यये । न स शोचति नाप्येनं स्थावर्यमपि कर्षति श्रिया हीनोऽपि यो गेहे अम्बेति प्रतिपद्यते । पुत्रपौत्रसमापन्नो जननीं यः समाश्रितः

अपि वर्षशतस्याऽन्ते स द्विहायनवच्चरेत् ।
समर्थं वाऽसमर्थं वा कृशं वाऽप्यकृशं तथा ॥ १०१ ॥

रक्षयेच्च सुतं मातानान्यः पोष्यविधानतः । तदासवृद्धो भवति तदा भवति दुःखितः तदाशून्यंजगत्तस्ययदामात्रावियुज्यते । नास्तिमातृसमाच्छायानास्तिमातृसमागतिः नास्तिमातृसमंत्राणंनास्ति मातृसमाप्रपा । कुक्षिसंधारणाद्धात्रीजननाज्जननी तथा अंगानांवर्धनादम्बावीरसूत्वेचवीरसूः । शिशोःशुश्रूषणाच्छूवश्रूर्मातास्यान्माननात्तथा

देवतानां समावापमेकत्वं पितरं विदुः । मर्त्यानां देवतानाञ्च पूगोनात्येति
पतिता गुरवस्त्याज्या माताच न कथञ्चन । गर्भधारणपोषाभ्यां तेन माता
एवंसकौशकीतीरेबलिंराजानमीक्षतीम् । स्त्रीवृत्तिचिरकालत्वाद्धन्तुं दिष्टः
विमृश्य चिरकालंहि चिन्तान्तंनाभ्यपद्यत । एतस्मिन्नन्तरेशक्रोब्राह्मणं रूपमा

गायन्गाथामुपायातः पितुस्तस्याऽऽश्रमान्तिके ।
अनृता हि स्त्रियः सर्वाः सूत्रकारो यदब्रवीत् ॥११०॥

अतस्ताभ्यः फलं ग्राह्यं नस्याद्दोषेक्षणःसुधीः । इतिश्रुत्वातमानर्चमेधातिथि
दुःखितश्चिंतयन्प्राप्तो भृशमश्रूणि वर्तयन् । अहोऽहमीर्ष्ययाक्षिप्तो मग्नोऽहं
हत्वा नारींचसाध्वींच को नु मां तारयिष्यति । त्वरेणमयाज्ञप्तश्चिरकारी
यद्ययं चिरकारी स्यात्स मां त्रायेत पातकात् । चिरकारिक भद्रंतेभद्रंतेचिर
यद्यचिरकारी त्वं ततोऽसि चिरकारिकः । त्राहि मां मातरंचैव तपोयच्चार्जि
आत्मानं पातके विष्टं शुभाह्व चिरकारिक । एवंसदुःखितःप्राप्तोगौतमोऽचिर
चिरकारिकं ददर्शाऽथ पुत्रं मातुरुपान्तिके । चिरकारी तु पितरं दृष्ट्वा परम

शस्त्रं त्यक्त्वा स्थितो मूर्ध्ना प्रसादायोपचक्रमे ।
मेधातिथिः सुतं दृष्ट्वा शिरसा पतितं भुवि ॥ ११८ ॥

पत्नीं चैव तु जीवन्तींपरामभ्यगमन्मुदम् । हन्यादिति न सा वेदशस्त्रपाणौस्थि
बुद्धिरासीत्सुतं दृष्ट्वा पितुश्चरणयोर्नतम् । शस्त्रग्रहणचापल्यं सम्वृणोति भया
ततःपित्राचिरंस्मृत्वाचिरंचाऽऽघ्रायमूर्ध्दनि । चिरंदोर्भ्यांपरिष्वज्यचिरञ्जीवेत्यु
चिरं मुदान्वितः पुत्रं मेधातिथिरथाऽब्रवीत् । चिरकारिकभद्रन्तेचिरकारीभ
चिराययत्कृतंसौम्यचिरमस्मिन्नदुःखितः । गाथाश्चाप्यब्रवीद्विद्वान्गौतमोमुनि
चिरेण मन्त्रं सन्धीयाच्चिरेण च कृतं त्यजेत् । चिरेण विहितं मित्रं चिरंधार

रोगे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि ।
अप्रिये चैव कर्तव्ये चिरकारी प्रशस्यते ॥ १२५ ॥

बन्धूनां सुहृदां चैव भृत्यानां स्त्रीजनस्य च । अव्यक्तेष्वपराधेषु चिरकारी प्र

चिरं धर्मान्निषेवेत कुर्याच्चाऽन्वेषणंचिरम् । चिरमन्वास्य विदुषश्चिरमिष्टानुपास्य च
चिरं विनीय चात्मानं चिरं यात्यनवज्ञताम् । ब्रुवतश्चपरस्यापिवाक्यंधर्मोपसंहितम्
चिरं पृच्छेच्च शृणुयाच्चिरं न परिभूयते । धर्मे शत्रौ शस्त्रहस्ते पात्रे च निकटस्थिते
भये च साधुपूजायां चिरकारी न शस्यते । एवमुक्त्वापुत्रभार्यासहितःप्राप्यचाश्रमम्
ततश्चिरमुपास्याऽथ दिवं यातश्चिरं मुनिः । वयं त्वेवंब्रुवन्तोऽपिमोहेनैवं प्रतारिता

कलौ च भवतां विप्रा मच्छापो निपतिष्यति ।
केचित्सदा भविष्यन्ति विप्राः सर्वगुणैर्युताः ॥ १३२ ॥

पादप्रक्षालनं कृत्वा ततोऽहं धर्मवर्मणः । समीपेसाक्षिणोदेवान्कृत्वा संकल्पमाचरम्
काञ्चनैर्गोप्रदानैश्च गृहदानैर्धनादिभिः । भार्याभूषणवस्त्रैश्च कृतार्था ब्राह्मणाः कृताः
ततःकरं समुद्यम्य प्राहेन्द्रो देवसङ्गमे । हराङ्गरुद्धवामार्द्धा यावद्देवी गिरेः सुता॥१३५
गणाधीशो वयं यावद्यावत्त्रिभुवनं त्विदम् । तावन्नन्यादिदंस्थानंनारदस्थापितंसुराः
ब्रह्मशापो रुद्रशापो विष्णुशापस्तथैव च । द्विजशापस्तथा भूयादिदंस्थानं विलुम्पतः

ततस्तथेति तैः सर्वैर्हृष्टैस्तत्र तथोदितम् ।
एवं मया स्थापिते स्थानकेऽस्मिन्संस्थापयामास च कापिलं मुनिः ।
स्थाने उभे देवकृते प्रसन्नास्ततो ययुर्देवता देवसद्म ॥ १३८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे नारदीयस्थानप्रतिष्ठावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

नारदार्जुनसम्वादे इन्द्रद्युम्नकथाप्रसङ्गेन महीप्रादुर्भावकथाप्रसङ्गवर्णनम्

अर्जुन उवाच

महीसागरमाहात्म्यमद्भुतं कीर्तितं त्वया । विस्मयः परमो मह्यं प्रहर्षश्चोपजायते ॥१

तदहं विस्तराच्छ्रोतुमिदमिच्छामि नारद !। कस्य यज्ञे महीग्लानावहितापार्थिव

नारद उवाच

महदाख्यानमाख्यास्येयथाजातामहीनदी। शृण्वन्नेतांकथांपुण्यांपुण्यमाप्स्यसि

पुराऽभूद्भूपतिर्भूमाविन्द्रद्युम्न इति श्रुतः । वदान्यः सर्वधर्मज्ञो मान्यो मानवि

उचितज्ञो विवेकस्य निवासोगुणसागरः । न तदस्ति धरापृष्ठे नगरं ग्रामप

तदीयपूर्तधर्मस्य चिह्नेन न यदङ्कितम् । कन्यादानानि बहुधा ब्राह्मेणविधिना

भूपालोऽसौददौ दानमासहस्राद्धनार्थिनाम् । दशमीदिवसे रात्रौ गजपृष्ठेन दु

ताड्यते तत्पुरे प्रातः कार्यमेकादशीव्रतम् । यज्वनातेनभूपेनविच्छिन्नंसोमपा

स्वर्णैरास्तृता दर्भैर्द्व्यंगुलोत्सेधिता मही । गङ्गायांसिकताधारावर्षतोदिवि

शक्या गणयितुं प्राज्ञैस्तदीयं सुकृतं न तु । ईदृशैः सुकृतैरेष तेनैव वपुषा नृपः

धाम प्रजापतेः प्राप्तो विमानेन कुरूद्वह !। बुभुजे स तदा भोगान्दुर्लभानमरै

अथ कल्पशतस्याऽन्ते व्यतीते तं महीपतिम् । प्राह प्रजापतिःसेवावसराया

ब्रह्मोवाच

इन्द्रद्युम्न! द्रुतं गच्छ धरापृष्ठं नृपोत्तम !। न स्थातव्यं मदीयेऽद्य लोकेक्षणमपि

इन्द्रद्युम्न उवाच

कस्माद्ब्रह्मन्नितो भूमौ मां प्रेषयसिसम्प्रति । सति पुण्ये मदीयेतु बहुले वद

ब्रह्मोवाच

नपुण्यंकेवलंराजन्युक्तंस्वर्गस्यसाधकम्।विनानिष्कल्मषांकीर्तिंत्रिलोकीतलवि

तव कीर्तिसमुच्छेदः साम्प्रतं वसुधातले । सञ्जातश्चिरकालेन गत्वा तां कुरु नू

यदि वाञ्छा महीपाल ! मम धामनि संस्थितौ ॥ १७ ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच

मदीयं सुकृतं ब्रह्मन्कथं भूमौ भवेदिति । किं कर्तव्यं मयानैतन्मम चेतसि ति

ब्रह्मोवाच

बलवानेष भूपाल ! कालः कलयति स्वयम् ॥ १६ ॥

ब्रह्माण्डान्यपि मां चैव गणनाकाभवद्दृशाम् । तदेतदेव मन्येऽहं तव भूपाल साम्प्रतम्
यत्कीर्तिमात्मनोव्यक्तिंनीत्वाऽभ्येहिपुनर्दिवम् ।शुश्रुवानितिवाचंसब्रह्मणःपृथिवीपतिः
पश्यतिस्मतथाऽऽत्मानंमहीतलमुपागतम्।काम्पिल्यनगरेभूयःपप्रच्छाऽऽत्मानमात्मना
नगरं स तदा देशमप्राक्षीदिति विस्मितः ।

जना ऊचुः

न जानीमो वयं भूपमिन्द्रद्युम्नं न तत्पुरम् ॥ २३ ॥
यत्त्वं पृच्छसि भो भद्र कञ्चित्पृच्छ चिरायुषम् ।

इन्द्रद्युम्न उवाच

कः सम्प्रति धरापृष्ठे चिरायुः प्रथितो जनाः ! ॥ २४ ॥
पृथिवीजयराज्येऽस्मिन्यत्र प्रब्रूत मा चिरम् ।

जना ऊचुः

श्रूयते नैमिषारण्ये सप्तकल्पस्मरो मुनिः ॥ २५ ॥
मार्कण्डेय इति ख्यातस्तं गत्वापृच्छ संशयम् । तथोपदिष्टस्तैर्गत्वातत्रतंमुनिपुङ्गवम्
निशम्य प्रणिपत्याऽऽह नृपः स्वहृदयस्थितम् ।

इन्द्रद्युम्न उवाच

चिरायुर्भगवान्भूमौ विश्रुतः साम्प्रतं ततः ॥ २७ ॥
पृच्छाम्यहं भवान्वेत्ति इन्द्रद्युम्नं नृपं न वा ॥ २८ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नूनं सप्तकल्पान्तरेनाभूत्कोपीन्द्रद्युम्नसञ्ज्ञितः । भूपालकिमहंवच्मितवाऽन्यत्पृच्छसंशयम्
स निराशस्तदाकर्ण्य वचोभूपोऽग्निसाधने । समुद्योगंतदा चक्रे तं दृष्ट्वाऽऽहतदामुनिः

मार्कण्डेय उवाच

मा साहसमिदं कार्षीर्भद्र वाचं शृणुष्व मे । एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥
करोमि प्रतीकारं तव दुःखोपशान्तये । शृणु भद्र ममाऽस्तीह बकोमित्रं चिरन्तनः
नाडीजङ्घइतिख्यातःस त्वा ज्ञास्यत्यसंशयम् । तस्मादेहि द्रुतं यावदावांतत्र व्रजावहे

परोपकारैकफलं जीवितं हि महात्मनाम् । यदिज्ञास्यत्यसन्दिग्धमिन्द्रद्युम्नं
तौ प्रस्थिताविति तदा विप्रेन्द्रनृपपुङ्गवौ । हिमाचलं प्रति प्रीतौ नाडीजङ्घ
वकोऽथ मित्रं स्वं वीक्ष्य चिरकालादुपागतम् ।
मार्कण्डेयं ययौ प्रीत्युत्कंठितः सम्मुखं द्विजैः ॥ ३६ ॥
कृतसंविदभूत्पूर्वं कुशलस्वागतादिना । पप्रच्छाऽनन्तरं कार्यं वदागमनकार
मार्कण्डेयोऽथतं प्राह बकं प्रस्तुतमीप्सितम् । इन्द्रद्युम्नं भवान्वेत्ति भूपालं
एतस्य मम मित्रस्य तेन ज्ञातेनकारणम् । नो वाऽयं त्यजतिप्राणान्पुरावह्
एतस्य प्राणरक्षार्थं ब्रूहि जानासि चेन्नृपम् ॥ ४० ॥

नाडीजङ्घ उवाच

चतुर्दशस्मराम्यस्मिकल्पान्विप्रेन्द्रसाम्प्रतम् । आस्तांतद्दर्शनंवार्तामपिवानस
इन्द्रद्युम्नो महीपालः कोऽपि नासीन्महीतले । एतावन्मात्रमेवाऽहं जानामि

नारद उवाच

ततः स विस्मयाविष्टस्तस्याऽऽयुरिति शुश्रुवान् ।
पप्रच्छ राजा को हेतुर्दानस्य तपसोऽथ वा । यदायुरीदृशं दीर्घसंजातमिति

नाडीजङ्घ उवाच

घृतकम्बलमाहात्म्यान्मम देवस्य शूलिनः । दीर्घमायुरिदं विप्र शापाद्बकवपु
पुरा जन्मन्यहंवालोब्राह्मणस्याऽऽभवं भुवि । पाराशर्यसगोत्रस्य विश्वरूपस्य
वालको वक इत्येवं प्रतीतोऽतिप्रियः पितुः । चपलोऽतीव बालत्वे निसर्गा
अथ मारकतं लिङ्गं देवतावसरात्पितुः । चापल्याद्बालभावाच्चाऽपहृत्य नि
घृतस्यकुम्भे सङ्क्रान्तौमकरस्योत्तरायणे । अथ प्रातर्व्यतीतायांनिशियाव
निर्माल्यापनयंचक्रेतावच्छून्यं शिवालयम् । निशम्यकांदिशीकोमांप्रपच्छ
वत्स क्व नु त्वयालिंगंनूनंविनिहितंवद । दास्यामिवाञ्छितंयत्त्वेभक्ष्यमन्य
ततो मया वालभावाद्भक्ष्यलुब्धेन तत्पितुः । घृतकुम्भान्तराकृष्य भद्रलिङ्गं
अथ कालेतुसम्प्राप्ते प्रमीतोऽहं नृपालये । जातोजातिस्मरस्तावदानर्ताधिपते

घृतकम्बलमाहात्म्यान्मकरस्थे दिवाकरे।
अपिबाल्यादवज्ञानात्संयोगाद्घृतलिङ्गयोः ॥ ५३ ॥

ततः संस्थापितंलिंगंप्राग्जन्मस्मरतामया। ततः प्रभृतिलिङ्गानिघृतेनाच्छादयाम्यहम्
पितृपैतामहं प्राप्य राज्यं शक्त्यनुरूपतः। ततः प्रसन्नो भगवान्पार्वतीपतिराह माम्
पूर्वजन्मनि तुष्टोऽहं घृतकम्बलपूजया। प्रयच्छाम्यस्मि ते राज्यमधुनाऽभिमतं वृणु
ततो मया वृतः प्रादाद्गाणपत्यं मदीप्सितम्। कैलासेमांशिवोनित्यंसन्तुष्टःप्राहचेतिच
तेनैव हि शरीरेण प्रणतंपुरतःस्थितम्। अद्यप्रभृति सङ्क्रान्तौ मकरस्याऽपरोऽपियः
घृतेनपूजांकर्त्तासौभावीममगणःस्फुटम्। इत्युक्त्वामांशिवोभद्रगणकोटीश्वरंव्यधात्
प्रतीपपालकंनामसंस्थितंशिवशासनम्। ततःकामादिभिःषड्भिःपदैश्चंक्रमणात्मिकाम्
निसर्गचपलां प्राप्य भ्रमरीमिव तां श्रियम्। नैवालमभवं तस्या धारणे दैवयोगतः
विचचार तदा मत्तःकिलाऽहंवारणोयथा। कृत्याकृत्यविचारेणविमुक्तोऽतीव गर्वितः
विद्यामभिजनं लक्ष्मीं प्राप्य नीचनरो यथा। आपदां पात्रतामेतिसिन्धूनामिवसागरः
अथ काले व्यतिक्रान्ते कियन्मात्रेयदृच्छया। विचरन्नगमं शैलं हिमानीरुद्धकन्दरम्
तपस्यति मुनिस्तत्र गालवो भार्यया सह। सदैव तीव्रतपसा कृशोधमनिसंन्ततः॥६५
ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं नैवैहिकफलप्रियः। कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्याऽनन्तसुखाय च

तस्य भार्याऽतिरूपेण विजिग्ये विश्ववर्णिनी।
तन्वी श्यामा मृगाक्षी सा पीनोन्नतपयोधरा ॥ ६७ ॥

हंसगद्गदसम्भाषा मत्तमातङ्गगामिनी। विस्तीर्णजघना मध्ये क्षामा दीर्घशिरोरुहा
निम्ननाभिर्विधात्रैषानिर्मितासन्दिदृक्षुणा। विकीर्णमिवसौन्दर्यमेकपात्रमिवस्थितम्

ततोऽविनीतस्ताम्वीक्ष्य भद्र! गालवंवल्लभाम्।

अहमासं शरव्रातैस्ताडितः पुष्पधन्विना। विवेकिनोऽपि मुनयस्तावदेव विवेकिनः
यावन्न हरिणाक्षीणामपाङ्गविवरेक्षिताः। मया व्यवसितंचित्तेतदानींतांजिहीर्षुणा॥
इति चेति हरिष्यामि तपसा रक्षितां मुनेः। अस्याःकृते यदिशपेन्मुनिस्तत्रपराभवः
ममभावीभवेदेषा भार्यामृत्युरुताऽपिमे। तस्माच्छिष्योभवाम्यस्यशुश्रूषानिरतो मुनेः

प्राप्यांतरं हरिष्यामिनास्त्ययोग्येयमङ्गना । इतिव्यवस्यविद्यार्थिमूर्तिमास्थाय
नमस्कृत्यवचोऽवोचमितिभाव्यर्थनोदितः । तथामतिस्तथामित्रंव्यवसायस्तथा
भवेद्वश्यं तद्भावि यथापुम्भिः पुरा कृतम् । विवेकवैराग्ययुतो भगवंस्त्वामु
शिष्योऽहंभवतापाठ्यं कर्णधारं महामुनिम् । अपारपारदं विष्णुंविप्रमूर्तिमुप
नमस्ये चेतनं ब्रह्म प्रत्यक्षं गालवाख्यया । अविद्याकृष्णसर्पेण दष्टं तद्विषं
उपदेशमहामन्त्रैर्माजाङ्गुलिक जीवय । महामोहमहावृक्षो ह्यघापसमुत्थितः
त्वद्वाक्यतीक्ष्णधारेण कुठारेण क्षयं व्रजेत् । अपवर्गपथव्यापी मूढसंसर्गसेव
छिद्यतां सूत्रधारेण विद्यापरशुनाऽधुना । भजामि तव शिष्योऽहं चरिवस्या
समिद्दर्भान्मूलफलं दारूणि जलमेव च । आहरिष्येऽनुगृह्णीष्व विनीतं मामु
इत्थं पुरा वकाभिख्यं वकवृत्तिमुपाश्रितम् । तदाऽऽर्जवे कृतमतिरनुजग्राह मा
ततोऽतीव विनीतोऽहं भूत्वा तं ब्राह्मणीयुतम् । विश्वासनायसुदृढंतोषयामि
स च जानन्मुनिः पत्नींपात्रभूतामविश्वसन् । स्त्रीचरित्रविदङ्केतांविधायस्व

अथाऽन्यस्मिन्दिने साऽभूद्ब्राह्मण्यथरजस्वला ।
तद्दूरशायिनीरात्रौविश्वासान्मेतपस्विनी ॥ ८६ ॥

इदमन्तरमित्यंतर्विचिन्त्याऽहं प्रहर्षितः । मलिम्लुचाकृतिर्भूत्वा निशिथे ताम
विललाप तदा बालाह्रियमाणामयोच्चकैः । मैवंमैवमितिज्ञात्वामांस्वरेणाऽ
वकवृत्तिरयं दुष्टो धर्मकञ्चुकमाश्रितः । हरते मांदुराचारस्तस्मात्त्वं त्राहि
तव शिष्यःपुराभूत्वा कोऽप्येषोऽद्यमलिम्लुचः । मां जिहीर्षति दद्रक्ष शरण

तद्वाक्यसमकालं स प्रबुद्धो गालवो मुनिः ।
तिष्ठ तिष्ठेति मामुक्त्वा गतिस्तम्भं व्यधान्मम ॥ ९१ ॥

ततश्चित्राकृतिरहंस्तम्भितोमुनिनाऽभवम् । व्रीडितंप्रविशामीवस्वाङ्गानि
ततः प्रकुपितः प्राह मामभ्येत्याऽथ गालवः । तद्वज्रदुःसहं वाक्यं येनाऽहमभ

गालव उवाच

वकवृत्तिमुपाश्रित्य वञ्चितोऽहंयतस्त्वया । तस्मात्...

इति शप्तोऽहमभवं मुनिनाऽधर्ममाश्रितः । परदारोपसेवार्थमनर्थमिममागतः ॥९५॥
न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते । यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ ९६॥
ततः सती सा मत्स्पर्शदूषिताङ्गीतपस्विनी । मया विमुक्ता स्नात्वामांतथैवानुशशापह
एवं ताभ्यामहं शप्तो ह्यश्वत्थपर्णवद्भयात् । कम्पमानः प्रणम्योभाववोचं तत्र दम्पती
प्राणोऽहमीश्वरस्यैवदुर्विनीततरो युवाम् । निरोधमेवं कुरुतं भगवन्तावनुग्रहम् ॥ ९९
वाचि क्षुरो नावनीतंहृदयंहिद्विजन्मनाम् । प्रकुप्यन्तिप्रसीदन्तिक्षणेनाऽपिप्रसादिताः

त्वयि विप्रतिपन्नस्य त्वमेव शरणं मम ।
भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवाऽवलम्बनम् ॥ १०१ ॥

गणाधिपत्यमपि मे जातं परिभवास्पदम् । विपदन्ता हि जायन्तेदुर्विनीतस्य सम्पदः
विदुरैष्यद्धियाऽपायं परतोऽन्ये विवेकिनः । नैवोभयं विदुर्नीचाविनाऽनुभवमात्मनः
दुर्विनीतः श्रियं प्राप्य विद्यामैश्वर्यमेव वा । न तिष्ठति चिरं स्थानेयथाऽहंमदगर्वितः
विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः । एते मदा मदान्धानामेत एव सतां दमाः
नोदर्कशालिनी वुद्धिर्येषामविजितात्मनाम् । तैःश्रियश्चपलावाच्यंनीयन्तेमादृशैर्जनैः॥
तत्प्रसीद मुनिश्रेष्ठ शापान्तं मेऽधुना कुरु । दुर्विनीतेष्वपि सदा क्षमाचाराहिसाधवः
इत्थं वचसिविज्ञप्ते विनीतेनाऽपिवैमया । प्रसादप्रवणोभूत्वाशापान्तं मे तदा व्यधात्

गालव उवाच

छन्नकीर्तिसमुद्धारसहायस्त्वं भविष्यसि । यदेन्द्रद्युम्नभूपस्य तदा मोक्षमवाप्स्यसि
इत्यहं मुनिशापेन तदाप्रभृति पर्वते । हिमाचले वको भूत्वा काश्यपेयोवसामि च

राज्यं चिरायुरिति मे घृतकम्बलस्य जातिस्मरत्वमधुनाऽपि तथानुभावान्
शापाद्वकत्वमभवन्मुनिगालवस्यतद्भद्र! सर्वमुदितं भवताऽद्य पृष्टम् ॥१११

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे महीप्राद्रुर्भावे वकपूर्वजन्मवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

———

अष्टमोऽध्यायः

नाडीजङ्घेन सह राज्ञइन्द्रद्युम्नस्यप्राकारकर्णसमीपेगमननं तच्छंश्रयपि
तस्यौलूकत्वप्राप्तिकारणत्वप्रतिपादनं बिल्वदलमाहात्म्यम्

नारद उवाच

नाडीजंघवकेनोक्तां वाचमाकर्ण्यभूपतिः । मार्कण्डेयेन संयुक्तो वभूवाऽतीव
तं निशम्य मुनिर्भूपं दुःखितं साश्रुलोचनम् । समानव्यसनःप्राह तदर्थं स पुन
विधायाशांमहाभागत्वदन्तिकमुपागतौ । आवांचिरायुर्ज्ञातांशाविन्द्रद्युम्नमि
निष्पन्नं नाऽस्य तत्कार्यं प्राणानेष मुमुक्षति । वह्निप्रवेशेन परं वैराग्यं स
तन्मामुपागतोऽहं च त्वांसिद्धंनास्यवाञ्छितम् । तदेनमनुयास्यामि मरणे
आशांकृत्वाभ्युपायातंनिराशंनेक्षितुंक्षमाः । भवन्तिसाधवस्तस्माज्जीविता
प्रार्थितंचामुनाह्यत्थंमयाचास्मैप्रतिश्रुतम् । त्वांमित्रंतत्परिज्ञानेधृत्वाहृदि

असम्पादयतो नार्थं प्रतिज्ञातं ममाऽऽयुषा ।
कलुषेणाऽर्थिनामाशापूरकेण सखेऽधुना ॥ ८ ॥

प्रतिश्रुतं कृतं श्लाघ्यादासतान्त्यजपक्कणे । हरिश्चन्द्रस्येवनृणांनश्लाघ्या
मित्रस्नेहस्य पर्यायस्तच्चसाप्तपदंस्मृतम् । स्नेहः स कीदृशोमित्रेदुःखिते यो
तदवश्यमहंसाकमधुनावह्निसाधनम् । करिष्ये कीर्तिवपुषः कृते सत्यमिदं सखे
अनुजानीहि मामेतद्दर्शनंतव पश्चिमम् । त्वया सह महाभाग नाडीजङ्घ द्विजो

नारद उवाच

वज्रवद्दुःसहांवाचंमार्कण्डेयसमीरिताम् । शुश्रुवान्सक्षणंध्यात्वाप्रतीतःप्राह

नाडीजङ्घ उवाच

यद्येवं तदिदं मित्रं विशन्तं ज्वलनेऽधुना । निवारय मुनिश्रेष्ठ मत्तोऽस्तिचिर
प्राकारकर्णनामासावुलूकः शिवपर्वते । स जानाति महीपालमिन्द्रद्युम्नं न

तस्मादहं त्वया सार्धममुना च शिवालयम् । व्रजामि तं शिखरिणंमित्रकार्यप्रसिद्धये
इत्येवमुक्त्वा ते जग्मुस्त्रयोऽपि द्विजपुङ्गवाः । कैलासं ददृशुस्तत्र तमुलूकं स्वनीडगम्
कृतसम्विदसौ तेन बकः स्वागतपूजया । पृष्टश्च तावुभौ प्राह तत्सर्वमभिवाञ्छितम्
चिरायुरसि जानीषे यदीन्द्रद्युम्नभूपतिम् ।तद्ब्रूहि तेन ज्ञानेन कार्यं जीवामहे वयम्
इति पृष्टः स विमनामित्रकार्यप्रसाधनात् । कौशिकः प्राह जानामिनेन्द्रद्युम्नमहंनृपम्
अष्टाविंशत्प्रमाणा मे कल्पाजातस्यभूतले । न दृष्टो नश्रुतोवासाविन्द्रद्युम्नोनृपःक्षितौ
तच्छ्रुत्वाविस्मितोभूपस्तस्यायुरतिमात्रतः । दुःखितोऽपितदाहेतुंपप्रच्छाऽसौतदायुषः
एवमायुर्यदि तव कथं प्राप्तं ब्रवीहि तत् । उलूकत्वं कथमिदं जुगुप्सितमतीव च ॥

प्राकारकर्ण उवाच

शृणु भद्र ! यथा दीर्घमायुर्मेशिवपूजनात् । जुगुप्सितमुलूकत्वं शापेन च महामुनेः
वसिष्ठकुलसंभूतः पुराऽहमभवं द्विजः । घण्ट इत्यभिविख्यातो वाराणस्यां शिवे रतः
धर्मश्रवणनिष्ठस्य साधूनां संसदिस्वयम् । श्रुत्वाऽस्मिपूजयामीशंबिल्वपत्रैरखण्डितैः
न मालती न मन्दारः शतपत्रंन मल्लिका । तथा प्रियाणि श्रीवृक्षो यथा मदनविद्विषः
अखण्डबिल्वपत्रेण एकेन शिवमूर्धनि । निहितेन नरैः पुण्यं प्राप्यते लक्षपुष्पजम् ॥
अखण्डितैर्बिल्वपत्रैः श्रद्धया स्वयमाहृतैः । लिङ्गप्रपूजनं कृत्वा वर्षलक्षं वसेद्दिवि ॥

सच्छास्त्रेभ्य इति श्रुत्वा पूजयाम्यहमीश्वरम् ।
त्रिकालं श्रद्धया पत्रैः श्रीवृक्षस्य त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ३० ॥

ततो वर्षशतस्याऽन्ते तुतोष शशिशेखरः । प्रत्यक्षीभूय मामाह मेघगम्भीरया गिरा ॥

ईश्वर उवाच

तुष्टोऽस्मितवविप्रेन्द्राखण्डबिल्वदलार्चनात् ।वृणीष्वाभिमतंयत्तेदास्याम्यपिचदुर्लभम्
अखण्डबिल्वपत्रेण महातुष्टिःप्रजायते । एकेनाऽपियथाऽन्येषां तथा न मम कोटिभिः
इत्युक्तोऽहं भगवता शम्भुनास्वमनःस्थितम् । वृणोमि स्म वरं देवकुल्मामजरामरम्

अथ लीलाविलासो मां तथेत्युक्त्वाऽविचारितम् ।
ययावदर्शनं प्रीतिमहं च महतीं गतः ॥ ३५ ॥

कृतकृत्यं तदात्मानमज्ञासिषमहं क्षितौ । एतस्मिन्नेव काले तु भृगुवंश्योऽभव
अवदातत्रिजन्मासवक्षविद्याऽक्षरार्थवित् । सुदर्शनेतिप्रथिता प्रिया तस्याभव
अतीव मुदिता पत्युर्मुखं प्रेक्ष्याऽस्य दर्शनात् । तनयाद्वेवलस्यैषा रूपेणाऽप्रति
तस्यांतस्मादभूत्कन्यानिर्विशेषानिजारणेः। निवृत्तबालभावाऽभूत्कुमारीयौव
नाऽलं बभूव तां दातुं तनयांगुणशालिनीम् । कस्यापिजनकःसाचवयःसन्धौ
प्रविश्यौवनाभोगभावैरतिमनोहरा । निर्वास्यमानैरपरैस्तिलतन्दुलिताकृतिः
क्रीडमाना वयस्याभिर्लावण्यप्रतिमेव सा । व्यचिन्तयमहंविप्रतांनिरीक्ष्यसुमः

अनन्याकृतिमन्योऽसौ विधिर्येनेति निर्मिता ।
ततः सात्त्विकभावानां तत्क्षणादस्मि गोचरम् ॥ ४३ ॥

प्रापितोलीलयाऽऽहत्यवाणैःकुसुमधन्विना । ततोमयास्खलद्वाचंपृष्टाकस्येति
प्राहेति भृगुवंश्यस्य कन्येयंद्विजजन्मनः । अनूढाऽद्यापिकेनापिसमायाताऽ
ततः कुसुमवाणेन शरव्रातैर्भृशं हतः । पितरं प्रणतो गत्वा ययाचे तां भृगू
स च मां सदृशं ज्ञात्वा शीलेनचकुलेनच । अतीवचार्थिनंमह्यंददौ वाचा पुनः
ततःसातनयातस्यभार्गवस्याऽश्रृणोदिति।दत्ताऽस्मितस्मैविप्रायविरूपायेति
रोरूयमाणा जननीमाह पश्य यथा कृतम् । अतीवाऽनुचितं दत्त्वा जनकेन
विषमालोड्य पास्यामि प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् । वरंनतु विरूपस्योद्वोढुर्भार्या

ततः सम्बोध्य जननी तां सुतामाह भार्गवम् ।
न देयाऽस्मै त्वया कन्या विरूपायेति चाऽऽग्रहात् ॥ ५१ ॥

स वल्लभावचः श्रुत्वा धर्मशास्त्राण्यवेक्ष्य च । दत्तामपि हरेत्पूर्वां श्रेयांश्चेद्वर
अर्वाक्छिलाक्रमणतो निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे । इतिव्यवस्यप्रददावन्यस्मैतांद्विज
श्वोभाविनिविवाहेतु तच्चसर्वं मया श्रुतम् । ततोऽतीवविलक्ष्योऽहंवयस्यानां
नाऽशकं वदनंभद्र तथादर्शयितुं निजम् । कामार्तोऽतीव तां सुप्तामर्वाङ्निशि

नीत्वा दुर्गतमैकान्तेऽकार्षमौद्वाहिकं विधिम् ।
गान्धर्वेण विवाहेन ततोऽकार्षं हृदीप्सितम् ॥ ५६ ॥

अनिच्छन्ती तदा बालां बलात्सुरतसेवनम् । अथाऽनुपदमागत्य तत्पिता प्रातरेवमाम्
निश्वस्य सम्वृतो विप्रैस्तां वीक्ष्योद्वाहितां सुताम् ।
शशाप कुपितो भद्र मां तदानीं स भार्गवः ॥ ५८ ॥

भार्गव उवाच

निशाचरस्य धर्मेण यत्त्वयोद्वाहिता सुता । तस्मान्निशाचरः पापभवत्वमविलम्बितम्
इति शप्तः प्रणम्यैनं पादोपग्रहपूर्वकम् । हाहेति च ब्रुवन्गाढं साश्रुनेत्रं सगद्गदम् ॥६०
ततोऽहमब्रवं कस्माददोषं मां भवानिति । शप्ते भवता दत्ता मम वाचा पुरा सुता
सोद्वाहितामयाकन्यादानंसकृदितिस्मृतिः। सकृज्जल्पन्तिराजानःसकृज्जल्पन्तिपण्डिताः
सकृत्कन्याःप्रदीयन्तेत्रीण्येतानिसकृत्सकृत्। किंचप्रतिश्रुतार्थस्यनिर्वाहस्तत्सतांव्रतम्
भवादृशानां साधूनां तस्य त्यागोविगर्हितः । प्रतिश्रुतात्वयालब्धातदाकालमियं मया
उद्वोढा चाऽधुनानाहमुचितः शापभाजनम् । वृथाशपन्तिमह्यं च भवन्तस्तद्विचार्यताम्
यो दत्त्वा कन्यकां वाचा पश्चाद्धरतिदुर्मतिः । सयातिनरकंचेतिधर्मशास्त्रेषुनिश्चितम्
तदाकर्ण्यव्यवस्याऽसौ तथ्यंमद्वचनंहृदा । पश्चात्तापसमोपेतोमुनिर्मामित्यथाऽब्रवीत्
न मेस्यादन्यथावाणीउलूकस्त्वंभविष्यति । निशाचरोह्युलूकोऽपिप्रोच्यतेद्विजसत्तम
यदेन्द्रद्युम्नविज्ञाने सहायस्त्वं भविष्यसि ।
तदा त्वं प्रकृतिं विप्र प्राप्स्यसीत्यब्रवीत्स माम् ॥ ६६ ॥
तद्वाक्यसमकालं च कौशिकत्वमिदं मम । एतावन्ति दिनान्यासीदष्टाविंशद्दिनंविधेः
बिल्वीदलैरितिपुरा शशिशेखरस्य सम्पूजनेन मम दीर्घतरं किलाऽऽयुः ।
सञ्जातमत्र च जुगुप्सितमस्य शापात्कैलासरोधसि निशाचररूपमासीत्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे महीनदीप्रादुर्भावे उलूकोपाख्याने बिल्वदलमाहात्म्य-
वर्णनंनामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

गृध्रपूर्वजन्मवृत्तान्ते दमनकमहोत्सववर्णनपुरःसरं शम्भुगणत्वप्राप्तिः
कन्ययासहविमानेबलात्कारकरणाद्रूक्षपिशापः पश्चादनुग्रहश्च

उलूक उवाच

इतीदमुक्तमखिलं पूर्वजन्मसमुद्भवम्। स्वरूपमायुषो हेतुः कौशिकत्वस्य चेति
इत्युक्त्वा विरते तस्मिन्पुरुहूतसनामनि। नाडीजङ्घो बको मित्रमाह तं दुःखि

नाडीजङ्घ उवाच

यदर्थं वयमायातास्तन्न सिद्धं महामते!। कार्यं तन्मरणं नूनं त्रयाणामप्युपा
इन्द्रद्युम्नापरिज्ञाने भद्र कोऽयं मुमूर्षति। तस्याऽनु मित्रंमार्कण्डस्तंचान्वहमपि
मित्रकार्ये विनिर्वृत्ते म्रियमाणं निरीक्षते। यो मित्रंजीवितंतस्यधिगस्निग्धं दु
तदेतावनुयास्यामि म्रियमाणावहं द्विज। आपृच्छेत्वांनमस्कारआश्लेषश्चाथ
प्रतिज्ञातमनिष्पाद्यमित्रस्याऽभ्यागतस्यच। कथङ्कारं न लज्जन्ते हताशा जीवि

तस्माद्वह्निं प्रवेक्ष्यामि सार्धमाभ्यामसंशयम्।
आपृष्टोऽस्यधुना स्नेहान्मम देहि जलाञ्जलिम् ॥ ८ ॥

इत्युक्तवत्युलूकोऽसौ नाडीजङ्घे सगद्गदम्। साश्रुनेत्रं स्थिरीभूय प्राहवाचंसुध

उलूक उवाच

मयि जीवति मित्रे मे भवान्मरणमेति च। अद्यप्रभृति कस्तर्हि हृदा मम
अस्त्युपायो महानत्र गन्धमादनपर्वते। मत्तश्चिरायुर्मित्रोऽस्ति गृध्रःप्राणसमः
स विज्ञास्यतिवोऽभीष्टमिन्द्रद्युम्नंमहीपतिम्। इत्युक्त्वापुरतस्तस्थावुलूकःसच
मार्कण्डेयो बकश्चैव प्रययुर्गन्धमादनम्। तमायान्तमथालोक्य वयस्यं पुरतः
स्वकुलायात्प्रहृष्टोऽसौ गृध्रः सम्मुखमाययौ। कृतसंविदसौ पूर्वं स्वागतासन
उलूकं गृध्रराजश्चकार्यं पप्रच्छ तंतथा। स चाऽऽचख्यावयंमित्रंबकोमेऽस्यमुनि

मुनेरपि तृतीयोऽयं मित्रं चार्थोऽयमुद्यतः । इन्द्रद्युम्नपरिज्ञाने स्वयं जीवति नान्यथा॥
वह्निं प्रवेक्ष्यते व्यक्तमयं तदनु वै वयम् । मया निषिद्धोऽयंज्ञात्वात्वांचिरन्तनमात्मना
तच्चेज्ज्ञानासितंब्रूहिचतुर्णांदेहिजीवितम् ।
संरक्ष्याऽऽप्नुहिसत्कीर्तिक्षयंचाखिलपाप्मनः ॥ १८ ॥

गृध्र उवाच

षट्पञ्चाशद्व्यतीतामेकल्पाजातस्यकौशिक ! ।
नदृष्टोनश्रुतोऽस्माभिरिन्द्रद्युम्नोमहीपतिः ॥ १९ ॥
तच्छ्रुत्वा विस्मयाविष्ट इन्द्रद्युम्नोऽपि दुःखितः ।
पप्रच्छ जीविते हेतुमतिमात्रे विहङ्गमम् ॥ २० ॥

गृध्र उवाच

शृणु भद्र ! पुराजातोमर्कटोऽहंचचापलः । आसं कदाचिदभवद्वसन्तोऽथऋतुःक्रमात्
तत्राऽग्रे देवदेवस्य वनमध्ये शिवालये । भवोद्भवस्य पुरतो जगद्योगेश्वराभिधे ॥२२॥
चतुर्दशीदिने हस्तनक्षत्रे हर्षणाभिधे । योगे चैत्रे सिते पक्ष आसीद्दमनकोत्सवः ॥
अत्र सौवर्ण्यदोलायांलिङ्गआरोपितेजनैः । निशायामधिरुह्याऽहंदोलांतांचव्यचालयम्
निसर्गाज्ज्ञातिचापल्याच्चिरकालं पुनःपुनः । अथ प्रभात आयाता जनाःपूजाकृतेकपिम्
दोलाधिरूढमालोक्य लकुटैर्मां व्यताडयन् । दोलासंस्थितएवाहंप्रमीतः शिवमन्दिरे
तेषां प्रहारैः सुदृढैर्बहुभिर्वज्रदुःसहैः । शिवान्दोलनमाहात्म्याज्ज्ञातोऽहं नृपमन्दिरे ॥
काशीश्वरस्य तनयः प्रतीतोऽस्मि कुशध्वजः ।
जातिस्मरस्ततो राज्ये क्रमात्प्राप्याऽहमैश्वरम् ॥ २८ ॥
कारयामि धरापृष्ठे चैत्रे दमनकोत्सवम् । यथा यथा दोलयतिशिवंदोलास्थितं नरः
तथातथाऽशुभंयातिपुण्यमायातिभद्रक ! । शिवदीक्षामुपागम्याऽखिलसंस्कारसंस्कृतः
शिवाचार्यैर्विमुक्तोऽहंपशुपाशैस्तदागमात् । निर्वाहदीक्षापर्यन्तान्संस्कारान्प्राप्यसर्वतः
आराधयामि देवेशं प्रत्यक्चित्तमुमापतिम् । समस्तक्लेशविच्छेदकारणंजगतां गुरुम्
चित्तवृत्तिनिरोधेन वैराग्याभ्यासयोगतः । जपन्नुद्गीतमस्यार्थं भावयन्नष्टमं रसम् ॥३३

ततो मां प्रणिधानेनाभ्यासेन दृढभूमिना। अन्तरायानुपहतं ज्ञात्वा तुष्टोऽब्रवी

ईश्वर उवाच

कुशध्वजाहं तुष्टोऽद्य वरं वरयवाञ्छितम्। न हीदृशमनुष्ठानं कस्याऽप्यस्ति
श्रुत्वेत्युक्तो मया शम्भुर्भूयासं ते गणो ह्यहम्। अनेनैवशरीरेण तथेत्येवाऽऽह
ततः कैलासमानीय विमानं मम चाऽऽदिशत्। सर्वरत्नमयंदिव्यंदिव्याश्चर्यस
विचरामि प्रतीतोऽहं तदारूढो यदृच्छया। अथ काले कियन्मात्रे व्यतीतेऽत्रै

गवाक्षाधिष्ठितोऽपश्यं वसन्ते मुनिकन्यकाम्।
प्रवाति दक्षिणे वायौ मदनाग्निप्रदीपितः॥ ३६॥

अग्निवेश्यसुतांभद्र! विवस्त्रांजलमध्यगाम्। उद्भिन्नयौवनांश्यामांमध्यक्षामांमृग
विस्तीर्णजघनाभोगां रम्भोरुं संहतस्तनीम्। तामङ्कुरितलावण्यां जलसेकाद्वि
प्रोन्मिद्रपङ्कजमुखीं वर्णनीयतमाकृतिम्। यथाप्रज्ञानयाथात्म्याद्विद्वद्भिरपि वर्णि
प्रोद्यत्कटाक्षविक्षेपैः शरव्रातैरिव स्मरः। स्वयं तदङ्गमास्थाय ताडयामास मां
वयस्यासम्वृतामेवं खेलमानां यदृच्छया। अवतीर्याहमहरं विमानान्मदनातुरः
सा गृहीता मया दीर्घं प्रकुर्वाणा महास्वनम्। तातेतिचविमानस्था रुरोदातीव
ततो वयस्यास्ता दीना मुनिमाहुः प्रधाविताः। वैमानिकेन केनापिह्रियतेतव पु
रुदन्तीं भगवन्नेतां त्राह्युत्तिष्ठेति सर्वतः। तासां तदाकर्ण्य वचो मुनिर्भद्रतपो

अग्निवेश्योऽभ्यगात्तस्या व्योमन्युपपदं त्वरन्।
तिष्ठतिष्ठेति मामुक्त्वा संस्तभ्य तपसा गतिम्॥ ४८॥
ततः प्रकुपितः प्राह मुनिर्मामतिदुःसहम्।

अग्निवेश्य उवाच

यस्मान्मदीया तनया मांसपेशीव ते हृता॥ ४६॥

गृध्रेणेवाऽधुनाव्योम्नितस्माद्गृध्रोभवद्रुतम्। अनिच्छन्तीमदीयेयंसुताबालात
त्वया हृताऽधुनास्यैतत्फलमाप्नुहि दुर्मते। इत्याकर्ण्यभयाविष्टोलज्जयाऽधोमु
पादौ प्रगृह्य न्यपतं रुदन्नतितरां तदा। न मयेयं परिज्ञाय हृता नाऽद्यापि ध

प्रसादं कुरु ते शापं व्यावर्तय तपोनिधे। प्रणतेषु क्षमावन्तो निसर्गेण तपोधनाः॥
भवन्ति सन्तस्तद्गृध्रो मा भवेयं प्रसीद मे। इतिप्रपन्नेनमया प्रणतोऽसौ महामुनिः
प्रसन्नःप्राहनोमिथ्याममवाक्यंभवेत्क्वचित्।किन्त्विन्द्रद्युम्नभूपालपरिज्ञानेसहायताम्

यदा यास्यसि शापस्य तदा मुक्तिमवाप्स्यसि ॥ ५६ ॥

इत्युक्त्वा स मुनिः प्राप्राद्गृहीत्वा निजकन्यकाम्।

अखण्डशीलां स्वावासमहं गृध्रोऽभवं तदा ॥ ५७ ॥

एवं तदा दमनकोत्सव ईश्वरस्य आन्दोलनेन नृपवेश्मनि मेऽवतारः।

शम्भोर्गणत्वमभवच्च तथाग्निवेश्यशापेन गृध्र इह भद्र! तवेदमुक्तम् ॥५८॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे महीप्रादुर्भावे गृध्रोपाख्याने दमनकमाहात्म्यंनाम नवमोऽध्यायः॥९॥

दशमोऽध्यायः

कूर्मदिदृक्षूणां मार्कण्डबककौशिकानांसरस्तीरेगमनं तत्रैवेन्द्रद्युम्नकृते विमानारोहणायदेवानामाग्रहःतत्कीर्तिनवीकरणायकूर्मात्सर्ववार्तालाभः

नारद उवाच

गृध्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा दुःखविस्मयसंयुतः। इन्द्रद्युम्नस्तमापृच्छ्य मरणायोपचक्रमे॥
ततस्तमालोक्यतथामुमूर्षुं कौशिकादिभिः। ससंहितंविश्चिन्त्याहदीर्घायुषमथात्मनः
मैवंकार्षीःशृणुगिरंभद्र त्वं चिरन्तनः। मत्तोऽप्यस्तिस्फुटंचैवज्ञास्यतित्वदर्भीप्सितम्
मानसे सरसि ख्यातः कूर्मोमन्थरकाख्यया। तस्य नाविदितं किञ्चिदेहितत्रव्रजामहे
ततः प्रतीतास्ते भूपमुनिगृध्रबकास्तथा। उलूकसहिता जग्मुः सर्वेकूर्मदिदृक्षवः॥
सरस्तीरेस्थितःकूर्मस्तान्निरीक्ष्यविदूरगान्। कान्दिशीकोविवेशाऽसौजलंशीघ्रतरंतदा

कौशिकोऽथ तमाहेदंप्रहस्यवचनंस्वयम् ।कस्मात्कूर्मप्रनष्टोऽद्यविमुखोऽस्याम
अग्निर्द्विजानांविप्रश्चवर्णानांरमणःस्त्रियाम् । गुरुःपिताचपुत्राणांसर्वस्याऽभ्याग
विहाय तमिमंधर्ममातिथ्यविमुखः कथम् । गृह्णासि पापं सर्वेषां ब्रूहि कूर्माधुन

कूर्म उवाच

चिरन्तनो हि जानामि कर्त्तुमातिथ्यसत्क्रियाम् ।
अभ्यागतेष्वप्रचितिं धर्मशास्त्रेषु निश्चितम् ॥ १० ॥

सुमहत्कारणं चाऽत्र श्रूयतां तद्वदामिवः । नाऽहं पराङ्मुखोजातएतावन्तिदि
अभ्यागतस्य कस्याऽपि सर्वसत्कारसद्व्रती । किन्त्वेषपञ्चमोयोवोदृश्यतेसरल
इन्द्रद्युम्नो महीपालो बिभेम्यस्मादलन्तराम् । अमुनायजमानेन रौचकाल
यज्ञपावकदग्धा मे पृष्ठिर्नाद्याऽपि निर्व्रणा । तन्मे भयं पुनर्जातं किमयं पुनरेव
आसुतीवलमाधाय भुवि धक्ष्यति सम्प्रति । इति वाक्यावसाने तु कूर्मस्यकुरु
पपात पुष्पवृष्टिः खाद्विमुक्ताप्सरसां गणैः । सस्वनुर्देववाद्यानि कीर्त्युद्धारमह
विस्मितास्ते च ददृशुर्विमानं पुरतः स्थितम् । इन्द्रद्युम्नकृते देवदूतेनाऽधिष्ठितं
अयातयामाः प्रददुराशिषोऽस्मैसुरद्विजाः । साधुवादो दिवि महानासीत्तस्यमह
ततो विमानमालम्ब्य देवदूतस्तमुच्चकैः । इन्द्रद्युम्नमुवाचेदं श्रृण्वतां नाकवासि

देवदूत उवाच

नवीकृताऽधुना कीर्तिस्तव भूपालनिर्मला । त्रिलोक्यामपि तच्छीघ्रं विमानमिद
गम्यतां ब्रह्मणो लोकमाकल्पं तपसोर्जितम् । प्रेषितोऽहमनेनैव तवानयनका
यावत्कीर्तिर्मनुष्यस्यपृथिव्यां प्रथिताभवेत । तावानेवभवेत्स्वर्गी सति पुण्येह
सुरालयसरोवापीकूपारामादिकल्पना । एतदर्थं हि पूर्ताख्या धर्मशास्त्रेषु नि

इन्द्रद्युम्न उवाच

अमी ममैव सुहृदो मार्कण्डबककौशिकाः । गृध्रकूर्मौ प्रभावोऽयममीषां मम
तच्चेदमी मयासाकंब्रह्मलोकंप्रयान्त्युत । पुरःस्थितास्तदायास्येब्रह्मलोकंचना
परेषामनपेक्ष्यैवकृतप्रतिकृतं हि यः । प्रवर्तते हितायैव स सुहृत्प्रोच्यते बु

स्वार्थोद्युक्तधियो ये स्युरन्वर्थास्तेऽप्यसुन्धराः। मरणं प्रकृतिश्चैवजीवितंविकृतिर्यदा
प्राणिनां परमो लाभःकेवलंप्राणिसौ ह्रदम्। दरिद्रारागिणोऽसत्यप्रतिज्ञातागुरुद्रुहः
मित्रावसानिनः पापाः प्रायो नरकमण्डनाः। परार्थनष्टास्तदमी पंच सम्प्रतिसाधवः
मम कीर्तिसमुद्धारः स प्रभावो महात्मनाम्। अमीषां यदितेस्वर्गंप्रयास्यन्तिमयासह
तदाऽहमपि यास्यामि देवदूताऽन्यथा न हि॥ ३०॥

देवदूत उवाच

एते हरगणाः सर्वे शापभ्रष्टाः क्षितिं गताः॥ ३१॥
शापान्ते हरपार्श्वं तु यास्यन्तिपृथिवीपते!। विहायेमानतो भूप त्वमागच्छमयासह
न चैषां रोचते स्वर्गो हित्वा देवं महेश्वरम्।

इन्द्रद्युम्न उवाच

यद्येवं गच्छ तद्दूतनायास्येहंत्रिविष्टपम्। तथातथायतिष्यामिभविष्यामियथागणः
अविशुद्धिक्षयाधिक्यदूषणैरेष निन्दितः॥ ३४॥
स्वर्गः सदानुश्रविकस्तस्मादेनं न कामये। तत्रस्थस्यपुनःपातोभयंनव्येतिमानसात
पुनः पातो यतःपुंसस्तस्मात्स्वर्गं न कामये। सतिपुण्येस्वयंतेनपातितोनिजलोकतः॥
चतुर्मुखेनवैलक्ष्यंगतोऽस्मिकथमेमितम्। इतीदमुक्त्वादूतंतंश्रृण्वतोऽस्यैवविस्मयात्
अप्राक्षीद्भूपतिःकूर्मंतदायुः कारणं तदा। इदमायुः कथं जातं कूर्म! दीर्घतमं तव
सुहृन्मित्रं गुरुस्त्वं मे येन कीर्तिर्ममोद्धृता॥ ३६॥

कूर्म उवाच

श्रृणुभूप!कथांदिव्यांश्रवणात्पापनाशिनीम्। कथांसुमधुरामेतांशिवमाहात्म्यसंयुताम्
श्रृण्वन्निमामपि कथां नृपते! मनुष्यः सुश्रद्धया भवति पापविमुक्तदेहः।
शम्भोः प्रसादमभिगम्य यथायुरेवमासीत्प्रसादत इयं मम कूर्मता च॥४१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे महीप्रादुर्भावे कूर्मदीर्घायुष्यप्राप्तिवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

———

एकादशोऽध्यायः

कूर्मपूर्वजन्मवृत्तान्तवर्णनम्

कूर्म उवाच

शाण्डिल्य इति विख्यातः पुराहमभवं द्विजः । बालभावेमयाभूपक्रीडमानेन
पुरा प्रावृषिपांशूत्थंशिवायतनमुच्छ्रितम् । जलार्द्रवालुकाप्रायंप्रांशुप्राकारशो
पञ्चायतनविन्यासमनोहरतरं नृप ! । विनायकशिवासूर्यमधुसूदनमूर्तिमत् ।
पीतमृत्स्वर्णकलशं ध्वजमालाविभूषितम् । काष्ठतोरणविन्यस्तं दोलकेनवि
दृढप्रांशुसमुद्भूतसोपानश्रेणिभासुरम् । सर्वाश्चर्यमयं दिव्यं वयस्यैः सम्वृते
तत्र जागेश्वरं लिङ्गं कृत्वाऽथ विनिवेशितम् । बाल्यादुपलरूपंतद्वर्षावारि वि
वकपुष्पैस्तथाऽन्यैश्च केदारोत्थैः समाहृतैः । कोमलैरपरैः पुष्पैर्वृतिवल्ली
कूष्माण्डैश्चैव वर्णाढ्यैरुन्मत्तकुसुमायुतैः । मन्दारैर्विल्वपत्रैश्चदूर्वाद्यैश्च क

पूजा विरचिता रम्या शम्भोरिति मया नृप ! ।
ततस्ताण्डवमारब्धमनपेक्षितसत्क्रियम् ॥ ६ ॥

शिवस्य पुरतो बाल्याद्गीतं च स्वरवर्जितम् । अकार्षं सकृदेवाऽहं बाल्येशिशुग
ततो मृतोऽहं जातश्च विप्रो जातिस्मरो नृप । वैदिशे नगरेऽकार्षंशिवपूजांवि
शिवदीक्षामुपागम्याऽनुगृहीतःशिवागमैः । शिवप्रासाद आधाय लिङ्गंश्रद्धास
कल्पकोटिं वसेत्स्वर्गे यः करोति शिवालयम् । यावन्ति परमाणूनि शिवस्या
भवन्ति तावद्वर्षाणि कारकः शिवसद्मनि । इति पौराणवाक्यानिस्मरञ्छैलंशि
अकारिषमहं रम्यं विश्वकर्मविधानतः । मृन्मयं काष्ठनिष्पन्नं पाक्वेष्टंशैलमेव
कृतमायतनं दद्यात्क्रमाद्दशगुणं फलम् । भस्मशायी त्रिषवणो भिक्षाकृत
जटाधरस्तपस्यंश्च शिवाराधनतत्परः । इत्थं मे कुर्वतो जातं पुनर्भूपप्रमा
जातो जातिस्मरस्तत्र तृतीयेऽहं भवान्तरे ।

सार्वभौमो महीपालः प्रतिष्ठाने पुरोत्तमे ॥ १८ ॥

जयदत्त इति ख्यातः सूर्यवंशसमुद्भवः । ततो मया बहुविधाः प्रासादाः कारितानृप
तस्मिन्भवान्तरे शम्भोराराधनपरेण च । ततो निरूपिता जाता बकपुष्पपुरस्सराः
सौवर्णै राजतैरत्ननिर्मितैः कुसुमैर्नृप । तथाविधेऽन्नदानादि करोमि नृपसत्तम
केवलं शिवलिङ्गानां पूजां पुष्पैः करोम्यहम् । ततो मे भगवाञ्छंभुःसन्तुष्टोऽथवरंददौ
अजरामरतां राजंस्तेनैववपुषा वृतः । ततस्तथाविधं प्राप्याऽनन्यसाधारणं वरम्
विचरामिमहीमेतां मदान्ध इव वारणः । शिवभक्तिं विहायाऽथ नृपोऽहं मदनातुरः
प्रधर्षयितुमारब्धः स्त्रियः परपरिग्रहाः । आयुषस्तपसः कीर्तेस्तेजसो यशसः श्रियः
विनाशकारणं मुख्यं परदारप्रधर्षणम् । सकर्णः श्रुतिहीनोऽसौ पश्यन्नन्धोवदञ्जडः
अचेतनश्चेतनावान्मूर्खो विद्वानपि स्फुटम् । तदा भवति भूपाल! पुरुषः क्षणमात्रतः॥
यदैव हरिणाक्षीणां गोचरं याति चक्षुषाम् । मृतस्य निरयेवासोजीवतश्चेश्वराद्भयम्
एवं लोकद्वयं हन्त्री परदारप्रधर्षणा । जरामरणहीनोऽहमितिनिश्चयमास्थितः॥ २६॥
ऐहिकामुष्मिकभयं विहायाऽहं ततः परम् । प्रधर्षयितुमारब्धस्तदा भूप परस्त्रियः
अथ मां सम्परिज्ञाय मर्यादारहितं यमः । वरप्रदानादीशस्य तदन्तिकमुपाययौ ॥

व्यजिज्ञपन्मदीयं च शम्भोर्धर्मव्यतिक्रमम् ॥ ३१ ॥

यम उवाच

नाऽहं तवाऽनुभावेन गुप्तस्याऽस्य विनिग्रहम् ॥ ३२ ॥

शक्नोमि पापिनो देव मन्नियोगेऽन्यमादिश । जगदाधाररूपाहित्वयेशोक्ताःपतिव्रताः॥
गावोविप्राःसनिगमाअलुब्धादानशीलिनः । सत्यनिष्ठाइतिस्वामिंस्तेषांमुख्यतमासती
तास्तेन धर्षिता लुप्तं मदीयं धर्मशासनम् । वरदानप्रमत्तेन तवैव परिभूय माम्
जयदत्तेनदेवेश प्रतिष्ठानाधिवासिना । इमां धर्मस्य भगवान्गिरमाकर्ण्य कोपितः ।

शशाप मां समानीय वेपमानं कृताञ्जलिम् ॥ ३६ ॥

ईश्वर उवाच

यस्माद्दुष्टसमाचार धर्षितास्ते पतिव्रताः ॥ ३७ ॥

कामार्तेन मया शप्तस्तस्मात्कूर्मः क्षणाद्भव । ततः प्रणम्य विज्ञप्तः शापतापह
प्राह षष्टितमे कल्पे विशापो भविता गणः । मदीय इति सम्प्रोच्यजगामाऽदृ
अहं कूर्मस्तदाजातो दशयोजनविस्तृतः । समुद्रसलिले नीतस्त्वयाऽहंयज्ञसा
पुरस्ताद्यायजूकेनस्मरंस्तच्च बिभेमि ते । दग्धस्त्वयाऽहं पृष्ठेऽत्रव्रणान्येतानि
चयनानिबहून्यत्र कल्पसूत्रविधानतः । पृष्ठोपरि कृतान्यासन्निन्द्रद्युम्न तद्
भूयः सन्तापिता यज्ञैः पृथिवी पृथिवीपते । सुस्राव सर्वतीर्थानांसारंसाऽभू
तस्यां च स्नानमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते । ततो नैमित्तिके कस्मिन्नपि प्रलय
प्लवमानमिदं राजन्मानसं शतयोजनम् । षट्पञ्चाशत्प्रमाणेन कल्पा मम पु
व्यतीता इह चत्वारः शेषे मोक्षस्ततः परम् । एवमायुरिदं दीर्घमेवं शापाच्च
ममाऽभूदीश्वरस्यैव सतीधर्मद्रुहो नृप ! । ब्रूहि किं क्रियतां शत्रोरपि ते गृह
ममपृष्ठिश्चिरंभूप त्वयादग्धाऽग्निनापुरा । अहंज्वलन्तीमिवतांपश्याम्यद्याऽपिस
इदं विमानमायातंत्वयाकस्मान्निराकृतम् । देवदूतसमायुक्तंभुङ्क्ष्वभोगान्निजा

इन्द्रद्युम्न उवाच

चतुर्मुखेनतेनाऽहंस्वर्गान्निर्वासितःस्वयम् । विलक्ष्योनप्रयास्यामिपाताधिक्या
तस्माद्विवेकवैराग्यमविद्यापापनाशनम् । आलिङ्ग्याऽहंयतिष्यामिप्राप्यबोध
तन्मेगृहागतस्याऽद्य यथाऽऽतिथ्यकरोभवान् । तदादिशयथाऽपारपारदःकोऽपि

कूर्म उवाच

लोमशोनाम दीर्घायुर्मत्तोऽप्यस्तिमहामुनिः । मयाकलापग्रामे स पूर्वं दृष्टः

इन्द्रद्युम्न उवाच

तस्मादागच्छ गच्छामस्तमेवसहिता वयम् । प्राहुः पूततमां तीर्थादपिसत्सङ्ग

इत्थं निशम्य नृपतेर्वचनं तदानीं सर्वेऽपि ते षडथ तं मुनिमुख्यमा
चित्ते विधाय मुदिताः प्रययुर्द्विजेन्द्रं जिज्ञासवः सुचिरजीवितहेतुम

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर
कौमारिकाखण्डे महीप्रादुर्भावे कूर्माख्यानं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

लोमशवृत्तान्ते शिवपूजनमाहात्म्यवर्णनम्

नारद उवाच

अथ ते ददृशुः पार्थ संयमस्थं महामुनिम् । क्रियायोगसमायुक्तं तपोमूर्तिधरं यथा ॥
जटास्त्रिषवणस्नानकपिलाः शिरसातदा । धारयन्तंलोमशाख्यमाज्यसिक्तमिवाऽनलम्
सव्यहस्ते तृणौघं च च्छायार्थे विप्रसत्तमम् ।
दक्षिणे चाक्षमालां च बिभ्रतं मैत्रमार्गगम् ॥ ३ ॥
अहिंसयन्दुरुक्ताद्यैः प्राणिनो भूमिचारिणः । यः सिद्धिमेति जप्येनसमैत्रोमुनिरुच्यते
बकभूपद्विजोलूकगृध्रकूर्मा विलोक्य च । नेमुः कलापग्रामे तं चिरन्तनतपोनिधिम् ॥
स्वागतासनसत्कारेणामुनातेऽतिसत्कृताः। यथोचितंप्रतीतास्तमाहुःकार्यंहृदिस्थितम्

कूर्म उवाच

इन्द्रद्युम्नोऽयमवनीपतिः सत्रिजनाग्रणीः । कीर्तिलोपान्निरस्तोऽयं वेधसानाकपृष्ठतः
मार्कण्डेयादिभिः प्राप्यकीर्त्युद्धारं च सत्तम । नायंकामयतेस्वर्गंपुनःपातादिभीषणम्
भवताऽनुगृहीतोऽयमिहेच्छति महोदयम् । प्रणोद्यस्तदयं भूपः शिष्यस्ते भगवन्मया
त्वत्सकाशमिहाऽऽनीतो ब्रूहि साध्वस्य वाञ्छितम् ।
परोपकरणं नाम साधूनां व्रतमाहितम् । विशेषतः प्रणोद्यानां शिष्यवृत्तिमुपेयुषाम्
अप्रणोद्येषु पापेषु साधु प्रोक्तमसंशयम् । विद्वेषं मरणं चाऽपि कुरुतेऽन्यतरस्य च ॥
अप्रमत्तः प्रणोद्येषु मुनिरेष प्रयच्छति । तदेवेति भवानेवं धर्मं वेत्ति कुतो वयम् ॥

लोमश उवाच

कूर्म! युक्तमिदं सर्वं त्वयाऽभिहितमद्य नः । धर्मशास्त्रोपनतंतत्स्मारिताःस्मपुरातनम्
ब्रूहि राजन्सुविश्रब्धं सन्देहं हृदयस्थितम् । कस्ते किमब्रवीच्छेषं वक्ष्याम्यहंनसंशयः

इन्द्रद्युम्न उवाच

भगवन्प्रथमः प्रश्नस्तावदेव ममोच्यताम् । ग्रीष्मकालेऽपि मध्यस्थैरवौ
कुटीमात्रोऽपि यच्छाया तृणैः शिरसि पाणिगैः ॥ १६ ॥

लोमश उवाच

मर्तव्यमस्त्यवश्यं च काय एष पतिष्यति । कस्याऽर्थे क्रियते गेहमनित्यमव
यस्य मृत्युर्भवेन्मित्रं पीतं वाऽमृतमुत्तमम् । तस्यैतदुचितं वक्तुमिदं मे
इदं युगसहस्रेषु भविष्यमभवद्दिनम् । तदप्यद्यत्वमापन्नं का कथा मरणाव
कारणानुगतं कार्यमिदं शुक्रादभूद्वपुः । कथं विशुद्धिमायाति क्षालिताङ्गार
तदस्याऽपि कृते पापं शत्रुषड्वर्गनिर्जिताः । कथङ्कारं न लज्जन्ते कुर्वाणा नृ
तद्ब्रह्मण इहोत्पन्नः सिकताद्वयसम्भवः । निगमोक्तं पठञ्छृण्वन्निदं जीवि
तथापि वैष्णवी माया मोहयत्यविवेकिनम् । हृदयस्थं न जानन्तिह्यपिमृत्यु
दन्ताश्चलाश्चला लक्ष्मीर्यौवनं जीवितं नृप । चलाचलमतीवेदं दानमेवं गृहं
इति विज्ञाय संसारमसारं च चलाचलम् । कस्याऽर्थे क्रियते राजन्कुटजा

इन्द्रद्युम्न उवाच

चिरायुर्भगवानेव श्रूयते भुवनत्रये । तदर्थमहमायातस्तत्किमेव वचस्तव

लोमश उवाच

प्रतिकल्पं मच्छरीरादेकरोमपरिक्षयः । जायते सर्वनाशे च मम भावि प्रमा
पश्य जानुप्रदेशं मे द्व्यङ्गुलं रोमवर्जितम् । जातं वपुस्तद्बिभेमिमर्तव्येसति

नारद उवाच

इत्थं निशम्यतद्वाक्यंसप्रहस्याऽतिविस्मितः । भूपालस्तस्य पप्रच्छकारणं

इन्द्रद्युम्न उवाच

पृच्छामि त्वामहं ब्रह्मन्यदायुरिदमीदृशम् । तव दीर्घं प्रभावोऽसौदानस्यतप

लोमश उवाच

शृणु भूप! प्रवक्ष्यामि पूर्वजन्मसमुद्भवाम् । शिवधर्मयुतां पुण्यांकथां पापप्र

अहमासं पुरा शूद्रो दरिद्रोऽतीवभूतले। भ्रमामि वसुधापृष्ठे ह्यशनापीडितो भृशम्
ततो मया महल्लिङ्गं जालिमध्यगतं तदा। मध्याह्नेऽस्य जलाधारो दृष्टश्चैवाऽविदूरतः
ततः प्रविश्य तद्वारि पीत्वा स्नात्वा च शाम्भवम्।
तल्लिङ्गं स्नापितं पूजा विहिता कमलैः शुभैः ॥ ३४ ॥
अथ क्षुत्क्षामकण्ठोऽहं श्रीकण्ठं तं नमस्य च। पुनःप्रचलितो मार्गे प्रमीतोनृपसत्तम
ततोऽहं ब्राह्मणगृहे जातो जातिस्मरःसुतः। स्नापनाच्छिवलिङ्गस्यसकृत्कमलपूजनात्
स्मरन्विलसितं मिथ्या सत्याभासमिदं जगत्।
अविद्यामयमित्येवं ज्ञात्वा मूकत्वमास्थितः ॥ ३७ ॥
तेन विप्रेण वार्धक्ये समाराध्य महेश्वरम्। प्राप्तोऽहमिति मे नामईशानइतिकल्पितम्
ततः स विप्रो वात्सल्याद्गदान्सुबहून्मम। चकार व्यपनेष्यामि मूकत्वमितिनिश्चयः
मन्त्रवादान्बहून्वैद्यानुपायानपरानपि। पित्रोस्तथा महामायासम्बद्धमनसोस्तथा ॥
निरीक्ष्य मूढतां हास्यमासीन्मनसिमेतदा। तथा यौवनमासाद्यनिशिहित्वानिजंगृहम्
सम्पूज्य कमलैः शम्भुं ततः शयनमभ्यगाम्। ततः प्रमीते पितरि मूढइत्यहमुज्झितः॥
सम्बन्धिभिः प्रतीतोऽथ फलाहारमवस्थितः। प्रतीतः पूजयामीशमब्जैर्बहुविधैस्तथा
अथ वर्षशतस्याऽन्ते वरदः शशिशेखरः। प्रत्यक्षो याचितो देहि जरामरणसंक्षयम् ॥

ईश्वर उवाच

अजरामरता नास्ति नामरूपभृतो यतः। ममाऽपि देहपातः स्यादवधिं कुरु जीविते ॥
इति शम्भोर्वचः श्रुत्वा मया वृतमिदंतदा। कल्पान्ते रोमपातोऽस्तु मरणं सर्वसंक्षये
ततस्तव गणो भूयामिति मेऽभीप्सितो वरः।
तथेत्युक्त्वा स भगवान्हरश्चाऽदर्शनं गतः ॥ ४७ ॥
अहं तपसिनिष्ठश्च ततः प्रभृति चाऽभवम्। ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते शिवपूजनात्
अध्वाब्जैरितरैर्वाऽपिकमलैर्नाऽत्रसंशयः। एवंकुरु महाराजत्वमप्याप्स्यसिवाञ्छितम्
हरभक्तस्य लोकस्य त्रिलोक्यां नास्ति दुर्लभम्।
बहिःप्रवृत्तिं स गृह्य ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि च ॥ ५० ॥

लयः सदाशिवे नित्यमन्तर्योगोऽयमुच्यते। दुष्करत्वाद्बहिर्योगंशिव एव स्
पञ्चभिश्चाऽर्चनं भूतैर्विशिष्टफलदं ध्रुवम्। क्लेशकर्मविपाकाद्यैराशयैश्चाऽस्
ईशानमाराध्य जपन्प्रणवं मुक्तिमाप्नुयात्। सर्वपापक्षये जाते शिवे भवति म
पापोपहतबुद्धीनां शिवे वार्ताऽपि दुर्लभा। दुर्लभं भारते जन्म दुर्लभं शिवपूज
दुर्लभं जाह्नवीस्नानं शिवे भक्तिः सुदुर्लभा। दुर्लभं ब्राह्मणे दानं दुर्लभं वह्निपूज
अल्पपुण्यैश्च दुष्प्रापं पुरुषोत्तमपूजनम्॥ ५६॥
लक्षेण धनुषां योगस्तदर्धेन हुताशनः। पात्रं शतसहस्रेण रेवा रुद्रश्च षष्टिभिः
इतीदमुक्तमखिलं मया तव महीपते!। यथायुरभवद्दीर्घं समाराध्य महेश्वरम्॥
न दुर्लभं न दुष्प्रापं न चाऽसाध्यंमहात्मनाम्।
शिवभक्तिकृतांपुंसां त्रिलोक्यामितिनिश्चितम्॥ ५६॥
नन्दीश्वरस्य तेनैव वपुषा शिवपूजनात्। सिद्धिमालोक्यको राजञ्छङ्करं न न
श्वेतस्य च महीपस्य श्रीकण्ठंच नमस्यतः। कालोऽपिप्रलयंयातः कस्तमीशं न
यदिच्छया विश्वमिदं जायते व्यवतिष्ठते। तथा सल्लीयतेचान्ते कस्तं न शरणं
एतद्रहस्यमिदमेव नृणां प्रधानं कर्तव्यमत्र शिवपूजनमेव भूप!।
यस्याऽन्तरायपदवीमुपयान्ति लोकाः सद्यो नरः शिवनतः शिवमेति
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्व
कौमारिकाखण्डे महीप्रादुर्भावे लोमशवृत्तान्ते शिवपूजनमाहात्म्य-
वर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

लोमशनिकटे बककगृध्रकच्छपोलूकादीनां गमनं ततः शापभ्रष्टानां तेषां कृते वाराणस्यांसम्वर्तपार्श्वेगत्वासमुद्धारोपायकथनं शतरूद्रियलिङ्ग-माहात्म्येन्द्रद्युम्नेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

नारद उवाच

इतितस्य मुनीन्द्रस्य भूपतिः शुश्रुवान्वचः । प्राह नाहंगमिष्यामित्वांविहायनरंकचित्
लिङ्गमाराधयिष्येऽद्यसर्वसिद्धिप्रदंनृणाम् । त्वयैवाऽनुगृहीतोऽद्ययान्तु सर्वेयथागतम्
तद्भूपतिवचः श्रुत्वाबकोगृध्रोऽथ कच्छपः । उलूकश्चतथैवोचुः प्रणतालोमशं मुनिम्
स च सर्वसुहृद्विप्रस्तथेत्येवाऽऽहतान्स्तदा । प्रणोद्यान्प्रणतान्सर्वाननुजग्राहशिष्यवत्

शिवदीक्षाविधानेन लिङ्गपूजां समादिशत् ।
तेषामनुग्रहपरो मुनिः प्रणतवत्सलः ।
तीर्थादप्यधिकं स्थाने सतां साधुसमागमः ॥ ५ ॥

पचेलिमफलः सद्यो दुरन्तकलुषापहः । अपूर्वः कोऽपि सद्गोष्ठीसहस्रकिरणोदयः
य एकान्ततयाऽत्यन्तमन्तर्गततमोपहः । साधुगोष्ठीसमुद्भूतसुखामृतरसोर्मयः ॥७ ॥
सर्वे वराः सुधाकाराः शर्करामधुषड्रसाः । ततस्तेसाधुसंसर्गसम्प्राप्ताःशिवशासनात्
आरेभिरेक्रियायोगं मार्कण्डनृपपूर्वकाः । तेषां तपस्यतामेवंसमाजग्मे कदाचन ।

तीर्थयात्रानुषङ्गेन लोमशालोकनोत्सुकः ॥ ८ ॥

मुख्या पुरुषयात्रा हि तीर्थयात्रानुषङ्गतः । सद्भिः समाश्रितोभूपभूमिभागस्तथोच्यते
कृतार्हणातिथ्यविधिंविश्रान्तंमांचफाल्गुन ! । प्रणम्यतेऽथपप्रच्छुर्नाडीजङ्घपुरःसराः

त उचुः

शापभ्रष्टावयंब्रह्मंश्चत्वारोऽपिस्वकर्मणा । तन्मुक्तिसाधनार्थायस्थानंकिञ्चित्समादिश

इयं हि निष्फला भूमिः सफलं भारतं मुने ! ॥ १३ ॥
तत्राऽपि क्वचिदेकत्र सर्वतीर्थफलं वद। इति पृष्टस्त्वहं तैश्च तानब्रवमिदं तदा।
सम्वर्तं परिपृच्छध्वं स वो वक्ष्यति तत्त्वतः। सर्वतीर्थफलावाप्तिकारकं भूप्रदेश
त उचुः
कुत्राऽसौ विद्यते योगी नाज्ञासिष्म वयं च तम्। सम्वर्तदर्शनान्मुक्तिरिति चाऽस्मद्
यदि जानासि तं ब्रूहि सुहृत्सङ्गो न निष्फलः। ततोऽहमब्रवं तांश्च विचार्येदं पुनः
वाराणस्यामसावास्ते सम्वर्तो गुप्तलिङ्गभृत्। मलदिग्धो विवसनो भिक्षाशी कुत्
करपात्रकृताहारः सर्वथा निष्परिग्रहः। भावयन्ब्रह्म परमं प्रणवाभिधमीश्वरं
भुक्त्वा निर्याति सायाह्वे वनं न ज्ञायते जनैः। योगीश्वरोऽसौ तद्रूपाः सन्त्यन्ये लिङ्गधा
वक्ष्यामि लक्षणं तस्य यथा ज्ञास्यथ तं मुनिम्। प्रतोल्या राजमार्गे तु निशि भूमौ शवः
अविज्ञातं स्थापनीयं स्थेयं तदविदूरतः। यस्तां भूमिमुपागम्य अकस्माद्विनि
स सम्वर्तो न चाक्रामत्येष शल्यमसंशयम्। प्रष्टव्योऽभिमतं चासावुपाश्रित्य विनी
यदि पृच्छति केनाऽहमाख्यात इति मां ततः। निवेद्य चैतद्वक्तव्यं त्वामाख्यायाऽग्निमावि
तच्छ्रुत्वा ते तथा चक्रुः सर्वेऽपि वचनं मम। प्राप्य वाराणसीं दृष्ट्वा सम्वर्तं तेतथा
शवं दृष्ट्वा च तैर्न्यस्तं सम्वर्तो वै न्यवर्तत।
क्षुत्परीतोऽपि तं ज्ञात्वा ययुस्तमनु शीघ्रगम् ॥ २६ ॥
तिष्ठ ब्रह्मन्क्षणमिति जल्पन्तो राजमार्गगम्। याति निर्भर्त्सयत्येष निवर्तध्वमिति
समया मामरे भोऽद्य नागन्तव्यं न वो हितम्। पलायनमसौ कृत्वा गत्वा दूरतरं
कुपितः प्राह तान्सर्वान्केनाख्यातोऽहमित्युत ॥ २८ ॥
निवेदयति शीघ्रं मे यथा भस्म करोमि तम्। शापाग्निनाथवा युष्मान्यदि सत्यं न व
अथ प्रकम्पिताः प्राहुर्नारदेनेति तं मुनिम्। स तानाह पुनर्यातः पिशुनः क्व नु स
लोकानां येन शापाग्नौ भस्मशेषं करोमि तम्। ब्रह्मबन्धुमहं प्राहुर्भीतास्ते तं पुनर्मु
त ऊचुः
त्वां निवेद्य स चाऽस्माकं प्रविष्टो हव्यवाहनम्। तत्कालमेव विप्रेन्द्र विज्ञस्तत्र कार

सम्वर्त उवाच

अहमप्येवमेवाऽस्य कर्तातेनस्वयं कृतम् । तद्ब्रूतकार्यं नैवात्रचिरंस्थास्यामि वः कृते

अर्जुन उवाच

यदि नारद देवर्षे प्रविष्टोऽसि हुताशनम् । जीवितस्तत्कथं भूय आश्चर्यमिति मे वद

नारद उवाच

न हुताशःसमुद्रो वा वायुर्वा वृक्षपर्वतः । आयुधं वा न मे शक्ता देहपाताय भारत
पुनरेतत्कृतं चापि सम्वर्तो मन्यते यथा । अहं सन्मानितश्चेति वह्निंप्राप्याप्यगामहम्
यथा पुष्पगृहे कश्चित्प्रविशत्यङ्गफाल्गुन ! । तथाहमग्निंसम्विश्य यातवानुत्तरंशृणु

सम्वर्तस्तान्पुनः प्राह मार्कण्डेयमुखानिति ।
विशल्यः क्रियतां पन्थाः क्षुधितोऽहं पुनः पुरीम् ।
भिक्षार्थं पर्यटिष्यामि प्रश्नं प्रब्रूत चैव मे ॥ ३८ ॥

त ऊचुः

शापभ्रष्टा वयं मोक्षं प्राप्स्यामस्त्वदनुग्रहात् । प्रतिकारंतदाख्याहि प्रणतानां महामुने
यत्र तीर्थे सर्वतीर्थफलं प्राप्नोति मानवः । तत्तीर्थं ब्रूहि सम्वर्त तिष्ठामो यत्र वै वयम्

सम्वर्त उवाच

नमस्कृत्यकुमाराय दुर्गाभ्यश्च नरोत्तमाः । तीर्थंचसम्प्रवक्ष्यामि महीसागरसङ्गमम्
अमुना राजसिंहेन इन्द्रद्युम्नेन धीमता । यजनाद्व्यङ्गुलोत्सेधा कृतेयं वसुधायदा॥
तदा सन्ताप्यमानायाभुवःकाष्ठस्य वै यथा । सुस्राव यो जलौघश्चसर्वदेवनमस्कृतः
महीनाम नदीसाचपृथिव्यांयानिकानिचित् । तीर्थानितेषांसलिलसम्भवंतज्जलं विदुः
महीनाम समुत्पन्ना देशे मालवकाभिधे । दक्षिणं सागरं प्राप्ता पुण्योभयतटाशिवा
सर्वतीर्थमयी पूर्वं महीनाममहानदी । किं पुनर्यः समायोगस्तस्याश्च सरितां पतेः
वाराणसीकुरुक्षेत्रं गङ्गा रेवासरस्वती । तापीपयोष्णी निर्विन्ध्याचन्द्रभागाइरावती

कावेरी शरयूश्चैव गण्डकी नैमिषन्तथा ॥४८ ॥

गयागोदावरीचैवअरुणावरुणातथा । एताःपुण्याःशतशोन्या याःकाश्चित्सरितोभुवि

सहस्रविंशतिश्चैव षट्शतानि तथैव च । तासां सारसमुद्भूतं महीतोयंप्रकीर्ति
पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु स्नात्वा यत्फलमाप्यते । तन्महीसागरे प्रोक्तं कुमारस्यवचः
एकत्र सर्वतीर्थानां यदि संयोगमिच्छथ । तद्गच्छथ महापुण्यं महीसागरस
अहं चापि च तत्रैव बह्वन्वर्षगणान्पुरा । अवसं चागतश्चाऽत्रनारदस्य भ
स हि तत्र समीपस्थः पिशुनश्च विशेषतः । मरुत्तःकुरुतेयत्नं तस्मै ब्रूयादि
अत्रदिग्वाससांमध्ये बहूनांतत्समस्त्वहम् । निवत्स्याम्यतिप्रच्छन्नोमरुत्तादतिभ
पुनरत्रापि मां नूनंकथयिष्यति नारदः । तथाविधा हि चेष्टाऽस्य पिशुनस्य
भवद्भिश्चन चाप्यत्र वक्तव्यंकस्यचित्कचित् । मरुत्तः कुरुते यत्नं भूपालो य

देवाचार्येण संयुक्तो भ्रात्रा मे कारणान्तरे ।
गुरुपुत्रं च मां ज्ञात्वा यज्ञार्त्विज्यस्यकारणात् ॥ ५८ ॥

अविद्यान्तर्गतैर्यज्ञकर्मभिर्न प्रयोजनम् । मम हिंसात्मकैरस्तिनिगमोक्तैः
समित्पुष्पकुशप्रायैः साधनैर्यद्यचेतनैः । क्रियते तत्तथा भावि कार्यंकारणव
तद्ब्रूयंतत्रगच्छध्वंशीघ्रमेव नृपानुगाः । अस्ति विप्रः स्वयं ब्रह्मा याज्ञवल्क्यश्च
स हिपूर्वंमिथेःपुर्यांवसन्नाश्रममुत्तमम् । आगच्छमानं नकुलं दृष्ट्वा गार्गी वचो
गार्गि रक्ष पयो भद्रे नकुलोऽयमुपेति च । पयः पातुंकृतिमतिं नकुलं तं वि
इत्युक्तो नकुलः क्रुद्धः स हि क्रुद्धः पुराऽभवत् । जमदग्नेःपूर्वजैश्चशप्तःप्रोवाचवं

अहो वा धिग्धिगित्येव भूयो धिगिति चैव हि ।
निर्लज्जता मनुष्याणां दृश्यते पापकारिणाम् ॥ ६५ ॥

कथं ते नाम पापानि प्रकुर्वन्ति नराधमाः । मरणान्तरिता येषां नरके तीव्रवे
निमेषोऽपि नशक्येतजीवितेयस्यनिश्चितम् । तन्मात्रपरमायुर्यःपापंकुर्यात्कथं स
त्वंमुनेमन्यसेचेदंकुलीनोऽस्मीतिबुद्धिमान् । ततःक्षिपसिमांमूढनकुलोऽयमिति
किमधीतं याज्ञवल्क्यकायोगेश्वरता तव । निरपराधं क्षिपसि धिगधीतं हि
कस्मिन्वेदेस्मृतौकस्यांप्रोक्तमेतद्ब्रवीहिमे । परुषैरिति वाक्यैर्मांनकुलेतिब्रवीषि
किमिदं नैव जानासि यावत्यःपरुषागिरः । परःसंश्राव्यतेतावच्छङ्कवःश्रोत्रतः

कण्ठे यमानुगाःपादं कृत्वा तस्यसुदुर्मतेः । अतीवरुदतोलोहशङ्कून्क्षेप्स्यन्तिकर्णयोः
वावदूकाश्च ध्वजिनो मुष्णन्ति कृपणाञ्जनान् । स्वयंहस्तसहस्रेणधर्मस्यैवंभवद्विधाः
वज्रस्यदिग्धशस्त्रस्य कालकूटस्यचाप्युत । समेन वचसा तुल्यं मृत्योरितिममाभवत्
कर्णनासिकनाराचान्निर्हरन्तिशरीरतः । वाक्छल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्योहृदिशयोहिसः
यन्त्रपीडैः समाक्रम्य वरमेष हतो नरः । न तु तं परुषैर्वाक्यैर्जिघांसेत कथञ्चन॥७६॥
त्वया त्वहं याज्ञवल्क्य नित्यंपण्डितमानिना । नकुलोऽसीतितीव्रेणवचसाताडितःकुतः

सम्वर्त उवाच

इतिश्रुत्वा वचस्तस्य भृशंविस्मितमानसः । याज्ञवल्क्योऽब्रवीदेतत्प्रबद्धकरसंपुटः
नमोऽधर्माय महते न विद्मो यस्य वैभवम् । परमाणुमपिव्यक्तंकोऽत्रविद्यामदः सताम्
विरञ्चिविष्णुप्रमुखाःसोमेन्द्रप्रमुखास्तथा । सर्वज्ञास्तेऽपिमुह्यन्तिगणनास्माद्दृशांचका
धर्मज्ञोऽस्मीति यो मोहादात्मानं प्रतिपद्यते । स वायुंमुष्टिना बद्ध्नुमीहतेकृपणोनरः
केचिदज्ञानतो नष्टाः केचिज्ज्ञानमदादपि । ज्ञानंप्राप्यापिनष्टाश्चकेचिदालस्यतोऽधमाः
वेदस्मृतीतिहासेषु पुराणेषु प्रकल्पितम् । चतुः पादं तथा धर्मं नाऽऽचरत्यधमःपशुः
स पुरा शोचते व्यक्तं प्राप्य तच्चान्तकं गृहम् । तथाहि गृह्यकारेणश्रुतौप्रोक्तमिदंवचः
नकुलं सकुलं ब्रूयान्न कश्चिन्मर्मणिस्पृशेत् । प्रपठन्नपिचैवाहमिदं सर्वं तथा शुकः
आलस्येनाऽप्यनाचाराद्वृथाकार्यं कमङ्ग तत् ॥ ८६ ॥
केवलं पाठमात्रेण यश्चसन्तुष्यते नरः ।
तथा पण्डितमानी च कोऽन्यस्तस्मात्पशुर्मतः ॥८७ ॥
न च्छन्दांसि वृजिनात्तारयन्ति मायाविनं माययाऽऽवर्तमानम् ।
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्छंदास्येनं प्रजहत्यन्तकाले ॥ ८८ ॥
स्वर्गायबद्धकक्षो यःपाठमात्रेण ब्राह्मणः । स बालो मातुरङ्कस्थो ग्रहीतुंसोममिच्छति
तद्भवान्सर्वथा मह्यमनयंसोढुमर्हसि । सर्वः कोऽपि वदत्येवं तन्मयैवमुदा हृतम्

नकुल उवाच

वृथेदं भाषितं तुभ्यं सर्वलोकेन यत्समम् । आत्मानंमन्यसेनैतद्वक्तुंयोग्यंमहात्मनाम्

वाजिवारणलोहानां काष्ठपाषाणवाससाम्। नारीपुरुषतोयानामन्तरं महद्
अन्ये चेत्प्राकृता लोका बहुपापानि कुर्वते। प्रधानपुरुषेणापि कार्यं तत्पृष्ठतो
सर्वार्थं निर्मितं शास्त्रं मनोबुद्धी तथैव च। दत्ते विधात्रा सर्वेषांतथापियदि
ततो विधातुः को दोषस्त एव खलुदुर्भगाः। ब्राह्मणेनविशेषेण किं भाव्यंलोक
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥
तस्मात्तदामहद्भिश्चआत्मार्थंचपरार्थतः। सतांधर्मोनसन्त्याज्योन्याय्यंतच्छिक्षयं

यस्मात्त्वया पीड़ितोऽहं घोरेण वचसा मुने !।
तस्माच्छीघ्रं त्वां शप्स्यामि शापयोग्यो हि मे मतः॥ ९८॥

नकुलोऽसीतिमामाहभवांस्तस्मात्कुलाधमः। शीघ्रमुत्पत्स्यसेमोहात्त्वमेवनकुल

सम्वर्त उवाच

इति वाचंसमाकर्ण्य भाव्यर्थकृतनिश्चयः। याज्ञवल्क्योमरौदेशेविप्रस्याजायत
दुराचारस्यपापस्यनिर्घृणस्यातिवादिनः। दुष्कुलीनस्यजातोऽसौतदाजातिस्मर
सोऽथज्ञानात्समालोक्य भर्तृयज्ञ इति द्विजः। गुप्तक्षेत्रंसमापन्नो महीसागरसङ्
तत्र पाशुपतो भूत्वाशिवाराधनतत्परः। स्वायंभुवंमहाकालं पूजयन्वर्ततेऽधुना
योहिनित्यंमहाकालंश्रद्धयापूजयेत्पुमान्। सदौष्कुलीनदोषेभ्योमुच्यतेऽहिरिव
यथायथा श्रद्धयाऽसौतल्लिंगंपरिपश्यति। तथा तथा विमुच्येतदोषैर्जन्मभवो
भर्तृयज्ञस्तु तत्रैव लिङ्गस्याराधनात्क्रमात्। वीजदोषाद्विनिर्मुक्तस्तल्लिङ्गमहिमा
वभ्रुंच नकुलं प्राहविमुक्तोदुष्टजन्मतः। यस्मात्तस्मादिदं तीर्थं ख्यातंवै वभ्रु

तस्माद्व्रजध्वं तत्रैव महीसागरसङ्गमम्।
पञ्च तीर्थानि सेवन्तो मुक्तिमाप्स्यथ निश्चितम्॥ १०८॥

इत्येवमुक्त्वा सम्वर्तोययावभिमतंद्विजः। भर्तृयज्ञंमुनिंप्राप्य ते च तत्र स्थिता
ततस्तानाह स ज्ञात्वागणाञ्ज्ञानेनशाम्भवान्। महद्वो विमलं पुण्यंगुप्तक्षेत्रेय
भवन्तोऽभ्यागता यत्र महीसागरसङ्गमः। स्नानं दानं जपोहोमःपिण्डदानं वि
अक्षयं जायते सर्वं महीसागरसङ्गमे। कृतं तथाऽक्षयं सर्वं स्नानदानक्रियादि

यदाऽत्र स्थानकं चक्रे देवर्षिर्नारदःपुरा । तदा ग्रहैर्वरा दत्ताः शनिना च वरस्त्वसौ
शनैश्चरेण संयुक्ता त्वमावास्या यदाभवेत् । श्राद्धं तत्र प्रकुर्वीत स्नानदानपुरःसरम्
यदि श्रावणमासस्य शनैश्चरदिनेशुभा । कुह्वर्भवति तस्यांतु संक्रांतिंकुरुते रविः॥११५
तस्यामेव तिथौ योगो व्यतीपातो भवेद्यदि । पुष्करं नाम तत्पर्व सूर्यपर्वशताधिकम्
सर्वयोगसमावापः कथञ्चिदपि लभ्यते । तस्मिन्दिने शनिं लोहं काञ्चनंभास्करंतथा
महीसागरसंसर्गे पूजयीत यथाविधि । शनिमन्त्रैः शनिं ध्यात्वा सूर्यमन्त्रैर्दिवाकरम्
अर्घ्यं दद्याद्भास्करस्य सर्वपापप्रशान्तये । प्रयागादधिकं स्नानं दानं क्षेत्रात्कुरोरपि ॥
पिण्डदानं गयाक्षेत्राद्धिकं पाण्डुनन्दन । इदं सम्प्राप्यते पर्व महद्भिः पुण्यराशिभिः
पितॄणामक्षया तृप्तिर्जायते दिवि निश्चितम् । तथा गयाशिरःपुण्यं पितॄणांतृप्तिदंपरम्

तथा समधिकः पुण्यो महीसागरसङ्गमः ॥ १२२ ॥

अग्निश्च रेतो मृडया च देहे रेतोधा विष्णुरमृतस्य नाभिः ।
एवं ब्रुवञ्छ्रद्धया सत्यवाक्यं ततोऽवगाहेत महीसमुद्रम् ॥ १२३ ॥
मुखं च यः सर्वनदीषु पुण्यः पाथोधिरम्बा प्रवरा मही च ।
समस्ततीर्थाकृतिरेतयोश्च ददामि चार्घ्यं प्रणमामि नौमि ॥ १२४ ॥

ताम्रारस्याःपयोवाहाःपितृप्रीतिप्रदाःशुभाः । सस्यमालामहासिन्धुर्दातुर्दात्रीपृथुस्तुता

इन्द्रद्युम्नस्य कन्या च क्षितिजन्मा इरावती ॥ १२५ ॥

महीपर्णा महीशृङ्गा गङ्गा पश्चिमवाहिनी । नदी राजनदी चेति नामाष्टादशमालिकाम
स्नानकाले च सर्वत्र श्राद्धकाले पठेन्नरः । पृथुनोक्तानि नामानि यज्ञमूर्तिपदं व्रजेत् ॥
महीदोहे महानन्दसन्दोहे विश्वमोहिनि । जाताऽसि सरितां राज्ञि पापं हर महीद्रवे

इत्यर्घ्यमन्त्रः

कङ्कणं रजतस्यापि योऽत्र निक्षिपते नरः । स जायते महीपृष्ठे धनधान्ययुते कुले ॥
महीं च सागरं चैव रौप्यकङ्कणपूजया । पूजयामि भवेन्मा मे द्रव्यनाशो दरिद्रता ॥

इति कङ्कणक्षेपणम्

यत्फलं सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञैश्च यत्फलम् । तत्फलं स्नानदानेन महीसागरसङ्गमे॥१३१

विवादे च समुत्पन्ने अपराधी च यो मतः । जलहस्तः सदा वाच्योमहीसाग
संप्राप्याघोरमन्त्रेण स्थाप्यनाभिप्रमाणके । जले करं समुद्धृत्यदक्षिणंवाचये
यदि धर्मोऽत्र सत्योऽस्ति सत्यश्चेत्सङ्गमस्त्वसौ ।
सत्याश्चेत्क्रतुद्रष्टारः सत्यं स्यान्मे शुभाशुभम् ॥ १३४ ॥
एवमुक्त्वाकरं क्षिप्य दक्षिणंसकलंततः । निःसृतः पापकारीचेज्ज्वरेणापीड्यते
सप्ताहाद्दृश्यते चापि तावन्निर्दोषवान्मतः । अत्र स्नात्वाचजप्त्वाचतपस्तप्त्वा
रुद्रलोकं सुबहवो गताः पुण्येन कर्मणा । सोमवारे विशेषेण स्नात्वायोऽत्रसु
पञ्च तीर्थानि कुरुते मुच्यते पञ्चपातकैः । इत्याद्युक्तं बहुविधं तीर्थमाहात्म्य
भर्तृयज्ञः शिवस्योचे तेषामाराधने क्रमम् । शिवागमोक्तमादिश्यपूजायोगंयथा
शिवभक्तिसमुद्रैकपूरितः प्राह तान्मुनिः । न शिवात्परमो देवः सत्यमेतच्छिव
शिवं विहाय यो ह्यन्यदसत्किञ्चिदुपासते । करस्थंसोऽमृतंत्यक्त्वामृगतृष्णांप्र
शिवशक्तिमयं ह्येतत्प्रत्यक्षं दृश्यते जगत् । लिङ्गाङ्कं च भगाङ्कंच नान्यदेवाङ्कितं
यश्च तं पितरं रुद्रं त्यक्त्वामातरमम्बिकाम् । वर्ततेऽसौस्वपितरंत्यक्त्वोदपितृ
यस्य रुद्रस्य माहात्म्यं शतरुद्रीयमुत्तमम् ॥ १४३ ॥
शृणुध्वं यदि पापानामिच्छध्वं क्षालनंपरम् । ब्रह्मा हाटकलिङ्गंचसमाराध्य
जगत्प्रधानमिति च नाम जप्त्वा विराजते । कृष्णमूले कृष्णलिङ्गं नामचार्जित
सनकाद्यैश्च तल्लिङ्गं पूज्याजयुर्जगद्गतिम् । दर्भाङ्कुरमयं सप्त मुनयो विश्वयोनि
नारदस्त्वन्तरिक्षे च जगद्बीजमिदं गृणन् । वज्रमिन्द्रो लिङ्गमेवं विश्वात्मानं
सूर्यस्ताम्रं तथा लिङ्गं नाम विश्वसृजंजपन् । चन्द्रश्च मौक्तिकंलिङ्गंजपन्नामजग
इन्द्रनीलमयं वह्निर्नाम विश्वेश्वरं जपन् । पुष्परागं गुरुर्लिङ्गं विश्वयोनिं जपन्
पद्मरागमयं शुक्रो विश्वकर्मेति नाम च । हेमलिङ्गं च धनदो जपन्नाम्ना तथै
रौप्यजं विश्वदेवाश्च नामाऽपि जगताम्पतिम् ।
वायवो रीतिजं लिङ्गं शम्भुमित्येव नाम च ॥ १५१ ॥
काशजं वसवो लिङ्गं स्वयम्भुमिति नाम च । त्रिलोहं मातरो लिङ्गं नाम भूते

लौहं च रक्षसां नाम भूतभव्यभवोद्भवम् । गुह्यकाः सीसजं लिङ्गं नामयोगंजपन्तिच
जैगीषव्यो ब्रह्मरन्ध्रं नाम योगेश्वरं जपन् । निमिर्नयनयोर्लिङ्गे जपञ्शर्वेति नाम च ॥
धन्वन्तरिर्गोमयं च सर्वलोकेश्वरेश्वरम् । गन्धर्वा दारुजं लिङ्गं सर्वश्रेष्ठेति नाम च॥
वैडूर्यं राघवो लिङ्गं जगज्ज्येष्ठेति नाम च । बाणो मारकतंलिङ्गं वसिष्ठमितिनामच
वरुणः स्फाटिकं लिङ्गं नाम्ना च परमेश्वरम् । नागाविद्रुमलिङ्गंचनामलोकत्रयङ्करम्
भारती तारलिङ्गं च नाम लोकत्रयाश्रितम् । शनिश्च सङ्गमावर्ते जगन्नाथेति नाम च
शनिदेशे मध्यरात्रौ महीसागरसङ्गमे । जातीजं रावणो लिङ्गं जपन्नाम सुदुर्जयम् ॥

सिद्धाश्च मानसं नाम काममृत्युजरातिगम् ।
उञ्छजं च बलिर्लिङ्गं ज्ञानात्मेत्यस्य नाम च ॥ १६० ॥

मरीचिपाः पुष्पजं च ज्ञानगम्येति नाम च । शकृताः शकृतं लिङ्गं ज्ञानज्ञेयेति नाम च
फेनपाः फेनजं लिङ्गं नाम चापि सुदुर्विदम् । कपिलो वालुकालिङ्गं वरदंचजपन्हरम्
सारस्वतो वाचिलिङ्गं नाम वागीश्वरेति च । गणा मूर्तिमयं लिङ्गंनामरुद्रेतिचाब्रुवन्
जाम्बूनदमयं देवाः शितिकण्ठेति नाम च । शङ्खलिङ्गं बुधो नाम कनिष्ठमितिसञ्जपन्

अश्विनौ मृन्मयं लिङ्गं नाम्ना चैव सुवेधसम् ।
विनायकः पिष्टलिङ्गं नाम्ना चाऽपि कपर्दिनम् ॥ १६५ ॥

नावनीतं कुजो लिङ्गं नाम चाऽपि करालकम् । तार्क्ष्यओदनलिङ्गंचहर्यक्षेतिहिनाम च
गौडं कामस्तथा लिङ्गं रतिदं चेति नाम च । शची लवणलिङ्गंतु बभ्रुकेशेति नाम च
विश्वकर्मा च प्रासादलिङ्गं याम्येति नाम च । विभीषणश्च पांसूत्थं सुहृत्तमेतिनामच

वंशाङ्कुरोत्थं सगरो नाम सङ्गतमेव च ॥ १६८ ॥

राहुश्च रामठं लिङ्गं नाम गम्येति कीर्तयन् । लेप्यलिङ्गं तथा लक्ष्मीर्हरिनेत्रेति नामच
योगिनः सर्वभूतस्थं स्थाणुरित्येव नाम च । नानाविधंमनुष्याश्च पुरुषंनाम नाम च
तेजोमयं ऋक्षाणि भगं नाम च भास्वरम् । किन्नराधातुलिङ्गं च सुदीप्तमितिनाम च
देवदेवेति नामाऽस्ति लिङ्गं च ब्रह्मराक्षसाः । दन्तजं वारणा लिङ्गं नाम रंहसमेवच॥
सप्तलोकमयं साध्या बहुरूपेति नाम च । दूर्वाङ्कुरमयं लिङ्गमृतवः सर्वनाम च ॥१७३

कौङ्कुममप्सरसो लिङ्गं नामशम्भोःप्रियेतिच । सिन्दूरजं चोर्वशीचनामचप्रियवा
ब्रह्मचारिगुरुर्लिङ्गं नामचोष्णीषिणंविदुः । अलक्तकंचयोगिन्योनामचास्यसुभ
श्रीखण्डं सिद्धयोगिन्यः सहस्राक्षेति नाम च ।
डाकिन्यो मांसलिङ्गं च नाम चाऽस्य च मीढुषम् ॥ १७६ ॥
अप्यन्नजं च मनवो गिरिशेति च नाम च । अगस्त्योव्रीहिजंवापिसुशान्तमिति
यवजं देवलो लिङ्गं पतिमित्येव नाम च । वल्मीकजं च वाल्मीकिश्चिरवासीति
प्रतर्दनो वाणलिङ्गं हिरण्यभुजनाम च । राजिकं च तथा दैत्या नाम उग्रेतिकी
निष्पावजं दानवाश्च लिङ्गनाम च दिक्पतिम् । मेघा नीरमयं लिङ्गं पर्जन्यपति
राजमाषमयं यक्षा नाम भूतपतिं स्मृतम् । तिलान्नजं च पितरो नाम वृषपति
गौतमो गोरजमयं नाम गोपतिरेव च । वानप्रस्थाः फलमयं नाम वृक्षावृतेति
स्कन्दः पाषाणलिङ्गं च नाम सेनान्यएवच । नागश्चाश्वतरोधान्यंमध्यमेत्यस्य
पुरोडाशमयं यज्वा स्रुवहस्तेति नाम च । यमः कालायसमयं नाम प्राह च धर्
यवाङ्कुरं जामदग्न्यो भर्गदैत्येति नाम च । पुरूरवाश्चान्नमयं बहुरूपेति नाम च
मान्धाता शर्करालिङ्गं नाम बाहुयुगेति च ।
गावः पयोमयं लिङ्गं नाम नेत्रसहस्रकम् ॥ १८६ ॥
साध्या भर्तृमयं लिङ्गं नाम विश्वपतिःस्मृतम् । नारायणोनरोमौञ्जंसहस्रशिर
तार्क्ष्यं पृथुस्तथा लिङ्गं सहस्रचरणाभिधम् । पक्षिणोव्योमलिङ्गंचनामसर्वात्म
पृथिवी मेरुलिङ्गंच द्वितनुश्चाऽस्य नामच । भस्मलिङ्गं पशुपतिर्नाम चाऽस्य मह
ऋषयो ज्ञानलिङ्गं च चिरस्थानेति नाम च । ब्राह्मणा ब्रह्मलिङ्गंचनामज्येष्ठेति
गोरोचनमयं शेषो नाम पशुपतिः स्मृतम् । वासुकिर्विषलिङ्गं च नामावै शङ्कर
तक्षकः कालकूटाख्यं बहुरूपेति नाम च । हालाहलं च कर्कोट एकाक्ष इति ना
शृङ्गी विषमयं पद्मो नाम धूर्जटिरेव च । पुत्रः पितृमयं लिङ्गं विश्वरूपेति नाम
पारदं च शिवा देवी नाम त्र्यम्बक एव च ।
मत्स्याद्याः शास्त्रलिङ्गं च नाम चाऽपि वृषाकपिः ॥ १९४ ॥

एवं किं बहुनोक्तेन यद्यत्सत्त्वं विभूतिमत् । जगत्यामस्ति तज्जातंशिवाराधनयोगतः
भस्मनो यदि वृक्षत्वं ज्ञायते नीरसेवनात् । शिवभक्तिविहीनस्य ततोऽस्यफलमुच्यते
धर्मार्थकाममोक्षाणां यदि प्राप्तौभवेन्मतिः । ततोहरःसमाराध्यस्त्रिजगत्याःप्रदो मतः
य इदं शतरुद्रीयं प्रातःप्रातः पठिष्यति । तस्य प्रीतः शिवोदेवःप्रदास्यत्यखिलान्वरान्
नातः परं पुण्यतमं किञ्चिदस्ति महाफलम् । सर्ववेदरहस्यं च सूर्येणोक्तमिदं मम ॥
वाचा च यत्कृतंपापं मनसा वाऽप्युपार्जितम् । पापं तन्नाशमायाति कीर्तितेशतरुद्रिये

रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
भयान्मुच्येत भीतश्च जपेद्यः शतरुद्रियम् ॥ २०१ ॥

नाम्नां शतेन यः कुम्भैः पुष्पैस्तावद्भिरीश्वरम् । प्रणामानांशतेनापिमुच्यतेसर्वपातकैः
लिङ्गानां शतमेतच्च शतमाराधकास्तथा । नामानि च शतं सर्वदोषसंनाशकंस्मृतम् ॥
विशेषादेषु लिङ्गेषु यः पठिष्यति पञ्चसु । पञ्चभिर्विषयोद्भूतैः स दोषैः परिमुच्यते

नारद उवाच

निशम्यैवं प्रार्थ्यंतेऽपि गुप्तक्षेत्रे मुदान्विताः । पञ्चलिङ्गान्यर्चयन्तःशिवध्यानपराभवन्
ततो बहुतिथे काले प्रत्यक्षीभूय शङ्करः । प्राह तान्मुदितो देवस्तेषां भक्तिविशेषतः ॥

शिव उवाच

बलोलूकगृध्रकूर्मा इन्द्रद्युम्न च पार्थिव ! । सारूप्यां मुक्तिमापन्ना मल्लोके निवसिष्यथ
लोमशश्चापि मार्कण्डो जीवन्मुक्तौ भविष्यतः । इत्युक्तेदेवदेवेनलिङ्गंस्थापितवान्नृपः

इन्द्रद्युम्नेश्वरं नाम महाकालाख्यमित्युत ।
ज्ञात्वा तीर्थगुणान्राजा कीर्तिमिच्छंश्चिरन्तनीम् ॥ २०६ ॥

त्रिरस्यमतुलं लिङ्गं संस्थाप्येदमुवाच ह । यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥
इन्द्रद्युम्नेश्वरंलिङ्गंनन्दताच्छाश्वतीःसमाः । ततस्तथेतिभगवाञ्छिवःप्रोच्याऽब्रवीत्पुनः
अत्र यो नियतं लिङ्गमैन्द्रद्युम्नंप्रपूजयेत् । स गणो जायते नूनं मम लोके निवत्स्यति
इत्युक्त्वा सह तैश्चैव पञ्चभिः शशिशेखरः । रुद्रलोकमगाद्देवस्तेऽपिजाता गणाः पुनः
एवं प्रभावो राजाऽभूदिन्द्रद्युम्नो महीपतिः । यजता येन वीरेण निर्मितेयं महीनदी ॥

एवंविधः स पुण्योऽयं महीसागरसङ्गमः । अभूत्ततोऽपि संक्षेपात्तव पार्थ प्रकी
स्नात्वाऽत्र सङ्गमे यश्च इन्द्रद्युम्नेश्वरं नरः । पूजयेत्तस्य वासः स्याद्यत्रेशः पार्वती
सर्वबन्धहरं लिङ्गं गाणपत्यप्रदं त्विदम् । यतो बन्धान्विहायैवस्थापितंतेन फा

इतीदमुक्तं तव पुण्यकारि माहात्म्यमस्योत्तमसङ्गमस्य ।
माहात्म्यमत्यद्भुतपुण्यमिन्द्रद्युम्नेश्वरस्याऽपि च पुण्यकारि ॥ २१८॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर
महीसागरसङ्गममाहात्म्ये शतरुद्रियलिङ्गमाहात्म्येन्द्रद्युम्नेश्वरलिङ्ग-
माहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

नारदार्जुनसम्वादे कुमारेश्वरलिङ्गमाहात्म्यवर्णनम्

अर्जुन उवाच

कुमारनाथमाहात्म्यं यत्त्वयोक्तं कथान्तरे । तदहं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण मह

नारद उवाच

तारकं विनिहत्यैव वज्राङ्गतनयं प्रभुः । गुहः संस्थापयामास लिङ्गमेतच्च फाल्गु
दर्शनाच्छ्रवणाद्ध्यानात्पूजया श्रुतिवन्दनैः । सर्वपापापहः पार्थ कुमारेशो न सं

अर्जुन उवाच

अत्याश्चर्यमयी रम्या कथेयं पापनाशिनी । विस्तरेण च मे ब्रूहि याथातथ्येन ना
वज्राङ्गः कोऽप्यसौ दैत्यः किम्प्रभावश्चतारकः । कथं स निहतश्चैवजातश्चैवकथं
कथं संस्थापितं लिङ्गं कुमारेश्वरसञ्ज्ञितम् । किंफलंचास्यलिङ्गस्यब्रूहितद्विस्तरा

नारद उवाच

प्रणिपत्य कुमाराय सेनान्ये चेश्वराय च । शृणु चैकमना: पार्थ कुमारचरितं

मानसो ब्रह्मणः पुत्रो दक्षो नाम प्रजापतिः ।

षष्टिं सोऽजनयत्कन्या वीरिण्यां नाम फाल्गुन! ॥ ८ ॥

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने॥९॥

भूताङ्गिरःकृशाश्वेभ्यो द्वे द्वे चैव ददौ प्रभुः । नामधेयान्यमूषांच सपत्नीनां च मे शृणु

यासां प्रसूतिप्रभवालोकाआपूरितास्त्रयः । भानुर्लम्बाककुद्भूमिविश्वासाध्यामरुत्वती

वसुर्मुहूर्ता सङ्कल्पा धर्मपत्न्यः सुताञ्छृणु । भानोस्तु देवऋषभ इन्द्रसेनः सुतोऽभवत्

विद्योत आसील्लम्बायां ततश्च स्तनयित्नवः । ककुदः शकटः पुत्रः कीकटस्तनयोयतः

भुवो दुर्गस्तथास्वर्गोनन्दश्चैवततोऽभवत् । विश्वेदेवाश्च विश्वायाअप्रजांस्तान्प्रचक्षते॥

साध्या द्वादश साध्याया अर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः ।

मरुत्वान्सुजयन्तश्च मरुत्वत्या बभूवतुः ॥ १५ ॥

नरनारायणौ प्राद्युर्यौं तौ ज्ञानविदो जनाः । वसोश्च वसवश्चाष्टौ मुहूर्तायां मुहूर्तकाः

ये वै फलं प्रयच्छन्ति भूतानां स्वं स्वकालजम् ।

सङ्कल्पायाश्च सङ्कल्पः कामः सङ्कल्पजः सुतः ॥ १७ ॥

सुरूपाऽसूततनयान्रुद्रानेकादशैव तु । कपाली पिङ्गलो भीमो विरूपाक्षो विलोहितः॥

अजकः शासनः शास्ता शम्भुश्चान्त्यो भवस्तथा ।

रुद्रस्य पार्षदाश्चाऽन्ये विरूपायाः सुताः स्मृताः ॥ १९ ॥

प्रजापतेरङ्गिरसः स्वधा पत्नी पितॄनथ । जज्ञे सनी(ची?)तथा पुत्रमथर्वाङ्गिरसं प्रभुम्

कृशाश्वस्य च द्वे भार्ये अर्चिश्चधिषणातथा । अस्त्रग्रामो ययोःपुत्रःससंहारःप्रकीर्तितः

पतङ्गी यामिनी ताम्रा तिमिश्चाऽरिष्टनेमिनः । पतङ्ग्यसूत पतगान्यामिनीशलभानथ

ताम्रायाः श्येनगृध्राद्यास्तिमेर्यादोगणास्तथा । अथ कश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदंजगत्

शृणु नामानिलोकानांमातॄणांशङ्कराणिच । अदितिर्दितिर्दनुःसिंहीदनायुःसुरभिस्तथा

अरिष्टा विनता ग्रावा दया क्रोधवशा इरा । कद्रुर्मुनिश्च ते चोभेमातरस्ताःप्रकीर्तिताः

आदित्याश्चाऽदितेःपुत्रादितेर्दैत्याःप्रकार्तिताः।दनोश्चदानवाःप्रोक्ताराहुःसिंहीसुतोग्रहः

दनायुषस्तथा जातो दनायुश्च गणो बली । गावश्च सुरभेर्जातारिष्टापुत्रा युगन्धराः

विनतासूत अरुणं गरुडश्च महाबलम् । ग्रावायाः श्वापदाः पुत्रा गणः क्रोधवश
जातः क्रोधवशायाश्च इरायाभूरुहाःस्मृताः । कद्रूसुताःस्मृतानागामुनेरप्सरसा
तत्र द्वौतनयौ यौचदितेस्तौविष्णुनाहतौ । हिरण्यकशिपुर्वीरो हिरण्याक्षस्तथा
ततो निहतपुत्रा सा दितिराराध्य कश्यपम् । अयाचत वरं देवी पुत्रमन्यं महा
समरे शक्रहन्तारं स तस्याअददात्प्रभुः । नियमे चाऽपि वर्तस्व वर्षाणां च सह

इत्युक्ता सा तथा चक्रे पुष्करस्था समाहिता ।
वर्तन्त्या नियमे तस्याः सहस्राक्षः समाहितः ॥ ३३ ॥

उपासामाचरद्भक्त्या सा चैनमन्वमन्यत । दशवत्सरशेषस्य सहस्रस्य तदा दि

उवाच शक्रं सुप्रीता भक्त्या शक्रस्य तोषिता ।

दितिरुवाच

अत्रोत्तीर्णव्रतप्रायां विद्धि मां देवसत्तम ! ॥ ३५ ॥

भविष्यतितवभ्रातातेनसार्धमिमांश्रियम् । भोक्ष्यसेत्वंयथान्यायंत्रैलोक्यंहतकण्ट
इत्युक्त्वा निद्रयाविष्टा चरणाक्रान्तमूर्धजा । दिवा सुप्ता दितिर्देवीभाव्यर्थबलात्
तत्तु रन्ध्रमवेक्ष्यैव योगमूर्तिस्तदा विशत् । जठरस्थं दितेर्गर्भं चक्रे वज्रेण सप्त
एकैकंच पुनः खण्डं चकार मघवाततः । सप्तधा सप्तधा कोपादुद्बुध्य च ततो
न हन्तव्यो न हन्तव्य इतिसा शक्रमब्रवीत् । वज्रेण कृत्यमानानां बुद्धा सारोदं
ततः शक्रश्च मा रोदीरितितांस्तान्यथाऽवदत् । निर्गत्यजठरात्तस्मात्ततःप्राञ्जलि
उवाच वाक्यंचात्रस्तोमातरंरोषपूरिताम् । दिवास्वापं कृथामातःपादाक्रान्तशिरो
सुप्ताऽथ सुचिरं वाते छिन्नो गर्भोमयातव । कृता एकोनपञ्चाशद्भागा वज्रेण ते

सत्यं भवतु ते वाक्यं सार्धं भोक्ष्यामि तैः श्रियम् ।
दास्यामि तेषां स्थानानि दिवि यावदहं दिते ! ॥ ४४ ॥
मा रोदीरिति मे प्रोक्ताः ख्याताश्च मरुतस्त्विति ।
इत्युक्ता सा च सव्रीडा दितिर्जाता निरुत्तरा ॥ ४५ ॥

सार्धं तैर्गतवानिन्द्रो दिगन्ते वायवःस्मृताः । ततः पुनश्चभर्तारं दितिःप्रोवाचदुः

पुत्रं मे भगवन्देहि शक्रहन्तारमूर्जितम् । योनास्त्रशस्त्रैर्वध्यत्वं गच्छेत्त्रिदिववासिनाम्
न ददास्युत्तरं विद्धि मृतामेव प्रजापते ॥ इत्युक्तः स तदोवाच तां पत्नीमतिदुःखिताम्
दशवर्षसहस्राणि तपोनिष्ठा तु तप्स्यसे । वज्र सारमयैरङ्गैरच्छेद्यैरायसैर्दृढैः ॥ ४९ ॥
वज्राङ्गोनाम पुत्रस्ते भविता धर्मवत्सलः । सा तु लब्धवरा देवी जगाम तपसे वनम्
दशवर्षसहस्राणि तपो घोरं समाचरत् । तपसोऽन्ते भगवती जनयामास दुर्जयम् ॥

पुत्रमप्रतिकर्माणमजेयं वज्रदुश्छिदम् ।
स जातमात्र एवाभूत्सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ ५२ ॥

उवाच मातरं भक्त्या मातःकिंकरवाण्यहम् । तमुवाच ततोहृष्टा दितिर्दैत्याधिपंसुतम्
बहवो मे हताः पुत्राः सहस्राक्षेण पुत्रक ॥ तेषामपचितिं कर्तुमिच्छे शक्रवधादहम् ॥
बाढमित्येव स प्रोच्य जगाम त्रिदिवं बली । ससैन्यंसमरेशक्रं सचबाह्वायुधोऽजयत्
पादेनाकृष्य देवेन्द्रं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा । मातुरन्तिकमागच्छद्याचमानं भयातुरम् ॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा कश्यपश्च महातपाः । आगतौ तत्र सन्त्रस्तावथोब्रह्माजगाद तम्
मुञ्चाऽमुं पुत्र याचन्तं किमनेनप्रयोजनम् । अवमानो वधः प्रोक्तो वीरसम्भावितस्यच
अस्मद्वाक्येन यो मुक्तो जीवन्नपिमृतोहि सः । शत्रुं ये घ्नन्तिसमरैनतेवीराःप्रकीर्तिताः

कृत्वा मानपरिग्लानिं ये मुञ्चन्ति वरा हि ते ।
यथा मान्यतमं मत्वा त्वया मातुर्वचः कृतम् ॥ ६० ॥

तथा पितुर्वचःकार्यं मुञ्चाऽमुं पुत्र! वासवम् । एतच्छ्रुत्वातुवज्राङ्गःप्रणतोवाक्यमब्रवीत्
न मे कृत्यमनेनाऽस्ति मातुराज्ञा कृता मया । त्वं सुरासुरनाथो वै मम च प्रपितामहः
करिष्ये त्वद्वचो देव एवमुक्तःशतक्रतुः । नच काङ्क्षे शक्रभुक्तामिमांत्रैलोक्यराजताम्
परभुक्तायथा नारी परभुक्तामिव स्रजम् । यच्च त्रिभुवनेष्वस्ति सारंतन्मम कथ्यताम्

ब्रह्मोवाच

तपसो न परं किञ्चित्तपो हि महतांधनम् । तपसा प्राप्यतेसर्वं तपोयोग्योऽसिपुत्रक

वज्राङ्ग उवाच

तपसे मे रतिर्देव न विघ्नं तत्र मे भवेत् । त्वत्प्रसादेन भगवन्नित्युक्त्वा विरराम सः

ब्रह्मोवाच

क्रूरभावं परित्यज्ययदीच्छसितपः सुत !। अनया चित्तवुद्ध्यातत्त्वया ऽऽसंजन्मना
इत्युक्त्वापद्मजःकन्यां ससर्ज्जाऽऽयतलोचनाम् । तामस्मैप्रददौ देवःपत्न्यर्थंपद्म
वराङ्गीति च नामाऽस्याः कृतवांश्च पितामहः । जगाम च ततोब्रह्माकश्यपेनस
वज्राङ्गोऽपि तया सार्धं जगाम तपसे वनम् ।
ऊद्र्ध्वबाहुःसदैत्येन्द्रोऽतिष्ठदब्दसहस्रकम् ॥ ७० ॥
कालं कमलपत्राक्षः शुद्धबुद्धिर्महातपाः । तावानधोमुखः कालं तावत्पञ्चाग्नि
निराहारो घोरतपास्तपोराशिरजायत । ततः सोऽन्तर्जले चक्रे कालं वर्षसह
जलान्तरप्रविष्टस्य तस्य पत्नी महाव्रता । तस्यैव तीरे सरसस्तत्परा मौनमा
निराहारं पतिं मत्वा तपस्तेपेपतिव्रता । तस्यास्तपसिवर्तन्त्याइन्द्रश्चक्रेविभी
भूत्वा तु मर्कटाकारस्तस्याअभ्याशमागतः ।
अपविध्य दृशं तस्या मूत्रविष्ठे चकार सः ॥ ७५ ॥
तथा विलोलवसनां विलोलवदनांतथा । विलोलकेशांतांचक्रे विधित्सुस्तपसः
ततश्च मेषरूपेण क्लेशं तस्याश्चकार सः । ततो भुजङ्गरूपेण बद्ध्वा चरणयो
अपाकर्षत दूरं स तस्मादेवंभूतस्तथा । तपोबलाच्च सा तस्य न वध्यत्वं जग
क्षमया च महाभागा क्रोधमण्वपि नाऽकरोत् । ततो गोमायुरूपेण तमदूषय
अग्निरूपेण तस्याश्च स ददाह महाश्रमम् । चकर्ष वायुरूपेण महोग्रेण च तां
एवं सिंहवृकाद्याभिर्भीषिकाभिः पुनःपुनः ॥ ८० ॥
विरराम यदा नैव वज्राङ्गमहिषी तदा । शैलस्य दुष्टतां मत्वा शापं दातुं व्यव
तां शापाभिमुखींदृष्ट्वा शैलः पुरुषविग्रहः । उवाच तां वरारोहां त्वरयाऽथसु

शैल उवाच

नाहं महाव्रते दुष्टः सेव्योऽहं सर्वदेहिनाम् । अतिखेदं करोत्येष ततः क्रुद्धस्तु
एतस्मिन्नन्तरे जातः कालो वर्षसहस्रिकः । तस्मिन्यातेस भगवान्कालेकमल
तुष्टः प्रोवाच वज्राङ्गं तमागम्य जलाश्रये ॥ ८५ ॥

ब्रह्मोवाच

[द]दामिसर्वकामांस्ते उत्तिष्ठ दितिनन्दन । एवमुक्तस्तदोत्थाय दैत्येन्द्रस्तपसो निधिः
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं सर्वलोकपितामहम् ॥ ८६ ॥

वज्राङ्ग उवाच

[आ]सुरोमेऽस्तुमाभावःशक्रराज्येच मा रतिः । तपोधर्मरतिश्चाऽस्तुवृणोम्येतत्पितामह
[ए]वमस्त्विति तं ब्रह्मा प्राह विस्मितमानसः । उपेक्षतेचशक्रं स भाव्यर्थं कोऽतिवर्तते
[ऋ]षयो मनुजा देवाः शिवब्रह्ममुखा अपि । भाव्यर्थं नाऽतिवर्तन्ते वेलामिवमहोदधिः
[इ]तिचिन्त्यविरिञ्चोऽपितत्रैवाऽन्तरधीयत । वज्राङ्गोऽपिसमाप्ते तु तपसि स्थिरसंयमः
[आ]हारमिच्छन्स्वांभार्यांनददर्शाऽऽश्रमेस्वके। भार्याहीनोऽफलश्चेतिससञ्चिन्त्यइतस्ततः
विलोकयन्स्वकां भार्यां विधित्सुःकर्म नैत्यकम् ।
विलोकयन्ददर्शाऽथ इहाऽमुत्रसहायिनीम् ॥ ६२ ॥
रुदन्तीं स्वां प्रियां दीनां तरुप्रच्छादिताननाम् ।
तां विलोक्य ततो दैत्यः प्रोवाच परिसान्त्वयन् ॥ ६३ ॥

वज्राङ्ग उवाच

[के]नतेऽपकृतं भीरु! वर्तन्त्यास्तपसिस्वके । कथं रोदिषि वा बाले मयिजीवति भर्तरि
कं वा कामं प्रयच्छामि शीघ्रं प्रब्रूहि भामिनि ! ॥ ६४ ॥
गृहेश्वरीं सद्गुणभूषितां शुभां पङ्गवन्धयोगेन पतिं समेताम् ।
न लालयेत्पूरयेन्नैव कामं स किम्पुमान्न पुमान्मे मतोऽस्ति ॥ ६५ ॥

[इ]ति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे [कौ]मारिकाखण्डे कुमारेश्वरमहात्म्ये वज्राङ्गेतिहासवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

कुमारेशमाहात्म्ये तारकासुरोत्पत्तिवर्णनम्

वराङ्ग्युवाच

नाशितास्म्यपविद्धाऽस्मित्रासितापीडिताऽस्मिच । रौद्रेणदेवनाथेननष्टनाथेवभूः
दुःखपारमपश्यन्तीप्राणांस्त्यक्तुंव्यवस्थिता । पुत्रं मे घोरदुःखस्य तारकंदेहि के
एवमुक्तस्तुदैत्येन्द्रो दुःखितोऽचिन्तयद्धृदि । आसुरेष्वपिभावेषुस्पृहायद्यपिनाः

तथापि मन्ये शास्त्रेभ्यस्त्वनुकम्प्या प्रियेति यत् ।
सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् ॥ ४ ॥

व्यसनार्णवमत्येति जलयानैरिवार्णवम् । यामाश्रित्येन्द्रियारातीन्दुर्जयानितर
गेहिनो हेलयाजिग्युर्दस्यून्दुर्गपतिर्यथा । न केऽपिप्रभवस्तां चाऽप्यनुकर्तुं गृहेश्व
अथाऽऽयुषावाकात्स्न्येनधर्मे दित्सुर्यथैवच । यस्यांभवतिचात्मैवततोजाया वि
भर्तव्याएव यस्माच्च तस्माद्भार्येति सा स्मृता । सा एवगृहमुक्तंचगृहिणीसाततः
संसारकल्मषात्त्रात्रीकलत्रमितिसा ततः । एवंविधां प्रियां को वै नाऽनुकम्पितुम
त्रीणि ज्योतींषिपुरुषइति वै देवलोऽब्रवीत् । भार्याकर्मचविद्याचसंसाध्यंयत्नत
तदेनांपीडितां चेद्यः पतिर्भूत्वा न पालये । ततो यास्ये शास्त्रवादान्नरकान्दंन सं
अहमप्येनमिन्द्रं वै शक्तोजेतुंयथानृणाम् । पुनःकामंकरिष्येऽस्यादास्येपुत्रंमहाबल
इति सञ्चिन्त्यवज्राङ्गः कोपव्याकुललोचनः । प्रतिकर्तुं महेन्द्राय तपोभूयो व्यवस
ज्ञात्वातु तस्यसङ्कल्पं ब्रह्मा क्रूरतरम्पुनः । आजगाम त्वरायुक्तो यत्राऽसौदितिनन्द

उवाचैनं स भगवान्प्रभुर्मधुरया गिरा ॥ १५ ॥

ब्रह्मोवाच

किमर्थं भूय एव त्वं नियमंक्रूरमिच्छसि । आहाराभिमुखोदैत्यतन्मेब्रूहि महाव्रतः
यावनब्दसहस्रेणनिराहारेण वै फलम् । त्यजता प्राप्तमाहारं लब्धं ते क्षणमात्र

त्यागो ह्यप्राप्तकामानांन तथा च गुरुःस्मृतः । यथाप्राप्तंपरित्यज्यकामं कमललोचन
श्रुत्वैतद्ब्रह्मणो वाक्यं दैत्यःप्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ १८ ॥

दैत्य उवाच

त्यर्थेऽहं करिष्यामि तपोघोरं पितामह ! । पुत्रार्थमुद्यतश्चाऽहं यःस्याद्गीर्वाणदर्पहा
एतच्छ्रुत्वावचोदेवः पद्मगर्भोद्भवस्तदा । उवाच दैत्यराजानं प्रसन्नश्चतुराननः ॥ २०॥

ब्रह्मोवाच

अलन्ते तपसा वत्स मा क्लेशे विस्तरे विश । पुत्रस्ते तारकोनामभविष्यतिमहाबलः
देवसीमन्तिनीकास्यधम्मिल्लक विमोक्षणः । इत्युक्तो दैत्यराजस्तु प्रणम्य प्रपितामहम्
विसृज्यगत्वा महिषींनन्दयामासतांमुदा । तौ दम्पती कृतार्थौचजग्मतुश्चाऽऽश्रमंतदा
आहितं च ततो गर्भं वराङ्गी वरवर्णिनी । पूर्णं वर्षसहस्रं तु दधारोदर एव हि ॥
ततो वर्षसहस्रान्ते वराङ्गी समसूयत । जायमाने तु दैत्येन्द्रे तस्मिल्लोकभयङ्करे
चचाल सकलापृथ्वी प्रोद्धूताश्च महार्णवाः । चेलुर्धराधराश्चापिववुर्वाताविभीषणाः
जेपुर्जप्यं मुनिवरा व्याघ्रविद्धा मृगा इव । जहुःकान्तिचसूर्याद्यानीहाराश्छादयन्दिशः
जाते महासुरेतस्मिन्सर्वएव महासुराः । आजग्मुर्हर्षितास्तत्र तथाचाऽसुरयोषितः
जगुर्हर्षसमाविष्टा ननृतुश्चाऽसुराङ्गनाः । ततो महोत्सवे जाते दानवानां पृथासुत !॥
विषण्णमनसोदेवाः समहेन्द्रास्तदाऽभवन् । जातमात्रस्तुदैत्येंद्रस्तारकश्चण्डविक्रमः

अभिषिक्तोऽसुरो दैत्यैः कुरङ्गमहिषादिभिः ।
सर्वासुरमहाराज्ये युतः सर्वैर्महासुरैः ॥ ३१ ॥

स तु प्राप्तमहाराज्यस्तारकः पाण्डुसत्तम ! । उवाचदानवश्रेष्ठान्युक्तियुक्तमिदं वचः
शृणुध्वमसुराः सर्वे वाक्यं मम महाबलाः । श्रुत्वा वःस्थेयसीबुद्धिः क्रियतांवचनेमम
अस्माकं जातिधर्मेण विरूढंवैरमक्षयम् । करिष्याम्यहं तद्वैरं तेषां च विजयाय च
किं तु तत्तपसासाध्यं मन्येऽहंसुरसङ्गमम् । तस्मादादौकरिष्यामितपोघोरंदनोःसुताः
ततःसुरान्विजेष्यामोभोक्ष्यामोऽथजगत्त्रयम् ।युक्तोपायोऽहिपुरुषःस्थिरश्रीरेवजायते
अयुक्तश्चपलः प्राप्तामपि रक्षितुमक्षमः । तच्छ्रुत्वा दानवाःसर्वे वाक्यंतस्याऽसुरस्य तु

साधुसाध्वित्यथोचुस्ते वचनं तस्य विस्मिताः ।
सोऽगच्छत्पारियात्रस्य गिरेः कन्दरमुत्तमम् ॥ ३८ ॥

सर्वर्तुकुसुमाकीर्णनानौषधिविदीपितम् । नानाधातुरसस्राविचित्रनानागृहाश्र
अनेकाकारबहुलं पृथक्पक्षिकुलाकुलम् । नानाप्रस्रवणोपेतं नानाविधजला
प्राप्य तत्कन्दरं दैत्यश्चकारविपुलं तपः । वहन्पाशुपतीं दीक्षां पञ्चमन्त्राञ्जपन्
निराहारःपञ्चतपा वर्षायुतमभूत्किलः । ततः स्वदेहादुत्कृत्य कर्षंकर्षं दिनेदिने
मांसस्याऽग्नौ जुहावैव ततो निर्मांसतां गतः । ततो निर्मांसदेहःस तपोराशिरज
जज्वलुः सर्वभूतानि तेजसा तस्य सर्वतः । उद्विग्नाश्चसुराः सर्वे तपसा तस्यभी
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा परमंतोषमागतः । तारकस्य वरं दातुं जगाम शिखरं गिरे
प्राप्य तं शैलराजानं हंसस्यन्दनमास्थितः । उवाच तारकं देवो गिरा मधुरया

ब्रह्मोवाच

उत्तिष्ठ पुत्र तपसोनास्त्यसाध्यंतवाऽधुना । वरं वृणीष्वाऽभिमतं यत्ते मनसि
इत्युक्तस्तारको दैत्यः प्राञ्जलिः प्राह तं विभुम् ॥ ४८ ॥

तारक उवाच

वयं प्रभो!जातिधर्माःकृतवैराःसहामरैः । तैश्च निःशेषितादैत्याः कृताः क्रूरैर्नृशंसवत्
तेषामहं समुद्धर्ता भवेयमिति मे मतिः । अवध्यः सर्वभूतानामस्त्राणां च महौजस
स्यामहं चामरैश्चैव वरो मम हृदि स्थितः । एतन्मे देहि देवेश! नान्यं वै रोचये
तमुवाचततो दैत्यं विरञ्चोऽमरनायकः । न युज्यते विना मृत्युं देहिनो देहधार
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः सत्यमेतच्छ्रुतीरितम् ॥ ५२ ॥
इति सञ्चिन्त्य वरय वरं यस्मान्न शङ्कसे । ततः सञ्चिन्त्यदैत्येन्द्रःशिशुतःसप्तवासर

तारक उवाच

वासराणां च सप्तानां वर्जयित्वातुबालकम् । देवानामप्यवध्योऽहंभूयासंतेनयावि
वव्रेमहासुरोमृत्युंब्रह्माणं मानमोहितः । ब्रह्मा प्रोचे ततस्तं च तथेति हरवाक्
जगाम त्रिदिवं देवो दैत्योऽपिस्वकमालयम् । उत्तीर्णं तपसस्तंचदैत्यंदैत्येश्वरास

परिवव्रुः फलाकीर्णं वृक्षं शकुनयोयथा। तस्मिन्महति राजस्थे तारके दितिनन्दने॥
ब्रह्मणाऽभिहितस्थाने महार्णवतटोत्तरे। तरवो जज्ञिरे पार्थ तत्र सर्वर्तवः शुभाः॥
कान्तिर्द्युतिर्धृतिर्मेधा श्रीरखण्डा च दानवम्। परिवव्रुर्गुणाकीर्णंनिश्छिद्राःसर्वएवहि
कालागरुविलिप्ताङ्गं महामुकुटमण्डितम्। रुचिराङ्गदसन्नद्धं महासिंहासने स्थितम्
नृत्यन्त्यप्सरसः श्रेष्ठागन्धर्वागाययन्ति च। चन्द्रार्कौदीपमार्गेषुव्यजनेषु च मारुतः॥

ग्रहा अग्रेसरास्तस्य जीवादेशप्रभाषिणः॥ ६१॥

एवं स्वकाद्बहुबलात्स दैत्यः सम्प्राप्य राज्यं परिमोदमानः।
कदाचिदाभाष्य जगाद मन्त्रिणः प्रोद्धत्तसर्वाङ्गबलेन दर्पितः॥ ६२॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेशमाहात्म्ये तारकासुरोत्पत्तिवर्णनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः॥१६

षोडशोऽध्यायः

तारकासुरदेवेन्द्रयुद्धोपक्रमे देवदैत्यसैन्ययोर्युद्धवर्णनम्

तारक उवाच

राज्येनबुद्बुदाभेन स्त्रीभिरक्षैश्च पानकैः। मोहितो जन्म लब्ध्वाऽत्र त्यजतेपौरुषंनरः

जन्म तस्य वृथा सर्वमाकल्पान्तं न संशयः॥ २॥

मातापितृभ्यां न करोति कामान्बन्धूनशोकान्न करोति यो वा।
कीर्तिं हि वा नाऽर्जयते न मानं नरः स जातोऽपि मृतोऽत्र लोके॥ ३॥

तस्माज्जयायाऽमरपुङ्गवानां त्रैलोक्यलक्ष्मीहरणाय शीघ्रम्।
संयोज्यतां मे रथमष्टचक्रं बलं च मे दुर्जयदैत्यचक्रम्॥ ४॥

ध्वजं च मे काञ्चनपट्टबन्धं छत्रं च मे मौक्तिकजालबद्धम्।
अद्याऽहमासां सुरकामिनीनां धम्मिल्लकांश्चाऽग्रथितान्करिष्ये॥ ५॥

यथा पुरा मकरटको जनन्यास्तस्याश्च सत्येन तु तारकः स्याम् ॥ १

नारद उवाच

तारकस्य वचःश्रुत्वाग्रसनोनामदानवः । सेनानीर्दैत्यराजस्य तथा चक्रेऽविल
आहत्य भेरीं गम्भीरां दैत्यानाहूय सत्वरः । सज्जं चक्रे रथं दैत्योदैत्यराजस्य
गरुडानां सहस्रेण गरुडोपमितत्विषा । ते हि पुत्राः स्ववर्णस्य संस्थिता मे
विजित्य दैत्यराजेन वाहनत्वे प्रकल्पिता : । अष्टाष्टचक्रः सरथश्चतुर्योजनवि
नानाक्रीडागृहयुतो गीतवाद्यमनोहरः । गन्धर्वनगराकारः संयुक्तः प्रत्यदृश्यत ॥
आजग्मुस्तत्रदैत्याश्चदशचण्डपराक्रमाः । कोटिकोटिपरीवारा अन्ये च वहवो
तेषामग्रेसरो जम्भः कुजम्भोऽनन्तरस्तथा । महिषः कुञ्जरो मेषः कालनेमिर्निमि
मथनोजम्भकःशुम्भोदैत्येन्द्रादशनायकाः । दैत्येन्द्रागिरिवर्ष्माणःसन्तिचण्डपरा
नानाविधप्रहरणा नानाशस्त्रास्त्रपारगाः । तारकस्याभवत्केतुर्बहुरूपो महाभ
क्वचिच्च राक्षसोघोरः पिशाचध्वाङ्क्षगृध्रकः । एवं बहुविधाकारः सकेतुः प्रत्य
केतुना मकरेणाऽपि सेनानीर्ग्रसनो बभौ । पैशाचंयत्र वदनंजम्भस्याऽऽसीद्यस
खरोविधुतलाङ्गूलःकुजम्भस्याऽभवद्ध्वजे । महिषस्यचगोमायुःकान्तोहैमस्तथा
गृध्रोवैकुञ्जरस्याऽऽसीन्मेषस्याऽभूच्चराक्षसः । कालनेमेर्महाकालोनिमेरासीन्महा

राक्षसीमथनस्याऽपि ध्वाङ्क्षोऽभूज्जम्भकस्य च ।
महावृकश्च शुम्भस्य ध्वजाएवम्बिधावभुः ॥ २० ॥
अनेकाकारविन्यासादन्येषां च ध्वजा भवन् ।
शतेन शीघ्रवेगानां व्याघ्राणां हेममालिनाम् ॥ २१ ॥

ग्रसनस्य रथो युक्तो महामेघरवो बभौ । शतेन चाऽपिसिंहानां रथोजम्भस्ययो
कुजम्भस्य रथो युक्तः पिशाचवदनैः खरैः । तावद्भिर्महिषस्योष्ट्रैर्गजस्य च हयै
मेषस्य द्वीपिभिर्भीमैः कुञ्जरैः कालनेमिनः । पर्वतं वै समारूढो निश्चित्यविवृतं
चतुर्दंष्ट्रैर्गन्धवद्भिश्चतुर्भिर्मेघसन्निभैः । शतहस्तायते कृष्णे तुरङ्गे हेमभूषणे ॥ २
सितचामरजालेन शोभिते पुष्पदामनि । मथनोनाम दैत्येन्द्रः पाशहस्तो व्यराज

किङ्किणीमालिनं चोष्ट्रमारूढोऽभूच्च जम्भकः । कालमुञ्चं महामेघमारूढःशुम्भदानवः
अन्ये च दानवा वीरा नानावाहनहेतयः । प्रचण्डचित्रवर्माणः कुण्डलोष्णीषभूषिताः
नानाविधोत्तरासङ्गा नानामाल्यविभूषणाः ।
नानासुगन्धगन्धाढ्या नानाबन्दिशतस्तुताः ॥ २९ ॥
नानावाद्यपरिस्यन्दसाग्रेसरमहारथाः । नानाशौर्यकथासक्तास्तस्मिन्सैन्ये महारथाः
तद्बलं दैत्यसिंहस्य भीमरूपं व्यदृश्यत । भूमिरेणुसमालिङ्गत्तुरङ्गरथपत्तिकम् ॥ ३१ ॥
स च दैत्येश्वरः क्रुद्धः समारूढो महारथम् । दशभिः शुशुभे दैत्यैर्दशबाहुरिवेश्वरः ॥
जगद्धन्तुं प्रवृत्तो वा प्रतस्थेऽसौ सुरान्प्रति ॥ ३२ ॥
एतस्मिन्नन्तरे वायुर्देवदूतः सुरालयम् । दृष्ट्वा तद्दानवबलं जगामेन्द्रस्य शंसितुम् ॥३३
स गत्वातु सभां दिव्यां महेन्द्रस्यमहात्मनः । शशंसमध्येदेवानामिदंकार्यमुपस्थितम्
तच्छ्रुत्वा देवराजः स निमीलितविलोचनः । वृहस्पतिमुवाचेदं वाक्यंकाले महामतिः

इन्द्र उवाच

सम्प्राप्तोऽतिविमर्दोऽयं देवानांदानवैःसह । कार्यं किमत्रतद्ब्रूहि नीत्युपायोपबृंहितम्
एतच्छ्रुत्वा च वचनं महेन्द्रस्य गिराम्पतिः । प्रत्युवाच महाभागो वृहस्पतिरुदारधीः

वृहस्पतिरुवाच

सामपूर्वं स्मृता नीतिश्चतुरङ्गामनीकिनीम् । जिगीषतां सुरश्रेष्ठ! स्थितिरेषा सनातनी
साम दानं च भेदश्च चतुर्थो दण्ड एव च । नीतौ क्रमात्प्रयोज्याश्च देशकालविशेषतः
तत्र साम प्रयोक्तव्यमार्येषु गुणवत्सु च । दानं लुब्धेषु भेदश्च शङ्कितेष्विति निश्चयः
दण्डश्चाऽपि प्रयोक्तव्यो नित्यकालं दुरात्मसु ।
साम दैत्येषु नैवाऽस्ति निर्गुणत्वाद्दुरात्मसु ॥४१ ॥
श्रिया तेषांच किंकार्यंसमृद्धानांतथापि यत् । जातिधर्मेणचाऽभेद्याविधातुरपितेमताः
एको ह्युपायो दण्डोऽत्र भवतां यदि रोचते । दुर्जनः सुजनत्वाय कल्पते न कदाचन
लालितः पालितो वाऽपिस्वस्वभावंनमुञ्चति । एवंमेमन्यतेबुद्धिर्भवन्तोयद्व्यवस्यताम्
एवमुक्तः सहस्राक्ष एवमेवेत्युवाच ह । कर्तव्यतां च सञ्चिन्त्य प्रोवाचाऽमरसंसदि ॥

बहुमानेन मे वाचं शृणुध्वं नाकवासिनः ॥ ४६ ॥
भवन्तो यज्ञभोक्तारःसतामिष्टाश्चसात्त्विकाः । स्वेस्वेपदेस्थितानित्यंजगतःपालने
भवतां च निमित्तेन बाधन्ते दानवेश्वराः । तेषांसामादि नैवास्तिदण्डएवविधीय
क्रियतां समरेबुद्धिःसैन्यंसंयोज्यतामिति । आवाह्यन्तांचशस्त्राणिपूज्यन्तांशस्त्रदे
इत्युक्ताः समनह्यन्त देवानां ये प्रधानतः । वाजिनामयुतेनाऽजौ हेमपट्टपरिष्कृता
वाहनानि विमानानि योजयन्तुममाऽमराः । यमं सेनापतिं कृत्वा शीघ्रं निर्यातदेव
नानाश्चर्यगुणोपेता दुर्जया देवदानवैः । रथो मातलिना युक्तो महेन्द्रस्याऽप्यदृश्य
यमो महिषमास्थाय सेनाग्रे समवर्तत । चण्डकिङ्किणिवृन्देन सर्वतः परिवारित
कल्पकालोज्ज्वलज्वालापूरिताम्बरगोचरः । हुताश उरणारूढःशक्तिहस्तोव्यवस्थि
पवनोऽङ्कुशपाणिस्तु विस्तारितमहाजवः । महाऋक्षं समारूढः सेनाग्रे समदृश्यत
भुजगेन्द्रं समारूढो जलेशो भगवान्स्वयम् । महापाशधरो वीरः सेनायां समवर्तत
नरयुक्ते रथे दिव्ये धनाध्यक्षो व्यचीचरत् । महासिंहरवो युद्धे गदाहस्तोव्यवस्थि
राक्षसेशोऽथ निर्ऋतो रथे रक्षोमुखैर्हयैः । धन्वी रक्षोगणवृतो महारावो व्यदृश्य
चन्द्रादित्यावश्विनौ च वसवः साध्यदेवताः । विश्वेदेवाश्चरुद्राश्च सन्नद्धास्तस्थुराह
हेमपीठोत्तरासङ्गाश्चित्रवर्मायुधध्वजाः । गन्धर्वाः प्रत्यदृश्यन्त कृत्वा विश्वावसुं पु
तथा रक्तोत्तरासङ्गा निर्मलायोविभूषणाः । गृध्रध्वजा अदृश्यन्त राक्षसा रक्तमूर्ध
तथा भीमाशनिकराः कृष्णवस्त्रा महारथाः ।
यक्षास्तत्र व्यदृश्यन्त मणिभद्रादिकोटिशः ॥ ६२ ॥
ताम्रोलूकध्वजा रौद्रा द्वीपिचर्माम्बरास्तथा । पिशाचास्तत्रराजन्ते महावेगपुरःसर
तथैव श्वेतवसनाः सितपट्टपताकिनः । मत्तेभवाहनप्रायाः किन्नरास्तस्थुराहवे ॥६
मुक्ताजालपरिष्कारो हंसो हारसमप्रभः । केतुर्जलधिनाथस्य सौम्यरूपो व्यराजत
पद्मरागमहारत्नविटङ्को धनदस्य च । ध्वजः समुत्थितो भाति यातुकाम इवाऽम्ब
कार्ष्णलोहमयोध्वाङ्क्षोयमस्याऽभून्महाध्वजः । राक्षसेशस्यवदनंप्रेतस्यध्वजआव
हेमसिंहध्वजौ देवौ चन्द्रार्कावमितद्युती । कुम्भेन चित्रवर्णेन केतुराश्विनयोरभूत्

मातङ्गो हेमरचितश्चित्ररत्नपरिष्कृतः । ध्वजः शतक्रतोरासीत्सितचामरसंस्थितः ॥
अन्येषां च ध्वजास्तत्र नानारूपा बभू रणे । सनागयक्षगन्धर्वमहोरगनिशाचरा ॥७०
सेना सा देवराजस्य दुर्जया प्रत्यदृश्यत । कोटयस्तास्त्रयस्त्रिंशन्नानादेवनिकायिनाम्

हैमाचलाभे सितकर्णचामरे सुवर्णपद्मामलसुन्दरस्रजि ।
कृताभिरामोज्ज्वलकुङ्कुमाङ्कुरे कपोललीलावि(धि)विमुक्तरावे ॥ ७२ ॥
श्रितस्तदैरावणनामकुञ्जरे महाबलश्चित्रविशेषिताम्बरः ।
विशालवज्राङ्गवितानभूषितः प्रकीर्णकेयूरभुजाग्रमण्डलः ॥ ७३ ॥
सहस्रदृग्वन्दिसहस्रसंस्तुतस्त्रिविष्टपेऽशोभत पाकशासनः ॥ ७४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे तारकासुरदेवेन्द्रयुद्धोपक्रमवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

तारकसैन्यदेवसैन्ययोर्मध्ये यमग्रसनयोर्युद्धवर्णनम्

नारद उवाच

ततस्तयोः समायोगः सेनयोरुभयोरभूत् । युगान्ते समनुप्राप्ते यथा क्षुब्धसमुद्रयोः ॥
सुरासुराणां सम्मर्दे तस्मिन्परमदारुणे । तुमुलं सुमहत्क्रान्ते सेनयोरुभयोरपि ॥ २॥
गर्जतां देवदैत्यानां शंखभेरीरवेण च । तूर्याणां चैव निर्घोषैर्मातङ्गानां च बृंहितैः ॥
हेषितैर्हयवृन्दानां रथनेमिस्वनेन च । घोषेण चैव तूर्याणां युगान्त इव चाऽभवत् ॥
रोषेणाऽभिपरीताङ्गास्त्यक्तजीवितचेतसः ।समसज्जन्तते ऽन्योन्यंप्रक्रमेणाऽतिलोहिताः
रथा रथैः समासक्ता गजाश्चाऽपिमहागजैः । पत्तयः पत्तिभिश्चैव हयाश्चाऽपिमहाहयैः
ततः प्रासाशनिगदाभिण्डिपालपरश्वधैः । शक्तिभिः पट्टिशैः शूलैर्मुद्गरैः कणयैर्गुडैः ॥
चक्रैश्च शक्तिभिश्चैव तोमरैरङ्कुशैरपि । कर्णिनालीकनाराचवत्सदन्तार्द्धचन्द्रकैः ॥८॥

भल्लैर्वैतसपत्रैश्च शुकतुण्डैश्च निर्मलैः। वृष्टिभिश्चाऽद्भुताकारैर्गगनं समपद्यत॥
सम्प्रच्छाद्य दिशः सर्वास्तमोमयमिवाऽभवत्।
प्राज्ञायन्त न तेऽन्योन्यं तस्मिंस्तमसि सङ्कुले॥ १०॥
अदृश्यभूतास्तमसि न्यकृन्तत परस्परम्। ततो भुजैर्ध्वजैश्छत्रैः शिरोभिश्चसङ्कुल
गजैस्तुरङ्गैः पादातैः पतद्भिः पतितैरपि। आकाशशिरसो भ्रष्टैः पङ्कजैरिव भूक्षि
भग्नदन्ता भिन्नकुम्भाश्छिन्नदीर्घमहाकराः। गजाः शैलनिभाः पेतुर्धरण्यां रुधिर
भग्नेषाश्च रथाः पेतुर्भग्नाक्षाः शकलीकृताः। पत्तयः कोटिशःपेतुस्तुरङ्गाश्च सहस्र
ततः शोणितनद्यश्च हर्षदाः पिशिताशिनाम्। वैतालानन्ददायिन्योऽथजायन्तसह
तस्मिंस्तथाविधे युद्धे सेनानीर्ग्रसनोऽरिहा। बाणवर्षेण महता देवसैन्यमकम्पय
ततो ग्रसनमालोक्य यमः क्रोधविमूर्छितः। ववर्ष शरवर्षेण विशेषादग्निवर्चसा॥
स विद्धो बहुभिर्बाणैर्ग्रसनोऽतिपराक्रमः। कृतप्रतिकृताकांक्षी धनुरानम्य भैरव
शरैः सहस्रैश्च पञ्चलक्षैश्चैव व्यताडयत्। ग्रसनेन विमुक्तांस्ताञ्छरान्सोऽपिनिवा
बाणवृष्टिभिरुग्राभिर्यमो ग्रसनमर्दयत्। कृतान्तशरवृष्टीनां सन्ततीः प्रतिसर्पि
चिच्छेद शरवर्षेण ग्रसनो दानवेश्वरः॥ २०॥
विफलां तां समालोक्य यमः स्वशरसन्ततिम्॥ २१॥
प्राहिणोन्मुद्गरं दीप्तं ग्रसनस्य रथं प्रति। स तं मुद्गरमायान्तमुत्पत्य रथसत्तमा
जग्राह वामहस्तेन लीलया ग्रसनोऽरिहा। तेनैव मुद्गरेणाऽथ यमस्य महिषं रुषा
ताडयामास वेगेन स पपात महीतले। उत्पत्याऽथ यमस्तस्मान्महिषान्निपतित
प्रासेन ताडयामास ग्रसनं वदने दृढम्। स तु प्राप्तप्रहारेण मूर्छितो न्यपतद्भुवि
ग्रसनं पतितं दृष्ट्वा जम्भो भीमपराक्रमः।
यमस्य भिण्डिपालेन प्रहारमकरोद्धृदि॥ २६॥
यमस्तेन प्रहारेण सुस्राव रुधिरं मुखात्। अतिगाढप्रहारार्त्तः कृतान्तोमूर्छितोऽभ
कृतान्तमर्दितं दृष्ट्वा गदापाणिर्धनाधिपः। वृतो यक्षायुतगणैर्जम्भं प्रत्युद्ययौ रुषा
जम्भो रुषा तमायान्तं दानवानीकसम्वृतः। जग्राहवाक्यंराज्ञस्तुयथाग्निर्धनेनभावि

ग्रसनो लब्धसञ्ज्ञोऽथयमस्यप्राहिणोद्गदाम् । मणिहेमपरिष्कारांगुर्वींपरिघमर्दिनीम्
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य गदां महिषवाहनः । गदायाः प्रतिघातार्थं जगज्ज्वलनभैरवम्
दण्डं मुमोचकोपेनज्वालामालासमाकुलम् । सगदांवियतिप्राप्यररासाऽम्बुधरोद्धतम्
सङ्घट्टश्चाऽभवत्ताभ्यां शैलाभ्यामिवदुःसहः । ताभ्यां निष्पेषनिर्ह्रादजडीकृतदिगन्तरम्
जगद्व्याकुलतां यातं प्रलयागमशङ्कया । क्षणात्प्रशान्तनिर्ह्रादं ज्वलदुल्कासमाचितम्
निष्पेषणं तयोर्भीममभूद्गगनगोचरम् । निहत्याऽथ गदां दण्डस्ततो ग्रसनमूर्धनि॥३५
पपात पौरुषं हत्वा यथा दैवं पुराऽर्जितम् । स तु तेन प्रहारेण दृष्ट्वा सतिमिरादिशः
पपात भूमौ निःसञ्ज्ञो भूमिरेणुविभूषितः । ततो हाहारवो घोरः सेनयोरुभयोरभूत्
ततो मुहूर्तमात्रेणग्रसनःप्राप्य चेतनाम् । अपश्यत्स्वांतनुंध्वस्तांविलोलाभरणाम्बराम्
स चाऽपिचिन्तयामास कृतप्रतिकृतक्रियाम् । धिगस्तु पौरुषं मह्यं प्रभोरग्रेसरःकथम्

मय्याश्रितानि सैन्यानि जिते मयि जितानि च ।
असम्भावितरूपो हि सज्जनो मोदते सुखम् ॥ ४० ॥

सम्भावितस्त्वशक्तश्चेत्तस्यनाऽथम्परोऽपिवा । एवंसञ्चिन्त्यवेगेनसमुत्तस्थौमहाबलः
मुद्गरं कालदण्डाभं गृहीत्वा गिरिसन्निभम् । ग्रसनो घोरसङ्कल्पः सन्दष्टौष्ठपुटच्छदः
रथेन त्वरितोऽगच्छद्दाससादाऽन्तकं रणे । समासाद्य यमं युद्धे ग्रसनो भ्राम्यमुद्गरम्
वेगेन महता रौद्रं चिक्षेप यममूर्धनि । विलोक्य मुद्गरं दीप्तं यमः सम्भ्रान्तलोचनः ॥
वञ्चयामास दुर्द्धर्षं मुद्गरं तं महाबलः । तस्मिन्नपसृते दूरं चण्डानां भीमकर्मणाम् ॥
याम्यानां किङ्कराणां च अयुतं निष्पिपेष ह । ततस्तदयुतं दृष्ट्वा हतं किङ्करवाहिनी ॥
दशार्बुदमिता क्रुद्धा ग्रसनायाऽन्वधावत । ग्रसनस्तुसमालोक्य तां किङ्करमयां शुभाम्
मेने यमसहस्राणि तादृग्रूपबला हि सा । विगाह्य ग्रसनं सेना ववर्ष शरवृष्टिभिः ॥
कल्पान्तघोरसङ्काशो बभूव स महारणः । केचिच्छैलेन बिभिदुः केचिद्बाणैरजिह्मगैः
पिपिषुर्गदया केचित्केचिन्मुद्गरवृष्टिभिः । केचित्प्रासप्रहारैश्च ताडयामासुरुद्धताः ॥
अपरे किङ्करास्तस्य ललम्बुर्बाहुमण्डले । शिलाभिरपरे जघ्नुर्द्रुमैरन्ये महोच्छ्रयैः॥५१
तस्याऽपरेच गात्रेषु दशनांश्चन्यपातयन् । अपरे मुष्टिभिः पृष्ठं किङ्करास्ताडयन्ति च

एवं चाभिद्रुतस्तैस्तैर्ग्रसनः क्रोधमूर्छितः । उत्साद्यगात्रं भूपृष्ठे निष्पिपेष स
कांश्चिदुत्थायजघ्नेऽसौमुष्टिभिःकिङ्करात्रणे । कांश्चित्पादप्रहारेणधावन्नन्यान
क्षणैकेन स तान्निन्ये यमलोकाय भारत ! । स च किङ्करयुद्धेन ववृधेऽग्निरिवें

तमालोक्य यमोऽश्रान्तं श्रान्तांस्तांश्च हतान्स्वकान् ।
आजगाम समुद्यम्य दण्डं महिषवाहनः ॥ ५६ ॥

ग्रसनस्तु तमायान्तमाजघ्ने गदयोरसि । अचिन्तयित्वा तत्कर्मग्रसनस्यान्तकों
व्याघ्रान्दण्डेनसञ्जघ्ने स रथान्न्यपतद्भुवि । ततःक्षणेनचोत्थायसञ्चिन्त्यात्मा
वायुवेगेन सहसा ययौ यमरथं प्रति । पदातिः स रथं तं च समारुह्य यमं तद्
योधयामासबाहुभ्यामाकृष्यबलिनांवरः । यमोऽपि शस्त्राण्युत्सृज्य बाहुयुद्धे
ग्रसनं कटिवस्त्रे तु यमं गृह्य बलोत्कटः । भ्रामयामास वेगेन सम्भ्रमाविष्टचेत

विमोच्याऽथ यमः कष्टात्कण्ठेऽवष्टभ्य चाऽसुरम् ।
बाहुभ्यां भ्रामयामास सोऽप्यात्मानममोचयत् ॥ ६२ ॥

ततो जघ्नतुरन्योन्यं मुष्टिभिर्निर्दयौचतौ । दैत्येन्द्रस्याऽतिवीर्यत्वात्परिश्रान्त

स्कन्धे निधाय दैत्यस्य मुखं विश्रान्तिमैच्छत ।
तमालक्ष्य ततो दैत्यः श्रान्तमुत्पाट्य चौजसा ॥ ६४ ॥

निष्पिपेष महीपृष्ठे विनिघ्नन्पार्ष्णिपाणिभिः । ततो यमस्य वदनात्सुस्राव र
निर्जीवमितितंदृष्ट्वाततःसन्त्यज्यदानवः । जयंप्राप्योद्धतं नादं मुक्त्वासन्नास

स्वकं सैन्यं समासाद्य तस्थौ गिरिरिवाऽचलः ॥ ६७ ॥
नादेन तस्य ग्रसनस्य संख्ये महायुधैश्चाऽर्दितसर्वगात्राः ।
गते कृतान्ते वसुधां च निष्प्रभे चकम्पिरे कान्दिशिकाः सुरास्ते ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्व
कौमारिकाखण्डे तारकसैन्यदेवसैन्ययोर्मध्ये यमग्रसनयोर्युद्धवर्णनं नाम
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

नारदार्जुनसम्वादे तारकसैन्यदेवसैन्ययोर्युद्धवर्णनम्

नारद उवाच

धनाधिपस्य जम्भेनसायकैर्मर्मभेदिभिः। दिशोपरुद्धाः क्रुद्धेन सैन्यंचाऽभ्यर्दितं भृशम्
तद्दृष्ट्वा कर्मदैत्यस्यधनाध्यक्षःप्रतापवान्। आकर्णाकृष्टचापस्तु जम्भमाजौमहाबलम्
द्दिविव्याधवाणानांसहस्रेणाऽग्निवर्चसाम्। स प्रहस्य ततोवीरोवाणानामयुतत्रयम्
नियुतं च तथा कोटिमर्बुदंचाऽक्षिपत्क्षणात्। तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वाक्रुद्धोगृह्यमहागदाम्
धनाध्यक्षःप्रचिक्षेप स्वर्गेप्सुः स्वधनं यथा। मुक्तायांचगदायांवैनादोऽभूत्प्रलये यथा
भूतानां बहुधा रावा जज्ञिरे खे महाभयाः। वायुश्च सुमहाञ्जज्ञे खमायान्मेघसङ्कुलम्॥

सा हि वैश्रवणस्याऽऽस्ते त्रैलोक्याभ्यर्चिता गदा।
आयान्तीं तां समालोक्य तडित्सङ्घातदुर्दृशाम्॥ ७॥

दैत्यो गदाविघातार्थंशस्त्रवृष्टिंमुमोच ह। चक्राणिकुणपान्प्रासान्छतघ्नीःपट्टिशांस्तथा
परिघान्मुशलान्वृक्षान्गिरींश्चाऽतुलविक्रमः। कदर्थीकृत्यशस्त्राणितानिसर्वाणिसागदा
कल्पान्तभास्करो यद्वन्न्यपतद्दैत्यवक्षसि। स तया गाढभिन्नः सन्सर्पेनरुधिरं वमन्
निपपातरथाज्जम्भो वसुधायां गतचेतनः। जम्भं निपतितं दृष्ट्वा कुजम्भो घोरनिश्चयः॥
धनाधिपस्य सङ्क्रुद्धो नादेनापूरयन्दिशः। चक्रे बाणमयं जालं शत्रुन्तस्येव पञ्जरम्
विच्छिद्यबाणजालंचमायाजालमिवोत्कटम्। मुमोचबाणानपरांस्तस्ययक्षाधिपोबली

चिच्छेद लीलया तांश्च दैत्यः क्रोधीव सद्वचः।
निष्फलांस्तांस्ततो दृष्ट्वा बाणान्क्रुद्धो धनाधिपः॥ १४॥

शक्तिं जग्राहदुर्धर्षां शतघण्टामहास्वनाम्। प्रेषिता सा तदा शक्तिर्दारयामास तं हृदि
यथाऽल्पवोधंपुरुषं दुःखं संसारसम्भवम्। तथाऽस्य हृदयं भित्त्वा जगामधरणीतलम्
निमेषात्सोऽभिसंस्तम्भ्यदानवोदारुणाकृतिः। जग्राहपट्टिशंदैत्योगिरीणामपिभेदनम्

स तेन पट्टिशेनाऽऽजौ धनदस्यस्तनान्तरम् । वाक्येनतीक्ष्णरूपेण मर्माक्षरविदि
निर्बिभेदाऽभिजातस्य हृदयं दुर्जनो यथा । तेन पट्टिशघातेन धनेशः परिमूर्च्छि
निषसाद रथोपस्थे दुर्वाचा सुजनो यथा । तथागतं तु तं दृष्ट्वा धनेशं वै मृतं
राक्षसो निर्ऋतिर्देवो निशाचरबलानुगः । अभिदुद्राव वेगेन कुजम्भं भीमवि
अथ दृष्ट्वाऽतिदुर्धर्षं कुजम्भोराक्षसेश्वरम् । नोदयामास दैत्यान्स राक्षसेशरथं
स दृष्ट्वानोदितांसेनांप्रबलास्त्रांसुभीषणाम् । रथादाप्लुत्य वेगेन निर्ऋतीराक्ष
खड्गेन तीक्ष्णधारेण चर्मपाणिरधावत । प्रविश्य दानवानीकं गजः पद्मसरो

लोडयामास बहुधा विनिष्कृत्य सहस्रशः ।
चिच्छेद कांश्चिच्छतशो बिभेदाऽन्यान्वरासिना ॥ २५ ॥
सन्दष्टौष्ठमुखैः पृथ्वीं दैत्यानां सोऽभ्यपूरयत् ।
ततो निःशेषितप्रायां विलोक्य स्वां चमूं तदा ॥ २६ ॥
मुक्त्वा धनपतिं दैत्यः कुजम्भो निर्ऋतिं ययौ ।
लब्धसञ्ज्ञस्तु जम्भोऽपि धनाध्यक्षपदानुगान् ॥ २७ ॥

जीवग्राहं स जग्राह बद्ध्वापाशैःसहस्रधा । मूर्तिमन्तिचरत्नानि पद्मादींश्चनिर्धी
वाहनानिचदिव्यानिविमानानिचसर्वशः । धनेशोलब्धसञ्ज्ञस्तुतामवस्थांविलो
निःश्वसन्दीर्घमुष्णंचरोषात्ताम्रविलोचनः । ध्यात्वास्त्रंगारुडंदिव्यंबाणंसन्धाय
मुमोच दानवानीके तं बाणं शत्रुदारणम् । प्रथमं कार्मुकं तस्य वह्निज्वालम
निश्चेरुर्विस्फुलिङ्गानांकोटयोधनुषस्तथा । ततोज्वालाकुलंव्योमचक्रेचाऽस्त्रंस
तदस्त्रं सहसा दृष्ट्वा जम्भो भीमपराक्रमः । सम्वर्तं मुमुचे तेन प्रशान्तं गारुडं
ततस्तं दानवो दृष्ट्वा कुबेरं रोषविह्वलः । अभिदुद्राव वेगेन पदातिर्धनदं नद
अथाऽभिमुखमायान्तं दैत्यं दृष्ट्वा धनाधिपः । बभूव सम्भ्रमाविष्टः पलायनपर
ततः पलायतस्तस्यमुकुटोरत्नमण्डितः । पपात भूतले दीप्तो रविबिम्बमिवाऽ
यक्षाणामभिजातानां भग्नं प्रववृते रणात् । मर्तुं संग्राम शिरसि युक्तं नोभूपण
इति व्यवस्य दुर्धर्षा नानाशस्त्रास्त्रपाणयः । युयुत्सवस्तथा यक्षा मुकुटं परिव

अभिमानधना वीरा धनदस्य पदानुगाः । तानमर्षाच्च सम्प्रेक्ष्य दानवश्चण्डपौरुषः ॥

भुशुण्डीं भीषणाकारां गृहीत्वा शैलगौरवाम् ।
रक्षिणो मुकुटस्याऽथ निष्पिपेष निशाचरान् ॥ ४० ॥

...त्क्रमथ्याऽथ नियुतं मुकुटं तं स्वके रथे । समारोप्याऽमररिपुर्जित्वा धनदमाहवे ॥
...नानि च निधीन्गृह्यस्वसैन्येन समावृतः । नादेन महता देवान्द्रावयामास सर्वशः॥
...नदोऽपि धनं सर्वं गृहीतो मुक्तमूर्धजः । पदातिरेकः सन्त्रस्तःप्राप्यैवंदीनवत्स्थितः
...क्रमेनाऽथ संसक्तो रजनीचरनन्दनः । मायाममोघामाश्रित्य तामसीं राक्षसेश्वरः॥
...ोहयामासदैत्येन्द्रोजगत्कृत्वा तमोमयम् । ततो विफलनेत्राणि दानवानांबलानि च
...शेकुश्चलितुं तत्र पदादपि पदं तदा । ततो नानास्त्रवर्षेण दानवानां महाचमूः ॥४६
...घान निर्ऋतिर्देवस्तमसा सम्वृता भृशम् । हन्यमानेषु दैत्येषु कुजम्भे मूढचेतसि ॥
...हिपोदानवेन्द्रस्तुकल्पान्ताम्भोदसन्निभः । अस्त्रंचकारसावित्रमुल्कासंघातमण्डितम्
...जृम्भत्यथ सावित्रे परमास्त्रे प्रतापिनि । प्रणाशमगमत्तीव्रं तमो घोरमनन्तरम् ॥

ततोऽस्त्रविस्फुलिङ्गाङ्कं तमः शुक्लं व्यजायत ।
प्रोत्फुल्लारुणपद्मौघं शरदीवाऽमलं सरः ॥५० ॥

...तस्तमसिसंशान्ते दैत्येन्द्राः प्राप्तचक्षुषः । चक्रुः क्रूरेण तमसा देवानीकं महाद्भुतम्
...थादाय धनुर्घोरमिषुंचाऽऽशीविषोपमम् । कुजम्भोऽधावत क्षिप्रं रक्षोदेवबलं प्रति
...क्षसेन्द्रस्तथाऽऽयान्तंदृष्ट्वातंसपदानुगः । विव्याधनिशितैर्बाणैःकालाशनिसमस्वनैः
...दानंनचसन्धानंनमोक्षोवास्यलक्ष्यते । चिच्छेदोग्रैःशरव्रातैस्ताञ्छरानतिलाघवात्
...जं शरेण तीक्ष्णेन निचकर्ताऽमरद्विषः । सारथिं चाऽस्यभल्लेन रथनीडादपाहरत्
...लकल्पेन बाणेन तं च वक्षस्यताडयत् । स तु तेन प्रहारेण चकम्पे पीडितो भृशम्
...त्येन्द्रो राक्षसेन्द्रेण क्षितिकम्पे नगोयथा । स मुहुर्तात्समाश्वास्य नत्वातं दुर्जयंरणे
...दातिरासाद्य रथं रक्षो वामकरेण च । केशेषु निर्ऋतिंगृह्य जानुनाऽऽक्रम्यचस्थितः
...नः खड्गेन च शिरश्छेत्तुमैच्छदमर्षणः । ततः कलकलो जज्ञे देवानां सुमहांस्तदा ॥

कुजम्भस्य वशं प्राप्तं दृष्ट्वा निर्ऋतिमाहवे ॥५६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवो वरुणः पाशभृद्व्रतः। पाशेनदानवेन्द्रस्य वबन्धाऽऽशु
ततो बद्धभुजं दैत्यं विफलीकृतपौरुषम्। ताडयामास गदया दयामुत्सृज्य
स तु तेन प्रहारेण स्रोतोभिः क्षतजं स्रवन्। दधार कालमेघस्य रूपं विद्यु
तदवस्थागतं दृष्ट्वा कुजम्भं महिषासुरः। व्यावृत्तवदनारावो भोक्तुमैच्छत्सुरा
निर्ऋतिं वरुणं चैव तीक्ष्णदंष्ट्रोत्कटाननः। तावभिप्रायमालोक्यतस्यदैत्यस्य
त्यक्त्वा रथावुभौभीतौ पदाती प्रद्रुतौद्रुतम्। जग्मतुर्महिषाद्भीतौशरणंपाक
क्रुद्धोऽथ महिषो दैत्यो वरुणं समुपाद्रवत्। तमन्तकमुखासन्नमालोक्यहिमः
चक्रे शस्त्रं विसृष्टंहिहिमसंघातमुल्बणम्। वायव्यंचाऽस्त्रमतुलंचन्द्रश्चक्रे
वायुना तेन चण्डेन संशुष्केण हिमेन च। महाहिमनिपातेन शस्त्रैश्चन्द्रप्रणो

गात्राण्यसुरसैन्यानामदह्यन्त समन्ततः।
व्यथिता दानवाः सर्वे शीतच्छादितपौरुषाः ॥ ६६ ॥

न शेकुश्चलितुं तत्र नाऽस्त्राण्यादातुमेव च। महिषो निष्प्रयत्नश्च शीतेनाक
अंसमालिङ्ग्यपाणिभ्यामुपविष्टोह्यधोमुखः। सर्वेतेनिष्प्रतीकारादैत्याश्चन्द्रमस

रणेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा तस्थुस्ते जीवितार्थिनः।
तत्राऽब्रवीत्कालनेमिर्दैत्यान्क्रोधविदीपितः ॥ ७२ ॥

भोभोःश्रृङ्गारिणःक्रूराःसर्वशस्त्रास्त्रपारगाः। एकैकोऽपिजगत्कृत्स्नंशकस्तुल
एकैकोऽपिक्षमोग्रस्तुंजगत्सर्वं चराचरम्। एकैकस्याऽपिपर्याप्तानसर्वेऽपिदि
किं त्रस्तनयनाश्चैव समरे परिनिर्जिताः। न युक्तमेतच्छूराणां विशेषाद्दैत्य

राज्ञश्च तारकस्याऽपि दर्शयिष्यथ किं मुखम्।
विरतानां रणाद्याऽसौ क्रुद्धः प्राणान्हरिष्यति ॥७६ ॥

इति ते प्रोच्यमानापि नोचुः किञ्चिन्महासुराः। शीतेननष्टश्रुतयोभ्रष्टवाक्या
मूकास्तथाऽभवन्दैत्यामृतकल्पामहारणे। तान्दृष्ट्वानष्टचेतस्कान्दैत्याञ्छीतेनपी
मत्वा कालक्षमं कार्यंकालनेमिर्महासुरः। आश्रित्य मानवीं मायां वितत्य
पूरयामास गगनं दिशो विदिश एव च। निर्ममे दानवेन्द्रोऽसौ शरीरैर्भास्क

[दि]शश्च विदिशश्चैव पूरयामास पावकैः । ततो ज्वालाकुलं सर्वं त्रैलोक्यमभवत्क्षणात् ।
[ते]न ज्वालासमूहेन हिमांशुरगमद्द्रुतम् । ततः क्रमेण विभ्रष्टं शीतदुर्दिनमावभौ ॥
[त]द्बलं दानवेन्द्राणां मायया कालनेमिनः । तद्दृष्ट्वा दानवानीकं लब्धसञ्ज्ञंदिवाकरः
उवाचाऽरुणमत्यर्थं कोपरक्तान्तलोचनः ॥८३ ॥

दिवाकर उवाच

नयाऽरुण ! रथं शीघ्रं कालनेमिरथो यतः ॥ ८४ ॥

[स]म्मर्दं तत्र विषमे भविता भूतसंक्षयः । जित एष शशाङ्कोऽथ वयं यद्बलमाश्रिताः॥
[उ]त्सुकश्चोदयामास रथं गरुडपूर्वजः । रथे स्थितोऽपि तैरश्वैः सितचामरधारिभिः ॥
[त]ग्दीपोऽथ भगवाञ्जग्राह विततं धनुः । शरौघो वै पाण्डुपुत्र ! क्षिप्रमासीद्विषद्युतिः
[श]म्बरास्त्रेण सन्धाय वाणमेकं ससर्ज ह । द्वितीयं चेन्द्रजालेनाऽऽयोजितं प्रमुमोचह
[श]म्बरास्त्रं क्षणाच्चक्रे तेषां रूपविपर्ययम् । देवानां दानवं रूपं दानवानां च दैविकम्
[म]त्वा सुरान्स्वकानेव जघ्ने घोरास्त्रलाघवात् । कालनेमी रुषाविष्टःकृतान्तइवसंक्षये
काश्चित्खड्गेन तीक्ष्णेन कांश्चिन्नाराचवृष्टिभिः ।
कांश्चिद्गदाभिर्घोराभिः कांश्चिद्धोरैः परश्वधैः ॥ ९१ ॥
शिरांसि केषांचिदपातयद्रथाद्भुजांस्तथा सारथींश्चोग्रवेगान् ।
कांश्चित्पिपेषाऽथ रथस्य वेगात्कांश्चित्तथाऽत्यद्भुतमुष्टिपातैः ॥९२ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे तारकसैन्यदेवसैन्ययोर्युद्धवर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

देवासुरसङ्ग्रामे कालनेमिकृतयुद्धसम्मर्दं विष्णुनासहकालनेमियुद्धवर्णनम्

नारद उवाच

कालनेमी रुषाविष्टस्तेषां रूपं न बुद्धवान् । ततो निमिश्च दैत्येन्द्रं मत्वा देवंमहाजवः

केशेषु गृह्य तं वीरं नकर्ष च ननाद च । ततो निमिरुवाचेदं कालनेमिं महाबल
अहं निमिःकालनेमे सुतंमत्वा वधस्व मा । भवतामोहितेनाजौदेवान्मत्वासुरा
सुरैः सुदुर्जयाः कोट्यो निहता दश विद्धि तत् ।
सर्वास्त्रवारणं मुञ्च ब्राह्ममस्त्रं त्वरान्वितः ॥ ४ ॥
स तेन बोधितोदैत्योमुक्त्वातंसम्भ्रमाकुलः । बाणं ब्रह्मास्त्रविहितंमुमोचत्वरया
ब्रह्मास्त्रं तत्प्रजज्वाल ततः खे सुमहाद्भुतम् । देवानां चाभवत्सैन्यंसर्वमेव भया
शम्बरास्त्रं ततः शान्तं ब्राह्मप्रतिहतं तदा । तस्मिन्प्रतिहतेह्यस्त्रे संक्रुद्धोभास्व
महेन्द्रजालमास्थाय चक्रे स्वां भीषणांतनुम् । विस्फूर्ज्जत्करसङ्घातसमाक्रान्तज
ततापदानवानीकंगलन्मज्जाङ्घ्रिशोणितम् । चक्षूंषिदानवेन्द्राणांचकाराऽन्धानि
गजानामगलन्मेदः पेतुश्चाऽपि रथा भुवि । तुरङ्गमाः श्वसन्तश्चघर्मार्ता रथिनोऽ
इतश्चेतश्च सलिलं प्रार्थयन्तस्तृषातुराः । गिरिद्रोणीश्च पादांश्च गिरीणां गह्वरा
तेषां प्रार्थयतां शीघ्रमन्योन्यं च विसर्पिणाम् ।
दावाग्निरज्वलत्तीव्रो घोरो निर्दग्धपादपः ॥ १२ ॥
तोयार्थिनः पुरो दृष्ट्वा तोयं कल्लोलमालिनम् । पुरःस्थितमपिप्राप्तुं न शेकुरुपसर्
अप्राप्य सलिलं भूमावभ्याशे द्रुतमेव ते । तत्र तत्र व्यदृश्यन्त मृता दैत्येश्वरा
रथा गजाश्चपतितास्तुरङ्गाश्चश्रमान्विताः । स्थिता वमन्तोधावन्तोगलद्द्रुतवसा
दानवानां कोटिकोटि व्यदृश्यत मृतं तदा । एवं क्षयो दानवानां तस्मिन्महति
प्रकोपोद्भूतताम्राक्षः कालनेमी रुषातुरः । बभूव कालमेघाभः स्फुरद्रोमशत
गम्भीरास्फोटनिर्ह्रादजगद्धृदयकम्पनः । प्रच्छाद्य गगनं सूर्यप्रभां सर्वां व्यनाश
ववर्ष शीतं च जलं दानवेन्द्रबलं प्रति । दैत्यास्तांवृष्टिमासाद्यसमाश्वस्तास्तत
बीजाङ्कुरा इव म्लानाः प्राप्य वृष्टिं धरातले । ततः स मेघरूपेण कालनेमिर्महासु
शस्त्रवृष्टिं ववर्षोग्रां देवानीकेषु दुर्जयः । तया वृष्ट्या पीड्यमाना दैत्यैरन्यैश्च दै
गतिं काञ्चिन्न पश्यन्ति गावः शीतार्दिता इव । परस्परं व्यलीयन्त गजेषु तुरगेषु
रथेषु च भयत्रस्तास्तत्रतत्र निलिल्यिरे ॥ २२ ॥

एवं ते लीयमानाश्च निहताः कालनेमिना। दृश्यन्तेपतिता देवाः शस्त्रभिन्नाङ्गसन्धयः
विभिन्ना भिन्नमूर्धानस्तथा भिन्नोरुजानवः। विपर्यस्तं रथाङ्गैश्च पतितं ध्वजशक्तिभिः
तुरङ्गानां सहस्राणि गजानामयुतानि च। रक्तेन तेषां घोरेण दुस्तराचाऽभवन्मही॥
एवमाजौ महादैत्यः कालनेमिर्महासुरः। जघ्ने मुहूर्तमात्रेण गन्धर्वाणां दशायुतम्॥

यक्षाणां पञ्चलक्षाणि किन्नराणां तथैव च।
जघ्ने पिशाचमुख्यानां सप्तलक्षाणि निर्भयः॥ २७॥

इतरेषांनसंख्याऽरितसुरजातिनिकायिनाम्। जघ्नेसकोटिशःक्रुद्धःकालनेमिर्मदोत्कटः
एवं प्रतिभये भीमे तदाऽमरमहाक्षये। संक्रुद्धावश्विनौ वीरौ चित्रास्त्रकवचोज्ज्वलौ
जघ्नतुस्तौ रणे दैत्यमेकैकं षष्टिभिः शरैः। निर्भिद्य ते महादैत्यं सपुङ्खाविविशुर्महीम्
ताभ्यांबाणप्रहारैस्तुकिञ्चित्सोऽवाप्तचेतनः। जग्राह चक्रं लक्षारंतैलधौतंरणेऽधिकम्
तेनचक्रेणसोऽश्विभ्यांचिच्छेदरथकूवरम्। जग्राहाऽथधनुर्दैत्यःशरांश्चाशीविषोपमान्

ववर्ष भिषजोर्मूर्ध्नि संच्छाद्याकाशगोचरम्।
तावप्यस्त्रैः स्मृतैः सर्वाश्छेदतुर्दैत्यसायकान्॥ ३२॥

तच्च कर्म तयोर्दृष्ट्वा विस्मितः कोपमाविशत्। जग्राह मुद्गरंभीमंकालदण्डविभीषणम्
स तमुद्भ्राम्य वेगेन चिक्षेपाऽस्य रथं प्रति। तं तु मुद्गरमायान्तमालोक्याम्बरगोचरे

मुक्त्वा रथावुभौ वेगादाप्लुतौ तरसाऽश्विनौ।
तौ रथौ स तु निष्पिष्य मुद्गरोऽचलसन्निभः॥ ३६॥

दारयामास धरणीं हेमजालपरिष्कृतः। तस्यकर्माऽथ तद्दृष्ट्वा भिषजौ चित्रयोधिनौ
वज्रास्त्रं च प्रकुर्वाणौ दानवेन्द्रमयुध्यताम्। घोरवज्रप्रहारैस्तु दानवः स परिक्षतः॥
रथो ध्वजो धनुश्चैव छत्रं च कवचं तथा। क्षणेन शतधा भूतं सर्वसैन्यस्य पश्यतः॥
तद्दृष्ट्वा दुष्करंकर्म सोऽश्विभ्यां भीमविक्रमः। नारायणास्त्रंबलवान्मुमोचरणमूर्धनि
ततः शशाम वज्रास्त्रं कालनेमिस्ततो रुषा। जीवग्राहं ग्राहयितुमश्विनौ तौ प्रचक्रमे
तावभिप्रायमालक्ष्य सन्त्यज्य समराङ्गणम्। पदाती वेपमानाङ्गौ प्रद्रुतौ वासवो यतः
तयोरनुगतो दैत्यः कालनेमिर्नदन्मुहुः। प्राप्येन्द्रस्य बलं क्रूरो दैत्यानीकपदानुगः॥

स काल इव कल्पान्ते यदा वासवमाद्रुतः । तं दृष्ट्वा सर्वभूतानि विविशुर्विह्वलानि
हाहारावं प्रकुर्वाणास्तदा देवाश्च मेनिरे । पराजयं महेन्द्रस्य सर्वलोकक्षयाव
चेलुः शिखरिणो मुख्याः पेतुरुल्का नभस्तलात् । जगर्जुर्जलदादिक्षुसम्भूतश्च म
तां भूतविकृतिं दृष्ट्वा देवाः सेन्द्रा भयावहाः । मनसा शरणं जग्मुर्वासुदेवं जग
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो
सनोरक्षतु गोविन्दोभयार्तास्तेजगुःसुराः । सुराणांचिन्तितंज्ञात्वाभगवानगरुड
विबुध्यैव च पर्यङ्काद्योगनिद्रांविहाय सः । लक्ष्मीकरयुगाम्भोजलालितांङ्घ्रिसरो
शारदाम्बरनीलाब्जकान्तिदेहच्छविः प्रभुः । कौस्तुभोद्भासिहृदयःकान्तकेयूरभाल
विमृश्य सुरसंक्षोभं वैनतेयमथाऽऽह्वयत् । आहूतेऽवस्थितेतस्मिन्गारुडेदुःखिते
दिव्यनानास्त्रतीक्ष्णार्चिरारुह्याऽगात्सुराहवम् । तत्राऽपश्यत देवेन्द्रंभयभीतमभिद्रु
दानवेन्द्रैर्नवाम्भोदसच्छायैः सर्वथोत्कटैः । यथा हि पुरुषं घोरैरभाग्यैरर्थकाङ्क्षि

तत्त्राणायाऽव्रजद्विष्णुः स्तूयमानो मुहुः सुरैः ।
अभाग्येभ्यः परित्रातुं सुकृतं निर्मलं यथा ॥ ५५ ॥

अथाऽपश्यतदैत्येन्द्रो वियति द्युतिमण्डलम् । स्फुरन्तमुदयाच्छीघ्रंकान्तंसूर्यशतं
प्रभवं ज्ञातुमिच्छन्तो दानवास्तस्य तेजसः । गरुडं तमथापश्यन्कल्पान्तानलभी
तत्र स्थितं चतुर्बाहुं हरिं चानुपमद्युतिम् । तमालोक्यासुरेन्द्रास्तुहर्षसम्पूर्णमान
अयं स देवः सर्वेषां शरणं केशवोऽरिहा । अस्मिञ्जिते जिताःसर्वादेवता नाऽत्रसं
एनमाश्रित्य लोकेशा यज्ञभागभुजोऽमराः । इत्युक्त्वा ते समागम्य सर्वएव तत
तं जघ्नुर्विविधैः शस्त्रैः परिवार्य समन्ततः । कालनेमिप्रभृतयो दश दैत्यमहार

षष्ट्या विव्याध वाणानां कालनेमिर्जनार्दनम् ।
निमिः शतेन वाणानां मथनोऽशीतिभिः शरैः ॥ ६२ ॥

जम्भकश्चैव सप्तत्या शुम्भो दशभिरेव च । शेषा दैत्येश्वराः सर्वे विष्णुमेकैकशः
दशभिर्दशभिः शल्यैर्जघ्नुः सगरुडं रणे । तेषाममृष्यत्तत्कर्म विष्णुर्दानवसूदनः
एकैकं दानवं जघ्ने षड्भिः षड्भिरजिह्मगैः । आकर्णकृष्टैर्भूयश्चकालनेमिं

विष्णुं विव्याध हृदये रोषाद्रक्तविलोचनः। तस्याऽशोभन्तते बाणाहृदयेतप्तकाञ्चनाः
मयूखा इव सन्दीप्ताःकौस्तुभस्यस्फुरत्त्विषः। तैर्बाणैःकिञ्चिदायस्तोहरिर्जग्राहमुद्गरम्
स तमुद्ग्राह्य वेगेन दानवाय मुमोच वै। दानवेन्द्रस्तमप्राप्तं वियत्येव शतैः शरैः॥
चिच्छेद तिलशः क्रुद्धो दर्शयन्पाणिलाघवम्। ततो विष्णुःप्रकुपितःप्रासंजग्राहभैरवम्
तेन दैत्यस्य हृदयं ताडयामास वेगतः। क्षणेन लब्धसञ्ज्ञस्तु कालनेमिर्महासुरः॥

शक्तिं जग्राह तीक्ष्णाग्रां हेमघण्टाट्टहासिनीम्।
तया वामं भुजं विष्णोर्बिभेद दितिनन्दनः॥ ७१॥

भिन्नं शक्त्या भुजं तस्य स्रुतशोणितमाबभौ। नीलेवलाहकेविद्युद्विद्योतन्तीयथामुहुः
ततो विष्णुः प्रकुपितोजग्राहविपुलं धनुः। सप्तदश च नाराचांस्तीक्ष्णाग्रान्मर्मभेदिनः
दैत्यस्य हृदयं षड्भिर्विव्याधचशरैस्त्रिभिः। चतुर्भिः सारथिंचास्यध्वजंचैकेनपत्रिणा
द्वाभ्यां धनुर्ज्याधनुषी भुजं चैकेन पत्रिणा। स विद्धो हृदये गाढं दोषैर्मूढोयथा नरः
स्रुतरक्तारुणः प्रांशुः पीडाचलितमानसः। चकम्पे मारुतेनेव चोदितः किंशुकद्रुमः॥
ततः कम्पितमालक्ष्य गदां जग्राह केशवः। तां च वेगेन चिक्षेप कालनेमिवधं प्रति॥

सा पपात शिरस्युग्रा सहसा कालनेमिनः।
सञ्चूर्णितोत्तमाङ्गस्तु निष्पिष्टमुकुटोसुरः॥ ७८॥

स्रुतरक्तौघरन्ध्रश्च स्रुतधातुरिवाऽचलः। पपात स्वे रथे भग्नो विसञ्ज्ञः शिष्टजीवनः॥
पतितस्य रथोपस्थेदानवस्याऽच्युतोऽरिहा। स्मितपूर्वमुवाचेदं वाक्यं चक्रायुधःप्रभुः
गच्छाऽसुर! विमुक्तोऽसिसाम्प्रतंजीवनिर्वृतः। ततःस्वल्पेनकालेनअहमेवतवाऽन्तकः

एवं वचस्तस्य निशम्य विष्णोः सर्वेश्वरस्याऽथ रथं निमेषात्।
निनाय दूरं किल कालनेमिनो भीतस्तदा सारथिर्लोकनाथात्॥ ८२॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे देवासुरसङ्ग्रामे कालनेमिकृतयुद्धसम्मर्दे विष्णुना सह
कालनेमियुद्धवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

———

विंशोऽध्यायः

दैत्यैःसह विष्णोर्युद्धवर्णनम्

नारद उवाच

तं दृष्ट्वा दानवाः सर्वे क्रुद्धाःस्वैःस्वैर्बलैर्वृताः। सरघा इव माध्वीकं रुरुधुःसर्वतः
पर्वताभे गजे भीमे मदस्राविणि दुर्दमे। सितचित्रपताके तु प्रभिन्नकरटामुखे॥
स्वर्णवर्णाश्चितेथद्वन्नगेदावाग्निसम्वृते। आरुह्याऽऽजौ निमिर्दैत्यो हरिं प्रत्युद्ययौ
तस्यासन्दानवारौद्रा गजस्यपरिरक्षिणः। सप्तविंशतिकोट्यश्चकिरीटकवचोज्ज्वल
अश्वमारूह्य शैलाभं मथनो हरिमाद्रवत्। पञ्चयोजनप्रग्रीवमुष्ट्रमास्थाय जम्भः
शुम्भो मेषं समारूह्याऽव्रजद्द्वादशयोजनम्। अपरे दानवेन्द्राश्चयत्तानानास्त्रपाणयः
आजग्मु समरे क्रुद्धाविष्णुमक्लिष्टकारिणम्। परिघेणनिमिर्दैत्यो मथनो मुद्गरेण
शुम्भः शूलेन तक्ष्णेन प्रासेन ग्रसनस्तथा। चक्रेण क्रथनः क्रुद्धो जम्भः शक्त्यामहा
जघ्नुर्नारायणं शेषा विशिखैर्मर्मभेदिभिः। तान्यस्त्राणिप्रयुक्तानिविविशुःपुरुषोत्तम
उपदेशा गुरोर्यद्वत्सच्छिष्यंवहुधेरिताः। ततः क्रुद्धो हरि गृंह्यधनुर्वाणांश्च पुष्कल
ममर्द दैत्यसेनां तद्धर्ममर्थवचो यथा। निमिं विव्याध विंशत्या बाणैरनलवर्चसैः
मथनंदशभिश्चैव शुम्भं पञ्चभिरेव च। शतेन महिषं क्रुद्धो विव्याधोरसि माधवः
जम्भंद्वादशभिस्तीक्ष्णैःसर्वांश्चैकैकशोऽष्टभिः। तस्यतल्लाघवंदृष्ट्वादानवाःक्रोधमूर्च्छिताः
चक्रुर्गाढतरंयत्नमावृण्वानाहरिंशरैः। चिच्छेदाऽथ धनुर्ज्यां च निमिर्भल्लेनदानवः
हस्ताच्चापं च संरम्भाच्चिच्छेद महिषासुरः। पीडयामास गरुडंजम्भोवाणायुतैस्त्रिभिः

भुजावस्य च विव्याध शुम्भो वाणायुतेन वै।
ततो विस्मितचित्तस्तु गदां जग्राह माधवः॥ १६॥

तां प्राहिणोत्स वेगेन मथनाय महाहवे। तामप्राप्तां निमिर्बाणैर्मुशलाभैः सहस्रशः
आहत्य पातयामास विनदन्कालमेघवत्। ततोऽन्तरिक्षे हाहेति भूतानां जज्ञिरे

नैतदस्ति बलं व्यक्तं यत्राऽशीर्यतसा गदा। तां हरिः पतितांदृष्ट्वा अस्थानेप्रार्थनामिव
जग्राह मुद्गरं घोरं दिव्यरत्नपरिष्कृतम्। तं मुमोचाऽतिवेगेन निमिमुद्दिश्य दानवम्॥
तमायान्तं वियत्येव त्रयो दैत्या ह्यवारयन्। गदया जम्भदैत्यस्तु ग्रसनः पट्टिशेन तु
शक्त्या च महिषोदैत्योविनदन्तोमहारवम्। निराकृतंतमालोक्य दुर्जनैः सुजनं यथा
जग्राह शक्तिमुग्रोग्रां शतघण्टामहास्वनाम्। जम्भाय तां समुद्दिश्य प्राहिणोद्भीषणेरणे

तामायन्तीमथालोक्य जम्भोऽन्यस्य रथात्त्वरात्।
आप्लुत्य लीलया गृह्णन्कामिनीं कामुको यथा॥ २४॥

तयैवगरुडं मूर्ध्नि जघ्ने स प्रहसन्बली। ततो भूयो रथं प्राप्य धनुर्गृह्याऽभ्ययोजयत्
विचेताश्चाऽभवद्युद्धे गरुडः शक्तिपीडितः। ततःप्रहस्यतं विष्णुः साधुसाध्वितिभारत
करस्पर्शेनकृतवान्विमोहंविनतात्मजम्। समाश्वास्यचतंवाग्भिःशक्तिंदृष्ट्वाचनिष्फलाम्
कुभार्यस्य यथा पुंसः सर्वं स्याच्चिन्तितं वृथा। दृढसारमहामौर्वीमन्यांसंयोजयत्ततः
कृत्वा च तलनिर्घोषंरौद्रमस्त्रं मुमोच सः। ततोऽस्त्रतेजसा सर्वमाकाशं नैव दृश्यते
भूमिर्दिशश्च विदिशो बाणजालमया बभुः। दृष्ट्वा तदस्त्रमाहात्म्यं सेनानीर्ग्रसनोऽसुरः
ब्राह्ममस्त्रं चकाराऽऽशुसर्वास्त्रविनिवारणम्। तेनतत्प्रशमंयातंरौद्रास्त्रंलोकभीषणम्
अस्त्रे प्रतिहते तस्मिन्विष्णुर्दानवसूदनः। कालदण्डास्त्रमकरोत्सर्वलोकभयङ्करम्॥
सन्धीयमानेऽस्त्रेतस्मिन्मारुतःपरुषोववौ। चकम्पेचमहीदेवी भिन्नाश्चाम्बुधयोऽभवन्
तदस्त्रमुग्रं दृष्ट्वा तु दानवा युद्धदुर्मदाः। चक्रुरस्त्राणिदिव्यानि नानारूपाणि संयुगे॥

नारायणास्त्रं ग्रसनस्तु चक्रे त्वाष्ट्रं निमिश्चाऽस्त्रवरं मुमोच।
ऐषीकमस्त्रं च चकार जम्भो युद्धस्य दण्डास्त्रनिवारणाय॥ ३५॥
यावच्च सन्धानवशं प्रयान्ति नारायणादीनि निवारणाय।
तावत्क्षणेनैव जघान कोटीं दैत्येश्वराणां किल कालदण्डः॥ ३६॥
अनन्तरं शान्तभयं तदस्त्रं दैत्यास्त्रयोगेन च कालदण्डम्।
शान्तं तदालोक्य हरिः स्वमस्त्रं कोपेन कालानलतुल्यमूर्तिः॥ ३७॥
जग्राह चक्रं तपनायुतप्रभमुग्रारमात्मानमिव द्वितीयम्।

चिक्षेप सेनापतये ज्वलन्तं चतुर्भुजः संयति सम्प्रगृह्य ॥ ३८ ॥
तदाव्रजच्चक्रमथो विलोक्य सर्वात्मना दैत्यवराः स्ववीर्यात् ।
नाशक्नुवन्वारयितुं प्रचण्डं दैवं यथा पूर्वमिवोपपन्नम् ॥ ३९ ॥
तदप्रतर्क्यं नवहेतितुल्यं चक्रं पपात ग्रसनस्य कण्ठे ।
तद्रक्तधारारुणघोरनाभि जगाम भूयोऽपि करं मुरारेः ॥४० ॥
चक्राहतः संयति दानवश्च पपात भूमौ प्रममार चाऽपि ।
दैत्याश्च शेषा भृशशोकमापुः क्रोधं च केचित्पिपिषुर्भुजांश्च ॥ ४१ ॥

ततो विनिहते दैत्ये ग्रसने बलनायके । निर्मर्यादमयुध्यन्त हरिणा सह दानवाः ॥
पट्टिशैर्मुशलैः प्रासैर्गदाभिःकणपैरपि । तीक्ष्णाननैश्च नाराचैश्चक्रैः शक्तिभिरेव च
तदस्त्रजालं तैर्मुक्तं लब्धलक्षो जनार्दनः । एकैकं शतधा चक्रे वाणैरग्निशिखोपमैः
जघान तेषां संक्रुद्धः कोटिकोटिं जनार्दनः । ततस्ते सहसा भूत्वा न्यपतन्केशवोप
गरुडं जगृहुः केचित्पादयोःशतशोऽसुराः । ललम्बिरे च पक्षाभ्यां मुखे चान्ये ल
केशवस्याऽपिधनुषि भुजयोः शीर्ष एव च । ललम्बिरे महादैत्या निनदन्तो मुहुर्मुहुः
तदद्भुतं महद्दृष्ट्वा सिद्धचारणवार्त्तिकाः। हाहेति मुमुचुर्नादमम्बरे चाऽस्तुवन्हरिम्
ततो हरिर्विनिर्धूयपातयामासतान्भुवि । यथा प्रबुद्धःपुरुषो दोषान्संसारसम्भवान्
विकोशश्च ततः कृत्वा नन्दकंखड्गमुत्तमम् । चर्मचाप्यमलंविष्णुःपदातिस्तानधाव

ततो मुहूर्तमात्रेण पद्मानि दश केशवः ।
चकर्त्त मार्गे वहुभिर्विचरन्दैत्यसत्तमान् ॥ ५१ ॥

ततो निमिप्रभृतयो विनद्याऽसुरसत्तमाः । अधावन्त महेष्वासाः केशवंपादचारि
गरुत्मांश्चाऽभ्ययात्तूर्णमारुरोह च तं हरिः । उवाच च गरुत्मन्तं तस्मिंश्च तुमुले र
अश्रान्तो यदि तार्क्ष्यासिमथनंप्रति तद्व्रज । श्रान्तश्चेच्च मुहूर्तं त्वं रणादपसृतो भ

तार्क्ष्य उवाच

न मे श्रमोऽस्ति लोकेशकिञ्चित्संस्मरतश्च मे । यन्मेसुतान्वाहनत्वेकल्पयामासतार
इति ब्रुवन्रणे दैत्यं मथनं प्रति सोऽगमत् । दैत्यस्त्वभिमुखं दृष्ट्वा शङ्खचक्रगदाभृ

जघान भिण्डिपालेन शितधारेण वक्षसि । तं प्रहारमचिन्त्यैव विष्णुस्तस्मिन्महाहवे
जघान पञ्चभिर्बाणैर्गिरीन्द्रस्याऽपि भेदकैः । आकर्णकृष्टैर्दशभिः पुनर्विद्धः स्तनान्तरे
विचेतनो मुहूर्तात्स संस्तभ्य मथनः पुनः । गृहीत्वा परिघं मूर्ध्नि जनार्दनमताडयत्
विष्णुस्तेनप्रहारेणकिञ्चिदाघूर्णितोऽभवत् । ततःकोपविवृत्ताक्षो गदां जग्राह माधवः
तया सन्ताडयामास मथनं हृदये दृढम् । स पपात तथा भूमौ चूर्णिताङ्गो ममार च
तस्मिन्निपतिते भूमौ मथने मथिते भृशम् । अवसादं ययुर्दैत्याः सर्वे ते युद्धमण्डले
ततस्तेषु विषण्णेषुदानवेष्वतिमानिषु । चुकोप रक्तनयनो महिषो दानवेश्वरः ॥६३॥
प्रत्युद्ययौ हरिं रौद्रः स्वबाहुबलमाश्रितः । तीक्ष्णधारेण शूलेन महिषो हरिमर्दयन् ॥

शक्त्या च गरुडं वीरो हृदयेऽभ्यहनद्दृढम् ।
ततो विवृत्य वदनं महाचलगुहानिभम् ॥ ६५ ॥

ग्रस्तुमैच्छत्रणेदैत्यःसगरुत्मन्तमच्युतम् । अथाच्युतोऽपिविज्ञायदानवस्यचिकीर्षितम्
वदनं पूरयामास दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः । स तैर्बाणैरभिहतो महिषोऽचलसन्निभः ॥
परिवर्तितकायार्धः पपाताऽथ ममार च । महिषं पतितं दृष्ट्वा जीवयित्वा पुनर्हरिः ॥
महिषंप्राहमत्तस्त्वं वध्यनाऽर्हसि दानव !। योषिद्वध्यःपुरोक्तस्त्वंसाक्षात्कमलयोनिना
उत्तिष्ठ गच्छमन्मुक्तो द्रुतमस्मान्महारणात् । इत्युक्तोहरिणा तस्माद्देशादपगतोऽसुरः
तस्मिन्पराङ्मुखे दैत्ये महिषे शुम्भदानवः । सन्दष्टौष्ठपुटाटोपो भृकुटीकुटिलाननः
निर्मथ्य पाणिनापाणिं धनुरादाय भैरवम् । सज्जीकृत्यमहाघोरान्मुमोचशतशःशरान्

स चित्रयोधी दृढमुष्टिपातस्ततश्च विष्णुं गरुडं च दैत्यः ।
बाणैर्ज्वलद्वह्निशिखानिकाशैः क्षिप्तैरसंख्यैः प्रतिघातहीनैः ॥ ७३ ॥
विष्णुश्च दैत्येन्द्रशरार्दितो भृशं भुशुण्डिमादाय कृतान्ततुल्याम् ।
तया मुखं चाऽस्य पिपेष संख्ये शुम्भस्य जत्रुं च धराधराधराभम् ॥ ७४॥
ततस्त्रिभिःशुम्भभुजं द्विषष्ट्या सूतस्य शीर्षं दशभिश्च केतुम् ।
विष्णुर्विकृष्टैः श्रवणावसानं दैत्यस्य बाणैर्ज्वलनार्कवर्णैः ॥ ७५ ॥
स तैश्च विद्धो व्यथितो बभूव दैत्येश्वरो विस्रुतशोणिताक्तः ।

ततोऽस्य किञ्चिच्चलितस्य धैर्याद्रुवाच शङ्खाम्बुजशार्ङ्गपाणिः ॥ ७६ ॥
योषित्सुवध्योऽसि रणं विमुञ्च शुम्भाऽशुभ स्वल्पतरै रहोभिः।
मत्तोऽर्हसि त्वं न वृथैव मूढ ! ततोऽपयातः स च शुम्भदानवः ॥७७॥
जम्भोऽथ तद्विष्णुमुखान्निशम्य जगर्ज चोच्चैः कृतसिंहनादः।
प्रोवाच वाक्यं च सलीलमाजौ महाट्टहासेन जगद्विकम्प्य ॥ ७८ ॥
किमेभिस्ते जलावास दैत्यैर्हीनपराक्रमैः। मामासादय युद्धेऽस्मिन्यदि ते पौरुषं हरे
यत्ते पूर्वं हता दैत्या हिरण्याक्षमुखाः किल। जम्भस्तदाभवन्नैवपश्यमामद्य संस्थि
पश्य तालप्रतीकाशौभुजावेतौ हरे! मम। वक्षो वा वज्रकठिनं मयि प्रहर तत्सुख
इत्युक्तः केशवस्तेन सृक्कि(क्क)णी सल्लिहन्रुषा। मुमोचपरिघंघोरंगिरीणामपिदार
ततस्तस्याऽप्यनुपदं कालायसमयं दृढम्। मुमोच मुद्गरं विष्णुर्द्वितीयं पर्वतं यथा
तदायुधद्वयं दृष्ट्वा जम्भो न्यस्य रथे धनुः। आप्लुत्य परिघं गृह्य गरुडं तेन जघ्निवा
द्वितीयं मुद्गरं चाऽनु गृहीत्वा चिनदन्रणे। सर्वप्राणेन गोविन्दं तेन मूर्ध्नि जघान
ताभ्यांचाऽतिप्रहाराभ्यामुभौगरुडकेशवौ।मोहाविष्टौविचेतस्कौमृतकल्पाविवासत
तदद्भुतं महद्दृष्ट्वा जगर्जुर्दैत्यसत्तमाः। नैतान्हर्षमदोद्धूतानिदं सेहे जगत्तदा ॥ ८७ ॥
सिंहनादैस्तलोन्नादैर्धनुर्नादैश्चवाणजैः।
जम्भन्ते हर्षयामासुर्वासांस्याढुधुवुश्च ते ॥ ८८ ॥
शङ्खांश्चपूरयामासुश्चिक्षिपुर्देवताभृशम् ॥८९ ॥
सञ्ज्ञामवाप्याऽथ महारणे हरिः सवैनतेयः परिरभ्य जम्भम्।
पराङ्मुखः संयुगादप्रधृष्यात्पलायनं वेगपरश्चकार ॥ ९० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे दैत्यैः सह विष्णोर्युद्धवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

———

एकविंशोऽध्यायः

देवासुरसङ्ग्रामे तारकविजयवर्णनम्

नारद उवाच

तमालोक्य पलायन्तं विध्वस्तध्वजकार्मुकम् ।
दैत्यांश्च मुदितानिन्द्रः कर्तव्यं नाऽध्यगच्छत ॥ १ ॥
अथाऽऽयान्निकटं विष्णोः सुरेशस्त्वरयान्वितः । उवाचचैनंमधुरमुत्साहपरिवृंहितम्
किमेभिः क्रीडसे देव दानवैर्दुष्टमानसैः । दुर्जनैर्लब्धरन्ध्रस्य पुरुषस्य कुतः क्रियाः ॥
शक्तेनोपेक्षितो नीचो मन्यते बलमात्मनः । तस्मान्न नीचं मतिमानुपेक्षेत कथञ्चन ॥
अथाग्रेसरसम्पत्त्या रथिनो जयमाययुः । कस्तेसखाऽभवत्पूर्वं हिरण्याक्षवधे विभो !
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वीर्यशालीमदोद्धतः । प्राप्य त्वां तृणवन्नष्टस्तत्र कोऽग्रेसरस्तव ॥
पूर्वं प्रतिबला दैत्यामधुकैटभसन्निभाः । निविष्टास्त्वान्तु सम्प्राप्य शलभाइवपावकम्
युगेयुगे च दैत्यानांत्वत्तोनाशोऽभवद्धरे !। तथैवाऽद्येहभीतानांत्वंहिविष्णोसुराश्रयः
एवं सन्नोदितो विष्णुर्व्यवर्धत महाभुजः । बलेन तेजसा ऋद्ध्या सर्वभूताश्रयोऽरिहा
अथोवाच सहस्राक्षं केशवः प्रहसन्निव । एवमेतद्यथा प्राह भगवानस्मद्गतं वचः ॥१०॥
त्रैलोक्यदानवान्सर्वान्दग्धुं शक्तःक्षणादहम् । दुर्जयस्तारकःकिंतुमुक्त्वासप्तदिनंशिशुम्

महिषश्चैव शुम्भश्च उभौ वध्यौ च योषिता ।
जम्भो दुर्वाससा शप्तः शक्रवध्यो भवानिति ॥
तस्मात्त्वं दिव्यवीर्येण जहि जम्भं मदोत्कटम् ॥ १२ ॥
अवध्यः सर्वभूतानां त्वामृते स तु दानवः ॥ १३ ॥

मया गुप्तो रणे जम्भं जगत्कण्टकमुद्धर । तद्वैकुण्ठवचः श्रुत्वा सहस्राक्षोऽमरारिहा ॥
समादिशत्सुराध्यक्षान्सैन्यस्यरचनांप्रति । ततश्चाऽभ्यर्थितोदेवैर्विष्णुःसैन्यमकल्पयत्
यत्सारं सर्वलोकस्य वीर्यस्य तपसोऽपि च । तदेकादश रुद्रांश्च चकाराऽग्रेसरान्हरिः

व्यालीढांगामहादेवावल्गिनोनीलकन्धराः । चन्द्रखण्डत्रिपुण्ड्राश्चपिङ्गाक्षाःशूलपा
पिङ्गोत्तुङ्गजटाजूटाः सिंहचर्मावसायिनः । भस्मोद्धूलितगात्राश्च भुजमण्डल
कपालीशादयो रुद्राविद्रावितमहासुराः । कपालीपिङ्गलोभीमोविरूपाक्षोविलो
अजकः शासनः शास्ता शम्भुश्चन्द्रो भवस्तथा । एतएकादशानन्तवलारुद्राःप्रम
अपालयन्त त्रिदशान्विगर्जन्त इवाम्बुदाः । हिमाचलाभे महति काञ्चनाम्बुरु
प्रचञ्चलमहाहेमघण्टासंहतिमण्डिते । ऐरावते चतुर्दन्ते मत्तमातङ्ग आस्थितः ॥
महामदजलस्रावे कामरूपे शतक्रतुः । तस्थौ हिमगिरेः शृङ्गे भानुमानिव दीप्तिम

तस्यारक्षत्पदं सव्यं मारुतोऽमितविक्रमः ॥ २३ ॥

जुगोपाऽपरमग्निश्च ज्वालापूरितदिङ्मुखः । पृष्ठरक्षोऽभवद्विष्णुः समरेशः श
आदित्या वसवो विश्वेमरुतश्चाऽश्विनावपि । गन्धर्वाराक्षसायक्षाःसकिन्नरमहो

कोटिशः कोटिशः कृत्वा वृन्दं चिह्नोपलक्षितम् ।
विश्रावयन्तः स्वां कीर्तिं बन्दिवृन्दैः पुरःसरैः ॥ २६ ॥
चेलुर्दैत्यवधे दृप्ता नानावर्णायुधध्वजाः ॥ २७ ॥
शतक्रतोरमरनिकायपालिता पताकिनी याननिनादनादिता ।
सितोन्नतध्वजपटकोटिमण्डिता वभूव सा दितिसुतशोकवर्द्धिनी ॥

आयान्तींतां विलोक्याऽथसुरसेनांगजासुरः । गजरूपी महांश्चैव संहाराम्भोधि
परश्वधायुधो दैत्यो दशनौष्ठकसम्पुटः । ममर्द चरणे देवांश्चिक्षेपाऽन्यान्करेण
परान्परशुना जघ्ने दैत्येन्द्रो रौद्रविक्रमः । तस्यैवं निघ्नतः क्रुद्धा देवगन्धर्वकि
मुमुचुः संहताःसर्वेचित्रशस्त्रास्त्रसंहतिम् । परश्वधांश्चचक्राणिभिण्डिपालान्स

कुन्तान्प्रासाञ्छरांस्तीक्ष्णान्मुद्गरांश्चाऽपि दुःसहान् ।
तान्सर्वान्सोऽग्रसद्दैत्यो यूथपः कवलानिव ॥३३ ॥
कोपस्फुरितदंष्ट्राग्रः करस्फोटेननादयन् ।
सुरान्निम्नंश्चचाराऽऽजौदुष्प्रेक्ष्यःसोऽथदानवः ॥ ३४ ॥

यस्मिन्यस्मिन्निपततिसुरवृन्देगजासुरः । तस्मिंस्तस्मिन्महाशब्दोहाहाकारोव्यज

अथ विद्रवमानं तद्बलं प्रेक्ष्य समन्ततः । रुद्राः परस्परं प्रोचुरहंकारोत्थितार्चिषः ॥
भोभो गृह्णत दैत्येन्द्रं भिन्दतैनं महाबलाः । कर्षतैनं शितैः शूलैर्भञ्जतैनं हि मर्मसु ॥
कपाली वाक्यमाकर्ण्यशूलं सितशितं मुखे । सम्मार्ज्यवामहस्तेनसंरम्भाद्विवृतेक्षणः
प्रोत्फुल्लारुणनीलाब्जसंहतिः सर्वतो दिशः । अथागाद्भ्रुकुटीवक्रोदैत्येन्द्राभिमुखोरणे
दृढेन मुष्टिबन्धेन शूलं विष्टभ्य निर्मलः । जघान कुम्भदेशे तु कपाली गजदानवम् ॥
ततो दशाऽपि ते रुद्रा निर्मलायोमयै रणे । जघ्नुः शूलैस्तु दैत्येन्द्रं शैलवर्ष्माणमाहवे
सुस्राव शोणितं पश्चात्सर्वस्रोतस्सु तस्य वै । शूलरक्तेन रुद्रस्य शुशुभे गजदानवः ॥
प्रोत्फुल्लामलनीलाब्जं शरदीवाऽमलं सरः । भस्मशुभ्रतनुच्छाये रुद्रैर्हंसैरिवाऽऽवृतम्
क्रुद्धं कपालिनं दैत्यः प्रचलत्कर्णपल्लवः । भवं च दन्तैर्विभिदे नाभिदेशे गजासुरः ॥
दृष्ट्वाऽनुरक्तं रुद्राभ्यां नवरुद्रास्ततो द्रुतम् । विव्यधुर्विशिखैः शूलैः शरीरममरद्विषः ॥
ततः कपालिनं त्यक्त्वा भवं चासुरपुङ्गवः । वेगेन कुपितो दैत्यो नव रुद्रानुपाद्रवत्

ममर्द चरणाघातैर्दन्तैश्चाऽपि करेण च ॥ ४६ ॥

ततोऽसौ शूलयुद्धेन श्रममासादितो यदा । तदा कपाली जग्राह करमस्याऽमरद्विषः॥

भ्रामयामास चाऽतीव वेगेन च गजासुरम् ।

दृष्ट्वा श्रमातुरं दैत्यं किञ्चिच्च्यावितजीवितम् ॥ ४८ ॥

निरुत्साहं रणे तस्मिन्गतयुद्धोत्सवोऽभवत् । ततो भ्रमतएवाऽस्यचर्मउत्कृत्यभैरवम्
स्रवत्सर्वाङ्गरक्तौघं चकाराऽम्बरमात्मनः । तुष्टुवुस्तं तदा देवा बहुधा बहुभिः स्तवैः
रुरुधुश्चैनं च यो हन्यात्स म्रियेत ततस्त्वसौ । दृष्ट्वा कपालिनोरूपं गजचर्माम्बरावृतम्
वित्रेसुर्दुद्रुवुर्जघ्नुर्निपेतुश्च सहस्रशः । एवं विलुलिते तस्मिन्दानवेन्द्रे महाबले ॥५२॥
गजं मत्तमथाऽऽरुह्य शतदुन्दुभिनादितम् । निमिरभ्यपतत्तूर्णं सुरसैन्यानि लोडयन् ॥
यां यां निमिगजो यातिदिशं तां तां सवाहनाः । दुद्रुवुश्चुक्रुशुर्देवा भयेनाकम्पितामुहुः
गन्धेन सुरमातङ्गा दुद्रुवुस्तस्य हस्तिनः । पलायितेषु सैन्येषु सुराणां पाकशासनः ॥
तस्थौ दिक्पालकैः सार्धमष्टभिःकेशवेनच । सम्प्राप्तस्तस्यमातङ्गोयावच्छक्रगजम्प्रति
तावच्छक्रगजो भीतो मुक्त्वा नादं सुभैरवम् । ध्रियमाणोऽपि यत्नेनचकोरइवतिष्ठति

पलायति गजे तस्मिन्नारूढः पाकशासनः । विपरीतमुखं युद्धं दानवेन्द्रेण सो
शतक्रतुस्तु शूलेन निमिं वक्षस्यताडयत् । गदया दन्तिनं तस्य गल्लदेशेऽहनद्
तं प्रहारमचिन्त्यैव निमिर्निर्भयपौरुषः । ऐरावतं कटीदेशे मुद्गरेणाऽभ्यताडयत्
स हतो मुद्गरेणाऽथ शक्रकुञ्जर आहवे । जगाम पश्चात्पद्भ्यां च पृथिवीं भूधरो
लाघवात्क्षिप्रमुत्थाय ततोऽमरमहागजः । रणादपससर्पाऽथ भीषितो निमि
ततो वायुर्ववौ रूक्षो बहुशर्करपांशुलः । सम्मुखो निमिमातङ्गोऽकम्पनोऽचल

स्नुतरक्तो बभौ शैलो घनधातुह्रदो यथा ॥ ६३ ॥

धनेशोऽपि गदां गुर्वीं तस्य दानवहस्तिनः । मुमोच वेगान्न्यपतत्सागदा तस्य
गजो गदानिपातेन स तेन परिमूर्च्छितः । दन्तैर्भित्वा धरां वेगात्पपाताऽचल

पतिते च गजे तस्मिन्सिंहनादो महानभूत् ।
सर्वतः सुरसैन्यानां गजबृंहितबृंहितः ॥ ६६ ॥

हेषारवेणचाऽश्वानांरणास्फोटैश्चधन्विनाम् । गजंतंनिहतंदृष्ट्वानिमिंचाऽपिपराङ्
सुराणां सिंहनादं च सन्नादितदिगन्तरम् । जम्भो जज्वाल कोपेन सन्दीप्त
ततःसकोपरक्ताक्षोधनुष्यारोप्य सायकम् । तिष्ठेतिचाब्रवीत्तारंसारथिंचाप्य
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य धनुष्याहितसायकम् । शतक्रतुरदीनात्मा दृढमादत्त कार्मुक

वाणं च तैलधौताग्रमर्धचन्द्रमजिह्मगम् ॥ ७१ ॥

तेनाऽस्य सशरं चापं चिच्छेद वलवृत्रहा । अपास्य तद्धनुश्छिन्नं जम्भो दानव
अन्यत्कार्मुकमादायवेगवद्भारसाधनम् । शरांश्चाशीविषाकारांस्तैलधौतानजि
शक्रं विव्याध दशभिर्जत्रुदेशे च पत्रिभिः । हृदयेच त्रिभिश्चैवद्वाभ्यांचस्कन्धयो
शक्रोऽपि दानवेन्द्राय वाणजालमभीरयन् । अप्राप्तान्दानवेन्द्रस्तुशरांश्छक्रभुजे
चिच्छेद शतधाऽऽकाशे शरैरग्निशिखोपमैः । ततश्च शरजालेन देवेन्द्रो दानवे

आच्छादयत यत्नेन वर्षास्विव घनैर्नभः ।
दैत्योऽपि वाणजालेन विव्याध सायकैः शितैः ॥ ७७ ॥

यथा वायुर्घनाटोपं यदवार्यं दिशां मुखे । शक्रोऽथ क्रोधसंरम्भान्न विशेषयते

दानवेन्द्रं तदा चक्रे गन्धर्वास्त्रं महाद्भुतम् । ततोऽस्य तेजसा व्याप्तमभूद्गगनगोचरम्
गन्धर्वनगरैश्चापि नानाप्राकारतोरणैः । मुञ्चद्भिरद्भुताकारैरस्त्रवृष्टिं समन्ततः ॥ ८० ॥
तयाऽस्त्रवृष्ट्या दैत्यानां हन्यमानामहाचमूः । जम्भं शरणमागच्छत्राहित्राहीतिभारत
ततो जम्भो महावीर्योविनद्य प्रहसन्मुहुः । स्मरन्साधुसमाचारंदैत्यानामभयं ददौ ॥
ततोऽस्त्रं मौशलंनाम मुमोच सुमहाभयम् । अथोग्रमुसलैः सर्वमभवत्पूरितं जगत् ॥
तैश्च भग्नानि सर्वाणि गन्धर्वनगराणि च । अथोग्रैकप्रहारेण रथमश्वं गजं सुरम् ॥

चूर्णयामास तत्क्षिप्रं शतशोऽथ सहस्रशः ।
ततः सुराधिपः शक्रस्त्वाष्ट्रमस्त्रमुदैरयत् ॥८५ ॥

सन्ध्यमाने ततश्चास्त्रेनिश्चेरुःपावकार्चिषः । ततो यन्त्रमया विद्याः प्रादुरासन्सहस्रशः
तैर्यन्त्रैरभवद्युद्धमन्तरिक्षं चितारकम् । तैर्यन्त्रैर्मौशलं भग्नंहन्यन्तेचासुरास्तदा ॥८७॥
शैलास्त्रं मुमुचे जम्भो यन्त्रसंघातचूर्णनम् । व्यामप्रमाणैरुपलैस्ततो वर्षःप्रवर्तत
त्वाष्ट्रेण निर्मितान्याशु यानि यन्त्राणि भारत । तेनोपलनिपातेनगतानितिलशस्ततः
ततः शिरस्सु देवानां शिलाः पेतुर्महाजवाः । दारयन्तश्च वसुधां चतुरङ्गबलं च तत्
ततोवज्रास्त्रमकरोत्सहस्राक्षः पुरन्दरः । ततः शिलामहावर्षव्यशीर्यतसमन्ततः ॥९१॥
ततः प्रशान्तैः शैलास्त्रैर्जम्भो भूधरसन्निभः । ऐषीकमस्त्रमकरोच्चूर्णितान्यपराक्रमः॥
ऐषीकेणाऽगमन्नाशंवज्रास्त्रं गिरिदारणम् । विजृम्भत्यथ चैषीकेपरमास्त्रेऽतिदारुणे॥
जज्वलुर्देवसैन्यानि सस्यंदनगजानि च । दह्यमानेष्वनीकेषु तेजसाऽस्त्रस्य सर्वतः ॥
आग्नेयमस्त्रमकरोद्वलहा पाकशासनः । तेनाऽस्त्रेण च तन्नाशमैषीकमगमत्तदा॥९५॥

तस्मिन्प्रतिहते चास्त्रे पावकास्त्रं व्यजृम्भत ।
जज्वाल सेना जम्भस्य रथः सारथिरेव च ॥९६ ॥

ततः प्रतिहतास्त्रोऽसौदैत्येन्द्रःप्रतिभानवान् । वाणास्त्रंमुमोचाथशमनंपावकार्चिषाम्
ततो जलधरैर्व्योम स्फुरद्भिर्विद्युल्लताकुलैः । गम्भीराक्षसमाधारैश्चाप्यपूर्यत मेदिनी ॥
करीन्द्रकरतुल्याभिर्धाराभिः पूरितं जगत् । शान्तमाग्नेयमस्त्रंच विलोक्येन्द्रश्चकारह
वायव्यमस्त्रमतुलं तेन मेघा ययुःक्षयम् । वायव्यास्त्रबलेनाऽथ निर्धूते मेघमण्डले ॥१००॥

बभूवाऽनाविलंव्योम नीलोत्पलदलप्रभम् । वायुनाचाऽतिरूपेण कम्पिताश्चैव
न शेकुस्तत्रतेस्थातुंरणेऽपिबलिनोऽपि ये । जम्भस्ततोऽभवच्छैलोदशयोजनवि
मारुतप्रतिघातार्थंदानवानां बलाधिपः । नानाश्चर्यसमायुक्तो नानाद्रुमलता
ततः प्रशमिते वायौ दैत्येन्द्रे पर्वताकृतौ । महाशनिं वज्रमयीं मुमोचाऽऽशु शतक्र

तयाशन्या पतितया दैत्यस्याचलरूपिणः ।
कन्दराणि व्यशीर्यन्त समन्तान्निर्झराणि च ॥ १०५ ॥

ततः सा दानवेन्द्रस्य शैलमाया न्यवर्तत । निवृत्तशैलमायोऽथ दानवेन्द्रो मदो
बभूव कुञ्जरो भीमो महाशैलमयाकृतिः । ममर्द च सुरानीकंदन्तैश्चाऽभ्यहनत्सुरा
बभञ्ज पृष्ठतः कश्चित्करेणाऽऽकृष्य दानवः । ततः क्षपयतस्तस्य सुरसैन्यानि वृ
अस्त्रं त्रैलोक्यदुर्धर्षंनारसिंहं मुमोच ह । ततः सिंहसहस्राणि निश्चेरुर्मन्त्रतेज
हृष्टदंष्ट्राट्टहासानि क्रकचाभनखानि च । तैर्विपाटितगात्रोऽसौ गजमायां व्यपोह
ततश्चाशीविषो घोरोऽभवत्फणसमाकुलः । विषनिःश्वासनिर्दग्धसुरसैन्यमहार
ततोऽस्त्रं गारुडं चक्रे शक्रः सम्प्रहरन्रणे । ततस्तस्माद्गरुत्मन्तः सहस्राणिविनि

तैर्गरुत्मद्भिरासाद्य जम्भं भुजगरूपिणम् ।
कृतस्तु खण्डशो दैत्यः साऽस्य माया व्यनश्यत ॥ ११३ ॥

मायायां च प्रनष्टायां ततो जम्भो महासुरः । चकार रूपमतुलं चन्द्रादित्यपथा
विवृत्तनयनो ग्रस्तुमियेष सुरपुङ्गवान् । ततोऽस्य प्राविशद्वक्त्रंसमहारथकुञ्जरा
सुरसेनाऽभवद्भीमं पातालोत्तालतालुकम् । सैन्येषु ग्रस्यमानेषु दानवेन बलीयसा
शक्रो दीनत्वमापन्नः श्रान्तवाहनवाहनः । कर्तव्यतां नाभ्यगच्छत्प्रोवाचेदंजनार्द
किमनन्तरमेवाऽस्ति कर्तव्यं नो विशेषतः । तदादिश घटामोऽस्यदानवस्य युयुत्स
ततोहरिरुवाचेदं वज्रायुधमुदारधीः । न साम्प्रतं रणं त्याज्यं शत्रुकातरभैरव
मा गच्छ मोहं मागच्छ क्षिप्रमस्त्रं स्मर प्रभो । नारायणास्त्रंप्रयतःश्रुत्वेतिमुमुचे

एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो विवृतास्योऽग्रसत्क्षणात् ।
त्रीणि त्रीणि च लक्षाणि किन्नरोरगरक्षसाम् ॥ १२१ ॥

ततो नारायणास्त्रं च निपपाताऽस्य वक्षसि। महास्त्रभिन्नहृदयःसुस्राव रुधिरं वसः
ततःस्वतेजसा रूपंतस्य दैत्यस्यनाशितम्। ततश्चाऽन्तर्दधेदैत्यःकृत्वाहासंमहोत्कटम्
गगनस्थः स दैत्येन्द्रः शस्त्राशनिमतीन्द्रियः। मुमोच सुरसैन्यानांसंहारकरणींपराम्
थापरश्वधांश्चक्रवज्रबाणान्समुद्गरान्। कुन्तान्खड्गान्भिण्डिपालानयोमुखगुडांस्तथा
ववर्ष दानवो रोषादवध्यानक्षयानपि। तैरस्त्रैर्दानवोन्मुक्तैर्देवानीकेषु भीषणैः॥
बाहुभिर्धरणी पूर्णा शिरोभिश्च सकुण्डलैः। ऊरुभिर्गजहस्ताभैः करीन्द्रैश्चाचलोपमैः
नेपा दण्डचक्राक्षै रथैश्च रथिभिः सह। दुःसंचाराऽभवत्पृथ्वीमांसशोणितकर्दमा
रुधिरौघह्रदावर्त्ता गजदेहशिलोच्चया। कवन्धनृत्यवहुला महासुरप्रवाहिणी ॥१२६॥

श्रृगालगृध्रध्वांक्षाणां परमानन्दकारिणी।
पिशाचजातिभिः कीर्णं पीत्वाऽऽमिषं सशोणितम्॥ १३०॥

असंभ्रमाभिर्भार्याभिःसह नृत्यद्भिरुद्धता। काचित्पत्नीप्रकुपितागजकुम्भान्तमौक्तिकैः
पिशाचोयत्रचाश्वानांखुरानेकत्रचाऽकरोत्। कर्णपूरेषु मोदन्ते पश्यन्त्यन्याःसरोषतः
प्रसादयन्ति वहुधा महाकर्णार्थकोविदाः। केचिद्वदन्ति भो देवा भोदैत्याःप्रार्थयामहे
आकल्पमेवं योद्धव्यमस्माकं तृप्तिहेतवे। केचिदूचुरयं दैत्यो देवोऽयमतिमांसलः॥
म्रियते यदि सङ्ग्रामेधातुर्दत्तोऽपयाचितम्। केचिद्युध्यत्सुवीरेषुसृक्किणीसंलिहन्तिच
पतेन पयसा विद्धो दुर्जनः सुजनो यथा। केचिद्रक्तनदीनां च तीरेष्वास्तिक्यवुद्धयः

पितॄन्देवांस्तर्पयन्तिशोणितैश्चाऽऽमिषैःशुभैः।
केचिदामिषराशिस्था दृष्ट्वाऽन्यस्यकरामिषम् ॥ १३७॥

देहिदेहीति वाशन्तो धनिनः कृपणायथा। केचित्स्वयं प्रतृप्ताश्च दृष्ट्वा वै खादतःपरान्
सरोषमोष्ठौ निर्भुज्यपश्यन्त्येवात्यसूयया। केचित्स्वमुदरंक्रुद्धश्वानिंदन्तिताडयन्तिच
सर्वभक्षमभीप्संतस्तृप्ताः परधनं यथा। केचिदाहुरयं एव श्लाघ्यासृष्टिस्तु वेधसः
सुप्रभातं सुनक्षत्रं पूर्वमासीद्वृथैव तत्। एवं वहुविधालापे पलादानां ततस्ततः॥
अदृश्यः समरे जम्भो देवान्छस्त्रैरचूर्णयत्। ततः शक्रो धनेशश्चवरुणः पवनोऽनलः

यमोऽथ निर्ऋतिश्चाऽपि दिव्यास्त्राणि महावलाः।

आकाशे मुमुचुः सर्वे दानवायाऽभिसन्धय तु ॥ १४३ ॥

व्यर्थतां जग्मुरस्त्राणि देवानां दानवम्प्रति । यथातिक्रूरचित्तानामार्ये कृत्यशता
गतिंनविविदुश्चाऽपि श्रान्तांदैत्याश्चदेवताः । दैत्यास्त्रभिन्नसर्वांगा गावःशीतादि
परस्परं व्यलीयन्तहाहाकिम्भाविवादिनः । तामवस्थां हरिर्दृष्ट्वा देवाञ्छक्रमुवाच

अघोरमन्त्रं स्मरन्देवराज ! अस्त्रं हि यत्पाशुपतप्रभावम् ।
रुद्रेण तुष्टेन तव प्रदत्तमव्याहतं वीरवराभिघाति ॥ १४७ ॥
एवं स शक्रो हरिवोधितस्तदा प्रणम्य देवं वृषकेतुमीश्वरम् ।
समाददे बाणममित्रघातनं सम्पूजितं दैवरणेऽर्द्धचन्द्रम् ॥ १४८ ॥
धनुष्यजय्ये विनियोज्य बुद्धिमान्न्ययोजयत्तत्र अघोरमन्त्रम् ॥१४९॥
ततो वधायाऽऽशु मुमोच तस्य वा आकृष्य कर्णान्तमकुण्ठदीधितिम् ।
अथाऽसुरः प्रेक्ष्य महास्त्रमापतद्विसृज्य मायां सहसा व्यवस्थितः ॥१५
प्रवेपमानेन मुखेन युज्यताचलेन गात्रेण च सम्भ्रमाकुलः ।
ततस्तु तस्याऽस्त्रवराभिमन्त्रितः शरोऽर्धचन्द्रः प्रसभं महारणे ॥ १५१
पुरन्दरस्येष्वसनप्रमुक्तो मध्यार्कविम्बं वपुषा विडम्बयन् ।
किरीटकूटस्फुरत्कान्तिसङ्कुलं सुगन्धिनानाकुसुमाधिवासितम् ।
प्रकीर्णधूमज्वलनाभमूर्धजं न्यपातयज्जम्भशिरः सकुण्डलम् ॥ १५३ ॥
तस्मिन्निन्द्रहते जम्भे प्रशशंसुः सुरा बहु ।
वासुदेवोऽपि भगवान्साधुसाध्विति चाऽब्रवीत् ॥ १५४ ॥

ततो जम्भं हतं दृष्ट्वा दानवेन्द्राः पराङ्मुखाः । सर्वे ते भग्नसङ्कल्पा दुद्रुवस्तारकं
तांश्च त्रस्तान्समालोक्यश्रुत्वा स चतुरो हतान् । सारथिंप्रेरयामासयाहीन्द्रंलघुसं
तथेत्युक्त्वा स च प्रायात्तारके रथमास्थिते । सावलेपं च सक्रोधं सगर्वंसपराक्र
साविष्कारं सधिक्कारं प्रयातो दानवेश्वरः । स युक्तं रथमास्थायसहस्रेणगरुत्मत
सर्वायुधपरिष्कारं सर्वास्त्रपरिरक्षितम् । त्रैलोक्यऋद्धिसम्पन्नंकल्पान्तान्तकनादि
सैन्येन महता युक्तो नादयन्विदिशो दिशः ।

सहस्राक्षश्च तं दृष्ट्वा त्यक्त्वा वाहनदन्तिनम् ॥ १६० ॥
...थं मातलिना युक्तं तप्तहेमपरिष्कृतम् । चतुर्योजनविस्तीर्णं सिद्धसङ्घपरिष्कृतम् ॥
गन्धर्वकिन्नरोद्गीतमप्सरोनृत्यसङ्कुलम् ॥ १६२ ॥
...र्वायुधमहाबाधं महारत्नसमाचितम् । अध्यतिष्ठत्तं रथं च परिवार्य समन्ततः ॥१६३
...शिता लोकपालाश्च तस्थुः सगरुडध्वजाः । ततश्चचाल वसुधा ववौ रूक्षो मरुद्गणैः
...लुश्च सागराः सप्त तथाऽनश्यद्रवेः प्रभा । ततोजज्वलुरस्त्राणिततोऽकम्पन्तवाहनाः
...तः समस्तमुद्धृत्तं ततोऽदृश्यत तारकः । एकतस्तारको दैत्यः सुरसङ्घास्तथैकतः ॥
...लोकावसादमेकत्र लोकोद्धरणमेकतः । चराचराणि भूतानि भयविस्मयवन्ति च ॥
प्रशशंसुः सुराः पार्थ! तदा तस्मिन्समागमे ॥ १६८ ॥
अस्त्राणि तेजांसि धनानि योधा यशो वलं वीरपराक्रमाश्च ।
सत्त्वौजसान्यङ्ग बभूवुरेषां देवासुराणां तपसः परन्तु नः ॥ १६९ ॥
...थाभिमुखमायान्तं देवा विनतपर्वभिः । बाणैरनलकल्पाग्रैर्विभ्यधुस्तारकं प्रति ॥
स तानचिन्त्य दैत्येन्द्रो देववाणक्षतान्हृदि । बाणैर्व्योम दिशःपृथ्वींपूरयामासदानवः
नारायणं च सप्तत्या नवत्या च हुताशनम् । दशभिर्मारुतं मूर्ध्नि यमं दशभिरेव च ॥
धनदं चैव सप्तत्या वरुणं च तथाऽष्टभिः । विंशत्या निर्ऋतिं दैत्यःपुनश्चाऽष्टभिरेवच
विव्याध पुनरेकैकं दशभिर्मर्मभेदिभिः । तथा च मातलिं दैत्यो विव्याधत्रिभिराशुगैः
गरुडं दशभिश्चैव महिषं नवभिस्तथा । पुनर्दैत्योऽथ देवानां तिलशो नतपर्वभिः ॥
चकार वर्मजालानि चिच्छेद च धनूंषि च । ततो विकवचादेवाविधनुष्काःप्रपीडिताः
चापान्यन्यानि संगृह्य यावन्मुञ्चन्ति सायकान् ।
तावद्बाणं समाधाय कालानलसमप्रभम् ॥ १७७ ॥
ताडयामासशक्रं स हृदि सोऽपि मुमोच ह । ततोऽन्तरिक्षमालोक्यदृष्ट्वा सूर्यशताकृती
तार्क्ष्यविष्णू समाजघ्ने शराभ्यां तावमुह्यताम् । प्रेतनाथस्य वह्नेश्चवरुणस्यशितैःशरैः
निर्ऋतेश्चाऽकरोत्कायं भीतभीतं विमोहयन् ।
निरुच्छ्वासं समाहृत्य चक्रे बाणैः समीरणम् ॥ १८० ॥

ततः प्राप्य हरिः सञ्ज्ञां प्रोत्साह्य च दिशां पतीन् ।
वाणेन सारथेः कायाच्छिरोऽहार्षीत्सकुण्डलम् ॥ १८१ ॥
धूमकेतोर्ज्वलत्क्रुद्धस्तस्य च्छित्त्वान्यपातयत् । दैत्यराजकिरीटंचचिच्छेदचासक
धनेशश्च धनुः क्रुद्धो बिभेद बहुधा शरैः । वायुश्चक्रे च तिलशो रथम्वा क्षोणि
निर्ऋतिस्तिलशो वर्म चक्रे बाणैस्ततो रणे । कृत्वैतदतुलं कर्मतिष्ठतिष्ठेति चा
लिहन्तः सृक्किणीं देवा वासुदेवादयस्तदा । दृष्ट्वा तत्कर्म देवानां तारकोऽतुल
मुमोच मुद्गरं भीमं सहस्राक्षाय सङ्गरे । दृष्ट्वा मुद्गरमायान्तमनिवार्यं रणाजिरे ॥
रथादाप्लुत्य धरणीमगमत्पाकशासनः । मुद्गरोऽपि रथोपस्थे पपात परुषस्व
स रथं चूर्णयामास न ममार च मातलिः । गृहीत्वापट्टिशंदैत्यो जघानोरसि
स्कन्धे गरुत्मतः सोऽपि निषसादविचेतनः । खड्गेनराक्षसेन्द्रश्चभित्वाभूमावपा
यमं च पातयामास भूमौ दैत्यो मुखे हतम् ।
वह्निं च भिण्डिपालेन चक्रे हत्वा विचेतनम् ॥ १९० ॥
वायुं पदा तदाऽऽक्षिप्य पातयामासभूतले । धनेशं तद्धनुष्कोट्या कुट्टयामासको
ततो देवनिकायानामेकैकं क्षणमात्रतः । तेषामेव जघानाऽसौ शस्त्रैर्बालान्यथा
लब्धसञ्ज्ञस्ततोविष्णुश्चक्रं जग्राह दुर्धरम् । दानवेन्द्रवसामेदोरुधिरेणाऽभिर
मुमोच दानवेन्द्रस्य दृढं वक्षसि केशवः । पपात चक्रं दैत्यस्य पतितं भास्करद्युति
व्यशीर्यताऽथकायेऽस्यनीलोत्पलमिवाश्मनि। ततोवज्रंमहेन्द्रोऽपिप्रमुमोचार्चितं
तस्मिञ्जयाशा शक्रस्य दानवेन्द्रायसंयुगे । तारकस्य च सम्प्राप्य शरीरं शौर्यशालि
व्यशीर्यत विकीर्णार्चिः शतधा खण्डशो गतम् । ततोवायुरदीनात्मावेगेनमहता
ज्वलितज्वलनाभासमङ्कुशं प्रमुमोच ह । विशीर्णं तस्य तच्चाऽङ्गे दृष्ट्वा वायुर्महा
ततः शैलेन्द्रमुत्पाट्य पुष्पितद्रुमकन्दरम् । चिक्षेप दानवेन्द्राय दशयोजनविस्त
महीधरं तमायान्तं सस्मितं दैत्यपुङ्गवः । जग्राह वामहस्तेन बालः कन्दुकलीलया
ततस्तेनैव चाऽऽहत्य पातयामास चाऽन्तकम् ।
दण्डं ततः समुद्यम्य कृतान्तः क्रोधमूर्च्छितः ॥ २०१ ॥

दैत्येन्द्रमूर्ध्निचिक्षेप भ्राम्यवेगेनदुर्जयम् । सोऽसुरस्याऽपतन्मूर्ध्निदैत्यस्तंजगृहेस्मयन
कल्पान्तलोकदहनो ज्वलनो रोषसंज्वलन् । शक्तिं चिक्षेप दुर्धर्षां दानवेन्द्राय संयुगे
ततः शिरीषमालेवसाऽस्यवक्षस्यराजत । ततः खड्गं समाकृष्यकोशादाकाशनिर्मलम्
द्युतिभासितत्रैलोक्यं लोकपालोऽपिनिर्ऋतिः । चिक्षेप दानवेन्द्रायतस्यमूर्ध्निपपातह
पतितश्चागमत्खड्गः स शीघ्रं शतखण्डताम् । जलेशश्च ततः क्रुद्धो महाभैरवरूपिणम्
मुमोच पाशं दैत्येन्द्रभुजबन्धाभिलाषुकः । स दैत्यभुजमासाद्य पाशः सद्यो व्यपद्यत
स्फुटितः क्रकचक्रूरदशनालिरहीश्वरः । ततोऽश्विनौ सचन्द्रार्कौ साध्याश्चवसवश्च ये
यक्षराक्षसगन्धर्वाः सर्पाश्चास्त्रैः पृथग्विधैः । जघ्नुर्दैत्येश्वरं सर्वे भूयशस्ते महाबलाः
न चास्त्राण्यस्यासज्जन्त गात्रे वज्राचलोपमे । ततो देवानवप्लुत्यतारकोदानवाधिपः
जघान कोटिशः क्रुद्धोमुष्टिपार्ष्णिभिरेव च । तथाविधंतस्यवीर्यमालोक्यभगवान्हरिः
पलायध्वमहो देवा वदन्नन्तर्हितोऽभवत् । शक्रादयस्ततो देवाः पलायनकृतादराः ॥
कालनेमिमुखैर्दैत्यैरुपरुद्धा मदोत्कटैः । मुष्टिभिः पादघातैश्च केशेष्वाकृष्य तैर्मुदा ॥
तारिताः शुष्कसरितं देवमार्गाश्च दंशिताः । बहुधा चाऽपकृष्यन्तलोकपालामहासुरैः
ततो निनादः सञ्जज्ञे दैत्यानांबलशालिनाम् । कम्पयन्पृथिवींद्यांचपातालानि च भारत
जयेति मुदिता दैत्यास्तुष्टुवुस्तारकं तदा । शङ्खांश्च पूरयामासुः कुन्देन्दुसदृशप्रभान्
धनुर्बाणरवांश्चोग्रान्कराघातांश्च चक्रिरे । भृशं हर्षान्विता दैत्यानेदुश्च ननृतुर्मुहुः ॥
ततो देवान्पुरस्कृत्य पशुपालः पशूनिव । दैत्येन्द्रोरथमास्थाय जगाम सहितोऽसुरैः

महीसागरकूलस्थं तारकः स पुरं बली ।
योजनद्वादशायामं ताम्रप्राकारशोभितम् ॥ २१६ ॥

प्रासादैर्बहुभिःकीर्णं दिव्याश्चर्योपशोभितम् । यत्र शब्दास्त्रयोनैव जीर्यंते चानिशं पुरे
गीतघोषश्चव्याघोषोभुज्यन्तांविषयास्त्विति । तत्प्रविश्यपुरंराजाजगामस्वकमालयम्
महोत्सवेन महता पुत्रस्त्रीप्रतिनन्दितः । तत्र दिव्यां सभां राजाप्राप्यसिंहासनस्थितः
स्तूयमानोदितिसुतैरप्सरोभिर्विनोदितः । दिव्यासनस्थैर्दैत्येन्द्रैर्वृतः सिंहैरिव प्रभुः ॥

एतस्मिन्नन्तरेकाचिद्दिव्यस्त्रीतत्पुरेऽभवत् ।

विस्मितस्तैर्वृतो दैत्यैः प्रोवाचचेदंस्मयन्निव ॥२२४॥

रूपेणानुपमा पार्थ!नानाभरणभूषिता । तां दृष्ट्वा तारको राजाभृशंवै विस्मितोऽभ
काऽसि देवि मम ब्रूहि किं मायारूपसुन्दरि । त्वत्समां योषितंनैवदृष्टवन्तःपुरा

स्त्र्युवाच

अहंत्रैलोक्यलक्ष्मीतिविद्धिमांदैत्यसत्तम !। अर्जितातपसाचास्मित्वयावीर्येणवा
वीर्यवन्तं त्वनलसं तपस्विनमकातरम् । दातारं चाऽपिभोक्तारं युक्त्यासेवामितं
भीरुं निर्विण्णमत्यर्थंसाध्वीपीडाकरंनरम् । सर्वातिशंकिनंसद्यस्त्यजामिदितिन
महेन्द्रेण च माता ते यदासा व्यपमानिता । तदैवत्यक्तप्रायोऽसाविदानीं तव सा
तारकश्च ततः प्राह परमं चेति तांतदा । सा चाऽऽविवेश तं देवी त्रिजगत्पूजिता
ततो दैत्याधिपं नार्यो दानवानां विभूषिताः । वीरकांस्यमुपादाय वर्धयांचक्रिरे
देवाश्च द्वारि तिष्ठन्ति बद्धा दैत्यैर्भृशातुराः । उपहस्यमानानारीभिर्दैत्यैरन्यैश्चना
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्दैत्यरूपंसमास्थितः । उपहासकमध्यस्थो गाथे द्वे प्राहबुद्धिमा
इदमल्पतरंनाम यदमीषां च दृश्यते । मातृक्रोधं स्मरन्राजा किं किं यन्न करिष्यति
वलीयांसं समासाद्य न नमेद्योचचास्तितसः । मर्कवच्छ्वेतवाकीयैरुपायैःस्थीयतां

उपहासमुखेनाऽमी उपदेशं हरेर्मुखात् ।
समाकर्ण्य ततो देवा मर्क्करूपेण संस्थिताः ॥ २३७ ॥

नृत्यन्तस्ते च बहुधा दैत्याश्चासुरयोषितः । भृशं च नोदयामासुर्मुदाभोज्यानितै
विष्णुर्दैत्यप्रतीहारं ततः प्रोवाच बुद्धिमान् । विनोदाय महाराज्ञो मर्कानेतान्प्र
प्रतीहारस्ततो हृष्टः सभामध्येविवेश सः । जानुभ्यांधरणींगत्वाबद्ध्वाचकरसम्पु
उवाचाऽनाविलंवाक्यमल्पाक्षरपरिस्फुटम् । दैत्येन्द्रंमर्कवृन्दानि द्वारि तिष्ठंतिते
भृशं विनोदकारीणिस्पृहा चेद्द्रष्टुमर्हसि । तन्निशम्याऽब्रवीद्राजाकिंचिरंक्रियतेत्व
क्षत्ताचेतिवचः श्रुत्वाकालनेमिंतदाब्रवीत् । मर्कानेतान्महाराजो द्रष्टुमिच्छति
रक्षपाल सहैभिस्त्वं राजानमनुकूलय । कालनेमिरुपादाय मर्कान्यातो नृपं तत
मर्कमध्ये विष्णुमर्को यतस्त्यक्त्वाचदैत्यताम् । ततस्तारकदैत्यस्यपुरतोनन्वृतु

मर्कादैत्यकरोत्तालैर्हर्षनादविनोदितैः । ततोऽतिमुदितोराजातेषांनृत्येनसोऽब्रवीत् ॥
अभयं वो मर्कद्देवास्तुष्टो यच्छाम्यहं त्विदम् ।
मद्गृहे स्थीयतामेव न च कार्यं भयं हृदि ॥ २४७ ॥
इतिश्रुत्वाविष्णुमर्कःप्रनृत्यन्निदमब्रवीत् । राजन्विज्ञातुमिच्छामस्तवगेहावधिं वयम्
एवमुक्तो प्रहस्याऽऽह तारको दैत्यसत्तमः । त्रिभूमिकं हि मे गेहमिदं यद्भुवनत्रयम् ॥
हरिमर्कस्ततः प्राह यद्येवं स्वं वचः स्मर । त्रैलोक्ये विचरन्त्वेतेमर्काराजन्सुनिर्भयाः
अश्वमेधशतस्यापिसत्यंराजन्विशिष्यते । धर्ममेनं स्मरन्सत्यं वचनं कुरु दैत्यप ॥
ततः सुविस्मितोदैत्यःप्राहेदंवचनंतदा । मर्कटाऽहोप्रवुद्धोऽसिसत्यंब्रूहि च को भवान्

श्रीभगवानुवाच

अहं नारायणोनाम यदि श्रोत्रमुपागतः । देवानां रक्षणार्थाय मर्करूपमुपाश्रितः ॥
तच्चेन्मान्यतमोधर्मस्तव तद्वचनं स्वकम् । परिपालय ते गेहं विचरन्तु सुरास्त्वमी
अवलेपश्च राजेन्द्र न कर्तव्यस्त्वयाहृदि । वीरोऽहमितिसञ्चिन्त्यपश्यतां कालजंवलम्
पर्यायैर्हन्यमानामभिहन्ता न विद्यते । मौढ्यमेतत्तुयद्द्वेष्टाकर्ताहमितिमन्यते ॥२५६ ॥
ऋषींश्च देवांश्च महासुरांश्च त्रैविद्यवृद्धांश्च वने मुनींश्च ।
कं वाऽऽपदो नोपनमन्ति काले कालस्य वीर्यं न तु कर्तुरेतत् ॥ २५७ ॥
न मन्त्रवलवीर्येण प्रज्ञया पौरुषेणवा । अलभ्यं लभ्यते काले काले सुप्तोऽपि विन्दति
न मातृपितृशुश्रूषा न च दैवतपूजनम् । नान्यो गुणसमाचारः पुरुषस्य सुखावहः ॥
न विद्या न तपोदानंनमित्राणिनबान्धवाः । शक्नुवन्तिपरित्रातुंनरं कालेन पीडितम्
नागामिगमनार्थं हि प्रतिघातशतैरपि । शक्नुवन्ति प्रतिव्योढुमृतेकालवलं नराः ॥
देहवत्पुण्यकर्माणि जीववत्कालउच्यते । द्वयोःसमागमेदैत्य! कार्याणां सिद्धिरिष्यते
अहो दैत्य त्वद्विशिष्टादैत्यानांकोटयःपुरा । शाल्मलेस्तूलवत्क्षिप्ताःकालवातेनदुर्दशाः
इदं तु लब्ध्वा त्वं स्थानमात्मानंबहु मन्यसे । सर्वभूतभवं देवं ब्रह्माणमिव शाश्वतम्
न चेदमचलं स्थानमनन्तंचाऽपि कस्यचित् । त्वंतुवालिशयाबुद्ध्याममेदमितिमन्यसे
अविश्वास्ये विश्वसिषि मन्यसे चाऽध्रुवं ध्रुवम् ।

ममेदमिति मोहात्त्वं त्रिलोकीश्रियमीप्ससि ॥ २६६ ॥

नेयं तवनचास्माकंनचान्येषांस्थिरामता । अतिक्रम्य बहूनन्यांस्त्वयितावदियं
कश्चित्कालमियंस्थित्वात्वयितारकचञ्चला । पुंश्चलीवाऽतिचपलापुनरन्यं गमि
सरत्नौषधिसम्पन्नं ससरित्पर्वताकरम् । तानिदानीं न पश्यामि यैर्भुक्तं भुवनत्र
हिरण्यकशिपुर्वीरो हिरण्याक्षश्च दुर्जयः । प्रह्लादोनमुचिर्वीरो विप्रचित्तिर्विरोच
कीर्तिः शूरश्च वीरश्च वातापिरिल्वलस्तथा । अश्वग्रीवः शम्बरश्च पुलोमा मधुकै
विश्वजितत्प्रमुखाश्चाऽन्येदानवेन्द्रामहाबलाः । कालेन निहताःसर्वे कालोहिबलव
सर्वैर्वर्षायुतं तप्तं न त्वमेको महातपाः । सर्वे सत्यव्रतपराः सर्वे चाऽऽसन्बहुश्रुता
सर्वे यथार्हदातारः सर्वे दाक्षायणीसुताः । ज्वलन्तः प्रजयन्तश्च कालेन प्रतिसंहृ
मुञ्चेच्छांकामभोगेषु मुञ्चेमं श्रीभवंमदम् । एतदैश्वर्यनाशेत्वांशोकःसम्पीडयिष्य

शोककाले शुचो मा त्वं हर्षकाले च मा हृषः ।
अतीतानागते हि त्वा प्रत्युत्पन्नेन वर्तय ॥ २.६ ॥

इन्द्रं चेदागतः कालः सदायुक्तमतन्द्रितम् । क्षमस्वनचिराद्दैत्यत्वामप्युपगमिष्यति
को हि स्थातुमलं लोके ममक्रुद्धस्य संयुगे । कालस्तुबलवान्प्राप्तस्तेनतिष्ठामिता
त्वमेव वेत्सिमांदैत्ययोऽहंयाद्दक्पराक्रमः । कल्पेकल्पेमहादैत्याःकोटिशोऽर्बुदशोह
येषां त्वं कोटिभागेऽपिपरिपूर्णो न तारक !। कल्पेकल्पे सृजामीदंब्रह्मादिसकलंज

इच्छन्सञ्जीवयाम्येतदनिच्छन्नाशये क्षणात् ।
न हि त्वां नोत्सहे हन्तुं सर्वदैत्यसमायुतम् ॥ २८१ ॥

अङ्गुल्यग्रेण दैत्येन्द्र पुनर्धर्मं न लोपये । यद्यहं प्रवरो भूत्वा धर्मं ब्रह्मवरात्मक
लोपयामि ततः कं च धर्मोऽयं शरणंव्रजेत् । अहंकर्तेतिमा मंस्थाःकर्तायस्तुसदा
सोऽयं कालः पचेद्विश्वंवृक्षेफलमिवागतम् । यैरेव कर्मभिः सौख्यंदुःखं तैरेवकर्मभि
प्राप्नोति पुरुषो दैत्य पश्य कालस्य चित्रताम् । सर्वं कालवशादेवबोद्धव्यंधीयुतैर्न
स्वकर्मपरिपाकस्यफलदं वै विदुर्बुधाः । तस्मात्कर्मशुभं कार्यंपुण्यात्पुण्यात्मकंव
पुण्येनतत्रसौख्यं स्याद्दुःखं पापेननिश्चितम् । इतिसञ्चिन्त्यदैत्येन्द्रस्वंवचःपरिपाल

मदुक्तं वचनं सर्वं यदि मन्तुमिहाऽर्हसि ॥ २८७ ॥

तारक उवाच

मामत्र संस्थितं दृष्ट्वा कालनेमि मुखैर्युतम् ॥ २८८ ॥

कस्येह न व्यथेद्बुद्धिर्मृत्योरपिजिघांसतः । सा तेन व्यथतेबुद्धिरचला तत्त्वदर्शिनी
ब्रवीषि वाक्यंयद्यत्त्वंतत्तथैव न संशयः । को हि विश्वासमर्थेषु शरीरे वा शरीरभृत्
कर्तुमुत्सहते लोके दृष्ट्वा संप्रस्थितं जगत् । अहमप्येवमेवेनं लोकं जानाम्यशाश्वतम्
कालाग्नावाहितं घोरे गुह्येसततगत्वरे । इदमद्यकरिष्यामि श्वः कर्ताऽस्मीतिवादिनः
कालो हरति संप्राप्ते नदीवेग इवोन्मुखान् । इदानीं तावदेवासौमया दृष्टोनविस्मृतः
कालेनह्रियमाणानां प्रलापः श्रूयते नृणाम् । ईर्ष्याभिमानलोभेषु कामक्रोधभयेषु च
स्पृहामोहातिवादेषुलोकः सक्तो न बुध्यते । गुरुस्त्वाऽप्यगुरुस्त्वापिकृत्याकृत्यंचकेशव
जानामित्वामहंविष्णोसर्वभूतवरं प्रभुम् । किंकुर्मःस्वस्वभावेनवलिनात्वांनमन्महे ॥

केचिद्व्रजन्ति त्वां भक्त्या वैरेण हेलया परे ।
सर्वेऽनुकम्प्यास्तेतुभ्यमन्तरात्माऽसि देहिनाम् ॥ २९७ ॥

पुराणः शाश्वतोधर्मः सर्वप्राणभृतांसमः । मामालम्भ्यमयामुक्ता यान्तुसर्वेदिवौकसः
पुनर्मर्कस्वरूपेण भ्रान्तव्यंभुवनत्रयम् । स्पृहाऽपि यज्ञभागानां न कार्यासमयस्त्वयम्
एवमुक्ते तारकेण देवा हर्षंप्रपेदिरे । मुच्यते हृतलोमाऽपि मेषो लाभो हि सौनिकात्
॥३००॥

श्रीभगवानुवाच

दैत्येन्द्र भव तत्त्वज्ञो विद्याज्ञानतपोन्वितः । कालंपश्यसिसुव्यक्तंपाणावामलकंयथा
कालचारित्रतत्त्वज्ञशिव भक्तमहामते । वज्राङ्गसुतधन्योऽसि स्पृहणीयोऽसिधीमताम्
यावत्ते तपसो वीर्यंतावद्भुङ्क्ष्वजगत्त्रयम् । एतेन समयेनैते चरिष्यन्ति सुरा जगत्
इत्युक्त्वामर्कयूथेनवृतो नारायणः प्रभुः । स्थानादस्मादपाक्रम्य मेरुम्प्रतिययौतदा ॥
ततो मेरुं समागम्य प्रोवाच वचनंहरिः । भवन्तोयान्तुब्रह्माणंसधास्यतिचवोहितम्
अप्रमत्तैःसदाभाव्यंपाल्यश्चसमयस्तथा । इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुस्तत्रैवाऽन्तरधीयत

प्रणतः संस्तुतो देवैर्ब्रह्माणं च सुरा ययुः ॥३०७॥

दिव्योत्तमैस्तत्रगतैरभिष्टुतो विदीप्ततेजा भुवनत्रयेऽपि ।
वज्राङ्गपुत्रोऽपि मुमोद वीरः शिवप्रसादेन महर्द्धिमाप्य ॥ ३०८ ॥
स्वयमिन्द्रोनिमिर्वह्निःकालनेमिर्यमोऽपिच। स्तम्भश्चनिर्ऋतिस्थानेमहिषोवरुण
मेषो वाताधिकारी च कुजम्भो धनदोऽभवत् ।
अन्येषां चाऽधिकारांश्च दैत्यानां तारको ददौ ॥ ३१० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर कौमारिकाखण्डे देवासुरसङ्ग्रामे तारकविजयवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः

द्वाविंशतितमोऽध्यायः

नारदार्जुनसम्वादे कुमारेशमाहात्म्ये पार्वतीजन्मवर्णनम्

नारद उवाच

एवं विप्रकृता देवा महेन्द्रसहितास्तदा । ययुः स्वायम्भुवं धाम मर्करूपमुपाश्रिता
ततश्च विस्मितो ब्रह्मा प्राह तान्सुरपुङ्गवान् । स्वरूपेणेह तिष्ठध्वं नात्रवस्तारका
ततोदेवाः स्वरूपस्थाः प्रम्लानवदनाम्बुजाः । तुष्टुवुः प्रणताःसर्वे पितरं पुत्रका
नमो जगत्प्रसूत्यै ते हेतवे पालकाय च । संहर्त्रे च नमस्तुभ्यं तिस्रोऽवस्थास्त
त्वमपः प्रथमं सृष्ट्वा तासु वीर्यमवासृजः । तदण्डमभवद्धैमं यस्मिँल्लोकाश्चराचर
वेदेष्वाहुर्विराड्रूपं त्वामेकरूपमीदृशम् । पातालं पादमूलं च पार्ष्णिपादे रसात
महातलं चाऽस्य गुल्फौ जंघेचाऽपितलातलम् । सुतलं जानुनीचास्यऊरूचवितल
महीतलं च जघनं नाभिश्चास्यनभस्तलम् । ज्योतिःपदमुरःस्थानंस्वर्लोकोबाहु
ग्रीवा महश्चवदनं जनलोकः प्रकीर्त्यते । ललाटं च तपोलोकः शीर्षं सत्यमुदाहृ
चन्द्रसूर्यौ च नयने दिशः श्रोत्रे नासिकाश्विनौ ।

आत्मानं ब्रह्मरन्ध्रस्थमाहुस्त्वां वेदवादिनः ॥ १० ॥
एवं ये ते विराड्रूपं संस्मरन्त उपासते। जन्मबन्धविनिर्मुक्ता यान्तित्वांपरमं पदम्
एवं स्थूलं प्राणिमध्यं च सूक्ष्मं भावेभावे भावितं त्वां गृणन्ति।
सर्वत्रस्थं त्वामतः प्राहुर्वेदास्तस्मै तुभ्यं पद्मज! इद्विधेम ॥ १२ ॥
एवं स्तुतो विरञ्चिस्तु कृपयाऽभिपरिप्लुतः। जानन्नपि तदा प्राह तेषामाश्वासहेतवे
सर्वेभवन्तोदुःखार्ताःपरिम्लानमुखाम्बुजाः। भ्रष्टायुधास्तथाऽकस्माद्भ्रष्टाभरणवाससः
ममैवेयं कृतिर्देवा भवतां यद्विडम्बना। यद्वैराजशरीरे मे भवन्तो बाहुसञ्ज्ञकाः ॥१५
यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं धार्मिकं चोर्जितं महत्।
तत्रासीद्बाहुनाशो मे बाहुस्थाने च ते मम ॥ १६ ॥
तन्नूनं मम भग्नौ च बाहू तेन दुरात्मना। येन चोपहृतं देवास्तन्ममाख्यातुमर्हथ ॥१७

देवा ऊचुः

योऽसौ वज्राङ्गतनयस्त्वया दत्तवरः प्रभो। भृशं विप्रकृतास्तेन तत्त्वं जानासितत्त्वतः
यत्तन्महीसमुद्रस्य तटं शार्विकतीर्थकम्। तदाक्रम्य कृतं तेन मरुभूमिसमं प्रभो ॥१९
ऋद्धयः सर्वदेवानां गृहीतास्तेन सर्वतः। महाभूतस्वरूपेण स एव च जगत्पतिः ॥२०
चन्द्रसूर्यौ ग्रहास्तारा यच्चान्यद्देवपक्षतः। तच्च सर्वं निराकृत्य स्थापितो दैत्यपक्षकः
वयं च विधृतास्तेन बहूपहसितास्तथा। विष्णोः प्रसादान्मुक्ताश्च कथञ्चिदिवकष्टतः
तद्वयं शरणं प्राप्ताः पीडिताः क्षुत्तृषार्दिताः। धर्मरक्षाकराश्चेति सञ्चिन्त्यत्रातुमर्हसि
इत्युक्तः स्वात्मभूर्देवः सुरैर्दैत्यविचेष्टितम्। सुरानुवाच भगवानतः सञ्चिन्त्य तत्त्वतः
अवध्यस्तारको दैत्यः सर्वैरपि सुरासुरैः। यस्य वध्यश्चनाद्यापिसजातोभगवान्पुनः॥
मया च वरदानेन च्छन्दयित्वा निवारितः ॥२६॥
तपसा सहि दीप्तोऽभूत्त्रैलोक्यदहनात्मकः। सच वव्रे वधं दैत्यःशिशुतःसप्तवासरात्
स च सप्तदिनो बालः शङ्कराद्यो भविष्यति। तारकस्य च वीरस्यवधकर्ताभविष्यति
सतीनामा तु या देवी विनष्टा दक्षहेलया। सा भविष्यति कल्याणीहिमाचलशरीरजा
शङ्करस्य च तस्याश्च यत्नः कार्यः समागमे। अहमप्यस्य कार्यस्य शेषंकर्ता न संशयः

इत्युक्तास्त्रिदशास्तेन साक्षात्कमलयोनिना । जग्मुर्मेरुं प्रणम्येशं मर्करूपेण स

ततो गतेषु देवेषु ब्रह्मा लोकपितामहः । निशां सस्मार भगवान्स्वां तनुंपूर्वसम्भ

ततो भगवती रात्रिरुपतस्थे पितामहम् ।

तां विविक्ते समालोक्य तथोवाच विभावरीम् ॥ ३३ ॥

विभावरि महत्कार्यं विबुधानामुपस्थितम् । तत्कर्तव्यंत्वयादेविशृणुकार्यस्यनि

तारकोनाम दैत्येन्द्रः सुरकेतुरनिर्ज्जितः । तस्याभावाय भगवाञ्जनयिष्यति यं

सुतः स भविता तस्यतारकस्यान्तकारकः । अहंत्वादौयदाजातस्तदापश्यंपुरःस्थि

अर्धनारीश्वरं देवं व्याप्य विश्वमवस्थितम् । दृष्ट्वा तमब्रुवं देवं भजस्वेति च भ

ततो नारी पृथग्जाता पुरुषश्चतथापृथक् । तस्याश्चैवांशजाःसर्वाःस्त्रियस्त्रिभुवनेस्

एकादश च रुद्राश्च पुरुषास्तस्य चांशजाः । तां नारीमहमालोक्य पुत्रं दक्षमथा

भजस्व पुत्रीं जगती ममापि च तवापि च । पुंदुःखनरकात्त्रात्रीपुत्रीतेभाविनीति

एवमुक्तो मया दक्षःपुत्रीत्वेपरिकल्पिताम् । रुद्राय मत्तवान्भक्त्यानामदत्त्वासतीति

ततः काले च कस्मिंश्चिदवमेने च तां पिता । मुमूर्षुः पापसङ्कल्पो दुरात्माकुलक

ये रुद्रं नैव मन्यन्ते ते स्फुटं कुलकज्जलाः । पिशाचास्तेदुरात्मानोभवन्तिब्रह्मरा

अवमानेन तस्याऽपि यथा देवी जहौ तनुम् ।

यथा यज्ञः स च ध्वस्तो भवेन विदितं हि ते ॥ ४४ ॥

अधुना हिमशैलस्य भवित्रीदुहिता च सा । महेश्वरंपतिं साचपुनःप्राप्स्यतिनि

तदिदं च त्वया कार्यं मेनागर्भेप्रविश्यच । तस्याश्छविं कुरुकृष्णांयथाकालीभवे

यदा रुद्रोपहसिता तपस्तप्स्यति सा महत् । समाप्तनियमा देवी यदाचोग्राभवि

स्वयमेव यदा रूपं सुगौरं प्रतिपत्स्यते । विरहेण हरश्चास्या मत्वा शून्यं जग

तस्यैव हिमशैलस्य कन्दरे सिद्धसेविते । प्रतीक्षमाणस्तां देवीमुग्रं सन्तप्स्यते त

तयोः सुतप्ततपसोर्भविता यो महान्सुतः । भविष्यति स दैत्यस्य तारकस्यनि

तपसो हि विना नास्ति सिद्धिः कुत्राऽपि शोभने ! ।

सर्वासां कर्मसिद्धीनां मूलं हि तप उच्यते ॥ ५१ ॥

त्वयाऽपि दानवो देवि देहनिर्गतया तदा । चण्डमुण्डपुरोगाश्च हन्तव्या लोकदुर्जयाः
यस्माच्चण्डश्चमुण्डंचत्वंदेविनिहनिष्यसि । चामुण्डेतिततोलोकेख्यातादेविभविष्यसि
ततस्त्वां वरदे देवि लोकः सम्पूजयिष्यति । भेदैर्बहुविधाकारैःसर्वगां कामसाधनीम्

ॐकारवक्त्रां गायत्रीं त्वामर्चन्ति द्विजोत्तमाः ।
ऊर्जितां बलदां चाऽपि राजानः सुमहाबलाः ॥ ५५ ॥

वैश्याश्च भूतिमित्येवशिवांशूद्रास्तथाशुभे !। क्षान्तिर्मुनीनामक्षोभ्यादयानियमिनामपि

त्वं महोपायसन्दोहा नीतिर्नयविसर्पिणाम् ।
परिस्थितिस्त्वमर्थानां त्वमहो प्राणिका मता ॥ ५७ ॥

त्वंयुक्तिःसर्वभूतानांत्वंगतिःसर्वदेहिनाम् ।रतिस्त्वंरतिचित्तानांप्रीतिस्त्वंहृद्यदर्शिनाम्

त्वं कान्तिः शुभरूपाणां त्वं शान्तिः शुभकर्मिणाम् ।
त्वं भ्रान्तिर्मूढचित्तानां त्वं फलं क्रतुयाजिनाम् ॥ ५९ ॥
जलधीनां महावेला त्वं च लीलाविलासिनाम् ।
सम्भूतिस्त्वं पदार्थानां स्थितिस्त्वं लोकपालिनी ॥ ६० ॥

त्वंकालरात्रिर्निःशेषभुवनावलिनाशिनी । प्रियकण्ठग्रहानन्ददायिनी त्वं विभावरी ॥

प्रसीद प्रणतानस्मान्सौम्यदृष्ट्या विलोकय ॥ ६२ ॥

इति स्तुवन्तो ये देविपूजयिष्यन्तित्वांशुभे !। तेसर्वकामानाप्स्यन्तिनियतानात्रसंशयः
इत्युक्तातु निशा देवी तथेत्युक्त्वा कृताञ्जलिः । जगाम त्वरितापूर्वं गृहं हिमगिरेर्महत्
तत्राऽऽसीनां महाहर्म्ये रत्नभित्तिसमाश्रये । ददर्श मेनामापाण्डुच्छविवक्त्रसरोरुहाम्
किञ्चिच्छ्यामुखोदग्रस्तनभागावनामिताम् । महौषधिगणाबद्धमन्त्रराजनिषेविताम्
ततः किञ्चित्प्रमिलिते मेनानेत्राम्बुजद्वये । आविवेश मुखं रात्रिर्ब्रह्मणो वचनात्तदा ॥
जन्मदाया जगन्मातुः क्रमेणजठरान्तरम् । अरञ्जयच्छविं देव्या गुहमातुर्विभावरी ॥
ततो जगन्मङ्गलदा मेना हिमगिरेः प्रिया । ब्राह्मे मुहूर्ते सुभगे प्रासूयत शुभाननाम् ॥
तस्यां तु जायमानायां जन्तवःस्थाणुजङ्गमाः । अभवन्सुखिनःसर्वेसर्वलोकनिवासिनः
अभवत्क्रूरसत्त्वानां चेतः शान्तं च देहिनाम् । ज्योतिषामपितेजस्त्वमभवत्सुतरांतदा

वनाश्रिताश्चौषधयःस्वादुवन्तिफलानिच । गन्धवन्तिचमाल्यानिविमलंचनभोऽभवत्
मारुतश्च सुखस्पर्शो दिशश्च सुमनोहराः । विस्मृतानि च शास्त्राणिप्रादुर्भावं प्रपेदिरे
प्रभावस्तीर्थमुख्यानांतदा पुण्यतमोऽभवत् । सत्येधर्मे चाऽध्ययने यज्ञे दाने तपस्यपि
सर्वेषामभवच्छ्रद्धा जन्मकाले गुहारणेः । अन्तरिक्षेऽमराश्चापि प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः
हरिब्रह्ममहेन्द्रार्कवायुवह्निपुरोगमाः । पुष्पवृष्टिं प्रमुमुचुस्तस्मिन्मेनागृहे शुभे ॥
मेरुप्रभृतयश्चाऽपि मूर्तिमन्तोमहानगाः । तस्मिन्महोत्सवेप्राप्ताचीरकांस्योपशोभिताः
सागराः सरितश्चैव समाजग्मुश्च सर्वशः ॥ ७८ ॥
हिमशैलोऽभवल्लोके तदा सर्वैश्चराचरैः । सेव्यश्चाप्यभिगम्यश्च पूजनीयश्च भारत!
अनुभूयोत्सवं ते च जग्मुः स्वानालयांस्तदा ॥ ८० ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे कुमारेशमाहात्म्ये पार्वतीजन्मवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥

———

त्रयोविंशोऽध्यायः

कुमारेशमाहात्म्ये नारदेन पर्वतपुत्रींदृष्ट्वा सामुद्रिकशास्त्रदृष्ट्याभविष्यकथनं पश्चाच्चहिमवतेआश्वासनवर्णनम्

नारद उवाच

ततश्च शैलजा देवी चिक्रीड सुभगा तदा । देवगन्धर्वकन्याभिर्नगकिन्नरसम्भवाः
मुनीनां चापि याः कन्यास्ताभिः सार्धं च शोभना ॥ १ ॥
कदाचिदथ मेरुस्थो वासवः पाण्डुनन्दन !। सस्मार मां ययौचाहंसंस्मृतोवासवंप्रति
मां दृष्ट्वाच सहस्राक्षःसमुत्थायाऽतिहर्षितः । पूजयामास तां पूजां प्रतिगृह्याऽहमब्रुवम्
महासुरमहोन्मादकालानल दिवस्पते !। कुशलं विद्यते कच्चित्तव कच्चिच्च नन्दसि

ष्टस्त्वेवं मया शक्रः प्रोवाच वचनंस्मयन् । कुशलस्याङ्कुरस्तावत्सम्भूतो भुवनत्रये॥
त्फलोदयसम्पत्तौ तद्भावान्संस्मृतोमुने !। वेत्सि सर्वमतं त्वं वै तथापि परिनोदकः
निर्वृतिं परमां याति निवेद्यार्थं सुहृज्जने ॥ ७ ॥
द्रुवाञ्छैलजां देवीं शैलेन्द्रं शैलवल्लभाम् । हरं सम्भावय वरं यन्नान्यं रोचयन्ति ते
तस्तद्वाक्यमाकर्ण्य गतोऽहंशैलसत्तमम् । ओषधिप्रस्थनिलयंसाक्षाद्दिवदिवस्पतिम्
त्र हैमे स्वयं तेन महाभक्त्या निवेदिते । महासने पूजितोऽहमुपविष्टो महासुखम् ॥
गृहीतार्घ्यं ततो मां च पप्रच्छ श्लक्ष्णया गिरा । कुशलंतपसःशैलःशनैःफुल्लाननाम्बुजः
अहमप्यस्य तत्प्रोच्य प्रत्यवोचं गिरीश्वरम् ।
त्वया शैलेन्द्र पूर्वां वाऽप्यपरां च दिशं तथा ॥ १२ ॥
अवगाह्यस्थितवता क्रियते प्राणिपालना । अहोधन्योऽसिविप्रेन्द्राःसाहाय्येनतवाचल
तपोजपव्रतस्नानैः साधयन्त्यात्मनः परम् । यज्ञाङ्गसाधनैः कांश्चित्कन्दादिफलदानतः
त्वं समुद्धरसि विप्रान्किमतः प्रोच्यते तव । अन्येऽपिजीवा बहुधात्वामुपाश्रित्यभूधर
मुदिताः प्रतिवर्तन्ते गृहस्थमिव प्राणिनः । शीतमातपवर्षांश्च क्लेशान्नानाविधान्सहन्
उपाकरोषि जन्तूनामेवंरूपाहि साधवः । किमतः प्रोच्यते तुभ्यं धन्यस्त्वं पृथिवीधर
कन्दरं यस्य चाऽध्यास्ते स्वयंतव महेश्वरः । इत्युक्तवतिवाक्यंच यथार्थंमयिफाल्गुन
हिमशैलस्य महिषीमेना आगाद्दिदृक्षया । अनुयातादुहित्री च स्वल्पाश्च परिचारिकाः
लज्जयानतसर्वाङ्गी प्रविवेश सदो महत् । ततो मां शैलमहिषी ववन्दे प्रणिपत्य सा
वस्त्रनिर्गूढवदना पाणिपद्मकृताञ्जलिः । तामहं सत्यरूपाभिराशीर्भिः समवर्धयम् ॥२१
पतिव्रता शुभाचारा सुभगा वीरसूः शुभे !। सदा वीरवती चाऽपि भव वंशोन्नतिप्रदे !
ततोऽहं विस्मिताक्षीं च हिमवद्गिरिपुत्रिकाम् ।
मृदुवाण्या प्रत्यवोचमेहि बाले ! ममाऽन्तिकम् ॥ २३ ॥
ततोदेवी जगन्माता बालभावं स्वकं मयि । दर्शयन्तीस्वपितरं कण्ठे गृह्याङ्कमाविशत्
उवाच वाचं तां मन्दं मुनिं वन्दयपुत्रिके !। मुनेःप्रसादतोऽवश्यंपतिमाप्स्यसिसम्मतम्
इत्युक्तासाततोबालावस्त्रान्तपिहितानना । किञ्चित्सहुंकृतोत्कम्पंप्रोच्यनोवाचकिञ्चन

ततो विस्मितचित्तोऽहमुपचारविदाम्वरः । प्रत्यवोचं पुनर्देवीमेहि दास्यामि ते
रत्नक्रीडनकं रम्यं स्थापितं सुचिरं मया । इत्युक्ता सा तदोत्थाय पितुरङ्कात्स
वन्दमाना चमे पादौमयानीताङ्कमात्मनः । मन्यता तांजगत्पूज्यामुक्तंवालेतवो

न तत्पश्यामि यत्तुभ्यं दद्म्याशीः का तवोचिता ।

इत्युक्ते मातृवात्सल्याच्छैलेन्द्रमहिषी तदा ॥ ३० ॥

नोदयामास मां मन्दमनाशीः शङ्किता तदा । भगवन्वेत्सि सर्वं त्वमतीतानाग
तदहं ज्ञातुमिच्छामि कीदृशोऽस्याःपतिर्भवेत् । श्रुत्वेतिसस्मितमुखःप्रावोचंन
न जातोऽस्याः पतिर्भद्रे वर्ततेच कुलक्षणः । नग्नोऽतिनिर्धनः क्रोधी वृतःक्रूरै

श्रुत्वेति सम्भ्रमाविष्टो ध्वस्तवीर्यो हिमाचलः ।

मां तदा प्रत्युवाचेदं साश्रुकण्ठो महागिरिः ॥ ३४ ॥

अहो विचित्रः संसारो दुर्वेद्यो महतामपि । प्रवरस्त्वपि शक्त्या यो नरेषु न
यत्नेन महता तावत्पुण्यैर्बहुविधैरपि । साधयत्यात्मनो लोको मानुष्यमतिदुर्ल
अध्रुवं तद्ध्रुवत्वे च कथञ्चित्परिकल्प्यते । तत्राऽपि दुर्लभानाम समानव्रतचा
साध्वी महाकुलोत्पन्ना भार्या या स्यात्पतिव्रता । तत्रापिदुर्लभंयच्चतयाधर्मनि
सह वेदपुराणोक्तं जगत्त्रयहितावहम् । एतत्सुदुर्लभं यच्च तस्यां चैव प्रजायते
तदपत्यमपत्यार्थं संसारेकिल नारद । एतेषां दुर्लभानां हि किञ्चित्प्राप्नोतिपुण्य
सर्वमेतदवाप्नोतिसकोऽपि यदि वा न वा । किञ्चित्केनाऽपिहिन्यूनंसंसारःकुल
अथ सांसारिको दोषःस्वकृतं यत्र भुज्यते । गार्हस्थ्यंचप्रशंसन्ति वेदाःसर्वेऽपि
नेति केचित्तत्र पुनः कथन्ते यदि नोगृही । अतो धात्राचशास्त्रेषु सुतलाभःप्रशं
पुनश्च सृष्टिवृद्ध्यर्थं नरकत्राणनाय च । तत्र स्त्रीणां समुत्पत्तिं विना सृष्टिर्न
सा च जातिप्रकृत्यैवकृपणा दैन्यभागिनी । तासामुपरि माऽवज्ञा भवेदितिच वे

शास्त्रेषूक्तमसन्दिग्धं वाक्यमेतन्महत्फलम् ॥ ४५ ॥

दशपुत्रसमा कन्या दशपुत्रान्प्रवर्द्धयन् । यत्फलं लभते मर्त्यस्तल्लभ्यं कन्ययैक

तस्मात्कन्या पितुः शोच्या सदा दुःखविवर्धिनी ॥ ४७ ॥

याऽपि स्यात्पूर्णसर्वार्था पतिपुत्रधनान्विता।
त्वयोक्तं च कृते ह्यस्यास्तद्वाक्यं मम शोकदम्॥ ४८॥
केन दोषेणमे पुत्री नयोग्याआशिषामता। नजातोऽस्याःपतिःकस्माद्वर्ततेवाकुलक्षणः
निर्धनश्च मुने कस्मात्सर्वेषां सर्वदः कुतः। इति दुर्घटवाक्यं ते मनो मोहयतीव मे॥
इति तं पुत्रवात्सल्यात्सभार्यं शोकसम्प्लुतम्।
अहमाश्वासयं वाग्भिः सत्याभिः पाण्डुनन्दन!॥ ५१॥
माशुचःशैलराज त्वं हर्षस्थानेऽतिपुण्यभाक्। शृणुतद्वचनं मह्यं यन्मयोक्तंच ह्यर्थवत्
जगन्माता त्वियं बाला पुत्री ते सर्वसिद्धिदा। पुराभवेऽभवद्भार्यासतीनाम्नाभवस्यया
तदस्याःकिमहं दद्मिरवेर्दीपमिवाऽल्पकः। सञ्चिन्त्येतिमहादेव्यानाऽऽशिषंदत्तवानहम्
न जातोऽस्याः पतिश्चेतिवर्ततेचभवो हि सः। न स जातोमहादेवो भूतभव्यभवोद्भवः
शरण्यः शाश्वतः शास्ता शङ्करः परमेश्वरः॥ ५६॥
सर्वे देवा यत्पदमामनन्ति वेदैश्च सर्वैरपि यो न लभ्यः।
ब्रह्मादिविश्वं ननु यस्य शैल! बालस्य वा क्रीडनकं वदन्ति॥ ५७॥
स चामङ्गल्यशीलोऽपि मङ्गलायतनोहरः। निर्धनः सर्वदश्चाऽसौ वेद स्वं स्वयमेवसः
सवदेवोऽचलःस्थाणुर्महादेवोऽजरोहरः।भविष्यतिपतिःसोऽस्यास्तत्किमर्थंतुशोचसि
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे कुमारेशमाहात्म्ये हिमवदाश्वासनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

कुमारेशमाहात्म्ये शिवद्वाराकामदहनवर्णनम्

नारद उवाच

एवं श्रुत्वा सभार्यः स प्रमोदप्लुतमानसः। प्रणम्य मामिति प्राह यद्येवं पुण्यवानहम्
पुनः किञ्चित्प्रवक्ष्यामिपुत्र्यामेदक्षिणःकरः। उत्तानःकारणंकितच्छ्रोतुमिच्छामिनारद

इतिपृष्टोऽस्मि शैलेन प्रावोचं कारणं तदा । सर्वदैव करो ह्यस्याःसर्वेषांप्राप्ति
अभयस्य प्रदाताऽसावुत्तानस्तु करस्ततः । एषा भार्या जगद्भर्तुर्वृषाङ्कस्य महा
जननी सर्वलोकस्य भाविनी भूतभाविनी । तद्यथाशीघ्रमेवैषा योगं यातु पिन
त्वया विधेयं विधिवत्तथा शैलेन्द्रसत्तम !। अस्त्यत्र सुमहत्कार्यं देवानां हिम
इति प्रोच्य तमापृच्छ्य प्रावोचं वासवायतत् । मम भूयस्तु कर्तव्यं तन्मयाकृ
किं तु पञ्चशरः प्रेर्यः कार्यशेषेऽत्र वासव । इत्यादिश्य गतश्चाऽहं तारकं प्रति
कलिप्रियत्वात्तस्यैनमर्थं कथयितुं स्फुटम् । हिमाद्रिरपि मे वाक्यप्रेरितःपार्वती
भवस्याऽऽराधनांकर्तुंससखीमादिशत्तदा । सा तं परिचचारेशं तस्याद्दूरात्सुशु
पुष्पतोयफलाद्यानिनियुक्तापार्वतीव्यधात् । महेन्द्रोऽपिचमद्वाक्यात्स्मरंसस्मा
स च तत्स्मरणं ज्ञात्वा वसन्तरतिसंयुतः । चूताङ्कुरास्त्रः सहसा प्रादुरासीन्मह
तमाह च वचो धीमान्स्मयन्निवच तं स्पृशन् । उपदेशेन बहुनाकिं त्वां प्रतिर
चित्तेवससितेन त्वं वेत्सि भूतमनोगतम् । तथापित्वांवदिष्यामिस्वकार्यपरतां
ममैकं सुमहत्कार्यं कर्तुमर्हसि मन्मथ ! । महेश्वरं कृपानाथं सतीभार्यावियोगि
संयोजय पुनर्देव्या हिमाद्रिगृहजातया । देवी देवश्च तुष्टौ ते करिष्यत इहेप्सि

मदन उवाच

अलीकमेतद्देवेन्द्र स हि देवस्तपोरतिः । नान्यासादयितव्यानि तेजांसि मनुज
वेदान्तेषु च मां विप्रा गर्हयन्ति पुनःपुनः । महाशनो महापाप्माकामोऽयमनलो

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनां नित्यवैरिणा ।
तस्मादयं सदा त्याज्यः कामोऽहिरिव सत्तमैः ॥ १६ ॥

एवं शीलस्य मे कस्मात्प्रतुष्यति महेश्वरः । मद्यपस्येव पापस्य वासुदेवो ज

इन्द्र उवाच

मैवंब्रूहि महाभाग!त्वां विना कः पुमान्भुवि । धर्ममर्थंतथाकामं मोक्षम्वाप्राप्नु

यत्किञ्चित्साध्यते लोके मूलं तस्य च कामना ।
कथं कामं विनिन्दन्ति तस्मात्ते मोक्षसाधकाः ॥ २२ ॥

सत्यं चाऽपि श्रुतेर्वाक्यं तवरूपंत्रिधागतम्। तामसंराजसंचैवसात्त्विकंचापिमन्मथ!
अमुक्तितः कामनया रूपं तत्तामसं तव। सुखबुद्ध्या स्पृहा या च रूपं तद्राजसं तव
केवलं यावदर्थार्थं तद्रूपं सात्त्विकं तव। तत्ते रूपत्रयमिदं ब्रूहि नोपासते हि के॥२५
त्वंसाक्षात्परमःपूज्यःकुरुकार्यमिदंहिनः। अथवापीडितान्दृष्ट्वासामान्यानपिपण्डिताः

स्वप्राणैरपि त्रायन्ति परमेतन्महाफलम्॥ २६॥

इति सञ्चिन्त्य कार्यं त्वं सर्वथा कुरु तत्स्फुटम्॥ २७॥

इत्याकर्ण्य तथेत्युक्त्वा वसन्तरतिसंयुतः। पिकादिसैन्यसम्पन्नोहिमाद्रिंप्रययौ स्मरः
तत्राऽपश्यतशम्भोःसपुण्यमाश्रममण्डलम्। नानावृक्षसमाकीर्णंशान्तसत्त्वसमाकुलम्
तत्राऽपश्यत्त्रिनेत्रस्यवीरकंनाम द्वारपम्। यथासाक्षान्महेशानंगणांश्चायुतशोऽस्यच
ददर्श च महेशानं नासाग्रकृतलोचनम्। देवदारुद्रुमच्छायावेदिकामध्यमाश्रितम्॥

समकायं सुखासीनं समाधिस्थं महेश्वरम्॥ ३१॥

निस्तरङ्गंविनिर्गृह्यस्थितमिन्द्रियगोचरान्। आत्मानमात्मनादेवप्रविष्टंतपसोनिधिम्
तं तथाविधमालोक्य सोऽन्तर्भेदाय यत्नवान्। भ्रमरध्वनिव्याजेन विवेश मदनो मनः
एतस्मिन्नन्तरे देवो विकासितविलोचनः। सस्मार नगराजस्य तनयां रक्तमानसः॥
निवेदिता वीरकेण विवेश च गिरेः सुता। तस्मिन्काले महाभागा सदा यद्वदुपैतिसा
ततस्तस्यां मनः स्वीयमनुरक्तमवेक्ष्य च। निगृह्य लीलया देवः स्वकं पृष्ठमवैक्षत॥

तावदापूर्णधनुषमपश्यत रतिप्रियम्॥ ३६॥

तत्राशङ्कया देवो नानास्थानेषु सोऽगमत्। तावत्पश्यति पृष्ठस्थमाकृष्यधनुषःशरम्
स नदीः पर्वतांश्चैव आश्रमान्सरसीस्तथा। परिभ्रमन्महादेवः पृष्ठस्थं तमवैक्षत॥
जगत्त्रयं परिभ्रम्य पुनरागात्स्वमाश्रमम्। पृष्ठस्थमेव तं वीक्ष्य निःश्वासं मुमुचे हरः
ततस्तृतीयनेत्रोत्थवह्निना नाकवासिनाम्। क्रोशतांगमितःकामोभस्मत्वंपाण्डुनन्दन
स तु तं भस्मसात्कृत्वाहरनेत्रोद्भवोऽनलः। व्यजृम्भतजगद्दग्धुं ज्वालापूरितदिङ्मुखः
ततो भवो जगद्धेतोर्व्यभजज्जातवेदसम्। साहङ्कारे जने चन्द्रे सुमनस्सु च गीतके॥

भृङ्गेषु कोकिलास्येषु विहारेषु स्मरानलम्।

तत्प्राप्तौ स्नेहसंयुक्तं कामिनां हृदयं किल ॥ ४३ ॥
ज्वालयत्यनिशं सोऽग्निर्दुश्चिकित्स्योऽसुखावहः ।
विलोक्य हरनिःश्वासज्वालाभस्मीकृतं स्मरम् ॥ ४४ ॥
विललाप रतिर्दीना मधुना बन्धुना सह । विलपन्ती सुबहुशो मधुना परिसान्त्वि
रत्याः प्रलापमाकर्ण्य देवदेवो वृषध्वजः । कृपया परया प्राह कामपत्नीं निरीक्ष्य
अमूर्तोऽपि ह्ययं भद्रे! कार्यं सर्वं पतिस्तव । रतिकाले ध्रुवं बाले करिष्यति न सं
यदा विष्णुश्च भविता वासुदेवात्मजो विभुः ।
तदा तस्य सुतो यः स्यात्स पतिस्ते भविष्यति ॥ ४८ ॥
सा प्रणम्य ततो रुद्रमिति प्रोक्ता रतिस्ततः । जगाम स्वेच्छया गत्वा वसन्तादिभिरन्वि
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरख
कौमारिकाखण्डे कुमारेश्वरमाहात्म्ये कामदहनो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

नारदार्जुनसम्वादे महादेवतपःकरणं पार्वत्याऽपिस्वेष्टसाधनायहिमाद्रे
रधीत्यकायांतपस्याकृतातत्रमुनीनांतपःकरणायत्रिरोधः पश्चाच्छङ्करद्वारा
ब्रह्मचारिछ्द्मवेषेणपर्वतपुत्र्याःपरीक्षासिवपार्वत्युद्वाहकविषयकउत्साह

अर्जुन उवाच

देवर्षे ! वर्ण्यते चेयं कथा पीयूषसोदरा । पुनरेतन्मुने! ब्रूहि यदा वेत्ति महेश्वरः
भगवान्स्वांसतींभार्यांवधार्थंचापितारकम् । सत्याश्चविरहात्तप्यन्ददाहकिमसौस्मर
त्वयैवोक्तंसविरहात्सत्यास्तप्यतिवैतपः । हिमाद्रिमास्थितोदेवस्तस्याःसङ्गमवाञ्छ

नारद उवाच

सत्यमेतत्पुरा पार्थ भवस्येदं मनोषितम् । अतस्ततपसा योगो न कर्तव्यो मयाऽनया

तपो विना शुद्धदेहो न कथञ्चन जायते। अशुद्धदेहेन समं संयोगो नैव दैहिकः ॥५॥
महत्कर्माणि यानीह तेषां मूलं सदा तपः। नातप्ततपसां सिद्धिर्महत्कर्माणियान्ति वै
एतस्मात्कारणाद्देवो दर्पितंतं ददाह तु। ततोदग्धे स्मरे चाऽपिपार्वतीमपिव्रीडिताम्
विहाय सगणो देवः कैलासं समपद्यत। देवी च परमोद्विग्ना प्रस्खलन्ती पदेपदे ॥८

जीवितं स्वं विनिन्दन्ती बभ्रामेतस्ततश्च सा।
हिमाद्रिरपि स्वे शृङ्गे रुदन्ती पृष्टवान्रतिम् ॥ ९ ॥

काऽसिकस्याऽसिकल्याणिकिमर्थंचापिरोदिषि। पृष्टासाचरतिःसर्वंयथावृत्तंन्यवेदयत्
निवेदितेतथारत्याशैलःसम्भ्रान्तमानसः। प्राप्यस्वांतनयांपाणावादायागात्स्वकंपुरम्
सा तत्र पितरौ प्राह सखीनां वदनेन च। दुर्भगेन शरीरेण किमनेन हि कारणम् ॥
देहवासंपरित्यक्ष्ये प्राप्स्येवाभिमतंपतिम्। असाध्यंचाप्यभीष्टंचकथंप्राप्यंतपोविना
नियमैर्विविधैस्तस्माच्छोषयिष्येकलेवरम्। अनुजानीत मां तत्र यदि वः करुणामयि
श्रुत्वेति वचनं मातापिता च प्राहतांशुभाम्। उमेतिचपले पुत्रि! न क्षमं तावकं वपुः
सोढुं क्लेशात्मरूपस्य तपसः सौम्यदर्शने। भावीन्यप्यनिवार्याणि वस्तूनिचसदैवतु

भाविनोऽर्था भवन्त्येव नरस्याऽनिच्छतोऽपि हि।
तस्मान्न तपसा तेऽस्ति वाले! किञ्चित्प्रयोजनम् ॥ १७ ॥

श्रीदेव्युवाच

यदिदं भवतो वाक्यं न सम्यगिति मे मतिः। केवलं न हि दैवेनप्राप्तुमर्थोहि शक्यते
किञ्चिद्दैवाद्धठात्किञ्चित्किञ्चिदेव स्वभावतः। पुरुषःफलमाप्नोतिचतुर्थंनाऽत्रकारणम्

ब्रह्मणा चाऽपि ब्रह्मत्वं प्राप्तं किल तपोबलात्।
अन्यैरपि च यल्लब्धं तन्न संख्यातुमुत्सहे ॥ २० ॥

अध्रुवेण शरीरेण यद्यभीष्टं न साध्यते। पश्चात्स शोच्यते मन्दःपतितेऽस्मिञ्छरीरके
यस्य देहस्य धर्मोऽयं क्वचिज्जायेत्क्वचिन्म्रियेत्। क्वचिद्गर्भगतंनश्येज्जातमात्रं क्वचित्तथा
बाल्ये च यौवनेचाऽपिवार्धक्येऽपिविनश्यति। तेनचञ्चलदेहेनकोऽर्थःस्वार्थोनचेद्भवेत्
इत्युक्त्वा स्वसखीयुक्तापितृभ्यांसाश्रुवीक्षिता। शृङ्गंहिमवतःपुण्यंनानाश्चर्यंजगामसा

तत्राम्बराणि सन्त्यज्य भूषणानि च शैलजा। सम्वीता वल्कलैर्दिव्यैस्तपोऽतप्यत
ईश्वरं हृदि संस्थाप्य प्रणवाभ्यसनादृता। मुनीनामप्यभून्मान्या तदानीं पार्थ
त्रिस्नाता पाटलापत्रभक्षकाऽभूच्छतं समाः। शतं च बिल्वपत्रेण शीर्णेन
जलभक्षा शतं चाभूच्छतं वै वायुभोजना। ततो नियममादाय पादाङ्गुष्ठस्थिता
निराहारा ततस्तापं प्रापुस्तत्तपसो जनाः। ततो जगत्समालोक्य तदीयतपसा
हरस्तत्राऽऽययौ साक्षाद्‌ब्रह्मचारिवपुर्द्धरः। वसानो वल्कलं दिव्यं रौरवाजिन
सुलक्षणाषाढधरः सद्वृत्तः प्रतिभानवान्। ततस्तं पूजयामासुस्तत्सख्यो बहु
वक्तुमिच्छुः शैलपुत्रीं सखीभिरिति चोदितः। ब्रह्मन्नियं महाभागा गृहीतनियमा

मुहूर्तपञ्चमात्रेण नियमोऽस्याः समाप्यते।
तत्प्रतीक्षस्व तं कालं पश्चादस्मत्सखीसमम्॥ ३३॥

नानाविधा धर्मवार्ताः प्रकरिष्यसि ब्राह्मण!। इत्युक्त्वा विजयाद्यास्ता देवीचरित
अश्रुमुख्यो द्विजस्याऽग्रे निन्युः कालं च तं तदा। ततः काले किञ्चिदूने ब्रह्मचारी महा
विलोकनमिषेणाऽगादाश्रमोपस्थितं ह्रदम्। निपपात च तत्राऽसौ चुक्रोशाऽतिवि
अहमत्र निमज्जामि कोऽपि मामुद्धरेत भोः। इति तारेण क्रोशन्तं श्रुत्वा तं विजया
आजग्मुस्त्वरया युक्ता ददुस्तस्मै करं च ताः। स चुक्रोश ततो गाढं दूरे दूरे
नाहं स्पृशाम्यसंसिद्धां म्रियेवा नानृतं त्विदम्। ततः समाप्तनियमा पार्वती स्वयमा
सव्यं करं ददावस्य तं चाऽसौ नाभ्यनन्दत। भद्रे यच्छुचिनैवस्याद्यच्चैवाऽवज्ञया
सदोषेण कृतं यच्च तदा दद्यान्न कर्हिचित्। सव्यं चाऽशुचिते हस्तं नावलम्ब्यामि कर्हि

इत्युक्ता पार्वती प्राह नाहं दत्तं च दक्षिणम्।
ददामि कस्यचिद्विप्र! देवदेवाय कल्पितम्॥४२॥

दक्षिणं मे करं देवो ग्रहीता भव एव च। शीर्यते चोग्रतपसा सत्यमेतन्मयोदि

विप्र उवाच

यद्येवमवलेपस्ते गमनं केन वार्यते। यथा तव प्रतिज्ञेयं ममाऽपीयं तथाऽचला
रुद्रस्यापि वयं मान्याः कीदृशं ते तपो वद। विषमस्थं यत्र विप्रं म्रियमाणमुपे

अवजानासिविप्रांस्त्वंतच्छीघ्रंव्रजदर्शनात्।यदिवामन्यसेपूज्यांस्ततोऽभ्युद्धरनान्यथा
ततो विचार्य बहुधाइतिचेतिचसाशुभा। विप्रस्योद्धरणं सर्वधर्मेभ्योऽमन्यताऽधिकम्
ततः सा दक्षिणं दत्त्वा करं तं प्रोज्झहार च। नरं नारी प्रोद्धरति मज्जन्तंभववारिधौ

एतत्सन्दर्शनार्थाय तथा चक्रे भवोद्भवः ॥ ४८ ॥

प्रोद्धृत्य च ततः स्नात्वा बद्ध्वा योगासनं स्थिता ॥ ४९ ॥

ब्रह्मचारी ततः प्राह प्रहसन्किमिदं शुभे !। कर्तुकामाऽसि तन्वङ्गि दृढयोगासनस्थिता
देवी प्राह ज्वालयिष्ये शरीरं योगवह्निना। महादेवकृतमतिरुच्छिष्टाऽहं यतोऽभवम्
ब्रह्मचारी ततःप्राहकाञ्चिद्वाह्मणकाम्यया। कृत्वावार्तास्ततःस्वीयमभीष्टंकुरुपार्वति!
नोपहन्या कदाचिद्धि साधुभिर्विप्रकामना। धर्ममेनं मन्यसे चेन्मुहूर्तं ब्रूहि पार्वति॥
देवी प्राह ब्रूहि विप्र! मुहूर्तंसंस्थिता त्वहम्। ततःस्वयंव्रतीप्राहदेवींतांस्वसखीयुताम्
किमर्थमिति रम्भोरु नवे वयसिदुश्चरम्। तपस्त्वया समारब्धं नाऽनुरूपं विभाति मे
दुर्लभंप्राप्य मानुष्यं गिरिराजगृहेऽधुना। भोगांश्चदुर्लभान्देवित्यक्त्वाकिंक्लिश्यतेवपुः
अतीव दूये वीक्ष्य त्वां सुकुमारतराकृतिम्। अत्युग्रतपसा क्लिष्टा पद्मिनीवहिमार्दिता
इदं चान्यत्तव शुभे! शिरसो रोगदं मम। यद्देहं त्यक्तुकामा त्वं प्रवुद्धा नासिबालिके
वामः कामो मनुष्येषु सत्यमेतद्वचो यतः। स्पृहणीयाऽसि सर्वेषामेवं पीडयसे वपुः
अविज्ञातान्वयो नग्नः शूली भूतगणाधिपः। श्मशाननिलयोभस्मोद्धूलनो वृषवाहनः

गजाजिनो द्विजिह्वाद्यलङ्कृताङ्गो जटाधरः।

विरूपाक्षः कथङ्कारं निर्गुणः स्यात्तवोचितः ॥ ६१ ॥

गुणा येकुलशीलाद्यावराणामुदितावुधैः। तेषामेकोऽपिनैवास्तितस्मिंस्तन्नोचितःसते
शोचनीयतमा पूर्वमासीत्पार्वतिकौमुदी। त्वंसम्वृत्ताद्वितीयासितस्यास्तत्सङ्गमाशया
तपोधनाः सर्वसमा वयं यद्यपि पार्वति !। दुनोत्येव तवारम्भः शूलायां यूपसत्क्रिया
वृषभारोहणंवासःश्मशाने पाणिसङ्ग्रहः। सव्यालपाणिनाक्षौमगजत्वग्वन्धनःकथम्
जनहास्यकरंसर्वंत्वयाऽऽरब्धमसाम्प्रतम्। स्त्रीभावाद्भूतिसम्पर्क्कःकथंचाभिमतस्तव
निवर्तय मनस्तस्मादस्मात्सर्वविरोधिनः। मृगाक्षि मदनारातेर्मर्कटाक्षस्य प्रार्थनात्

विरुद्धवादिनं चैवं ब्रह्मचारिणमीश्वरम् । निशम्य कुपिता देवी प्राह वाचा सगद्
मा मा ब्राह्मण ! भाषिष्ठा विरुद्धमिति शङ्करे ।
महत्तमो याति पुमान्देवदेवस्य निन्दया ॥ ६९ ॥
न सम्यगभिजानासितस्यदेवस्य चेष्टितम् । शृणुब्राह्मणत्वंपापाद्यथास्मात्परिमुच्
स आदिः सर्वजगतां कोऽस्य वेदान्वयंततः । सर्वं जगद्यस्यरूपंदिग्वासाःकीर्त्यते
गुणत्रयमयं शूलं शूली यस्माद्बिभर्तिसः । अबद्धाः सर्वतो मुक्ता भूता एवचतत्
श्मशानंचापिसंसारस्तद्वासीकृपयार्थिनाम् । भूतयःकथिताभूतिस्तांबिभर्तिसभूति
वृषो धर्म इति प्रोक्तस्तमारूढस्ततोवृषी । सर्पाश्चदोषाःक्रोधाद्यास्तान्बिभर्तिजगन्म
नानाविधाःकर्मयोगा जटारूपा बिभर्ति सः । वेदत्रयी त्रिनेत्राणि त्रिपुरं त्रिगुणं
भस्मीकरोति तद्देवस्त्रिपुरघ्नस्ततः स्मृतः । एवम्विधं महादेवं विदुर्ये सूक्ष्मदर्शिनः
कथङ्कारं हि ते नाम भजन्ते नैव तं हरम् । अथवा भीतसंसाराःसर्वे विप्र यतोज
विमृश्य कुर्वते सर्वं विमृश्यैतन्मया कृतम् । शुभं वाऽप्यशुभं वाऽस्तु त्वमप्येनंप्रपूज
इति ब्रुवन्त्यां तस्यां तु किञ्चित्प्रस्फुरिताधरम् ।
विज्ञाय तां सखीमाह किमप्येष विवक्षुकः ॥ ७९ ॥
चार्यतामितिविप्रोऽयं महद्दूषणभाषकः । न केवलं पापभागी श्रोता वै स्यान्नसंश
अथवाकिञ्चनःकार्यंवादेनसहब्राह्मणैः । कर्णौपिधाययास्यामोयथायःस्यात्तथाऽस्तु
इत्युक्त्वोत्थाय गच्छन्त्यां पिधाय श्रवणावुभौ । स्वरूपं समुपाश्रित्यजगृहेवसनंहर
ततो निरीक्ष्य तं देवं सम्भ्रान्ता परमेश्वरी । प्रणिपत्य महेशानं तुष्टावाऽवनता उमा
प्राह तां च महादेवो दासोऽस्मितवशोभने । तपोद्रव्येणक्रोतश्च समादिशयथेप्सितम्

देव्युवाच

मनसस्त्वं प्रभुः शम्भो!दत्तं तच्च मया तव । वपुषः पितरावीशौतौसम्मानयितुमर्हसि

महादेव उवाच

पित्राहिते परिज्ञातं दृष्ट्वात्वांरूपशालिनीम् । बालांस्वयम्वरंपुत्रीमहंदास्यामिनान्यथा
तत्तस्य सर्वमेवाऽस्तु वचनं त्वं हिमाचलम् । स्वयम्वरार्थं सुश्रोणि प्रेरयत्वांवृणोतु

इत्युक्त्वा तां महादेवः शुचिः शुचिषदो विभुः । जगामेष्टंतदादेशंस्वपुरंप्रययौ च सा
दृष्ट्वा देवीं तदा हृष्टो मेनया सहितोऽचलः ॥ ८६ ॥
आलिङ्ग्याऽऽघ्राय पप्रच्छ सर्वं साच न्यवेदयत् । दुहितुर्देवदेवेनआज्ञप्तंतु हिमाचलः
स्वयम्वरं प्रमुदितः सर्वलोकेष्वघोषयत् । अश्विनौ द्वादशादित्या गन्धर्वगरुडोरगाः
यक्षाः सिद्धास्तथा साध्या दैत्याः किम्पुरुषा नगाः ।
समुद्राद्याश्च ये केचित्त्रैलोक्यप्रवराश्च ये ॥ ९२ ॥
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतानि च । त्रयस्त्रिंशच्च ये देवास्त्रयस्त्रिंशच्च कोटयः
जग्मुर्गिरीन्द्रपुत्र्यास्तु स्वयम्वरमनुत्तमम् । आमन्त्रितस्तथा विष्णुर्मेरुमाह हसन्निव
तातास्माकंच सा देवी मेरो गच्छ नमामिताम् । अथशैलसुतादेवीहैममारुह्यशोभनम्
विमानं सर्वतोभद्रं सर्वरत्नैरलङ्कृतम् । अप्सरोभिः प्रनृत्यद्भिः सर्वाभरणभूषिता ॥
गन्धर्वसंघैर्विविधैःकिन्नरैश्चसुशोभनैः । वन्दिभिःस्तूयमाना च वीरकांस्यधरास्थिता
सितातपत्ररत्नांशुमिश्रितं चाऽवहत्तदा । शालिनीनामपार्वत्याः संध्यापूर्णेन्दुमण्डला
चामरासक्तहस्ताभिर्दिव्यस्त्रीभिश्चसम्वृता । मालां प्रगृह्य सा तस्थौसुरद्रुमसमुद्भवाम्
एवं तस्यां स्थितायां तु स्थितेलोकत्रयेतदा । शिशुर्भूत्वामहादेवःक्रीडार्थंवृषभध्वजः
उत्सङ्गतलसंगुप्तो बभूव भगवान्भवः । जयेति यत्पदं ख्यातं तस्य सत्यार्थमीश्वरम्
अथ दृष्ट्वा शिशुं देवास्तस्य उत्सङ्गवर्त्तिनः ।
कोऽयमत्रेति सम्मन्त्र्य चक्रुशुर्भृशरोषिताः ॥ १०२ ॥
वज्रमाहारयत्तस्य बाहुमुद्यम्य वृत्रहा । स बाहुरुद्यतस्तस्य तथैव समतिष्ठत ॥ १०३॥
स्तम्भितः शिशुरूपेण देवदेवेन लीलया । वज्रं क्षेप्तुं न शक्नोति बाहुं चालयितुं तदा ॥
वह्निःशक्तिं तदाक्षेप्तुं न शशाक तथोत्थितः । यमोऽपिदण्डंखड्गंचनिर्ऋतिस्तंशिशुंप्रति
पाशं च वरुणो राजाध्वजयष्टिं समीरणः । सोमो गुडं धनेशश्चगदां सुमहतीं दृढाम्
नानायुधानि चादित्यामुसलंवसवस्तथा । महाघोराणिशस्त्राणितारकाद्याश्चदानवाः
स्तम्भिता देवदेवेन तथाऽन्ये भुवनेषु ये । पूषां दन्तान्दशन्दन्तैर्बालमैक्षत मोहितः ॥
तस्याऽपिदशनाः पेतुर्दृष्टमात्रस्यशम्भुना । भगश्चनेत्रे विकृते चकार स्फुटिते च ते

वलं तेजश्च योगांश्च सर्वेषां जगृहे प्रभुः । अथ तेषु स्थितेष्वेव मन्युमत्सु सुरेष्व
ब्रह्माध्यानमुपाश्रित्यवुबोध हरचेष्टितम् । सोऽभिगम्य महादेवं तुष्टाव प्रयतो गि

पौराणैः सामसङ्गीतैर्वैदिकैर्गुह्यनामभिः ।
नमस्तुभ्यं महादेव महादेव्यै नमोनमः ॥ ११२ ॥

प्रसादात्तव बुद्ध्यादिर्जगतदेतत्प्रवर्तते । मूढाश्च देवताः सर्वा नैनं बुध्यत शङ्करम्
महादेवमिहायातं सर्वदेवनमस्कृतम् । गच्छध्वं शरणं शीघ्रं यदि जीवितुमिच्छथ
ततः सम्भ्रमसम्पन्नास्तुष्टुवुःप्रणताः सुराः । नमोनमोमहादेव पाहिपाहि जगत्पते
दुराचारान्भवानस्मानात्मद्रोहपरायणान् । अहोपश्यतनोमौढ्यंजानन्तस्तवमाविनं
भार्यामुमां महादेवीं तथाऽप्यत्र समागताः । युक्तमेतद्यदस्माकं राज्यं गृह्येत चासु
येषामेवंविधाबुद्धिरस्माभिः किंकृतं त्विदम् । अथवानोनदोषोऽस्तिपशवोहिवयं
त्वयैव पतिना सर्वे प्रेरिताः कुर्महे विभो । ईश्वरः सर्वभूतानां पतिस्त्वं परमेश्वरः
भ्रामयस्यखिलंविश्वंयन्त्रारूढंस्वमायया । येनविभ्रामितामूढाःसमायाताःस्वयम्वर
तस्मै पशूनां पतये नमस्तुभ्यं प्रसीद नः । अथ तेषां प्रसन्नोऽभूद्देवदेवस्त्रियम्बकः
यथापूर्वं चकारैतान्संस्तवाद्ब्रह्मणः प्रभुः । तारकप्रमुखा दैत्याः संक्रुद्धास्तत्रप्रोचि

कोऽयमङ्ग महादेवो न मन्यामो वयं च तम् ।
ततः प्रहस्य बालोऽसौ हुङ्कारं लीलया व्यधात् ॥ १२३ ॥

हुङ्कारेणैव ते दैत्याः स्वमेव नगरं गताः । विस्मृतं सकलं तेषां स्वयम्वरमुखं च
महादेवप्रभावेण दैत्यानां घोरकर्मणाम् । एवं यस्य प्रभावो हि देवदैत्येषु फाल्गुन
कथमीश्वरवाक्यार्थस्तस्मादन्यत्रमुच्यते । असंशयं विमूढास्तेपश्चात्तापः पुरा मह
ईश्वरं भुवनस्याऽस्य ये भजन्ते न त्र्यम्बकम् । ततःसंस्तूयमानःस सुरैःपद्मभुवादि
वपुश्चकार देवेशस्त्र्यम्बकःपरमाद्भुतम् । तेजसा तस्य देवास्ते सेन्द्रचन्द्रदिवाकरा
सब्रह्मकाः ससाध्याश्च वसुविश्वेच देवताः । सयमाश्च सरुद्राश्चचक्षुरप्रार्थयन्प्रभुम्
तेभ्यः परतमं चक्षुः स्ववपुर्द्रष्टुमुत्तमम् । ददावम्बापतिः शर्वो भवान्याश्चाऽवलम्ब
लब्ध्वा रुद्रप्रसादेन दिव्यं चक्षुरनुत्तमम् । सब्रह्मकास्तदा देवास्तमपश्यन्महेश्वरम्

ततो जगुश्च मुनयः पुष्पवृष्टिं च खेचराः । मुमुचुश्च तदा नेदुर्देवदुन्दुभयो भृशम् ॥
जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः ।
मुमुदुर्गणपाः सर्वे मुमोदाऽम्बा च पार्वती ॥ १३३ ॥
ब्रह्मायामेनिरे पूर्णां भवानीं च निरीश्वरम् । तस्य देवीततोहृष्टासमक्षंत्रिदिवौकसाम्
पादयोः स्थापयासास मालां दिव्यां सुगन्धिनीम् ।
साधुसाध्विति सम्प्रोच्य तया तं तत्र चर्चितम् ॥ १३५ ॥
सह देव्या नमश्चक्रुः शिरोभिर्भूतलाश्रितैः । सर्वे सब्रह्मका देवा जयेतिचमुदा जगुः ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेश्वरमाहात्म्ये श्रीमहादेववैवाहिकोत्साहवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

शिवपार्वत्युद्वाहेसमेषांकृतेनिमन्त्रणं तत्र विवाहमण्डपे कन्यादानसङ्कल्पावसरे शिवपूर्वजत्वकृतेप्रश्नेविष्णुनासमाधानेसानन्दंशिवगौरीविवाहः

नारद उवाच

अथ ब्रह्मा महादेवमभिवाद्य कृताञ्जलिः । उद्वाहः क्रियतां देव इत्युवाच महेश्वरम् ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्राहेदं भगवान्हरः । पराधीनावयं ब्रह्मन्हिमाद्रेस्तव चाऽपि यत्
यदुक्तं क्रियतां तद्धि वयं युष्मद्वशेऽधुना । ततो ब्रह्मा स्वयं दिव्यं पुरं रत्नमयंशुभम्
उद्वाहार्थं महेशस्य तत्क्षणात्समकल्पयत् । शतयोजनविस्तीर्णं प्रासादशतशोभितम्
पुरेतस्मिन्महादेवः स्वयमेव व्यतिष्ठत । ततः सप्तमुनीन्देवश्चिन्तिताभ्यागतान्पुरः॥५॥
प्राहिणोदम्बिकायाश्च स्थिरपत्रार्थमीश्वरः । सारुन्धतीकास्तेतत्रह्लादयन्तोहिमाचलम्

सभार्यमीश्वरगुणैः स्थिरपत्राणि चादधुः। ततः सम्पूजितास्तेनपुनरागस्य ते
न्यवेदयंस्त्र्यम्बकाय स च तानभ्यनन्दत।
उद्वाहार्थं ततो देवो विश्वं सर्वं न्यमन्त्रयत्॥ ८॥
समागतं च यत्सर्वं विना दैत्यैर्दुरात्मभिः। स्थावरं जङ्गमंयच्चविश्वंविष्णुपुरो
सब्रह्मकं पुरारातेर्महिमानमवर्धयत्। ततस्तं विधिराहेदं गन्धमादनपर्वते॥
पुरे स्थितं विवाहस्य देव कालः प्रवर्तते। ततस्तस्य जटाजूटेचन्द्रखण्डं पिता
बबन्ध प्रणयोदारविस्फारितविलोचनः। कपर्दं शोभनं विष्णुः स्वयंचक्रेऽस्य
कपालमालां विपुलां चामुण्डा मूर्ध्न्यबन्धत। उवाच चाऽपि गिरिशंपुत्रं जन
योदैत्येन्द्रकुलंहत्वा मांरक्तैस्तर्पयिष्यति। सूर्योज्वलच्छिखारत्नंभाभासितजगत्त्र
बबन्ध देवदेवस्यस्वयमेवप्रमोदतः। शेषवासुकिमुख्याश्चज्वलन्तस्तेजसा शुभाः
आत्मानं भूषणस्थाने स्वयं ते चक्रुरीश्वरे।
वायवश्च ततस्तीक्ष्णशृङ्गं हिमगिरिप्रभम्॥ १६॥
वृषं विभूषयामासुर्नानारत्नोपपत्तिभिः। शक्रो गजाजिनं गृह्य स्वयमग्रे व्यवस्थि
विना भस्म समाधाय कपाले रजतप्रभम्। मनुजास्थिमयीं मालां प्रेतनाथश्चबन्ध
वह्निस्तेजोमयं दिव्यमजिनं प्रददौ स्थितः। एवं विभूषितःसर्वैर्भृत्यैरीशोबभौ
ततो हिमाद्रेः पुरुषा वीरकंप्रोचिरेवचः। मा भूत्कालात्ययः शीघ्रंभवस्यैतन्निवेद्य
ततो देवं प्रणम्याऽऽह वीरकः करसम्पुटी। त्वरयन्ति महेशानं हिमाद्रेःपुरुषास्त
इति श्रुत्वा वचो देवः शीघ्रमित्येवचाऽब्रवीत्। सप्त वारिधयस्तस्य चक्रुर्दर्पणदर्श
तत्रैक्षत महादेवः स्वरूपं स जगन्मयम्। ततो बद्धाञ्जलिर्धीमान्स्थाणुं प्रोवाच केश
देवदेवमहादेव त्रिपुरान्तक शङ्कर!। शोभसेऽनेन रूपेण जगदानन्ददायिना॥
महेश्वर यथा साक्षादपरस्त्वं महेश्वरः। ततः स्मयन्महादेवो जयेति भुवने श्रुत
करमालस्व्य विष्णोश्च वृषभं रुरुहे शनैः।
ततश्च वसवो देवाः शूलं तस्य न्यवेदयन्॥ २६॥
धनदोनिधिभिर्युक्तःसमीपस्थस्ततोऽभवत्। सशूलपाणिर्विश्वात्मासश्चचालततो

[दे]वदुन्दुभिनादैश्च पुष्पासारैश्च गीतकैः । नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च जयेति च महास्वनैः
[स]व्यदक्षिणसंस्थानौ ब्रह्मविष्णू तु जग्मतुः । हंसं च गरुडं चैव समारुह्यमहाप्रभौ ॥
[पृ]थादितिर्दितिः सा च दनुःकद्रूःसुपर्णजा । पौलोमीसुरसाचैव सिंहिका सुरभिर्मुनिः
सिद्धिर्माया क्षमा दुर्गा देवी स्वाहा स्वधा सुधा ।
सावित्री चैव गायत्री लक्ष्मीः सा दक्षिणा द्युतिः ॥ ३१ ॥
[स्]पृहा मतिर्धृतिर्बुद्धिर्मन्थिरऋद्धिःसरस्वती । राकाकुहूः सिनीवालीदेवीभानुमतीतथा
[ध]रणीधारणी वेला राज्ञी चाऽपिचरोहिणी । इत्येताश्चान्यदेवानांमातरःपत्नयस्तथा
[उ]द्वाहं देवदेवस्य जग्मुः सर्वा मुदान्विताः । उरगा गरुडा यक्षा गन्धर्वाःकिन्नरानराः
सागरा गिरयो मेघा मासाः सम्वत्सरास्तथा ।
वेदा मन्त्रास्तथा यज्ञाः श्रौता धर्माश्च सर्वशः ॥ ३५ ॥
[हु]ङ्काराः प्रणवाश्चैव इतिहासाः सहस्रशः । कोटिशश्चतदा देवा महेन्द्राद्याःसवाहनाः
[अ]नुजग्मुर्महादेवं कोटिशोऽर्वुदशश्च हि । गणाश्च पृष्ठतो जग्मुः शङ्खवर्णाश्च कोटिशः
[द]शभिःकेकराख्याश्चविद्युतोऽष्टाभिरेवच । चतुःषष्ट्याविशाखाश्च नवभिःपरियात्रिकाः
षड्भिः सर्वान्तकः श्रीमांस्तथैव विकृताननः ।
ज्वालाकेशो द्वादशभिः कोटिभिः सम्वृतो ययौ ॥ ३६ ॥
सप्तभिः समदःश्रीमान्दुन्दुभोऽष्टाभिरेव च । पञ्चभिश्चकपालीशःषड्भिः संह्रदकःशुभः
कोटिकोटिभिरेवैकः कुण्डकः कुम्भकस्तथा । विष्टम्भोऽष्टाभिरेवेहगणपः सर्वसत्तमः
पिप्पलश्चसहस्रेण सन्नादश्च तथा बली । आवेशनस्तथाऽष्टाभिः सप्तभिश्चन्द्रतापनः ॥
महाकेशः सहस्रेण नन्दिर्द्वादशभिस्तथा । नगः कालः करालश्च महाकालः शतेन च
अग्निकःशतकोट्यावैकोट्याऽग्निमुखएवच । आदित्यमूर्धाकोट्याचकोट्याचैवधनावहः
सन्नागश्च शतेनैव कुमुदः कोटिभिस्त्रिभिः ।
अमोघः कोकिलश्चैव कोटिकोट्या सुमन्त्रकः ॥ ४५ ॥
काकपादस्तथा षष्ट्या षष्ट्यासन्तानको गणः । महावलश्च नवभिर्मधुपिङ्गश्च पिङ्गलः
नीलो नवत्या सप्तत्या चतुर्वक्त्रश्च पूर्वपात् ।

वीरभद्रश्चतुः षष्ट्या करणो बालकस्तथा ॥ ४७ ॥
पञ्चाक्षः शतमन्युश्च मेघमन्युश्च विंशतिः । काष्ठकोटिश्चतुः षष्ट्यासुकोशोवृष
विश्वरूपस्तालकेतुः पञ्चाशच्चसितानन: । ईशानोवृद्धदेवश्चदीप्तात्मा मृत्युहा
विषादो यमहा चैव गणो भृङ्गरिटिस्तथा । अशनी हासकश्चैवचतुःषष्ट्या
एते चाऽन्ये च गणपा असंख्याता महाबला: । सर्वे सहस्रहस्ताश्च जटामुकुट
चन्द्रलेखावतंसाश्च नीलकण्ठास्त्रिलोचना: । हारकुण्डलकेयूरमुकुटाद्यैरल
अणिमादिगुणैर्युक्ताःशक्ताःशापप्रसादयोः। सूर्यकोटिप्रतीकाशास्तत्राऽऽजग्मुर्ग
पातालाम्बरभूमिस्थाः सर्वलोकनिवासिनः । तुम्बुरुर्नारदो हाहाहूहूश्चैव तु स
तन्त्रीमादाय वाद्यांश्चाऽवादयञ्छङ्करोत्सवे । ऋषयः कृत्स्नशश्चैव वेदगीतांस्तपो
पुण्यान्वैवाहिकान्मन्त्राञ्जेपुः संहृष्टमानसा: । एवंप्रतस्थेगिरिशोवीज्यमानश्च
तथा यमुनयाचापाम्पतिनाधृतच्छत्रया । स्त्रीभिर्नानाविधालापैर्लाजाभिश्चानुमो
महोत्सवेन देवेशो गिरिस्थानं विवेश सः । प्रभासत्स्वर्णकलशं तोरणानां शतै
वैडूर्यबद्धभूमिस्थं रत्नजैश्च गृहैर्युतम् । तत्प्रविश्य स्तूयमानो द्वारमभ्याससाद
ततो हिमाचलस्तत्र दृश्यते व्याकुलाकुलः । आदिशदात्मभृत्यानां महादेव उप
ततो ब्रह्माणमचलो गुरुत्वे प्रार्थयत्तदा । कृत्यानां सर्वभारेषु वासुदेवं च बुद्धि

प्रत्याह च विवाहेऽस्मिन्कुमारीभ्रातरम्विना ।
भविष्यति कथं विष्णो ! लाजहोमादिकर्मसु ॥ ६२ ॥

सुतोहिममम मैनाकः स प्रविष्टोऽर्णवेस्थितः । इति चिन्ताविषण्णंतंविष्णुराहमहा
अत्र चिन्ता न कर्तव्या गिरिराज! कथञ्चन । अहं भ्राता जगन्मातुरेतदेवं च
ततः प्रमुदितःशैलःपार्वतींचस्वलङ्कृताम् । सखीभिःकोटिसंख्याभिर्वृतांप्रावेशय
ततो नीलमयस्तम्भंज्वलत्काञ्चनकुट्टिमम् । मुक्ताजालपरिष्कारंज्वलितौषधिदी
रत्नासनसहस्राढ्यं शतयोजनविस्तृतम् । विवाहमण्डपं शर्वो विवेशाऽनुचरावृत
ततः शैलः सपत्नीकः पादौ प्रक्षाल्यहर्षितः । भवस्य तेन तोयेनसिषिचे स्वं जग
पाद्यमाचमनं दत्त्वा मधुपर्कं च गां तथा । प्रदानस्य प्रयोगं च सञ्चिन्तयन्तिब्राह्म

दौहित्रीं कव्यवाहानां दद्मि पुत्रीं स्वकामहम्।
इत्युक्त्वा तस्थिवाञ्छैलो न जानाति हरस्य सः ॥ ७० ॥
ततःसर्वानपृच्छत्सकुलं कोऽपिनवेद तत्। ततोविष्णुरिदंप्राहपृच्छ्यन्तेऽन्येकिमर्थंतः
अज्ञातकुलतां तस्य पृच्छ्यतामयमेव च। अहिरेव अहेः पादान्वेत्ति नान्यो हिमाचल!
स्वगोत्रं यदि न ब्रूते न देया भगिनी मम। ततो हासस्तदा जज्ञे सर्वेषां सुमहास्वनः
निवृत्तश्च क्षणाद्भूयः किंवक्ष्यतिहरस्त्विति। ततोविमृश्यबहुधाकिञ्चिद्व्रीडाननोयथा
लज्जाजडः स्मितं चक्रे ततः पार्थ! सर्वेहरः। ततो विशिष्टा ब्रुवतिशीघ्रं कालोऽतिवर्तते
हरिः प्राह महेशानं विभ्यक्षावेदयहं तव। मातामहं च पितरं प्रयोगं श्रृणु भूधर !॥७६
आत्मपुत्रायतेशम्भोआत्मदौहित्रकाय ते। इत्युक्ते विष्णुनासर्वेसाधुसाध्वितितेजगुः
देवोऽप्युदाहरेद्बुद्धिं सर्वेभ्योऽप्यधिकां वराम्।
ततः शैलस्तथा चोक्त्वा दत्त्वा देवीं च सोदकम्॥ ७८ ॥
आत्मानं चापि देवाय प्रददौ सोदकंनगः। ततःसर्वेतुष्टुवुस्तं विवाहंचिस्मयान्विताः
दाता महीभृतां नाथोहोतादेवश्चतुर्मुखः। वरः पशुपतिःसाक्षात्कन्याविश्वारणिस्तथा
ततः स्तुवत्सु मुनिषु पुष्पवर्षे महत्यपि। नदत्सुदेवतूर्येषु करं जग्राह त्र्यम्बकः ॥८१॥
देवो देवीं समालोक्य सलज्जां हिमशैलजाम्। न तृप्यतिनचाह्लादत्साचदेवंवृषध्वजम्
तत्र ब्रह्मादिमुनयो देवीमद्भुतरूपिणीम्। पश्यन्तः शरणं जग्मुर्मनसा परमेश्वरम् ॥८३
मा मुह्याम पार्वतीं च यथा नारदपर्वतौ। ततस्तथैव तच्चक्रे सर्वेषामीप्सितं वचः॥
ततो देवैश्च मुनिभिः संस्तुतः परमेश्वरः। प्रविवेश शुभां वेदिं मूर्तिमज्ज्वलनाश्रिताम्
वेधाः श्रुतीरितैर्मन्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपस्थितैः। मूर्तमग्निं जुहाव त्रिः परिक्रम्य च तं हरः॥
लाजाहोम उमाभ्राता प्राहतंसस्मितंहरिः। बहवो मिलिताःसन्तिलोकाःसम्मर्दं ईश्वर
सावधानेन रक्ष्याणि भूषणानि त्वया हर। ततो हरश्च तं प्राह स्वजने माऽतिगोपय
किञ्चित्प्रार्थय दास्यामि प्राह विष्णुस्ततो वरम्।
त्वयि भक्तिर्दृढा मेऽस्तु स च तद्दुर्लभं ददौ॥ ८९ ॥
ददतुः सृष्टिसंरक्षां ब्रह्मणे दक्षिणामुभौ। अग्नये यज्ञभागांश्च प्रीतौ हरजनार्दनौ ॥९०

भृग्वादीनां ततो दत्त्वा श्रुतिरक्षणदक्षिणाम् । ततोगीतैश्चनृत्यैश्चभोजनैश्चयथे
महोत्सवैरनेकैश्च विस्मयं समपद्यत । विसृज्य लोकं तं सर्वं किमिच्छादानकैः
सरस्वत्या च पितरौ देव्याश्चाऽऽश्वास्य दुःखितौ ।
आमन्त्र्य हिमशैलेन्द्रं ब्रह्माणं च सकेशवम् ॥ ६३ ॥
जगाम मन्दरगिरिं गिरिणा सानुगोऽर्चितः ॥ ६४ ॥
ततो गते भगवति नीललोहिते सहोमया गिरिममलं हि भूधरः ।
सबान्धवो रुदिति हि कस्य नो मनो विसंष्ठुलं जगति हि कन्यका
इमं विवाहं गिरिराजपुत्र्याः शृणोति चाऽध्येति च यो नरः शुचिः ।
विशेषतश्चाऽपि विवाहमङ्गले स मङ्गलं वृद्धिमवाप्नुते चिरम् ॥ ६६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर
कौमारिकाखण्डे कुमारेशमाहात्म्ये हरगौरीविवाहवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः

सप्तविंशोऽध्यायः

कुमारेश्वरमाहात्म्ये पार्वतीप्रकोपवर्णनम्

नारद उवाच

ततो निरुपमं दिव्यं सर्वरत्नमयंशुभम् । ईशाननिर्मितंसाक्षात्सह देव्याऽऽविशद्गृहं
तत्राऽसौ मन्दरगिरौ सह देव्या भगाक्षहा । प्रासादे तत्र चोद्याने रेमे संहृष्टमानसः
एतस्मिन्नन्तरेदेवास्तारकेणाऽतिपीडिताः । प्रोत्साहितेनचात्यर्थमयाकलिविवर्धिना
आसाद्य ते भवं देवं तुष्टुवुर्बहुधा स्तवैः । एतस्मिन्नन्तरे देवी प्रोद्वर्तयत गात्रकम्
उद्वर्तनमलेनाऽथ नरं चक्रे गजाननम् । देवानां संस्तवैः पुण्यैः कृपयाऽभिपरिप्लुता
पुत्रेत्युवाच तं देवी ततः संहृष्टमानसा । एतस्मिन्नन्तरे शर्वस्तत्रागत्य वचोऽब्रवीत्
पुत्रस्तवाऽयं गिरिजे शृणु यादृग्भविष्यति । विक्रमेण च वीर्येण कृपया सदृशो मम

यथाऽहं तादृशश्चाऽसौ पुत्रस्तेभविताग़ुणैः । येच पापादुराचारा वेदान्धर्मंद्विषन्तिच
तेषामामरणान्तानि विघ्नान्येष करिष्यति ।
ये च मां नैव मन्यन्ते विष्णुं वाऽपि जगद्गुरुम् ॥ ६ ॥
विघ्निता विघ्नराजेन ते यास्यन्ति महत्तमः । तेषां गृहेषु कलहः सदा नैवोपशाम्यति॥
पुत्रस्य तव विघ्नेन समूलं तस्य नश्यति । येषां न पूज्याःपूज्यन्तेक्रोधासत्यपराश्चये
रौद्रसाहसिका ये च तेषांविघ्नंकरिष्यति । श्रुतिधर्माञ्ज्ञातिधर्मान्पालयन्तिगुरूंश्चये
कृपालवो गतक्रोधास्तेषां विघ्नं हरिष्यति । सर्वेधर्माश्चकर्माणितथानानाविधानिच
सविघ्नानि भविष्यन्तिपूजयाऽस्यविना शुभे ॥ एवंश्रुत्वाउमाप्राहएवमस्त्वितिशङ्करम्
ततो बृहत्तनुः सोऽभूत्तेजसा द्योतयन्दिशः । ततो गणैःसमं शर्वःसुराणांप्रददौ च तम्
यावत्तारकहन्ता वो भवेत्तावदयं प्रभुः ॥ १५ ॥
ततो विघ्नपतिर्देवैः संस्तुतःप्रणतार्तिहा । चकार तेषां कृत्यानिविघ्नानिदितिजन्मनाम्
पार्वती च पुनर्देवी पुत्रत्वे परिकल्प्य च । अशोकस्याऽङ्कुरं वार्भिरवर्द्धयतस्वाहृतैः ॥
सप्तर्षीनथ चाऽऽहूय संस्कारमङ्गलं तरोः । कारयामास तन्वङ्गी ततस्तांमुनयोऽब्रुवन्
त्वयैव दर्शिते मार्गे मर्यादां कर्तुमर्हसि । किं फलं भविता देवि कल्पितैस्तरुपुत्रकैः॥

देव्युवाच

यो वै निरुदके ग्रामे कूपं कारयते बुधः । यावत्तोयं भवेत्कूपे तावत्स्वर्गे स मोदते॥
दशकूपसमा वापी दशवापीसमं सरः । दशसरःसमा कन्या दशकन्यासमः क्रतुः ॥
दशक्रतुसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः ॥ २२ ॥
एषैव मम मर्यादा नियता लोकभाविनी । जीर्णोद्धारे कृते वापि फलंतद्विगुणंमतम्

॥ इतिश्री गणेशोत्पत्तिः ॥

ततः कदाचिद्भगवानुमया सह मन्दरे । मन्दिरे हर्षजनने कलधौतमये शुभे ॥ २४ ॥
प्रकीर्णकुसुमामोदमहालिकुलकूजिते । किन्नरोद्गीतसङ्गीत प्रतिशब्दितमध्यके ॥ २५ ॥
क्रीडामयूरैर्हंसैश्च श्रुतैश्चैवाऽभिनादिते । मौक्तिकैर्विविधै रत्नैर्विनिर्मितगवाक्षके॥२६
तत्र पुण्यकथाभिश्च क्रीडतोरुभयोस्तयोः । प्रादुरभूत्महाञ्छब्दः पूरिताम्बरगोचरः ॥

तं श्रुत्वा कौतुकाद्देवी किमेतदिति शङ्करम् । पर्यपृच्छच्छुभतनुर्हरं विस्मयपूर्व
तामाह देवीं गिरिशो दृष्टपूर्वास्तु ते त्वया ।
एते गणा मे क्रीडन्ति शैलेऽस्मिंस्त्वत्प्रियाः शुभे ! ॥ २६ ॥
तपसा ब्रह्मचर्येण क्लेशेन क्षेत्रसाधनैः । यैरहं तोषितः पृथ्व्यां त एते मनुजोत्त
मत्समीपमनुप्राप्ता मम लोकं वरानने !। चराचरस्य जगतः सृष्टिसंहारणक्षमाः
विनैतान्नैव मे प्रीतिर्नैभिर्विरहितो रमे । एते अहमहं चैते तानेतान्पश्य पार्वति
इत्युक्ता विस्मिता देवी ददृशे तान्गवाक्षके । स्थिता पद्मपलाशाक्षीमहादेवेनसा
केचित्कृशाह्रस्वदीर्घाःकेचित्स्थूलमहोदराः । व्याघ्रेभमेषाजमुखानानाप्राणिमहामु
व्याघ्रचर्मपरीधाना नग्ना ज्वालामुखाः परे । गोकर्णा गजकर्णाश्च बहुपादमुखे
विचित्रवाहनाश्चैव नानायुधधरास्तथा । गीतवादित्रतत्त्वज्ञाः सत्त्वगीतरसप्रि
तान्दृष्ट्वा पार्वती प्राह कतिसंख्याभिधास्त्वमी ॥ ७ ॥

श्रीशङ्कर उवाच

असंख्येयास्त्वमी देवि असंख्येयाभिधास्तथा । जगदापूरितं सर्वमेतैर्भीमैर्महाब
सिद्धक्षेत्रेषु रथ्यासु जीर्णोद्यानेषु वेश्मसु । दानवानां शरीरेषु बालेषून्मत्तकेषु
एते विशन्ति मुदिता नानाहारविहारिणः । ऊष्मपाः फेनपाश्चैव धूम्रपा मधुपा
मदाहाराः सर्वभक्ष्यास्तथाऽन्ये चाऽप्यभोजनाः ॥ ४० ॥
गीतनृत्योपहाराश्च नानावाद्यरवप्रियाः । अनन्तत्वादमीषां च वक्तुं शक्या नवै गु

श्रीदेव्युवाच

मनःशिलेन कल्केन य एष च्छुरिताननः । तेजसा भास्कराकारो रूपेण सदृशस्त
आकर्ण्याऽऽकर्ण्यते देव गणैर्गीतान्महागुणान् । मुहुर्नृत्यतिहास्यञ्चविदधातिमुहु
सदाशिवशिवेत्येवंविह्वलो वक्ति यो मुहुः । धन्योऽयमीदृशीयस्यभक्तिस्त्वयिमहे
एनं विज्ञातुमिच्छामि किन्नामाऽसौ गणस्तव ।

श्रीशङ्कर उवाच

स एष वीरको देवि सदा मेऽद्रिसुते ! प्रियः ॥ ४५ ॥

नानाश्चर्यगुणाधारः प्रतीहारो मतोऽम्बिके ! ।

देव्युवाच

ईदृशस्य सुतस्याऽपि ममोत्कण्ठा पुरान्तक ! ॥ ४६ ॥
कदाऽहमीदृशं पुत्रं लप्स्याम्यानन्ददायकम् ।

शर्व उवाच

एष एव सुतस्तेऽस्तु यावदीदृक्परो भवेत् ॥ ४७ ॥
इत्युक्त्वा विजयां प्राह शीघ्रमानय वीरकम् । विजयाच ततोगत्वावीरकंवाक्यमब्रवीत्
एहि वीरक!ते देवीगिरिजातोषिताशुभा । त्वामाह्वयति सादेवीभवस्याऽनुमतेस्वयम्
इत्युक्तः सम्भ्रमयुतो मुखंसम्मार्ज्यपाणिना । देव्याःसमीपमागच्छज्जयपाऽनुगतःशनैः
तं दृष्ट्वा गिरिजा प्राह गिरा मधुरवर्णया । एह्येहि पुत्र दत्तस्त्वं भवेन मम पुत्रकः ॥
इत्युक्तोदण्डवद्देवींप्रणम्याऽवस्थितःपुरः । माताततस्तमालिङ्ग्यकृत्वोत्सङ्गेचवीरकम्
चुचुम्ब च कपोले तं गात्राणिच प्रमार्जयत् । भूषयामासदिव्यस्तंस्वयंनानाविभूषणैः
एवं सङ्कल्प्यतं पुत्रंलालयित्वा उमा चिरम् । उवाच पुत्रक्रीडेति गच्छसार्धंगणैरिति
ततश्चिक्रीड मध्ये सगणानां पार्वतीसुतः । मुहुर्मुहुःस्वमनसिस्तुवन्भक्ति सशाङ्करीम्
प्रणम्यसर्वभूतानिप्रार्थयाम्यस्मिदुष्करम् । भक्त्याभजध्वमीशानंयस्याभक्तेरिदंफलम्
क्रीडितुं वीरके याते ततो देवी च पार्वती । नानाकथाभिश्चिक्रीड पुनरेव जटाभृता॥
ततो गिरिसुताकण्ठे क्षिप्तबाहुर्महेश्वरः । तपसस्तु विशेषार्थं नर्म देवीं किलाऽब्रवीत्
स हि गौरतनुःशर्वोविशेषाच्छशिशोभितः । रञ्जिताचविभावर्यादेवीनीलोत्पलच्छविः

शर्व उवाच

शरीरे ममतन्वङ्गीसितेभास्यसितद्युतिः । भुजङ्गीवासिता शुभ्रे संश्लिष्टा चन्दने तरौ
चन्द्रज्योत्स्नाभिसम्पृक्तातामसी रजनी यथा । रजनी वा सिते पक्षेदृष्टिदोषंददासि मे
इत्युक्ता गिरिजा तेन कण्ठं शर्वाद्विमुच्यसा । उवाच कोपरक्ताक्षीभृकुटीविकृतानना
स्वकृतेन जनः सर्वो जनेन परिभूयते । अवश्यमर्थी प्राप्नोति खण्डनां शशिखण्डभृत्
तपोभिर्दीप्तचरितैर्यत्त्वां प्रार्थितवत्यहम् । तस्य मे नियमस्यैवमवमानः पदेपदे ॥६४॥

नैवाऽहं कुटिला शर्व विषमा नच धूर्जटे !। स्वदोषैस्त्वं गतः क्षान्तिं तथा दोषाक
नाहं मुष्णामि नयने नेत्रहन्ता भवान्भव !। भगस्तत्ते विजानाति तथैवेदं जगत्त्र
मूर्ध्नि शूलं जनयसे स्वैर्दोषैर्मामधिक्षिपन्। यत्त्वं मम ाह कृष्णेति महाकालोऽसि
यास्याम्यहं परित्यक्तुमात्मानं तपसा गिरिम्। जीवन्त्या नास्ति मे कृत्यं धूर्तेन परि

निशम्य तस्या वचनं कोपतीक्ष्णाक्षरं भवः।
उवाचाऽथ च सम्भ्रान्तो दुर्ज्ञेयचरितो हरः ॥६६॥

नतत्त्वज्ञाऽसि गिरिजे नाऽहं निन्दापरस्तव। चाटूक्तिबुद्ध्या कृतवान्स्तवाहं नर्मवं
विकल्पः स्वच्छचित्ते ति गिरिजै षा मम प्रिया। प्रायेण भूतिलिप्तानामन्यथा चिन्तिता
अस्माद्दृशानां कृष्णाङ्गि प्रवर्तन्तेऽन्यथा गिरः। यद्येवं कुपिता भीरु नतेवक्ष्याम्य
नर्मवादी भविष्यामि जहि कोपं शुचिस्मिते !। शिरसा प्रणतस्तेऽहं रचितस्ते मयाऽ
दीनेनाऽप्यपमानेन निन्दितो नैमि विक्रियाम्। वरमस्मि विनम्रोऽपि नत्वं देवि गुणा
इत्यनेकैश्चाटुवाक्यैः सूक्तैर्देवेन बोधिता। कोपं तीव्रं न तत्याज सतीमर्मणि घ
अवष्टब्धावथ क्षिप्त्वा पादौ शङ्करपाणिना। विपर्यस्तालका वेगाद्गन्तुमैच्छत
तस्यां व्रजन्त्यां कोपेन पुनराह पुरान्तकः। सत्यं सर्वैरवयवैः सुतेति सदृशी पि
हिमाचलस्य शृङ्गैस्तैर्मेघमालाकुलैर्मनः। तथा दुरवगाह्योऽसौ हृदयेभ्यस्तवाऽ
काठिन्यं कष्टमस्मिस्ते वनेभ्यो बहुधा गतम्। कुटिलत्वं नदीभ्यस्ते दुःसेव्यत्वं हिमा
सङ्क्रान्तं सर्वमेवैतत्तव देवि! हिमाचलात्। इत्युक्ता सा पुनः प्राह गिरिशं शैलजा
कोपकम्पितधूम्रास्या प्रस्फुरद्दशनच्छदा। माशर्वात्मोपमानेन निन्दत्वं गुणिनोज
तवापि दुष्टसम्पर्कात्सङ्क्रान्तं सर्वमेव हि। व्यालेभ्योऽनेकजिह्वत्वं भस्मनः स्नेहव
हृत्कालुष्यं शशाङ्कात्ते दुर्बोधत्वं वृषादपि। अथवा बहुनोक्तेन अलं वाचा श्रमेण
श्मशानवास आसीत्त्वं नग्नत्वान्नतव त्रपा। निर्घृणत्वं कपालित्वाद्देवं कः शक्नुया
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखं
कौमारिकाखण्डे कुमारेश्वरमाहात्म्ये पार्वतीप्रकोपवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्याय

अष्टाविंशोऽध्यायः

पार्वत्यातपःकरणार्थं हिमालयेगमनवर्णनम्

नारद उवाच

इत्युक्त्वा मन्दिरात्तस्मान्निर्जगाम हिमाद्रिजा।
तस्यां व्रजन्त्यां चक्रुश्च गणाः किलकिलध्वनिम् ॥ १ ॥
क्व मातर्गच्छसीत्युक्त्वारुदन्तो धाविताःपुरः। विष्टभ्यचरणौदेव्यावीरकोवाष्पगद्गदम्
प्रोवाचमातःकिन्वेतत्कस्यासिकुपितात्वरा। अहंत्वामनुयास्यामिमातरंस्नेहवत्सलाम्
नाहंसहिष्ये परुषं गिरीशस्य त्वयोज्झितः। पुत्रःपारुष्यपात्रंहिभवेन्मात्राविनापितुः
उन्नाम्यवदनं पश्चाद्दक्षिणेन तु पाणिना। उवाच वीरकं माता मा शोकम्पुत्र भावय
शैलाग्रात्पतितुं नैव न्याय्यं गन्तुंमयासह। वक्ष्यामिपुत्रतेयोग्यंतत्तु कार्यं त्वया शृणु
कृष्णेत्युक्ताहरेणाहंनिन्दिताचतृणायिता। साहंतपःकरिष्यामियथागौरीत्वमाप्नुयाम्
गौराङ्गीलम्पटोह्येषयातायांमय्यनन्तरम्। द्वाररक्षात्वयाकार्यानित्यं रन्ध्रान्यवेक्षिणा
यथा न काचित्प्रविशेद्योषिदत्र हरान्तिके। दृष्ट्वा परां स्त्रियं चात्र वदेथा मम पुत्रक!
शीघ्रमेव करिष्यामिततो युक्तमनन्तरम्। एवमस्त्वति तां देवीं वीरकःप्राहसाम्प्रतम्
मातुराज्ञा सुतो ह्लादप्लाविताङ्गोगतज्वरः। जगाम त्र्यक्षं सन्द्रष्टुं प्रणिपत्य न मातरम्
गजवक्त्रं ततः प्राह प्रणम्यसमवस्थितम्। साश्रुकण्ठं प्रयाचन्तं नय मामपि पार्वति
गजवक्त्रं हि त्वां वाल मामिवोपहसिष्यति। तदागच्छमयासार्धंयागतिर्मेतवापिसा
पराभवाद्धि धूर्तानां मरणं साधु पुत्रक!। एवमुक्त्वा समादाय हिमाद्रिं प्रतिसा ययौ

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे कुमारेश्वरमाहात्म्ये पार्वत्यास्तपोर्थं गमनवर्णनं
नामाऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

———

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

कुमारेश्वरमाहात्म्ये कुमारस्य सर्वदेवसेनाधिपत्याभिषेकोत्सववर्णनम्

नारद उवाच

व्रजन्तीगिरिजाऽपश्यत्सखींमातुर्महाप्रभाम् । कुसुमामोदिनींनामतस्यशैलस्यदेव
साऽपि दृष्ट्वागिरिसुतां स्नेहविक्लवमानसा । क्वपुनर्गच्छसीत्युच्चैरालिङ्ग्योवाचदे
साचास्यैसर्वमाचख्यौशङ्करात्कोपकारणम् । पुनश्चोवाचगिरिजादेवतांमातृसम
नित्यं शैलाधिराजस्य देवतात्वमनिन्दिते !। सर्वंचसन्निधानंचमयि चातीव वत्स
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि यद्विधेयं तवाऽधुना । अथाऽन्यस्त्रीप्रवेशेतु समीपे तु पिना

त्वयाऽऽख्येयं मम शुभे ! युक्तं पश्चात्करोम्यहम् ।
तथेत्युक्ते तया देव्या ययौ देवी गिरिं प्रति ॥ ६ ॥

रम्ये तत्र महाश्रृङ्गे नानाश्चर्योपशोभिते । विभूषणादि संन्यस्य वृक्षवल्कलधारि
तपस्तेपे गिरिसुता पुत्रेण परिपालिता । ग्रीष्मे पञ्चाग्निसन्तप्ता वर्षासु च जलो
स्थण्डिलस्था च हेमन्ते निराहारातताप सा । एतस्मिन्नन्तरेदैत्योह्यन्धकस्यसुतो
ज्ञात्वा गतां गिरिसुतां पितुर्वैरमनुस्मरन् । आडिर्नाम बकभ्राता रहस्यान्तरप्रेक्ष
जिते किलान्धके दैत्ये गिरिशेनाऽमरद्विषि । आडिश्चकार विपुलं तपो हरजिगी
तमागत्याऽब्रवीद्ब्रह्मातपसापरितोषितः । ब्रूहि किं वाऽसुरश्रेष्ठ!तपसा प्राप्तुमिच्छ

ब्रह्माणमाह दैत्यस्तु निर्मृत्युत्वमहं वृणे ।

ब्रह्मोवाच

न कश्चिच्च विना मृत्युं जन्तुरासुर ! विद्यते ॥ १३ ॥
यतस्ततोऽपि दैत्येन्द्र ! मृत्युः प्राप्यः शरीरिणा ।
इत्युक्तो दैत्यसिंहस्तु प्रोवाचाऽम्बुजसम्भवम् ॥ १४ ॥

रूपस्य परिवर्तो मे यदा स्यात्पद्मसम्भव !। तदा मृत्युर्मम भवेदन्यथा त्वमरो ह

इत्युक्तस्तं तथेत्याह तुष्टः कमलसम्भवः । इत्युक्तोऽमरतांमेने दैत्यराज्यस्थितोऽसुरः
आजगाम स च स्थानं तदा त्रिपुरघातिनः । आगतो ददृशेतंच वीरकं द्वार्यवस्थितम्
तं चासौ वञ्चयित्वा च आडिःसर्पशरीरभृत् । अवारितो वीरकेणप्रविवेशहरान्तिकम्
भुजङ्गरूपं सन्त्यज्य बभूवाऽथ महासुरः । उमारूपी छलयितुं गिरिशं मूढचेतनः ॥१६
कृत्वोमायास्ततो रूपमप्रतर्क्यमनोहरम् । सर्वावयवसम्पूर्णं सर्वाभिज्ञानसम्वृतम् ॥
चक्रे भगान्तरेदैत्यो दन्तान्वज्रोपमान्दृढान् । तीक्ष्णाग्रान्बुद्धिमोहेनगिरिशंहन्तुमुद्यतः
कृत्वोमारूपमेवंस स्थितोदैत्योहरान्तिके । तां दृष्ट्वा गिरिशस्तुष्टःसमालिंग्यमहासुरम्
मन्यमानो गिरिसुतां सर्वैरवयवान्तरैः । अपृच्छत्साधु ते भावो गिरिपुत्री ह्यकृत्रिमा
या त्वं मदाशयं ज्ञात्वा प्राप्तेह वरवर्णिनि !। त्वया विरहितःशून्यंमन्येऽस्मिन्भुवनत्रये

प्राप्ता प्रसन्ना या त्वं मां युक्तमेवम्विधं त्वयि ।
इत्युक्ते गूहयंश्चेष्टामुमारूप्यसुरोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥

याताऽस्मितपसश्चर्तुंकालीवाक्यात्तवाऽतुलम् । रतिश्चतत्रमेनाभूत्ततःप्राप्तातवान्तिकम्
इत्युक्तः शङ्करः शङ्कां किंचित्प्राप्यावधारयत् । कुपिता मयितन्वङ्गीप्रत्यक्षाच दृढव्रता
अप्राप्तकामासम्प्राप्ताकिमेतत्संशयोमम । रहसीति विचिन्त्याऽथअभिज्ञानाद्विचारयन्
नापश्यद्वामपार्श्वे तु तस्याऽङ्कं पद्मलक्षणम् । लोम्नामावर्तचरितं ततोदेवःपिनाकधृक्
बुद्ध्वातां दानवीं मायां किञ्चित्प्रहसिताननः । मेढ्रे रौद्रास्त्रमाधायचक्रेदैत्यमनोरथम्
स रुदन्भैरवान्रावानवसादं गतोऽसुरः । अबुध्यद्वीरको नैतदसुरेन्द्रनिषूदनम् ॥ ३१ ॥
हते च मारुतेनाऽऽशुगामिना नगदेवता । अपरिच्छिन्नतत्त्वार्था शैलपुत्र्यां न्यवेदयत्
श्रुत्वा वायुमुखाद्देवी क्रोधरक्ताऽतिलोचना । अपश्यद्वीरकं पुत्रं हृदयेन विदूयता॥३३

मातरं मां परित्यज्य यस्मात्त्वं स्नेहविह्वलाम् ।
विहितावसरः स्त्रीणां शङ्करस्य रहोविधौ ॥ ३४ ॥

तस्मात्ते परुषा रूक्षा जडा हृदयवर्जिता । गणेशाक्षरसदृशा शिला माता भविष्यति
एवमुत्सृष्टशापाया गिरिपुत्र्यास्त्वनन्तरम् । निर्जगाम मुखात्क्रोधःसिंहरूपीमहाबलः
पश्चात्तापं समाश्रित्य तयादेव्याविसर्जितः । स तु सिंहःकरालास्योमहाकेसरकन्धरः

प्रोद्धूतवललांगूलदंष्ट्रोत्कटगुहामुखः । व्यावृतास्यो ललज्जिह्वः क्षामकुक्षिश्चि...
तस्याऽऽस्ये वर्तितुंदेवीव्यवस्यत सती तदा । ज्ञात्वा मनोगतंतस्याभगवांश्चतुरा...
आजगामाऽऽश्रमपदं सम्पदामाश्रयंततः । आगम्योवाचतांब्रह्मागिरिजां मृष्ट्या...
किंदेवि प्राप्तुकामाऽसि किमलभ्यंददामि ते । तच्छ्रुत्वोवाचगिरिजागुरुगौरवगर्भि...
तपसा दुष्करेणाऽऽप्तःपतित्वेशङ्करो मया । स मां श्यामलवर्णेति बहुशःप्रोक्तवा...

स्यामहं काञ्चनाकारा वाल्लभ्येन च संयुता ।
भर्तुर्भूतपतेरङ्के ह्येकतो निर्विशङ्किता ॥ ४३ ॥

तस्यास्तद्भाषितं श्रुत्वा प्रोवाच जलजासनः । एवं भवतु भूयस्त्वं भर्तुर्देहार्धधारि...
ततस्तस्याःशरीरात्तुस्त्रीसुनीलाम्बुजत्विषा । निर्गतासाभवद्भीमाघण्टाहस्तात्रिलो...
नानाभरणपूर्णाङ्गी पीतकौशेयवासिनी । तामब्रवीत्ततो ब्रह्मा देवीं नीलाम्बुजत्वि...
अस्माद्भूधरजादेहसम्पर्कात्त्वं ममाऽऽज्ञया । सम्प्राप्ता कृतकृत्यत्वमेकानंशापुरा...
य एष सिंहः प्रोद्भूतोदेव्याःक्रोधाद्वरानने । स तेऽस्तुवाहनोदेविकेतौचास्तुमहा...
गच्छ विन्ध्याचले तत्र सुरकार्यं करिष्यति । अत्र शुम्भनिशुम्भौचहत्वातारकसैन्...
पाञ्चालोनाम यक्षोऽयं यक्षलक्षपदानुगः । दत्तस्ते किङ्करो देवि महामायाशतैर्यु...

इत्युक्ता कौशिकी देवी तथेत्याह पितामहम् ।
निर्गतायां च कौशिक्यां जाता स्वैराश्रिता गुणैः ॥ ५१ ॥

सर्वैः पूर्वभवोपात्तैस्तदा स्वयमुपस्थितैः । उमाऽपि प्राप्तसङ्कल्पा पश्चात्तापपरा...
मुहुःस्वं परिनिन्दन्तीजगामगिरिशान्तिकम् । सम्प्रयान्तींचतांद्वारिअपवार्यसमाहि...
रुरोध वीरको देवीं हेमवेत्रलताधरः । तामुवाच च कोपेन तिष्ठ तिष्ठ क यासि व...
प्रयोजनं न तेऽस्तीह गच्छ यावन्न भर्त्स्यसे । देव्या रूपधरोदैत्योदेवंवञ्चयितुं वि...
प्रविष्टोनच दृष्टोऽसौ स च देवेनघातितः । घातिते चाऽहमाक्षिप्तो नीलकण्ठेनधीम...

काऽपि स्त्री नाऽपि मोक्तव्या त्वया पुत्रेति सादरम् ।
तस्मात्त्वमत्र द्वारिस्था वर्षपूगान्यनेकशः ॥ ५७ ॥

भविष्यसि न चाऽप्यत्र प्रवेशं लप्स्यसेव्रज । एकामेप्रविशेदत्र माताया स्नेहवत्स...

नगाधिराजतनया पार्वती रुद्रवल्लभा । इत्युक्ता तु ततो देवी चिन्तयामास चेतसा ॥
न सा नारी तु दैत्योऽसौ वायोर्नैवाऽवभासत । वृथैव वीरकःशप्तोमयाक्रोधपरीतया
अकार्यंक्रियतेमूढैःप्राप्यक्रोधसमन्वितैः । क्रोधेननश्यतेकीर्तिःक्रोधोहन्तिस्थिरांश्रियम्
अपरिच्छिन्नसर्वार्थां पुत्रं शापितवत्यहम् । विपरीतार्थबोद्धॄणां सुलभा विपदो यतः
सञ्चिन्त्यैवमुवाचेदं वीरकं प्रति शैलजा । अधो लज्जाविकारेण वदनेनाम्बुजत्विषा॥
अहं वीरक ते माता मा तेऽस्तु मनसोभ्रमः । शङ्करस्याऽस्मिदयितासुतातुहिमभूभृतः
मम गात्रस्थितिभ्रान्त्या मा शङ्कां पुत्रभावय । तुष्टेन गौरतादत्ता मयेयं पद्मयोनिना
मया शप्तोऽस्यविदिते वृत्तान्ते दैत्यनिर्मिते । ज्ञात्वा नारीप्रवेशं तु शङ्करेरहसिस्थिते

न निवर्तयितुं शक्यः शापः किं तु ब्रवीमि ते ।
मानुष्यां तु शिलायां त्वं शिलादात्सम्भविष्यसि ॥ ६७ ॥

पुण्ये चाऽप्यर्बुदारण्ये स्वर्गमोक्षप्रदेनृणाम् । अचलेश्वरलिङ्गं तु वर्तते यत्र वीरक !॥
वाराणस्यां विश्वनाथसमंतत्फलदंनृणाम् । प्रभासस्यचयात्राभिर्दशभिर्यत्फलंनृणाम्
तदेकयात्रयाप्रोक्तमर्बुदस्य महागिरेः । यत्र तप्त्वा तपो मर्त्या देहधातून्विहाय च ॥
संसारी न पुनर्भूयान्महेश्वरवचो यथा । अर्बुदो यदि लभ्येत सेवितुं जन्मदुःखितैः ॥
वाराणसीं च केदारं किं स्मरन्ति वृथैव ते । तत्राराध्यभवंदेवं भवान्नन्दीतिनामभृत्
शीघ्रमेष्यसि चाऽत्रैवप्रतीहारत्वमाप्स्यसि । एवमुक्ते हृष्टरोमा वीरकः प्रणिपत्यताम्
संस्तूय विविधैर्वाक्यैर्मातरं समभाषत । धन्योऽहं देवि यो लप्स्येमानुष्यमतिदुर्लभम्
शापोऽनुग्रहरूपोऽयं विशेषादर्बुदाचले । समीपे यस्य पुण्योऽस्ति महीसागरसङ्गमः॥
ऊधः पृथिव्या देशोऽयं यो गिरेश्चार्णवान्तरे । तत्रगत्वा महत्पुण्यमवाप्यभवभक्तितः
पुनरेष्यामिभोमातरित्युक्त्वाऽभूच्छिलासुतः । देवीच प्रविवेशाऽथभवनंशशिमौलिनः

॥ इत्यर्बुदाख्यानम् ॥

ततो दृष्ट्वा च तां प्राह धिग्नार्य इति त्र्यम्बकः ॥ ७८ ॥

सा चप्रणम्य तं प्राहसत्यमेतन्नमिथ्यया । जडःप्रकृतिभागोऽयंनार्यश्चार्हन्तिनिन्दनाम्
पुरुषाणां प्रसादेन मुच्यन्ते भवसागरात् । ततः प्रहृष्टस्तामाह हरो योग्याऽधुना शुभे

पुत्रं दास्यामि येन त्वं ख्यातिमाप्स्यसि शोभने !।
ततो रेमे हि देव्या स नानाश्चर्यालयो हरः ॥ ८१ ॥

ततो वर्षसहस्रेषु देवास्त्वरितमानसाः। ज्वलनं नोदयामासुर्ज्ञातुं शङ्करचेष्टितम् ॥
द्वारि स्थितं प्रतीहारं वञ्चयित्वा च पावकः। पारावतस्य रूपेण प्रविवेशहरान्ति
ददृशे तं च देवेशो विनतां प्रेक्ष्यपार्वतीम्। ततस्तं ज्वलनंप्राह नैतद्योग्यं त्वया
यदिदं क्षुभितं स्थानान्मम तेजोह्यनुत्तमम्। गृहाण त्वंसुदुर्बुद्धेनोवाधक्ष्यामित्वा
भीतस्ततोऽसौ जग्राह सर्वदेवमुखं च सः। तेन ते वह्निसहिता विह्वलाश्च सुरा
विपाट्य जठराण्येषां वीर्यं माहेश्वरंततः। निष्क्रान्तं तत्सरो जातं पारदं शतयो

वह्निश्च व्याकुलीभूतो गङ्गायां मुमुचे सकृत्।
दह्यमाना च सा देवी तरङ्गैर्बहिरुत्सृजत् ॥ ८८ ॥

जातस्त्रिभुवनख्यातस्तेन च श्वेतपर्वतः। एतस्मिन्नन्तरे वह्निराहूतश्च हिमालये
सप्तर्षिभिर्वह्निहोमं कुर्वद्भिर्मन्त्रवीर्यतः। आगत्य तत्र जग्राह वह्निर्भागं च तं हु
गतेऽह्यत्वस्मिश्चतत्रस्थःपत्नीस्तेषामपश्यत।सुवर्णकदलीस्तम्भनिभास्ताश्चन्द्रले

पश्यमानः प्रफुल्लाक्षो वह्निः कामवशं गतः।
स भूयश्चिन्तयामास न न्याय्यं क्षुभितोऽस्मि यत् ॥ ९२ ॥
साध्वीः पत्नीर्द्विजेन्द्राणामकामाः कामयाम्यहम्।
पापमेतत्कर्म चोग्रं नश्यामि तृणवत्स्फुटम् ॥ ९३ ॥

कृत्वैतन्नश्यतेकीर्तिर्यावदाचन्द्रतारकम्। एवं सञ्चिन्त्य बहुधा गत्वा चैव दना
संयन्तुं नाऽभवच्छक्त उपायैर्बहुभिर्मनः। ततः स कामसन्तप्तो मूर्च्छितः समप
ततःस्वाहाचभार्याऽस्यबुबुधे तद्विचेष्टितम्। ज्ञात्वाचचिन्तयामासप्रहृष्टामनसि
स्वां भार्यामथमांत्यक्त्वाबहुवासादवज्ञया। भार्याः कामयतेनूनंसप्तर्षीणांमहात्म
तदासां रूपमाश्रित्य रमिष्येतेनचाप्यहम्। ततस्त्वङ्गिरसोभार्या शिवानामेतिशो
तस्या रूपं समाधाय पावकंप्राप्यसाऽब्रवीत्। मामग्नेकामसन्तप्तांत्वंकामयितुम
न चेत्करिष्यसे देव मृतां मामुपधारय। अहमङ्गिरसो भार्या शिवानाम हुताश

सर्वाभिः सहिता प्राप्ता ताश्च यास्यन्त्यनुक्रमात् ।
अस्माकं त्वं प्रियो नित्यं त्वच्चित्ताश्च वयं तथा ॥ १०१ ॥

ततः स कामसन्तप्तः सम्बभूव तया सह । प्रीते प्रीता च सा देवी निर्जगामवनान्तरात्
चिन्तयन्ती ममेदं चेद्रूपं द्रक्ष्यन्ति कानने । ते ब्राह्मणीनामनृतंदोषंवक्ष्यन्ति पावकात्
तस्मादेतद्रक्षमाणा गरुडी सम्भवाम्यहम् । सुपर्णा सा ततो भूत्वा ददृशे श्वेतपर्वतम्
शरस्तम्बैः सुसम्पृक्तं रक्षोभिश्च पिशाचकैः । सा तत्र सहसागत्वाशैलपृष्ठंसुदुर्गमम्
प्राक्षिपत्काञ्चनेकुण्डे शुक्रं तद्धारणेऽक्षमा । शिष्टानामपिदेवीनां सप्तर्षीणांमहात्मनाम्
पत्नीसरूपतां कृत्वा कामयामास पावकम् । दिव्यं रूपमरुन्धत्याःकर्तुं न शकितं तया
तस्यास्तपःप्रभावेण भर्तुः शुश्रूषणेन च । षट्कृत्वस्तत्तु निक्षिप्तमग्निरेतः कुरूद्वह ॥
कुण्डेऽस्मिश्चैत्रवहुले प्रतिपद्येव स्वाहया । ततश्च पावको दुःखाच्छुशोचचमुमोह च

आः पापं कृतमित्येव देहन्यासेऽकरोन्मतिम् ।
ततस्तं खेचरी वाणी प्राह मा मरणं कुरु ॥ ११० ॥

भाव्यमेतच्च भाव्यर्थात्को हि पावक मुच्यते । भाव्यर्थेनापियत्ते च परदारोपसेवनम्
कृतं तच्चेतसा तेन त्वामजीर्णं प्रवेक्ष्यति । श्वेतकेतोर्महायज्ञे घृतधाराभितर्पितम् ॥
शोकं च त्यज नैतास्ताः स्वाहैवेयं तव प्रिया । श्वेतपर्वतकुण्डस्थंपुत्रंत्वं द्रष्टुमर्हसि

ततो वह्निस्तत्र गत्वा ददृशे तनयं प्रभुम् ॥ ११३ ॥

अर्जुन उवाच

कस्मात्स्वाहाऽकरोद्रूपं षण्णां तासां महामुने ! ॥ ११४ ॥
यत्ता भर्तृपराः साध्व्यस्तपस्विन्योऽग्निसन्निभाः ।
न बिभेति च किं ताभ्यः षड्भ्यः स्वाहाऽपराधिनी ॥
भर्तृभक्त्या जगद्दग्धुं यतः शक्ताश्च ता मुने ! ॥ ११५ ॥

नारद उवाच

सत्यमेतत्कुरुश्रेष्ठ! शृणु तच्चाऽपि कारणम् । येन तासांकृतं रूपं न वा शापंददुश्चताः
यत्र तद्वह्निनाक्षिप्तं रुद्रतेजः सकृत्पुरा । गङ्गायां तत्रसस्तुस्ताः षट्पत्न्योऽज्ञानभावतः

ततस्ता विह्वलीभूतास्तेजसा तेन मोहिताः । लज्जयाचस्वभर्तॄणां गङ्गातीरस्थित
एतदन्तरमालोक्य चिकीर्षन्ती मनीषितम् । स्वाहा शरीरमाविश्यतासांतेजोजह
चिक्रीड वह्निजायाऽपि यथा ते कथितं मया ॥ १२० ॥
उपकारमिमं ताभिः स्मरन्तीभिश्च भारत । न शप्ता सा यतः शापोनदेयश्चोपका
ततः सप्तर्षयो ज्ञात्वा ज्ञानेनाऽशुचितांगताः । तत्यजुःषट्तदापत्नीर्विनादेवीम
विश्वामित्रस्तु भगवान्कुमारं शरणं गतः । स्तवं दिव्यंसम्प्रचक्रे महासेनस्य
अष्टोत्तरशतं नाम्नां शृणुत्वंतानिफाल्गुन । जपेन येषां पापानियान्तिज्ञानमवाप्नु
त्वं ब्रह्मवादी त्वं ब्रह्मा ब्रह्म ब्राह्मणवत्सलः । ब्रह्मण्यो ब्रह्मदेवश्च ब्रह्मदो ब्रह्मसं
त्वं परं परमं तेजो मङ्गलानां च मङ्गलम् । अप्रमेयगुणश्चैव मन्त्राणां मन्त्रगो
त्वं सावित्रीमयो देव! सर्वत्रैवाऽपराजितः । मन्त्रः शर्वात्मको देवः षडक्षरवतां
माली मौली पताकी च जटी मुण्डी शिखण्ड्यपि ।
कुण्डली लाङ्गली बालः कुमारः प्रवरो वरः ॥ १२८ ॥
गवाम्पुत्रः सुरारिघ्नः सम्भवोभवभावनः । पिनाकी शत्रुहाश्वेतोगूढःस्कन्दःकरा
द्वादशो भूर्भुवो भावी भुवः पुत्रो नमस्कृतः । नागराजः सुधर्मात्मा नाकपृष्ठःसना
त्वं भर्ता सर्वभूतात्मा त्वंत्रातात्वंसुखावहः । शरदक्षःशिखीजेताषड्वक्त्रोभयना
हेमगर्भो महागर्भो जयश्च विजयेश्वरः । त्वं कर्ता त्वं विधाताचनित्योनित्यारिम
महासेनो महातेजा वीरसेनश्च भूपतिः । सिद्धासनः सुराध्यक्षो भीमसेनो निरा
शौरिर्यदुर्महातेजा वीर्यवान्सत्यविक्रमः । तेजोगर्भोऽसुररिपुः सुरमूर्तिः सुरो
कृतज्ञो वरदः सत्यः शरण्यः साधुवत्सलः । सुव्रतः सूर्यसङ्काशो वह्निगर्भः कणो
पिप्पली शीघ्रगो रौद्री गाङ्गेयो रिपुदारणः । कार्त्तिकेयःप्रभुःक्षन्तानीलदंष्ट्रोमहा
निग्रहो निग्रहाणां च नेता त्वं सुरनन्दनः । प्रग्रहः परमानन्दः क्रोधघ्नस्तार उ
कुक्कुटी बहुली दिव्यः कामदो भूरिवर्धनः ।
अमोघोऽमृतदो ह्यग्निः शत्रुघ्नः सर्वमोदनः ॥ १३८ ॥
अव्ययो ह्यमरः श्रीमानुन्नतो ह्यग्निसम्भवः । पिशाचराजःसूर्याभःशिवात्माशिवन

अपारपारो दुर्ज्ञेयः सर्वभूतहिते रतः। अग्राह्यः कारणं कर्ता परमेष्ठी परं पदम् ॥१४०
अचिन्त्यः सर्वभूतात्मा सर्वात्मा त्वं सनातनः। एवंससर्वभूतानांसंस्तुतः परमेश्वरः
नामाष्टशतेनाऽयं विश्वामित्रमहर्षिणा। प्रसन्नमूर्तिराहेदं मुनीन्द्रं व्रियतामिति ॥
मम त्वया द्विजश्रेष्ठ स्तुतिरेषा निरूपिता। भविष्यति मनोऽभीष्टप्राप्तयेप्राणिनांभुवि
विवर्धते कुले लक्ष्मीस्तस्ययःप्रपठेदिदम्। न राक्षसाःपिशाचावा न भूतानि नचापदः
विघ्नकारीणि तद्गेहेयत्रैवसंस्तुवन्तिमाम्। दुःस्वप्नंचनपश्येत्सवद्धोमुच्येतवन्धनात्

स्तवस्याऽस्य प्रभावेण दिव्यभावः पुमान्भवेत्।
त्वं च मां श्रुतिसंस्कारैः सर्वैः संस्कर्तुमर्हसि ॥ १४६ ॥

संस्काररहितं जन्म यतश्च पशुवत्स्मृतम्। त्वं च मद्वरदानेन ब्रह्मर्षिश्च भविष्यसि ॥
ततोमुनिस्तस्यचक्रेजातकर्मादिकाःक्रियाः।पौरोहित्यंतथाभेजेस्कन्दस्यैवाऽऽज्ञयाप्रभुः
ततस्तं वह्निरभ्यागाद्ददर्श च सुतं गुहम्। षट्छीर्षं द्विगुणश्रोत्रं द्वादशाक्षिभुजक्रमम्
एकग्रीवं चैककायं कुमारं सव्यलोकयत्। कलिलं प्रथमे चाह्नि द्वितीयेव्यक्तितांगतम्
तृतीयायां शिशुर्जातश्चतुर्थ्यां पूर्ण एवच। पञ्चम्यां संस्कृतःसोऽभूत्पावकंचाप्यपश्यत
ततस्तंपावकःपार्थआलिलिङ्गचुचुम्ब च। पुत्रेति चोक्त्वातस्मैसशक्त्यस्त्रमददात्स्वयम्

स च शक्तिं समादाय नमस्कृत्य च पावकम्।
श्वेतशृङ्गं समारूढो मुखैः पश्यन्दिशो दश ॥ १५२ ॥

व्यनदद्भैरवं नादं त्रासयन्सासुरं जगत्। ततः श्वेतगिरेः शृङ्गं रक्षः पञ्चदशावृतम् ॥
बिभेद तरसा शक्त्या शरयोजनविस्तृतम्। तदेकेन प्रहारेण खण्डशः पतितं भुवि ॥
चूर्णीकृता राक्षसास्ते सततं धर्मशत्रवः। ततः प्रव्यथिता भूमिर्व्यशीर्यत समन्ततः ॥
भीताश्च पर्वताः सर्वे चुक्रुशुः प्रलयाद्यथा। भूतानि तत्र सुभृशं त्राहित्राहीतिचोज्जगुः
एवं श्रुत्वा ततो देवा वासवं सह तेऽब्रुवन्। येनैकेन प्रहारेण त्रैलोक्यंव्याकुलीकृतम्
स सङ्क्रुद्धः क्षणाद्विश्वं संहरिष्यति वासव !। वयंच पालनार्थायसृष्टा देवेन वेधसा
तस्य त्राणं सदा कार्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि। अस्माकंपश्यतामेवंयदिसंक्षोभ्यते जगत्

धिक्ततो जन्म वीराणां श्लाघ्यं हि मरणं क्षणात्।

तदस्माभिः सहैनं त्वं क्षन्तुमर्हसि वासव! ॥ १६१ ॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा देवैः सार्धं तमभ्ययात्। विधित्सुस्तस्यवीर्यंस शक्रस्तूर्णं
उग्रं तच्च महावेगं देवानीकं दुरासदम्। नर्दमानं गुहः प्रेक्ष्य ननाद जलधि
तस्य नादेन महता समुद्भूतोदधिप्रभम्। बभ्राम तत्रतत्रैव देवसैन्यमचेतनम्॥

जिघांसूनुपसम्प्राप्तान्देवान्दृष्ट्वा स पावकिः।
विससर्ज्ज मुखात्तत्रप्रवृद्धाःपावकार्चिषः ॥ १६५ ॥

अदहद्देवसैन्यानि चेष्टमानानि भूतले। ते प्रदीप्तशिरोदेहाः प्रदीप्तायुधवाहनाः॥
प्रच्युताः सहसा भान्ति दिवस्तारागणाइव। दह्यमानाः प्रपन्नास्तेशरणंपावकात्म
देवा वज्रधरं प्रोचुस्त्यज वज्रं शतक्रतो!। उक्तो देवैस्तदाशक्रः स्कन्दे वज्रमवासृ

तद्विसृष्टं जघानाऽऽशु पार्श्वं स्कन्दस्य दक्षिणम्।
बिभेद च कुरुश्रेष्ठ! तदा तस्य महात्मनः ॥ १६६ ॥

वज्रप्रहारात्स्कन्दस्य सञ्जातः पुरुषोऽपरः। युवाकाञ्चनसन्नाहः शक्तिधृग्दिव्यकुण्ड
शाख इत्यभिविख्यातः सोऽपिव्यनदद्भुतम्। ततश्चेन्द्रःपुनःक्रुद्धोहृदिस्कन्दं व्यदार
तत्रापि तादृशो जज्ञे नैगमेय इति श्रुतः। ततो विनद्य स्कन्दाद्याश्चत्वारस्तंतदाभ्य
तदेन्द्रो वज्रमुत्सृज्य प्राञ्जलिः शरणं ययौ। तस्याभयंददौस्कन्दःसहसैन्यस्य सत्त
ततः प्रहृष्टास्त्रिदशा वादित्राण्यभ्यवादयन्। वज्रप्रहारात्कन्याश्चजज्ञिरेऽस्यमहाब

या हरन्ति शिशूञ्जातान्गर्भस्थांश्चैव दारुणाः।
काकी च हिलिमा चैव रुद्रा च वृषभा तथा ॥ १७५ ॥

आया पलाला मित्राचसप्तैताःशिशुमातरः। एतासांवीर्यसम्पन्नःशिशुश्चाऽभूत्सुदा
स्कन्दप्रसादजः पुत्रो लोहिताक्षो भयङ्करः। एषवीराष्टकःप्रोक्तःस्कन्दमातृगणो
पूजनीयः सदा भक्त्या सर्वापस्मारशान्तिदः। उपातिष्ठत्ततःस्कन्दंहिरण्यकवचस्र
लोहितांबरसम्वीतंत्रैलोक्यस्याऽपिसुप्रभम्। युवानं श्रीःस्वयम्भेजेतंप्रणम्यशरीरि
श्रिया जुष्टश्च तम्प्राहुः सर्वेदेवाःप्रणम्य वै। हिरण्यवर्ण! भद्रं ते लोकानां शङ्करो

भवानिन्द्रोऽस्तु नो नाथ त्रैलोक्यस्य हिताय वै ॥ १८९ ॥

स्कन्द उवाच

किमिन्द्रः सर्वलोकानां करोतीह सुरोत्तमाः। कथं देवगणांश्चैवपाति नित्यं सुरेश्वरः

देवा ऊचुः

इन्द्रो दिशति भूतानां वलंतेजःप्रजाःसुखम्। प्रज्ञांप्रयच्छतितथा सर्वान्दायान्सुरेश्वरः
दुर्वृत्तानां स हरति वृत्तस्थानं प्रयच्छति। अनुशास्ति च भूतानि कार्येषु वलवत्तरः
असूर्येच भवेत्सूर्यस्तथाऽचन्द्रे च चन्द्रमाः। भवत्यग्निश्चवायुश्च पृथिव्यांजीवकारणम्
एतदिन्द्रेण कर्तव्यमिन्द्रो हि विपुलं वलम्। त्वं चेन्द्रोभवनोवीर तारकंजहि ते नमः

इन्द्र उवाच

त्वं भवेन्द्रोमहावाहो सर्वेषां नः सुखावहः। प्रणम्य प्रार्थयेस्कन्द! तारकंजहि रक्ष नः

स्कन्द उवाच

शाधि त्वमेव त्रैलोक्यं भवानिन्द्रोऽस्तु सर्वदा।
करिष्ये चेन्द्रकर्माणि न ममेन्द्रत्वमीप्सितम् ॥ १८८ ॥
त्वमेव राजा भद्रन्ते त्रैलोक्यस्य ममैव च। करोमि किंच ते शक्र! शासनं ब्रूहितन्मम

इन्द्र उवाच

यदि सत्यमिदं वाक्यं निश्चयाद्भाषितंत्वया। अभिषिच्यस्व देवानांसैनापत्येमहावल
अहमिन्द्रो भविष्यामि तव वाक्याद्यशोऽस्तु ते ॥ १९० ॥

स्कन्द उवाच

दानवानां विनाशाय देवानामर्थसिद्धये। गोब्राह्मणस्य चार्थाय एवमस्तु वचस्तव ॥
इत्युक्ते सुमहानादः सुराणामभ्यजायत। भूतानां चापि सर्वेषां त्रैलोक्याकम्पकारकः
जयेति तुष्टुवुश्चैनं वादित्राण्यभ्यवादयन्। ननृतुस्तुष्टुवुश्चैनं कराघातांश्च चक्रिरे ॥
तेन शब्देन महता विस्मिता नगनन्दिनी। शङ्करं प्राह को देव ! नादोऽयमतिवर्तते ॥

रुद्र उवाच

अद्य नूनं प्रहृष्टानां सुराणां विविधा गिरः। श्रूयन्तेचतथादेवि! यथा जातः सुतस्तव
गवां च ब्राह्मणानां च साध्वीनां च दिवौकसाम्।

मार्जयिष्यति चाऽश्रूणि पुत्रस्ते पुण्यवत्यपि ॥ १६६ ॥

एवं वदति सा देवी द्रष्टुं तमुत्सुकाऽभवत् । शङ्करश्च महातेजाः पुत्रस्नेहाभिवृ
वृषभं तत आरुह्य देव्या सह समुत्सुकः । सगणो भव आगच्छत्पुत्रदर्शनलाल
ततो ब्रह्मा महासेनं प्रजापतिरथाऽब्रवीत् । अभिगच्छ महादेवं पितरं मातरं प्र
अनयोर्वीर्यसंयोगात्तवोत्पत्तिस्तु प्राथमी । एवमस्त्वितिचाप्युक्त्वामहासेनोमहे
अपूजयदमेयात्मा पितरं मातरं च ताम् । ततस्तमालिङ्ग्य सुतं चिरंसंयोज्यवा
चिरं जहृषतुश्चोभौ पार्वतीपरमेश्वरौ । सिद्धसारस्य तत्त्वं च ददौ तुष्टोऽस्य
देवी प्रकृतिमोक्षं च तुष्टा हर्षपरिप्लुता । एतस्मिन्नेव काले तु षड्देव्यस्तं समा

ऋषिभिस्ताः परित्यक्तास्तं पुत्रेति जगुस्तदा ।
पार्वती च ततः प्राह मम पुत्रो न वस्त्वयम् ॥ २०४ ॥

स्वाहा ममेति च प्राह पावकश्च ममेति च । रुद्रो ममेति च प्राह मम देवनदीति च
चक्रुस्ते कलहं घोरं विवदन्तः परस्परम् । पुत्रस्नेहो हि बलवान्पार्थकिंकिन का
ततस्तान्प्रहसन्नाह विवादो युज्यते न च । सर्वेषां वो गुहः पुत्रो मत्तोवै प्रियतां
ततः प्राहुश्च षड्देव्यः स्वर्गोनोह्यक्षयोभवेत् । तथेतिताःगुहःप्राहशक्रस्तत्रान्तरे

रोहिण्याश्चानुजा स्कन्दः स्पर्धमानाभिजित्खला ।
इच्छन्ती ज्येष्ठतां देवी पृथक्त्वं च तपोरता ॥ २०६ ॥

ततः प्रभृति मूढोऽस्मितत्स्थानेस्थापयप्रभो । ततस्तथेतिचप्रोक्तेकृत्तिकास्तादिवं
नक्षत्रं सप्तशीर्षाभं भाति तद्वह्निदैवतम् । अथैनमब्रवीत्स्वाहा प्रिया नाहं महावि

तदग्रे प्रियतां देहि सहवासं सदैव च ॥ २११ ॥

स्कन्द उवाच

हव्यं कव्यं च यत्किञ्चिद्द्विजा होष्यन्ति पावके ॥ २१२ ॥

तत्ते नाम्ना प्रदास्यन्तिवासःसार्धंभवेत्तव । पावकः प्रार्थयामासयज्ञभागान्पुनःसु
स चाप्याहाऽद्यप्रभृति यज्ञभागानवाप्नुहि । इतरे प्रार्थयामासुःख्यातोनस्त्वं सुतो
एवमेवेति तानाह स्कन्दस्तद्धि सुदुर्लभम् । ततस्तं योगिनः सर्वे सम्भूय सनका

अभ्यषिञ्चन्गिरौ तस्मिन्योगिनामाधिपत्यके ॥ २१५ ॥
योगीश्वरमिति प्राहुस्ततस्तं योगिनस्तथा । जहृषुर्देवताश्चैव नानावाद्यान्यवादयन् ॥
अभिषिक्तेन तेनाऽसौ शुशुभे श्वेतपर्वतः । आदित्येनेवांशुमता सुरम्य उदयाचलः ॥
ततो देवाः सगन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसस्तथा । हृष्टानां सर्वभूतानां श्रूयतेनिनदोमहान् ।
एवं सेन्द्रं जगत्सर्वं श्वेतपर्वतसंस्थितम् । प्रहृष्टं प्रेक्ष्यतं स्कन्दं नच तृप्यतिदर्शनात्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे कुमारेश्वरमाहात्म्ये स्कन्दकुमारस्य सर्वदेवसैनाधिपत्या-
भिषेकोत्सववर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

कार्त्तिकेयस्य सेनानीत्वेऽभिषेकवर्णनम्

नारद उवाच

ततःस्कन्दःसुरैः सार्धं श्वेतपर्वतमस्तकात् । उत्तीर्य तारकंहन्तुंदक्षिणां स दिशं ययौ
ततः सरस्वतीतीरे यानि भूतानि नारद ! । ग्रहाश्चोपग्रहाश्चैव वेतालाः शाकिनीगणाः
उन्मादा ये ह्यपस्माराः पलादाश्च पिशाचकाः ।
देवैस्तेषामाधिपत्ये सोऽभ्यषिच्यत पावकिः ॥ ३ ॥
यथा तेनैवमर्यादांसन्त्यजन्तिदुराशयाः । एतैस्तस्मात्समाक्रान्तःशरण्यंपावकिंव्रजेत्
अप्रकीर्णेन्द्रियंदान्तंशुचिनित्यमतन्द्रितम् । आस्तिकंस्कन्दभक्तंचवर्जयन्ति ग्रहादिकाः
महेश्वरं च ये भक्ता भक्ता नारायणं च ये । तेषां दर्शनमात्रेण नश्यन्ते ते चिदूरतः ॥
ततः सर्वैः सुरैः सार्धं महीतीरं ययौ गुहः । तत्र देवैः प्रकथितं महीमाहात्म्यमुत्तमम्
शृण्वन्विसिष्मिये स्कन्दः प्रणनाम च तां नदीम् ।
ततो महीदक्षिणतस्तीरमाश्रित्य धिष्ठितम् ॥ ८ ॥

प्रणम्य शक्रप्रमुखा गुहं वचनमब्रुवन् । अभिषिक्तं विना स्कन्द ! सेनापतिम
न शर्म लभते सेना तस्मात्त्वमभिषेचय । महीसागरसम्भूतैः पुण्यैश्चाऽपि शिवैः
अभिषेक्ष्यामहे त्वां च तत्र नो द्रष्टुमर्हसि । यथा हस्तिपदे सर्वपदान्तर्भाव
सर्वतीर्थान्तरस्थानं तथार्णवमहीजले । सर्वभूतमयो यद्वत्त्र्यम्बकः परिकीर्त्य
सर्वतीर्थमयस्तद्वन्महीसागरसङ्गमः । अर्धनारीश्वरं रूपं यथा रुद्रस्य सर्वदम्
तथा महीसमुद्रस्य स्नानं सर्वफलप्रदम् । येनाऽत्र पितरः स्कन्द तर्पिता भक्ति
तेन सर्वेषु तीर्थेषु तर्पिता नाऽत्र संशयः । न चैतद्धृदि मन्तव्यं क्षारमेतज्जलं हि
यथा हि कटुतिक्तादि गवा ग्रस्तं हि क्षीरदम् । एवमेतत्त्विदंतोयंपितॄणांतृप्ति
एवं ब्रुवत्सु देवेषु कपिलोऽपि मुनिर्जगौ । सत्यमेतदुमापुत्र ! सर्वतीर्थमयी मही

कर्दमो यस्त्वहमपि ज्ञात्वा तीर्थमहागुणान् ।
सर्वां भुवं परित्यज्य कृत्वा ह्याश्रममास्थितः ॥ १८ ॥

ततो महेश्वरः प्राह सत्यमेतत्सुरोदितम् । ब्रह्माद्यास्तं तथा प्राहुरत्र भूयोऽप्यथो
अत्राभिषेकंतेवीर!करिष्यामःसमादिश । ततःसुविस्मितस्तत्रस्नात्वास्कन्दोमहा
अभिषिञ्चन्तु मां देवाइतितानब्रवीद्वचः । ततोऽभिषेकसम्भारान्सर्वान्सम्भृत्यशा
जुहुवुर्मन्त्रपूतेऽग्नौ चत्वारो मुख्यऋत्विजः । ब्रह्माच कपिलोजीवोविश्वामित्रश्चतु
अन्ये च शतशस्तत्र मुनयो वेदपारगाः । तत्राऽद्भुतं महादेवो दर्शयामास भारत
यदग्निकुण्डमध्यस्थो लिङ्गमूर्तिर्व्यदृश्यत । अहमेवाऽग्निमध्यस्थो हविर्गृह्णामिति
एतत्संदर्शनार्थाय लिङ्गमूर्तिरभूद्विभुः । तल्लिंगमतुलं देवा नमश्चक्रुर्मुदान्विताः
सर्वपापापहं पार्थ! सर्वकामफलप्रदम् । तत्र होमावसाने च दत्ते हिमवताशुभे
दिव्यरत्नान्विते स्कन्दो निषण्णःपरमासने । सर्वमङ्गलसम्भारैर्विधिमन्त्रपुरस्

अभ्यषिंचंस्ततो देवा ! कुमारं शङ्करात्मजम् ।
इन्द्रो विष्णुर्महावीर्यौ ब्रह्मरुद्रौ च फाल्गुन ! ॥ २८ ॥
आदित्याद्याग्रहाःसर्वेतथोभावनिलानलौ ।
आदित्यावसवोरुद्राःसाध्याश्चैवाश्विनावुभौ ॥ २६ ॥

विश्वेदेवाश्च मरुतो गन्धर्वाप्सरसस्तथा । देवब्रह्मर्षयश्चैव बालखिल्या मरीचिपाः
विद्याधरा योगसिद्धाः पुलस्त्यपुलहादयः । पितरः कश्यपोऽत्रिश्चमरीचिर्भृगुरङ्गिराः
दक्षोऽथ मनवो ये च ज्योतींषिऋतवस्तथा । मूर्तिमत्यश्चसरितो महीप्रभृतिकास्तथा
वणाद्याः समुद्राश्च प्रभासाद्याश्च तीर्थकाः । पृथिवीद्यौर्दिशश्चैवपादपाःपार्वतास्तथा

आदित्याद्या मातरश्च कुर्वन्त्यो गुहमङ्गलम् ।
वासुकिप्रमुखा नागास्तथोभौ गरुडारुणौ ॥ ३४ ॥

वरुणो धनदश्चैव यमः सानुचरस्तथा । राक्षसो निर्ऋतिश्चैव भूतानि च पलाशनाः
धर्मो बृहस्पतिश्चैव कपिलो गाधिनन्दनः । बहुलत्वाच्च ये नोक्ताविविधादेवतागणाः
ते च सर्वे महीकूले ह्यभ्यषिञ्चन्मुदागुहम् । ततो महास्वनामुग्रां देवदैत्यादिदर्पहाम्
ददौ पशुपतिस्तस्मै सर्वभूतमहाचमूम् । विष्णुर्ददौ वैजयन्तीं मालां बलविवर्धिनीम्
उमा ददौ चारजसी वाससी सूर्यसप्रभा । गङ्गा कमण्डलुं दिव्यममृतोद्भवमुत्तमम् ॥
मही महानदी तस्य चाऽक्षमालां ससागरा । ददौ मुदा कुमाराय दण्डंचैव बृहस्पतिः
गरुडो दयितं पुत्रं मयूरं चित्रबर्हिणम् । अरुणस्ताम्रचूडं च प्रददौ चरणायुधम् ॥
छागं च वरुणो राजा बलवीर्यसमन्वितम् । कृष्णाजिनं तथाब्रह्माब्रह्मण्यायददौजयम्
चतुरोऽनुचरांश्चैव महावीर्यान्बलोत्कटान् । नन्दिसेनंलोहिताक्षंघण्टाकर्णंचमानसान्
चतुर्थं चाप्यतिबलं ख्यातं कुसुममालिनम् । ततः स्थाणुर्ददौदेवो महापारिषदं क्रतुम्

स हि देवासुरे युद्धे दैत्यानां भीमकर्मणाम् ।
जघान दोर्भ्यां सङ्क्रुद्धः प्रयुतानि चतुर्दश ॥ ४५ ॥

यमः प्रादादनुचरौ यमकालोपमौ तदा । उन्माथं च प्रमाथं च महावीर्यौ महाद्युती ॥
सुभ्राजौ भास्करस्यैव यौ सदाचानुयायिनौ । तौसूर्यःकार्तिकेयायददौपार्थमुदान्वितः
कैलासशृङ्गसङ्काशौ श्वेतमाल्यानुलेपनौ । सोमोऽप्यनुचरौ प्रादान्मणिं सुमणिमेवच
ज्वालाजिह्वं ज्योतिषं च ददावग्निर्महाबलौ । परिघं च बलंचैव भीमं च सुमहाबलम्
स्कन्दाय त्रीननुचरान्ददौ विष्णुरुरुक्रमः । उत्क्रोशं पञ्चजं चैव वज्रदण्डधरावुभौ ॥
ददौ महेशपुत्राय वासवः परवीरहा । तौ हि शत्रून्महेन्द्रस्य जघ्नतुः समरे बहून् ॥५१

वर्धनं वन्धनं चैव आयुर्वेदविशारदौ । स्कन्दाय ददतुः प्रीतावश्विनौ भरतर्ष
बलं चाऽतिबलं चैव महावक्त्रौ महाबलौ । प्रददौ कार्तिकेयाय वायुश्चानुच
घसं चाऽतिघसं वीरौ वरुणश्च ददौ प्रभुः । सुवर्चसं महात्मानं तथैवाप्यति
हिमवान्प्रददौ पार्थ साक्षाद्दौहित्रकाय वै ।
काञ्चनं च ददौ मेरुर्मेघमालिनमेव च ॥ ५५ ॥
उच्छ्रितं चातिशृङ्गंचमहापाषाणयोधिनौ । स्वाहेयायददौप्रीतः सविन्ध्यःपार्षदौ
संग्रहं विग्रहं चैव समुद्रोऽपि गदाधरौ । प्रददौ पार्षदौ वीरौ महीनद्या सम
उन्मादं पुष्पदन्तं च शङ्कुकर्णं तथैव च । प्रददावग्निपुत्राय पार्वती शुभदर्शना ।
जयं महाजयं चैव नागौ ज्वलनसूनवे । प्रददुर्बलिनां श्रेष्ठौ सुपर्णः पार्षदावुभौ
एवं साध्याश्च रुद्राश्च वसवः पितरस्तथा । सर्वेजगति ये मुख्याददुःस्कन्दायपा
नानावीर्यान्महावीर्यान्नानायुधविभूषणान् । बहुलत्वान्न शक्यन्तेसंख्यातुंतेगण
मातरश्च ददुस्तस्मै तदा मातृगणान्प्रभो ! ।
याभिर्व्याप्तास्त्रयो लोकाः कल्याणीभिश्चराचराः ॥ ६२ ॥
प्रभावती विशालाक्षी गोपालागोनसातथा । अप्सुजातावृहद्दण्डीकालिकाबहु
भयङ्करी च चक्राङ्गी तीर्थनेमिश्च माधवी । गीतप्रिया अलाताक्षी चटुला शल
विद्युज्जिह्वा रुद्रकाली शतोलूखलमेखला । शतघण्टाकिङ्किणिकाचक्राक्षी चत्वर
पूतना रोदना त्वामा कोटरामेघवाहिनी ।
ऊर्ध्ववेणीधरा चैव जरायुर्जर्जरानना ॥ ६६ ॥
खटखेटी दहदहा तथा धमधमाजया । बहुवेणी बहुशिरा बहुपादा बहुस्तनी ॥
शतोलूकमुखीकृष्णा कर्णप्रावरणातथा । शून्यालयाधान्यवासापशुदाधान्यदा
एताश्चान्याश्च बह्वयश्चमातरो भरतर्षभ ! । बहुलत्वादहं तासां न संख्यातुमिहो
वृक्षचत्वरवासिन्यश्चतुष्पथनिवेशनाः । गुहास्मशानवासिन्यः शैलप्रस्रवणाल
नानाभरणवेषास्ता नानामूर्तिधरास्तथा । नानाभाषायुधधराः परिवव्रुस्तदा गुह
ततः स शुशुभे श्रीमान्गुहो गुह इवाऽपरः । सैनापत्ये चाभिषिक्तो देवैर्नानामुनी

ततः प्रणम्य सर्वांस्तानेकैकत्वेन पावकिः । व्रियतां वर इत्याह भवब्रह्मपुरोगमान् ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेश्वरमाहात्म्ये कार्तिकेयस्य सेनानीत्वेऽभिषेक-वर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

स्कन्दस्यतारकासुरनगरम्प्रतिविजयाभियानवर्णनम्

नारद उवाच

ते चैनं योज्य चाशीर्भिरयाचन्तं वरं गुहम् । एष एव वरोऽस्माकंयत्पापंतारकंजहि
एवमस्त्विवति तानुक्त्वा योगोयोग इतिब्रुवन् । तांकारिर्महातेजा मयूरं चाध्यरोहत
शक्तिहस्तो विनद्याऽथ गुहो देवाँस्तदाऽब्रवीत् । यद्यहंतारकंपापंनाहंहन्मिसुरोत्तमाः
गोब्राह्मणावमन्तॄणां ततो यामि गतिं स्फुटम् । एवंतेनप्रतिज्ञातेशब्दोऽतिसुमहानभूत्
योगोयोग इति प्राहुराज्ञया शरजन्मनः । अरजोवाससी रक्ते वसानः पार्वतीसुतः ॥
अथाऽग्रे सर्वदेवानांस्थितो वीरो ययौ मुदा । तस्य केतुरलं भातिचरणायुधशोभितः
चरणाभ्यांगिरीञ्छक्तो यो विदारयितुं रणे । या चेष्टासर्वभूतानांप्रभाशान्तिर्बलंयथा

तन्मया गुहशक्तिः सा भृशं हस्ते व्यरोचत ।
यद्दार्ढ्यं सर्वलोकेषु तन्मयं कवचं तथा ॥ ८ ॥

योत्स्यमानस्यवीरस्य देहेप्रादुरभूत्स्वयम् । धर्मः सत्यमसंमोहस्तेजः कान्तत्वमक्षतिः
बलमोजः कृपाचैव बद्ध्वा करयुगं तथा । आदेशकारीण्यग्रेऽस्य स्वयंतस्थुर्महात्मनः
तमग्रे चापि गच्छन्तंपृष्ठतोऽनुययौ हरः । यथेनादित्यवर्णेनपार्वत्या सहितः प्रभुः ॥
निर्मितेन हरेणैव स्वयमीशेनलीलया । सहस्रं तस्य सिंहानां तस्मिन्युक्तंरथोत्तमे ॥

अभीषून्पुरुगव्याग्र ब्रह्मा च जगृहे स्वयम्। ते पिबन्त इवाकाशं त्रासयन्तश्चराचरम्
सिंहा रथस्य गच्छन्तोनदन्तश्चारुकेसराः। तस्मिन्रथे पशुपतिः स्थितो भात्युमया
विद्युता मण्डितः सूर्यः सेन्द्रचापघनो यथा। अग्रतस्तस्य भगवान्धनेशो गुह्यकैः
आस्थाय रुचिरं याति पुष्पकं नरवाहनः। ऐरावणं समास्थाय शक्रश्चापि सु
पृष्ठतोऽनुययौ यान्तं वरदं वृषभध्वजम्। तस्य दक्षिणतो देवा मरुतश्चित्रयोधि
गच्छन्तिवसुभिःसार्धंरुद्रैश्च सह सङ्गताः। यमश्च मृत्युना सार्धं सर्वतःपरिवारि
घोरैर्व्याधिशतैश्चापिसव्यतोयातिकोपितः। यमस्यपृष्ठतश्चापिघोरस्त्रिशिखरः शि

विजयोनाम रुद्रस्य याति शूलः स्वयं कृतः।
तमुग्रपाशो भगवान्वरुणः सलिलेश्वरः॥ २० ॥

परिवार्य शतैर्याति यादोभिर्विविधैर्वृतः। पृष्ठतोविजयस्यापि याऽति रुद्रस्य प
गदामुशलक्त्याद्यैर्वरप्रहरणैर्वृतः। पट्टिशंचान्वगात्पार्थ अस्त्रं पाशुपतं महत्॥ २
बहुशीर्षं महाघोरमेकपादं बहूदरम्। कमण्डलुश्चाऽस्य पश्चान्महर्षिगणसेवितः
तस्यदक्षिणतोभातिदण्डोगच्छञ्छ्रियावृतः। भृग्वंगिरोभिःसहितोदेवैरप्यभिपूजि
राक्षसाश्चान्यदेवाश्च गन्धर्वा भुजगास्तदा। नद्योनदाःसमुद्राश्चमुनयोऽप्सरसांग
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव जङ्गमं स्थावरं तथा। मातरश्च महादेवमनुजग्मुः क्षुधान्विताः
सर्वेषां पृष्ठतश्चासीत्ताक्ष्यस्थोबुद्धिमान्हरिः। पालयन्पृतनां सर्वांस्वपरिवारसमावृ
एवं सैन्यसमोपेत उत्तरं तटमागतः। ताम्रप्राकारमाश्रित्य तस्थौ त्र्यम्बकनन्दनः
स तारकपुरस्यापि पश्यन्नृद्धिमनुत्तमाम्। विसिष्मिये महासेनः प्रशशन्स तपोऽस्य
स्थितः पश्यन्स शुशुभे मयूरस्थोगुहस्तदा। छत्रेणध्रियमाणेन स्वयंसोमसमत्विष

वीज्यमानश्चामराभ्यां वाय्वग्निभ्यां महाद्युतिः।
मातृभिश्च सुरैर्दत्तैः स्वैर्गणैरपि सम्वृतः॥ ३१ ॥

ततः प्रणम्य तं शक्रो देवमध्ये वचोऽब्रवीत्। पश्यपश्यमहासेनदैत्यानांबलशालि
ये त्वां कालंनजानन्ति मर्त्या गृहरताइव। एतेषां च गृहे दूतोयस्त्वांशंसतुतारक
वीराणामुचितं त्वेतत्कीर्तिदं च महाजने। अनुज्ञया ततः स्कन्दभक्तं शक्रो घनज

ममादिश्यासुरेन्द्राय प्राहिणोद्दौत्ययोग्यकम्। अहं स्वयं गन्तुकामः शक्रेणापि च प्रेषितः
प्रासादे स्त्रीसहस्राणां प्रावोचं मध्यतोऽप्यहम्। असुराधम दुर्बुद्धे शक्रस्त्वामाह तच्छृणु
यज्ञगद्दलनादाप्तं किल्विषं दानव त्वया। तस्याऽहं नाशकस्तेऽद्य पुरुषश्चेद्भविष्यसि॥
शीघ्रं निःसर पापिष्ठः निःसरिष्यसि चेन्नहि। क्षणात्तव पुरं क्षेप्स्ये पावित्र्यायैव सागरे
इति श्रुत्वा रूक्षवाचं क्रुद्धः स्त्रीगणसंवृतः। मुष्टिमुद्यम्य माऽधावद्भीतश्चाहं पलायितः
व्याकुलस्तत्र वृत्तान्तं कुमारायन्यवेदयम्। मयि चाप्यागते दैत्यश्चिन्तयामास चेतसि
नालब्धसंश्रयः शक्रो वक्तुमेतदिहार्हति। निमित्तानि च घोराणि सन्त्रासं जनयंति मे
एवं विचिन्त्य चोत्थाय गवाक्षं सोऽध्यरोहत। सहस्रभौमिकावासशृङ्गवातायनस्थितः
अपश्यद्देवसैन्यं स दिवं भूमिं च सम्वृतम्। रथैर्गजैर्हयैश्चापि नादिताश्च दिशो दश॥
विमानैश्चाद्भुताकारैः किन्नरोद्गीतनादितैः। दुन्दुभिभिर्गोविषाणैस्तालैः शंखैश्च नादितैः

अक्षोभ्यामिव तां सेनां दृष्ट्वा सोऽचिन्तयत्तदा।
एते मया जिताः पूर्वं कस्माद्भूयः समागताः॥ ४५॥

इति चिन्तापरो दैत्यः शुश्राव कटुकाक्षरम्। देवबन्दिभिरुद्घुष्टं घोरं हृदयदारुणम्
जयाऽतुलशक्तिदीधितिपिञ्जररुचारुणमण्डलभुजोद्भासितदेवसैन्य पुरवदनकुमुदकानन विकासनेन्दो कुमारनाथ जय दितिकुलमहोदधिवडवानल मधुररवमयूररवासुर मुकुटकूटकुट्टितचरणनखाङ्कुर महासेन तारकवंशशुष्कतृणदावानल योगीश्वर योगिजन हृदयगगनविततचिन्तासन्तानसन्तमसनोदनखरकिरणकल्पनखनिकर विराजितचरणकमल स्कन्द जय बाल सप्तवासर भुवनावलिशोकसन्दहन!॥ ४७॥

नमो नमस्तेऽस्तु मनोरमाय नमोऽस्तु ते साधुभयापहाय।
नमोऽस्तु ते बालकृताचलाय नमोनमो नाशय देवशत्रून्॥ ४८॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे कुमारेश्वरमाहात्म्ये कुमारस्य तारकासुरनगरं प्रति
गमनवर्णनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

———

द्वात्रिंशोऽध्यायः

नारदार्जुनसम्वादे कुमारेशमोहात्म्ये कुमारकृततारकवधवर्णनम्

नारद उवाच

श्रुत्वैतं संस्तवं दैत्यः संघुष्टं देववन्दिभिः ।
सस्मार ब्रह्मणो वाक्यं वधं बालादुपस्थितम् ॥ १ ॥
श्रुत्वा स क्लिन्नसर्वाङ्गो द्वाःस्थं राजा वचोऽब्रवीत् ।
अमात्यान्द्रष्टुमिच्छामि शीघ्रमानय मा चिरम् ॥ २ ॥

ततस्तेराजवचनात्कालनेमिमुखागताः । प्राह तांस्तारको दैत्यःकिमिदंवोविचेष्टि
यैःशत्रुसंभवावार्ताकाऽपिनश्राविस्त्वहम् । मदिराकाममत्तानांमन्त्रित्वंवोन गुरु

हितं मन्त्रयते राज्ञस्तेन मन्त्री निगद्यते ॥ ४ ॥

अमात्या ऊचुः

को जानाति सुरान्दीनान्दैत्यानामिति नो मतिः ॥ ५ ॥

मा विषीदमहाराजवयंजेष्यामहेसुरान् । बालादपि भयंकिम्वालज्ञायैचिन्तितं
सर्वमेतत्सुसाध्यं च भेरी सन्ताड्यतां दृढम् । ततो दैत्येन्द्रवचनात्संनाहजननी
भृशं संताडिता भेरी कम्पयामास साजगत् । स्मरणाद्दैत्यराजस्यपर्वतेभ्योमहा
निम्नगाभ्यः समुद्रेभ्यःपातालेभ्योऽम्बरादपि । सहसासमनुप्राप्ता युगान्तानल
कोटिकोटिसहस्रैस्तु परार्धैर्दशभिः शतैः । सेनापतिः कालनेमिः शीघ्रं देवानुपा
चतुर्योजनविस्तीर्णे नानाश्चर्यसमन्विते । रथे स्थितो मनाग्दीनस्तारकः समा
एतस्मिन्नन्तरे पार्थ क्रुद्धैः स्कन्दस्य पार्षदैः । प्राकारःपातितः सर्वो भग्नान्युपवना
ततश्चचाल वसुधा देवी सवनकानना । जज्वाल खं सनक्षत्रं प्रमूढं भुवनं भृश
तमोभूतं जगच्चाऽऽसीद्गृध्रैर्व्याप्तं नभोऽभवत् । ततो नानाप्रहरणंप्रलयाम्बुदसनि
कालनेमिमुखं पार्थ अदृश्यत महद्बलम् । तद्धिघोरमसंख्येयं जगर्ज विविधा वि

अभ्यद्रवद्रणे देवान्भगवन्तं च शङ्करम् । विनदद्भिस्ततो दैत्यैर्देवानीकं महायुधैः ॥
पर्वतैश्च शतघ्नीभिरायसैः परिघैरपि । क्षणेन द्रावितं सर्वं विमुखं चाऽप्यदृश्यत ॥
असुरैर्वध्यमाने तु पावकैरिव काननम् । अपतद्दावभूमिष्ठं महाद्रुमवनं यथा ॥१८॥
ते भिन्नास्थिशिरोदेहाः प्राद्रवन्त दिवौकसः । न नाथमध्यगच्छन्तवध्यमानामहासुरैः
अथ तद्विद्रुतं सैन्यं दृष्ट्वा देवः पुरन्दरः । आश्वासयन्नुवाचेदं बलवद्दानवार्दितम् ॥
भयं त्यजतभद्रंवःशूराःशस्त्राणि गृह्णत । कुरुध्वंविक्रमे वुद्धि माच काचिद्व्यथाऽस्तुवः

एष कालानलप्रख्यो मयूरं समुपस्थितः ।
रक्षिता वो महासेनः कथं भीतिस्तथापि वः ॥ २२ ॥
शक्रस्य वचनं श्रुत्वा समाश्वस्ता दिवौकसः ।
दानवान्प्रत्ययुध्यन्त शक्रं कृत्वा व्यपाश्रयम् ॥ २३ ॥

कालनेमिर्महेन्द्रेण संयुगे समयुज्यत । सहस्राक्षौहिणीयुक्तो जम्भकः शङ्करेण च ॥
कुजम्भो विष्णुना चैव तावत्यक्षौहिणीवृतः । अन्ये च त्रिदशाः सर्वेमरुतश्चमहाबलाः
प्रत्ययुध्यन्तदैत्येन्द्रैः साध्याश्चवसुभिः सह । ततो वहुविधं युद्धं कालनेमिर्विधाय च
उत्सृज्य सहसा पार्थऐरावणशिरःस्थितः । स तु पादप्रहारेण मुष्टिना चैव तं गजम्
शक्रं च जघ्ने विनदन्पेततुस्तावुभौ भुवि । ततः शक्रं समादाय कालनेमिर्विचेतसम्

रथमाश्रित्य भूयोऽपि तारकाभिमुखो ययौ ।
अथ क्रुष्टं तदा देवैः सहसा चान्तकादिभिः ॥ २६ ॥
ह्रियते ह्रियते राजा त्राता कोऽपि न विद्यते ।
एतस्मिन्नन्तरे शर्वः पिनाकधनुषश्च्युतैः ॥ ३० ॥

बाणैः ससैन्यंकृत्वाचजम्भकंगृध्रमोदनम् । कालनेमिं समागम्यरथस्थोवाक्यमब्रवीत्
किमेतेन महेन्द्रेण मया युध्यस्व दानव !। वीरंमन्य सुदुर्बुद्धे ततो ज्ञास्यसि वीरताम्

कालनेमिरुवाच

नग्नेन सह को युध्येद्धृतेनाऽपिच येन वा । शंसत्सु दैत्यवीराणामुपहासः प्रजायते
आत्मतस्तु समं किञ्चिद्विलोकय सुदुर्मते !।

तदाकर्ण्य च सावज्ञं वचः शर्वो विसिष्मिये ॥ ३४ ॥

ततः कुमारः सहसा मयूरस्थोऽभ्यधावत । कुजम्भं सानुगं हत्वावासुदेवोऽप्यथ

ततो हरिः स्कन्दमाह किमेतेन तव प्रभो । दैत्याधमेन पापेन मुहूर्तं पश्य मे

एवमुक्त्वा निवार्यैनं केशवो गरुडस्थितः । शार्ङ्गको दण्डनिर्मुक्तैर्बाणैर्दैत्यमवारि

स तैर्बाणैस्ताड्यमानो वज्रैरिव महासुरः ।

विमुच्य वासवं क्रुद्धो बाणांस्तान्व्यधमच्छरैः ॥ ३८ ॥

यान्यान्बाणान्हरिर्दिव्यानस्त्राणि च मुमोचह । निवारयतिदैत्यस्तान्प्रहसँल्लील

ततः कौमोदकीं गृह्य क्षिप्रकारी जनार्दनः । मुमोचसैन्यनाथायसारथिं च व्यचूर्ण

ततो रथादवप्लुत्य विवृत्य वदनंमहत् । गरुडंचञ्चुनाऽऽदाय स विष्णुंक्षिप्तवान्

ततोऽभूत्सर्वदेवानां विमोहो जगतामपि । चचाल वसुधा चेलुः पर्वताःसप्तचाऽ

कालनेमिर्ननर्दश्चैव प्रानृत्यत महारणे । असंमूढस्ततो विष्णुस्त्वराकाल उपस्थि

कुक्षिं विदार्य चक्रेण भास्करोऽभादिवोदितः ।

वहिर्भूतो हरिश्चैनं मोहयित्वा स्वनिन्दया ॥ ४४ ॥

पातालस्य तलं निन्येतत्र शिश्ये सकाष्ठवत् । ततश्चक्रेण दैत्यानां निहतादशको

प्रमोद्रितास्तथा देवाविमोहास्तत्क्षणाद्बभुः । ततः शर्वस्तमालिंग्यसाधुसाधु जना

त्वयायद्विहितंकर्म तत्कर्ताऽन्योन विद्यते । महिषाद्याःसुदुर्जेया देव्या ये विनिपाति

तेषामतिवली ह्येष त्वया विष्णोविनिर्जितः । तारकामयङ्ग्रामे वध्यस्तेऽसौ जना

कंसरूपः पुनस्तेऽयं हन्तव्योऽष्टमजन्मनि । एवं प्रशंसमानास्तेवासुदेवं जगद्गुरु

शस्त्रजालैर्लब्धसंज्ञान्दैत्यसैन्याननाशयत् । तानि दैत्यशरीराणि जर्जराणि महा

अपतन्भूतले पार्थ च्छिन्नाभ्राणीव सर्वशः । ततस्तद्दानवं सैन्यं हतनाथमभूत्तदा

देवैः स्कन्दानुगैश्चैव कृतं शस्त्रैः पराङ्मुखम् ।

अथो क्रुष्टं तदा हृष्टैः सर्वैर्देवैर्मुदायुतैः ॥ ५२ ॥

संहतानि च सर्वाणि तदा तूर्याण्यवादयन् । अथ भग्नं बलं प्रेक्ष्य हतवीरं महा

देवानां च महामोदं तारकः प्राह सारथिम् । सारथे पश्यसैन्यानिद्राव्यमाणानि

येऽस्माभिस्तृणवद्दृष्टाः पश्य कालस्य चित्रताम् ।
तन्मे वाहय शीघ्रं त्वं रथमेनं सुरान्प्रति ॥ ५५ ॥
पश्यन्तु मे वलं वाह्वोर्द्रवन्तु च सुराधमाः । ब्रुवन्नेवं सारथिं स विधुन्वन्सुमहद्धनुः॥
क्रोधरक्तेक्षणो राजा देवसैन्यं समाविशत् ।
आगच्छमानं तं दृष्ट्वा हरिः स्कन्दमथाऽब्रवीत् ॥ ५७ ॥
कुमार!पश्य दैत्येन्द्रं कालंयद्वद्युगात्यये । अयं स येन तपसाघोरेणाऽऽराधितःशिवः
अयं स येन शक्राद्याः कृता मर्काः समार्बुदम् ।
अयं स सर्वशस्त्रौघैर्योऽस्माभिर्न जितो रणे ॥ ५६ ॥
तावज्ञया प्रद्रष्टव्यस्तारकोऽयं महासुरः । सप्तमं हि दिनं तेऽद्य मध्याह्नोऽयं च वर्तते
अर्वागस्तमनादेनं जहिवध्योऽन्यथानहि । एवमुक्त्वासशक्रादींस्त्वरितःकेशवोऽब्रवीत्
आयासयत दैत्येन्द्रं सुखवध्यो यथा भवेत् । ततस्ते विष्णुवचनाद्विनदन्तोदिवौकसः
तमासाद्यः शरव्रातैर्मुदिताः समवाकिरन् । प्रहसन्निव देवांस्तान्द्रावयामास तारकः
यथा नास्तिकदुर्वृत्तो नानाशास्त्रोपदेशकान् ।
सोढुं शक्ता न ते वीरं महति स्यन्दने स्थितम् ॥६४ ॥
महापस्मारसङ्क्रान्तं यथैवाऽप्रियवादिनम् । विधूयसकलान्देवान्क्षणमात्रेण तारकः
आजगाम कुमाराय विधुवन्समहाधनुः । आगच्छमानं तं दृष्ट्वा स्कन्दः प्रत्युद्ययौततः
तस्यारक्षश्चचः पार्श्वं दक्षिणंचैव तं हरिः । पृष्ठे च पार्षदास्तस्यकोटिशोऽर्वुदशस्तथा
ततस्तौ सुमहायुद्धे संसक्तौ देवदैत्ययोः । धर्माधर्माविवोदग्रौ जगदाश्चर्यकारकौ ॥
ततः कुमारमासाद्य लीलया तारकोऽब्रवीत् ।
अहो वालातिवालस्त्वं यत्त्वं गीर्वाणवाक्यतः ॥ ६६ ॥
आसादयसिमां युद्धे पतङ्ग इव पावकम् । वधेन तव को लाभोमममुक्तोऽसिवालक!
पिव क्षीरं गृहाणेमं कन्दुकं क्रीड लीलया । एवमुक्तःप्रहस्याऽऽहतारकं योगिनां गुरुः
शिशुत्वं माऽवमंस्था मे शिशुः कष्टो भुजङ्गमः ।
दुष्प्रेक्ष्यो भास्करो वालो दुःस्पर्शोऽल्पोऽपि पावकः ॥ ७२ ॥

अल्पाक्षरो न मन्त्रः किं सस्फुरो दैत्य दृश्यते।
एवमुक्त्वा दैत्यमुक्तं गृहीत्वा कन्दुकं च तम् ॥ ७३ ॥
तस्मिञ्छत्त्यस्त्रमादाय दैत्याय प्रमुमोच ह। तस्य तेन प्रहारेणरथश्चूर्णीकृतो
चतुर्योजनमात्रो यो नानाश्चर्यसमन्वितः। गरुडस्य सुता ये च शीर्यमाणे रथे
मुक्ताः कथंचिदुत्पत्य सागरान्तरमाविशन्। ततः क्रुद्धस्तारकश्च मुद्गरं क्षिप्तवान्
विन्ध्याद्रिमिव तं स्कन्दो गृहीत्वा तं व्यताडयत्।
स्थिरे तस्योरसि व्यूढे मुद्गरः शतधाऽगमत् ॥ ७७ ॥
मेने च दुर्जयं दैत्यस्तदा षड्वदनं रणे। चिन्तयामासबुद्ध्या च प्राप्तं तद्ब्रह्मणो
तंभीतमिवचाऽऽलक्ष्यदैत्यवीराश्चकोटिशः। नदन्तोऽतिमहासेनंनानाशस्त्रैरवा
क्रुद्धस्तेषु ततः स्कन्दः शक्तिं घोरामथाऽऽददे।
अभ्यस्यमाने शक्त्यस्त्रे स्कन्देनाऽमिततेजसा ॥ ८० ॥
उल्काजालं महाघोरं पपात वसुधातले। चाल्यमाना तथा शक्तिः सुघोरा भव
ततः कोट्यो विनिष्पेतुःशक्तीनांभरतर्षभ !। स शक्त्यस्त्रेण बलवान्करस्थेनाऽहन
अष्टौ पद्मानि दैत्यानां दशकोटि शतानि च। तथा नियुतसाहस्रं वाहनं कोटि
हृदोदरं च दैत्येन्द्रं निखर्वैर्दशभिर्वृतम्। तत्राऽकुर्वन्सुतुमुलं नादं वध्येषु शत्रु
कुमारानुचराः पार्थ! पूरयन्तो दिशो दश।
शक्त्यस्त्रस्यार्चिः सम्भूतशक्तिभिः केऽपि सूदिताः ॥ ८५ ॥
पताकयाऽवधूताश्च हताःकेचित्सहस्रशः। केचिद्घण्टारवत्रस्ताश्छिन्नभिन्नहृदो
केचिन्मयूरपक्षाभ्यांचरणाभ्यां च सूदिताः। कोटिशस्ताम्रचूडेनविदार्यैव च भ
पार्षदैर्मातृभिः सार्धं पद्मशो निहताः परे। एवं निहन्यमानेषु दानवेषु गुहादिभि
अभाग्यैरिव लोकेषु तारकःस्कन्दमाययौ। जग्राह च गदां दिव्यांलक्षघण्टादुरास
तया मयूरमाजघ्ने मयूरो विमुखोऽभवत्।
दृष्ट्वा पराङमुखं स्कन्दं वासुदेवोऽब्रवीत्त्वरन् ॥ ९० ॥
देवसेनापते! शीघ्रं शक्तिं मुञ्च महासुरे। [illegible] लम्बते रविमण्ड

स्कन्द उवाच

त्वयैव रुद्रभक्तोऽयं जनार्दन! ममेरितम्। वधार्थं रुद्रभक्तस्य बाहुः शक्तिं न मुञ्चति॥
नाढ्यः पूजयेद्रुद्रं भक्तरूपस्य यो हरः। रुद्ररूपममुं हत्वा कीदृशं जन्मनो भवेत॥
तिरस्कृता विप्रलब्धाःशप्ताःक्षिप्ताःप्रपीडिताः। रुद्रभक्ताः कुलं सर्वंनिर्दहन्तिहताःकिमु
एष चेद्धन्ति तद्रुद्रं हन्यतामेष मां रणे। रुद्रभक्ते पुनर्विष्णो! नाऽहं शस्त्रमुपाददे॥

श्रीभगवानुवाच

नैतत्तवोचितं स्कन्द! रुद्रभक्तो यथा श्रृणु। द्वे तनू गिरिजाभर्तुर्वेदज्ञा मुनयो विदुः
एका जीवात्मिका तत्र प्रत्यक्षा च तथापरा। द्रोग्धा भूतेषुभक्तश्चरुद्रभक्तोनसस्मृतः
भक्तो रुद्रे कृपावांश्च जन्तुष्वेव हरव्रतः। तदेनं भूतमर्त्येषु द्रोग्धारं त्वं पिनाकिनः
जहि नैवाऽत्र पश्यामि दोषंकश्चनतेप्रभो। श्रुत्वेतिवाचंगोविन्दात्सत्यार्थामपिभारत
हन्तुं न कुरुते बुद्धिं रुद्रभक्त इति स्मरन्। तारकस्तु ततः क्रुद्धो ययौ वेगेन केशवम्
आह चैवं सुदुर्बुद्धे! हन्मि त्वां पश्यमेवलम्। देवानां चापिधर्माणांमूलंमतिमतां तथा
हत्वा त्वामद्य सर्वांस्तांश्छेत्स्ये पश्याऽद्य मे बलम्॥ १०१॥

विष्णुरुवाच

दैत्येन्द्र! तव चाऽऽस्माभिः किमहो श्रृणु सत्यताम्॥ १०२॥
रथे य एष शर्वोऽयं हतेऽस्मिन्सकलं हतम्। श्रुत्वेति तारकः क्रुद्धस्तूर्णं रुद्ररथं ययौ
अभिसृत्य स जग्राह रुद्रस्य रथकूबरम्। यदा स कूबरं क्रुद्धस्तारकः सहसाऽग्रहीत्
रेसतू रोदसी तूर्णं मुमुहुश्च महर्षयः। व्यनदंश्च महाकाया दैत्या जलधरोपमाः॥१०५
आसींच्चनिश्चितंतेषांजितमस्माभिरित्युत। तारकस्याऽप्यभिप्रायंभगवान्वीक्ष्यशङ्करः
उमया सह सन्त्यक्त्वा रथं वृषभमावहत्। ओमित्यथ जपन्ब्रह्माआकाशंसहसाश्रितः
ततस्तं शतसिंहं च रथंरुद्रेणनिर्मितम्। उत्क्षिप्यपृथ्व्यामास्फोट्यचूर्णयामासतारकः
शूलपाशुपतादीनि सहसोपस्थितानि च। वारयामासगिरिशोभवः साध्य इति ब्रुवन्
ततः स्ववञ्चितं ज्ञात्वा रुद्रेणाऽऽत्मानमीर्ष्यया।
विनदन्सहसाऽधावद्वृषभस्थं महेश्वरम्॥ ११०॥

ततो जनार्दनोऽधावच्चक्रमुद्यम्य वेगतः । वज्रमिन्द्रस्तथोद्यम्य दण्डं चापि यमो
गदां धनेश्वरः क्रुद्धः पाशं च वरुणोनदन् । वायुर्महाङ्कुशं घोरं शक्तिं वह्निर्महा
निर्ऋतिर्निशितंखड्गंरुद्राःशूलानिकोपिताः । धनूंषिसाध्यादेवाश्चपरिघान्वसवः
विश्वेदेवाश्चमुसलंचन्द्रार्कौस्वप्रभामपि । ओषधीश्चाश्विनौदेवौनागाश्चज्वलित
हिमाद्रिप्रमुखाश्चाऽपि समुद्यम्य महीधरान् । भृशमुन्नदतोदेवान्धावतो वीक्ष्य त
निवृत्तः सहसा पार्थ महागज इवोन्नदन् । स वज्रमुष्टिनाहत्य भुजे शक्रमपात
दण्डं यमादुपादाय मूर्ध्न्याहत्य न्यपातयत् । उरसाहत्यसगदं धनदं भुव्यपात
वरुणात्पाशमादाय तेन बद्ध्वा न्यपातयत् । महाङ्कुशेन वायुश्च चिरंमूर्ध्नि जघा
फूत्कारैरुद्धतं वह्निं शमयामास तारकः । निर्ऋतिं खड्गमादाय हत्वा तेन न्यपा
शूलैरेव तथा रुद्राः साध्याश्च धनुषार्दिताः । परिघैरेव वसवो मुशलैरेव विश्व

रेणुनाऽऽच्छाद्य चन्द्रार्कौ वल्मीकस्थाविवेक्षितौ ।
महोग्राश्चौषधीस्तालैरश्विभ्यां सोऽभ्यवर्तयत् ॥ १२६ ॥

सविषाश्च कृता नागा निर्विषाःपादकुट्टनैः । पार्वताः पर्वतैरेवनिरुच्छ्वासाभृशंकृ
एवं तद्देवसैन्यं च हाहाभूतमचेतनम् । कृत्वा मुहूर्तादाधावच्चक्रपाणिं तमुन्नदन्
ततश्चाऽन्तर्दधे सद्यः प्रहसन्निव केशवः । कुयोगिन इव स्वामी सदा बुद्धिमता
अपश्यंस्तारको विष्णुं पुनर्वृषभवाहनम् । अधावत्कुपितो दैत्यो मुष्टिमुद्यम्य वे
अचिरांशुरिवाऽलक्ष्योलक्ष्योऽथभगवान्हरिः । आबभाषेततोदेवान्बाहुमुद्यम्यवा
पलायध्वमहो देवाः शक्तिश्चेद्वः पलायितुम् । विमूढा हि वयं सर्वे येबालवचसा

किं न श्रुतः पुरा गीतः श्लोकः स्वायम्भुवेन यः ।
यथा बालेषु निक्षिप्ताः स्त्रीषु पण्डितकेषु च ।
अपस्मारिषु चैवाऽपि सर्वे ते संशयं गताः ॥ १२८ ॥
प्रत्यक्षं तदिदं सर्वमधुना चाऽत्र दृश्यते ॥ १२६ ॥

अज्ञासिष्म पुरैवैतद्रुद्रभक्तं न हन्त्यसौ । यत्प्रतिज्ञां नाऽकरिष्यन्नस्यान्नः कदनं
अथैष यदि दैत्येन्द्रं न निहन्तिकुबुद्धिमान् । मा भयंवोमहाभागानिहनिष्यामिवो

अद्य मे विपुलं बाह्वोर्बलं पश्यत देवताः । दैत्याधमं नाशयामि मुष्टिनैकेन पश्यत ॥
मया हि दक्षिणो बाहुर्दत्तश्च भवतां सदा । रिपून्वा निहनिष्यामिसत्यं तत्परिपालये
येऽम्बरे ये च पाताले भुवि येच महासुराः । क्षणात्तान्नाशयिष्यामिमहावातोघनानिव
एवमुक्त्वा जगन्नाथोमुष्टिमुद्यम्यदक्षिणम् । निरायुधस्तार्क्ष्यपृष्ठादवप्लुत्याऽभ्यधावत
तस्मिन्धावति गोविन्दे चचाल भुवनत्रयम् । विमूर्च्छितमभूद्विश्वंदेवाभीतिं परांययुः

धावतश्चाऽपि कल्पान्तं रुद्रकल्पस्य तस्य याः ।
मुखात्समुद्ययुर्ज्वालास्ताभिः खर्वशतं हतम् ॥ १३७ ॥

ततोऽन्तरिक्षे वाचश्च प्रोचुःसिद्धाःस्वयंतदा । जहिकोपंवासुदेवत्वयिक्रुद्धे क्व वै जगत्
अनादृत्येव तद्वाक्यं ब्रुवन्नान्यत्करोम्यहम् । आह्वयंश्च महादैत्यं क्रुद्धो हरिरधावत ॥
उवाच वाचं साधूंश्च यत्नात्पालयतांफलम् । दुष्टान्विनिघ्नतांचैवतत्फलंमम जायताम्
अथापश्यन्महासेनो रुद्रं यान्तं च तारकम् । तारकं चान्वधावन्तं पुराणपुरुषं हरिम्

जगच्च क्षुब्धमत्यर्थं स्वां प्रतिज्ञां पुरा कृताम् ।
पश्चिमां प्रतिलम्बन्तं भास्करं चाऽपि लोहितम् ॥ १४२ ॥
आकाशवाणीं शृण्वंश्च किं स्कन्द ! त्वं विषीदसि ।
पश्चात्तापो यदि भवेत्कृत्वा ब्रह्मवधं त्वयि ॥ १४३ ॥

स्थापयेर्ल्लिङ्गमीशस्य मोक्षोहत्याशतैरपि । आविवेश महाक्रोधं दिधक्षुरिव मेदिनीम्
अथोत्प्लुत्य मयूरात्स प्रहसन्निव केशवम् । बाहुभ्यामभ्युपादाय प्रोवाच भवनन्दनः
जानामि त्वामहंविष्णोमहाबुद्धिपराक्रमम् । भूतभव्यभविष्यांश्चदैत्यान्हंस्यपिहुंकृतैः
त्वमेव हन्ता दैत्यानांदेवानां परिपालकः । धर्मसंस्थापकश्च त्वमेष ते रचितोऽञ्जलिः
क्षणार्धं पश्य मे वीर्यं भास्करो लोहितायते । एवंप्रणम्यस्कन्देनवासुदेवः प्रसादितः
विरोधोऽभूत्तमालिङ्ग्यवचनं केशवोऽब्रवीत् । सनाथस्त्वद्यधर्मोऽयंसुराश्चैवत्वयागुह
स्मरात्मानं यदर्थं त्वमुत्पन्नोऽसि महेश्वरात् । साधूनां पालनार्थाय दुष्टसंहरणाय च

सुरविप्रकृते जन्म जीवितं च महात्मनाम् ॥ १५० ॥

रुद्रस्य देव्या गङ्गायाः कृत्तिकानांचतेजसा । स्वाहावह्नेश्चजातस्त्वं तत्तेजःसफलीकुरु

साधूनां च कृते यस्य धनं वीर्यं च सम्पदः ॥ १५१ ॥
सफलं तस्य तत्सर्वं नान्यथा रुद्रनन्दन ! ॥ १५२ ॥

अद्य धर्मश्च देवाश्च गावःसाध्याश्चब्राह्मणाः । नन्दन्तु तव वीर्येण प्रदर्शय निजं

स्कन्द उवाच

या गतिः शिवत्यागेन त्वत्त्यागेन च केशव । तांगतिंप्राप्नुयांक्षिप्रंहन्मिचेन्नहिता

या गतिः श्रुतित्यागेन साध्वीभार्यातिपीडनात् ।
साधूनां च परित्यागाद्वृथा जीवितसाधनात् ॥
निष्ठुरस्य गतिर्या च तां गतिं यामि केशव ! ॥ १५५ ॥

इत्युक्ते सुमहान्नादः सम्प्रजज्ञे दिवौकसाम् । प्रशशंसुर्गुहं केचित्केचिन्नारायणं
ततस्तार्क्ष्यं समारुह्य हरिस्तस्मिन्महारणे । ताम्रचूडं महासेनस्तारकं चाप्यधा
लोहिताम्बरसम्वीतो लोहितस्रग्विभूषणः । लोहिताक्षो महाबाहुर्हिरण्यकवचः
भुजेन तोलयञ्छक्तिं सर्वभूतानि कम्पयन् । प्राप्य तं तारकं प्राह महासेनो हर्ष
तिष्ठतिष्ठ सुदुर्बुद्धे! जीवितन्तेमयि स्थितम् । सुदृष्टः क्रियतांलोकोदुर्लभःसर्व
यत्ते सुनिष्ठुरत्वं च धर्मदेवेषु गोषु च । तस्य ते प्रहराम्यद्य स्मर शस्त्रं सुशि
एवमुक्ते गुहेनाऽथनिवृत्तस्याऽस्यभारत !। तारकस्यशिरोदेशात्काऽपिनारीविनि
तेजसा भासयन्ती तमधऊर्ध्वंदिशोदश । दृष्ट्वा नारींगुहःप्राह काऽसिकस्माच्च

नार्युवाच

अहं शक्तिर्गुहाख्याता भूतलेषुसदास्थिता । अनेन दैत्यराजेन महता तपसा

सुरेषु सर्वेषु वसामि चाऽहं विप्रेषु शास्त्रार्थरतेषु चाऽहम् ।
साध्वीषु नारीषु तथा वसामि विना गुणान्नाऽस्मि वसामि कुत्र

तदस्य पुण्यसंघस्य सम्प्राप्तोऽद्यावधिर्गुह !। तदेनं त्यज्य यास्यामि जह्येनं वि
तस्यांततोनिर्गतायांदैत्यशीर्षंव्यकम्पयत् । कम्पितंचाऽस्यतद्देहंगतवीर्योऽभवत्

एतस्मिन्नन्तरे शक्तिं सोऽक्षिपद्गिरिजात्मजः ।
उल्काज्वालाविमुञ्चन्तीमतिसूर्याग्निसप्रभाम् ॥ १६८ ॥

कल्पाम्भोधिसमुन्नादां दिधक्षन्तींजगद्यथा। तारकस्यान्तकालाग्रअभाग्यस्यदशामिव
दारणीं पर्वतानाञ्च सर्वसत्त्वबलाधिकाम्। उत्क्षिप्यतांविनद्योच्चैरमुञ्चत्कुपितोगुहः
यर्मश्चेद्बलवाँल्लोके धर्मो जयति चेत्सदा। तेन सत्येन दैत्योऽयं प्रलयंयात्त्वितीरयन्
सा कुमारभुजोत्सृष्टा दुर्निवार्या दुरासदा। विभेद हृदयंचाऽस्यभित्त्वाच धरणिंगता
निःसृत्य जलकल्लोलपूर्विकास्कन्दमाययौ। सचसन्ताडितःशक्त्याविभिन्नहृदयोऽसुरः
नादयन्वसुधां सर्वां पपाताऽधोमुखो मृतः॥ १७३॥
एवं प्रताप्य त्रैलोक्यं निर्जित्यबहुशः सुरान्। महारणे कुमारेण निहतः पार्थ तारकः
एतस्मिन्निहते दैत्ये प्रहर्षं विश्वमाययौ॥ १७५॥
ववुर्वातास्तथापुण्याः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः।
जज्वलुश्चाऽग्नयःशान्ताः शान्तादिग्जनितस्वनाः॥ १७६॥
ततः पुनः स्कन्दमाह प्रहृष्टःकेशवोऽरिहा। स्कन्दस्कन्दमहाबाहोबाणोनामबलात्मजः
क्रौञ्चपर्वतमादाय देवसङ्घान्प्रबाधते। सोऽधुना ते भयाद्वीर पलायित्वा नगं गतः॥
जहि तं पापसङ्कल्पं क्रौञ्चस्थं शक्तिवेगतः॥ १७८॥
ततः क्रौञ्चं महातेजा नानाव्यालविनादितम्। शक्त्याबिभेदबहुभिर्वृक्षैर्जीवैश्चसङ्कुलम्
तत्र व्यालसहस्राणि दैत्यकोट्ययुतं तथा। ददाह बाणंच गिरिंभित्त्वा शक्तिर्महारवा
अद्याऽपि छिद्रं तत्पार्थ! क्रौञ्चस्य परिवर्तते॥ १८१॥
येन हंसाश्च क्रौञ्चाश्च मानसायप्रयान्तिच। हत्वाबाणंमहाशक्तिःपुनःस्कन्दंसमागता
प्रत्यायाति मनः साधोराहतं प्रहितं तथा॥ १८२॥
ततो हरीन्द्रप्रमुखाः प्रतुष्टुवुर्ननृतुश्च रम्भाप्रमुखा वराङ्गनाः।
वाद्यानि सर्वाणि च वादयन्तस्तं साधुसाध्वित्यमरा जगुर्भृशम्॥ १८३॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे कुमारेशमाहात्म्ये कुमारकृततारकवधवर्णनं
नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

रुद्रस्यांशस्तारकइतितारकवधखेदखिन्नो गुहःप्रायश्चित्तं कर्तुमुद्युक्तस्त-प्रशमनायाऽपृच्छद्विष्णुकृतं कार्त्तिकेयकृतसान्त्वनं प्रतिज्ञेश्वर-शक्तिच्छिद्रेश्वरज्योतिर्लिङ्गयोःप्रतिष्ठावर्णनम्

नारद उवाच

ततस्तं गिरिवर्ष्माणं पतितं वसुधोपरि। अलिङ्गितमिवपृथ्व्या गुणिन्थागुणिनं
दृष्ट्वा देवा विस्मितास्तेजयंजगुस्तथामुहुः। केचित्समीपमागन्तुंविभ्यतित्रिदिवौ
उत्थाय तारको दैत्यः कदाचिन्नोनिहन्तिचेत्। तं तथापतितंदृष्ट्वा वसुधामण्डले
आसीद्दीनमनाः पार्थ शुशोचचमहामतिः। स्तवनंचापिदेवानांवारयित्वावचोऽब्र
शोच्यं पातकिनंमांच संस्तुवध्वंकथंसुराः। पञ्चानामपियोभर्ताप्राकृतोऽसौनर्का
स तु रुद्रांशजःप्रोक्तस्तस्य द्रुह्यन्न रुद्रवत्। स्वायम्भुवेन गीतश्च श्लोकःसंश्रूयते
वीरं हि पुरुषं हत्वा गोसहस्रेण मुच्यते। यथाकथञ्चित्पुरुषो न हन्तव्यस्ततो
पापशीलस्य हनने दोषो यद्यपिनास्तिच। तथापि रुद्रभक्तोऽयं संस्मरन्नितिशो
तदहं श्रोतुमिच्छामि प्रायश्चित्तं न किञ्चन। प्रायश्चित्तैरपैत्येनो यतोऽपि महद
इति संशोचतस्तस्य शिवपुत्रस्य धीमतः। वासुदेवो गुरुः पुंसांदेवमध्ये वचोऽब्र
श्रुतिःस्मृतिश्चेतिहासाःपुराणं च शिवात्मज। प्रमाणं चेत्ततो दुष्टवधे दोषो न वि

स्वप्राणान्यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः पुमान्।
तद्वधस्तस्य हि श्रेयो यद्दोषाद्यात्यधः पुमान्॥ १२॥
अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्याऽपचारिणी।
गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिषम्॥ १३॥

पापिनं पुरुषंयो हि समर्थो न निहन्ति च। तस्यतावन्ति पापानितद्ध्वंसोऽप्यवा

पापिनो यदि वध्यन्ते नैव पालनसंस्थितैः । ततोऽयमक्षमो लोकः कं यातिशरणंगुह
कथं यज्ञाश्च वेदाश्च वर्तन्ते विश्वधारकाः । तस्मात्त्वया पुण्यमाप्तं न च पापं कथञ्चन
अथ चेद्रुद्रभक्तेषु बहुमानस्तव प्रभो । तत्र ते कीर्तयिष्यामि प्रायश्चित्तं महोत्तमम् ॥
आजन्मसम्भवैः पापैः पुमान्येन विमुच्यते । आकल्पान्तं च वा येन रुद्रलोके प्रमोदते
कृते पापेऽनुतापो वै यस्य स्कन्द प्रजायते । रुद्राराधनतोऽन्यच्च प्रायश्चित्तं परं न हि

न यस्याऽलमपि ब्रह्मा महिमानं विवर्णितुम् ।
श्रुतिश्च भीता यं वक्ति किं तस्मात्परमं भवेत् ॥ २० ॥

अकाण्डेयच्चब्रह्माण्डक्षयोद्युक्तं हलाहलम् । कण्ठे दधारश्रीकण्ठःकस्तस्मात्परमोभवेत्
दुःखताण्डवदीनोऽभूद्दण्डसङ्कीर्णमानसः । मारमारश्च यो देवःकस्तस्मात्परमोभवेत्
वियद्व्यापी सुरसरित्प्रवाहोविप्रुषाकृतिः । बभूव यस्यशिरसिकस्तस्मात्परमोभवेत्

यज्ञादिकाश्च ये धर्मा विना यस्याऽर्चनं वृथा ।
दक्षोऽत्र सत्यदृष्टान्तः कस्तस्मात्परमो भवेत् ॥ २४ ॥

क्षोणी रथो विधिर्यन्ता शरोऽहंमन्दरो धनुः । रथाङ्गे चापिचन्द्राकौयुद्धेयस्यचत्रैपुरे
आराधनं तस्यकेचिद्योगमार्गेण कुर्वते । दुःखसाध्यं हि तत्तेषां नित्यंशून्यमुपासताम्
तस्मात्तस्यार्चयेल्लिंगंभुक्तिमुक्ती य इच्छति । सृष्ट्यादौ लिङ्गरूपीसविवादोममब्रह्मणः
अभूद्यस्य परिच्छेदे नालमावां बभूविव । चराचरं जगत्सर्वं यतो लीनं सदाऽत्र च॥
तस्माल्लिङ्गमितिप्रोक्तं देवै रुद्रस्यधीमतः । तोयेन स्नापयेल्लिङ्गं श्रद्धया शुचिना च यः
ब्रह्मादितृणपर्यन्तं तेनेदं तर्पितं जगत् । पञ्चामृतेन तल्लिंगं स्नापयेद्यश्च बुद्धिमान् ॥
तर्पितं तेन विश्वंस्यात्सुधया पितृभिः समम् । पुष्पैरभ्यर्चयेल्लिङ्गंयथाकालोद्भवैश्चयः
तेन सम्पूजितं विश्वं सकलं नात्र संशयः । नैवेद्यं तत्र यो दद्याल्लिङ्गस्याग्रे विचक्षणः
भोजितं तेन विश्वं स्याल्लिङ्गस्यैवंफलंमहत् । किमत्र बहुनोक्तेन स्वल्पंवा यदिवाबहु
लिङ्गस्य क्रियते यच्चतत्सर्वंविश्वप्रीतिदम् । तच्च लिङ्गं स्थापयेद्यःशुचौ देशे सुभक्तितः
स सर्वपापनिर्मुक्तो रुद्रलोके प्रमोदते । यन्नित्यं यजतो यज्ञैः फलमाहुर्मनीषिणः ॥
तच्च स्थापयतोलिङ्गं शिवस्यशुभलक्षणम् । यथाग्निःसर्वदेवानांमुखं स्कन्द! प्रकीर्त्यते

तथैव सर्वजगतां मुखं लिङ्गं न संशयः । प्रारम्भान्मुच्यते पापैः सर्वजन्मकृतै
अतीतं च तथाऽऽगामि कुलानां तारयेच्छतम् । मृण्मयं काष्ठनिष्पन्नं पक्वेष्टं
कृतमायतनं दद्यात्क्रमाच्छतगुणं फलम् । कलशं तत्र चारोप्य एकविंशत्कुलै
आकल्पान्तं रुद्रलोके मोदते रुद्रवत्सुखी । एवंविधफलं लिङ्गमतोभूयोऽप्यथो

तस्माद्त्र महासेन ! लिङ्गं स्थापितुमर्हसि ।
यदुक्तमेतदश्लीलं यदि किञ्चन चाऽत्र चेत् ॥ ·१ ॥

तद्ब्रवीतु महासेन स्वयं साक्षी महेश्वरः । एवं वदति गोविन्दे साधुवादो मह
महादेवो ह्यथालिङ्ग्य स्कन्दं वचनमब्रवीत् । यद्भवान्मम भक्तेषु प्रकरोति कृपां
तेनाऽपि परमा प्रीतिर्मम जाता तवोपरि । किन्तु यद्भगवानाह वासुदेवो जगद्

तत्तथा नान्यथा किञ्चिदत्र प्रोक्तं हि विष्णुना ।
यो ह्यहं स हरिर्ज्ञेयो यो हरिः सोऽहमित्युत ॥ ४५ ॥

नावयोरन्तरं किञ्चिद्दीपयोरिव सुव्रत !। एनं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि योऽन्वेत्येनंसमाऽ

इति स्कन्द ! विजानाति स मद्भक्तोऽन्यथा न हि ॥४७ ॥

स्कन्द उवाच

एवमेवाऽस्मि जानामि त्वां च विष्णुं च शङ्कर !॥ ४८ ॥

यच्च लिङ्गकृते प्राह हरिर्मा धर्मवत्सलः । खे वाणी तारकवधे एवमेव पुराऽऽह
लिङ्गं संस्थापयिष्यामि सर्वपापापहं ततः । एकं यत्र प्रतिज्ञा मे गृहीताऽस्यवधा

द्वितीयं यत्र निःसत्त्वस्त्यक्तः शक्त्याऽसुरोऽभवत् ।
तृतीयं यत्र निहतो हत्यापापोपशान्तिदम् ॥ ५१ ॥

इत्युक्त्वाविश्वकर्माणमाहूय प्राह पावकिः । त्रीणि लिङ्गानिशुद्धानिशीघ्रंत्वंकर्तुमर्ह
वचनाद्बाहुलेयस्य निर्ममे देववर्द्धकिः । त्रीणि लिङ्गानि शुद्धानि न्यवेदयत तानि
ततो ब्रह्मादिभिः सार्धं विष्णुना शङ्करेण च । पूर्वं संस्थापयामास पश्चिमायाम
प्रतिज्ञेश्वरमित्येव लिङ्गं परमशोभनम् । अष्टम्यां बहुले चात्र चैत्रे स्नात्वा उपोष्य
पूजां च जागरं कृत्वा मुच्येत्पारुष्यपापतः । इत्याहस्कन्दप्रीत्यर्थं स्वयं तत्र महेश्व

ततो द्वितीयं लिङ्गं तु वह्निकोणाश्रितं तथा। स्थापयामाससरसो यत्रशक्तिर्विनिर्ययौ
कपालेश्वरमित्येव लिङ्गं पापापहं शुभम्। शक्तिं च तामभिष्टूय स्थापयामास तत्र च
कपालेश्वरसान्निध्यंदेवीं कापालिकेश्वरीम्। तत्र चोत्तरदिग्भागे शक्तिच्छिद्रंप्रचक्षते॥

पातालगङ्गा यत्राऽस्ति सर्वपापहरा शिवा।

तत्र स्नात्वा ददौ स्कन्दः कृपयाऽभिपरिप्लुतः॥ ६०॥

तदा तोयं तारकाय सहितः सर्वदैवतैः॥ ६१॥

काश्यपेयाय वज्राङ्गतनयाय महात्मने। रुद्रभक्ताय सतिलमक्षय्योदकमस्त्विति॥
ततो महेश्वरःप्रीतः प्राह स्कन्दस्यशृण्वतः। चतुर्दश्यांकृष्णपक्षे मधौ चैवाऽत्रयो नरः

स्नात्वोपोष्य समभ्यर्च्य कपालेश्वरमीश्वरीम्॥ ६३॥

तेजोवधसमुद्भूतपातकेन स मुच्यते॥ ६४॥

अस्यामेवतिथौसोमःशिवयोगश्चतैतिलम्। षड्योगः शक्तिच्छिद्रेयोदिनंरुद्रंजपन्निशि

स्नात्वाऽत्र सशरीरो वै रुद्रलोकं व्रजिष्यति॥ ६५॥

कपालेशस्यसान्निध्येशक्तिच्छिद्रं हि कीर्त्यते। तस्य तुल्यंपरं तीर्थंपृथिव्यांनैवविद्यते

इति श्रुत्वा रुद्रवाक्यं स्कन्दः प्रीतोऽभवद्भृशम्।

देवाश्च मुदिताः सर्वे साधुसाध्विति ते जगुः॥ ६७॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारस्थापितप्रतिज्ञेश्वरशक्तिच्छिद्रेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

शिवमन्दिरप्रतिष्ठापुण्येनसहकुमारेशस्थापनवर्णनंमाहात्म्यञ्च

नारद उवाच

ततस्तृतीयलिङ्गस्य चिकीर्षुं स्थापनं गुहम्। ब्रह्माप्राहास्य प्रीत्यर्थंस्वयमन्यं प्रकुर्महे

यद्यप्येतच्छुभं लिङ्गं सर्वदोषविवर्जितम् । तथाप्यन्यत्करिष्येऽहं सर्वश्रेष्ठतमं लि
ततो ब्रह्मा सर्वदोषविमुक्तं निर्ममे स्वयम् । दृष्टिकान्तंमनःकान्तं फलकान्तंसुलि
तत्र स्कन्दस्य प्रीत्यर्थं सर्वदेवैर्विनिर्मितम् । सरःसुरम्यं तीर्थानि तत्र ते निदधु
गंगादिकानि तीर्थानि यानिप्रोचुर्दिवौकसः । इदं यावत्सरस्तावत्सर्वैरत्रसमु
एवमस्त्विति तान्यूचुः प्रीत्यर्थं शरजन्मनः । ततो ब्रह्मा स्वयं तत्र रौद्रैर्मंत्रैर्हु
गाधिपुत्रादिभिर्विप्रैस्तर्पयामास संयुतः ॥ ६ ॥
ततो वैशाखमासस्य चतुर्दश्यां शुभे दिने । प्रतिष्ठां चक्रिरे लिङ्गे चिरंविप्रमुखा
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः । ततः स्कन्दः प्रीतियुक्तः स्नात्वासरसि
सर्वतीर्थोदकैः स्नाप्य तल्लिङ्गं भक्तिसंयुतः । विविधैः पूजयामासपुष्पैर्मन्त्रैश्च प
पूजाकाले स्वयं तत्र लिङ्गमध्ये स्थितो हरः ।
जङ्गमाजङ्गमैः सार्धं स्वयं जग्राह पूजनम् ॥ १० ॥
ततस्तं पूजयन्प्राह स्कन्दो भक्तिपरिप्लुतः । केन केनोपहारेण त्वयिदत्तेन किम्

श्रीमहादेव उवाच

मम यः स्थापयेल्लिङ्गंशुभं सद्म च कारयेत् । मल्लोकेवसतेऽसौच यावच्चन्द्रदिवा
मम सद्म सुधाशुभ्रंयावत्संख्यंकरोति यः । तावन्त्येवच जन्मानियशसाऽसौवि
ध्वजभूतो ध्वजं दत्त्वा विपापः स्यात्पताकया ।
विधाय चित्रविन्यासगन्धर्वैः सह मोदते ॥ १४ ॥
रजःसंशोधनं कृत्वा नरो रोगैः प्रमुच्यते । प्राप्नोति देहं हार्दं च सुरसद्मानुलेप
पुष्पक्षीरादिभिर्दत्तैस्तिलाम्भोऽक्षतदर्भकैः ।शम्भोःशिरसिदत्त्वार्घ्यंदिविवर्षायुतं
घृतेन हतपापः स्यान्मधुना सुभगो भवेत् ।
विरोगो दधिदुग्धाभ्यां लिङ्गं संस्नाप्य जायते ॥ १७ ॥
पानीयदधिदुग्धाद्यैःक्रमाद्दशगुणंफलम् । मासं संस्नाप्य वै भक्त्यापिष्टाद्यैश्चवि
कपिलापञ्चगव्येन सुरसिन्धुजलेन वा । मां च संस्नाप्य चाभ्यर्च्यमल्लोकमधिग
कुशोदकाद्गन्धजलं तस्मात्तीर्थोदकं वरम् । तीर्थेभ्यश्च जलं दर्शे महीसागरसम

कपिलांदत्त्वायदाप्नोतितत्फलंकलशेपृथक्।मृत्ताम्ररौप्यसौवर्णैःक्रमाच्छतगुणंफलम्
श्रीखण्डागरुकाश्मीरशशिनः क्रमशोऽधिकाः।
मां च तैश्च समालभ्य स्याच्छ्रीमान्सुभगः सुखी ॥ २२ ॥
प्रशस्तोगुग्गुलोधूपस्तस्माच्चन्द्रोऽगरुर्वरः। धूपानेतान्नरोदत्त्वासुखंस्वर्गमवाप्नुयात्
दीपदः कीर्तिमाप्नोति चक्षुरुत्तममेव च। नैवेद्यस्य प्रदानेन नरोमृष्टाशनो भवेत् ॥
पुष्पेण हेमकर्णस्य प्रवद्धेन द्विसंगुणम्। फलमाप्नोति पुरुषः सत्यसंधश्च जायते ॥
अखण्डैर्बिल्वपत्रैश्च पुष्पैर्वा विविधैरपि। लिङ्गं प्रपूरणं कृत्वा लक्षमेकं वसेद्दिवि ॥
यस्तु पुष्पगृहं कुर्यान्नरः शुद्धाशयो भवेत्। पुष्पकेण विमानेन दिवि संक्रीडते चिरम्
भूषणाम्बरदानेन नरो भवति भोगभाक्। सच्चामरप्रदानेन जायते पार्थिवो नरः ॥
रम्यं वितानं यो दद्याच्छत्रुभिर्नाऽभिभूयते। गीतंवाद्यंप्रनृत्यंचकृत्वाशुद्धोव्रजेत्समाम्
शङ्खघण्टाप्रदानेन विद्वान्भवति शब्दवान्। विधाय रथयात्रां च चिरं शोकैः प्रमुच्यते
नमस्कारं प्रणामं च कृत्वा जायेन्महाकुले। वाचयंश्चाग्रतः शास्त्रं मम ज्ञानी प्रजायते
विमुच्यते मनोमोहैर्भक्त्या स्तुत्वा च मां नरः।
गोदानफलमाप्नोति निर्माल्यस्फेटनान्मम ॥ ३२ ॥
आरार्तिकं भ्रामयित्वाआर्तिहीनःप्रजायते। कृत्वा शीतलिकां तापैर्मुच्यतेदोषसम्भवैः
नत्वा दत्त्वाऽथ शक्त्याच दानं लिङ्गस्य सन्निधौ। फलं शतगुणंप्राप्यइहचामुत्रमोदते
प्रणामात्पञ्चदश च स्नानाद्विंशतिं पूजया। शतं यथाप्रोक्तविधेरपराधानहं क्षमे ॥
एतत्सर्वं यथोद्दिष्टंकुमाराऽत्रभविष्यति। ये मां प्रपूजयिष्यन्ति कुमारेश्वरसंस्थितम्
वाराणस्यां यथा वत्स ! विश्वनाथोऽस्मि संस्थितः ॥ ३७ ॥
गुहक्षेत्रे तथा स्थास्ये कुमारेश्वरमध्यतः ॥ ३८ ॥
श्रुत्वेति वचनं रुद्राद्देवानां शृण्वतांगुहः। विस्मितःप्रणिपत्यैनं तुष्टाव गिरिजापतिम्
नमः शिवायाऽस्तु निरामयाय नमः शिवायाऽस्तु मनोमयाय।
नमः शिवायाऽस्तु सुरार्चिताय तुभ्यं सदा भक्तकृपापराय ॥ ४० ॥
नमो भवायाऽस्तु भवोद्भवाय नमोऽस्तु ते ध्वस्तमनोभवाय।

नमोऽस्तु ते गूढमहाव्रताय नमोऽस्तु मायागहनाश्रयाय ॥ ४१ ॥
नमोऽस्तु शर्वाय नमः शिवाय नमोऽस्तु सिद्धाय पुरातनाय।
नमोऽस्तु कालाय नमः कलाय नमोऽस्तु ते कालकलातिगाय ॥ ४२ ॥
नमो निसर्गात्मकभूतिकाय नमोऽस्त्वमेयोक्षमहर्द्धिकाय।
नमः शरण्याय नमोऽगुणाय नमोऽस्तु ते भीमगुणानुगाय ॥ ४३ ॥
नमोऽस्तु नानाभुवनाधिकर्त्रे नमोऽस्तु भक्ताभिमतप्रदात्रे।
नमोऽस्तु कर्मप्रसवाय धात्रे नमः सदा ते भगवन्सुकर्त्रे ॥ ४४ ॥
अनन्तरूपाय सदैव तुभ्यमसह्यकोपाय सदैव तुभ्यम्।
अमेयमानाय नमोऽस्तु तुभ्यं वृषेन्द्रयानाय नमोऽस्तु तुभ्यम् ॥ ४५ ॥
नमः प्रसिद्धाय महौषधाय नमोऽस्तु ते व्याधिगणापहाय।
चराचरायाऽथ विचारदाय कुमारनाथाय नमः शिवाय ॥ ४६ ॥
ममेश भूतेश ! महेश्वरोऽसि कामेश वागीश बलेश धीश।
क्रोधेश मोहेश परापरेश नमोऽस्तु मोक्षेश गुहाशयेश !॥ ४७ ॥

इति संस्तूय वरदं शूलपाणिमुमापतिम्। प्रणिपत्य उमापुत्रो नमोनम उवाच
एवं भक्तिपराक्रान्तमात्मयोग्यं स्तवं शिवः। अभिनन्द्य चिरंकालमिदं वचनम
त्वयादुःखंनसञ्चिन्त्यंममभक्तवधात्मकम्। कर्मणाऽनेनश्लाघ्योऽसिमुनीनामपिपु
येच सायंतथाप्रातस्त्वत्कृतेनस्तवेनमाम्। स्तोष्यन्तिपरयाभक्त्याश्रृणुतेषांचयत्
न व्याधिर्नच दारिद्र्यं नचैवेष्टवियोजनम्। भुक्त्वाभोगान्दुर्लभांश्चममयास्यन्ति
तथान्यानपि दास्यामि वरान्परमदुर्लभान्। भक्त्या तवाऽतितुष्टोऽहंप्रीत्यर्थंतवपु
महीसागरकूले तु ये मां स्तोष्यन्ति पूजया। तेषां तदक्षयं सर्वं वैशाख्यांदानपू
सरस्यत्र च ये स्नानं प्रकरिष्यन्ति मानवाः। सर्वतीर्थफलावाप्तिर्वैशाख्यांप्रभवि
कुमारेशं तु मां भक्त्या महीसागरसङ्गमे। स्नात्वासम्पूजयेन्नित्यंतस्यजातिस्मृति

जातिस्मृतिरियं पुत्र ! यस्यां जातौ प्रजायते।
स्मरतेऽस्याः प्रकर्तव्यं श्रेयोरूपं सुदुर्लभम् ॥ ५७ ॥

यस्मिन्काले ह्यनावृष्टिर्जायते कृत्तिकासुत । स्नापयेद्विधिवन्मां च कलशैर्विविधैःशुभैः
एकरात्रं त्रिरात्रं वा पञ्चरात्रं च सप्त वा । स्नापयेद्गन्धतोयेन कुङ्कुमेन विलेपयेत् ॥
करवीरै रक्तपुष्पैर्जपापुष्पैस्तथैव च । अर्चयेत्पुष्पमालाभिः परिधायाऽरुणवाससी ॥
भोजयेद्ब्राह्मणांश्चैव तापसाञ्छंसितव्रतान् । लक्षहोमं प्रकुर्वीत शिवहोमं ग्रहादिकम्
भूमिदानं ततःकुर्यात्ततोदद्याद्गवाह्निकम् । आघोषयेच्छिवांशान्तिरुद्रजाप्यंहि कारयेत्
अनेनैव विधानेन कृतेन तु द्विजोत्तमैः । अगर्भितास्तदा मेघा वर्षन्ते नाऽत्र संशयः ॥
विविधैः पूर्यते धान्यैः शाद्वलैश्च वसुन्धरा । आरोग्यं हि भवेच्चैवजने गोपकुलेतथा
धर्मयुक्तो भवेद्राजा परचक्रैर्न पीड्यते । घृतेन स्नापयेन्मां च अर्कक्रान्तौ नरोऽत्र यः॥

कन्यादानफलं तस्य नाऽत्र कार्या विचारणा ।
क्षीरेण स्नापयेद्देवं तथा पञ्चामृतेन यः ॥ ६६ ॥

अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं तस्योपजायते । कुमारेश्वरतीर्थे यः प्राणत्यागं करोति हि
रुद्रलोके वसेत्तावद्यावदाभूतसंप्लवम् । अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ६८॥
पौर्णमास्याममावास्यां सङ्क्रान्तौ वैधृते तथा । कुमारेशंनरःस्नात्वामहीसागरसङ्गमे
भक्त्या योऽभ्यर्चयेन्मांचतस्यपुण्यफलंशृणु । यन्महीतलतीर्थेषु स्नानेस्यात्तुमहत्फलम्

यच्चार्चितेषु लिङ्गेषु सर्वेषु स्यात्फलं च तत् ।
आरोग्यं पुत्रलाभं च धनलाभं सुखं सुतम् ॥ ७१ ॥

निश्चितं लभते मर्त्यः कुमारेश्वरसेवया । ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा यस्तिष्ठेदत्र तापसः॥
परं पाशुपतंयोगं प्राप्य याति लयं मयि । पापात्मनांचमर्त्यानांसद्योऽस्मिफलदर्शकः

दिव्येनाऽष्टविधेनाऽत्र कोशः साधारणोऽत्र च ।
अघोराद्यैः पञ्चमन्त्रैः स्नाप्य लिङ्गं महोज्ज्वलम् ॥ ७४ ॥

अघोरेणैव तत्तोयं दद्याद्दिव्यस्य कारणे । पिबेदेतदुदीर्यादौ प्रसृतित्रयमेव च ॥ ७५ ॥
यदिधर्मस्तथासत्यमीश्वरोऽत्रजगत्त्रये । कोशपानात्फलंसद्योद्रक्ष्याम्यस्मिशुभाशुभम्
यास्ये चेति कुलं हन्याद्गमने च कुटुम्बकम् । दर्शने च शुभं पाने हन्याद्देहं च मिथ्यया
त्रिभिर्दिनैस्त्रिभिःपक्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिःसमैः । अत्युग्रपुण्यपापानां मानेन फलमश्नुते

एते वरा मया लिङ्गे दत्ताऽत्रस्थापितेत्वया । तवप्रीत्यभिवृद्ध्यर्थंब्रूहिभूयोऽप्युमा

स्कन्द उवाच

कृतकृत्यो वरैर्दत्तैस्त्वया चैतैर्महेश्वर !। नमोनमोनमस्तेऽस्तु नात्रत्याज्यं त्वया

एवं प्रणम्य देवं स मातरं प्रणतोऽब्रवीत् । त्वयापिमातर्नैवात्रत्याज्यंमम प्रिये

त्वामप्यत्र स्थापयिष्ये वरदा भव पार्वति ! ॥ ८२ ॥

श्रीदेव्युवाच

यत्र शर्वः स्वभावेन तत्र तिष्ठाम्यहं सुत !॥ ८३ ॥

तव भक्त्या विशेषेण स्थास्ये स्त्रीणां वरप्रदा । युद्धेषु तव कर्माणिरुद्रभक्तेपुते

पश्यन्ती पुत्रिणांमुख्याप्रीणिताचभृशंत्वया । गर्भक्लेशःस्त्रियोमन्येसाफल्यंभजते

सुतो यदा रुद्रभक्तः सानन्दं सद्भिरीर्यते । भव तस्मात्प्रियार्थाय तिष्ठाम्यत्र पड

स्त्रीभिराराधिता दास्ये सौभाग्यं सुपतिं सुतान् ।

चैत्रे चाऽपि तृतीयायां स्नात्वा शीतेन वारिणा ॥ ८७ ॥

अर्चयिष्यन्तिमांयाश्चपुष्पैर्धूपैर्विलेपनैः । दास्यामिचाष्टसौभाग्यं या नारीभक्ति

पितरौ श्वशुरौ पुत्रान्पतिं सौभाग्यसम्पदः । कुङ्कुमं पुष्पश्रीखण्डं ताम्बूलाञ्जनमि

सप्तमं लवणं प्रोक्तमष्टमं च सुजीरकम् । तोलयेत्तुलया वापि साङ्घ्रिश्च तुलिता

सुवर्णनाऽथसौगन्ध्यद्रव्यैःशुभफलैरपि । भुङ्क्ते वा लवणं पश्चान्नासौवैविधवा

माघे वा कार्तिके वाऽपि चैत्रे स्नात्वाऽर्चयेत माम् ।

दौर्भाग्यदुःखदारिद्र्य र्न सा संयोगमाप्नुयात् ॥ ९२ ॥

श्रुत्वेति गिरिजावाचं सानन्दः पार्वतीसुतः ।

स्थापयित्वा गिरिसुतां कपर्दिनमथाऽब्रवीत् ॥ ९३ ॥

पुष्पैर्धूपैर्मोदकैश्च पूर्वमभ्यर्च्य त्वां प्रभो । पूजयन्ति कुमारेशं तेषां विघ्नहरो भव

कपर्द्युवाच

भ्रातस्त्वया स्थापितेऽस्मिँल्लिङ्गे भक्ताश्च ये नराः ।

न तेषां मम विघ्नानि मम वागनुगामिनी ॥ ९५ ॥

एवमुक्ते विघ्नराज्ञाप्रतीतेऽस्थापयच्चतम् । तस्मादसौसदाऽभ्यर्च्यश्चतुर्थ्यां च विशेषतः

एवं स्थाप्य कुमारेशं लब्ध्वा चैतान्वराञ्छिवात् ।
मनसा कृतकृत्यं चाऽऽत्मानं मेने षडाननः ॥ ६७ ॥

तस्थावंशेन तत्रैवकुमारेश्वरसन्निधौ । अत्र स्थितं कुमारं ये पश्यन्तिस्वामियात्रिणः
सफलास्वामियात्रा च तेषांभवतिभारत । कार्तिक्यां च विशेषेणकार्तिकेयंसमर्चयेत्
यत्फलं स्वामियात्रायांतत्फलं समवाप्नुयात् । एवंविधमिदंपार्थमहीसागरसंगमम्
निमित्तीकृत्यचात्मानंसाध्वर्थेलिङ्गमर्चितम् । रोगाभिभूतो रोगैर्वानाम्नामष्टोत्तरंशतम्
जप्त्वा शुचिर्ब्रह्मचारी मासं मुच्येत पातकात् । एतदाराध्यसञ्जातारजिरामादयःपुरा
शतसंख्यावलंराज्यंरुद्रलोकं च भेजिरे । जामदग्न्यस्त्विदंलिङ्गमाराध्य च समायुतम्
लेभे कुठारमुज्ज्वलं येनार्जुनभुजान्युधि । अग्रतो देवदेवस्य ज्ञात्वा तीर्थे महागुणान् ॥

रामेश्वरमिति ख्यातं स्थापितं लिङ्गमुत्तमम् ।
तच्च योऽभ्यर्चयेद्भक्त्या रुद्रलोकं स गच्छति ॥ १०५ ॥

प्रोतः स्यात्तस्य रामश्च कुमारेशश्च फाल्गुन । इति संक्षेपतःप्रोक्तं कुमारेशस्यवर्णनम्
कुमारेशस्य माहात्म्यं कीर्तयेद्यस्तदग्रतः । ये च शृण्वन्त्यनुदिनं रुद्रलोके वसन्ति ते॥
अस्य लिङ्गस्यमाहात्म्यंश्राद्धकाले तु यः पठेत् । पितॄणामक्षयंश्राद्धंजायतेनाऽत्रसंशयः

अस्य लिङ्गस्य माहात्म्यं गुर्विणीं श्रावयेद्यदि ।
गुणवाञ्जायते पुत्रः कन्या चाऽपि पतिव्रता ॥ १०६ ॥

एतत्पुण्यं पापहरं धर्म्यं चाह्लादकारकम् । पठतां शृण्वतां चापि सर्वाभीष्टफलप्रदम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कुमारेशस्थापनपूर्वकमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

———

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

स्तम्भेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

नारद उवाच

कुमारेण स्थापितोऽत्र कुमारेशस्ततः सुराः । प्रणम्य गुहमूचुश्च प्रवद्धकरसम्पुटाः
किञ्चिद्विज्ञापयिष्यामो वयंत्वां शृणुतत्त्वतः । पूर्वप्रसिद्धआचारःप्रोच्यतेजयिना
जयन्ति ये रणे शत्रूंस्तैः कार्यः स्तम्भचिह्नकः ।
तस्मात्तव जयोद्द्योतनिमित्तं स्तम्भमुत्तमम् ॥ ३ ॥
निक्षिपाम वयं यावत्त्वमनुज्ञातुमर्हसि । विश्वकर्मकृतं यच्च तृतीयं लिङ्गमुत्तमम् ।
तस्यस्तम्भाग्रतस्तं च संस्थापयशिवात्मज । एवमुक्ते सुरैःस्कन्दस्तथेत्याहमहा
ततो हृष्टाः सुरगणाःशक्राद्याःस्तम्भमुत्तमम् । जाम्बूनदमयं शुभ्रं रणभूमौविनि
परितः स्थण्डिलं दिक्षु सर्वरत्नमयन्तु ते । तत्र हृष्टाश्चाप्सरसो ननृतुर्दशधा
मातरोमङ्गलान्यस्यजगुःस्कन्दस्यनन्दिताः । इन्द्राद्या ननृतुस्तत्रस्वयंविष्णुश्चवा
पेतुः खात्पुष्पवर्षाणिदेववाद्यानिसस्वनुः । एवं स्तम्भंसमारोप्यजयाख्यंविश्व
स्तम्भेश्वरस्ततो देवः स्थापितस्त्र्यक्षसूनुना । विरिञ्चिप्रमुखैर्देवैर्जातानन्दैः समं
हरिहरादित्ययुक्तैस्तैः सेन्द्रैर्मुनिगणैरपि । तस्यैव पश्चिमे भागे शक्त्यग्रेण महा
गुहेन निर्मितः कूपो गङ्गा तत्रतलोद्भवा । माघस्य च चतुर्दश्यां कृष्णायांपितृ
कूपे स्नानं नरः कृत्वा भक्त्या यः पाण्डुनन्दन ! ।
गयाश्राद्धेन यत्पुण्यं तत्फलं लभते स्फुटम् ॥ १३ ॥
स्तम्भेश्वरं ततो देवं गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत् । वाजपेयफलं प्राप्य मोदते रुद्रस
पौर्णमास्याममावास्यांमहीसागरसङ्गमे ।
श्राद्धं कृत्वा च योऽभ्यर्च्चेत्स्तम्भेश्वरमकल्मषः ॥ १५ ॥
पितरस्तस्यतृप्यन्तितृप्तायच्छन्ति चाऽऽशिषः । सभित्त्वासर्वपापानिरुद्रलोकेमही

इत्याह भगवान्रुद्रः स्कन्दस्य प्रीतये पुरा । एवमेव चतुर्थं च स्थापितंलिङ्गमुत्तमम्
प्रणेमुर्देवताः सर्वे साधुसाध्विति ते जगुः ॥ १८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे स्तम्भेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

पञ्चलिङ्गोपाख्याने सिद्धेश्वरलिङ्गस्थापनम्

नारद उवाच

एवं दृष्ट्वा क्षितौ तानिलिङ्गानि हरसूनुना । हरिब्रह्मेन्द्रप्रमुखा देवाः प्रोचुः परस्परम्
अहो धन्यः कुमारोऽयं महीसागरसङ्गमे । येन चत्वारिलिङ्गानिस्थापितानिसुदुर्लभे
वयमप्यत्र शुद्ध्यर्थंतोषार्थंस्कन्दरुद्रयोः । साध्वर्थंचात्मलाभायकुर्मोलिङ्गपरम्पराम् ॥
अथवा कोटिशोदेवा मुनयो नैवसंख्यया । सर्वे चेत्स्थापयिष्यन्तिलिङ्गान्यत्रमहीतटे
पूजा तेषां कथं भावि बहुत्वाच्चाऽत्र पठ्यते । यस्य राष्ट्रे रुद्रलिङ्गं पूज्यते नैवशक्तितः
तस्यसीदतितद्राष्ट्रं दुर्भिक्षव्याधितस्करैः । सम्भूयस्थापयिष्यामोलिङ्गमेकंततःशुभम्
इति कृत्वा मतिं सर्वेप्राप्यानुज्ञां महेश्वरात् । प्रहर्षिता गुहश्चैव हरिब्रह्ममुखाः सुराः ॥
भूमिभागं शुभं वीक्ष्य विजने लिङ्गमुत्तमम् ।
स्थापयामासुरथ ते स्वयं ब्रह्मविनिर्मितम् ॥ ८ ॥
सिद्धार्थैःस्थापितं यस्माद्देवैर्ब्रह्मादिभिःस्वयम् । सिद्धेश्वरमितिप्राहनामलिङ्गस्यवैगुहः
सर्वैर्देवैस्तत्र लिङ्गे खानितं सर उत्तमम् । सर्वतीर्थोदकैः शुभ्रैः पूरितं च महात्मभिः
एतस्मिन्नन्तरे पार्थ पातालाच्छेषनन्दनः । कुमुदोनाम आगत्य प्राह शेषाहिपन्नगान्
अस्मिंस्तारकयुद्धे तु प्रलम्बो नाम दानवः ।
पलायित्वा स्कन्दभीत्या पापः पातालमाविशत् ॥ १२ ॥

स वो वसूनि पुत्रांश्च भार्याः कन्या गृहाणि च।
विध्वंसयति नागेन्द्राः शीघ्रं धावत धावत ॥ १३ ॥

शेषात्मजस्य तद्वाक्यं कुमदस्य निशम्यते। औत्सुक्यमापुर्नागेन्द्रायामयामेति
तान्निवार्यततःस्कन्दःक्रुद्धःशक्तिमथाददे । पातालायमुमोचाथप्रोच्यदैत्योनिह
ततः स्कन्दभुजोत्सृष्टा भुवं निर्भिद्य वेगतः। प्रविष्टा सहसा शक्तिर्यथा दैवं
सा तं हत्वा प्रलम्बंचकोटिभिर्दशभिर्वृतम्। नन्दयित्वागता नागाञ्जलकल्लोल
यान्त्या शक्त्या तया पार्थ तत्कृतं विवरं भुवि। पातालगङ्गातोयेन पूरितंपापह
तस्य नामददौस्कन्दः सिद्धकूपइतिस्मृतः। कृष्णाष्टम्यांचतुर्दश्यामुपवासीनर
स्नात्वा कूपेऽर्चयेदीशं सिद्धेश्वरमनन्यधीः। प्रभूतभवसम्भूतपापं तस्य विर्

सिद्धकुण्डे च यः स्नात्वा श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः।
सर्वकल्मषनिर्मुक्तो भक्तियोग्यो भवे भवे ॥ २१ ॥

वटश्चाऽप्यक्षयस्तस्य तुष्टो रुद्रो वरं ददौ। प्रयागवटतुल्योऽयमेतत्सत्यं न सं
अत्राऽऽगत्यमहाभागः श्राद्धंकुर्यात्सुभक्तितः। पितॄणामक्षयं तच्चसर्वेषांपिण्डपा
ततोब्रह्मादयोदेवाःस्कन्देनसहितास्तदा। सिद्धाम्बिकांमहाशक्तिंप्रार्थयामासुरी
त्वयाविष्टो हि भगवान्मत्स्यरूपी जनार्दनः। जगदुद्धारणार्थाय चक्रे कर्माण्यने
इति तां प्रार्थयामासुरत्रत्याज्यं न ते शुभे !। अत्र स्थिताः सर्वइमेक्षेत्रपालामहा
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां बलिपुष्पैश्चत्वांशुभे !। ये पूजयन्तितेपाल्याःसर्वापत्सु

एवमुक्ता सिद्धमाता तथेति प्रत्यपद्यत।
स्थापयामासुरथ तां लिङ्गादुत्तरभागतः ॥ २८ ॥

ततः क्षेत्रपतीन्देवाश्चतुः षष्टिं महेश्वरम्। सिद्धेयं नामक्षेत्रस्य रक्षार्थं निदधुः स
त्वां च ये पूजयिष्यन्ति कार्यारम्भेषु सर्वदा। वर्षेवर्षे राजमाषबलिना च विशे
तानसौ पालयेत्तुष्टःपितालोकानिवस्वकान्। ततःसिद्धकृतोदेवास्तत्रसिद्धिविनाय
कपर्दितनयं प्रार्थ्यस्थापयाञ्चक्रिरे मुदा। तं च ये पूजयन्त्यत्र कार्यारम्भेषु सर्व
तेषां सिद्धिं ददात्येष प्रबलो विघ्नराड्भवः। यद्यत्र पूजयेद्यस्तु सततं सिद्ध

पश्येद्वा स्मरते वाऽपि सर्वदोषैर्विमुच्यते ।
सिद्धेश्वरः सिद्धवटश्च साक्षात्सिद्धाम्बिका सिद्धविनायकश्च ।
सिद्धेयक्षेत्राधिपतिश्च सिद्धसरस्तथा सिद्धकूपश्च सप्त ॥ ३५ ॥
अत्र तुष्टो ददौ रुद्रः सुराणांदुर्लभान्वरान् । वैशाखमासस्याष्टम्यां कृष्णायांसिद्धकूपके
स्नात्वापिण्डान्वटे कृत्वा पूजयन्मां च सिद्धभाक् ।
सदा योऽभ्यर्चयेन्मां च ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ ३७ ॥
अष्टाविघ्नकरा नित्यं भवेयुस्तस्य सिद्धयः । मन्त्रजाप्यं वलिं होममत्र यः कुरुते नरः
एकचित्तः शुचिर्भूत्वा सोऽभीष्टां सिद्धिमाप्नुयात् ।
समाहितमनाश्चाऽथ सिद्धेशं यस्तु पश्यति ॥ ३९ ॥
तस्य सिद्धिर्भवत्येवविघ्नैर्यदि नहन्यते । सिद्धाम्बिकामहादेवीह्यत्रसंनिहिताऽस्तिया
सिद्धिदासाधकेन्द्राणांमहाविद्यांजपन्ति ये । धीरेभ्योब्रह्मचारिभ्यःसत्यचित्तेभ्यएवच
मन्त्रजाप्याद्ददात्येषासर्वसिद्धीर्यथेप्सिताः । पातालस्य विलंचैतद्गुहशक्त्याकृतमहत्
सिद्धाम्बिकाप्रसादेन विघ्नक्षेत्रपयोर्मम । प्रत्यक्षं भविता यत्र नानाश्चर्याणि भूरिशः ॥
अत्रसिद्धिं प्रयास्यन्ति कोटिशःपुरुषाःसुराः । विद्याधरत्वंदेवत्वंगन्धर्वत्वंचनागता॥
यक्षत्वंचामरत्वंचप्राप्स्यन्त्यत्रचसाधकाः । अत्र वै विजयोनामस्थण्डिलस्यप्रभावतः
सिद्धाम्बिकां समाराध्य सिद्धिमाप्स्यति दुर्लभाम् ।
यो मां द्रक्ष्यति चाऽत्रस्थं यच्च मां पूजयिष्यति ।
वादप्रचारतो वाऽपि पुण्यावाप्तिर्भविष्यति ॥ ४६ ॥

नारद उवाच

त्र्यम्बकेण वरेष्वेवं दत्तेष्वपि सुरोत्तमाः ॥ ४७ ॥
प्रहृष्टाः समपद्यन्त गाथां चेमां जगुस्तदा । तेनयज्ञैर्जपैःस्तोत्रैस्तपोभिस्तोषितावयम्
सर्वेदेवाः सिद्धलिङ्गं यो नरः पूजयिष्यति । सर्वकामफलावाप्तिरित्येवंशङ्करोऽब्रवीत्
इत्युक्त्वातेजयंप्राप्ताःस्कन्देनसहिताःसुराः । कारय्यरम्यप्रासादान्रम्यैस्तारकसम्भवैः
चतुर्वर्गफलावाप्तिं दत्त्वा क्षेत्रस्य संययुः । केचित्स्कन्दं प्रशंसन्तस्तीर्थमन्ये हरिं परे

केचिल्लिङ्गानिपश्चाऽपियुद्धंकेचिद्दिवंययुः। ततोऽन्तरिक्षेचालिङ्ग्यमहासेनंहरो
सप्तमे मारुतस्कन्धे वस नित्यं प्रियात्मज । कार्येष्वहं त्वयापुत्रसम्प्रष्टव्यः स
दर्शनान्ममभक्त्याचश्रेयःपरमवाप्स्यसि। स्तम्भतीर्थेचवत्स्येऽहंनविमोक्ष्यामि
इत्युक्त्वा विससर्जैनं परिष्वज्य महेश्वरः । ब्रह्मविष्णुमुखांश्चैव भक्त्यातैरभि
विसर्जिताःसुराजग्मुःस्वानिस्वान्यालयानि च । शर्वोजगामकैलासंस्कन्धंवैस

इत्येतत्कथितं पार्थ लिङ्गपञ्चकसम्भवाम् ।
यः पठेत्स्कन्दसम्बद्धां कथां मर्त्यो महामतिः ॥ ५७ ॥

शृणुयाच्छ्रावयेद्वाऽपिसभवेत्कीर्तिमान्नरः । बह्वायुःसुभगःश्रीमान्कान्तिमाञ्छुभ
भूतेभ्यो निर्भयश्चाऽपि सर्वदुःखविवर्जितः । शुचिर्भूत्वा पुमान्यश्च कुमारेश्वरसं
शृणुयात्स्कन्दचरितंमहाधनपतिर्भवेत् । बालानां व्याधिदुष्टानांराजद्वारोपसे
इदं तत्परमं धन्यं सर्वदोषहरं सदा । तनुक्षये च सायुज्यं षण्मुखस्य व्रजेन्नरः

वरमेनं ददुर्देवाः स्कन्दस्याऽथ गता दिवम् ।

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर
कौमारिकाखण्डे पञ्चलिङ्गोपाख्यानसमाप्तिवर्णनंनाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

———

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

बर्बरीतीर्थापरनामककुमारिकातीर्थवर्णनम्

श्रीनारद उवाच

बर्बरीतीर्थमाहात्म्यमथो वक्ष्यामितेऽर्जुन !। यथा बर्बरिका जाताशतश्रृङ्गनृपात्म
कुमारिकेति विख्याता तस्या नाम्नाप्रकथ्यते । इदंकौमारिकाखण्डंचतुर्वर्गफल
यया कृता पृथिव्यांच नानाग्रामादिकल्पना । इदं भरतखण्डं चययासम्यक्प्रकल्पि

धनञ्जय उवाच

महदेतत्समाश्चर्यं श्रोतव्यं परमं मुने !। कुमारीचरितं सर्वं ब्रूहि मह्यं सविस्तरम् ॥४॥
कथं विश्वमिदं जातं कर्मजातिप्रकल्पितम् । कथं वा भारतं खण्डं शुश्रूषेय सदा मम

नारद उवाच

अव्यक्तेऽस्मिन्निरालोके प्रधानपुरुषावुभौ । अजौ समागतावेकौ केवलं शृणुमो वयम्
ततः स्वभावकालाभ्यां स्वरूपाभ्यां समीरितम् । ईक्षणेनैव प्रकृतेर्महत्तत्त्वमजायत ॥
महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणादहन्तत्त्वं व्यजायत । त्रिधा तन्मुनिभिःप्रोक्तंसत्त्वराजसतामसम्
तामसात्पञ्चजातानि तन्मात्राणिविदुर्बुधाः । तन्मात्रेभ्यश्चभूतानिविशेषाःपञ्चतद्भवाः
सात्त्विकाच्चाप्यहङ्काराद्विद्विकर्मेन्द्रियाणि च । एकादशंमनश्चैव राजसंच द्वयोर्विदुः
चतुर्शितितत्त्वानि जातानीति पुरा विदुः । सदाशिवेन वै पुंसा तानि दृष्टानि भारत
बुद्बुदाकारतां जग्मुरण्डं जातं ततः शुभम् । शतकोटिप्रमाणं च ब्रह्माण्डमिदमुच्यते

आत्माऽस्य कथितो ब्रह्मा व्यभजत्स त्रिधा त्विदम् ।
ऊर्ध्वं तत्र स्थिता देवा मध्ये चैव च मानवाः ॥ १२ ॥

नागादैत्याश्च पाताले त्रिधैतत्परिकल्पितम् । एकैकं सप्तधाभूयततस्तेनप्रकल्पितम् ॥
पातालानिचद्वीपानिस्वर्लोकाःसप्तसप्तच । सप्त द्वीपानि वक्ष्यामिशृणुतेषांप्रकल्पनाम्
लक्षयोजनविस्तारं जम्बूद्वीपं प्रकीर्त्यते । सूर्यबिम्बसमाकारं तावत्क्षारार्णवावृतम् ॥
शाकद्वीपं द्विगुणतो जम्बूद्वीपात्ततः परम् । तावता क्षीरतोयेन समुद्रेण परीवृतम् ॥
सुरातोयेन दैत्यानां मोहकार्यर्णवेन हि । पुष्करं तु ततो द्वीपं द्विगुणंतावता वृतम् ॥
कुशद्वीपंद्विगुणतस्ततस्तत्परतः स्मृतम् । दधितोयेन परितस्तावदर्णवसम्भृतम् ॥१६
ततः परं क्रौञ्चसञ्ज्ञंद्विगुणं हि घृताब्धिना । ततः शाल्मलिद्वीपं च द्विगुणंतावतैव च
इक्षुसारस्वरूपेण समुद्रेण परीवृतम् । गोमेदं तस्य परितो द्विगुणं तावता वृतम् ॥
स्वादुतोयेन रम्येण समुद्रेण समन्ततः । एवं कोटिद्वयं पार्थ लक्षपञ्चाशतत्रयम् ॥
पञ्चाशच्च सहस्राणि सप्तद्वीपाःससागराः । दशोत्तराणि पञ्चैवअङ्गुलानां शतानि च
अपांवृद्धिक्षयो दृष्टः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः । ततो हेममयी भूमिर्दशकोट्यःकुरूद्वह !॥

देवानां क्रीडनस्थानं लोकालोकस्ततः परम् । पर्वतो वलयाकारोयोजनायुत
अस्य बाह्ये तमो घोरं दुष्प्रेक्ष्यं जीववर्जितम् ।
पञ्चत्रिंशत्स्मृताः कोट्यो लक्षाण्येकोनविंशतिः ॥ ३६ ॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि योजनानां च फाल्गुन । सप्तसागरमानस्तु गर्भोदस्तद
कोटियोजनविस्तारः कटाहः सम्व्यवस्थितः । ब्रह्मणोऽण्डं कटाहेनसंयुक्तमे
पञ्चाशत्कोटयो ज्ञेया दशदिक्षु समन्ततः । जम्बूद्वीपस्य मध्ये तु मेरुनामाऽस्ति
स लक्षयोजनो ज्ञेयोह्यधश्चोर्ध्वं प्रमाणतः । षोडशैव सहस्राणि योजनानामध
उच्छ्रयश्चतुराशीतिर्द्वात्रिंशन्मूर्ध्निविस्तृतः । त्रिभिःशृङ्गैःसमायुक्तःशरावाकृति
मध्यशृङ्गेब्रह्मवास ऐशान्यां त्र्यम्बकस्य च । नैर्ऋत्ये वासुदेवस्य हेमशृङ्गं च
रत्नजं शङ्करस्याऽपि राजतं केशवस्यच । मेरुदिक्षु चतसृषु विष्कम्भा गिरयः
पूर्वेण मन्दरोनाम दक्षिणे गन्धमादनः । विपुलः पश्चिमो ज्ञेयः सुपार्श्वस्तु
कदम्बो मन्दरे ज्ञेयो जम्बुर्वै गन्धमादने । अश्वत्थो विपुले चैव सुपार्श्वे च
एकादशशतायामाश्चत्वारो गिरिकेतवः । एतेषां सन्ति चत्वारि वनानि
पूर्वं चैत्ररथं नाम दक्षिणे गन्धमादनम् । वैभ्राजं पश्चिमे ज्ञेयमुदक्चित्ररथं
सरांसिचापि चत्वारिचतुर्दिक्षु निबोधमे । प्राच्येऽरुणोदसञ्ज्ञन्तु मानसंदक्षि
प्रत्यक्छीतोदकंनाम उत्तरे च महाह्रदः । विष्कंभगिरयो ह्येत उच्छ्रितः पञ्च
योजनानां सहस्राणि सहस्रं पिण्डतः स्मृतम् ।
अन्ये च सन्ति बहुशस्तत्र वै केसराचलाः ॥ ४० ॥
मेरोर्दक्षिणतश्चैव त्रयो मर्यादपर्वताः । निषधो हेमकूटश्च हिमवानिति ते
लक्षयोजनदीर्घाश्च विस्तीर्णाद्विसहस्रकम् । त्रयश्चोत्तरतोमेरोर्नीलःश्वेतोऽथ
माल्यवान्पूर्वतो मेरोर्गन्धाख्यः पश्चिमे तथा । इत्येते गिरयःप्रोक्ताजम्बुद्वीपे
गन्धमादनसंस्थाया महागजप्रमाणतः । फलानिजम्ब्वास्तन्नाम्नाजम्बूद्वीपमिति
आसीत्स्वायम्भुवोनाममनुराद्यःप्रजापतिः । आसीत्स्त्री शतरूपा तामुदुवोढप्र
प्रियव्रतोत्तानपादौ तस्याऽऽस्तां तनयावुभौ ॥ ४५ ॥

ध्रुवश्चोत्तानपादस्यपुत्रःपरमधार्मिकः । भक्त्या स विष्णुमाराध्यस्थानंचैवाऽक्षयंगतः
प्रियव्रतस्य राजर्षेरुत्पन्ना दश सूनवः । त्रयः प्रव्रजितास्तत्र परम्ब्रह्म समाश्रिताः ॥
सप्त सप्तसु द्वीपेषु तेन पुत्राः प्रतिष्ठिताः । जम्बूद्वीपाधिपो ज्येष्ठआग्नीध्र इति विश्रुतः

तस्यासंन्नव सुताः पार्थ नववर्षेश्वराः स्मृताः ।
तेषां नाम्ना च ते वर्षास्तिष्ठन्त्यद्याऽपि चाङ्किताः ॥ ४९ ॥

योजनानां सहस्राणि नव प्रत्येकशःस्मृताः । मेरोश्चतुर्दशं खण्डं गन्धमाल्यवतोर्द्वयोः
अन्तरे हेमभूमिष्ठमिलावृतमिहोच्यते । माल्यवत्सागरान्तस्य भद्राश्वमिति प्रोच्यते

गन्धवत्सागरान्तस्य केतुमालमिति स्मृतम् ॥ ५२ ॥

शृङ्गवज्जलधेरन्तः कुरुखण्डमितिस्मृतम् । शृङ्गवच्छ्वेतमध्ये च खण्डंप्रोक्तंहिरण्मयम्
सुनीलश्वेतयोर्मध्ये खण्डमाहुश्च रम्यकम् । निषधो हेमकूटश्च हरिखण्डं तदन्तरा ॥
हिमवद्धिमकूटान्तः खण्डं किंपुरुषंस्मृतम् । हिमाद्रिजलधेरन्तर्नाभिखण्डमितिस्मृतम्
नाभिखण्डं च कुरवो द्वे वर्षेधनुषाकृती । हिमवांश्चगिरिश्शृङ्गीज्यास्थानेपरिकीर्तितौ

नाभेः पुत्रश्च ऋषभ ऋषभाद्भरतोऽभवत् ।
तस्य नाम्ना त्विदं वर्षं भारतं चेति कीर्त्यते ॥ ५७ ॥

अत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च उपार्जनम् । अन्यत्र भोगभूमिश्च सर्वत्र कुरुनन्दन
शाकद्वीपे चशाकोऽस्तियोजनानांसहस्रकः । तस्यनाम्नाचतद्वर्षंशाकद्वीपमितिस्मृतम्
तस्य च प्रियव्रतएवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथिरिति ॥ ६० ॥

तस्य पुरोजवमनोजववेपमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूपविश्वचारसञ्ज्ञानि पुत्रनामानि
सप्त वर्षाणि ॥ ६१ ॥

शाकद्वीपे च वर्षे ऋतव्रतसत्यव्रतानुव्रतनामानो वाय्वात्मकं भगवन्तं जपन्ति
अन्तःप्रविश्यभूतानियोविभज्यात्मकेतुभिः । अन्तर्यामीश्वरःसाक्षात्पातुनोयद्वशेजगत्

॥ इति जपः ॥

कुशद्वीपे कुशस्तम्बो योजनानां सहस्रकः । तच्चिह्नचिह्नितं तस्मात्कुशद्वीपंततःस्मृतम्
तद्द्वीपपतिश्चप्रैयव्रतो हिरण्यरोमा तत्पुत्रवसुवसुदानदृढकविनाभिगुप्तसत्यव्रतावाम

देवानामाङ्कितानि सप्तवर्षाणि । वर्णाश्चकुलिशकोविदाभियुक्तकुलकसंज्ञाजाः
भगवन्तं स्तुवन्ति ॥ ६५ ॥

परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदासि हव्यवाट् । देवानां पुरुषांगानांयज्ञेन पुरुषं

॥ इति स्तुतिः ॥

क्रौञ्चद्वीपेक्रौञ्चनामापर्वतोयोजनायुतः । योऽसौगुहेननिर्भिन्नस्तच्चिह्नंक्रौञ्चं
तत्र च प्रैयव्रतो घृतपृष्ठिनामा तत्पुत्रामधुरुहमेघपृष्ठस्वधामऋताभ्रलोहित
वनस्पतिइतिसप्तपुत्रनामाङ्कितानि सप्त वर्षाणि ॥ ६८ ॥

वर्णाश्चगुरुऋषभद्रविणदेवकसञ्ज्ञाः ॥ ६९ ॥

आपोमयं भगवन्तं स्तुवन्ति ॥ ७० ॥

आपाः पुरुषवीर्याश्च पुनन्तीर्भूर्भुवः स्वश्च । तैः पुनरमीवघ्नाःसंस्पृशेतात्मना

॥ इति जपः ॥

शाल्मलेर्नाम वृक्षस्य तत्रवासः सहस्रं योजनानां तच्चिह्नं शाल्मलिद्वीपमुच्यते ।
तस्याधिपतिः प्रैयव्रतो यज्ञबाहुस्तत्पुत्रसुरोचनसौमनस्यरमणकदेववर्हिपारि
प्यायनाभिज्ञाननामानि सप्तवर्षाणि ॥ ७३ ॥

वर्णाश्च श्रुतधरवीर्यवसुन्धरइषन्धरसञ्ज्ञाभगवन्तं सोमं यजन्ति ।
स्वयोनिः पितृदेवेभ्योविभजञ्शुक्लकृष्णयोः । अधःप्रजानां सर्वासांराजानःसोमं

॥ इति जपः ॥

गोमेदनामा प्लक्षोऽस्तिसुरस्यो यस्यच्छायया । मेदोवृद्धिगतं लौल्याद्गोमेदंद्वीपमु
तत्र प्रैयव्रत इध्मजिह्वः पतिस्तत्पुत्रशिवसुरम्यसुभद्रशान्त्यशप्तामृताभयनामाङ्कि
सप्त वर्षाणि ॥ ७७ ॥

वर्णाश्च हंसपङ्गोर्ध्वाचनसत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो भगवन्तं सूर्यं यजन्ते ।
प्रक्षस्य विष्णुरूपं यत्तत्रोत्थस्यब्रह्मणोऽमृतस्यच । मृत्योश्च सूर्यमात्मानं धीमहि

॥ इति जपः ॥

स्वर्णपत्राणि नियुतं योजनानां सहस्रकम् । पुष्करं ज्वलदाभातितच्चिह्नंद्वीपपुष्क

तस्याधिपतिः प्रैयव्रतो वीतहोत्रनामा तत्पुत्रौ रमणकघातकौ ॥ ८१ ॥
तन्नामचिह्नितं खण्डद्वयम् ॥ ८२ ॥
तयोरन्तरालेमानसाचलो नाम वलयाकारः पर्वतो यस्मिन्भ्रमतिभगवान्भास्करइति
तत्र वर्णाश्च न सन्ति केवलं समानास्ते ब्रह्म ध्यायन्ति ॥ ८४ ॥
यद्यत्कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयन्। भेदेनैकान्तमद्वैतं तस्मै भगवते नमः॥८५॥

॥ इति जपः ॥

तेषु क्रोधो न मात्सर्यं पुण्यपापार्जनेन च। अयुतं द्विगुणंचापिक्रमादायुःप्रकीर्तितम्
जपन्तःकामिनीयुक्ताविहरन्त्यमराइव। अथतेसम्प्रवक्ष्यामिऊर्ध्वलोकस्य संस्थितिम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे कुमारिकाख्याने भूसंस्थितिवर्णनं नाम
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

ऊर्ध्वलोकव्यवस्थितिवर्णनम्

नारद उवाच

भूमेर्योजनलक्षे च कौरव रविमण्डलम्। योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नव॥
ईषादण्डस्तथैवाऽस्यद्विगुणः परिकीर्तितः। सार्धकोटिस्तथासप्तनियुतानिविवस्वतः
योजनानां तु तस्याक्षस्तत्रचक्रंप्रतिष्ठितम्। त्रिनाभितच्च पञ्चारंषण्नेमिपरिकीर्तितम्
चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वितीयोऽक्षोऽपि विस्तृतः।
पञ्च चाऽन्यानि सार्द्धानि स्यन्दनस्य तु पाण्डव !॥ ४ ॥
अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणं तद्युगार्द्धयोः। ह्रस्वोऽक्षस्तद्युगार्द्धंच ध्रुवाधारं रथस्य वै
द्वितीयोऽक्षस्तथा सव्ये चक्रं तन्मानसे स्थितम्।

हयाश्च सप्त च्छन्दांसि तेषां नामानि मे शृणु ॥ ६ ॥

गायत्रीचबृहत्युष्णिग्जगतीत्रिष्टुवेव च । अनुष्टुप्पङ्क्तिरित्युक्ताश्छन्दांसिहरयो

नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सतः । उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं र

शक्रादीनां पुरे तिष्ठन्स्पृशत्येषपुरत्रयम् । विकीर्णोऽतोविकर्णस्थस्त्रिकोणार्थपुरे

अयनस्योत्तरस्यादौ मकरं याति भास्करः । ततः कुम्भं च मीनंचराशेराश्यन्तरं

त्रिष्वेतेष्वथ भुक्तेषु ततो वैषुवतीं गतिम् । प्रयाति सविता कुर्वन्नहोरात्रं चतत्स

ततो रात्रिः क्षयंयातिवर्धते तु दिनं दिनम् । ततश्च मिथुनस्यान्ते परां काष्ठामुपा

राशिं कर्कटकं प्राप्यकुरुते दक्षिणायनम् । कुलालचक्रपर्यन्तोयथा शीघ्रं निवर्त

दक्षिणायक्रमे सूर्यस्तथा शीघ्रं निवर्तते । अतिवेगितया कालं वायुमार्गवलाश्र

तस्मात्प्रकृष्टां भूमिं स कालेनाऽल्पेन गच्छति ।

कुलालचक्रमध्यस्थो यथा मन्दं प्रसर्पति ॥ १५ ॥

तथोदगयने सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः । तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिमल्पं निगच्छति

सन्ध्याकाले च मन्देहाः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम् ।

प्रजापतिकृतः शापस्तेषां फाल्गुन ! रक्षसाम् ॥ १७ ॥

अक्षयत्वं शरीराणां मरणं च दिनेदिने । ततः सूर्यस्य तैर्युद्धं भवत्यत्यन्तदारुण

ततो गायत्रिपूतंयद्द्विजास्तोयंक्षिपन्ति च । तेनदह्यन्तितेपापाःसन्ध्योपासनतःस

ये सन्ध्यां नाप्युपासन्ते कृतघ्ना यान्ति रौरवम् ।

प्रतिमासं पृथक्सूर्यंऋषिगन्धर्वराक्षसैः ॥ २० ॥

अप्सरोग्रामणीसर्पैरथो यातिच सप्तभिः । धाताऽर्यमा मित्रवरुणौविवस्वानिन्द्रप

पूषा च सविता सोऽथ भगस्त्वष्टा च कीर्तितः ।

विष्णुश्चैत्रादिमासेषु आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ २२ ॥

ततोदिवाकरस्थानान्मण्डलंशशिनःस्थितम् । लक्षमात्रेण तस्यापित्रिचक्रोरथउ

कुन्दाभा दश चैवाश्वा वामदक्षिणतो युताः । पूर्णे शतसहस्रेचयोजनानांनिशाकर

नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशते । चतुर्दश चार्बुदान्यप्यशीतिः सरितामपि

विंशतिश्चतथाकोट्योनक्षत्राणांप्रकीर्तिताः । द्वेलक्षेचोत्तरेतस्माद्बुधोनक्षत्रमण्डलात्
वाय्वग्निद्रव्यसम्भूतो रथश्चन्द्रसुतस्य च। पिशङ्गैस्तुरगैर्युक्तः सोष्टाभिर्वायुवेगिभिः॥

द्विलक्षश्चोत्तरे तस्माद्बुधाच्चाप्युशना स्मृतः ।
शुक्रस्यापि रथोऽष्टाभिर्युक्तोऽभूत्सम्भवैर्हयैः ॥ २८ ॥

लक्षद्वयेन भौमस्य स्मृतो देवपुरोहितः । अष्टाभिः पाण्डुरैरश्वैर्युक्तोऽस्यकाञ्चनोरथः
सौरिर्बृहस्पतेश्चोर्ध्वं द्विलक्षे समुपस्थितः । आकाशसम्भवैरश्वैरष्टाभिः शवलै रथः

स्वर्भानोस्तुरगाश्चाष्टौ भृङ्गाभा धूसरारथम् ।
वहन्ति च सकृद्युक्ता आदित्याधः स्थितास्तथा ॥ ३१ ॥

सौरेर्लक्षंस्मृतंचोर्ध्वंततःसप्तर्षिमण्डलम् । ऋषिभ्यश्चापिलक्षेणध्रुवश्चोर्ध्वंव्यवस्थितः
मेढीभूतःसमस्तस्यज्योतिश्चक्रस्यवैध्रुवः । ध्रुवोऽपिशिंशुमारस्यपुच्छाधारेव्यवस्थितः
यमाहुर्वासुदेवस्य रूपमात्मानमव्ययम् । वायुपाशैर्ध्रुवे वद्धं सर्वमेतच्च फाल्गुन ॥ ३४॥
नवयोजनसाहस्रंमण्डलंसवितुःस्मृतम् । द्विगुणंसूर्यविस्तारान्मण्डलंशशिनःस्मृतम् ॥

तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाऽधस्तात्प्रसर्पति ।
उद्धृत्य पृथिवीच्छायां निर्मलां मण्डलाकृतिः ॥ ३६ ॥

चन्द्रस्य षोडशो भागोभार्गवश्चविधीयते । भार्गवात्पादहीनस्तुविज्ञेयोऽथवृहस्पतिः
वृहस्पतेःपादहीनौ वक्रसौरी बुधस्तथा । शतानिपञ्चचत्वारि त्रीणि द्वे चैकयोजनम्
योजनार्धप्रमाणानि भानि ह्रस्वं न विद्यते । भूमिलोकश्च भूर्लोकःपादगम्यःप्रकीर्तितः
भूमिसूर्यान्तरं तच्च भुवर्लोकः प्रकीर्तितः । ध्रुवसूर्यान्तरं तच्च नियुतानि चतुर्दश ॥
स्वर्लोकःसोऽपिगदितोलोकसंस्थानचिन्तकैः । ध्रुवादूर्ध्वंतथाकोटिर्महर्लोकःप्रकीर्तित
द्वे कोट्यौचजनोयत्रनिवसन्तिचतुःसना । चतुर्भिश्चापिकोटिभिस्तपोलोकस्ततःस्मृतः

वैराजा यत्र ते देवाः स्थिता दाहविवर्जिताः ।
षड्गुणेन तपोलोकात्सत्यलोको विराजते ॥ ४३ ॥

अपुनर्मरका यत्र ब्रह्मलोको हि स स्मृतः । अष्टादश तथाकोट्योलक्षाण्यशीतिपञ्च च
शुभं निरुपमं स्थानं तदूर्ध्वं सम्प्रकाशते । भूर्भुवःस्वरिति प्रोक्तं त्रैलोक्यंकृतकंत्विदम्

जनस्तपस्तथा सत्यमिति चाकृतकं त्रयम् । कृतकाकृतयोर्मध्ये महर्लोक इति
शून्यो भवति कल्पान्ते योऽत्यन्तं न विनश्यति ।
एते सप्त समाख्याता लोकाः पुण्यैरुपार्जिताः ॥ ४७ ॥
यज्ञैर्दानैर्जपैर्होमैस्तीर्थैर्व्रतसमुच्चयैः । वेदादिप्रोक्तैरन्यैश्च साध्यान्लोकानिमान्वि
ततश्चाण्डस्य शिरसो धारा नीरमयी शिवा । सर्वलोकान्समाप्लाव्यगङ्गामेरावुपा
ततो महीतलं सर्वं पातालं प्रविवेश सा । अण्डमूर्ध्नि स्थिता देवीसततंद्वारवा
देवोनांकोटिकोटीभिःसम्वृतापिङ्गलेन च । तत्र स्थितासदारक्षांकुरुतेऽण्डस्यसा
निहन्तिदुष्टसङ्घातान्महाबलपराक्रमा । वायुस्कन्धानि सप्ताऽपि शृणुयद्वत्स्थिता
पृथिवीं समभिक्रम्य संस्थितोमेघमण्डले । प्रवाहोनाम यो मेघान्प्रवहत्यतिशक्ति
धूमजाश्चोष्मजा मेघाः सामुद्रैर्येन पूरिताः । तोयैर्भवन्ति नीलाङ्गा वर्षिष्ठाश्चैव भा
द्वितीयश्चावहो नाम निबद्धः सूर्यमण्डले । तेन बद्धं ध्रुवेणेदं भ्राम्यते सूर्यमण्डल
तृतीयश्चोद्वहो नाम चन्द्रस्कन्धे प्रतिष्ठितः । बद्धं ध्रुवेण येनेदं भ्राम्यते चन्द्रमण्डल
चतुर्थः सम्वहो नाम स्थितो नक्षत्रमण्डले । वातरश्मिभिराबद्धं ध्रुवेण सह भ्राम्य
ग्रहेषु पञ्चमः सोऽपि विवहो नाम मारुतः । ग्रहचक्रमिदं येन भ्राम्यते ध्रुवसन्धि
षष्ठः परिवहो नाम स्थितः सप्तर्षिमण्डले । भ्रमन्ति ध्रुवसम्बद्धा येन सप्तर्षयो दि
सप्तमश्च ध्रुवे बद्धो वायुर्नाम्ना परावहः ।
येन संस्थापितं ध्रौव्यं चक्रं चाऽन्यानि भारत !॥ ६० ॥
यं समासाद्य वेगेन दिशामन्तं प्रपेदिरे । दक्षस्य दश पुत्राणां सहस्राणि प्रजापते
एवमेते दितेः पुत्राः सप्तसप्त व्यवस्थिताः । अनारमन्तःसम्वान्ति सर्वगाःसर्वधारि
ध्रुवादूर्ध्वंभसूर्यंचाप्यनक्षत्रमतारकम् । स्वतेजसास्वशक्त्या चाधिष्ठितास्तेहिनित्य
इत्यूर्ध्वन्ते समाख्यातं पातालान्यथ मे शृणु ॥ ६४ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरख
कौमारिकाखण्डे कुमारिकाख्याने लोकव्यवस्थितिवर्णनं नामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

सप्ताधोलोकानाम्व्यवस्थावर्णनम्

नारद उवाच

सहस्रसप्तत्युच्छ्राये पातालानि परस्परम् । अतलं वितलं चैव नितलं च रसातलम्
तलातलं च सुतलं पातालंचापि सप्तमम् । कृष्णशुक्लारुणाः पीताःशर्कराशैलकाञ्चनाः
भूमयो यत्र कौरव्य वरप्रासादशोभिताः । तेषु दानवदैतेयनागाश्चैव सहस्रशः ॥३॥
स्वर्लोकादपि रम्याणि दृष्टानि बहुशो मया । आह्लादकारिणोनानामणयोयत्रपन्नगाः
दैत्यदानवकन्याभिर्महारूपाभिरन्विते । पाताले कस्य न प्रीतिर्विमुक्तस्याऽपि जायते
यत्र नोष्णं न वा शीतं न वर्षंदुःखमेवच । भक्ष्यभोज्यमहाभोगकालोयत्राऽपि जायते

पाताले सप्तमे चाऽस्ति लिङ्गं श्रीहाटकेश्वरम् ।
ब्रह्मणा स्थापितं पार्थ ! सहस्रयोजनोच्छ्रितम् ॥ ७ ॥

हाटकस्य तु लिङ्गस्य प्रासादो योजनायुतः । सर्वरत्नमयो दिव्यो नानाश्चर्यविभूषितः
तत्रार्चयन्ति तल्लिङ्गं नानानागेन्द्रसत्तमाः । तदधस्ताज्जलं भूरितस्याधोनरकाःस्मृताः
पापिनो येषु पात्यन्ते ताञ्छृणुष्व महामते !। कोटयः पञ्चपञ्चाशद्राजानश्चैकविंशतिः
रौरवः शूकरो रोधस्तालोविशसनस्तथा । महाज्वालस्तप्तकुम्भोलवणोऽथविमोहकः
रुधिरान्धो वैतरणी कृमिशःकृमिभोजनः । असिपत्रवनं कृष्णोलालाभक्ष्यश्चदारुणः
तथा पूयवहः पापोवह्निज्वालोऽप्यधःशिराः । सन्दंशः कृष्णसूत्रश्चतमश्चावीचिरेव च
श्वभोजनो विसूचिश्चाप्यवीचिश्चतथाऽपरः । कूटसाक्षीरौरवं च रोधं गोविप्ररोधकः
सुरापः सूकरं याति तालं मिथ्यामनुष्यहा । गुरुतल्पी तप्तकुम्भं तप्तलोहं च भक्तहा ॥
गुरूणामवमन्ता यो महाज्वाले निपात्यते । लवणं शास्त्रहन्ता च निर्मर्यादा विमोहके
कृमिभक्ष्ये देवद्वेष्टा कृमिशे तु दुरिष्टकृत् । पितृदेवात्पूर्वमश्नल्लाँलाभक्ष्ये प्रयाति च ॥
मिथ्याजीवविरोधी विशसने कूटशस्त्रकृत् । अधोमुखे ह्यसद्ग्राही एकाशी पूयवाहके

मार्जारकुक्कुटश्वानपक्षिपोष्टा प्रयाति च । वधिरान्धगृहक्षेत्रतृणघायादिज्वा
नक्षत्ररंगजीवी च याति वैतरणीं नरः । धनयौवनमत्तो यो धनहा कृष्णमेति
असिपत्रवनं याति वृक्षच्छेदी वृथैव यत् । कुहकाजीविनः सर्वे वह्निज्वाले प
परस्त्रीं च परान्नं च गच्छन्सन्दंशमेति च । दिवास्वप्नपरा ये च व्रतलोपपरा
शरीरमदमत्ताश्च यान्ति चेते श्वभोजनम् । शिवं हरिं न मन्यन्तेयान्त्यवीचि
इत्येवमादिभिः पापैरशास्त्रौघस्य सेवनैः । पतन्त्येव महाघोरनरकेषु सहस्र
तस्माद्य इच्छेदेतेभ्यो विमोक्षं बुद्धिमान्नरः । श्रुतिमार्गेण तेनार्चौ देवौ हरिहर

नरकाणामधोभागे स्थितः कालाग्निसञ्ज्ञकः ।
तदधो हट्टकश्चैव अनन्तस्तदधः स्मृतः ॥ २६ ॥

यस्यैतत्सकलं विश्वं मूर्धाग्रे सर्षपायते । इत्यनन्तप्रभावात्स ह्यनन्त इति की
दिशां गजास्तत्र पद्मकुमुदाञ्जनवामनाः । तदधोऽण्डकटाहश्च एकविंशति
चतुर्लक्षसहस्राणि नवतिश्च शतानि च । एतेनैव प्रमाणेन उदकं च ततः

तदधो नरकाः कोट्यो द्विकोट्यऽग्निस्ततो महान् ।
चत्वारिंशत्सहस्रैश्च तदधस्तम उच्यते ॥ ३० ॥

चत्वारिंशच्च कोट्यस्तु चतस्रश्च ततः पराः । एकोननवतिर्लक्षाः सहस्राणि
तदधोऽण्डकटाहोऽथकोटिमात्रस्तथापरः । देवी शुक्ताकपालीशादण्डहस्तेन

देवीनां कोटिकोटीभिः सम्वृता तत्र पालिनी ।
सङ्कर्षणस्य निःश्वासप्रेरितो दाहकोऽनलः ॥ ३३ ॥

कालाग्निं प्रेरयत्येव कल्पान्ते दह्यते जगत् । एवं विधमधःसूत्रं निर्मितं चाऽ
मध्यसूत्रे कटाहे च पालकान्स्ताञ्छृणुष्व मे । वसुधामास्थितः पूर्वं शङ्कुपाल
तक्षकेशः स्थितः पश्चादुत्तरे केतुमानिति । हरसिद्धिः सुपर्णाक्षीभास्करायोग
कोटिकोटी युता देवी देवीनां पालयत्यदः । एवमेतन्महाश्चर्यंब्रह्माण्डं स्थापितं

नमामि तानहं नित्यं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ।
विष्णुलोको रुद्रलोको वहिश्चाऽस्मात्प्रकीर्त्यते ॥ ३८ ॥

तं च वर्णयितुं ब्रह्मा शक्तोनैवाऽस्मदादयः । विमुक्तायत्र संयान्ति नित्यंहरिहरव्रताः
ब्रह्माण्डं सम्वृतं ह्येतत्कटाहेन समन्ततः । कपित्थस्य यथा बीजं कटाहेन सुसम्वृतम्
दशोत्तरेण पयसा वृतं तच्चाऽपितेजसा । तेजश्च वायुना वायुर्नभसाऽहन्तया च तत्
अहङ्कारश्च महता तं चापि प्रकृतिः परा । दशोत्तराणि सर्वाणिषडाहुः सप्तमं च तत्
प्राकृतं वरणं पार्थ तदनन्तं प्रकीर्तितम् । अण्डानां तु सहस्राणांसहस्राण्ययुतानि च
ईदृशानां तथाचात्रकोटिकोटिशतानि च । सर्वाण्येवम्विधान्येवयादृशंकीर्तितंत्विदम्

यस्यैवं वैभवं पार्थ ! तं नमामि सदाशिवम् ।

अहो मन्दः स पापात्मा को वा तस्मादचेतनः ॥ ४५ ॥

य एवंविधसम्मोहतारकं न शिवं भजेत् । अथ ते कीर्तयिष्यामिकालमानंनिबोधतत्

काष्ठा निमेषा दश पञ्च चाहुस्त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत्कला हि ।

त्रिंशत्कलाश्चापि भवेन्मुहूर्त्तं तत्त्रिंशता राज्यहनी उभे च ॥ ४७ ॥

दिवसेपञ्च कालाःस्युस्त्रिमुहूर्ताः शृणुष्वतान् । प्रातस्ततः सङ्गवश्चमध्याह्नश्चापराह्नकः
सायाह्नः पञ्चपश्चापि मुहूर्ता दश पञ्च च । अहोरात्राः पञ्चदश पक्ष इत्यभिधीयते ॥
मासः पक्षद्वयेनोक्तो द्वौ मासौ चार्कजावृतुः । ऋतुत्रयं चाप्ययनं द्वेऽयने वर्षमुच्यते
चतुर्भेदं मासमाहुः पञ्चभेदं च वत्सरम् । सम्वत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः
इद्वत्सरस्तृतीयोऽसौ चतुर्थश्चानुवत्सरः । पञ्चमश्च युगोनाम गणनानिश्चयो हि सः
मासेन च मनुष्याणामहोरात्रं च पैतृकम् । कृष्णपक्षस्त्वहः प्रोक्तः शुक्लपक्षश्च शर्वरी

मानुषेण च वर्षेण दैविको दिवसः स्मृतः ।

अहस्यत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ ५४ ॥

वर्षेण चैव देवानां मतः सप्तर्षिवासरः । सप्तर्षीणां च वर्षेण ध्रौवश्च दिवसः स्मृतः
मनुष्याणां च वर्षाणि लक्षसप्तदशैव तु । अष्टाविंशतिसहस्राणि कृतं त्रेतायुगं ततः
लक्षद्वादशसाहस्रषण्णवत्यधिकाः पराः । अष्टौ लक्षश्चतुःषष्टिसहस्राणि च द्वापरः ॥
चतुर्लक्षन्तु द्वात्रिंशत्सहस्राणि कलिः स्मृतः । चतुर्भिरेतैर्देवानां युगमित्यभिधीयते
आयुर्मनोर्युगानाञ्च साधिका ह्येकसप्ततिः । चतुर्दशमनूनाञ्च कालेन ब्रह्मणो दिनम्

युगानाञ्च सहस्रेण स च कल्पः शृणुष्व तान् । भवोद्भवस्तपोभव्य ऋतुर्वह्नि
सावित्र आसिकश्चापि गान्धारः कुशिकस्तथा ।
ऋषभश्च तथा खड्गो गान्धारीयश्च मध्यमः ॥ ६१ ॥
वैराजश्च निषादश्च मेघवाहनपञ्चमौ । चित्रको ज्ञान आकूतिर्मीनो दंशश्च वृह
श्वेतो लोहितरक्तौ च पीतवासाः शिवः प्रभुः । सर्वरूपश्च मासोऽयमेवं
पूर्वार्धमपरार्धं च ब्रह्ममानमिदं स्मृतम् । विष्णोश्च शङ्करस्याऽपि नाहं शक्तश्च
काऽहमल्पमतिः पार्थ क्वाऽपरौ हरित्र्यम्बकौ । दैविकेनैव मानेन पातालेष्वपि
इति ते सूचितं बुद्ध्या शृणु तत्प्राकृतं पुनः ॥ ६६ ॥
॥ इति वैधात्रव्यवस्थितिः ॥

महादेव उवाच

ऋषभोनाम यन्नाम्ना नानापाषण्डकल्पनाः ।
कलौ पार्थ ! भविष्यन्ति लोकानां मोहनात्मिकाः ॥ ६७ ॥
तस्य पुत्रस्तु भरतः शतशृङ्गस्तु तत्सुतः । तस्य पुत्राष्टकं जातं तथैका च कुमा
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रद्वीपोगभस्तिमान् । नागःसौम्यश्चगान्धर्वो वरुणश्चकुमा
वदनं चापि कन्यायाः पार्थ वर्करिकाकृति ।
शृणु तत्कारणं सर्वं महाश्चर्यसमन्वितम् ॥ ७० ॥
महीसागरपर्यन्तं वृक्षराजि विराजिते । जालीगुल्मलताकीर्णे स्तम्भतीर्थस्यस
अजासमजतो मध्यात्काचिदेका न वर्करी । भ्रान्तासती समायाता प्रदेशे तत्र
इतस्ततो भ्रमन्ती सा जालिमध्येसमन्ततः । निर्गन्तुंनैवशक्नोति क्षुत्पिपासादि
विलग्ना जालिमध्ये तु ततः पञ्चत्वमागता । कालेनकियतातस्य त्रुटित्वाशिरसा
पपात शनिदर्शे च महीसागरसङ्गमे । सर्वतीर्थमये तत्र सर्वपापप्रमोचने ॥
शिरस्तु तदवस्थं हि समग्रं तत्र संस्थितम् । जालिगुल्मावलग्नं च तस्यानैवाप
शेषकायप्रपातेन महीसागरसङ्गमे । तत्तीर्थस्य प्रभावेण वर्करी सा कुरूद्वह ! ॥
शतशृङ्गस्य वै राज्ञः सिंहलेष्वभवत्सुता ।

मुखं बर्करिकातुल्यं व्यक्तं तस्या व्यजायत ॥ ७८ ॥
दिव्यनारी शुभाकारा शेषकाये बभौ शुभा । पूर्वं तस्याप्यपुत्रस्य राज्ञः पुत्रशतोपमा
पुत्री जाता प्रमोदेन स्वजनानन्दवर्धिनी । ततस्तस्याविलोक्याऽथ मुखंवर्करिकाकृति
विस्मयं समनुप्राप्ताः सर्वे ते राजपूरुषाः । विषादं परमापन्नो राजा सान्तःपुरस्तदा
विप्राःप्रकृतयःसर्वास्तादृग्रूपविलोकनात् । तत्किमित्येतदाश्चर्यमूचुःपौराःसुविस्मिताः
ततः सा यौवनं प्राप्तासाक्षाद्देवसुतोपमा । स्वमुखं दर्पणे वीक्ष्य स्मृतः पूर्वोभवस्तया
तत्तीर्थस्य प्रभावेण मातृपित्रोर्निवेदितम् । विषादो नैव कर्तव्योमदर्थेतात निश्चितम्
मा शोकं कुरु मे मातः ! पूर्वजन्मार्जितं फलम् ।
ततः पूर्वं स्ववृत्तान्तमुक्त्वा सा च कुमारिका ॥ ८५ ॥
पूर्वजन्मोद्भवः कायस्तस्या यत्रापतत्तथा । गमनाय तमुद्देशं विज्ञप्तौ पितरौ तया ॥
अहं तात गमिष्यामि महीसागरसङ्गमम् । भवामि तत्र सम्प्राप्ता यथा कुरु तथा नृप
ततः पित्रा प्रतिज्ञातं शतशृङ्गेण तत्तथा । तस्याः सम्वाहनं चक्रे राजापोतैः सरत्नकैः
स्तम्भतीर्थं ततः साऽपि प्राप्यपोतार्थसंयुता । भूरिदानं ततश्चक्रे दानं सर्वस्वलक्षणम्
वालिगुल्मान्तरैऽन्विष्य ततो दृष्टंनिजंशिरः । अस्थिचर्मावशेषं च तदादाय प्रयत्नतः
दग्ध्वा सङ्गमसान्निध्ये क्षिप्तान्यस्थीनि सङ्गमे । ततस्तीर्थप्रभावेणमुखंजातंशशिप्रभम्
न तादृग्देवकन्यानां न तादृङ्नागयोषिताम् ।
न तादृङ्मर्त्यनारीणां तस्या यादृङ्मुखं मुखम् ॥ ९२ ॥
सुरासुरनराः सर्वे तस्यारूपेण मोहिताः । बहुधा प्रार्थयन्त्येनां न सा वरमभीप्सति॥
कष्टं तया मुदा तत्र प्रारब्धं दुश्चरं तपः । ततः सम्वत्सरे पूर्णे देवदेवो महेश्वरः ॥
प्रत्यक्षतां गतस्तस्यैवरदोऽस्मीतिचाब्रवीत् । ततस्तं पूजयित्वाचकुमारीवाक्यमब्रवीत्।
यदि तुष्टोऽसि देवेश! यदि देयो वरो मम । सान्निध्यं क्रियतामत्र सर्वकालं हि शङ्कर
एवमस्त्विति शर्वेण प्रोक्ते हृष्टा कुमारिका । यत्र दग्धं शिरस्तस्यावर्कर्याःकुरुसत्तम॥
बर्करेशः शिवस्तत्र तया संस्थापितस्तदा । मन्मुखान्महदाश्चर्यं श्रुत्वेदं च तलातलात् ।
स्वस्तिकोनाम नागेन्द्रःकुमारींद्रष्टुमागतः । शिरसा गच्छतातेनयत्रोत्क्षिप्ताचभूरभूत्॥

ईशाने वर्करेशस्य कूपोऽभूत्स्वस्तिकाभिधः । पूरितो गङ्गया पार्थ सर्वतीर्थफल
दृष्ट्वा च स्थापितं लिङ्गं शिवस्तुष्टो वरं ददौ । येषां मृतशरीराणामत्र दाहः प्र

क्षिप्यन्तेऽब्धौ तथाऽस्थीनि तेषां स्यादक्षया गतिः ।
ते स्वर्गे सुचिरं कालं वसित्वाऽत्र समागताः ॥ १०२ ॥

राजानः सर्वसम्पूर्णाः सप्रतापा भवन्ति ते । वर्करेशं च यो भक्त्यासम्पूजयति

स्नात्वाऽर्णवमहीतोये तस्य स्यान्मनसेप्सितम् ।
कार्तिके च चतुर्दश्यां कृष्णायां श्रद्धयान्वितः ॥ १०४ ॥

कूपे स्नानंनरःकृत्वा सन्तर्प्यंच पितृन्निजान् । पूजयेद्वर्करेशं यः सर्वपापैः स मु
एवं लब्ध्वा वरान्सर्वान्सापुनः सिंहलं ययौ । शतश्रृङ्गाय पित्रेचवृत्तान्तंस्वंन्य
तच्छ्रुत्वा विस्मितोराजा लोकाःसर्वेचफाल्गुन । प्रशशंसुर्महीतीर्थमाजग्मुश्च
स्नात्वा दत्त्वाच दानानि विविधानिचतेततः । सिंहलंचययुर्भूयस्तीर्थमाहात्म्य
अनिच्छन्त्यांकुमार्यांचवरंद्रव्यंचपार्थिवः । तथाऽन्यदपि प्रीत्याऽसौयद्ददौनृप
इदं भारतखण्डं च नवधैव विभज्य सः । ददावष्टौ स्वपुत्राणां कुमार्यै नवमं
तेषां विभेदान्वक्ष्यामि पर्वतैरुपशोभितान् । पुत्रनामानि वर्षाणि पर्वतांश्च शृणु
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः । विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्ताऽत्र कुल
महेन्द्रपरतश्चैव इन्द्रद्वीपो निगद्यते । पारियात्रस्य चैवार्वाक्खण्डं कौमारिकं
सहस्रमेकमेकं च सर्वखण्डान्यमूनि च । नदीनां सम्भवं चापि संक्षेपाच्छृणु फा
वेदस्मृतिमुखा नद्यः पारियात्रोद्भवा मताः । नर्मदासरसाद्याश्चनद्योविन्ध्याद्वि
शतद्रूचन्द्रभागाद्या ऋक्षपर्वतसम्भवाः । ऋषिकुल्याकुमार्याद्याः शुक्तिमत्पादस

तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या कावेरी च महीनदी ।
कृष्णा वेणी भीमरथी सह्यपादोद्भवाः स्मृताः ॥ ११७ ॥

कृतमालाताम्रपर्णीप्रमुखा मलयोद्भवाः । त्रिसामऋष्यकुल्याद्या महेन्द्रप्रभवाः
एवं विभज्य पुत्रेभ्यः कुमार्यै च महीपतिः । शतश्रृङ्गोगिरिंगत्वा उदीच्यांतप
तत्र तप्त्वा तपोघोरं ब्रह्मलोकं जगाम सः । शतश्रृङ्गो नृपश्रेष्ठः शतश्रृङ्गे नगो

यत्र जातोऽसि कौन्तेय ! पाण्डोस्त्वं सोदरैः सह ।
कुमारी च महाभागा स्तम्भतीर्थस्थिता सती ॥ १२१ ॥
पाण्डोद्भवेन द्रव्येण तेपे दानानि यच्छती । ततःकेनाऽपि कालेन भ्रातृभ्योऽष्टभ्यएवच
महावीर्यबलोत्साहा जाता नव नवात्मजाः । ते समेत्य समागम्य कुमारींप्रोचिरेततः
कुलदेवीत्वमस्माकंप्रसादं कुरु नः शुभे !। अष्टौखण्डानिचास्माकं विभज्यस्वयमेवच
देहि द्वासप्ततीनां नो विभेदः स्याद्यथा न नः ॥ १२४ ॥
इत्युक्ता सर्वधर्मज्ञा विज्ञाने ब्रह्मणा समा । द्वासप्ततिविभेदैःसा नवखण्डान्यचीकरत्
तेषां नामानि ग्रामांश्चपत्तनानिचफाल्गुन । वेलाकूलानि संख्यांचवक्ष्यामितवतत्त्वतः
कोटिश्चतस्रो ग्रामाणां नीवृदासीच्च मण्डले । सार्धकोटिद्वयग्रामैर्देशोवालाकउच्यते
सपादकोटिर्ग्रामाणां पुरसाहणकेविदुः । लक्षाश्चत्वारएवाऽपि ग्रामाणामन्धलेस्मृताः
एकोलक्षश्च नेपाले ग्रामाणां परिकीर्तितः । षट्त्रिंशल्लक्षमानंतुकान्यकुब्जेप्रकीर्तितम्
द्वासप्ततिस्तथा लक्षा ग्रामागाजणके स्मृताः । अष्टादशतथालक्षाग्रामाणां गौडदेशके
कामरूपे च ग्रामाणां नवलक्षाः प्रकीर्तिताः । डालहे वेदसञ्ज्ञेतु ग्रामाणांनवलक्षकम्
नवैव लक्षा ग्रामाणां कान्तिपुरेप्रकीर्तिताः । नवलक्षास्तथाचैव माचिपूरे प्रकीर्तिताः
ओड्डियाणे तथा देशे नवलक्षाः प्रकीर्तिताः । जालन्धरेतथा देशे नवलक्षाःप्रकीर्तिताः
लोहपूरे तथा देशे लक्षाः प्रोक्ता नवैव च । ग्रामाणां सप्तलक्षं च पाम्बीपुरेप्रकीर्तितम्
ग्रामाणां सप्तलक्षं च रटराजे प्रकीर्तितम् ।
हरीआले च ग्रामाणां लक्षपञ्चकसम्मितम् ॥ १३५ ॥
सार्धलक्षत्रयं प्रोक्तं द्रडस्य विषये तथा । सार्धलक्षत्रयं प्रोक्तं तथावम्भणवाहके ॥
एकविंशतिसाहस्रं ग्रामाणां नीलपूरके । तथामलविषये पार्थ ग्रामाणामेकलक्षकम् ॥
नरेन्दुनामदेशे तु लक्षमेकं सपादकम् । अतिलाङ्गलदेशे च लक्षः प्रोक्तः सपादकः ॥
लक्षाष्टादशसाहस्रं नवती द्वे च मालवे । सयम्भरे तथा देशे लक्षः प्रोक्तः सपादकः ॥
मेवाडे च तथा प्रोक्तो लक्षश्चैकःसपादकः । अशीतिश्च सहस्राणिवागुरिःपरिकीर्तितः
ग्रामसप्ततिसाहस्रो गुर्जरात्रः प्रकीर्तितः । तथा सप्ततिसाहस्रः पाण्डोर्विषय एव च ॥

जहाहुतिसहस्राणि द्वाचत्वारिंशदेव च । अष्टषष्टिसहस्राणि प्रोक्तं काश्मीरम
षष्टिस्त्रिंशत्सहस्राणि ग्रामाणां कौङ्कणेविदुः । चतुर्दशशतं द्वे च विंशतोलघु
सिन्धुः सहस्रदशके ग्रामाणां परिकीर्तितः ॥ १४४ ॥
चतुर्दशशते द्वे च विंशतिः कच्छमण्डलम् । पञ्चपञ्चाशत्सहस्रं ग्रामाः सौराष्ट्
एकविंशतिसाहस्रो लाडदेशः प्रकीर्तितः । अतिसिन्धुश्च ग्रामाणां दशसाहस्र
तथा चाश्वमुखं पार्थ ! दशसाहस्रमुच्यते ॥१४६ ॥
सहस्रदशकं चाऽपि एकपादः प्रकीर्तितः ॥ १४७ ॥
तथैव दशसाहस्रो देशः सूर्यमुखः स्मृतः । एकबाहुस्तथा देशो दशसाहस्रमु
सहस्रदशकं चैव सञ्जायुरिति देशकः । शिवनामा तथा देशः सहस्रदशकः
सहस्राणि दश ख्यातं तथा कालहयंजयः ॥ १४९ ॥
लिङ्गोद्भवस्तथा देशः सहस्राणि दशैव च । भद्रश्च देवभद्रश्च प्रत्येकं दशकौ
षट्त्रिंशच्च सहस्राणि स्मृतौ चटविराटकौ । षट्त्रिंशच्चसहस्राणियमकोटिःप्रकी
अष्टादश तथा कोस्थो रामको देश उच्यते । तोमरश्चापिकर्णाटो युगलश्चत्रयो
सपादलक्षग्रामाणां प्रत्येकं परिकीर्तितः । पञ्चलक्षाश्च ग्रामाणांस्त्रीराज्यंपरिकी
पुलस्त्यविषयश्चापि दशलक्षक उच्यते । प्रत्येकं लक्षदशकौ देशौ काम्बोजक
ग्रामाणां च चतुर्लक्षोवाल्हिकःपरिकीर्त्यते । षट्त्रिंशच्चसहस्राणि लङ्कादेशःप्र
चतुःषष्टिसहस्राणि कुरुदेशः प्रकीर्तितः । सार्धलक्षस्तथा प्रोक्तः किरातविजयो
पञ्च प्राहुस्तथा लक्षान्विदर्भायां च ग्रामकान् । चतुर्दशसहस्राणि वर्धमानंप्रकी
सहस्रदशकं चापि सिंहलद्वीपमुच्यते । षट्त्रिंशच्च सहस्राणि ग्रामाणां पाण्डुदे
लक्षैकं च तथा प्रोक्तं ग्रामाणां तु भयाणकम् । षट्षष्टिंचसहस्राणिदेशोमागध
षष्टिसहस्राणि तथा ग्रामाणां पाङ्गुदेशकः । त्रिंशत्साहस्र उक्तश्च ग्रामाणांचवर
पञ्चविंशतिसाहस्रं मूलस्थानं प्रकीर्तितम् ।
चत्वारिंशत्सहस्राणि ग्रामाणां यावनः स्मृतः ॥ १६१ ॥
चत्वार्येव सहस्राणि पक्षवाहुरुदीर्यते । [illegible] देशाः ग्रामसंख्याः प्रकी

एवं भरतखण्डेऽस्मिन्षण्णवत्येव कोटयः । द्वासप्ततिस्तथा लक्षाःपत्तनानांप्रकीर्तिताः
षट्त्रिंशच्च सहस्राणि वेलाकूलानि भारत । एवंविभज्य खण्डानिभ्रातॄणांददौनव
आत्मीयमपि सा देवी अनिच्छुष्वपितेषुच । यतोमान्येतिभगिनीप्रतिकुप्यन्तिभ्रातरः
भ्रातॄन्प्रति भगिनीच विचार्यैवददौशुभा । तत्कृत्वा सानुमान्यैतान्स्तम्भतीर्थमुपागता
तदा तेषु च देशेषु चतुर्वर्गस्य साधनम् । सर्वेषां प्रवरं प्रोक्तं कुमारीश्वरमेव च॥१६७
तत्राऽपि गुप्तक्षेत्रं च वेदैतत्सा कुमारिका । गुप्तक्षेत्रे कुमारेशं पूजयन्ती महाव्रता ॥
तस्थौ ह्रदेषु स्नायन्ती षट्सुचैवाऽपिसङ्गमे । ततः कालप्रकर्षाच्चप्रासादेस्कन्दनिर्मिते
जीर्णेनव्यंस्वर्णमयंप्रासादंसाऽप्यकारयत् । ततस्तुष्टोमहादेवस्तस्याभक्त्यातितोषितः
कुमारलिङ्गादुत्थाय प्रत्यक्षस्तामवोचत । भद्रे तवाहं भक्त्या च विज्ञानेन च तोषितः
जीर्णः पुनरुद्धृतोऽयंप्रासादस्तेनतोषितः । तवनाम्नाचविख्यातोभविष्यामिकुमारिके
कर्ताचापितथोद्धर्ता द्वौ वै समफलौ स्मृतौ । कुमारेशःकुमारीश इतिवक्ष्यन्तिमांततः
वर्करेशे च ये दत्ता वरा दत्ताः सदैव ते । तत्राऽपि प्राप्तः कालश्च समीपे वरवर्णिनि
अभर्तृकाया नार्याश्च न स्वर्गो मोक्ष एव च । यथैव वृद्धकन्यायाःसरस्वत्यास्तटेशुभे
तस्मात्त्वमत्र तीर्थे च महाकालमितिस्मृतम् । सिद्धिं गतं वृणु भद्रे पतित्वेवरवर्णिनि
ततः सा रुद्रवाक्येन वरयामास तं पतिम् । रुद्रलोकं ययौ चापि महाकालसमन्विता
तत्र तां पार्वती प्राह समालिङ्ग्यप्रहर्षिता । यस्मात्त्वया चित्रवच्चलिखितापृथिवीशुभे
चित्रलेखेतिनाम्ना त्वं तस्माद्भव सखी मम । ततः सखी समभवच्चित्रलेखेतिसा शुभा
ययाऽनिरुद्धः कथित उषायाः पतिरुत्तमः । योगिनीनांवरिष्ठा या महाकालस्यवल्लभा
अप्सु सा वार्षिकं विन्दुंपूर्णेवर्षशते पपौ । तपश्चरन्तीतस्मात्साप्रोच्यतेचाप्सरादिवि
एवम्विधा कुमारी सा लिङ्गमेतद्धिफाल्गुन । स्थापयामासशिवदं वर्करेश्वरसञ्ज्ञितम्
तस्मादत्र नृणां दाहश्चास्थिक्षेपश्च भारत । प्रयागादधिकौ प्रोक्तौमहेशस्य वचो यथा

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे वर्करेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

महाकालकरन्धमसम्वादे चतुर्युगव्यवस्थावर्णनम्

अर्जुन उवाच

महाकालस्त्वसौ कश्च कथं सिद्धिमुपागतः । अस्मिंस्तीर्थे मुनिश्रेष्ठ महदाश्चर्य
सर्वमेतत्समाख्याहि श्रद्दधानाय पृच्छते ॥ २ ॥

नारद उवाच

नमस्कृत्य महाकालं वरदं स्थाणुमव्ययम् । शक्तितश्चरितं तस्य वक्ष्ये पाण्डुकु
वाराणस्यां पुरि पुरा बभूव जपतां वरः । रुद्रजापी महाभागो माण्टिर्नाम महा
तस्यापुत्रस्य पुत्रार्थे रुद्रान्सञ्जपतः किल । गतं वर्षशतं तुष्टस्ततस्तं प्राह शङ्करः ।
माण्टे तव सुतो धीमान्मत्प्रभावपराक्रमः । वंशस्य तव सर्वस्य समुद्धर्ता भविष्
इति श्रुत्वा रुद्रवचो माण्टिर्हर्षं परंगतः । ततः काले कियन्मात्रे पत्नी माण्टेर्महा
दधार गर्भं चटिका तपोमूर्तिधरायथा । तस्य गर्भस्य वर्षाणि चत्वारि किल सं
न पुनर्मातुरुदरं त्यक्त्वा निर्गच्छते बहिः । ततो माण्टिरुपामन्त्र्य सामभिस्तमभा

वत्स ! सामान्यपुत्रोऽपि पित्रोः सुखकरः सदा ।
शुद्धायां मातरि भवो मत्तः किं पीडयस्यलम् ॥ १० ॥
वत्स ! मानुष्यवासस्य स्पृहा तुभ्यं कथं न हि ।
यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्याऽपि च सन्ततिः ॥ ११ ॥

कदा मनुष्या जायेम पूजा यत्र महाफला । पितॄणांदेवतानां च नानाधर्माश्च यत्र
इति भूतानिशोचन्तिनानायोनिगतान्यपि । तत्त्वं मानुष्यमतुलंस्पृहणीयंदिवौकसा
अनादृत्य कथं ब्रूहि स्थितश्चोदर एव च ॥ १३ ॥

गर्भ उवाच

तात जानाम्यहंसर्वमेतत्परमदुर्लभम् । किन्तु बिभेमिचातिमात्रंकालमार्गस्यनि

द्वौ मार्गौ किल वेदेषु प्रोक्तौ कालोऽर्चिरेव च।
अर्चिषा मोक्षमायान्ति कालमार्गेण कर्मणि ॥ १५ ॥

स्वर्गे वा नरके वापि कालमार्गगतो ह्ययम् । न शर्म लभते क्वापिव्याधविद्धमृगोयथा
स्यैव हेतोः प्रयतेत्कोविदो यत्र दुःखवित् । कालेन घोररूपेण गम्भीरेण समाहितः
च्चेन्मम मतस्तात नानादोषैर्न मोह्यते । ततोऽहं दुर्लभं जन्ममानुष्यंशीघ्रमाप्नुयाम्
ततस्तस्य पिता पार्थ कान्दिशीको महेश्वरम् । जगाम शरणं देवं त्राहित्राहिमहेश्वर

त्वां विना कोऽपरो देव ! पुत्रस्याभीष्टदोऽस्ति मे।
त्वयैव दत्तस्त्वं चाऽमुं जन्म प्रापय मे सुतम् ॥ २० ॥

ततस्तस्यातिभक्त्याऽसौ प्राह तुष्टो महेश्वरः । विभूतीः स्वधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यमेव च
विपरीतश्च शीघ्रं भो माण्टिपुत्रःप्रबोध्यताम् । ततस्ताद्योतयन्त्यश्च विभूत्योगर्भमूचिरे
महामते माण्टिपुत्र न धार्यन्ते भयं हृदि । चत्वारस्त्वांहि धर्माद्यामनस्त्यक्ष्यामहेनते
ततोऽपरास्त्वधर्माद्याः प्रोचुर्नैव तथावयम् । भविष्यामो मनस्तुभ्यमस्मत्तव भयंनहि
इत्युक्ते स विभूतिभिः शीघ्रमेव कुमारकः । निःससार वहिर्जातश्चकम्पेतिरुरोद च ॥
ततो विभूतयःप्राहुर्माण्टे तव सुतस्त्वसौ । अद्यापि कालमार्गस्यभीतःकम्पतिरोदिति
कालभीतिरिति ख्यातस्तस्मादेषभविष्यति । इति दत्त्वा वरं ताश्चमहादेवान्तिकंययुः
सोऽपि वालः प्रववृधे शुक्लपक्ष इवोडुपः । संस्कृतः स च संस्कारैर्धीमान्पशुपतिव्रती
पञ्चमन्त्राञ्जपञ्छुद्धस्तीर्थयात्रापरोऽभवत् । रुद्रक्षेत्रेषु सस्नौ स जपन्मन्त्रांश्चभारत

कालभीतिगुप्तक्षेत्रगुणाञ्छ्रुत्वाऽभ्युपाययौ।
स्नात्वा ततो महीतोये जप्त्वा मन्त्रांश्च कोटिशः ॥ ३० ॥

निवृत्तो नातिदूरेऽथ विल्ववृक्षं ददर्श सः । दृष्ट्वा तं तस्य चाधस्ताल्लक्षमेकं जजाप सः
जपतस्तस्य विप्रस्य इन्द्रियाणि लयं ययुः । केवलंपरमानन्दस्वरूपोऽसावभूत्क्षणात्
तस्यानन्दस्य नौपम्यंस्वर्गादीनांभवेत्कचित् । गङ्गोदकस्येवमानंकेवलंसोऽप्यसावपि
तत्र लीनो मुहूर्तेन पुनश्चाभूद्यथा पुरा । ततो विसिष्मये पार्थ कालभीतिरुवाच ह ॥
नायं मम महानन्दो वाराणस्यां न नैमिषे । न प्रभासे न केदारे न चाप्यमरकण्टके

श्रीपर्वते न चान्यत्रयादृशोऽद्यप्रवर्त्तते। निर्विकाराणिस्वच्छानिगङ्गांभांसीव
भूतेषु परमा प्रीतिस्त्रिजगद्द्योतते स्फुटम्। धर्ममेकं परं मह्यं चेतश्चाप्यवगच्छ
अहो स्थानप्रभावोऽयं स्फुटं चाऽप्यत्र प्रोच्यते।
निर्दोषं यच्छुचि स्थानं सर्वोपद्रववर्जितम् ॥ ३८ ॥

तत्र स्थितस्य धर्मार्थस्तद्वद्भूयात्सहस्रधा। तदस्माच्चप्रभावाद्द्विजानामीनःस्व
विशिष्टं काशिमुख्येभ्यस्तीर्थेभ्यः स्थानकं त्विदम्।
तस्मादत्रैव संस्थोऽहं तपस्तप्स्यामि पुष्कलम् ॥ ४० ॥

इदं चेदं तीर्थमिति सदा यस्तृषितश्चरेत्। न स सिद्धिमवाप्नोतिक्लेशेनैवप्रि
इति संचिंत्य विल्वस्य वृक्षस्याऽधो व्यवस्थितः।
जजापमन्त्रान्रुद्रस्य अङ्गुष्ठाग्रेण धिष्ठितः ॥ ४२ ॥

गृहीत्वा नियमं तोयविन्दुं वर्षशतेऽग्निवत्। ततो वर्षशते याते जपतस्तस्य भ
कश्चित्तोयभृतं कुम्भं गृहीत्वा नर आव्रजत्। स तं प्रणम्य प्राहेदं कालभीतिम
अद्य ते नियमः पूर्णस्तोयमेतन्महामते !। गृहाण सफलं मह्यं श्रमं कर्तुमिहार्हसि

कालभीतिरुवाच

को भवान्वर्णतो ब्रूहि किमाचारश्च तत्त्वतः।
जन्माचारौ विदित्वा ते ग्रहीष्याम्यन्यथा न हि ॥ ४६ ॥

नारद उवाच

न जाने पितरौस्वीयौ नष्टौ वा सर्वथा न हि। एवमेवापि पश्यामिसर्वदाऽहंस
आचारैश्चापि धर्मैश्चन कार्यं मम किञ्चन। तस्माद्वक्ष्यामिनाप्येतन्नचाप्यस्मिस

कालभीतिरुवाच

यद्येवं नोदकं तुभ्यंग्रहीष्याम्यस्मिकर्हिचित्। शृणुष्वाऽत्र वचोयन्मेगुरुराहश्रुति
न ज्ञायते कुलंयस्यवीजशुद्धिंविनाततः। तस्य खादन्पिबन्वापिसाधुःसीदतितत्
यश्च रुद्रं न जानाति रुद्रभक्तश्च यो नहि। अन्नोदकं तस्य भुञ्जन्पातकी स्यात्सं
अज्ञात्वा यः शिवं भुङ्क्ते कथ्यते सोऽत्र ब्रह्महा।

मार्ष्टि च ब्रह्महान्नादे तस्मात्तस्य न भक्षयेत् ॥ ५२ ॥

गङ्गोदकुम्भःस्याद्यद्वत्तन्मध्येमद्यबिन्दुना । अशिवज्ञस्य यो भुङ्क्ते शिवज्ञोऽपितथैवसः

हीनवर्णाश्रयः स्याद्धिशिवभक्तोऽपिनैवसः । प्रतिगृह्यौगुणौतस्माद्विलोक्यौद्वौप्रतिग्रहे

नर उवाच

एतेन तववाक्येनहास्यंसञ्जायते मम । अहोमुग्धोऽसिमिथ्यात्वमपस्मारीजडोऽपिच

सदा सर्वेषु भूतेषु शिवोवसतिनित्यशः । साध्वसाधु ततो वाक्यंनैवनिन्दाशिवस्यसा

आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यन्तरोहरम् । तस्य भिन्नदृशोमृत्युर्विदधेभयमुल्वणम्

अथवा का हि पानीये भवेदशुचिता वद । मृत्तिकोद्भवकुम्भोऽयं पावकेनापि पाचितः

पूर्णश्च पयसा कस्मिन्नेषामशुचिता कुतः ॥ ५६ ॥

अथ चेन्मम संसर्गादशुचित्वं च मीयते । तदस्यां संस्थितःपृथ्व्यामहंत्वं च कुतोवद

कुतः पृथिव्यां चरसि खे त्वं नैव चरस्युत । एवं विचार्यमाणेते भाषितं मुग्धवद्भवेत्

कालभीतिरुवाच

सर्वभूतेषु चेद्देवं शिवएवेति चोच्यते । नास्तिका मृत्तिकां कस्माद्भक्षयन्ति नभस्यके

शुद्ध्यर्थं तेन विश्वस्य स्थापिता संस्थितिर्यथा ।

फलेन पालिता सा च नाऽन्यथा तां शृणुष्व च ॥ ६३ ॥

ससर्जेति पुरा धाता रूपात्मकमिदं जगत् । तच्च नामप्रपञ्चेन बद्धं दाम्नाचगौर्यथा

सच नामप्रपञ्चस्तु चतुर्द्धा भिद्यते किल । ध्वनिर्वर्णाः पदं वाक्यमित्यास्पदचतुष्टयम्

तत्र ध्वनिर्नादमयो वर्णाश्चाकारपूर्वकाः ।

पदं 'श वमि' ति प्रोक्तं वाक्यं चेति 'शिवं' भजेत् ॥ ६६ ॥

तच्चापि वाक्यं त्रिविधं भवेदिति श्रुतेर्मतम् । प्रभुसम्मतमेकं च सुहृत्संमतमेव च

कान्तासम्मतमेवापिवाक्यंहित्रिविधं विदुः । प्रभुः स्वामीयथाभृत्यमादिशत्येतदाचर

तथा श्रुतिस्मृती चोभे प्राहतुः प्रभुसम्मतम् । इतिहासपुराणादि सुहृत्सम्मतमुच्यते

सुहृद्वत्प्रतिबोध्यैनं प्रवर्तयति तत्त्वतः । काव्यालापादिकं यच्च कान्तासम्मतमुच्यते

प्रभुवाक्यंस्मृतंयच्चसबाह्याभ्यन्तरं शुचि । सुहृद्वाक्यंतथाशौचंपालयेत्स्वर्गकाङ्क्षया

तदेतत्पालनीयं स्याद्भूमिजानां श्रुतिर्वदेत्। त्वयानास्तिक्यवाक्येनचेदेतन्नभि
एतेन श्रुतिशास्त्राणिपुराणं च वृथैव किम्। अग्रेसप्तर्षिपूर्वा ये ब्राह्मणाःक्षत्रिया
मुग्धाः सर्वेऽभवन्दक्षा ये हि वेदंगता ह्यनु। तथावेदान्तवचनंसत्त्वस्थाह्यूर्ध्वंगा

तिष्ठन्ति राजसामध्ये ह्यधो गच्छन्ति तामसाः।
सत्त्वाहारैः सत्त्ववृत्त्या स्वर्गगामी भवेत्ततः ॥ ७९ ॥

न चैतदप्यसूयामो यद्भूतेषु शिवो न हि। अस्त्येव सर्वभूतेषु श्रृण्वत्राप्युपमा
यथा सुवर्णजातानिभूषणानिबहूनि च। कानिचिच्छुद्धरूपाणिहीनरूपाणिकानि
स्वर्णं सर्वेषु चाऽस्त्येवतथैवस सदाशिवः। हीनरूपं शोधितंसच्छुद्धिमेतिनचैव
तथेदं शोधितं देहं शुद्धं दिवि व्रजेत्स्फुटम्। तस्मात्सर्वात्मनाहीनान्नग्राह्यंवतर्थि
चेदिदं शोधयेद्देहं नैव ग्राह्यं समन्ततः। सर्वतो यः प्रतिग्राही निहाराहारयोर्न

शुचिः स्यादल्पदिवसात्पाषाणोऽसौ भवेत्स्फुटम्।
तस्मात्सर्वात्मना नैव ग्रहीष्येऽहं जलं स्फुटम् ॥ ८१ ॥

साधुवाप्यथवाऽसाधु प्रमाणं नः श्रुतिः परा। एवमुक्ते स च नरः प्रहसन्दक्षिणे
अङ्गुष्ठेन लिखन्भूमिं चक्रे गर्तं महोत्तमम्। तत्र चिक्षेप तत्तोयं तेन गर्तः स पूर्ण
अत्यरिच्यत तोयं च चक्रे पादेन सँल्लिखन्। चक्रे सरः पूरितं चाप्यतिरिक्तजलेन
तदद्भुतं महद्दृष्ट्वा नैव विप्रो विसिष्मिये। यतो बहुविधं चित्रं भवेद्भूताद्युपासिनु

तच्चित्रेण न जह्याच्च श्रुतिमार्गं सनातनम् ॥ ८६ ॥

नारद उवाच

अतिमूर्खोऽसि विप्रत्वंप्रज्ञावादांश्चभाषसे। किंन श्रुतस्त्वयाश्लोकःपुराविद्भिरुदीरि

कूपोऽन्यस्य घटोऽन्यस्य रज्जुरन्यस्य भारत ! ॥ ८७ ॥

पायन्त्यन्ये पिबन्त्यन्येसर्वे ते समभागिनः। तज्जलंममकस्मात्त्वंधर्मज्ञो न पिबस्य

नारद उवाच

ततो विमम्रुशेश्लोकोबहुधासमभागिनाम्। अनिश्चयाद्विचार्यासौघटाद्यैःसमभागि
बहुपोतद्रव्यक्षेपः सर्वैः सा समभागिता। एवं कर्तुः फलैः सर्वैः समंस्याच्चपुनःपु

यः शुचिश्च शिवं ध्यायन्प्रासादकूपकर्तरि । जलप्रतिग्रहाभावात्पिबतोऽस्यसमंफलम्
इति निश्चित्य प्रोवाच कालभीतिर्नरं च तम् । सत्यमेतत्किन्तु कुम्भपयसा गर्तपूरणे
दृष्ट्वा प्रत्यक्षतो माद्दृक्कथं पिबति भो वद । साधु वाप्यथवाऽसाधु न पिबेयं कथञ्चन
एवं विनिश्चयं दृष्ट्वाऽस्यस्थिरं कुरुनन्दन । पुरुषोऽसौ प्रहस्यैव क्षणादन्तर्दधे ततः ॥
कालभीतिश्च परमं विस्मयं समुपागतः । वृत्तान्तः कोऽयमित्येवचिन्तयामासभूयसा

ततश्चिन्तयतस्तस्य विल्वाधस्तात्सुशोभनम् ।
उच्छ्रितं सुमहालिङ्गं पृथिव्या द्योतयद्दिशः ॥ ९९ ॥

प्रादुर्भावे ततस्तस्य महालिङ्गस्य भारत । ननर्त खेऽप्सरोवृन्दं गन्धर्वा ललितं जगुः॥
पारिजातमयीं पुष्पवृष्टिमिन्द्रो मुमोच ह । जयेति देवा मुनयस्तुष्टुवुर्विविधैः स्तवैः
तस्मिन्महति कौरव्य! वर्तमाने महोत्सवे । कालभीतिः प्रमुदितःप्रणम्य स्तोत्रमैरयत्

पापस्य कालं भवपङ्ककालं कलाकलं कालमार्गस्य कालम् ।
देवं महाकालमहं प्रपद्ये श्रीकालकण्ठं भवकालरूपम् ॥ १०० ॥
ईशानवक्त्रं प्रणमामि त्वाहं स्तौति श्रुतिः सर्वविद्येश्वरस्त्वम् ।
भूतेश्वरस्त्वं प्रपितामहस्त्वं तस्मै नमस्तेऽस्तु महेश्वराय ॥ १०१ ॥
यं स्तौति वेदस्तमहं प्रपद्ये तत्पुरुषसञ्ज्ञं शरणं द्वितीयम् ।
त्वां विद्महे तच्च नस्त्वं प्रदेहि श्रीरुद्र ! देवेश नमो नमस्ते ॥ १०२ ॥
अघोरवक्त्रं त्रितयं प्रपद्ये अथर्वजुष्टं तव रूपकाणि ।
अघोरघोराणि च घोरघोराण्यहं सदा नौमि भूतानि तुभ्यम् ॥१०३ ॥
चतुर्थवक्त्रं च सदा प्रपद्ये सद्योभिजाताय नमोनमस्ते ।
भवे भवेनाऽऽदिभवो भवस्व भवोद्भवो मां शिव तत्र तत्र ॥ १०४ ॥
नमोऽस्तु ते वामदेवाय ज्येष्ठरुद्राय कालाय कलविकारिणे ।
बलङ्करायाऽपि बलप्रमाथिने भूतानि हन्त्रे च मनोन्मताय ॥ १०५ ॥
त्रियम्बकं त्वां च यजामहे वयं सुपुण्यगन्धैः शिवपुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकं पक्वमिवोग्रबन्धनाद्रक्षस्व मां त्र्यम्बक! मृत्युमार्गात् ॥ १०६ ॥

षडक्षरं मन्त्रवरं तवेश ! जपन्ति ये मुनयो वीतरागाः ।
तेषां प्रसन्नोऽसि जपामहे तं त्वोङ्कारपूर्वं च नमः शिवाय ॥ १०७ ॥
एवं स्तुतो महादेवो लिङ्गान्निःसृत्य भारत ।
त्रिजगद्द्योतयन्भासा प्रत्यक्षः प्राह च द्विजम् ॥ १०८ ॥

यत्त्वयाऽत्र महातीर्थे भृशमाराधितो द्विज । तेनाति तुष्टस्ते वत्स नेशः कालः का
अहं च नररूपी यो दृष्टा ते धर्मसंस्थितम् । धन्यस्तद्धर्ममार्गोऽयं पाल्यतेयद्वया
सर्वतीर्थोदकैर्गर्तः पूरितो मे सरस्तथा । जलमेतन्महापुण्यं त्वदर्थं मे समाहृ
सप्तमन्त्ररहस्यं च यत्कृतं स्तवनं मम । अनेन पठ्यमानेन सप्तमन्त्रफलं भवे
अभीष्टं च वरं मत्तो वृणीष्वमनसेप्सितम् । त्वयाऽतितोषितोह्यस्मिनादेयंविद्य

कालभीतिरुवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यत्त्वं तुष्टोऽसि शङ्कर ! ।
त्वत्तोषात्सफला धर्माः श्रमायैवाऽन्यथा मताः ॥ ११४ ॥

यदि तुष्टोऽसिसान्निध्यंलिङ्गेऽत्रक्रियतां सदा । अक्षयंतत्कृतंचास्तुयल्लिङ्गेक्रियते
जपतो यत्फलं देव! पञ्चमन्त्रायुतेन च । तत्फलं जायतां नृणामस्य लिङ्गस्य द

कालमार्गादहं यस्मान्मोहितोऽहं महेश्वर ! ।
महाकालमिति ख्यातं लिङ्गंतस्माद्भवत्विदम् ॥ ११७ ॥
अस्मिंश्च कूपे यो मर्त्यः स्नात्वा तर्पयते पितॄन् ।
सर्वतीर्थफलं चाऽस्तु पितॄणामक्षया गतिः ॥ ११८ ॥

इति तस्यवचः श्रुत्वाप्रीतस्तंशङ्करोऽब्रवीत् । स्वायम्भुवं यत्रलिङ्गंतत्र नित्यंवसा
स्वयम्भुवाणरत्नोत्थधातुपाषाणलोहजम् । लिङ्गं क्रमेण फलदमन्त्यात्पूर्वंदशो
आकाशे तारकालिङ्गं पाताले हाटकेश्वरम् । स्वायम्भुवं धरापृष्ठे तदेत्त्रितयं स
विशेषात्प्रार्थितं यच्च तच्चसर्वं भविष्यति । अत्र पुष्पं फलं पूजानैवेद्यंस्तवन
दानं वाऽन्यच्च यत्किञ्चिदक्षयं तद्भविष्यति । माघासितचतुर्दश्यां शिवयोगेच पु
लिङ्गाच्च पूर्वतःकूपेस्नात्वायस्तर्पयेत्पितॄन् । सर्वतीर्थफलावाप्तिःपितॄणांचाक्षया

तस्यां रात्रौ महाकालं यामेयामेप्रपूजयेत्। यः क्षिपेत्सर्वलिङ्गेषु स जागरफलंलभेत्
जितेन्द्रियश्च यो नित्यं मां लिङ्गेषु प्रपूजयेत्। भुक्तिमुक्तीनदूरस्थेतस्यनित्यंद्विजोत्तम
माघे चतुर्दश्यष्टम्यां सोमवारे च पर्वणि।
स्नात्वा सरसि योऽभ्यर्च्य लिङ्गमेतच्छिवं व्रजेत्॥ १२७॥
दानं तपो रुद्रजापः सर्वमक्षयमेव च। त्वं च नन्दी द्वितीयो मे प्रतिहारो भविष्यसि
कालमार्गजयाद्वत्स महाकालाभिधश्चिरम्। करन्धमोऽत्रराजर्षिरचिरादागमिष्यति
तस्य प्रोच्य भवान्धर्मांस्ततोमल्लोकमाव्रज। इत्युक्त्वाभगवान्रुद्रोलिङ्गमध्येन्यलीयत
महाकालोऽपि मुदितस्तत्र तेपे महत्तपः॥ १३१॥

॥ इति महाकालप्रादुर्भावः॥

नारद उवाच

अथ केनापि कालेन पार्थ राजा करन्धमः। विशेषमिच्छुर्धर्मेषु श्रुत्वातीर्थमहागुणान्
महाकालचरित्रं च तत्रैव समुपाययौ। महीसागरतोयेऽसौ स्नात्वालिङ्गान्यथार्चयत्
महाकालमनुप्राप्य परमां प्रीतिमागतः। स पश्यन्सुमहालिङ्गं नाऽतृप्यत जनेश्वरः॥
यथा दरिद्रः कृपणो निधिकुम्भमवाप्य च।
सफलं जीवितं मेने महाकालं निरीक्ष्य सः॥ १३५॥
पञ्चमन्त्रायुतजपफलं यस्येह दर्शनात्। ततः सपर्ययाऽभ्यर्च्य महत्याऽसौ प्रणम्य च
श्रुत्वा च लिङ्गप्रवरं महाकालमुपासदत्। ततो रुद्रवचः स्मृत्वा महाकालःस्मयन्निव
प्रत्युद्गम्य नृपं पूजामर्घं च प्रत्यपादयत्। ततः कुशलप्रश्नादि कृत्वा शान्तमुखं नृपः
महाकालमुपामन्त्र्य कथान्ते वाक्यमब्रवीत्।
भगवन्संशयो मह्यं सदाऽयं परिवर्तते॥ १३९॥
यदिदं तर्पणंनाम पितॄणां क्रियते नृभिः। जलमध्ये जलं याति कथं तृप्यन्ति पूर्वजाः
एवं पिण्डादिपूजा च सर्वमत्रैव दृश्यते। कथमेवं स्म मन्यामः पित्राद्यैरुपभुज्यते॥
न चैतदस्ति यत्तेषां नोपतिष्ठति किञ्चन। स्वप्ने यथाक्रम्य नरं दृश्यन्तेयाचकाश्चते॥
देवानां चापि दृश्यन्ते प्रत्यक्षाःप्रत्ययाः सदा। तत्कथंप्रतिगृह्णन्तिमनोमेऽत्र प्रमुह्यति

महाकाल उवाच

योनिरेवंविधा तेषां पितृणां च दिवौकसाम् । दूरोक्तं दूरपूजा च दूरस्तुतिरथापि
भव्यं भूतं भविष्यच्च सर्वं जानन्ति यान्ति च । पञ्चतन्मात्ररूपं च मनोबुद्धिरहं
नवतत्त्वमयं देहं दशमः पुरुषो मतः । तस्माद्गन्धेन तृप्यन्ति रसतत्त्वेन ते तथ
शब्दतत्त्वेन तुष्यन्ति स्पर्शतत्त्वं च गृह्णते । शुचि दृष्ट्वा च तुष्यन्तिनात्रराजन्मनो
यथा तृणं पशूनां च नराणामन्नमुच्यते । एवं दैवतयोनीनामन्नसारस्य भोजन
शक्तयः सर्वभावानामचित्या ज्ञानगोचराः । तस्मात्तत्त्वं प्रगृह्णन्ति शेषमत्रैवदृश्यते

करन्धम उवाच

पितृभ्यो दीयते श्राद्धं स्वकर्मवशगाश्च ते । स्वर्गस्था नरकस्था वा कथं तैरुपभुज्य

अथ स्वर्गेऽथ नरके स्थिताः कर्माभियन्त्रिताः ।
शक्नुवन्ति वरानेतान्दातुं ते चेश्वराः कथम् ॥ १५१ ॥
आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।
प्रयच्छन्तु यथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः ॥ १५२ ॥

महाकाल उवाच

सत्यमेतत्स्वकर्मस्थाः पितरो यज्ञपोत्तम !। किन्तु देवासुराणाञ्च यक्षादीनाममूर्त
मूर्ताश्चतुर्णां वर्णानांपितरःसप्तधा स्मृताः । ते हि सर्वेंप्रयच्छन्तिदातुंसर्वंयथेप्सि
एकत्रिंशद्गणा येषां पितृणां प्रबला नृप !। कृतं च तदिदं श्राद्धं तर्पयेत्तान्परान्पितॄ

ते तृप्तास्तर्पयन्त्यस्य पूर्वजान्यत्र संस्थितान् ।
एवं स्वानां चोपतिष्ठेच्छ्राद्धं यच्छन्ति ते वरान् ॥ १५६ ॥

राजोवाच

भूतादिभ्यो यथा विप्र नाम्ना वोद्दिश्य दीयते । सुरादीनां कथं चैव संक्षेपेणन
इदं पितृभ्योदेवेभ्योद्विजेभ्यःपावकाय च एवंकस्माद्विस्तराःस्युर्मनःकायादिक

महाकाल उवाच

उचिता प्रतिपत्तिश्च कार्या सर्वेषु नित्यशः । प्रतिपत्तिं चोचितान्ते विनागृह्णन्तिवै

यथा श्वा गृहद्वारस्थो वलिं गृह्णाति किं तथा। प्रधानपुरुषोराजन्गृह्णातिचशुनासमः
एवं ते भूतवद्देवा न हि गृह्णन्ति कर्हिचित्। शुचि कामं जुषन्ते न हविरश्रद्दधानतः॥
विना मन्त्रैश्च यद्दत्तं न तद्गृह्णन्ति तेऽमलाः। श्रुतिरप्यत्र प्राहेदं मन्त्राणांविषये नृप
"मन्त्रा दैवता यद्यद्विद्वान्मन्त्रवत्करोति देवताभिरेव तत्करोतियद्ददाति देवताभिरेव
तद्ददाति यत्प्रतिगृह्णाति देवताभिरेव तत्प्रतिगृह्णाति तस्मान्नामन्त्रवत्प्रतिगृह्णीयात्
नाममन्त्रवत्प्रतिपद्यते" इति॥ १६३॥
तस्मान्मन्त्रैः सदा देयं पौराणैर्वैदिकैरपि। अन्यथा ते न गृह्णन्ति भूतानामुपतिष्ठति॥

राजोवाच

दर्भांस्तिलानक्षतांश्चतोयंचैतैःसुसंयुतम्। कस्मात्प्रदीयतेदानंज्ञातुमिच्छामिकारणम्

महाकाल उवाच

पुरा किल प्रदत्तानि भूमेर्दानानि भूरिशः। प्रत्यगृह्णन्त दैत्याश्च प्रविश्याभ्यन्तरं बलात्
ततो देवाश्च पितरः प्रत्यूचुः पद्मसम्भवम्॥ १६७॥
स्वामिन्नःपश्यतामेवसर्वं दैत्यैःप्रगृह्यते। विधेहि रक्षां तेषां त्वंननष्टाः स्मोयथावयम्
ततो विमृश्यैव विधि रक्षो पापमचीकरत्। तिलैर्युक्तं पितृणां च देवानामक्षतैः सह
तोयं दर्भांश्च सर्वत्र एवं गृह्णन्ति नासुराः। एतान्विना प्रदत्तं यत्फलंदैत्यैः प्रगृह्यते॥
निःश्वस्य पितरो देवा यान्तिदातुःफलं नहि। तस्माद्युगेषु सर्वेषु दानमेव प्रदीयते॥

करन्धम उवाच

चतुर्युगव्यवस्थानां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। महतीयं विवित्सा मे सदैव परिवर्तते

महाकाल उवाच

आद्यं कृतयुगं विद्धिततस्त्रेतायुगं स्मृतम्। द्वापरं च कलिश्चेति चत्वारश्च समासतः
सत्त्वं कृतं रजस्त्रेता द्वापरं च रजस्तमः। कलिस्तमस्तु विज्ञेयं युगवृत्तं युगेषु च॥
ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां यज्ञ उच्यते। वृत्तं च द्वापरे सत्यं दानमेव कलौ युगे॥
कृतेतुमानसीसृष्टिर्वृत्तिःसाक्षाद्रसोल्लसा। तेजोमय्यःप्रजास्तृप्ताःसदानन्दाश्चभोगिनः
अधमोत्तमानतासांतानिर्विशेषाःप्रजाःशुभाः। तुल्यमायुःसुखंरूपंतासांतस्मिन्कृतेयुगे

न चाप्रीतिर्न च द्वन्द्वो नद्वेषोनापिचक्लमः । पर्वतोदधिवासिन्योह्यनुक्रोशप्रियाः
वर्णाश्रमव्यवस्थाचतदासीन्न हि शङ्करः । एकमन्यं न ध्यायन्ति परमं ते सदा
चतुर्थे च ततः पादे नष्टा साऽभूद्रसोल्लसा ।
प्रादुरासंस्ततस्तासां वृक्षाश्चगृहसञ्ज्ञिताः ॥ १८० ॥
वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलान्याभरणानिच । तेष्वेवजायतेतासां गन्धवर्णरसान्वि
क्षुमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु । तेन ता वर्तयन्ति स्म कृतस्याऽन्ते प्रजा
हृष्टपुष्टास्तथा वृद्धाः प्रजा वै विगतज्वराः । ततःकालेन केनाऽपि तासांवृद्धेरसे
युगभावात्तथाध्यानेस्वल्पीभूतेशिवस्य च । वृक्षांस्तान्पर्यगृह्णन्तमधुवामाक्षिकं
तासां तेनोपचारेण लोभदोषकृतेन वै । प्रनष्टा मधुना सार्धं कल्पवृक्षाः क्वचित्
तस्यां त्वाप्यल्पशिष्टायां द्वन्द्वान्यभ्युत्थितानि वै ।
शीतातपैर्मनोदुःखैस्ततस्ता दुःखिता भृशम् ॥ १८६ ॥
चक्रुरावरणार्थं हि केतनानि ततस्ततः । ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पु
वृष्ट्यावभूवुरौषध्यो ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश । अकृष्टपच्याश्चानूप्तास्तोयभूमिसमाग
ऋतु पुष्पफलैश्चैव वृक्षगुल्माश्च जज्ञिरे । तैश्च वृत्तिरभूत्तासांधान्यैःपुष्पैः फलै
ततः पुनरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्वतः । कालवीर्येण वा गृह्य नदीक्षेत्राणि पर्व
वृक्षगुल्मौषधींश्चैव प्रसह्याऽऽशु यथाबलम् । विपर्ययेण चौषध्यः प्रनष्टाश्च चतुर्द
नत्वाधरांप्रविष्टास्ताओषध्यःपीडिताःप्रजाः । दुदोह गां पृथुर्वैन्यः सर्वभूतहिताय
तदा प्रभृतिचौषध्यःफालकृष्टाः प्रजास्ततः । वार्त्तयावर्तयन्ति स्मपाल्यमानाश्चक्ष
वर्णाश्रमप्रतिष्ठा च यज्ञस्त्रेतासु चोच्यते ।
सदाशिवध्यानमयं त्यक्त्वा मोक्षमचेतनाः ॥ १९४ ॥
पुष्पितां वाचमाश्रित्यरागात्स्वर्गमसाधयन् । द्वापरे च प्रवर्तन्तेमतिभेदास्ततो
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्ता प्रसिद्ध्यति ।
लोभोऽधृतिः शिवं त्यक्त्वा धर्माणां शङ्करस्तथा ॥ १९६ ॥
वर्णाश्रमपरिध्वंसाः प्रवर्तन्ते च द्वापरे । तदा व्यासैश्चतुर्द्धा च व्यस्यते द्वापरे

एको वेदश्चतुष्पादैः क्रियते द्विजहेतवे। इतिहासपुराणानि भिद्यन्ते लोकगौरवात्
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा।
तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् ॥ १९९ ॥
आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं स्मृतम्। दशमं ब्रह्मवैवर्तंलैङ्गमेकादशं तथा॥२००॥
वाराहं द्वादशं चैव स्कान्दं चैव त्रयोदशम्। चतुर्दशं वामनं च कौर्मंपञ्चदशं स्मृतम्
मात्स्यंपोडषकं प्रोक्तं गारुडं च ततः परम्। अतः परं तु ब्रह्माण्डमेवञ्चाष्टादशानिहि
अस्मिन्वाराहकल्पेचव्यासानाकर्णयस्वच। ऋतुःसत्योभार्गवश्चअङ्गिराःसवितातथा
मृत्युः शतक्रतुर्धीमान्वसिष्ठोभविताऽधुना। सारस्वतस्त्रिधामाचवेदवित्त्रिवृतोमुनिः
शततेजाः स्वयं विष्णुर्नारायण इति स्मृतः। करकश्चारुणिर्धीमांस्तथादेव ऋतञ्जयः
कृतञ्जयो भरद्वाजो गौतमः कविसत्तमः।
वाजश्रवा मुनिश्चैव तथा शुष्मायणो मुनिः ॥ २०६ ॥
तृणविन्दुस्तथाऋक्षःशक्तिःपाराशरस्तथा। जातूकर्ण्योऽथविष्णुश्चस्वयंद्वैपायनोमुनिः
अश्वत्थाममुखाश्चैतेभविष्याःसूचितास्तव। धर्मशास्त्राणिलोकार्थंभिद्यन्तेचापिद्वापरे
मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः। यमापस्तम्बसम्वर्ताःकात्यायनवृहस्पती
पराशरव्यासशंखलिखिता दक्षगौतमौ। शातातपो वसिष्ठश्चधर्मशास्त्रप्रयोजकाः॥
ततो द्वापरसन्ध्यायां प्रवर्तति कलौ युगे। नश्यमाने शैवयोगे जायन्ते योगनन्दनाः
आद्येश्वेतकलौरुद्रः सुतारस्तारणस्तथा। सुहोत्रः कङ्कणश्चैव लोकाख्यश्च महामुनिः
जैगीषव्यश्च भाव्यो वै भगवान्दधिवाहनः।
ऋषभश्चमुनिर्धर्म उग्रश्चाऽत्रिःसंवालकः ॥ २१३ ॥
गौतमो वेदशीर्णश्चगोकर्णश्च शिखण्डभृत्। गुहावासी जटामालीअट्टहासश्चदारुणः
लाङ्गली संयमी शूली डिण्डी जुण्डीश्वरः स्वयम्।
सहिष्णुः सोमशर्मा च लकुलीशश्च पार्थिव ! ॥ २१५ ॥
कायावरोहणोभावीत्याद्यायोगेश्वराःक्रमात्। एते संक्षिप्यवक्ष्यन्तिशिवधर्मंकलौयुगे
एवंकलियुगेराजञ्छास्त्रसंक्षेप उच्यते। शृणु तिष्यप्रवृत्तिं च हर्षोद्वेगकरीं किल॥

तिष्येमायामसूयांच वधं चैवतपस्विनाम् । साधयन्तिनरास्तत्रतमसाव्याकुलेन्द्रि
कलौ प्रमाथको रोगः सततं क्षुद्भयानि च । अनावृष्टिभयं घोरं देशानां च विप
न प्रमाणंश्रुतेरस्तिनृणांचाधर्मसेवनात् । अधार्मिकास्त्वनाचारामहाकोपाल्पते
अनृतंब्रुवते लुब्धा नारीप्रायाश्च दुष्प्रजाः । दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुराग

विप्राणां कर्मदोषैश्च प्रजानां जायते क्षयः ।
उत्सीदन्ति क्षत्रविशो वर्धन्ते शूद्रविप्रकाः ॥ २२२ ॥

शूद्राविप्रैः सहाऽऽसन्तेशयनासनभोजनैः । शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराःशूद्राचाराश्चब्राह्म

राजवृत्त्यांस्थिताश्चौराश्चौराचाराश्चपार्थिवाः ।
एकपत्न्यो न शिष्यन्ति वर्धयन्त्यभिसारिकाः ॥ २२४ ॥

तदाह्यल्पफलाभूमिःक्वचिच्चाऽपि महाफला । अरक्षितारो हर्तारोराजानः पापनि
अक्षत्रियास्तुराजानोविप्राःशूद्रोपजीविनः । शूद्रा विवादिनः सर्वे ब्राह्मणैरभिनन्दि
आसनस्थान्द्विजान्दृष्ट्वानचलन्त्यल्पबुद्धयः । आस्येनिधायवैहस्तंकर्णेशूद्रस्यचद्विज
नीचस्यापितदावाक्यंवक्ष्यन्तिविनयेनतम् । उच्चासनस्थाञ्छूद्रांश्च द्विजानांपश्यताम
ज्ञात्वा न हिंसते राजा पश्य कालबलं नृप । पुष्पैः शुभसितैश्चैव तथान्यैर्मण्डनैर्द्विज
शूद्रानभ्यर्चयन्त्यल्पश्रुतभाग्यबलान्विताः । पाषण्डिनां च गृह्णन्तिब्राह्मणाःकुप्रति

येन ते रौरवं यान्ति सुदुस्तारं द्विजाधमाः ।
तपोयज्ञफलानां च विक्रेतारो द्विजास्तथा ॥ २३१ ॥

यतयश्च भविष्यन्ति बहवःकोटिशःकलौ । पुरुषाल्पबहुस्त्रीको नृणांचापत्यसा
निन्दन्ति वेदवाक्यानि वेदार्थांश्च कलौयुगे । शूद्रैःस्वयंनिर्मितंयत्प्रमाणंशास्त्रमेव
श्वापदप्रबलत्वं च गवां चापि परिक्षयः । कस्यचिद्दानप्रभृतिधर्मस्याऽस्ति न शु
साधूनांबहवो नाशाःपार्थिवाश्चाप्यरक्षिणः । अट्ट शूलाजनपदाःशिवशूलाश्चतुष्प
प्रमदाःकेशशूलिन्योभविष्यन्तिकलौयुगे । स्त्रीप्रधानानिगेहानिकुचैलास्ताश्चकर्क
बहुभक्ष्यावलिप्ताश्च कृत्या इव भवन्ति च । सर्वेवणिग्जनाश्चापिचित्रवर्णैवना

कुशीलचर्यापाषण्डैर्वृथारूपः समावृतः ।

बहुयाचनको लोको भविष्यति परस्परी ॥ २३८ ॥

[अ]शङ्कश्चैव पापेषु तदा लोको भविष्यति। हर्तारः पररत्नानां परदारप्रधर्षकाः ॥
[ऊ]नषोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये। तथा द्वादशवर्षाश्च प्रसवन्ति स्त्रियस्तदा ॥
[चौ]राश्चौरस्य हर्तारो हर्तुर्हर्त्ता तथापरः। ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते ॥

कीटमूषकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान्।
वर्णाश्रमाणां ये चान्ये पाषण्डाः परिपन्थिनः ॥ २४२ ॥

[ते] तदा प्रोद्भविष्यन्ति तेषां वृद्धिश्च पार्थिव !। दुःखं पुत्रकलत्राद्यंदेहोत्सादःसरोगता
[अ]धर्माभिनिवेशत्वात्तमसो जायते कलौ। कलेर्दोषनिधेश्चैव शृणुष्वैवं महागुणम् ॥
[य]दाल्पेनैव काले न सिद्धिंगच्छन्तिमानवाः। त्रियुगीनां वदन्त्येवंधन्याधर्मंचरन्तिये
[श्रु]तिस्मृतिपुराणोक्तंकलौश्रद्धापरायणाः। त्रेतायांवार्षिकोधर्मोद्वापरेमासिकःस्मृतः
[य]था क्लेशं चरन्प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्यतेकलौ। युगत्रयेणतावन्तःसिद्धिंगच्छन्तिपार्थिव !
[या]वन्तः सिद्धिमायान्ति कलौ हरिहरव्रताः। अष्टाविंशेकलौयच्चभावितत्त्वंनिबोध मे
[त्रि]षु वर्षसहस्रेषु कलेर्यातेषु पार्थिव !। त्रिशतेषु दशन्यूनेष्वस्यां भुवि भविष्यति ॥
[शू]द्रकोनाम वीराणामधिपः सिद्धिमत्र सः। चर्चितायां समाराध्य लप्स्यतेभूभरापहः

ततस्त्रिषु सहस्रेषु दशाधिकशतत्रये।
भविष्यं नन्दराज्यं च चाणक्यो यान्हनिष्यति ॥ २५१ ॥

[शु]क्लतीर्थे सर्वपापनिर्मुक्तिं योऽभिलप्स्यति। ततस्त्रिषु सहस्रेषुविंशत्या चाऽधिकेषु च
भविष्यंविक्रमादित्यराज्यंसोऽथप्रलप्स्यते। सिद्धिप्रादाद्दुर्गाणांदीनान्योह्युद्धरिष्यति
ततः शतसहस्रेषु शतेनाप्यधिकेषु च। शकोनाम भविष्यश्च सोऽतिदारिद्र्यहारकः
ततस्त्रिषु सहस्रेषुषट्शतैरधिकेषु च। मागधेहेमसदनादञ्जन्यां प्रभविष्यति ॥ २५५ ॥
विष्णोरंशोधर्मपातावुधःसाक्षात्स्वयंप्रभुः। तस्यकर्माणिभूरीणिभविष्यन्तिमहात्मनः
ज्योतिर्विन्दुमुखानुग्रान्सहनिष्यतिकोटिशः। चतुःषष्टिसवर्षाणिभुक्त्वाद्वीपानिसप्तच
[अ]र्कस्यः स्वयशो मुक्त्वादिवंपश्चाद्गमिष्यति। सर्वेषांचावताराणांगुणैःसमधिकोयतः
ततो वक्ष्यन्ति तं भक्त्या सर्वपापहरं बुधम्। चतुर्षु च सहस्रेषु शतेष्वपि चतुर्षु च ॥

साधिकेषु महान्राजा प्रमितिः प्रभविष्यति । गोत्रेषु वै चन्द्रमसो बहुसेनापरि
म्लेच्छान्स कोटिशो हत्वा पाषण्डानि च सर्वशः ।
वैदिकं केवलं शुद्धं सद्धर्मं वर्तयिष्यति ॥ २६१ ॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां यास्यति पार्थिवः । ततः प्रजाश्चकालेनकेनापि भूशर्
घोरं वा धर्ममाश्रित्य शाठ्येनचभवन्तिताः । अप्रग्रहास्ततस्ता वै लोभाविष्टाश्च
उपहिंसन्ति चान्योन्यं व्याकुलाःश्रमपीडिताः । नष्टे श्रौतेतथास्मार्तेपरस्परह
निर्मर्यादा निष्करुणा निस्नेहानिरपत्रपाः । गृहदारादिसन्त्यज्यहस्वकाःपश्च
हाहाभूताश्चरिष्यन्तिविषादव्याकुलेन्द्रियाः। अनावृष्टिहताश्चैववार्तामुत्सृज्यदुः
प्रत्यंतांस्ता निषेवन्ति हित्वा जनपदान्स्वकान् ।
सरित्सागरकूलांश्च सेवन्ते पर्वतांस्तथा ॥ २६७ ॥
मांसैर्मूलफलैश्चैव वर्तयन्ति सुदुःखिताः । चीरपत्राजिनधरा निष्क्रिया निष्परि
धर्मस्य वासमात्रंचशाल्वोम्लेच्छोहनिष्यति । उत्तमाधममध्यत्वंसर्वमुच्छिद्य
ततस्तस्य वधार्थाय विष्णुःसाक्षाज्जगत्पतिः । शम्भले विष्णुयशसोभूत्वापुत्रोनृप
द्विजोत्तमैः परिवृतः शाल्वं तं संहरिष्यति । कोटिशोऽर्बुदशःपापान्निहत्यचनि
पालयिष्यति तं धर्मं यो धर्मः श्रुतिपूर्वकः ॥ २७२ ॥
कृत्वा पोतं धर्मरूपं साधूनां परमेश्वरः । गमिष्यति परं लोकं कृत्वा कर्माणिभू
ततः कृतयुगं भूयः प्रवर्तिष्यति पार्थिव !। आद्यं कृतयुगं चान्यं तदन्येभ्यो विशि
अष्टाविंशकलिश्चैव शेषः प्रावर्त्त अन्यतः । ततः कृते सूर्यवंशः सोमवंशः प्रवर्त्स्य
मरुराजाच्च देवापेः श्रुतदेवाच्च ब्राह्मणाः । इति चातुर्युगी राजन्व्यवस्था परिकी
चतुर्युगे च ते धन्या ये भजन्ति हराच्युतौ ॥ २७६ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरख
कौमारिकाखण्डे महाकालकरन्धमसम्वादे चतुर्युगव्यवस्थावर्णनं
नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

महाकालकरन्धमसम्वादे शिवपूजाविधानवर्णनं नारकीणांगतिवर्णनम्

करन्धम उवाच

केचिच्छिवंसमाश्रित्यविष्णुमाश्रित्यवेधसम्। वर्णयन्तिपरैमोक्षंत्वंतुकस्मात्तुमन्यसे

महाकाल उवाच

अपारवैभवा देवास्त्रयोऽप्येते नरर्षभ !। योगीन्द्राणामपि त्वत्र चेतो मुह्यति किं मम
पुरा किलैवं मुनयो नैमिषारण्यवासिनः। सन्दिह्याऽन्तः श्रेष्ठतायांब्रह्मलोकमुपागमन्
तस्मिन्क्षणे विरिञ्चोऽपि श्लोकं प्रह्वोऽब्रवीत्किल।
अनन्ताय नमस्तस्मै यस्याऽन्तो नोपलभ्यते ॥ ४ ॥
महेशाय च भक्ते द्वौ कृपायेतां सदा मयि। ततः श्रेष्ठं च तं मत्वाक्षीरोदंमुनयोययुः
तत्र योगेश्वरः श्लोकं प्रबुध्यन्नमुमब्रवीत्। ब्रह्माणं सर्वभूतेषु परमं ब्रह्मरूपिणम् ॥६॥
सदाशिवं च वन्दे तौ भवेतां मङ्गलाय मे। ततस्ते विस्मिता विप्रा अपसृत्यययुःपुनः
कैलासे ददृशुः स्थाणुं वदन्तं गिरिजांप्रति। एकादश्यांप्रनृत्यानिजागरैविष्णुसद्मनि
सदा तपस्यां चरामि प्रीत्यर्थंहरिवेधसोः। श्रुत्वेतिचापसृत्यैव खिन्नास्तेमुनयोऽब्रुवन्
यद्वा देवा न संयान्ति पारं ये च परस्परम्। तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु गणनाकाऽस्मदादिषु
उत्तमाधममध्यत्वममीषां वर्णयन्ति ये। असत्यवादिनः पापास्तेयान्ति निरयं ध्रुवम्
एवं ते निश्चयामासुर्नैमिषेयास्तपस्विनः। सत्यमेतच्च राजेन्द्र! ममापीदं मतं स्फुटम्
जापकानां सहस्राणि वैष्णवानां तथैव च।
शैवानां च विधिं विष्णुं स्थाणुं चाप्यन्वमूमुचन् ॥ १३ ॥
तस्माद्यस्य मनोरागो यस्मिन्देवे भवेत्स्फुटम्। सतंभजेद्धिपापःस्यान्ममेदंमतमुत्तमम्

करन्धम उवाच

कानि पापानि विप्रेन्द्र ! यैस्तु सम्मूढचेतसः। न वेदेषु न धर्मेषु रतिमापद्यते मनः ॥

महाकाल उवाच

अधर्मभेदा विज्ञेयाश्चित्तवृत्तिप्रभेदतः। स्थूलाः सूक्ष्मा असूक्ष्माश्च कोटिमेदैः
तत्र ये पापनिचयाः स्थूला नरकहेतवः। ते समासेन कथ्यन्ते मनोवाक्कायसा
परस्त्रीद्रव्यसङ्कल्पश्चेतसानिष्टचिन्तनम्। अकार्याभिनिवेशश्च चतुर्द्धा कर्म मान
अनिबद्धप्रलापित्वमसत्यं चाऽप्रियं च यत्। परापवादपैशुन्यं चतुर्धा कर्म वा

अभक्ष्यभक्षणं हिंसा मिथ्या कामस्य सेवनम्।
परस्वानामुपादानं चतुर्धा कर्म कायिकम्॥ २०॥

इत्येतद्द्वादशविधं कर्म प्रोक्तं त्रिसम्भवम्। अस्य भेदान्पुनर्वक्ष्ये येषां फलम
ये द्विषन्ति महादेवं संसारार्णवतारकम्। सुमहत्पातकोपेतास्ते यान्ति नरका
महान्ति पातकान्याहुर्निरन्तरफलानि षट्। नाभिनन्दन्ति ये दृष्ट्वा शङ्करंनस्तु
यथेष्टचेष्टा निःशङ्काः सन्तिष्ठन्ति रमन्ति च। उपचारविनिर्मुक्ताः शिवस्यगुरु
शिवाचारं न मन्यन्ते शिवभक्तान्द्विषन्ति षट्। गुरुमार्त्तमशक्तंवा विदेशप्रस्थि
अरिभिः परिभूतं वा यस्त्यजतिसपापकृत्। तद्भार्यापुत्रमित्रेषु यश्चावज्ञां करो
इत्येतत्पातकं ज्ञेयं गुरुनिन्दासमं महत्। ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरु
महापातकिनस्त्वेते तत्संसर्गींच पञ्चमः। क्रोधाद्द्वेषाद्भयाल्लोभाद्ब्राह्मणस्य
मर्मान्तिकं महादोषं ब्रह्मघ्नः स प्रकीर्तितः। ब्राह्मणं यः समाहूय याचमानम

पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्स च वै ब्रह्महा स्मृतः।
यश्च विद्याभिमानेन निस्तेजयति सद्द्विजम्॥ ३०॥

उदासीनः सभामध्येब्रह्महासप्रकीर्तितः। मिथ्यागुणैःस्वमात्मानं नयत्युत्कर्ष
विरुद्धं गुरुभिः सार्धंब्रह्मघ्नःसप्रकीर्तितः। क्षुत्तृष्णातप्तदेहानां द्विजानांभोक्तुमि
यः समाचरते विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम्। पिशुनः सर्वलोकानां छिद्रान्वेषण
उद्वेगजननः क्रूरः स च वै ब्रह्महा स्मृतः। गवां तृषाभिभूतानां जलार्थमुपस
यःसमाचरते विघ्नं तमाहुर्ब्रह्मघातकम्। परदोषं परिज्ञाय नृपकर्णे जपेत यः
पापीयान्पिशुनः क्रूरस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्। न्यायेनोपार्जितं विप्रैस्तद्द्रव्यहर

छद्मना वा बलाद्वापि ब्रह्महत्यासमं मतम्। अधीत्य यश्चशास्त्राणिपरित्यजतिमूढधीः
सुरापानसमं ज्ञेयं जीवनायैव वा पठेत्। अग्निहोत्रपरित्यागः पञ्चयज्ञोपकर्मणाम्॥३८
मातृपितृपरित्यागः कूटसाक्षी सुहृद्वधः। अभक्ष्यभक्षणं वन्यजन्तूनां काम्यया वधः
ग्रामं वनं गवावासं यश्च क्रोधेन दीपयेत्। इतिघोराणि पापानिसुरापानसमानि च
दीनसर्वस्वहरणं नरस्त्रीगजवाजिनाम्। गोभूरत्नसुवर्णानामौषधीनां रसस्य च॥
चन्दनागरुकर्पूरकस्तूरीपट्टवाससाम्। हस्तन्यासापहरणं रुक्मस्तेयसमं स्मृतम्॥
कन्यानां वरयोग्यानामदानं सदृशे वरे। पुत्रमित्रकलत्रेषु गमनं भगिनीषु च ॥४३॥
कुमारीसाहसं घोरमन्त्यजस्त्रीनिषेवणम्। सवर्णायाश्च गमनं गुरुतल्पसमं स्मृतम्
द्विजायार्थं प्रतिश्रुत्य न प्रयच्छति यः पुनः। न च स्मारयते विप्रं तुल्यं तदुपपातकम्

अभिमानोऽतिकोपश्च दाम्भिकत्वं कृतघ्नता।
अत्यन्तविषयासक्तिः कार्पण्यं शाठ्यमत्सरम्॥ ४६ ॥
भृत्यानाञ्च परित्यागः साधुबन्धुतपस्विनाम्।
गवां क्षत्रियवैश्यानां स्त्रीशूद्राणाञ्च ताडनम्॥ ४७ ॥

शिवाश्रमतरूणाञ्चपुष्पारामविनाशनम्। अयाज्यानांयाजनंचाप्ययाच्यानाञ्चयाचनम्
यज्ञारामतडागादिदारापत्यस्यविक्रयः। तीर्थयात्रोपवासानां व्रतायतनकर्मणाम्॥४६
स्त्रीधनान्युपजीवन्ति स्त्रीभिरत्यन्तनिर्जिताः। अरक्षणञ्च नारीणांमद्यपस्त्रीनिषेवणम्

ऋणानामप्रदानञ्च मिथ्यावृद्ध्युपजीवनम्।
निन्दितानां धनादानं साध्वीकन्योक्तिदूषणम्॥ ५१ ॥

विषमारणयन्त्राणां प्रयोगो मूलकर्मणाम्। उच्चाटनाभिचाराश्च रागविद्वेषणक्रिया
जिह्वाकामोपभोगार्थं यस्यारम्भः स्वकर्मसु। मूल्येनाध्यापयेद्यस्तु मूल्येनाऽधीयतेचये
व्रात्यता व्रतसन्त्यागः सर्वाहारनिषेवणम्। असच्छास्त्राभिगमनं शुष्कतर्कावलम्बनम्
देवाग्निगुरुसाधूनां निन्दा गोब्राह्मणस्य च। प्रत्यक्षंवापरोक्षं वा राज्ञांमण्डलिनामपि

उत्सन्नपितृदेवेज्याः स्वकर्मत्यागिनश्च ये।
दुःशीला नास्तिकाः पापा न सदा सत्यवादिनः॥ ५६ ॥

पर्वकाले दिवा चाप्सु वियोनौ पशुयोनिषु। रजस्वलास्वयोनौ च मैथुनं यः समा
स्त्रीपुत्रमित्रसुहृदामाशाच्छेदकराश्च ये। जनस्याऽप्रियवक्तारः क्रूराः समयभेदि
भेत्ता तडागकूपानां सङ्क्रमाणां रसस्य च। एकपङ्क्तिस्थितानाञ्च पाकभेदं करोति
इत्येतैश्च नराः पापैरुपपातकिनः स्मृताः। युक्तास्तदूनकैः पापैः पापिनस्तान्निबोध

ये गोब्राह्मणकन्यानां स्वामिमित्रतपस्विनाम्।
अन्तरं यान्ति कार्येषु ते स्मृताः पापिनो नराः ॥ ६१ ॥

परश्रियाऽभितप्यन्ते हीनां सेवन्ति ये स्त्रियाम्। पङ्क्त्यर्थं येन कुर्वन्ति दानयज्ञादिकाः क्रिय
गोष्ठाग्निजलरथ्यासु तरुच्छायानगेषु च। त्यजन्ति ये पुरीषाद्यमारामायतनेषु च
गीतवाद्यरता नित्या मत्ताः किलकिलापराः। कूटवेषक्रियाचाराः कूटसत्यव्यवहारि
कूटशासनकर्तारः कूटयुद्धकराश्च ये। निर्दयोऽतीव भृत्येषु पशूनां दमनश्च यः।

मिथ्याप्रसादितो वाक्यमाकर्णयति यः शनैः।
चपलश्चाऽपि मायावी शठो मिथ्याविनीतकः ॥ ६६ ॥
यो भार्यापुत्रमित्राणि बालवृद्धकृशातुरान्।
भृत्यानतिथिबन्धूंश्च त्यक्त्वाऽश्नाति बुभुक्षितान् ॥ ६७ ॥

यः स्वयं मृष्टमश्नाति विप्रायान्यत्प्रयच्छति। वृथापाकः स विज्ञेयो ब्रह्मवादिविगर्हि
नियमान्स्वयमादाय ये त्यजन्त्यजितेन्द्रियाः। ये ताडयन्ति गा नित्यं वाहयन्ति मुहुर्मुहु
दुर्बलांश्चैव पुष्णन्ति प्रणष्टार्था द्विषन्ति च। पीडयन्त्यभिचारेण सक्षतान्वाहयन्ति च

तेषामदत्त्वा चाऽश्नन्ति चिकित्सन्ति न रोगिणः।
अजाविको माहिषिकः समुद्री वृषलीपतिः ॥ ७१ ॥

हीनवर्णात्मवृत्तिश्च वैद्यो धर्मध्वजी च यः। यश्च शास्त्रमतिक्रम्य स्वेच्छयैवाहरेत्कर
सदा दण्डरुचिर्यश्च यो वा दण्डरुचिर्न हि। उत्कोचकैरधिकृतैस्तस्करैश्च प्रपीड्यते
यस्य राज्ञः प्रजा राष्ट्रे पच्यते नरकेषु सः। अचौरं चौरवत्पश्येच्चौरं वाऽचौररूपिण
आलस्योपहतो राजा अव्यसनी नरकं व्रजेत्। एवमादीनि चान्यानि पापान्याहुः पुराविद
यद्वा तद्वा परद्रव्यमपि सर्षपमात्रकम्। अपहृत्य नरः पापो नारकी नाऽत्र संशयः॥

वमाद्यैर्नरः पापैरुत्क्रान्तैः समनन्तरम् । शरीरं यातनार्थाय पूर्वाकारमवाप्नुयात् ॥
स्मात्त्रिविधमप्येतन्नारकीयं विवर्जयेत् । सदाशिवं च शरणं व्रजेत्सच्छ्रद्धया युतः
मस्कारः स्तुतिःपूजानामसङ्कीर्तनंतथा । सम्पर्कात्कौतुकाल्लोभान्नतस्यविफलंभवेत्

करन्धम उवाच

क्षेपाच्छिवपूजाया विधानं वक्तुमर्हसि । कृतेन येन मनुजः शिवपूजाफलं लभेत् ॥

महाकाल उवाच

तर्मध्याह्नसायाह्ने शङ्करं सर्वदाभजेत् । दर्शनात्स्पर्शनान्मर्त्यः कृतकृत्यो भवेत्स्फुटम्
दौ स्नानं प्रकुर्वीत भस्मस्नानमथापि वा । आपद्गतः कण्ठस्नानंमन्त्रस्नानमथापिवा
विकं परिदध्याच्च ततो वासः सितञ्च वा । धातुरक्तमथो नव्यं मलिनंसन्धितंनच
रीयं च सन्दध्याद्बिनातन्निष्फलार्चनम् । भस्मत्रिपुण्ड्रधारीचललाटेहृदिचांसयोः
ययो महादेवं प्रीतः पश्यति तं मुहुः । सर्वदोपान्बहिः क्षिप्य शिवायतनमाविशेत्

प्रविश्य च प्रणम्येशं ततो गर्भगृहं विशेत् ।
पाणी प्रक्षाल्य तच्चित्तो निर्माल्यमवरोपयेत् ॥ ८६ ॥

रुद्रायने भक्त्या कुरुते मार्जनक्रियाम् । तस्मान्मार्जयते त्वेवं स्थाणुर्नैतत्परस्परम्
मतया च सन्तिष्ठेन्मालिन्यंमार्जयेत्ततः । भक्तिर्देवस्यतिष्ठेन्नमालिन्यंमार्जतःसदा
डुकान्पूरयेत्पश्चान्निर्मलेन जलेन वै । गडुकास्तु समाः सर्वे सर्वे च शुभदर्शनाः ॥
र्णाः सौम्यरूपाश्च सर्वे चोदकपूरिताः । वस्त्रपूतजलैः पूर्णा गन्धधूपैश्च वासिताः
लिताः पूरिता नीताः षडक्षरजपेन च । गडुकाष्टशतं कुर्यादथवाप्यष्टविंशतिः ॥
दशाऽपि चतुरस्ततो न्यूनं न कारयेत् । पयो दधि घृतं चैव क्षौद्रमिक्षुरसं तथा

एवं सर्वं च तद्द्रव्यं वामतः संन्यसेद्भवात् ।
ततो बहिर्विनिष्क्रम्य पूजयेत्प्रतिहारकान् ॥ ९३ ॥
सर्वेषां वाचका मन्त्राः कथ्यन्तेऽतः परं क्रमात् ॥ ९४ ॥

गं गणपतये नमः । ॐक्षां क्षेत्रपालाय नमः । ॐगं गुरुभ्यो नमः । इति आकाशे
क्लीं कुलदेव्यै नमः ॐ नन्दिने नमः । ॐमहाकालाय नमः । ॐधात्रे विधात्रे नमः

ततः प्रविश्य लिङ्गाच्च किञ्चिद्दक्षिणतः शुचिः ।
उदङ्मुखः क्षणं ध्यायेत्समकायासनस्थितः ॥ ६५ ॥

दर्भादिभिः परिवृतं मध्यपद्मार्कमण्डलम् । सोमण्डलमध्यस्थं ध्यायेद्वै वह्नि
तन्मध्ये विश्वरूपं च वामाद्यष्टादिशक्तिकम् । पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं चन्द्र
वामाङ्कगिरिजं देवं ध्यायेत्सिद्धैः स्तुतं मुहुः । ततः पूर्वं प्रदद्याच्च पाद्यार्घं
पानीयमक्षता दर्भा गन्धपुष्पं ससर्पिषम् । क्षीरं दधि मधु पुनर्नवाङ्गोऽर्घः
ततः श्रद्धार्द्रचित्तस्य स्नानं लिङ्गस्य चाचरेत् । गृहीत्वा गडुकंपूर्वंमलस्नानं
अर्द्धेन स्नापयेत्पूर्वं कुर्याच्च मलघर्षणम् । सर्वेण स्नापयेत्पश्चात्पूजयेत्स्नाप

प्रणम्य च ततो भक्त्या स्नापयेन्मूलमन्त्रतः ।
ॐह्वं विश्वमूर्तये शिवाय नमः ॥ इति द्वादशाक्षरो मूलमन्त्रः ॥ १

वारिक्षीरदधिक्षौद्रघृतेनेक्षुरसेन च । स्नापयेन्मूलमन्त्रेण जलधूपार्चनात्पृथक्
गडुकैः स्नापयेत्सर्वैः स्नातं गन्धैर्विरूक्षयेत् ॥ १०४ ॥

विरूक्षितं ततः स्नाप्य श्रीखण्डेन विलेपयेत् । पूजयेद्विविधैः पुष्पैर्विधिनाद्ये
आग्नेयपादे । ॐधर्माय नमः । नैर्ऋतके । ॐज्ञानायनमः । वायवे । ॐवैरा
ईशानपादे । ॐऐश्वर्याय नमः । पूर्वपादे । ॐअधर्माय नमः । दक्षिणे । ॐ
नमः । पश्चिमे । ॐअवैराग्याय नमः । उत्तरे । ॐअनैश्वर्याय नमः । ॐअन
ॐपद्माय नमः । ॐअर्कमण्डलाय नमः । ॐसोममण्डलाय नमः । ॐवह्नि
नमः । ॐवामाज्येष्ठादिपञ्चमन्त्रशक्तिभ्यो नमः । स्वपरमप्रकृत्यै देव्यै नमः ।
ॐईशानतत्पुरुषाघोरवामदेवसद्योजातपञ्चवक्त्राय रुद्रसाध्यवस्वादित्यवि
देवविश्वरूपाय अण्डजस्वेदजोद्भिज्जजरायुजरूपस्थावरजङ्गममूर्तये पर
ॐह्वं विश्वमूर्तये शिवाय नमस्त्रिशूलधनुःखड्गकपालदण्डकु
ततो जलाधारमुखे चण्डीश्वराय नमः । एवं सम्पूज्य विधिवत्ततोऽर्घं सवि
पानीयमक्षताः पुष्पमेतैर्युक्तं फलोत्तमैः । गृहाणार्घ्यं महादेव पूजासम्पू
अर्घ्यादनन्तरं शक्तः पूजयेद्वसुपूजया । धूपं दीपं च नैवेद्यं क्रमात्पश्चान्निवेदये

घण्टाश्च वादयेत्तत्र ततो नीराजनं चरेत्। भ्रामयेद्देवदेवस्य शङ्खवादित्रनिःस्वनैः ॥

नीराजनं च यः पश्येद्देवदेवस्य शूलिनः।

स मुच्येत्पातकैः सर्वैः किं पुनर्यः करिष्यति ॥ १११ ॥

नृत्यं गीतं च वाद्यं च अलीकमपि यश्चरेत्। तस्य तुष्येदनन्तं हि गीतवाद्यफलं यतः

स्तोत्रैस्ततश्च संस्तूय दण्डवत्प्रणमेद्भुवि। क्षमापयेच्च देवेशं सुकृतं कुकृतं क्षम ॥

य एवं यजते रुद्रमस्मिंल्लिङ्गे विशेषतः। पितरं पितामहं चैव तथैव प्रपितामहम् ॥

सर्वात्पापात्समुत्तार्य रुद्रलोके वसेच्चिरम्। एवं माहेश्वरो भूत्वा सदाचारव्रतस्थितः

पशुपाशविमोक्षार्थं पूजयेत्तन्मना यदि। य एवं यजते रुद्रं तेनैतत्तर्पितं जगत् ॥११६॥

किं त्वेतत्सफलं राजन्नाचारं यो न लङ्घयेत्।

आचारात्फलते धर्मो ह्याचारात्स्वर्गमश्नुते ॥ ११७ ॥

आचाराल्लभते ह्यायुराचारो हन्त्यलक्षणम्। यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये ॥

भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्तते। तस्यकिञ्चित्समुद्देशंवक्ष्ये तं शृणु पार्थिव

त्रिवर्गसाधने यत्नः कर्तव्यो गृहमेधिना। तत्संसिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येतधर्मार्थौचाऽपिचिन्तयेत्। समुत्थायतथाऽऽचम्यदन्तधावनपूर्वकम्

सन्ध्यामुपासीत बुधः संशान्तः प्रयतः शुचिः।

पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम् ॥ १२२ ॥

उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि। वर्जयेदनृतं चासत्प्रलापं परुषं तथा ॥

असत्सेवां ह्यसद्वादंह्यसच्छास्त्रं च पार्थिव। आदर्शदर्शनं दन्तधावनं केशसाधनम् ॥

देवार्चनं च पूर्वाह्णे कार्याण्याहुर्महर्षयः। पालाशमासनं चैव पादुके दन्तधावनम् ॥

वर्जयेदासनं चैव पदा नाऽऽकर्षयेद्बुधः ॥ १२५ ॥

जलमग्निं च निनयेद्युगपन्न विचक्षणः ॥ १२६ ॥

पादौ प्रसारयेन्नैव गुरुदेवाग्निसम्मुखौ। चतुष्पथं चैत्यतरुं देवागारं तथा यतिम् ॥

विद्याधिकं गुरुं वृद्धं कुर्यादेतान्प्रदक्षिणान् ॥ १२८ ॥

आहारनीहारविहारयोगाः सुसम्वृता धर्मविदानुकार्याः।

वाग्बुद्धिवीर्याणि तपस्तथैव वार्तायुषी गुप्ततमे च कार्ये ॥ १२९ ॥
उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः । दक्षिणाभिमुखो रात्रौ ह्येवमायुर्न रि
प्रत्यग्निं प्रति सूर्यं च प्रति गां व्रतिनं प्रति । प्रतिसोमोदकंसन्ध्यां प्रज्ञा नश्यति
भोजने शयने स्थाने उत्सर्गे मलमूत्रयोः । रथ्याचङ्क्रमणे चार्द्रपञ्चकश्चाचमेत्स
न नद्यां मेहनं कुर्यान्न श्मशाने न भस्मनि । न गोमये न कृष्टे च नैवालूने न शा
उद्धृताभिस्तथाद्भिस्तु शौचं कुर्याद्विचक्षणः ।
अन्तर्जलाद्देवकुलाद्वल्मीकान्मूषकस्थलात् ॥ १३४
अपविद्धापशौचाश्च वर्जयेत्पञ्च मृत्तिकाः । गन्धलेपापहरणं शौचं कुर्यात्तथा बुध
नात्मानं ताडयेन्नैव दद्याद्दुःखेभ्य एव च ।
उभाभ्यामपि पाणिभ्यां कण्डूयेन्नात्मनः शिरः ॥ १३६ ॥
रक्षेद्दारांस्त्यजेदीर्ष्यांतासुनिष्कारणंबुधः । सूर्यास्तंनविनाकाश्चित्क्रियानैवाचरे
अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः । शिवचित्तोऽर्जयेद्वित्तं न चातिकृपणो
नेर्ष्युःस्यान्न कृतघ्नः स्यान्न परद्रोहकर्मधीः । न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृ
न च वागङ्गचपलो न चाशिष्टस्य गोचरः । न शुष्कवादं कुर्वीत शुष्कवैरं तथैव च
उपायैः साधयेदर्थान्दण्डस्त्वगतिका गतिः । भिन्नाशनं भिन्नशय्यांवर्जयेद्भिन्नभाज
अन्तरेण न गच्छेत द्वयोर्ज्वलनलिङ्गयोः । नाग्न्योर्न विप्रयोश्चैव न दम्पत्योर्नृपो
न सूर्यव्योमयोर्नैव हरस्य वृषभस्य च । एतेषामन्तरं कुर्वन्यतः पापमवाप्नुयात्
नैकवस्त्रश्च भुञ्जीत नाग्नौ होममथाचरेत् । न चार्चयेद्द्विजान्नैव कुर्याद्देवार्चनं बुध
खण्डनं पेषणं मार्ष्टिं जलसंशोधनं तथा । रन्धनं भोजनं स्वाप उत्थानं गमनं क्षु
कार्यारम्भं समाप्तिं च वचः प्रोच्य तथाप्रियम् ।
पिबञ्जिघ्रन्स्पृशञ्छृण्वन्विवक्षुमैथुनं तथा ॥ १४६ ॥
शुचित्वं च जपंस्थाणुं यःकुर्याद्विंशतितथा । माहेश्वरःसविज्ञेयःशेषोऽन्योनामधारक
स वै रुद्रमयो भूत्वा ततश्चाऽन्ते शिवंव्रजेत् । परस्त्रियंनाभिभाषेत्तथा सम्भाषयेद्य
मातःस्वसरथोपुत्रिआर्येतिचवदेद्बुधः । उच्छिष्टोनालभेत्किञ्चिन्न च सूर्यंविलोकये

नेन्दुं न तारकाश्चैव नाद्येन्नात्मनः शिरः ।
स्वस्रा दुहित्रा मात्रा वा नैकान्तासनमाचरेत् ॥ १५० ॥

दुर्जयो हीन्द्रियग्रामो मुह्यते पण्डितोऽपि सन् । गुरुमभ्यागतं गेहेस्वयमुत्थाययत्नतः आसनंकल्पयेत्तस्यकुर्यात्पादाभिवन्दनम् । नोदक्छिराःस्वपेज्जातुनचप्रत्यक्छिराबुधः शिरस्यगस्त्यमाधाय तथैव च पुरन्दरम् । उदक्यादर्शनं स्पर्शं वर्ज्यं सम्भाषणं तथा नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा मैथुनं वा समाचरेत् । कृत्वा विभवतोदेवमनुष्यर्षिसमर्चनाम्

पितृणां च ततः शेषं भोक्तुं माहेश्वरोऽर्हति ।
वाग्यतः शुचिराचान्तः प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ॥ १५५ ॥

अन्तर्जानुश्च तच्चित्तो भुञ्जीतान्नमकुत्सयन् । नोपघातं विना दोषान्नतस्योदाहरेद्बुधः नग्नस्नानं न कुर्वीत न शयीत व्रजेत वा । दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात्क्रुद्धं चैनं प्रसादयेत् ॥ परिवादंनश्रृणुयादन्येषामपिजल्पताम् । सदा चाकर्णयेद्धर्मांस्त्यत्यक्त्वाकृत्यशतान्यपि नित्यं नित्यं हि सम्मार्ष्टि गेहदर्पणयोरिव । शुक्लायाश्च चतुर्दश्यां नक्तभोजीसदाभवेत् तिस्रो रात्रीर्न शक्तश्चेदेवं माहेश्वरो भवेत् । संयावकृशरामांसं नात्मानमुपसाधयेत्

सायंप्रातश्च भोक्तव्यं कृत्वा ह्यतिथिभोजनम् ।
स्वप्नाध्ययनभोज्यानि सन्ध्ययोश्च विवर्जयेत् ॥ १६१ ॥

भुञ्जानंसन्ध्ययोर्मोहादसुरावसथोभवेत् । स्नातो न धूनयेत्केशान्क्षुतेनिष्ठीवितेऽध्वनि आलभेद्दक्षिणंकर्णंसर्वभूतानिक्षामयेत् । न चापि नीलीवासाःस्यान्नविपर्यस्तवस्त्रधृक् वर्ज्यं च मलिनंवस्त्रंदशाभिश्चविवर्जितम् । प्रक्षाल्यमुखहस्तौ च पादौचाप्युपविश्यच अन्तर्जानुस्त्रिराचामेद्द्विर्मुखं परिमार्जयेत् । तोयेन स्पर्शयेत्खानि स्वमूर्धानं तथैव च आचम्य पुनराचम्य क्रियाः कुर्वीत सर्वशः । क्षुते निष्ठीविते चैव दन्तलग्ने तथैव च पतितानाञ्च सम्भाषे कुर्यादाचमनक्रियाम् । अध्येतव्यात्रयी नित्यंभवितव्यंविपश्चिता धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्यं चापि यत्नतः । हीनेभ्योऽपिन युञ्जीत त्वङ्कारंकर्हिचिद्बुधः

सत्यं वाच्यं नित्यमैत्रेण भाव्यं कार्यं त्याज्यं नित्यमायासकारि ।
लोकेऽमुष्मिन्यद्धितं स्यात्तथाऽऽस्मिन्नात्मा योगे योजनीयो गभीरैः ॥

तीर्थस्नानैः सोपवासैर्व्रतैश्च पात्रे दानैर्होमजप्यैश्च यज्ञैः ।
भवार्चनैर्दैवपूजाविशेषैरात्मा नित्यं शोधनीयो मलाक्तः ॥ १७० ॥
यत्राऽपि कुर्वतो नात्मा जुगुप्सामेति पार्थिव ! ।
तत्कर्तव्यमसङ्केन यन्न गोप्यं महाजने ॥ १७१ ॥

इति ते वै समुद्देशः कीर्तितः किञ्चदेव च । शेषः स्मृतिपुराणेभ्यस्त्वयाश्रोतव्य
एवमाचरतो धर्मं महेशस्य गृहे सतः । धर्मार्थकामसम्प्राप्तौ परत्रेह च शोभन
एवं नानाविधान्धर्मान्महाकालस्य फाल्गुन । वदतो ध्वनिराकाशे सुमहानभ्यजा

यावत्पश्यन्ति ये तत्र समाजग्मुःशृणुष्व तान् ।
ब्रह्मा विष्णुः स्वयं रुद्रो देवी रुद्रगणस्तथा ॥ १७५ ॥

इन्द्रादयस्तथा देवा वसिष्ठाद्या मुनीश्वराः । तुम्बरुप्रवराश्चापि गन्धर्वाप्सरसां ग
तान्महेशमुखान्सर्वान्महाकालो महामतिः । अर्चयामास बहुधा भक्त्युद्रेकातिपूर्
ततो ब्रह्मादिभिर्देवैर्वरे रत्नमयासने । उपविष्टोऽभिषिक्तश्च महीसागरसङ्गमे ॥ १

ततो देव्या समालिङ्ग्य नीत्वोत्सङ्गं स्वकं मुदा ।
पुत्रत्वे कल्पितः पार्थ ! महाकालो महामतिः ॥ १७६ ॥

उक्तश्च यावद्ब्रह्माण्डमिदमास्ते शिवव्रत !। तावत्तिष्ठ शिवस्थानेशिववच्छिवधर्म
देवेन च वरोदत्तस्त्वल्लिङ्गं योऽर्चयिष्यति । जितेन्द्रियःशुचिर्भूत्वाऊर्ध्वंमल्लोकमे
दर्शनं स्तवनं पूजा प्रणामश्च ततो जपः । दानं चात्र कृतं लिङ्गे ममाऽतितृप्तिकार
इत्युक्ते विस्मितादेवाःसाधुसाध्वितितेजगुः । ब्रह्मविष्णुमुखाश्चैव महाकालंप्रतुष्
ततः सुरैः स्तूयमानो वन्द्यमानश्च चारणैः । नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च गीतैर्गन्धर्वजैर्

कोटिकोटिगणैश्चैव स्तुवद्भिः सर्वतो वृतः ॥ १८५ ॥

महाकालोरुद्रभवनं गतो भवपुरस्सरः । एवमेतन्महालिङ्गमुत्पन्नं कुरुनन्दन ! ॥ १
कूपश्चापि सरः पुण्यं महाकालस्यसिद्धिदम् । अत्रयेमनुजाःपार्थलिङ्गस्याराधने
महाकालः समालिङ्ग्य ताञ्छिवाय निवेदयेत् । एतदत्यद्भुतंलिङ्गंत्रिषुलोकेषुविश्
दृष्टं स्पृष्टं पूजितं च गतास्तेभवसद्मतत् । एवमेतानि लिङ्गानि सप्तजातानिफाल्

ये शृण्वन्ति गृणन्त्येतत्तेऽपि धन्या नरोत्तमाः ॥ १६० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे श्रीमहाकालमाहात्म्ये महाकालकरन्धमसम्वादे शिवपूजनविधिनित्यकर्तव्यधर्मनिरूपणपूर्वकमहाकालशिवलोकप्राप्तिवर्णनंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

एतरेयब्राह्मणचरित्रवर्णनम्

नारद उवाच

ततो मया स्थापिते च स्थानेकालान्तरेण ह । चिन्तितंहृदयेभूयोद्विजानुग्रहकाम्यया
वासुदेवविहीनं हि तीर्थमेतन्न रोचते । असूर्यं हि जगद्यद्वत्स हि भूषणभूषणम् ॥
यत्र नैव हरिः स्वामीतीर्थेगेहेऽथमानसे । शास्त्रेवा तदसत्सर्वं हांसं तीर्थं न वायसम्
तस्मात्प्रसाद्यवरदंतीर्थेऽस्मिन्पुरुषोत्तमम् । आनेष्येकलयासाक्षाद्विश्वानुग्रहकाम्यया
इतिसञ्चिन्त्य कौरव्य ततोऽहंचात्रसंस्थितः । ज्ञानयोगेनयोगीन्द्रंशतंवर्षाण्यतोषयम्
अष्टाक्षरं जपन्मन्त्रं संनिगृह्येन्द्रियाणि च । वासुदेवमयो भूत्वा सर्वभूतकृपापरः ॥
एवं मयाऽऽराध्यमानो गरुडं हरिरास्थितः । गणकोटिपरिवृतः प्रत्यक्षः समजायत

तमहं प्राञ्जलिर्भूत्वा दत्त्वार्घ्यं विधिवद्वरैः ।
प्रत्यवोचं प्रणम्याऽथ प्रबद्धकरसम्पुटः ॥ ८ ॥

श्वेतद्वीपे पुरा दृष्टं मया रूपं तव प्रभो । अजं सनातनं विष्णो नरनारायणात्मकम्
तद्रूपस्य कलामेकांस्थापयाऽत्र जनार्दन । यदि तुष्टोऽसिमेविष्णोतदिदंक्रियतांत्वया
एवं मया प्रार्थितोऽथ प्रोवाच गरुडध्वजः । एवमस्तु ब्रह्मपुत्र यत्त्वयाऽभीप्सितं हृदि
तत्तथा भविता सर्वमप्यत्रस्थंसदैवहि । एवमुक्त्वागतेविष्णौ निवेश्य स्वकलांप्रभो

मया संस्थापितो विष्णुर्लोकानुग्रहकाम्यया ।
यस्मात्स्वयं श्वेतद्वीपनिवास्यत्र हरिः स्थितः ॥ १३ ॥

वृद्धोविश्वस्यविश्वाख्योवासुदेवस्ततःस्मृतः । कार्तिके शुक्लपक्षे या भवत्येकाद
स्नानं कृत्वा विधानेन तोयप्रस्रवणादिषु । योऽर्चयेदच्युतं भक्त्या पञ्चोपचा
उपोष्य जागरं कुर्याद्गीतवाद्यं हरेः पुरः । कथां वा वैष्णवीं कुर्याद्दम्भक्रोधविव
दानं दद्याद्यथाशक्त्यानियतो हृष्टमानसः । अनेकभवसम्भूतात्कल्मषादविरा
मुच्यतेऽसौ न सन्देहो यद्यपि ब्रह्मघातकः । गारुडेन विमानेन वैकुण्ठं पदमा
कुलानां तारयेत्पार्थ ! शतमेकोत्तरं नरः । श्रद्धायुक्तं मुदा युक्तं सोत्साहं सम्
अहङ्कारविहीनं च स्नानं धूपानुलेपनम् । पुष्पनैवेद्यसंयुक्तमर्घ्यदानसमन्वितम् ।

याम यामे महाभक्त्या कृतारार्तिकसंयुतम् ।
चामराह्लादसंयुक्तं भेरीनादपुरस्कृतम् ॥ २१ ॥

पुराणश्रुतिसम्पन्नं भक्तिनृत्यसमन्वितम् । विनिद्रंक्षुत्तृषास्वादस्पृहाहीनं च
तत्पादसौरभघ्राणसंयुतं विष्णुवल्लभम् । सगीतं सार्चनकरं तत्क्षेत्रगमनान्वि
पायुरोधेन संयुक्तं ब्रह्मचर्यसमन्वितम् । स्तुतिपाठेन संयुक्तं पादोदकविभूषि
सत्यान्वितं सत्ययोगसंयुतं पुण्यवार्त्तया । पञ्चविंशतिभिर्युक्तं गुणैर्यो जागरं
एकादश्यां प्रकुर्वीत पुनर्न जायते भुवि ॥ २५ ॥
अत्र तीर्थवरे पूर्वमैतरेय इति द्विजः । सिद्धिं प्राप्तो महाभागो वासुदेवप्रसादतः ।

अर्जुन उवाच

ऐतरेयः कस्य पुत्रो निवासः क्वाऽस्यवामुने !। कथंसिद्धिमगाद्धीमान्वासुदेवप्रस

नारद उवाच

अस्मिन्नेव मम स्थाने हारीतस्याऽन्वयेऽभवत् ॥२८॥
माण्डूकिरिति विप्राग्र्यो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ २६ ॥

तस्याऽऽसीदितरानामभार्यासाध्वीगुणैर्युता । तस्यामुत्पद्यतसुतस्त्वैतरेय इति
सच बाल्यात्प्रभृत्येवप्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् । जजापमन्त्रंत्वनिशंद्वादशाक्षरसंज्ञि

न शृणोति न वक्त्येव मनसाऽपि च किञ्चन। एवंप्रभावःसोऽभूच्चबाल्येविप्रसुतस्तदा
ततो मूकोऽयमित्येव नानोपायैः प्रबोधितः। पित्रा यदा न कुरुते व्यवहारायमानसम्
ततो निश्चित्य मनसा जडोऽयमिति भारत!।
अन्यां विवाहयामास दारान्पुत्रांस्तथादधे ॥ ३४ ॥
पिङ्गानाम च सा भार्या तस्याः पुत्राश्च जज्ञिरे। चत्वारःकर्मकुशलावेदवेदाङ्गवादिनः
यज्ञेषु शान्तिहोमेषु द्विजैः सर्वत्रपूजिताः। ऐतरेयोऽपि नित्यं च त्रिकालं हरिमन्दिरे
जजाप परमं जाप्यं नान्यत्र कुरुते श्रमम्। ततो माता निरीक्ष्यैव सपत्नी तनयांस्तथा
दूयमाणेनमनसातनयंवाक्यमब्रवीत्। क्लेशायैवचजातोऽसि धिङ्मे जन्मचजीवितम्
नार्यास्तस्या नृलोकेऽत्र वरं वाऽजननिः स्फुटम्।
विमानिता या भर्त्रा स्यान्न पुत्रः स्याद्गुणैर्युतः ॥ ३६ ॥
पिङ्गेयं कृतपुण्या वै यस्याःपुत्रा महागुणाः। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वत्राऽभ्यर्चितागुणैः
तदहं पुत्र! दुर्भाग्या महीसागरसङ्गमे। निमज्जिष्ये वरं मृत्युर्जीविते किं फलं मम ॥
त्वमप्येवं महामौनी नन्द भक्तो हरेश्चिरम् ॥ ४१ ॥

नारद उवाच

इति मातुर्वचः श्रुत्वा प्रहसन्नैतरेयकः ॥ ४२ ॥
ध्यात्वा मुहूर्तंधर्मज्ञोमातरंप्रणतोऽब्रवीत्। मातर्मिथ्याभिभूताऽसिअज्ञानेज्ञानवत्यसि
अशोच्ये शोचसि शुभे! शोच्ये नैवाऽपि शोचसि।
देहस्याऽस्य कृते मिथ्या संसारे किं विमुह्यसि ॥ ४४ ॥
मूर्खाचरितमेतद्धि मन्मातुरुचितं न हि। अन्यत्संसारसारं च सारमन्यच्चमोहिताः
प्रपश्यन्तियथारात्रौखद्योतंदीपवत्स्थितम्। यदिदंमन्यसेसारंशृणुतस्याऽप्यसारताम्
एवंविधं हि मानुष्यमागर्भादिति कष्टदम्। अस्थिपट्टतुलास्तम्भेस्नायुबन्धेनयन्त्रिते
रक्तमांसमृदालिप्ते विण्मूत्रद्रव्यभाजने। केशरोमतृणच्छन्ने सुवर्णत्वक्सुधूतके ॥
नवैकमहाद्वारे षड्गवाक्षविभूषिते। ओष्ठद्वयकपाटे च तथा दन्तार्गलान्विते ॥४६॥
नाडीस्वेदप्रवाहेच कालवक्त्रानलस्थिते। एवम्विधे गृहे गेहीजीवो नामाऽस्तिशोभने

गुणत्रयमयी भार्या प्रकृतिस्तस्य तत्र च। बोधाहङ्कारकामाश्च क्रोधलोभादयो
अपत्यान्यस्य हा कष्टमेवं मूढः प्रवर्तते। तस्य यो यो यथा मोहस्तथा तं शृणु
स्रोतांसि यस्य सततं प्रस्रवन्ति गिरेरिव। कफमूत्रादिकान्यस्य कृते देहस्य
सर्वाशुचिनिधानस्य शरीरस्य न विद्यते। शुचिरेकत्रदेशोऽपि विण्मूत्रस्य दृतेरि
स्पृष्ट्वास्वदेहस्रोतांसिमृत्तोयैःशोध्यतेकरः। तथाप्यशुचिभाण्डस्यनविरज्यति
कायःसुगन्धतोयाद्यैर्यत्नेनापिसुसंस्कृतः। न जहाति स्वकंभावंश्वपुच्छमिव
स्वदेहाशुचिगन्धेन न विरज्यति यो नरः। विरागे कारणं तस्य किमन्यदुपदि
गन्धलेपापनोदार्थं शौचंदेहस्यकीर्तितम्। द्वयस्यापगमात्पश्चाद्भावशुद्ध्याविशु
गङ्गातोयेन सर्वेण मृद्भारैः पर्वतोपमैः। आमृत्योराचरञ्छौचं भावदुष्टो न शु

तीर्थस्नानैस्तपोभिर्वा दुष्टात्मा नैव शुध्यति।
श्वेदितः क्षालितस्तीर्थे किं शुद्धिमधिगच्छति॥ ६०॥

अन्तर्भावप्रदुष्टस्य विशतोऽपि हुताशनम्। न स्वर्गो नाऽपवर्गश्च देहनिर्दहनं प
भावशुद्धिः परंशौचं प्रमाणं सर्वकर्मसु। अन्यथालिङ्ग्यतेकान्ताभावेनदुहिता
अन्यथैवस्तनं पुत्रश्चिंतयत्यन्यथा पतिः। चित्तं विशोधयेत्तस्मात्किमन्यैर्बाह्य
भावतःसम्विशुद्धात्मास्वर्गंमोक्षंचविन्दति। ज्ञानामलाम्भसापुंसः सद्वैराग्य
अविद्यारागविण्मूत्रलेपगन्धविशोधनम्। एवमेतच्छरीरं हि निसर्गादशुचि वि
त्वङ्मात्रसारनिःसारं कदलीसारसंनिभम्। ज्ञात्वैवंदोषवद्देहंयःप्राज्ञःशिथिलीक
स निष्क्रामति संसारे दृढग्राही स तिष्ठति। एवमेतन्महाकष्टं जन्मदुःखं प्रकी

पुंसामज्ञातदोषेण नानाकर्मवशेन च।
यथा गिरिवराक्रान्तः कश्चिद्दुःखेन तिष्ठति॥ ६८॥

यथा जरायुणा देही दुखं तिष्ठति वेष्टितः। पतितः सागरे यद्वद्दुखमास्ते समा

गर्भोदकेन सिक्ताङ्गस्तथाऽऽस्ते व्याकुलः पुमान्।
लोहकुम्भे यथा न्यस्तः पच्यते कश्चिदग्निना॥ ७०॥

गर्भकुम्भे तथा क्षिप्तः पच्यते जठराग्निना। सूचीभिरग्निवर्णाभिर्विभिन्नस्य

यद्दुखंजायते तस्य तद्गर्भेऽष्टगुणं भवेत्। इत्येतद्गर्भदुखं हि प्राणिनां परिकीर्तितम्
चरस्थिराणां सर्वेषामात्मगर्भानुरूपतः। तत्रस्थस्य च सर्वेषां जन्मनां स्मरणंभवेत्
मृतश्चाऽहं पुनर्जातो जातश्चाऽहं पुनर्मृतः। नानायोनिसहस्राणि मया दृष्टान्यनेकधा
अधुनाजातमात्रोऽहं प्राप्तसंस्कार एव च। ततः श्रेयः करिष्यामियेन गर्भोनसम्भवेत्
अध्येष्यामिहरेर्ज्ञानं संसारविनिवर्तनम्। एवं सञ्चितयन्नास्ते मोक्षोपायंविचिन्तयन्
गर्भात्कोटिगुणंदुःखंजायमानस्यजायते।गर्भवासेस्मृतिर्याऽऽसीत्साजातस्यप्रणश्यति
स्पृष्टमात्रस्य बाह्येन वायुनामूढताभवेत्। सम्मूढस्य स्मृतिभ्रंशः शीघ्रं सञ्जायते पुनः
स्मृतिभ्रंशात्ततस्तस्य पूर्वकर्मवशेन च। रतिः सञ्जायते तूर्णं जन्तोस्तत्रैव जन्मनि॥
रक्तोमूढश्च लोकोऽयमकार्येसम्प्रवर्तते। तत्राऽऽत्मानं न जानाति न परं नच दैवतम्
न शृणोति परं श्रेयः सति चक्षुषि नेक्षते। समे पथि समैर्गच्छन्स्खलतीव पदे पदे॥

सत्यां बुद्धौ न जानाति बोध्यमानो बुधैरपि।
संसारे क्लिश्यते तेन रागमोहवशानुगः॥ ८२॥

गर्भस्मृतेरभावेन शास्त्रमुक्तं महर्षिभिः। तद्दुःखकथनार्थाय स्वर्गमोक्षप्रसाधकम्॥
यच्छास्त्रज्ञाने सत्यस्मिन्सर्वकर्मार्थसाधके। न कुर्वन्त्यात्मनः श्रेयस्तदत्र परमद्भुतम्
अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद्बाल्येदुःखं महत्पुनः। इच्छन्नपिनशक्नोति वक्तुं कर्तुंच किञ्चन
दन्तोत्थाने महद्दुखं मौलेन व्याधिना तथा। बालरोगैश्चविविधैःपीडा बालग्रहैरति
तृड्बुभुक्षापरीताङ्गः क्वचित्तिष्ठति रारटन्। विण्मूत्रभक्षणाद्यंचमोहाद्बालःसमाचरेत्
कौमारे कर्णवेधेन मातापित्रोर्विताडनैः। अक्षराध्ययनाद्यैश्चदुःखं स्याद्गुरुशासनात्
प्रमत्तेन्द्रियवृत्तैश्च कामरागप्रपीडनात्। रागोद्धृत्तस्य सततं कुतः सौख्यं हि यौवने॥
ईर्ष्यया सुमहद्दुखं मोहाद्रक्तस्य जायते। मत्तस्य कुपितस्यैव रागो दोषाय केवलम्

न रात्रौ विन्दते निद्रा कामाग्निपरिखेदितः।
दिवाऽपि हि कुतः सौख्यमर्थोपार्जनचिन्तया॥ ९१॥

नारीषु त्वनुभूतासु सर्वदोषाश्रयासु च। विण्मूत्रोत्सर्गसदृशं सौख्यं मैथुनजंस्मृतम्
सन्मानमपमानेन वियोगेनेष्टसङ्गमः। यौवनं जरया ग्रस्तं क्व सौख्यमनुपद्रवम्॥९३॥

वलीपलितकायेन शिथिलीकृतविग्रहः । सर्वक्रियास्वशक्तश्च जरया जर्ज्जरीकृत
स्त्रीपुंसोर्यौवनं रूपं यदन्योन्याश्रयं पुरा । तदेवं जरया ग्रस्तमुभयोरपि न प्रि
जराभिभूतःपुरुषः पत्नीपुत्रादिबान्धवैः । अशक्तत्वाद्दुराचारैर्भृत्यैश्च परिभूयते ।
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च नातुरो यतः । शक्तः साधयितुंतस्माद्युवाधर्मं समा
वातपित्तकफादीनां वैषम्यं व्याधिरुच्यते । वातादीनां समूहश्च देहोऽयं परिकी

तस्माद्व्याधिमयं ज्ञेयं शरीरमिदमात्मनः ।
रोगैर्नानाविधैर्यान्ति देहे दुःखान्यनेकशः ॥ ९९ ॥

तानि न स्वात्मवेद्यानिकिमन्यत्कथयाम्यहम् । एकोत्तरंमृत्युशतमस्मिन्देहेप्रति
तत्रैकःकालसंयुक्तःशेषास्त्वागन्तवःस्मृताः। येत्विहागन्तवःप्रोक्तास्तेप्रशाम्यन्ति
जपहोमप्रदानैश्चकालमृत्युर्नशाम्यति । विविधाव्याधयःशस्ताःसर्पाद्याःप्राणिन

विषाणि चाऽभिचाराश्च मृत्योर्द्वाराणि देहिनाम् ।
पीडितं सर्परोगाद्यैरपि धन्वन्तरिःस्वयम् ॥ १०३ ॥

स्वस्थीकर्तुं नशक्नोतिकालप्राप्तंहिदेहिनम् । नौषधंनतपोमन्त्रानमित्राणिनबान्
शक्नुवन्ति परित्रातुं नरं कालेन पीडितम् । रसायनतपोजप्यैर्योगसिद्धैर्महात्म
कालमृत्युरपि प्राज्ञैर्नीयते नापि संयुतैः । नास्तिमृत्युसमंदुःखंनास्तिमृत्युसमं
नास्तिमृत्युसमस्त्रासःसर्वेषामपिदेहिनाम् । सद्भार्यापुत्रमित्राणिराज्यैश्वर्यसुख
आवद्धानिस्नेहपाशैर्मृत्युःसर्वाणिकृन्तति। किंनपश्यसिमातस्त्वंसहस्रस्याऽपि
जनाः शतायुषः पञ्च भवन्ति न भवन्ति वा । अशीतिका विपद्यन्तेकेचित्सप्ततिक
परमायुःस्थिता षष्टिस्तदप्यस्ति न निश्चितम् । तस्य यावद्भवेदायुर्देहिनःपूर्वक
तस्यार्धमायुषो रात्रिर्हरते मृत्युरूपिणी । बालभावेन मोहेन वार्धके जरया
वर्षाणां विंशतिर्याति धर्मकामार्थवर्जितः । आगन्तुकैर्भयैः पुंसां व्याधिशोकै
ह्रियतेऽर्द्धं हि तत्राऽपि यच्छेषंतद्धिजीवितम् । जीवितान्तेचमरणंमहाघोरमवा
जायते योनिकोटीषु मृतः कर्मवशात्पुनः । देहभेदेन यः पुंसां वियोगः कर्म

मरणं तद्विनिर्दिष्टं न नाशः परमार्थतः ।

महातमः प्रविष्टस्य च्छिद्यमानेषु मर्मसु ॥ ११५ ॥
यद्दुःखं मरणं जन्तोर्न तस्येहोपमा क्वचित् । हातातमातर्हाकान्तेक्रन्दत्येवंसुदुःखितः
मण्डूक इव सर्पेण गीर्यते मृत्युना जनः । बान्धवैः संपरित्यक्तः प्रियैश्च परिवारितः
निःश्वसन्दीर्घमुष्णं च मुखेन परिशुष्यता । चतुरन्तेषु खट्वायाः परिवर्तन्मुहुर्मुहुः ॥
संमूढः क्षिपतेऽत्यर्थंहस्तपादावितस्ततः । खट्वातोवाञ्छतेभूमिंभूमेःखट्वांपुनर्महीम्
विवस्त्रो मुक्तलज्जश्च विष्ठामूत्रानुलेपितः । याचमानश्च सलिलं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः
चिन्तयानः स्ववित्तानिकस्यैतानि मृते मयि । पश्चावटान्खनमानःकालपाशेन कर्षितः
म्रियतेपश्यतामेव गले घुर्घुररावकृत् । जीवस्तृणजलूकेव देहाद्देहंविशेत्क्रमात् ॥१२२॥
सम्प्राप्योत्तरमंशेन देहं त्यजति पूर्वकम् । मरणात्प्रार्थना दुःखमधिकं हि विवेकिनः
क्षणिकं मरणे दुःखमनन्तं प्रार्थनाकृतम् । ज्ञातं मयैतदधुना मृतो भवति यद्गुरुः ॥
न परः प्रार्थयेद्भूयस्तृष्णालाघवकारणम् । आदौदुःखंतथामध्येह्यन्त्येदुःखंचदारुणम्

निसर्गात्सर्वभूतानामिति दुःखपरम्परा ।

क्षुधा च सर्वरोगाणां व्याधिः श्रेष्ठतमः स्मृतः ॥ १२६ ॥
स चान्नौषधिलेपेन क्षणमात्रं प्रशाम्यति । क्षुद्व्याधेर्वेदनातीव्रानिःशेषबलकृन्तनी ॥
तयाऽभिभूतो म्रियतेयथान्यैर्व्याधिभिर्नरः । राज्ञोऽभिमानमात्रं हि ममैव विद्यतेगृहे
सर्वमाभरणं भारं सर्वमालेपनं मम । सर्वं प्रलपितं गीतं नित्यमुन्मत्तचेष्टितम् ॥
इत्येवंराज्यसम्भोगैःकुतःसौख्यंविचारतः । नृपाणांव्यग्रचित्तानामन्योन्यविजिगीषया
प्रायेण श्रीमदालेपान्नहुषाद्यामहान्नृपाः । स्वर्गंप्राप्यापिपतिताःकः श्रियोविन्दतेसुखम्
उपर्युपरि देवानामन्योन्यातिशये स्थितम् । नरैः पुण्यफलं स्वर्गे मूलच्छेदेन भुज्यते
न चान्यत्क्रियते कर्म सोऽत्र दोषः सुदारुणः । छिन्नमूलतरुर्यद्वदवशः पतते क्षितौ ॥
पुण्यमूलक्षयेतद्वत्पातयन्ति दिवौकसः । इति स्वर्गेऽपिदेवानांनास्तिसौख्यंविचारतः

तथा नारकिणां दुःखं प्रसिद्धं किं च वर्ण्यते ।

स्थावरेष्वपि दुःखानि दावाग्निहिमशोषणम् ॥ १३५ ॥
कुठारैश्छेदनंतीव्रं वल्कलानां च तक्षणम् । पर्णशाखाफलानां च पातनं चण्डवायुना

अपमर्दश्च सततंगजैर्वन्यैश्च देहिभिः । तृड्बुभुक्षा च सर्पाणांक्रोधोदुःखं च दु
दुष्टानां घातनं लोके पाशेन च निबन्धनम् । एवं सरीसृपाणां च दुखं मानु
अकस्माज्जन्ममरणं कीटादीनांतथाविधम् । वर्षाशीतातपैर्दुःखंसुकष्टं मृगपक्षि
क्षुत्तृट्क्लेशेनमहतासन्त्रस्ताश्चसदामृगाः । पशुनागनिकायानांशृणुदुःखानि
क्षुत्तृट्छीतादिदमनं वधबन्धनताडनम् । नासाप्रवेधनं त्रासः प्रतोदाङ्कुशताड
वेणुकुन्तादिनिगडमुद्गराऽङ्कुशताडनम् । भारोद्वहनसंक्लेशं शिक्षायुद्धादिपीड
आत्मयूथवियोगश्च वने च नयनादिकम् । दुर्भिक्षं दुर्भगत्वं च मूर्खत्वं च द

अधरोत्तरभावश्च मरणं राष्ट्रविभ्रमः ।
अन्योन्याभिभवाद्दुःखमन्योन्यातिशयात्पुनः ॥ १४४ ॥
अनित्यता प्रभावाणामुच्छ्रयाणां च पातनम् ।
इत्येवमादिभिर्दुःखैर्यस्माद्व्याप्तं चराचरम् ॥ १४५ ॥
निरयादिमनुष्यान्तंतस्मात्सर्वंत्यजेद्बुधः ।
स्कन्धात्स्कन्धंनयेद्भारंविश्रामंमन्यतेऽन्यथा ॥ १४६ ॥

तद्वत्सर्वमिदंलोके दुःखं दुःखेन शाम्यति । एवमेतज्जगत्सर्वमन्योन्यातिशयोच्छ्
दुःखैराकुलितंज्ञात्वानिर्वेदंपरमाप्नुयात् । निर्वेदाच्चविरागःस्याद्विरागाज्ज्ञानसम्
ज्ञानेन तं परं ज्ञात्वाविष्णुं मुक्तिमवाप्नुयात् । नाहमेतादृशेलोकेरमेयं जननि!
राजहंसो यथा शुद्धः काकामेध्यप्रदर्शकः । शृणु मातर्यत्र संस्थो रमेयं निरु
अविद्यायनमत्युग्रं नानाकर्मातिशाखिनम् । सङ्कल्पदंशमकरं शोकहर्षहिमातप

मोहान्धकारतिमिरं लोभव्यालसरीसृपम् ।
विषयानन्यथाध्वानं कामक्रोधविमोक्षकम् ॥ १५२ ॥

तदतीत्यमहादुर्गंप्रविष्टोऽस्मि महद्वनम् । नतत्प्रविश्य शोचन्ति न प्रदुष्यन्ति त

न च बिभ्यति केषाञ्चिन्नाऽस्य बिभ्यति केचन ॥ १५४॥
तस्मिन्वने सप्तमहाद्रुमास्तु सप्तैव नद्यश्च फलानि सप्त ।
सप्ताश्रमाः सप्त समाधयश्च दीक्षाश्च सप्तैतदरण्यरूपम् ॥ १५५॥

पञ्चवर्णानि दिव्यानि चतुर्वर्णानि कानिचित् ।
त्रिद्विवर्णैकवर्णानि पुष्पाणि च फलानि च ॥ १५६ ॥
सृजन्तः पादपास्तत्र वाप्य तिष्ठन्ति तद्वनम् ॥ १५७ ॥
सप्त स्त्रियस्तत्र वसन्ति सत्यस्त्ववाङ्मुख्यो भानुमतो भवन्ति ।
ऊर्ध्वं रसानाददते प्रजाभ्यः सर्वाश्च तास्तत्त्वतः कोऽपि वेद ॥१५८॥
सप्तैव गिरयश्चाऽत्र धृतं यैर्भुवनत्रयम् । नद्यश्च सरितः सप्त ब्रह्मवारिवहाः सदा॥१५९
तेजश्चाऽभयदानत्वमद्रोहः कौशलं तथा । अचापल्यमथाऽक्रोधः प्रियवादश्च सप्तमः
इत्येते गिरयो ज्ञेयास्तस्मिन्विद्यावने स्थिताः ।
दृढनिश्चयस्तथा भासा समता निग्रहो गुणः ॥ १६१ ॥
निर्ममत्वं तपश्चाऽन्नसन्तोषः सप्तमो ह्रदः । भगवद्गुणविज्ञानाद्भक्तिःस्यात्प्रथमानदी
पुष्पादिपूजा द्वितीया तृतीया च प्रदक्षिणा । चतुर्थी स्तुतिवाग्रूपा पञ्चमीईश्वरार्पणा
षष्ठी ब्रह्मैकता प्रोक्ता सप्तमी सिद्धिरेव च । सप्त नद्योऽत्र कथिता ब्रह्मणा परमेष्ठिना
ब्रह्मा धर्मो यमश्चाऽग्निरिन्द्रो वरुण एव च ॥ १६५ ॥
धनदश्च ध्रुवादीनां सप्तकानर्चयन्त्यमी । नदीनां सङ्गमस्तत्र वैकुण्ठसमुपह्वरे ॥१६६॥
आत्मतृप्ता यतो यान्ति शान्ता दान्ताः परात्परम् ।
केचिद्द्रुमाः स्त्रियः केचित्केचित्तत्त्वविदोऽपरे ॥ १६७ ॥
सरितः केचिदाहुः स्म सप्तैव ज्ञानवित्तमाः । अनपेतव्रतकामोऽत्र ब्रह्मचर्यं चरामि च
ब्रह्मैव समिधस्तत्र ब्रह्माग्निर्ब्रह्मसंस्तरः । आपो ब्रह्म गुरुर्ब्रह्म ब्रह्मचर्यमिदं मम ॥१६९॥
एतदेवेदृशं सूक्ष्मं ब्रह्मचर्यं विदुर्बुधाः । गुरुं च शृणु मे मातर्यो मे विद्याप्रदोऽभवत
एकः शास्ता न द्वितीयोऽस्ति शास्ता हृद्येव तिष्ठन्पुरुषं प्रशास्ति ।
तेनाभियुक्तः प्रणवादिवोदकं यथा नियुक्तोऽस्मि तथाऽऽचरामि ॥१७१ ॥
एकोगुरुर्नास्ति तथा द्वितीयो हृदि स्थितस्तमहं नु ब्रवीमि ।
यं चावमान्यैव गुरुं मुकुन्दं पराभूता दानवाः सर्व एव ॥ १७२ ॥
एको बन्धुर्नास्ति ततो द्वितीयो हृदि स्थितं तमहमनुब्रवीमि ।

तेनानुशिष्टा वान्धवा वन्धुमन्तः सप्तर्षयः सप्त दिवि प्रभान्ति ॥ १७३ ॥
ब्रह्मचर्यं च संसेव्यं गार्हस्थ्यं शृणु यादृशम् ।
पत्नी प्रकृतिरूपा मे तच्चितो नाऽस्मि कर्हिचित् ॥ १७४ ॥
मच्चित्ता सा सदा मातर्मम सर्वार्थसाधनी ।
घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक्च श्रोत्रं च पञ्चमम् ॥ १७५ ॥
मनो बुद्धिश्च सप्तैते दीप्यन्ते पावका मम ।
गन्धो रसश्च रूपं च शब्दः स्पर्शश्च पञ्चमम् ॥ १७६ ॥
मन्तव्यमथ वोद्धव्यंसप्तैताःसमिधो मम । हुतंनारायणध्यानाद्भुङ्क्तेनारायणः
एवम्विधेन यज्ञेन यजाम्यस्मि तमीश्वरम् ।
अकामयानस्य च सर्वकामो भवेद्द्विषाणस्य च सर्वदोषः ॥ १७८ ॥
न मे स्वभावेषु भवन्ति लेपास्तोयस्य विन्दोरिव पुष्करेषु ।
नित्यस्य मे नैव भवन्त्यनित्या निरीक्षमाणस्य वहुस्वभावात् ॥ १७९ ॥
न सज्जते कर्मसु भोगजालं दिवीव सूर्यस्य मयूखजालम् ॥ १८० ॥
एवम्विधेन पुत्रेण मा मातर्दुःखिनी भव । तत्पदं त्वाञ्च नेष्यामि न यत्क्रतुशतै
इति पुत्रवचःश्रुत्वा विस्मिता इतराऽभवत् । चिन्तयामास यद्येवं विद्वान्ममसुतो
लोकेषुख्यातिमायातिततोमेस्याद्यशःपरम् । इत्यादिचिन्तयन्त्यांचरजन्यांभगवान्
प्रहृष्टस्तस्य तैर्वाक्यैर्विस्मितः प्रादुरास च । मूर्तेः स्वयं विनिष्क्रम्य शङ्खचक्रगदा
जगदुद्भासयन्भासा सूर्यकोटिसमप्रभः । ततो निष्पत्य धरणीं हृष्टरोमाऽऽश्रु
मूर्ध्नि वद्धाञ्जलिं धीमानैतरैयोऽथ तुष्टुवे ॥ १८६ ॥
नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि । प्रद्युम्नायाऽनिरुद्धाय नमः सकर्षणाय च
नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये । आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैत
आत्मानन्दानुभूत्यैव सम्यक्त्यक्तोर्मये नमः । हृषीकेशाय महते नमस्तेऽनन्त
वचस्युपरते प्राप्यो य एको मनसा सह । अनामरूपचिन्मात्रः सोऽव्यान्नः सदसत्
यस्मिन्निदं यतश्चेदं तिष्ठत्यपैति जायते । मृण्मयेष्विव मृज्जातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे

यन्नस्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः । अन्तर्बहिश्च विततं व्योमवत्प्रणतोऽस्म्यहम्
देहेन्द्रियप्राणमनोधियोऽमी यदंशबद्धाः प्रचरन्ति कर्मसु ।
नैवाऽन्यदा लोहमिव प्रतप्तं स्थानेषु तद्द्रष्टपदेन एते ॥ १९३ ॥
चतुर्भिश्च त्रिभिर्द्वाभ्यामेकधा प्रणमामि तम् । पूर्वापरापरयुगे शास्तारं परमीश्वरम्
हित्वा गतीर्मोक्षकामा यं भजन्ति दशात्मकम् । तं परं सत्यममलं त्वां वयं पर्युपास्महे
ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय विभूतिपतये सकलसात्वतपरिवृढनिकर-
करकमलोत्पलकुड्मलोपलालितचरणारविन्दयुगल परमपरमेष्ठिन्नमस्ते ॥ १९६ ॥
तवाग्निरास्यं वसुधाङ्घ्रियुग्मं नभःशिरश्चन्द्ररवी च नेत्रे ।
समस्तलोका जठरं भुजाश्च दिशश्चतस्रो भगवन्नमस्ते ॥ १९७ ॥
जन्मानि तावन्ति न सन्ति देव ! निष्पीड्य सर्वाणि च सर्वकालम् ।
भूतानि यावन्ति मयाऽत्र भीमे पीतानि संसारमहासमुद्रे ॥ १९८ ॥
सम्पच्छिलानां हिमवन्महेन्द्रकैलासमेर्वादिषु नैव तादृक् ।
देहाननेकाननुगृह्णतो मे प्राप्ताऽस्ति सम्पन्महती यथेश ! ॥ १९९ ॥
न सन्ति ते देव भुवि प्रदेशा न येषु जातोऽस्मि तथा विनष्टः ।
भूत्वा मया येषु न जन्तवश्च सम्भक्षितो वा न च भूतसङ्घैः ॥ २०० ॥
शोकाभिभूतस्य ममाऽश्रु देव ! यावत्प्रमाणं पतितं भवेषु ।
तावत्प्रमाणं न जलं पयोदा मुञ्चन्ति दिव्यैरपि वर्षलक्षैः ॥ २०१ ॥
मन्ये धरित्रीपरमाणुसंख्यामुपैति पित्रोर्गणना न मह्यम् ।
मित्राण्यमित्राण्यनुजीव्यबन्धून्संख्यातुमीशोऽस्मि न देवदेव ! ॥ २०२ ॥
त्वय्यर्पितं नाथ पुनः पुनर्मे मनः समाक्षिप्य सुदुर्द्धरारि ।
कामो वशं क्रोधमुखैः सहायैः करोति किं तद्भगवन्करोमि । २०३ ॥
सोऽहं भृशार्तः करुणाकरस्त्वं संसारगत पतितस्य विष्णो ! ।
महात्मनां संश्रयमभ्युपेतो नैवाऽवसीदत्यपि दुर्गतोऽपि ॥ २०४ ॥
परायणं रोगवतो हि वैद्यो महाब्धिमग्नस्य च नौर्नरस्य ।

बालस्य मातापितरौ सुघोरसंसारखिन्नस्य हरे! त्वमेव ॥ २०५ ॥
प्रसीद सर्वेश्वर! सर्वभूत! सर्वस्य हेतो! परमार्थसार!।
मामुद्धराऽस्माद्गुरुदुःखसंघात्संसारगर्तात्स्वपरिग्रहेण ॥ २०६ ॥
क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमं मुहुरर्द्यमानं शीतोष्णवातसलिलैरितरेतराच्च।
कामाग्निनाऽच्युत! रुषा च सुदुर्भरेण सम्पश्यतो मम उरुक्रम सीदतो
भवन्तु भद्राणि समस्तदोषाः प्रयान्तु नाशं जगतोऽखिलस्य।
मयाऽद्य भक्त्या परमेश्वरे प्रभौ स्तुते जगद्धातरि वासुदेवे ॥ २०८ ॥
ये भूतले ये दिवि चाऽन्तरिक्षे रसातले प्राणिगणाश्च केचित्।
भवन्तु ते सिद्धियुजो मयाऽद्य स्तुते जगद्धातरि वासुदेवे ॥ २०९ ॥
अज्ञानिनो ज्ञानविदो भवन्तु प्रशान्तिभाजः सततोग्रचित्ताः।
मया च विश्वम्भरणे ह्यनन्ते स्तुते जगद्धातरि वासुदेवे ॥ २१० ॥
शृण्वन्ति ये मे स्तुवतस्तथाऽन्ये पश्यन्ति ये मामिदमीरयन्तम्।
देवासुराद्या मनुजास्तिरश्चो भवन्तु तेऽप्यच्युतयोगभाजः ॥ २११ ॥
ये चाऽपि मूका विकलेन्द्रियत्वात्पठन्ति नो नैव विलोकयन्ति।
पश्वादयः कीटपिपीलिकाद्या भवन्तु तेऽप्यच्युतयोगभाजः ॥ २१२ ॥
नश्यन्तु दुःखानि जगत्यपेतु लोभादिको दोषगणः प्रजाभ्यः।
यथाऽऽत्मनि भ्रातरि चाऽऽत्मजे वा तथा नरस्याऽस्तु जनेऽपि भावः।
संसारवैद्येऽखिलदोषहानिविचक्षणे निर्वृतिहेतुभूते।
संसारबन्धाः शिथिलीभवन्तु हृदि स्थिते सर्वजनस्य विष्णौ ॥ २१४ ॥
पापं प्रणाशं मम च प्रयातु यन्मानसं यच्च करोमि वाचा।
शारीरमप्याचरितं च यन्मे स्मृते जगद्धातरि वासुदेवे ॥ २१५ ॥
यथा हि वा वासुदेवेति प्रोक्ते सङ्कीर्त्तने विष्णुभक्तस्य वाऽपि।
मृते हरौ वाऽपि प्रयाति पापं सत्येन मे नश्यतां तेन पापम् ॥ २१६ ॥
मूढोऽयमल्पमतिरल्पविचेष्टितोऽयं क्लिष्टं मनोऽपि विषयैर्मयि न प्रसीद

इत्थं कृपां कुरु मयि प्रणतेऽखिलेश! त्वां स्तोतुमम्बुजभवोऽपिहि देव!नेशः
स त्वं प्रसीद भगवन्कुरु मय्यनाथे विष्णो! कृपांपरमकारुणिकःकिल त्वम्
संसारसागरनिमग्नमनन्तदीनमुद्धर्तुमर्हसि हरे ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥ २१८ ॥
इत्थं स्तुतः स भगवानैतरेयेण भारत !। वासुदेवो विशालात्मा सानन्दमिदमाह तम्
वत्सैतरेय! तुष्टोऽस्मि भक्त्याऽनेन स्तवेन ते। वरंवृणुष्वमत्तस्त्वं दुर्लभंयदभीप्सितम्

ऐतरेय उवाच

एष एव वरो नाथ! मम नित्यमभीप्सितः । मज्जतो घोरसंसारे कर्णधारो हरे ! भव॥

श्रीभगवानुवाच

मुक्त एवाऽसि संसाराद्यस्य ते भक्तिरीदृशी । ग्रहैर्महाग्रहैर्बद्धो नैव ते द्वित्रयोदशी ॥
यश्च स्तोत्रेण सततं गुप्तक्षेत्रसमीहितम् । स्तोष्यते वासुदेवं मां स पापक्षयमाप्स्यति
यस्मादेतेन स्तोत्रेणपापं नाशमवाप्स्यति । अघनाशनमित्येवतस्मात्ख्यातिमवाप्स्यति
एकादश्यामुपोष्यैव ममाऽग्रे यःपठिष्यति । स्तवमेनंस पूतात्मा मम लोकमवाप्स्यति
सर्वेषामेव क्षेत्राणां गुप्तक्षेत्रं प्रियं यथा । तथा सर्वस्तवानाञ्च स्तवोऽयं सुप्रियो मम

यानि चोद्दिश्य भूतानि जप्यतेऽसौ महात्मभिः ।
तानि शान्तिं भगं प्रज्ञां प्राप्स्यन्ति कृपया मम ॥ २२७ ॥

त्वंचवत्सश्रौतधर्मान्सम्यगाचर श्रद्धया । नतैर्बन्धं मयिन्यस्तैराप्स्यस्यनभिसन्धितैः
यज यज्ञैरवाप्यैव दारान्नन्दय मातरम् । मयि ध्यानेन तीव्रेणमामवाप्स्यस्यसंशयम् ॥
बुद्धिर्मनोऽथ भूतानि बुद्धिकर्मेन्द्रियाणि च । त्रयोदशग्रहैर्ये स्युस्त्रयोदश महाग्रहाः ॥
बोद्धव्यमथ मन्तव्यमहन्ता शब्द एव च । स्पर्शो रसो रूपगन्धौ वचनादानमेव च ॥
विहृत्युत्सर्ग आनन्दस्त्रयोदश महाग्रहाः । एतान्महाग्रहान्पुत्र शुद्धाञ्छुद्धैः स्वकैर्ग्रहैः
गृहाण ध्यानयोगेन ममैवंमोक्षमाप्स्यसि । एवं त्वं कर्मभिर्वीरनैष्कर्म्यसमवाप्स्यसि
शुल्वं रसेन सम्बिद्धं दक्षो हेम यथाऽश्नुते । वर्णाश्रमाचारव्रता मयि सन्यस्तकर्मणा
मदनुध्यानयुक्तेन मोक्षो नास्तीह दुर्लभः । तस्मादेवं वर्तमानो नन्द व्रतपरायणः ॥
उद्धृत्य सप्तपुरुषांल्लयं मयि गमिष्यसि । साम्प्रतं प्रतिभास्यन्ति वेदश्चापठिताअपि

ततस्त्वं कोटितीर्थे च यज्ञे वै हरिमेधसः ।
याहि तत्र भविष्यं ते सर्वं मातुरभीप्सितम् ॥ २३७ ॥

इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुर्मूर्तिमध्ये विवेश ह । विलोक्यमानो निमिषंमात्राचैवमु...
ततो मूर्तिं नमस्कृत्य वासुदेवस्य विस्मितः । ऐतरेयः स्वजननीं मुदितोवाक्य...
पुराऽहमभवं शूद्रो भीतः संसारदोषतः । परिनिष्ठागतं धर्मं ब्राह्मणं शरणं गतः...
स कृपालुर्मम प्राह मन्त्रं वै द्वादशाक्षरम् । सदेमं जपचेत्युक्त्वा तमहं जप्तवान्स...

तेन जाप्यप्रभावेण ममोत्पत्तिस्तवोदरात् ।
जातस्मृतिर्विष्णुभक्तिः स्थितिरत्र च सर्वदा ॥ २४२ ॥

इदानीञ्च प्रयास्येष यज्ञं तं हरिमेधसः । त्वद्रूपं विष्णुप्रीत्यर्थं प्रणम्य त्वां प्रसाद...
ततोमहीनगरकाख्येकोटितीर्थतलस्थितम् । यजन्तं सम्वृतं विप्रैःकोटिशस्तमुपाग...
गेहाय मातरं प्रोच्य स यज्ञे प्रोक्तवान्द्विजः । नमस्तस्मै भगवते विष्णवेऽकुण्ठ...
यन्मायामोहितधियो भ्रमामः कर्मसागरे । इति श्लोकं महार्थं ते हरिमेधमुखाद्...
आकर्ण्याऽऽसनपूजाद्यैः पूजयामासुरङ्ग! तम् । ततोवेदार्थनैपुण्यैस्तेनते तोषिताद्...
प्रददुर्दक्षिणां सर्वां हरिमेधाः सुतामपि । द्रव्यं कन्याञ्च संगृह्य स्वगृहं समुपाग...
वन्दयित्वा स्वजननीं पुत्रानुत्पाद्य चाऽमलान् । इष्ट्वा यज्ञैरैतरेयो द्वादशीव्रततत्प...
वासुदेवानुध्यानेन मोक्षं पश्चादुपागतः । एवं विधो वासुदेवः स्वयमत्राऽस्ति ...
योऽर्चयेत्पूजयेत्स्तौति सर्वं तस्याऽक्षयं विदुः । शिवधर्मेषु यत्प्रोक्तं फलंपूर्वंमया...

तादृशं लभते मर्त्यो वासुदेवप्रसादतः ॥ २५२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरख...
कौमारिकाखण्डे श्रीवृद्धवासुदेवमाहात्म्यवर्णन ऐतरेयब्राह्मणचरित्र-
वर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

———

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

सभट्टादित्यस्थापनं सूर्यमहिमवर्णनमेतरेयायवरदानपुरःसरं भट्टादित्यपूजामाहात्म्यवर्णनम्

श्रीनारद उवाच

ततोऽहं पार्थ भूयोऽपि जनानुग्रहकाम्यया। प्रत्यक्षदेवं मार्तण्डमत्राऽऽनेतुमियेष ह
सर्वेषां प्राणिनां यस्मादुडुपो भगवान्रविः। इहामुत्र च कौन्तेयविश्वोद्धारी रविर्मतः

ये स्मरन्ति रविं भक्त्या कीर्तयन्ति च ये नराः।
पूजयन्ति च ये नित्यं कृतार्थास्ते न संशयः ॥ ३ ॥

सूर्यभक्तिपरा येच नित्यं तद्गतमानसाः। ये स्मरन्ति सदा सूर्यं न ते दुःखस्यभाजिनः
भवनानि मनोज्ञानि विविधाभरणाःस्त्रियः। धनं चाऽदृष्टपर्यन्तं सूर्यपूजाविधेः फलम्

दुर्लभा भक्तिः सूर्ये वा दुर्लभं तस्य चाऽर्चनम्।।
दानं च दुर्लभं तस्मै ततो होमश्च दुर्लभः ॥ ६ ॥

नमस्कारादिसंयुक्तं रविरित्यक्षरद्वयम्। जिह्वाग्रे वर्तते यस्य सफलं तस्य जीवितम्
इत्यहं हृदि सञ्चिन्त्य माहात्म्यंरविजं महत्। पूर्णं वर्षशतं पार्थ!रविभक्त्याह्यतोषयम्
जपेन सुविशुद्धेन च्छन्दसां वायुभोजनः। ततः खाद्द्वितीयांमूर्तिंकृत्वायोगबलाद्विभुः

तेजसा दुर्दृशो भास्वान्प्रत्यक्षः समजायत ॥ १० ॥

तमहं प्राञ्जलिर्भूत्वा नमस्कृत्य रविं प्रभुम्। सामभिर्विविधैर्देवं पर्यतोषयमीश्वरम् ॥
तुष्टो मामाह वरदो देवर्षे!सुचिरंत्वया। तपसाऽऽराधितोऽस्मीतिवरंवृणुयथेप्सितम्
इत्युक्तोऽहं लोकनाथं प्राञ्जलिः प्रास्तुवं वचः। यदि तुष्टो भवान्मह्यंयदिदेयोवरोमम
ततस्ते कामरूपे या कला नाथ! प्रवर्तते। राजवर्धनराज्ञा याऽऽराधिता च जनैः पुरा
तया च कलया भानो! सदाऽत्र स्थातुमर्हसि। ततस्तथेति देवेन प्रोक्ते तुष्टेन भारत
अस्थापयमहं सूर्यं भट्टादित्याभिधानकम्। भट्टेन स्थापितंयस्मान्मयातस्माद्रविर्जगौ

ततः सम्पूज्य तं पुष्पैः कृतावेशमहं रविम् ।
भक्त्युद्रेकाप्लुताङ्गोऽथ स्तुतिमेतामथाऽऽचरम् ॥ १७ ॥
सर्ववेदरहस्यैश्च नामभिश्च शताष्टभिः । सप्तसप्तिरचिन्त्यात्मा महाकारुणिक
सञ्जीवनो जयो जीवो जीवनाथोजगत्पतिः । कालाश्रयःकालकर्त्तामहायोगीमहा
भूतान्तकरणो देवः कमलानन्दनन्दनः । सहस्रपाच्च वरदो दिव्यकुण्डलमण्डि
धर्मप्रियो चितात्मा च सविता वायुवाहनः ।
आदित्योऽक्रोधनः सूर्यो रश्मिमाली विभावसुः ॥ २१ ॥
दिनकृद्दिनहृन्मौनी सुरथो रथिनाम्वरः । राशीपतिः स्वर्णरेताः पूषा त्वष्टा दिवा
आकाशतिलकोधातासम्विभागीमनोहरः । प्राज्ञःप्रजापतिर्धन्योविष्णुःश्रीशोभिष
आलोककृल्लोकनाथो लोकपालनमस्कृतः । विदिताशयश्चसुनयो महात्मा भक्तवत्स
कीर्तिकीर्तिकरो नित्यो रोचिष्णुः कल्मषापहः ।
जितानन्दो महावीर्यो हंसः संहारकारकः ॥ २५ ॥
कृतकृत्यः सुसङ्गश्च बहुज्ञो वचसाम्पतिः । विश्वपूज्यो मृत्युहारीघृणीधर्मस्यकार
प्रणतार्तिहरोऽरोग आयुष्मान्सुखदः सुखी । मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो व्रती व्रतफल
शुचिः पूर्णो मोक्षमार्गदाता भोक्ता महेश्वरः । धन्वन्तरिः प्रियाभाषीधनुर्वेदविदेक
जगत्पिता धूमकेतुर्विधूतो ध्वान्तहा गुरुः ।
गोपतिश्च कृतातिथ्यः शुभाचारः शुचिप्रियः ॥ २६ ॥
सामप्रियो लोकबन्धुर्नैकरूपो युगादिकृत् । धर्मसेतुर्लोकसाक्षी खेटकः सर्वद
मयैवं संस्तुतो भानुर्नाम्नामष्टशतेन च । तुष्यतां सर्वलोकानां सर्वलोकप्रियो वि
इत्येवं संस्तवात्प्रीतो भास्करो मामवोचत ।
सदाऽत्र कलया स्थास्ये देवर्षे ! त्वत्प्रियेप्सया ॥ ३२ ॥
योमामत्रमहाभक्त्याभट्टादित्यंप्रपूजयेत् । सहस्रशःकामरूपेसम्पूज्याऽऽप्नोतितत्फल
मामुद्दिश्यच यो विप्रःस्वल्पं वा यदिवा बहु । दास्यतेऽत्राऽक्षयं तच्चग्रहीष्येकरजंग
रक्तोत्पलैश्च कह्लारैः केसरैः करवीरकैः । शतत्रयैर्महापद्मै रविवारेण मानवः ॥ ३५

सप्तम्यामथ षष्ठ्यां वा येऽर्चयिष्यन्ति मामिह।
यान्यान्प्रार्थयते कामांस्तास्तांन्प्राप्स्यति निश्चितम् ॥ ३६ ॥
दर्शनान्मम भक्त्या च नाशो व्याधिदरिद्रयोः।
प्रणामात्स्वर्गमाप्नोति श्रुत्वा मोक्षं च नित्यशः ॥ ३७ ॥
अभक्ति यश्च कर्त्ता मे स गच्छेन्निश्चितंक्षयम्। अष्टोत्तरशतंनाम ममाऽग्रेयत्त्वयेरितम्
त्रिकालमेककालं वा पठतः शृणुयत्फलम्। कीर्तिमान्सुभगोविद्वान्सुसुखीप्रियदर्शनः
भवेद्वर्षशतायुश्च सर्वरोगविवर्जितः। यस्त्विदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा प्रयतः शुचिः ॥
अक्षयं स्वल्पमप्यन्नंभवेत्तस्योपसाधितम्। विजयी च भवेन्नित्यंतथाजातिस्मरोभवेत्
तस्मादेतत्त्वयाजाप्यं परं स्वस्त्ययनंमहत्। यथाममाग्रे कुण्डंच कुरु स्नानार्थमुत्तमम्
कामरूपकला यत्र तत्र कुण्डं वने भवेत्। एवं दत्त्वा वरान्भानुस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥
ततो भास्करवाक्येन सिद्धेशस्य च सव्यतः। वनमध्ये मया कुण्डं कृतं दर्भशलाकया
कामरूपभवं कुण्डं वृक्षास्ते चाऽपिभारत !। संलीनास्तन्महाश्चर्यं ममाऽजायतचेतसि
माघमासस्य शुक्लायां सप्तम्यां स्त्री नरोऽपि वा।
स्नानं कुण्डे शुभं कृत्वा भट्टादित्यं प्रपश्यति ॥ ४६ ॥
तस्याऽनन्तं भवेत्पुण्यं रथं यश्च प्रपूजयेत्। रथयात्राञ्च कुरुते यस्मिन्यस्मिन्नसौपथि
येचपश्यन्तिलोकास्तेधन्याःसर्वेनसंशयः। पुत्रधान्यधनैर्युक्तानीरुजस्तेजसाऽन्विताः
भविष्यन्ति नरास्ते ये कारयन्तिरथोत्सवम्। गङ्गादिसर्वतीर्थेषु यत्फलंकीर्तितंबुधैः
भट्टादित्यस्यकुण्डे च तत्फलंसप्तमीदिने। तत्रकुण्डेचयःस्नात्वासूर्यायाऽर्घ्यंप्रयच्छति
कपिलागोशतस्याऽसौ दत्तस्य फलमश्नुते ॥ ५० ॥

अर्जुन उवाच

वासुदेवादयः सर्वे वदन्त्येवं महामुने !॥ ५१ ॥
भास्करार्घंविनाप्रातःकृतंसर्वंचनिष्फलम्।तस्याऽहंश्रोतुमिच्छामिविधिंविधिविदाम्वर!

नारद उवाच

यथा ब्रह्मादयो देवायच्छन्त्यर्घंमहात्मने। भास्कराय शृणु त्वं तंविधिंसर्वाघनाशनम्

प्रथमं तावत्प्रत्यूषे उदिते सूर्ये शुचिर्भूत्वा गोमयकृतमण्डलस्योपरि रक्त
मण्डलकं कृत्वा ततस्ताम्रपात्रे रक्तचन्दनोदकश्वेतचन्दनादिद्रव्यैः प्रपूरणं
तन्मध्ये हेमाक्षतदूर्वादधिसर्पींषि परिक्षिप्य स्थापयेत् ॥ ५४ ॥

स्वशरीरमालभेत् अनेन मन्त्रेण । ॐ खखोल्काय नमः । सप्तवारानुच्चार्यस्था
तेन शुद्धिरुपसञ्जायते देहस्याऽर्चार्हता भवति ।

पश्चादासनस्थं देवं सवितारं मण्डलमध्ये द्वादशात्मकं सुरादिभिः सम्पूज्
ध्यात्वा पूर्वोक्तमर्घपात्रं शिरसि कृत्वा भूमौ जानुनी निपात्य सूर्याभिमुखस्तद्
भूत्वाऽर्घमन्त्रमुदाहरेत् ।

तदुच्यते सूर्यवक्त्राद्विनिर्गतमिति ॥ ५५ ॥

यस्योच्चारणशब्देन रथं संस्थाप्य भास्करः । प्रतिगृह्णातिचैवार्घ्यंवरमिष्टं च
ॐयस्याऽऽहुः सप्त च्छन्दांसि रथे तिष्ठन्ति वाजिनः ।
अरुणः सारथिर्यस्य रथवाहोऽग्रतः स्थितः ॥ ५७ ॥

जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशनी । इडा च पिङ्गलाचैववहन्तोऽश्वमुखा
डिण्डिश्च शेषनागश्चगणाध्यक्षस्तथैव च । स्कन्दश्चैवन्ततार्क्ष्यश्चतथाकल्माषप
राज्ञी च निक्षुभादेवीललिताचैव सञ्ज्ञिका । तथायज्ञभुजोदेवा येचाऽन्येपरिकी
एभिः परिवृतो योऽसावधरोत्तरवासिभिः । तमहं लोककर्तारमाह्वयामि तमो
अम्मयो भगवान्भानुरमुं यज्ञं प्रवर्तयन् । इदमर्घ्यं च पाद्यं च प्रगृहाण नमो

॥ आवाहनम् ॥

सहस्रकिरणवरद जीवनरूप ते नमः । इति सान्निध्यकरणम् ॥ ॐवषट् इत्यु
सूर्यस्य चरणयुगलं पश्यन् भुवि पद्भ्यां पात्रीं निर्वापयेत् पाद्यं तदुच्यते । एवं
दत्त्वा बद्धाञ्जलिः सुस्वागतमिति कुर्यात् । स्वागतं भगवन्नेहि मम प्रसादं वि
आस्यताम् । इह गृहाण पूजाञ्च प्रसादञ्च धिया कुरु । तिष्ठ त्वं तावदत्रैव याव
करोम्यहम् ॥ ६३ ॥

एवं विज्ञापनं दद्यादनेन मन्त्रेण कमलासनम् । तत्कमलासनं कमलनन्दनउपवि

आसन उपविष्टस्य शेषां पूजां नियोजयेत् अनेन विधानेन ॐसोममूर्तिक्षीरोदपतये नमः। इति क्षीरादिस्नपनम्। ॐभास्कराय नीरवासिने नमः। इति जलस्नानम्। ततो वासोयुगं शुभ्रं दद्यात् अनेन मन्त्रेण। इदं वासोयुगं सूर्य! गृहाण कृपया मम। कटिभूषणमेकं ते द्वितीयं चाङ्गप्रावरणम्॥ ६४॥

ततो यज्ञोपवीतं दद्यात् अनेन मन्त्रेण। सूत्रतन्तुमयं शुद्धं पवित्रमिदमुत्तमम्।
यज्ञोपवीतं देवेश! प्रगृहाण नमोऽस्तु ते॥ ६५॥

ततो यथाशक्ति श्वेतमुकुटमुद्रिकादिभूषणानि दद्यात् अनेन मन्त्रेण। मुकुटो रत्नबद्धोऽयं मुद्रिकां भूषणानि च। अलङ्कारं गृहाणेमं मया भक्त्या समर्पितम्

एवमलङ्कारं निवेद्य पश्चात्केशरकुङ्कुमकर्पूररक्तचन्दनमिश्रमनुलेपनं दद्यात् ॐतवातिप्रियवृक्षाणांरसोऽयंतिग्मदीधिते!। स तवैवोचितःस्वामिन्गृहाणकृपयामम ततश्चम्पकजपाकरवीरकर्णककेसरकोकनदादिभिः पूजां कुर्यात्॥ ६६॥

ॐ वनस्पतिरसो दिव्योगन्धाढ्योगन्धउत्तमः।
आहारः(आघ्रेयः)सर्वदेवानांधूपोऽयंप्रतिगृह्यताम्॥ ७०॥

॥ शल्लकीधूपमन्त्रः॥

ततः पायसादिनिष्पन्नं नैवेद्यं निवेदयेदनेनमन्त्रेण। नैवेद्यममृतंसर्वभूतानांप्राणवर्धनम्
पूर्णपात्रे मया दत्तं प्रतिगृह्य प्रसीद मे॥ ७१॥

ततः शौचोदकताम्बूलदीपार्तिकशीतलिकापुनःपूजादि निवेद्य यथाशक्त्या स्तुत्वा सुकृतं दुष्कृतं वा क्षमस्वेति प्रोच्य विसर्जयेत्। ततो भूयो नमस्य हेमवस्त्रोपवीता-लङ्कारान् ब्राह्मणाय निवेद्य निर्माल्यं संहृत्याऽम्भसि निक्षिपेत्॥ ७२॥

॥ इत्यर्घ्यदानविधिः॥

यएवंभास्करायाऽर्घ्यंमूर्तौमण्डलकेऽपिवा। नित्यं निवेदयेत्प्रातःस्याद्रवेरात्मवत्प्रियः
अनेन विधिना कर्णो भास्कराघ्यं प्रयच्छति। ततःसूर्यस्यपार्थासावात्मवद्वल्लभोमतः
अशक्तश्चेन्नित्यमेकमर्घ्यं दद्याद्दिवाकृते। ततोऽत्र रथसप्तम्यां कुण्डे देयः प्रयत्नतः॥
अश्वमेधफलं प्राप्य सूर्यलोकमवाप्नुयात्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दातव्योऽर्घोऽत्रभारत

एवं विधस्त्वसौ देवो भट्टादित्योऽत्र तिष्ठति ।
भूयानतोऽपि बहुशः पापहा धर्मवर्धनः ॥ ७७ ॥

दिव्यमष्टविधं चात्र सद्यः प्रत्ययकारकम् । पापानां चोपभुक्तंहि यथा पार्थ इ...

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर... कौमारिकाखण्डे सागरसङ्गमे भट्टादित्यमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

भट्टादित्यमाहात्म्येऽष्टदिव्यपरीक्षावर्णनम्

अर्जुन उवाच

दिव्यप्राकारमिच्छामि श्रोतुं चाऽहं मुनीश्वर !।
कथं कार्याणि कानीह स्फुटं यैः पुण्यपापकम् ॥ १ ॥

नारद उवाच

शपथाः कोशघटकौ विषाग्नी तप्तमाषकौ । फलंच तन्दुलं चैव दिव्यानष्टौ विदुः...
असाक्षिकेषु चाऽर्थेषु मिथो विवदमानयोः । राजद्रोहाभिशापेषु साहसेषु तथैव...
अविदस्तत्त्वतः सत्यं शपथेनाभिलङ्घयेत् । महर्षिभिश्च देवैश्च सत्यार्थाः शपथाः...
जवनो नृपतिः क्षीणो मिथ्याशपथमाचरेत् । वसिष्ठाग्रे वर्षमध्ये सान्वयःकिल...
अन्धः शत्रुगृहं गच्छेद्यो मिथ्याशपथांश्चरेत् । रौरवस्य स्वयंद्वारमुद्घाटयति दु...

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ।
तांश्च देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपौरुषाः ॥ ७ ॥

आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मो हि जानाति नरस्य वृत्तम् ॥ ८ ॥

एवं तस्मादभिज्ञाय सत्यार्थंशपथांश्चरेत्। वृथा हि शपथान्कुर्वन्प्रेत्य चेह विनश्यति
इदं सत्यं वदामीति ब्रुवन्साक्षीभवान्यतः। शुभाशुभफलं देहि शुचिःपादौरवेःस्पृशेत्
अथ शास्त्रस्य विप्रोऽपि शस्त्रस्याऽपि च क्षत्रियः।
मां संस्पृशंस्तथा वैश्यः शूद्रः स्वगुरुमेव च ॥ ११ ॥
मातरं पितरं पूज्यं स्पृशेत्साधारणंत्विदम्। कोशस्यरूपंपूर्वन्तेव्याख्यातंपाण्डुनन्दन!
विप्रवर्ज्यं तथा कोशं वर्णिनां दापयेन्नृपः। यो यो यद्देवताभक्तः पाययेत्तस्य तं नरम्
समभक्तं च देवानामादित्यस्यैव पाययेत्। सर्वेषां चोग्रदेवानां स्नापयेदायुधास्त्रकम्
स्नानोदकं वा सङ्कल्पं गृहीत्वापाययेन्नवम्। त्रिसप्तरात्रमध्येचफलं कोशस्यनिर्दिशेत्
अतः परं महादिव्यविधानं शृणु यद्भवेत्। संशयच्छेदि सर्वेषां धार्ष्ट्यात्तद्दिव्यमेवच
सशिरस्कंप्रदातव्यमिति ब्रह्मा पुराऽब्रवीत्। महोग्राणांच दातव्यमशिरस्कमपिस्फुटम्
साधूनां वर्णिनां राजा न शिरस्कं प्रदापयेत्।
न प्रवाते घटं देयं नोष्णकाले हुताशनम् ॥ १८ ॥
वर्णिनां च तथा कालं तन्दुलं मुखरोगिणाम् ॥ १६ ॥
कुष्ठपित्तार्दितानांच ब्राह्मणानाञ्च नो विषम्। तस्माघकमर्हन्ति सर्वे धर्म्यं निरत्ययम्
न व्याधिमरके देशे शपथान्कोशमेव च। दिव्यान्यासुरकैर्मन्त्रैः स्तम्भयन्तीह केचन
प्रतिघातविदस्तेषां योजयेद्धर्मवत्सलान्।
दिव्यानां स्तम्भकाञ्ज्ञात्वा पापान्नित्यं महीपतिः ॥ २२ ॥
विवासयेत्स्वकाद्राष्ट्रात्तेहिलोकस्य कण्टकाः। तेषामन्वेषणेयत्नंराजानित्यंसमाचरेत्
ते हि पापसमाचारास्तस्करेभ्योऽपि तस्कराः।
प्राग्दृष्टदोषान्स्वल्पेषु दिव्येषु विनियोजयेत् ॥ २४ ॥
महत्स्वपि न चार्थेषु धर्मज्ञान्धर्मवत्सलान्। न मिथ्यावचनं येषां जन्मप्रभृति विद्यते
श्रद्दध्यात्पार्थिवस्तेषां वचनादेव भारत। ज्ञात्वा धर्मिष्ठतां राजा पुरुषस्य विचक्षणः
कोशाल्लोभात्कारयंश्च स्वयमेवप्रयच्छति। तस्मात्पापिषुदिव्यंस्यात्तत्रादौप्रोच्यतेघटे
सुसमायां पृथिव्यांचदिग्भागेपूर्वदक्षिणे। यज्ञियस्यतुवृक्षस्यस्थाप्यंस्यान्मुण्डकद्वयम्

स्तम्भकस्यप्रमाणंचसप्तहस्तंप्रकीर्तितम् । द्वौहस्तौ निखनेत्काष्ठंदृश्यंस्याद्धस्त
अन्तरं तु तयोः कार्यं तथा हस्तचतुष्टयम् । मुण्डकोपरिकाष्ठं च दृढं कुर्या
चतुर्हस्तं तुलाकाष्ठमव्रणं कारयेत्स्थिरम् । खदिरार्जुनवृक्षाणां शिंशपाशाल
तुलाकाष्ठेतुकर्तव्यं तथावैशिक्यकद्वयम् । प्राङ्मुखोनिश्चलःकार्यःशुचौदेशे
पाषाणस्यापिजायेत स्तम्भेषुचघटस्तथा । वणिक्सुवर्णकारोवाकुशलःकांस्य

तुलाधारधरः कार्यो रिपौ मित्रे च यः समः ।
श्रावयेत्प्राड्विवाकोऽपि तुलाधारं विचक्षणः ॥ ३४ ॥

ब्रह्मघ्ने येस्मृता लोका ये च स्त्रीबालघातके । तुलाधारस्यतेलोकास्तुलांधार
एकस्मिंस्तोलयेच्छिक्येज्ञातंसूपोषितं नरम् । द्वितीये मृत्तिकांशुभ्रांगौरांतुतु
इष्टिकाभस्मपाषाणकपालास्थीनि वर्जयेत् । तोलयित्वा ततः पूर्वं तस्मात्तम
मूर्ध्नि पत्रं ततोन्यस्यन्यस्तपत्रंनिवेशयेत् । पत्रे मन्त्रस्त्वयंलेख्योयःपुरोक्तः
"ब्रह्मणस्त्वं सुता देवि तुलानाम्नेतिकथ्यते । तुकारोगौरवेनित्यंलकारोल
गुरुलाघवसंयोगात्तुला तेन निगद्यसे । संशयान्मोचयस्वैनमभिशस्तं नरं शु
भूय आरोपयेत्तं तु नरं तस्मिन्सपत्रकम् । तुलितो यदि वर्धेत शुद्धो भवति

हीयमानो न शुद्धः स्यादिति धर्मविदो विदुः ।
शिक्यच्छेदे तुलाभङ्गे पुनरारोपयेन्नरम् ॥ ४२ ॥

एवं निःसंशयं ज्ञानं यच्चान्यायंनलोपयेत् । एतत्सर्वंरवौ वारे कार्यंसम्पूज्य

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि विषदिव्यं शृणुष्व मे ॥ ४४ ॥

द्विप्रकारं च तत्प्रोक्तं घटसर्पविषं तथा । शृङ्गिणो वत्सनाभस्य हिमशैलभ
यवाःसप्त प्रदातव्या अथवा षड्घृतप्लुताः । मूर्ध्निविन्यस्तपत्रस्य पत्रे वैवं
त्वं विष! ब्रह्मणः पुत्र सत्यधर्मेव्यवस्थितः । त्रायस्वैनंनरंपापात्सत्येनास्य
येन वेगैर्विना जीर्णं छर्दिमूर्च्छाविवर्जितम् । तं तु शुद्धंविजानीयादितिधर्म
क्षुधितं क्षुधितः सर्पं घटस्थंप्रोच्यपूर्ववत् । संस्पृशेत्तालिकाःसप्तनदशेच्चु
अग्निदिव्यं यथा प्राह विरञ्चिस्तच्छृणुष्व मे । सप्तमण्डलकान्कुर्याद्दिवस्या

मण्डलान्मण्डलं कार्यं पूर्वेणेति विनिश्चयः । षोडशाङ्गुलकंकार्यं मण्डलात्तावदन्तरम् ।
आर्द्रवाससमाहूय तथा चैवाप्युपोषितम् । कारयेत्सर्वदिव्यानि देवब्राह्मणसन्निधौ
प्रत्यक्षं कारयेद्दिव्यं राज्ञो वाऽधिकृतस्य वा । ब्राह्मणानां श्रुतवतां प्रकृतीनां तथैव च
पश्चिमे दिनकाले हि प्राङ्मुखः प्राञ्जलिः शुचिः ।
चतुरस्रे मण्डलेऽन्ये कृत्वा चैव समौ करौ ॥ ५४ ॥
लक्षयेयुः कृतादीनि हस्तयोस्तस्यहारिणः । सप्ताश्वत्थस्यपत्राणिबध्नीयुःकरयोस्ततः
नवेन कृतसूत्रेण कार्पासेन दृढं यथा । ततस्तु सुसमं कृत्वा अष्टाङ्गुलमथायसम् ॥५६
पिण्डं हुताशसन्तप्तंपञ्चाशत्पलिकं दृढम् । आदौपूजांरवेःकृत्वाहुताशस्याऽथकारयेत्
रक्तचन्दनधूपाभ्यां रक्तपुष्पैस्तथैव च । अभिशस्तस्य पत्रं च बध्नीयाच्चैव मूर्धनि ॥
मन्त्रेणाऽनेन संयुक्तं ब्राह्मणाभिहितेन च । त्वमग्ने! वेदाश्चत्वारस्त्वं च यज्ञेषु हूयसे
पापं पुनासि वै यस्मात्तस्मात्पावक उच्यसे । त्वंमुखंसर्वदेवानांत्वंमुखंब्रह्मवादिनाम्
जठरस्थोऽसिभूतानां ततो वेत्सि शुभाशुभम् । पापेषुदर्शयात्मानमर्चिष्मान्भवपावक
अथवा शुद्धभावेषु शीतो भव महाबल !। ततोऽभिशस्तः शनकैर्मण्डलानि परिक्रमेत्
परिक्रम्य शनैर्जह्याल्लोहपिण्डं ततः क्षितौ । विपत्रहस्तं तं पश्चात्कारयेद्व्रीहिमर्दनम्
निर्विकारौ करौ दृष्ट्वा शुद्धो भवति धर्मतः ।
भयाद्वा पातयेद्यस्तु तदधो वा विभाव्यते ॥ ६४ ॥
पुनस्त्वाहारयेल्लोहं विधिरेष प्रकीर्तितः । अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि तप्तमाषविधिं शृणु
कारयेदायसं पात्रं ताम्रं वा षोडशाङ्गुलम् । चतुरङ्गुलखातं तु मृण्मयं वापि कारयेत्
पूरयेद्घृततैलाभ्यां पलैर्विंशतिभिस्ततः । सुतप्ते निक्षिपेत्तत्र सुवर्णस्य तु माषकम् ॥
वहयुक्तं विन्यसेन्मन्त्रमभिशस्तस्य मूर्धनि । अङ्गुष्ठाङ्गुलियोगेन तप्तमाषं समुद्धरेत् ॥
शुद्धं ज्ञेयमसन्दिग्धं विस्फोटादिविवर्जितम् ।
फालशुद्धिं प्रवक्ष्यामि तां शृणु त्वं धनञ्जय ! ॥ ६९ ॥
आयसं द्वादशपलं घटितं फालमुच्यते । अष्टाङ्गुलमदीर्घं च चतुरङ्गुलविस्तृतम् ॥७०॥
वह्वयुक्तं विन्यसेन्मन्त्रमभिशस्तस्यमूर्धनि । त्रिःपरावर्तयेज्जिह्वांलिहन्नस्मात्षडङ्गुलम्

गवां क्षीरं प्रदातव्यं जिह्वाशोधनमुत्तमम् । जिह्वापरीक्षणं कुर्याद्दग्धा चेन्न विशु
तं विशुद्धंविजानीयाद्विशुद्धा चेत्तु जायते । तन्दुलस्याऽथवक्ष्यामिविधिधर्मसम
चौर्ये तु तन्दुलादेया न चाऽन्यत्रकथञ्चन । तन्दुलान्नुदकेसिक्त्वारात्रौतत्रैव स्था
प्रभाते कारिणे देया भक्षणाय न संशयः । त्रिःकृत्वःप्राङ्मुखश्चैव पत्रे निष्ठीवने

पिप्पलस्याऽथ भूर्जस्य न त्वन्यस्य कथञ्चन ।
तांस्तु वै कारयेच्छुद्धांस्तन्दुलाञ्छालिसम्भवान् ॥ ७६ ॥

मृण्मये भाजने कृत्वा सवितुःपुरतःस्थितः । तन्दुलान्मत्रयेच्छुद्धान्मन्त्रेणाऽनेन
दीयसे धर्मतत्त्वज्ञैर्मानुषाणां विशोधनम् । स्तुतस्तन्दुल ! सत्येनधर्मतस्त्रातुमर्ह
निष्ठीवने कृते तेषां सवितुःपुरतःस्थिते । शोणितं दृश्यते यस्य तमशुद्धं विनि
एवमष्टविधं दिव्यं पापसंशयच्छेदनम् । भट्टादित्यस्य पुरतो जायते कुरुनन्दन
जलदिव्यं तथा प्राहुर्द्विप्रकारं पुराविदः । जलहस्तं स्मृतं चैकं मज्जनं चाऽपरं वि
वाणक्षेपस्तथादानं यावद्वीर्यवता कृतम् । तावत्तं मज्जयेज्जीवेत्तथा तच्छुद्धिमा

एवम्विधमिदं स्थानं भट्टादित्यस्य भारत ! ।
ममैव कृपया भानोर्जातमेतन्महीतले ॥ ८३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर
कौमारिकाखण्डे भट्टादित्यमाहात्म्ये दिव्यवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

नन्दभद्रवणिग्वृत्तान्तवर्णनेतस्यस्वमित्रेणसत्यव्रतेनसहनास्तिकवादविषयेविवा

नारद उवाच

तथा बह्वदकस्थाने कथामाकर्णयाऽद्भुताम् । यस्माद्बह्वदकं कुण्डं कामरूपे यदस्ति

तदस्ति चाऽत्र सङ्क्रान्तं तस्मात्प्रोक्तं बह्वदकम् ।

कपिलेनाऽत्र तप्त्वा च वर्षाणि सुबहून्यपि ॥ २ ॥
स्थापितं शोभनं लिङ्गं कपिलेश्वरसञ्ज्ञितम् । तच्चलिङ्गं सदा पार्थ! नन्दभद्रइतिस्मृतः
वाणिक्सम्पूजयामास त्रिकालं च कृतादरः । सर्वधर्मविशेषज्ञः साक्षाद्धर्म इवाऽपरः
नाऽज्ञातं तस्य किञ्चिच्च यद्धर्मेषु प्रकीर्त्यते । सर्वेषां च सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हितेरतः
कर्मणा मनसा वाचा धर्ममेनमुपाश्रितः । न भूतो न भविष्यश्चनसधर्मोऽस्ति किञ्चन
विदोषो यो हि सर्वत्र निश्चित्यैवंव्यवस्थितः । अस्यधर्मसमुद्रस्यसम्प्रवृद्धस्य सर्वतः
निर्मथ्य नन्दभद्रेण आहृतंतन्निशामय । वाणिज्यं मन्यते श्रेष्ठं जीवनाय तदा स्थितः
परिच्छिन्नैः काष्ठतृणैः शरणं तेन कारितम् । मद्यवर्जं भेदवर्जं कूटवर्जं समं तथा ॥६॥
सर्वभूतेषु वाणिज्यमल्पलाभेन सोऽचरत् । अमाययापरेभ्योऽसौगृहीत्वैवक्रयाणकम्
अमाययैव भूतेभ्यो विक्रीणात्यस्य सद्व्रतम् । केचिद्यज्ञं प्रशंसन्ति नन्दभद्रोन मन्यते
दोषमेनंविनिश्चित्य शृणु तं पाण्डुनन्दन !। लुब्धोऽनृतोदाम्भिकश्चस्वप्रशंसापरायणः
यजन्यज्ञैर्जगद्धन्ति स्वं चाऽन्धतमसं नयेत् । अग्नौ प्रास्ताहुतिःसम्यगादित्यमुपतिष्ठते
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः । यद्यदा यजमानस्य ऋत्विजो द्रव्यमेव च
चौरप्रायस्य कलुषाज्जन्म जायेज्जनस्य हि ।
अदक्षिणे वृथा यज्ञे कृते चाऽप्यविधानतः ॥ १५ ॥
पशवो लकुटैर्हन्युर्यजमानं मृतं हताः । तस्माच्छुद्धैर्यवद्द्रव्यैर्यजमानः शुभः स्मृतः ॥
यज्ञ एवं विचार्याऽसौ यज्ञसारंसमास्थितः । श्रद्धयादेवपूजायानमस्कारःस्तुतिःशुभा
नैवेद्यं हविषश्चैव यज्ञोऽयं हि विकल्मषः । स एव यज्ञःप्रोक्तो वै येन तुष्यन्ति देवताः
केचिच्छंसन्तिसंन्यासं नन्दभद्रो न मन्यते । योहि संन्यस्यविषयान्मनसा गृह्णतेपुनः
उभयभ्रष्ट एवाऽसौ भिन्ना भूमिर्विनश्यति । संन्यासस्य तु यत्सारं तत्तेनावृतमुत्तमम्
कस्यचिन्नैवकर्माणि शपते वा प्रशंसति । नानामार्गस्थितांल्लोकांश्चन्द्रवल्लीयते क्षितौ
न द्वेष्टि नो कामयते न विरुद्धोऽनुरुध्यते ।
समाश्मकाञ्चनो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥ २२ ॥
अभयःसर्वभूतेभ्योयथाऽन्धवधिराकृतिः। नकर्मणांफलाकांक्षाशिवस्याऽऽराधनंहितत्

कारणाद्धर्ममन्विच्छन्न लोभं च ततश्चरन् ॥ २४ ॥

विविच्य नन्दभद्रस्तत्सारं मोक्षेषु जगृहे । कृषिं केचित्प्रशंसन्ति नन्दभद्रो न म
यस्यां छिन्दन्ति वृषणा वृषाणां चैव नासिकान् । कर्षयन्ति महाभारान्वध्नन्ति दमय
बहुदंशमयान्देशान्नयन्ति बहुकर्दमान् । वाहसम्पीडिता धुर्याः सीदन्त्यविधिवान्
मन्यन्ते भ्रूणहत्यापि विशिष्टा नास्य कर्मणः । अघ्न्या इति गवां नाम श्रुतौ ताः पीडयेत्
भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम् । पञ्चेन्द्रियेषु जीवेषु सर्वं वसति दैव
आदित्यश्चन्द्रमा वायुः प्रभूत्यैव च तांस्तुयः । विक्रीणाति सुमूढस्य तस्य का नु विचा
अजोऽग्निर्वरुणो मेषः सूर्यश्च पृथ्वी विराट् । धेनुर्वत्सश्च सोमो वै विक्रीयैतान्नसि
एवंविधसहस्रैश्च युता दोषैः कृषिः सदा । अष्टागवं स्याद्धि हलं त्रिंशद्गागंत्यजे
धर्मे दद्यात्पशून्वृद्धान्पुष्यादेषा कृषिः कुतः । सारमेतत्कृषेस्तेन नन्दभद्रेण चाऽऽगृ
विसाधितव्यान्यन्नानि स्वशक्त्या देवपितृषु । मनुष्यद्विजभूतेषु नियुज्याऽश्नीत स

केचिच्छंसन्ति चैश्वर्यं नन्दभद्रो न मन्यते ।
मानुषा मानुषानेव दासभावेन भुञ्जते ॥ ३५ ॥

वधबन्धनिरोधेन पीडयन्ति दिवानिशम् । देहं किमेतद्धातुः स्वं मातुर्वा जनकस्य
मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा । इति सञ्चिन्त्य व्यहरन्नमराइवई
ऐश्वर्यमदपापिष्ठा महामद्यमदादयः । ऐश्वर्यमदमत्तो हि ना पतित्वा हि मार्दि

आत्मवत्सर्वभृत्येषु श्रिया नैव च माद्यति ॥ ३६ ॥

आत्मप्रत्ययवान्देही क्वेश्वरश्चेदृशोऽस्ति हि । ऐश्वर्यस्यापि सारं स जग्राहैतद्विशा
स्वशक्त्या सर्वभूतेषु यदसौ न पराङ्मुखः । तीर्था ये के प्रशंसन्ति नन्दभद्रो न मन्य
श्रमेण संकरात्तापशीतवातक्षुधा तृषा । क्रोधेन धर्मगेहस्य नाऽपि नाशमवाप्नुय
सौख्येन वा धनस्यापि श्रद्धया स्वल्पगोऽर्थवान् । समर्थो हि महत्पुण्यं शक्त आप्तुं कवाचि
सदा शुचिर्देवयाजी तीर्थसारं गृहे गृहे । नाऽऽपः पुनन्ति पापानि न शैला न महा
आत्मा पुनाति पापानि यदि पापान्निवर्तते । एवमेष समाचारं प्रादुर्भूतं ततस्त
एकीकृत्य सदा धीमान्नन्दभद्रः समास्थितः । तस्यैवं वर्ततः साधोः स्पृहयन्त्यपि दे

वासवप्रमुखाःसर्वे विस्मयं च परं ययुः । अत्रैव स्थानके चापि शूद्रोऽभूत्प्रतिवेश्मकः
स नन्दभद्रं धर्मिष्ठं पुनः पुनरसूयत ।
नास्तिकः स दुराचारः सत्यव्रत इति श्रुतः ॥ ४८ ॥
स सदा नन्दभद्रस्य विलोकयतिचान्तरम् । छिद्रंचेदस्य पश्यामि ततो धर्मान्निवर्तये
स्वभावएवक्रूराणांनास्तिकानांदुरात्मनाम् । आत्मानंपातयन्त्येवपातयन्त्यपरंचयत्
ततस्त्वेवं वर्ततोऽस्य नन्दभद्रस्य धीमतः । एकोऽभूत्तनयःकष्टाद्वार्धिकेसोऽप्यनश्यत
तच्च दैवकृतं मत्वा न शुशोच महामतिः । देवो वा मानवोवाऽपिकोहिदैवाद्विमुच्यते
ततोऽस्य सुप्रिया भार्या सर्वैःसाध्वीगुणैर्युता । गृहधर्मस्यमूर्तिर्यासाक्षादिवअरुन्धती
विनाशमागता पार्थ कनकानाम नामतः । ततो यतेन्द्रियोऽप्येष गृहधर्मविनाशतः ॥
शुशोचहाकष्टमितिपापोऽहमितिचाऽसकृत्।तत्तस्यचान्तरंदृष्ट्वाऽहृष्यत्सत्यव्रतश्चिरात्
उपाव्रज्य च हा कष्टं ब्रुवंस्तं नन्दभद्रकम् ।
दग्धिकर्ण इवाऽऽसाद्य नन्दभद्रमुवाच सः ॥ ५६ ॥
हा नन्दभद्र यद्येवं तवाऽप्येवम्विधंफलम् । एतेन मन्ये मनसि धर्मोऽप्येष वृथैव यत्
इत्यादि बहुधा प्रोच्य तत्तद्वाक्यं ततस्ततः । सत्यव्रतस्ततः प्राह नन्दभद्रं कृपान्वितः
नन्दभद्रसदातुभ्यंवक्तुकामोऽस्मिकिञ्चन। प्रस्तावस्याप्यभावाच्चनोदितंचमयाक्वचित्
अप्रस्तावं ब्रुवन्वाक्यं बृहस्पतिरपि ध्रुवम् । लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानं च हीनवत्॥

नन्दभद्र उवाच

ब्रूहिब्रूहिनमे किञ्चित्साधुगोप्यं प्रियंपरम् । वचोभिःशुद्धसत्वानांनमोक्षोऽप्युपमीयते

सत्यव्रत उवाच

नवभिर्नवभिश्चैव निर्मुक्तं वाग्विदूषणैः । नवभिर्बुद्धिदोषैश्च वाक्यंवक्ष्याम्यदोषवत्
सौक्ष्म्यंसंख्याक्रमश्चाऽपिनिर्णयःसप्रयोजनः । पञ्चैतान्यर्थजातानियत्रतद्वाक्यमुच्यते
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षंचोद्दिश्यचोच्यते । प्रयोजनमितिप्रोक्तंप्रथमं वाक्यलक्षणम्
धर्मार्थकामामोक्षेषु प्रतिज्ञाय विशेषतः । इदं तदिति वाक्यान्ते प्रोच्यतेसविनिर्णयः
इदं पूर्वमिदं पश्चाद्वक्तव्यंयत्क्रमेणहि । क्रमयोगंतमप्याहुर्वाक्यतत्त्वविदोबुधाः॥६६॥

दोषाणाञ्च गुणानाञ्च प्रमाणंप्रविभागतः । उभयार्थमपि प्रेक्ष्यसासंख्येत्युपधार्य
वाक्ययज्ञेषु भिन्नेषु यत्राऽभेदः प्रदृश्यते ।
तत्राऽतिशयहेतुत्वं तत्सौक्ष्म्यमिति निर्दिशेत् ॥ ६८ ॥
इतिवाक्यगुणानां च वाग्दोषान्द्विनव शृणु । अपेतार्थमभिन्नार्थमपवृत्तं तथाऽधिकं
अश्लक्ष्णंचापिसन्दिग्धंपदान्तेगुरुचाऽक्षरम् । पराङ्मुखमुखंयच्चअनृतंचाप्यसंस्कृतं
विरुद्धंयत्त्रिवर्गेण न्यूनं कष्टातिशब्दकम् । व्युत्क्रमाभिहितंयच्च सशेषं चाऽप्यहेतुकं
निष्कारणं च वाग्दोषान्बुद्धिजाञ्छृणु त्वं च यान् ।
कामात्क्रोधाद्भयाच्चैव लोभाद्दैन्यादनार्यकात् ॥ ७२ ॥
हीनानुक्रोशतोमानान्नचवक्ष्यामिकिञ्चन । वक्ता श्रोताचवाक्यंचयदा त्वविकलं
सममेति विवक्षायां तदा सोऽर्थः प्रकाशते । वक्तव्ये तु यदा वक्ता श्रोतारमवमन्य
श्रोताचाप्यथवक्तारंतदावाक्यंनरोहति । अथ यः स्वप्रियं ब्रूयाच्छ्रोतुर्वोत्सृज्य
विशङ्का जायते तस्मिन्वाक्यं तदपि दोषवत् ।
तस्माद्यः स्वप्रियं त्यक्त्वा श्रोतुश्चाऽप्यथ यत्प्रियम् ॥ ७६ ॥
सत्यमेव प्रभाषेत स वक्ता नेतरो भुवि । मिथ्यावादाञ्छास्त्रजालसम्भवान्यद्विहाय
सत्यमेव व्रतंयस्मात्तस्मात्सत्यव्रतस्त्वहम् । सत्यंते सम्प्रवक्ष्यामिमन्तुमर्हसितत्त्व
यदाप्रभृति भद्र त्वं पाषाणस्यार्चनेरतः । तदाप्रभृति किञ्चिच्चन हि पश्यामिशोभनं
एकःसोऽपिसुतोनष्टोभार्याचार्याऽप्यनश्यत । कूटानांकर्मणांसाधोफलमेवंविधं
क देवाःसन्ति मिथ्यैतद्दृश्यन्तेचेद्भवन्त्यपि । सर्वाचकूटविप्राणांद्रव्यायैपाविकल्प
पितॄनुद्दिश्य यच्छन्ति मम हासः प्रजायते । अन्नस्योपद्रवं यच्च मृतोहि किमश्नाति
यत्त्विदं बहुधा मूढा वर्णयन्तिद्विजाधमाः । विश्वनिर्माणमखिलंतथापिश्रुणुसत्त
उत्पत्तिश्चापिभङ्गश्चविश्वस्यैतद्द्वयंमृषा । एवमेव हि सर्वं च सदिदं वर्ततेजगत्
स्वभावतो विश्वमिदं हि वर्तते स्वभावतः सूर्यमुखा भ्रमन्त्यमी ।
स्वभावतो वायवो वान्ति नित्यं स्वभावतो वर्षति चाम्बुदोऽयम् ॥ ८
स्वभावतो रोहति धान्यजातं स्वभावतोवर्षशीतातपत्वम् ।

स्वभावतः संस्थिता मेदिनी च स्वभावतः सरितः संस्रवन्ति ॥ ८६ ॥
स्वभावतः पर्वता भान्ति नित्यं स्वभावतो वारिधिरेष संस्थितः ।
स्वभावतो गर्भिणी सम्प्रसूते स्वभावतोऽमी बहवश्च जीवाः ॥ ८७ ॥
यथा स्वभावेन भवन्ति वक्रा ऋतुस्वभावाद्बदरीषु कण्टकाः ।
तथा स्वभावेन हि सर्वमेतत्प्रकाशते कोऽपि कर्त्ता न दृश्यः ॥ ८८ ॥

तदेवं संस्थिते लोके मूढे मुह्यतिमत्तवत् । मानुष्यमपियद्धूर्ता वदन्त्यग्र्यं शृणुष्वतत्
मानुष्यान्नापरंकष्टं वैरिणांनोभवेद्धितत् । शोकस्थानसहस्राणि मनुष्यस्य क्षणेक्षणे
मानुष्यं हि स्मृताकारं सभाग्योऽस्माद्विमुच्यते ।
पशवः पक्षिणः कीटाः कृमयश्च यथासुखम् ॥ ९१ ॥
भवद्धा विहरन्त्येते योनिरेषां सुदुर्लभा । निश्चिन्ताःस्थावराह्येतेसौख्यमेषांमहद्भुवि ॥
बहुनाकिंमनुष्येभ्यःसर्वोधन्योऽन्ययोनिजः । स्वभावमेवजानीहिपुण्यापुण्यादिकल्पना
यदेकेस्थावराःकीटाःपतङ्गामानुषादिकाः । तस्मान्मिथ्यापरित्यज्यनन्दभद्रयथासुखम्
पिब क्रीडनकैः सार्धं भोगान्सत्यमिदं भुवि ॥ ९४ ॥

नारद उवाच

इत्येतैरसुखैर्वाक्यैरयुक्तैरसमञ्जसैः ॥ ९५ ॥
सत्यव्रतस्य नाकम्पन्नन्दभद्रो महामनाः । प्रहसन्निव तं प्राह स्वक्षोभ्यः सागरो यथा
यद्भवानाहधर्मिष्ठाःसदादुखस्यभागिनः । तन्मिथ्यादुःखजालानिपश्यामःपापिनामपि
वधबन्धपरिक्लेशाः पुत्रदारादि पञ्चता । पापिनामपि दृश्यन्ते तस्माद्धर्मो गुरुर्मतः
अयं साधुरहो कष्टं कष्टमस्य महाजनाः । साधोर्वदन्त्येतदपि पापिनांदुर्लभंत्विदम्
दारादिद्रव्यलोभार्थं विशतः पापिनो गृहे । भवानपिविभेत्यस्माद्द्वेष्टिकुप्यतितद्वृथा
यथाऽस्यजगतोब्रूषे नास्तिहेतुर्महेश्वरः । तद्बालभाषितंतुभ्यं किं राजानंविनाप्रजाः॥
यच्चब्रवीषि पाषाणंमिथ्यालिङ्गंसमर्चसि । तद्भवाँल्लिङ्गमाहात्म्यंवेत्तिनान्धोयथारविम्
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे राजानश्च महर्धिकाः । मानवा मुनयश्चैव सर्वे लिङ्गं यजन्ति च
स्वनामकानिचिह्नानितेषांलिङ्गानिसन्तिच । एतेकिंत्वभवन्मूर्खास्त्वंतुसत्यंव्रतःसुधीः

प्रतिष्ठाप्य पुरा ब्रह्मा पुष्करे नीललोहितम् ।
प्राप्तवान्परमां सिद्धिं ससर्जेमाः प्रजाः प्रभुः ॥ १०५ ॥
विष्णुनाऽपि निहत्याऽजौ रावणं पयसांनिधेः ।
तीरे रामेश्वरं लिङ्गं स्थापिताऽस्ति किं मुधा ॥ १०६ ॥

वृत्रं हत्वा पुरा शक्रोमहेन्द्रेस्थाप्यशङ्करम् । लिङ्गंविमुक्तपापोऽथत्रिदिवेऽप्यभि
स्थापयित्वा शिवंसूर्योगङ्गासागरसङ्गमे । निरामयोऽभूत्सोमश्च प्रभासेपश्चिमो
काश्यां यमश्च धनदः सह्ये गरुडकश्यपौ । नैमिषेवायुवरुणौस्थाप्यलिङ्गं प्रमो
अस्मिन्नेव स्तम्भतीर्थेकुमारेशं गुहो विभुः । लिङ्गंसंस्थापयामाससर्वपापहरं न
एवमन्यैः सुरैर्यानि पार्थिवैर्मुनिभिस्तथा । संस्थापितानिलिङ्गानितन्नसंख्यातुमु
पृथिवीवासिनः सर्वे ये च स्वर्गनिवासिनः । पातालवासिनस्तृप्ताजायन्तेलिङ्ग

यच्च ब्रवीषि गीर्वाणा न सन्ति सन्ति चेत्कुतः ।
कुत्राऽपि नैव दृश्यन्ते तेन मे विस्मयो महान् ।

रङ्कवत्किस्मतेदेवायाचतांत्वांकुलत्थवत् । यमिच्छसि महाप्राज्ञ! साधकोहिगुरु
स्वभावान्नैवसर्वार्थाः संसिद्धा यदि ते मते । भोजनादिकथंसिध्येद्विदकर्तारमन्त
वदरीमन्तरेणाऽपिदृश्यन्तेकण्टकानहि । तस्मात्कस्यास्ति निर्माणंयस्ययावत्तथै
यच्च ब्रवीषि पश्चाद्याः सुखिनो धन्यकास्त्वमी । त्वदृते नेदमुक्तंच केनापि श्रुतमे
तामसाविकलायेचकष्टंतेषांचश्लाघ्यताम् । सर्वेन्द्रिययुताःश्रेष्ठाःकुतोधन्यानमानु
सत्यं तव व्रतं मन्येनरकायत्वयाऽऽदृतम् । अत्यनर्थेनभीःकार्याकामोऽयंभविताचि
आदावाडम्बरेणैव ब्रुवतोऽज्ञानमेव मे । इत्थं निःसारता व्यक्तमादावाडम्बराच्च
मायाविनां हि ब्रुवतां वाक्यं चाडम्बरावृतम् । कुनाणकमिवोद्दीप्तंपरीक्ष्येयंसदासत

आदौ मध्ये तथा चाऽन्ते येषां वाक्यमदोषवत् ।
कषदाहैः स्वर्णमिव च्छेदेऽपि स्याच्छुभं शुभम् ॥ १२२ ॥

त्वयाऽन्यथाप्रतिज्ञातमुक्तंचैवाऽन्यथापुनः । त्वद्दोषोनाऽयमस्माकंतद्वचःशृणुमो
नास्तिकानांश्चसर्पाणांविषस्य च गुणस्त्वयम् । मोहयन्ति परंयच्चदोषोनैव

आपो वस्त्रं तिलास्तैलं गन्धो वा स यथा तथा ।
पुष्पाणामधिवासेन तथा संसर्गजा गुणाः ॥ १२५ ॥

मोहजालस्य यो योनिर्मूढैरिह समागमः । अहन्यहनि धर्मस्य योनिः साधुसमागमः
तस्मात्प्राज्ञैश्च वृद्धैश्च शुद्धभावैस्तपस्विभिः । सद्भिश्च सह संसर्गः कार्यः शमपरायणैः
न नीचैर्नाप्यविद्वद्भिर्नानात्मज्ञैर्विशेषतः । येषां त्रीण्यवदातानि योनिर्विद्या च कर्म च
तांश्चसेवेद्विशेषेण शास्त्रं येषां हि विद्यते । असतां दर्शनस्पर्शसञ्जल्पासनभोजनैः ॥
धर्माचारात्प्रहीयन्ते नच सिध्यन्ति मानवाः । बुद्धिश्चहीयते पुंसांनीचैःसहसमागमात्
मध्यैश्च मध्यतां याति श्रेष्ठतां याति चोत्तमैः । इति धर्मं स्मरन्नाहं सङ्गमार्थीपुनस्तव

यन्निन्दसि द्विजानेव यैरपेयोऽर्णवः कृतः ॥ १३१ ॥
वेदाः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं धर्मार्थयुक्तं वचनं प्रमाणम् ।
नैतत्त्रयं यस्य भवेत्प्रमाणं कस्तस्य कुर्याद्वचनं प्रमाणम् ॥ १३२ ॥
इतीरयित्वा वचनं महात्मा स नन्दभद्रः सहसा तदैव ।
गृहाद्विनिःसृत्य जगाम पुण्यं वहूदकं भट्टरवेस्तु कुण्डम् ॥ १३३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कपिलेश्वरतीर्थमाहात्म्ये नन्दभद्रवणिग्वृत्तान्तवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

नन्दभद्रस्यसंशयापनोदनायबालस्यसारगिरोपरतत्त्वप्रतिपादनम्

नारद उवाच

वहूदकस्य कुण्डस्य तीरस्थं लिङ्गमुत्तमम् । कपिलेश्वरमभ्यर्च्य नन्दभद्रस्ततः सुधीः
प्रणम्य चाऽग्रतस्तस्थौ प्रबद्धकरसम्पुटः । संसारचरितैः किञ्चिद्दुःखी गाथांव्यगायत

स्रष्टारमस्य जगतश्चेत्पश्यामिसदाशिवम् । नानापृच्छाभिरथ तं कुर्यान्नार्थविरक्ति
अपूर्यमाणं तव किं जगत्संसृजनंविना । निरीह बहुधा यत्ते सृष्टं भार्गववत्स
सचेतनेन शुद्धेन रागादिरहितेन च । अथ कस्मादात्मसदृशं न सृष्टं निर्मितं
निर्वैरेण समेनाऽथ सुखदुःखभवाभवैः । ब्रह्मादिकीटपर्यन्तं किमेवं क्लिश्यते
कांश्चित्स्वर्गेऽथ नरके पातयंस्त्वं सदाशिव ! ।
किं फलं समवाप्नोषि किमेवं कुरुषे वद ॥ ७ ॥
इष्टैः पुत्रादिभिर्नाथवियुक्तामानवा ह्यमी । क्रन्दन्ति करुणासार किं घृणाऽपि
अतीव नोचितं सर्वमेतदीश्वर! सर्वथा । यत्ते भक्ताः समं पापैर्मज्जन्ते दुःखसा
एवम्विधेन संसारचारित्रेण विमोहिताः ।
स्थानान्तरं न यास्यामि भोक्ष्ये पास्यामि नोदकम् ॥ १० ॥
मरणान्तमेव यास्यामिस्थास्येसञ्चिन्तयन्नदः । सएवं विमृशन्नेवनन्दभद्रःस्वयं
ततश्चतुर्थे दिवसे वहूदकतटे शुभे । कश्चिद्बालः सप्तवर्षः पीडापीडित आय
कृशोऽतीव गलत्कुष्ठी प्रमुह्यंश्च पदे पदे । नन्दभद्रमुवाचेदं कृच्छ्रात्संस्तभ्य वाल
अहो सुरूपसर्वाङ्ग! कस्माद्दुःखी भवानपि । ततोऽस्य कारणं सर्वंव्याचष्टनन्द
श्रुत्वा तत्कारणं सर्वं बालो दीनमनाब्रवीत् । अहो हा कष्टमत्युग्रंवुधानांयद्
सम्पूर्णेन्द्रियगात्रायन्मर्तुमिच्छन्तिवै वृथा । मुहूर्ताद्ध्यत्रखट्वाङ्गोमोक्षमार्गमुपा
तदहो भारतं खण्डं सत्यायुषि त्यजेद्धि कः । अहमेव दृढोमन्येपितृभ्यां यो विव
अशक्तश्चलितुंवाऽपि मर्तुमिच्छामिनापिच । सर्वेलाभाःसातिमानाइतिसत्याव
सन्तोषोऽप्युचितस्तुभ्यं देहं यस्य दृढन्त्विदम् । शरीरं नीरुजं चेन्मे भवेदपि
क्षणे क्षणे च तत्कुर्यां भुज्यते यद्युगेयुगे । इन्द्रियाणि वशे यस्य शरीरञ्च दृढं भवे
सोऽप्यन्यदिच्छते चेच्च कोऽन्यस्तस्माद्चेतनः ।
शोकस्थानसहस्राणि हर्षस्थानशतानि च ॥ २१ ॥
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् । न हि ज्ञानविरुद्धेषु वह्वपायेषु कर्म
मूलघातिषु सज्जन्तेवुद्धिमन्तोभवद्विधाः । अष्टाङ्गां वुद्धिमाहुर्यांसर्वाश्रेयोविघा

श्रुतिस्मृत्यविरुद्धासाबुद्धिस्त्वय्यस्तिनिर्मला । अथकृच्छ्रेषुदुर्गेषुव्यापत्सुस्वजनस्यच
शरीरमानसैर्दुःखैर्नसीदन्तिभवद्विधाः । नाप्राप्यमभिवाञ्छन्तिनष्टंनेच्छन्तिशोचितुम्
आपत्सुच न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः । मनोदेहसमुत्थाभ्यांदुःखाभ्यामर्पितंजगत
तयोर्व्याससमासाभ्यांशमोपायमिमं श्रृणु । व्याधेरनिष्टसंस्पर्शाच्छ्रमादिष्टविसर्जनात्
चतुर्भिः कारणैर्दुःखं शरीरंमानसञ्च यत् । मानसं चाऽप्यप्रियस्य संयोगः प्रियवर्जनम्
द्विप्रकारं महाकष्टं द्वयोरेतदुदाहृतम् । मानसेन हि दुःखेन शरीरमुपतप्यते ॥ २६ ॥
अयःपिण्डेन तप्तेन कुम्भसंस्थमिवोदकम् । तदाशु प्रतिकाराच्च सततञ्च विवर्जनात् ॥
व्याधेराधेश्च प्रशमः क्रियायोगद्वयेन तु । मानसंशमयेत्तस्माज्ज्ञानेनाग्निमिवाऽम्बुना
प्रशान्ते मानसे ह्यस्य शारीरमुपशाम्यति । मनसो दुःखमूलन्तु स्नेह इत्युपलभ्यते ॥
स्नेहाच्च सज्जनो नित्यं जन्तुर्दुःखमुपैतिच । स्नेहमूलानि दुःखानिस्नेहजानिभयानिच
शोकहर्षौ तथाऽऽयासः सर्वं स्नेहात्प्रवर्तते ॥ ३४ ॥
स्नेहात्करणरागश्च प्रजज्ञे वैषयस्तथा । अश्रेयस्कावुभावेतौ पूर्वस्तत्र गुरुः स्मृतः ॥
त्यागी तस्मान्न दुःखी स्यान्निर्वैरोनिरवग्रहः । अत्यागी जन्ममरणेप्राप्नोतीहपुनःपुनः
तस्मात्स्नेहं न लिप्सेत मित्रेभ्यो धनसञ्चयात् । स्वशरीरसमुत्थञ्चज्ञानेनविनिवर्तयेत्
ज्ञानान्वितेषु सिद्धेषु शास्त्रज्ञेषु कृतात्मसु । न तेषु सज्जते स्नेहः पद्मपत्रेष्विवोदकम्
रागाभिभूतः पुरुषः कामेन परिकृष्यते । इच्छा सञ्जायते चाऽस्य ततस्तृष्णा प्रवर्धते
तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरी मता । अधर्मबहुला चैव घोररूपानुबन्धिनी
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।
याऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥ ४१ ॥
अनाद्यन्ता तु सा तृष्णाऽह्यन्तर्देहगतानृणाम् । विनाशयतिसम्भूतालोहंलोहमलोयथा
यथैवैधः समुत्थेन वह्निनानाशमृच्छति । तथाऽकृतात्मा लोभेन स्वोत्पन्नेनविनश्यति
तस्माल्लोभोन कर्तव्यः शरीरेचात्मबन्धुषु । प्राप्तेषुवा न हृष्येतनाशेवाऽपिन शोचयेत्

नन्दभद्र उवाच

अहो बाल ! न बालस्त्वं मतो मे त्वां नमाम्यहम् ।

त्वद्वाक्यैरतितृप्तोऽहं त्वां तु प्रक्ष्यामि किञ्चन ॥ ४५ ॥
कामक्रोधावहङ्कारमिन्द्रियाणि च मानवाः । निन्दन्ति तत्र मे नित्यं विवक्षेयं
अहमेष ममेदञ्च कार्यमीदृशकस्त्वहम् । इत्यादि चात्मविज्ञानमहङ्कार इति स्
परिहार्यः स चेत्तञ्च विनोन्मत्तःप्रकीर्त्यते । कामोऽभिलाषइत्युक्तःसचेत्पुंसाविव
कथं स्वर्गोमुमुक्षा वासाध्यतेदृषदायथा । क्रोधोवायदिसन्त्याज्यस्ततःशत्रुक्षय
वाह्यानामान्तराणांवा विना तं तृणवद्विदुः । इन्द्रियाणिनिगृह्यैवदुष्टानीतिनिर्ण
कथं स्याद्धर्मश्रवणं कथं वा जीवनं भवेत् । एतस्मिन्मेमनो विद्धंखिद्यतेऽज्ञान
तथा कस्मादिदं सृष्टं जडं विश्वं चिदात्मना ।
एवं यद्वहुधा क्लेशैः पीड्यते हा कुतस्त्विदम् ॥ ५२ ॥

वाल उवाच

सम्यगेतद्यथा पृष्टं यत्र मुह्यन्ति जन्तवः । शृण्वेकाग्रमना भूत्वा ज्ञातं द्वैपायनात्
प्रकृतिः पुरुषश्चैव अनादी शृणुमः पुरा । साधर्म्येणाऽवतिष्ठेते सृष्टेः प्रागजपा
ततः कालस्वभावाभ्यां प्रेरिता प्रकृतिः पुरा । पुंसः संयोगमैच्छत्सातदभावात्प्र
ततस्तमोमयी सा च लीलया देववीक्षिता । राजसीसमभूद्दुष्टासात्त्विकी सम
एवं त्रिगुणतां याता प्रकृतिर्देवदर्शनात् । तां समास्थाय परमस्त्रिमूर्तिः समजा
तस्याः प्रोच्चारणार्थञ्च प्रवृत्तः स्वांशतस्ततः । असूयत महत्तत्त्वं त्रिगुणं तद्विदु
अहङ्कारस्ततो जातः सत्त्वराजसतामसः । तमो रजस्त्वमापद्य रजः सत्त्वगुणं
शुद्धसत्त्वे ततो मोक्षं प्रवदन्ति मनीषिणः । तमसो रजसस्तस्मात्संशुद्ध्यर्थञ्च स
जीवात्मसंज्ञान्स्वीयांशान्व्यभजत्परमेश्वरः । तावन्तस्ते च क्षेत्रज्ञा देहायावन्त
निःसरन्तियथालोहात्तप्तलिंगात्स्फुलिङ्गकाः । तन्मात्रभूतसर्गोऽयमहङ्कारात्तुताम
इन्द्रियाणां सात्त्विकाच्च त्रिगुणानि च तान्यपि ।
एतैः संसिद्ध्यन्त्रेण सच्चिदानन्दवीक्षणात् ॥ ६३ ॥
रजस्तमश्च शोध्यन्ते सत्त्वेनैवमुमुक्षुभिः । तस्मात्कामश्च क्रोधश्चइन्द्रियाणांप्रव
अहङ्कारश्च संसेव्य सात्त्विकीं सिद्धिमश्नुते ।

राजसास्तामसाश्चैव त्याज्याः कामादयस्त्वमी ॥ ६५ ॥
सात्त्विकाःसर्वदासेव्याःसंसारविजिगीषुभिः । गुणत्रयस्यवक्ष्यामिसंक्षेपाल्लक्षणंतव
शास्त्राभ्यासस्ततो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम् ॥ ६७ ॥
अन्यायेन धनादानं तन्द्रीनास्तिक्यमेव च । क्रौर्यंच याचकात्वं च तामसंगुणलक्षणम्
तस्माद्बुद्धिमुखैस्त्वेतैःसात्त्विकैर्दैवतां भजेत् ।
राजसैर्मानवत्वं च तामसैः स्थाणुयोनिता ॥ ६६ ॥
बुद्ध्याद्यैरेव मुक्तिः स्यादेतैरेव च यातना ॥ ७० ॥
धर्मीणां चाप्यभावे वै न किञ्चिदुपपद्यते । कलादो हि कलादीनां सुवर्णंशोधयेद्यथा
तथा रजस्तमश्चैवसंशोध्ये सात्त्विकैर्गुणैः । अस्मादेव गुणानाञ्चसमवायादनादिजात्
सुखिनो दुःखिनश्चैव प्राणिनः शास्त्रदर्शिनः । अष्टाविंशतिलक्षैश्च गुणमेकैकमीश्वरः ॥
प्रभजच्चतुराशीतिलक्षास्ता जीवयोनयः । सकाशान्मनसस्तद्वदात्मनः प्रभवन्ति हि
ईश्वरांशाश्च ते सर्वे मोहिताः प्राकृतैर्गुणैः । क्लेशानासादयन्त्येवयथैवाधिकृताविभोः
अज्ञानांपयसांचापिजीवानांचाऽथश्रेयसे । मानुष्यमाहुस्तत्त्वज्ञाःशिवभावेनभावितम्

नन्दभद्र उवाच

एवमेतत्किन्तु भूयः प्रक्ष्याम्येतन्महामते !। ईश्वराः सर्वदातारः पूज्यन्ते यैश्च देवताः
स्वभक्तांस्तान्न दुःखेभ्यः कस्माद्रक्षन्ति मानवान् ।
विशेषात्केऽपि दृश्यन्ते दुःखमग्नाः सुराव्रताः ॥ ७८ ॥
इति मे मुह्यते बुद्धिस्त्वं वा किं बाल ! मन्यसे ॥ ७६ ॥

बाल उवाच

अशुचिश्च शुचिश्चाऽपि देवभक्तोद्विधास्मृतः । कर्मणा मनसा वाचातद्वतोभक्तउच्यते
अशुचिर्देवताश्चैव यदा पूजयते नरः । तदा भूतान्याविशन्ति स च मुह्यति तत्क्षणात्
विमूढश्चाऽप्यकार्याणि तानि तानि निषेवते । ततोविनश्यतिक्षिप्रंनाशुचिः पूजयेत्ततः
शुचिर्वाऽभ्यर्चयेद्यश्च तस्य चेदशुभं भवेत् ॥ ८२ ॥

तस्य पूर्वकृतं व्यक्तं कर्मणां कोटि मुच्यते। महेश्वरो ब्रह्महत्याभयादत्र
स्स्नौतीर्थेषु कस्माच्च इतरो मुच्यते कथम्। अम्बरीषसुतां हृत्वा पर्वतान्नारद

सीतापहारमापेदे रामोऽन्यो मुच्यते कथम्।
ब्रह्माऽपि शिरसश्छेदं कामयित्वा सुतामगात्॥ ८९॥

इन्द्रचन्द्ररविविष्णुप्रमुखाः प्राप्नुयुः कृतम्। तस्मादवश्यं च कृतं भोज्यमेव
मुच्यते कोऽपि स्वकृतान्नैवेति श्रुतिनिर्णयः। किं तु देवप्रसादेन लभ्यमेकं सु
बहुभिर्जन्मभिर्भोज्यं भुज्येतैकेनजन्मना। तच्च भुक्त्वा ततस्त्वर्थो भवेदितिवि
ये तप्यन्ते गतैः पापैः शुचयो देवताव्रताः। इह ते पुत्रपौत्रैश्च मोदन्तेऽमुत्र

तस्माद्देवाः सदा पूज्याः शुचिभिः श्रद्धयाऽन्वितैः।
प्रकृतिः शोधनीया च स्ववर्णोदितकर्मभिः॥ ९०॥
स्वनुष्ठितोऽपि धर्मः स्यात्क्लेशायैव विना शिवम्।
दुराचारस्य देवोऽपि प्राहेति भगवान्हरः॥ ९१॥

भोक्तव्यं स्वकृतं तस्मात्पूजनीयःसदाशिवः। स्वाचारेणपरित्याज्यौरागद्वेषावि

नन्दभद्र उवाच

शुद्धप्रज्ञ! किमेतच्च पापिनोऽपि नरा यदा। मोदमानाः प्रदृश्यन्ते दारैरपि धनै

बाल उवाच

व्यक्तं तैस्तमसा दत्तं दानं पूर्वेषु जन्मसु। रजसा पूजितः शम्भुस्तत्प्राप्तं स्व
किं तु यत्तमसा कर्म कृतं तस्य प्रभावतः। धर्माय न रतिर्भूयात्ततस्तेषां विद
भुक्त्वा पुण्यफलं याति नरकं नाऽत्रसंशयः। अस्मिंश्चसंशयेप्रोक्तंमार्कण्डेयेन
इहैवैकस्य नाऽमुत्र अमुत्रैकस्य नो इह। इह चाऽमुत्र चैकस्य नाऽमुत्रैकस्य
पूर्वोपात्तं भवेत्पुण्यं भुक्तिर्नैवाऽर्जयन्त्यपि। इहभोगःस वै प्रोक्तोदुर्भगस्याऽल्प
पूर्वोपात्तं यस्यनास्तितपोभिश्चार्जयत्यपि। परलोकेतस्यभोगोधीमतःसक्रियात्

पूर्वोपात्तं यस्य नास्ति पुण्यं चेहाऽपि नार्जयेत्।
ततश्चेहाऽमुत्र चाऽपि भो धिक्तं च नराधमम्॥ १००॥

इति ज्ञात्वामहाभाग! त्यक्त्वाशल्यानिकृत्स्नशः । भजरुद्रंवर्णधर्मंपालयाऽस्मात्परंनहि
यो हिनष्टेष्वभीष्टेषुप्राप्तेष्वपिचशोचति । तृप्येतवाभवेद्दुवन्धोनिश्चितंसोऽन्यजन्मनः

नन्दभद्र उवाच

नमस्तुभ्यमबालायबालरूपायधीमते । कोभवांस्तत्त्वतोवेत्तुमिच्छामित्वांशुचिस्मितम्
बहवोऽपि मया वृद्धा दृष्टाश्चोपासिताःसदा । तेषामीदृशकाबुद्धिर्न दृष्टा न श्रुता मया
येन मे जन्मसन्देहा नाशिता लीलयैवच । तस्मात्सामान्यरूपस्त्वंनिश्चितंन मतं मम

बाल उवाच

महदेतत्समाख्येयमेकाग्रः शृणु तत्त्वतः । इतः सप्ताधिके चाऽपि सप्तमे जन्मनित्वहम्
वैदिशे नगरे विप्रो नाम्नाऽऽसं धर्मजालिकः । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञःस्मृतिशास्त्रार्थविद्वरः
व्याख्याता धर्मशास्त्राणां यथा साक्षाद्वृहस्पतिः ।
किं त्वहं विविधान्धर्मांल्लोकानां वर्णये भृशम् ॥ १०८ ॥
स्वयं चाऽतिदुराचारः पापिनामपि पापराट् । मांसाशी मद्यसेवी च परदाररतःसदा
असत्यभाषीदम्भीचसदाधर्मध्वजीखलः । लोभीदुरात्माकथकोनकर्ताकर्हिचित्क्वचित्
यस्माज्जालिकवज्जालं लोकेभ्योऽहं क्षिपामिच । तत्त्वज्ञामांततःप्राहुर्धर्मजालिकइत्युत
सोऽहं तैर्बहुभिश्चीर्णैः पातकैरन्त आगते । मृतोगतोयमस्थानं पातितःकूटशाल्मलीम्
यमदूतैस्ततः कृष्टःस्मार्यमाणःस्वचेष्टितम् । खड्गैश्चकृत्यमानोऽहंजीवामिप्रमियामिच
आत्मानं बहुधा निन्दञ्छाश्वतीर्न्यवसं समाः । नरके या मतिर्भूयाद्धर्मं प्रति प्रपीडतः
सा चेन्मुहूर्तमात्रं स्यादपि धन्यस्ततः पुमान् ।
नमोनमः कर्मभूम्यै सुकृतं दुष्कृतं च वा ॥ ११५ ॥
यस्यां मुहूर्तमात्रेण युगैरपि न नश्यति । ततो विपश्चिज्जनको मोक्षयामासनारकात्
तैः सहाऽहं प्रमुक्तश्चकथञ्चिदवपीडितः । स्थाणुत्वमनुभूयाऽथ क्लेशानासाद्यभूरिशः
कीटोऽहमभवं पश्चात्तीरे सारस्वते शुभे । तत्र मार्गे सुखमिव संसुप्तोऽहं यदृच्छया
आगच्छतोरथस्याऽस्यशब्दमश्रौषमुन्नतम् । तं मेघनिनदंश्रुत्वाभीतोऽहंसहसाजवात्
मार्गमुत्सृज्य दूरेण प्रपलायनमाचरम् । एतस्मिन्नन्तरे व्यासस्तत्र प्राप्तो यदृच्छया ॥

स मामपश्यत्त्रस्तं च कृपया संयुतो मुनिः ।
यन्मया सर्वलोकानां नानाधर्माः प्रकीर्तिताः ॥ १२२ ॥
विप्रजन्मनि तस्यैव प्रभावाद्व्याससङ्गमः । ततः सर्वरुतज्ञो मां प्राहाऽर्थ्यः कीट
किमेवं नश्यसे कीट!कस्मान्मृत्योर्बिभेषि च । अहो समुचिता भीतिर्मनुष्यस्य
इत्युक्तो मतिमान्पूर्वपुण्याद्व्यासं तदोचिवान् । न मे भयं जगद्वन्द्यमृत्योरस्मात्
एतदेवभयं मान्यगच्छेयमधमां गतिम् । अस्याअपिकुयोनेश्च सन्त्यन्याः कोटि
तासु गर्भादिकक्लेशभीतस्त्रस्तोऽस्मि नान्यथा ॥ १२६ ॥

व्यास उवाच

मा भयं कुरु सर्वाभ्यो योनिभ्यश्च चिरादिव ।
मोक्षयिष्यामि ब्राह्मण्यं प्रापयिष्यामि निश्चितम् ॥ १२७ ॥
इत्युक्तोऽहं कालियेन तंप्रणम्यजगद्गुरुम् । मार्गमागत्यचक्रेण पीडितोमृत्यु
ततः काकश्रृगालादियोनिष्वस्मि यदाऽभवम् ।
तदा तदा समागम्य व्यासो मां स्मारयच्च तत् ॥ १२६ ॥
ततो बहुविधा योनीः परिक्रम्याऽस्मि कर्षितः ।
ब्राह्मणस्य च गेहे स्यां योनौ जातोऽतिदुःखितः ॥ १३० ॥
ततो जन्मप्रभृत्यस्मि पितृभ्यां परिवर्जितः । गलत्कुष्ठीमहापीडामेतांयोऽनुभवा
ततो मां पञ्चमे वर्षे व्यासआगत्यजप्तवान् । कर्णे सारस्वतं मन्त्रंतेनाऽहंसंस्मर
अनधीतानि शास्त्राणि वेदाधर्मांश्चकृत्स्नशः । उक्तंव्यासेन चेदंमे गच्छ क्षेत्रं गुह
तत्र त्वं नन्दभद्रश्च आश्वासय महामतिम् ॥ १३३ ॥
त्यक्त्वा बहूदके प्राणानस्थिक्षेपंमहीजले । कारय्य त्वं ततो भावीमैत्रेयइति
गमिष्यसिततोमोक्षमितिमांव्यासउक्तवान् । आगतश्चततश्चात्रवाहीकेभ्योऽति
इति ते कथितं सर्वमात्मनश्चरितं मया । पापमेवंविधं कष्टं नन्दभद्र! सदा

नन्दभद्र उवाच

अहो महाद्भुतं तुभ्यं चरितं येन मे हृदि । भूयः शतगुणं जातं धर्माय दृढमान

किन्तु त्वयोक्तधर्मस्य कर्तुकामोऽस्मि निष्कृतिम् ।
धर्मं स्मर भवांस्तस्मात्किञ्चिदादिश निश्चितम् ॥ १३८ ॥

वाल उवाच

अत्र तीर्थे च सप्ताहं निराहारस्त्वहं स्थितः ।
सूर्यमन्त्राञ्जपिष्यामि त्यक्ष्यामि च ततस्त्वसून् ॥ १३९ ॥

ततो वर्करिकातीर्थे दग्धव्योऽहंत्वयातटे । अस्थीनि सागरेचापिममक्षेप्याणिचात्रहि
यदिसापह्नवंचित्तंमय्यतीवतवाऽस्तिचेत् । ततस्त्वांगुरुकार्यार्थमादेक्ष्यामिशृणुष्वतत्

अस्मिन्वह्लूदके तीर्थे यत्र प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।
तत्र मन्नामचिह्नस्ते संस्थाप्यो भास्करो विभुः ॥ १४२ ॥

आरोग्यं धनधान्यं च पुत्रदारादिसम्पदः । भास्करो भगवांस्तुष्टो दद्यादेतच्छ्रुतेर्वचः
सविता परमो देवः सर्वस्वं वा द्विजन्मनाम् । वेदवेदाङ्गगीतश्च त्वमप्येनं सदा भज
वह्लूदकमिदंकुण्डंसंसेव्यंचसदा त्वया । माहात्म्यमस्यवक्ष्यामि संक्षेपाद्व्याससूचितम्
वह्लूदके कुण्डवरे स्नाति यो विधिवन्नरः । आरोग्यंधनधान्याद्यं तस्य स्यात्सर्वजन्मसु
वह्लूदके च यः स्नात्वासप्तम्यांमाघमासके । दद्यात्पिण्डंपितॄणाञ्चतेऽक्षयांतृप्तिमाप्नुयुः
वह्लूदकस्य तीरे यः शुचिर्यजति वै क्रतुम् । शतक्रतुफलं तस्यनास्ति काचिद्विचारणा
अत्र यस्त्यजति प्राणान्वह्लूदकतटे नरः । मोदते सूर्यलोकेऽसौ धर्मिणाञ्च सुतो भवेत्
वह्लूदकस्य तीरे च यः कुर्याज्जपसाधनम् । सर्वं लक्षगुणं प्रोक्तं जपो होमश्च पूजनम्
वह्लूदकस्य तीरे च द्विजमेकञ्चभोजयेत् । यो मिष्टान्नेन तस्यस्याद्विप्रकोटिश्चभोजिता
वह्लूदकस्यतीरेयानारीगौरिणिकाः शुभाः । सम्भोजयतितस्याश्चकुर्यात्सुस्वागतंह्युमा
वह्लूदकस्य तीरे च यः कुर्याद्योगसाधनम् । षण्मासाभ्यन्तरेसिद्धिर्भवेत्तस्य न संशयः
वह्लूदकस्य तीरे च प्रेतानुद्दिश्य दीयते । यत्किञ्चिदक्षयन्तेषामुपतिष्ठेन्न चान्यथा ॥
स्नानं दानं जपो होमःस्वाध्यायःपितृतर्पणम् । कृतं वह्लूदकतटे सर्वं स्यात्सुमहत्फलम्
त्वयैतद्धृदि सन्धार्यं फलं व्यासेन सूचितम् । वह्लूदकस्य कुण्डस्य नन्दभद्र महामते!

इत्युक्त्वा सोऽभवन्मौनी स्नात्वा कुण्डे ततः शुचिः ।

तीरे प्रस्तरमाश्रित्य स्वयं मन्त्राञ्जजाप ह ॥ १५७ ॥

श्रीनारद उवाच

ततःस सप्तरात्रान्ते जहौ बालो निजानसून् । संस्कारितोयथोक्तंच नन्दभद्रेण
यत्र बालः स च प्राणाञ्जहौ जपपरायणः । बालादित्यमितिख्यातंतत्रास्थापय
बह्लदके च यः स्नात्वा बालादित्यं प्रपूजयेत् ।
तस्य स्याद्भास्करस्तुष्टो मोक्षोपायश्च विन्दति ॥ १६० ॥
नन्दभद्रोऽप्यथाऽन्यस्यां भार्यायामपरान्सुतान् ।
उत्पाद्याऽऽत्मसमान्श्रीमाञ्छिवसूर्यपरायणः ॥ १६१ ॥
रुद्रदेहं ययौ पार्थ पुनरावृत्तिदुर्लभम् । एवमेतन्महाकुण्डं बह्लदकमिति स्मृ
अस्य तीरे स्वमंशं च वल्लीनाथःप्रमोक्ष्यति । दत्तात्रेयस्ययोयोगीह्यवतारोभविष्य
अर्चयित्वाचतन्देवंयोगसिद्धिमवाप्नुयात् । पशूनामृद्धिमाप्नोतिगोशरण्योहतं
पश्चिमायां बुधसुतस्तथा क्षेत्रं स भारत । पुरूरवादित्यमिति स्थापयामास पा
सर्वकामप्रदश्चाऽसौ भट्टादित्यसमो रविः । बह्लदकक्षेत्रसमं तस्य क्षेत्रञ्च भार
अस्य तीर्थस्यमाहात्म्यंजप्तव्यं कर्णमूलके । पुत्रस्य वापि शिष्यस्यनकथञ्चनवा
शृणोतीदं श्रद्धया यस्तस्य तुष्येच्च भास्करः । धारयन्हृदये मोक्षं मुच्यतेभवसा
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर
कौमारिकाखण्डे बह्लदकमाहात्म्ये बालादित्यवृत्तान्तवर्णनं नाम
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

देव्याख्यानवर्णनम्

नारद उवाच

ततोमयाऽस्यतीर्थस्यरक्षणायपुनर्जय !। समाराध्ययथादेव्यःस्थापितास्तच्छृणु

यथाऽऽत्मा सर्वभूतेषु व्यापकः परमेश्वरः। तथैव प्रकृतिर्नित्या व्यापका परमेश्वरी॥
शक्तिप्रसादादाप्नोति वीर्यं सर्वाश्चसम्पदः। ईश्वरीसर्वभूतेषु सा चैवं पार्थ संस्थिता
बुद्धिहीपुष्टिलज्जेतितुष्टिःशान्तिःक्षमा स्पृहा। श्रद्धा च चेतनाशक्तिर्मन्त्रोत्साहप्रभृद्भवा
स्वयमेव च वन्धाय मोक्षायेयं च सर्वदा। एनामाराध्य चैश्वर्यमिन्द्राद्याः समवाप्नुयुः
येचशक्तिंनमन्यन्तेतिरस्कुर्वन्तिचाधमाः। योगीन्द्राअपिते व्यक्तंभ्रश्यन्तेकाशिजायथा
वाराणस्यां किल पुरा सिद्धयोगीश्वराः पुनः। अवमन्य च ते शक्तिंपुनर्भ्रंशमुपागताः
तस्मात्सदा देहिनेयंशक्तिः पूज्यैवनित्यदा। तुष्टाददाति सा कामान्रुष्टासंहरतेक्षणात्
परमा प्रकृतिः सा च बहुभेदैर्व्यवस्थिता। तासांमध्ये महादेव्योह्यत्रसंस्थापिताःशृणु

चतस्रस्तु महाशक्त्यश्चतुर्दिक्षु व्यवस्थिताः।
सिद्धाम्बिका तु पूर्वस्यां स्थापिता सा गुहेन च॥ १०॥
जगदादौ मूलप्रकृतेरुत्पन्ना सा प्रकीर्त्यते।
आराधिता यतः सिद्धैस्तस्मात्सिद्धाम्बिका च सा॥ ११॥
दक्षिणस्यां तथा तारा संस्थिता स्थापिता मया।
तारणार्थाय देवानां यस्मात्कूर्मं समाश्रिता॥ १२॥

ययाविष्टः समुद्धह्वेवेदान्कूर्मो जगद्गुरुः। अनयाऽऽविष्टदेहश्च बुधो बौद्धान्हनिष्यति
कोटिशो वेदमार्गस्यध्वंसकान्पापकर्मिणः। इयंमयासमाराध्यसमानीतागिरेः सुता॥

कोटिसंख्याभिरत्युग्रदेवीभिः सम्वृता च सा।
दक्षिणां दिशमाश्रित्य संस्थिता मम गौरवात्॥ १५॥

पश्चिमायांतथादेवीसंस्थिताभास्कराशुभा। ययाविष्टानिभासन्तेभास्करप्रमुखानिच
विम्वानिसर्वताराणांगच्छन्त्यायान्तिचद्रुतम्। सैषामहावलाशक्तिर्भास्वराकुरुनन्दन
मयाराध्यसमानीताकटाहादत्रसंस्थिता। कोटिकोटिवृता नित्यंत्रायतेपश्चिमांदिशम्
उत्तरस्यां तथा देवी संस्थिता योगनन्दिनी। परमप्रकृतेर्देहात्पूर्वं निःसृतया यया॥
दृष्ट्या दृष्टा निर्मलया योगमापुश्चतुःसनाः। योगीश्वरीचसादेवीसनकाद्यैःसुतोषिता

सैव चाऽण्डकटाहान्मे समाराध्याऽत्र प्रापिता।

योगिनीभिः परिवृता संस्थिता चोत्तरां दिशम् ॥ २१ ॥
एवमेता महाशक्त्यश्चतस्रः संस्थिताः सदा । पूजिताःकामदानित्यंरुष्टाःसंहार
ततश्च नव मे दुर्गाः समानीताः शृणुष्व ताः ॥ २३ ॥
त्रिपुरानाम परमा देवी स्थाणुर्यया पुरा । आविष्टस्त्रिपुरं निन्ये भस्मत्वं जगतो
त्रिपुरेति ततस्तां तु प्रोक्तवान्भगवान्हरः । तुष्टाव च स्वयंतस्मात्पूज्यासाजगत
स्राचाराध्यसमानीतामयामरेश्वरपर्वतात् । भक्तानांकामदासास्तिभट्टादित्यसमं
अपरा चापि कोलम्बा महाशक्तिःसनातनी । कोलरूपीययाविष्टःकेशवश्चोज्जहार
तस्मात्सा विष्णुना चोक्ता कोलम्बेति स्तुताऽर्चिता ।
सा च देवी मया पार्थ! भक्तियोगेन तोषिता ॥ २८ ॥
वाराहगिरिसंस्थामांसमानीताचसाऽब्रवीत् । यत्राऽहंनारदसदातिष्ठामिक्षपर्याप्ति
तत्र कूपेन संस्थेयं रुद्राणीसंस्थितेन वै । तं हि कूपं विना मह्यं न रतिर्जायतेक्वचि
तस्माद्भवान्कूपवरं स्वयमत्र खन द्विज । एवमुक्ते पार्थ! देव्या दर्भमूलेन मे तदा
कूपोऽखनि यत्र साक्षाद्रुद्राणीकूपआबभौ । ततोमयातत्रदेवाःस्नात्वाजप्त्वाचतर्पि
पूजिता च ततो देवी कोलम्बा जगदीश्वरी । परितुष्टातदादेवीप्रणतं मां ततोऽब्रवी
सदाऽत्रचाहंस्थास्यामिप्रसादंप्रापितात्वया । येचकूपेऽत्रसंस्नात्वामाघाष्टम्यांविशे
पूजयिष्यन्ति मां मर्त्यास्तेषां छेत्स्यामि दुष्कृतम् ।
सर्वतीर्थमयो यश्च सर्वर्तुकवने स्थितः ॥ ३५ ॥
मेरोः समीपे रुद्राण्याः कूप एष स एव च ॥ ३६ ॥
प्रयागादपि गङ्गाया गयायाश्चविशेषतः । कूपेऽस्मिन्नधिकं स्नानं मया नारद कीर्ति
तदहं तव वाक्येन संस्थिताऽत्रतपोधन । गुहेनाऽथ सरः पुण्यंपालयिष्याम्यतन्द्रि
कुमारेशं पूजयित्वापूजयिष्यन्ति येच माम् । देवीभिः षष्टिकोटीभिर्युतातेषामभीष्ट

नारद उवाच

इत्युक्तोऽहं पार्थ देव्या तदानीं प्रीयमाणया । प्रत्यब्रवंप्रमुदितःकोलम्बांविश्वमातर
अत्राऽस्यमातात्वंदेवि गुप्तक्षेत्रस्यकारणम् । तीर्थयात्रावृथातेषांनार्च्चयन्तीहत्वांच

इदंचयत्सरःपुण्यंत्वन्नाम्नाख्यातिमेष्यति। ईश्वरीसरसोऽस्यत्वंतीर्थस्यास्यतथेश्वरी
एवं दीर्घं तपस्तप्त्वा स्थापितामयकाशुभा। महादुर्गानरैस्तस्मात्पूज्येयं सततं बुधैः
तृतीयाचदिशितस्यांस्थितासंस्थापितामया। गुहेनचकपालेश्याःप्रभावोऽस्याःपुरेरितः
धन्यास्ते ये प्रपश्यन्ति नित्यमेनां नरोत्तमाः। कपालेश्वरमभ्यर्च्य विश्वशक्तिरियंयतः

एवमेतास्तिस्रो दुर्गाः पूर्वस्यां दिशि संस्थिताः।
पश्चिमायां प्रवक्ष्यामि तिस्रो दुर्गा महोत्तमाः॥ ४६॥

सुवर्णाक्षी तु यादेवीब्रह्माण्डपरिपालिनी। सा मयाऽत्र समाराध्यतीर्थेदेवीनिवेशिता
येचैनांप्रणमिष्यन्तिपूजयिष्यन्तिभक्तितः। त्रयस्त्रिंशद्भिःकोटीभिर्देवीभिःपूजिताच तैः
अपरा च महादुर्गा चर्चिताचेतिसंस्थिता। रसातलतलात्तत्र:मयानीतासुभक्तितः॥
इयमर्च्या च चिन्त्या च वीरत्वं समभीप्सुभिः। बहुभिर्देवदैतेयैर्दत्तैतेभ्यश्च वीरताम्
इयमेव महादुर्गा शूद्रकं वीरसत्तमम्। चौरैर्द्धं कलौ चाऽग्रे मोक्षयिष्यति विक्रमात्
ततस्त्वेतांस चाराध्यवीरेन्द्रत्वमवाप्स्यति। निहनिष्यतिचाक्रम्यकालसेनमुखान्रिपून्
तस्मादियंसमाराध्या वीर्यकामैर्नरैःसदा। चर्चितायामहादुर्गापश्चिमायांदिशिस्थिता

तथा त्रैलोक्यविजया तृतीयस्यां दिशि स्थिता।
यामाराध्य जयं प्राप्तस्त्रिलोक्यां रोहिणीपतिः।
सोमलोकान्मयाऽऽनीता पूजिता जयदा सदा॥ ५४॥

एवमेताः पश्चिमायामुत्तरस्यामतःशृणु। तिस्रोदेव्यश्चोत्तरस्यामेकवीरामुखाःस्थिताः
एकवीरेति या देवी साक्षात्सा शिवपूजिता। ययाविष्टो जगत्सर्वं संहरत्येषभूतराट्

वीर्येणाऽऽद्येकवीरायाः कृत्वा लोकांश्च भस्मसात्।
युगैकादशपूर्णत्वे विलक्षोऽभूत्स भस्मनि॥ ५७॥

एवम्विधात्वेकवीराशक्तिरेषासनातनी। पूजिताऽऽराधिताचैवसर्वाभीप्सितदानृणाम्
ब्रह्मलोकात्समानीतामयाऽऽराध्याऽत्रभारत। नामकीर्तनमप्यस्यादुष्टानांघातनंविदुः

द्वितीया हरिसिद्ध्याख्या देवी दुर्गा महाबला।
शीकोत्तरात्समाराध्य मयाऽऽनीताऽत्र पाण्डव!॥ ६०॥

यदा शीकोत्तरस्थेनपार्वत्याप्रार्थितेनच । रुद्रेणडाकिनीमन्त्रः प्रोक्तोदेव्याः
तदा मन्त्रप्रभावेण मोहित्वा गिरिजासती । तमेवाऽऽक्रम्य मांसंच शोणितंचभ
ततो रुद्रशरीरात्तुविनिष्क्रान्तार्तिनाशिनी । हरसिद्धिर्महादुर्गा महामन्त्रविशा
सा सहस्रभुजादेवी समाक्रम्याऽभिपीड्य च । मोक्षयामास गिरिशमशापयतता
ततः प्रभृति सा लोके हरसिद्धिः प्रकीर्त्यते । देवीनां षष्टिकोटीभिरावृतापूज्यते
एतामाराध्य सुग्रीवप्रमुखादोषनाशिनीम् । अभूवन्तुमहावीर्या डाकिनीसंघना
तस्मादेतां पूजयेत्तु मनोवाक्कायकर्मभिः । डाकिन्याद्या न सर्पन्ति हरसिद्धेर
तृतीयेशानकोणस्थाचण्डिकानवमीस्थिता । वागीशोऽपिलभेत्पारंनैवयस्याः
या पुरा पार्वतीदेहाद्विनिःसृत्य महासुरौ । चण्डमुण्डौनिहत्यैवभक्षयामासक्रो

अक्षौहिणीशतं त्वेकं चण्डमुण्डौ च तावुभौ ।
नापूर्यतैकग्रासोऽस्याः किंलक्ष्या या त्वियं हि सा ॥ ७० ॥

इयमेवाऽन्धकानां च तृषिता शोणितं पुनः । पपौ ततो निजग्राहचान्धकंभगवा
इयं च रक्तवीजानांकृत्वा पानञ्च रक्तजम् । अर्पयामासतंदेव्याश्चामुण्डापीतशो
एषातृप्यतिभक्तानांप्रणामेनाऽपि भारत ।। अर्बुदानांचकोटीभिर्दैत्यानांपापक
कुण्डश्चास्यामयादेव्याःपुण्यंनिष्पादितंशुभम् । यत्र वै स्पर्शमात्रेणसर्वतीर्थफलं

हरसिद्धिर्देवसिद्धिर्धर्मसिद्धिश्च भारत ! ।
विविधा प्राप्यते सिद्धिस्तीर्थेऽस्मिश्चण्डिकारतैः ॥ ७५ ॥

यश्च पूजयते देवीं स्वल्पेन बहुनाऽपि वा । कात्यायनी कोटिशतैर्वृता तस्यवि
एवमेतामहादुर्गानवतीर्थेऽत्रसंस्थिताः । चतस्रश्चापिदिग्देव्योनित्यमर्च्याःशुभे
आश्विनस्य च मासस्य नवरात्रे विशेषतः । उपोष्यचैकभक्तैर्वादेवीस्त्वेताः प्र
बलिपूपकनैवेद्यैस्तर्पणैर्धूपगन्धिभिः । तस्य रक्षां चरन्त्येता रथ्यासु त्रिकच
भूतप्रेतपिशाचाद्या नोपकुर्युः प्रपीडनम् । आपदोविद्रवन्त्याशुयोगिन्योनन्द
पुत्रार्थीलभतेपुत्रान्धनार्थीधनमाप्नुयात् । रोगार्तोमुच्यतेरोगाद्बद्धोमुच्येत

आसां यःकुरुते भक्तिं नरो नारी च श्रद्धया ।

सर्वान्कामानवाप्नोति यांश्चिन्तयति चेतसि ॥ ८२ ॥
कामगव्य इमा देव्यश्चिन्तामणिनिभास्तथा ।
कल्पवल्ल्योऽऽथ भक्तानां प्रतिच्छन्दोऽत्र नैव हि ॥ ८३ ॥
तथाऽत्र भूतमाताऽस्ति हरसिद्धेस्तुदक्षिणे । तस्या माहात्म्यमतुलंसंक्षेपात्प्रब्रवीमिते
पूर्वं किल गुहो विद्वान्पुण्ये सारस्वते तटे । भूतप्रेतपिचानामाधिराज्येऽभ्यषिच्यत॥
सत्रसर्वाणि भूतानि मर्यादायामधारयत् । एतदन्नं प्रदायैव कृपया भगवान्गुहः ॥
यदमन्त्रहुतं किंचिद्वेदवाह्यं च यत्कृतम् । अश्रद्धया च क्रोधेनतद्धस्तृप्त्यैभविष्यति ॥
ततस्त्वनेनभोगेन तानि नन्दन्ति कृत्स्नशः । ततःकेनापि कालेन श्रद्धयाऽश्रद्धयाकृतम्
पुण्यं तान्येव भूतानिग्रसन्त्याक्रम्यदेवताः । ततोदेवा.क्षुधार्त्तास्ते गुहायैतन्न्यवेदयन्
स वै तदाकर्ण्यक्रुद्धोगुहःकालइवाऽभवत् । तस्यक्रुद्धस्य भ्रूपद्ममध्यात्काचिद्विनिर्गता
ज्वालामाला सुदुर्दर्शा नारी द्वादशलोचना । स च प्रणम्य तं प्राह तव शक्तिरहंप्रभो
शीघ्रमादिश मां कृत्ये किं करोमि तवेप्सितम् ॥ ९१ ॥

स्कन्द उवाच

एतैर्भूतगणैः पापैरुल्लङ्घ्य मम शासनम् ॥ ९२ ॥
मनुष्यदत्तं सकलं भुज्यते स्वेच्छयाऽधमैः । शीघ्रमेतानित्वंतस्मान्मर्यादायामुपानय
एतास्त्वानुव्रजिष्यन्तिदेव्यःकोटिशतंशुभे।ततस्तथेतिसाचोक्त्वादेवीभिःसम्वृतातदा
मयूरं समुपास्थाय गुहशक्तिः समागता । सरोजवनमासाद्य भूतसङ्घानपश्यत ॥
जघान च समासाद्य देवी नानाविधायुधैः । ततः प्रेतपिशाचाद्या हन्यमानामहारणे ॥
प्रसादयन्ति तां देवीं नानावेषैःसुदीनवत् । केचिद्ब्राह्मणवेषैश्चतापसानांतथोक्तिभिः
नृत्यन्ति देविपद्माक्षिप्रसीदेतिपुनःपुनः । ततःप्रसन्नासादेवीव्रियतांस्वेच्छयाऽऽहतान्
तांतेप्रोचुस्त्राहिनस्त्वंभूतमाताभवेश्वरि । मर्यादांनैवत्यक्ष्यामोवयंस्कन्दविनिर्मिताम्
ये चैवं त्वां तोषयन्ति तेषां देहि वरान्सदा ॥ १०० ॥

श्रीदेव्युवाच

वैशाखे दर्शदिवसे ये चैवं तोषयन्ति माम् । अरिष्टाभरणैः पुष्पैर्दधिभक्तैश्च पूजनैः ॥

तेषां सर्वोपसर्गा वै यास्यन्ति विलयं स्फुटम् ॥१०१॥
एवं दत्त्वा वरं देवी मुमुदे भूतसम्वृता। एवम्प्रभावा सा देवी मयानीताऽत्र भा
य एनाम्प्रणमेन्मर्त्यः सर्वारिष्टैर्विमुच्यते ॥ १०३॥
एवम्प्रभावा परिकीर्तिता मया समासतस्तीर्थवरेऽत्र देव्यः।
चतुर्दशैवाऽर्जुन! पूजिता याश्चतुर्दशस्थानवरैर्नृमुख्यैः ॥ १०४॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर
कौमारिकाखण्डे श्रीदेव्याख्यानवर्णनंनाम सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४७॥

———

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

स्तम्भतीर्थमाहात्म्ये सोमनाथमाहात्म्यवर्णनम्

नारद उवाच

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि सोमनाथमर्हि(माहात्म्यमित्यर्थः)स्फुटम्।
शृण्वन्यां कीर्तयिष्यामि पापमोक्षमवाप्नुयात् ॥ १ ॥
पुरा त्रेतायुगे पार्थ चौडदेशसमुद्भवौ। ऊर्जयन्तश्च प्रालेयो विप्रावास्तां महाबु
तावेकदा पुराणार्थे श्लोकमेकमपश्यताम्। तं दृष्ट्वा सर्वशास्त्रज्ञावास्तांकण्टकित
प्रभासाद्यानितीर्थानिपुलस्त्यायाऽऽहपद्मभूः। नयैस्तत्राप्लुतंचैवकिन्तैस्तीर्थमुपासि
इति श्लोकं पठित्वातौ पुनःपुनरभिष्टुतम्। तर्ह्येवच प्रभासाय निःसृतौ स्नातुमु
तौ वनानि नदीश्चैव व्यतिक्रम्य शनैःशनैः। महर्षिगणसङ्कीर्णामुत्तीर्णौ नर्मदां
गुप्तक्षेत्रस्य माहात्म्यं महीसागरसङ्गमम्। तत्र स्नात्वा प्रभासाय तन्मध्येन प्रत
ततो मार्गस्य शून्यत्वात्तद्क्षुधापीडितौ भृशम्।
आस्तां विचेतनौ विप्रौ सिद्धलिङ्गसमीपतः ॥ ८ ॥
सिद्धनाथं नमस्कृत्य सम्प्रयातौ सुधैर्यतः। क्षुधावेगेन तीव्रेण तृषा मध्यार्कतापि

सहसा पतितौ भूमौ स्थूणपादौ विमूर्च्छितौ । ततो मुहूर्तात्प्रालेय ऊर्जयन्तमभाषत
किञ्चिद्विश्वस्य धैर्याच्च सखे! किन्न श्रुतंत्वया । यथायथाविवर्णाङ्गोजायतेतीर्थयात्रया
तथातथा भवेद्दानैर्दीनः सोमेश्वरोहरः । तथाऽऽस्तां लुण्ठमानौतावेवमुक्तेश्रुतेऽपि च
लुण्ठमानो जगामैव प्रालेयः किञ्चिदन्तरे । उत्थितंसहसालिङ्गंभूमिंभित्त्वासुदुर्दृशम्
खे वाणी चाऽभवत्तत्र पुष्पवर्षपुरःसरा । प्रालेय तव हेतोस्तु सोमनाथसमं फलम् ॥
उत्थितं सागरतटे लिङ्गं तिष्ठाऽत्र सुव्रत ! ॥ १४ ॥

प्रालेय उवाच

यद्येवं सत्यमेतच्च तथाप्यात्मा प्रकल्पितः ॥ १५ ॥
प्रभासाय प्रयातव्यं यदाऽऽमृत्योर्मया स्फुटम् ।
ततश्चैवोर्ज्जयन्तोऽपि मूर्च्छाभावाल्लुठन्पुरः ॥ १६ ॥
अपश्यदुत्थितं लिङ्गं स चैवं प्रत्यपद्यत । ततः प्रत्यक्षतां प्राप्तो भवश्चक्रे तयोर्दृढे ॥
दृष्ट्या तनू ततो यातौ प्रभासंशिवसद्म च । तावेतौ सोमनाथौद्वौसिद्धेश्वरसमीपतः॥
ऊर्जयन्तःप्रतीच्याञ्चप्रालेयस्येश्वरोऽपरः । सोमकुण्डाम्भसिशनैःस्नात्वाऽर्णवमहीजले
सोमनाथद्वयंपश्येज्जन्मपापात्प्रमुच्यते । ब्रह्माऽत्र स्थापयित्वा तु हाटकेश्वरसञ्ज्ञितम्
महीनगरके लिङ्गं पातालात्सुमनोहरम् ।
तुष्टाव देवं प्रयतः स्तुतिन्तां श्रृणु पाण्डव ! ॥ २१ ॥
नमस्ते भगवन्रुद्र भास्कराऽमिततेजसे । नमो भवाय रुद्राय रसायाम्बुमयाय ते ॥
शर्वाय क्षितिरूपाय सदा सुरभिणे नमः । ईशाय वायवे तुभ्यं संस्पर्शायनमोनमः ॥
पशूनां पतये चाऽपि पावकायाऽतितेजसे । भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः
महादेवाय सोमाय अमृताय नमोऽस्तु ते । उग्राय यजमानाय नमस्ते कर्मयोगिने ॥
इत्येवं नामभिर्दिव्यैःस्तवः एष उदीरितः । यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि पितामहकृतंस्तवम्
हाटकेश्वरलिङ्गस्य नित्यञ्च प्रयतो नरः ।
अष्टमूर्तेः स सायुज्यं लभते नाऽत्र संशयः ॥ २७ ॥
हाटकेश्वरलिङ्गं च प्रयतो यः स्मरेदपि । तस्य स्याद्वरदो ब्रह्मा तेनेदं स्थापितं जय

एवम्विधानि तीर्थानि महीसागरसङ्गमे । बहूनि सन्ति पुण्यानिसंक्षेपाद्वर्णित
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्रयां संहितायां प्रथमे माहेश्वर
कौमारिकाखण्डे स्तम्भतीर्थमाहात्म्ये सोमनाथवृत्तान्तवर्णनं
नामाऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

आदित्यकमठसम्वादे जीवस्यदेहोत्पत्तिवर्णनम्

अर्जुन उवाच

अत्यद्भुतानि तीर्थानिलिङ्गानि च महामुने । श्रुत्वा तव मुखाम्भोजाद्भृशंमेहृष्यते
महीनगरकस्याऽपिस्थापितस्यत्वया मुने !। यानि तीर्थानिमुख्यानितानिवर्णय

नारद उवाच

श्रीमन्महीनगरकेयानितीर्थानिफाल्गुन। तानिवक्ष्यामियत्राऽऽस्तेजयादित्योरवि
जयादित्यस्ययोनामकीर्तयेदिहमानवः । सर्वरोगविनिर्मुक्तोलभेत्सोऽपि हृदीप्सि
यस्य सन्दर्शनादेव कल्याणैरपिपूर्यते । मुच्यते चाप्यकल्याणैः श्रद्धावान्पार्थ
तस्यदेवस्यचोत्पत्तिंश्रृणुपार्थवदामिते । श्रृण्वन्वाकीर्तयन्वाऽपिप्रसादंभास्करस्य

अहं संस्थाप्य संस्थानमेतत्कालेन केनचित् ।
प्रयातो भास्करं लोकं दर्शनार्थी यदृच्छया ॥ ७ ॥

स मां प्रणतमासीनमभ्यर्च्याऽर्घेण भास्करः । प्रहसन्निव प्राहेदं देवो मधुरया
कुत आगम्यते विप्र! क्व च वा प्रतिगम्यते । क चाऽयं नारदमुने! कालस्तेविहृतोऽ

नारद उवाच ।

एवमुक्तो भास्करेण तं तदा प्राब्रवम्वचः । भारते विहृतः खण्डे महीनगरका
दर्शनार्थं तव विभो ! समायातोऽस्मि भास्कर ! ॥ १० ॥

रविरुवाच

यत्त्वयास्थापितंस्थानंतत्रयेसन्ति ब्राह्मणाः । तेषांगुणान्ममब्रूहिकिंगुणानन्नुते द्विजाः

नारद उवाच

एवं पृष्टो भगवता पुनरेवाऽब्रवम्वचः ॥ १२ ॥

यदि तान्भोः प्रशंसामि स्वीयान्स्तौतीति वाच्यता ।

निन्दाम्यनर्हान्कस्माद्वा कष्टमेवोभयत्र च ॥ १३ ॥

अथवाऽपारमाहात्म्ये सति तेषां महात्मनाम् । अल्पे कृते वर्णने स्याद्दोषएवमहान्मम

मदर्चितद्विजेन्द्राणां यदि स्याच्छ्रवणेप्सुता । ततः स्वयं विलोक्यास्तेगत्वेदंमेमतंरवे

इति श्रुत्वा मम वचो रविरासीत्सुविस्मितः । स्वयं द्रक्ष्यामि चोवाचपुनःपुनरहर्पतिः

सोऽथ विप्रतनुंकृत्वामांविसर्ज्यैव भास्करः । प्रतपन्दिवि योगाच्चप्रयातोऽर्णवरोधसि

जटां त्रिषवणस्नानपिङ्गलां धारयन्नथ । वृद्धद्विजो महातेजा ददृशे ब्राह्मणैर्मम ॥१८॥

ततो हारीतप्रमुखाः प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः । उत्थाय ब्रह्मशालायास्तेद्विजाद्विजमाद्रवन्

नमस्कृत्य द्विजाग्र्यन्ते प्रहर्षादिदमब्रुवन् ॥ २० ॥

अद्य नो दिवसः पुण्यः स्थानमद्योत्तमं त्विदम् । यत्त्वयाविप्रप्रवरस्वयमागमनंकृतम्

धन्यस्यहिगृहस्थस्यकृपयैवद्विजोत्तमाः । आतिथ्यवेषेणाऽऽयान्तिपावनार्थंन संशयः

तत्त्वं गेहानि चास्माकंपादचङ्क्रमणेनच । दर्शनाद्भोजनात्स्थानादस्माभिःसह पावय

अतिथिरुवाच

भोजनं द्विविधं विप्रा प्राकृतं परमं तथा । तदहं सम्यगिच्छामि दत्तं परमभोजनम् ॥

इत्येतदतिथेः श्रुत्वा हारीतः पुत्रमब्रवीत् । अष्टवर्षन्तु कमठं वेत्सि पुत्र! द्विजोदितम्

कमठ उवाच

तात! प्रणम्य त्वां वक्ष्ये तादृकपरमभोजनम् । द्विजञ्चतर्पयिष्यामिदत्त्वापरमभोजनम्

सुतेन किल जातेन जायते चाऽनृणः पिता ।

सत्यं करिष्ये तद्वाक्यं सन्तर्प्याऽतिथिमुत्तमम् ॥ २७ ॥

भोजनं द्विप्रकारञ्च प्रविभागस्तयोरयम् । प्राकृतं प्रोच्यते त्वेवमन्यत्परमभोजनम् ॥

तत्र यत्प्राकृतं नाम प्रकृतिप्रमुखस्य तत् । चतुर्विंशतितत्त्वानांगणस्योक्तं हि
षड्रसं भोजनं तच्च पञ्चभेदं वदन्ति च । येन भुक्तेन तृप्तं स्यात्क्षेत्रं यद्देहलक्ष
यथापरंपरंनाम प्रोक्तं परमभोजनम् । परमः प्रोच्यते चात्मा तस्य तद्भोजनं
ततो नानाप्रकारस्य धर्मस्य श्रवणं हि यत् ।
तदन्नं प्रोच्यते भोक्ता क्षेत्रज्ञः श्रवणौ मुखम् ॥ ३२ ॥
तद्दास्यामिद्विजाग्र्यायपृच्छविप्रयदिच्छसि । शक्तितस्तर्पयिष्यामित्वामहंविप्र

नारद उवाच

कमठस्यैतदाकर्ण्य सोऽतिथिर्वचनं महत् । मनसैव प्रशस्याऽमुंप्रश्नमेनमथाऽक
कथं सञ्जायते जन्तुः कथं चाऽपि प्रलीयते । भस्मतामथ संप्राप्य क चाऽयंप्रति

कमठ उवाच

गुरवे प्राङ्नमस्कृत्य धर्माय तदनन्तरम् । छन्दोगीतममुं प्रश्नंशक्त्या वक्ष्यामिते
जनने त्रिविधं कर्म हेतुर्जन्तोर्भवेत्किल । पुण्यं पापञ्च मिश्रञ्च सत्त्वराजसता
तत्रयःसात्त्विको नाम स स्वर्गंप्रतिपद्यते । स्वर्गात्कालपरिभ्रष्टो धनीधर्मीसुखी
तथा यस्तामसोनाम नरकं प्रतिपद्यते । भुक्त्वा बह्वीर्यातनाश्च स्थावरत्वं प्रप
महतां दर्शनस्पर्शैरुपभोगसहासनैः । महता कालयोगेन संसरन्मानवो भवेत्
सोऽपि दुःखदरिद्राद्यैर्वेष्टितो विकलेन्द्रियः ।
प्रत्यक्षः सर्वलोकानां पापस्यैतद्धि लक्षणम् ॥ ४१ ॥
अथ यो मिश्रकर्मा स्यात्तिर्यक्त्वंप्रतिपद्यते । महतामेव संसर्गात्संसरन्मानवो भ
यस्यपुण्यंपृथुतरंपापमल्पंहिजायते । स पूर्वं दुःखितोभूत्वापश्चात्सौख्यान्वितो
पापं पृथुतरं यस्य पुण्यमल्पतरं भवेत् । पूर्वं सुखी ततो दुःखी मिश्रस्यैतद्धि लक्ष
तत्र मानुषसम्भूतिं श्रृणु यादृगसौ भवेत् । पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव शुक्रशोणितसं
सर्वदोषविनिर्मुक्तो जीवः संसरते स्फुटम् । गुणान्वितमनोवुद्धिशुभाशुभसमन्वि
जीवः प्रविष्टो गर्भन्तु कलले प्रतितिष्ठति । मूढश्च कलले तत्र मासमात्रञ्च ति
द्वितीयन्तु तथा मासं घनीभूतःस तिष्ठति । तस्याऽवयवनिर्माणं तृतीये मासिजा

अस्थीनि च तथा मासि जायन्ते च चतुर्थके ।
त्वग्जन्म पञ्चमे मासि षष्ठे रोम्णां समुद्भवः ॥ ४९ ॥

[सप्त]मे च तथा मासि प्रबोधश्चाऽस्य जायते । मातुराहारपीतञ्च सप्तमे मास्युपाश्नुते
[अष्ट]मे नवमे मासि भृशमुद्विजते ततः । जरायुणा वेष्टिताङ्गो मुखे बद्धकराङ्गुलिः ॥
[मध्]ये क्लीवस्तु वामे स्त्री दक्षिणे पुरुषस्तथा । तिष्ठत्युदरभागे च पृष्ठेरभिमुखः किलः

यस्यां तिष्ठत्यसौ योनौ ताञ्च वेत्ति न संशयः ।
सर्वं स्मरति वृत्तान्तं बहूनां जन्मनामपि ॥ ५३ ॥

[अ]न्त्रे तमसिकिंद्ब्रश्योगन्धान्मोहं द्रढं लभेत् । शीतेमात्राजलेपीतेशीतमुष्णंतथोष्णके

व्यायामे लभते मातुः क्लेशं व्याधेश्च वेदनाम् ।
अलक्ष्याः पितृमातृभ्यां जायन्ते व्याधयः पराः ॥ ५५ ॥

[...]कुमार्याद्रुजं तीव्रां जनयन्ति च तस्य ते । स्वल्पमप्यथ तं कालंवेत्तिवर्षशतोपमम्
[सं]तप्यते भृशं गर्भे कर्मभिश्च पुरातनैः । मनोरथांश्च कुरुते सुकृतार्थं पुनःपुनः ॥

जन्म चेदहमाप्स्यामि मानुष्ये जीवितं तथा ।
ततस्तत्प्रकरिष्यामि येन मोक्षो भवेत्स्फुटम् ॥ ५८ ॥

[एवं] तु चिन्तयानस्य सीमन्तोन्नयनादनु । मासद्वयं तद्व्रजति पीडतस्त्रियुगाकृति ॥
[ततः] स्वकाले सम्पूर्णे सूतिमारुतचालितः । भवत्यवाङ्मुखोजन्तुःपीडामनुभवन्परम्
[अ]धोमुखः सङ्कटेन योनिद्वारेण निःसरेत् । पीडया पीड्यमानोऽपिचर्मोत्कर्तनतुल्यया
[क]रपत्रसमस्पर्शं करसंस्पर्शनादिकम् । असौ जातो विजानातिमासमात्रं विमोहितः
[...]कर्मवशगस्याऽस्य गर्भज्ञानञ्च नश्यति । ततः करोति कर्माणि श्वेतरक्तासितानि च
[अ]स्थिपट्टतुलास्तम्भस्नायुबन्धेन यन्त्रितम् । रक्तमांसमृदालिप्तं विण्मूत्रद्रव्यभाजनम्
[...]मभित्तिसुसम्बद्धं छन्नं रोमतृणैरपि । वदनैकमहाद्वारं गवाक्षाष्टविभूषितम् ॥ ६५ ॥
[...]ओष्ठद्वयकपाटं च दन्तार्गलविमुद्रितम् । नाडीस्वेदप्रवाहं च कफपित्तपरिप्लुतम् ॥

जराशोकसमाविष्टं कालवक्त्रानलस्थितम् ।
रागद्वेषादिभिर्ध्वस्तं षट्कौशिकसमुद्भवम् ॥ ६७ ॥

एवं सञ्जायते पुंसो देहगेहमिदं द्विज !। यस्मिन्वसति क्षेत्रज्ञो गृहस्थो बुद्धि
मोक्षं स्वर्गं च नरकमास्ते संसाधयन्नपि ॥ ६६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहे
कौमारिकाखण्डे कमठसूर्यसम्वादे जीवस्य देहोत्पत्तिवर्णनं
नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

आदित्यकमठसम्वादे जीवस्यपारलौकिकगत्यादिवर्णनम्

अतिथिरुवाच

साध्वबालमते बाल कमठैतत्त्वयोच्यते । शरीरलक्षणं श्रोतुं पुनरिच्छामि तत्त्व

कमठ उवाच

यथैतद्वेद ब्रह्माण्डं शरीरं च तथा शृणु । पादमूलं च पातालं प्रपदं च रसात
तलातलंतथागुल्फौजङ्घे चाऽस्य महातलम् । जानुनी सुतलंचोरूवितलंचात
नाभिं महीतलं प्राहुर्भुवर्लोकमथोदरम् । उरःस्थलं च स्वर्लोकं महर्ग्रीवा मुखं
नेत्रे तपः सत्यलोकं शीर्षदेशं वदन्ति च । तद्यथासप्तद्वीपानि पृथिव्यां संस्थि
तथाऽत्र धातवःसप्तनामतस्तान्निबोध मे । त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रा
अस्थ्नामत्र शतानि स्युस्त्रीणि षष्ट्यधिकानि च ।
त्रिंशच्छतसहस्राणि नाडीनां कथितानि च ॥ ७ ॥
षट्पञ्चाशत्सहस्राणि तथाऽन्यानि नवैव तु । ता वहन्ति रसं देहे जलंनद्यो य
सार्धाभिस्तिसृभिश्छन्नं समन्ताद्रोमकोटिभिः ।
शरीरं स्थूलसूक्ष्माभिर्दृश्यादृश्या हि ताः स्मृताः ॥ ६ ॥
षडङ्गानि प्रधानानि कथ्यमानानिमेशृणु । द्वौ बाहू सक्थिनी द्वे च मूर्धा जठ

अन्त्राण्यत्र तथा त्रीणि सार्धव्यामत्रयाणि च।
त्रिव्यामानि तथा स्त्रीणामाहुर्वेदविदो द्विजाः॥ ११॥
ऊर्ध्वनालमधोवक्त्रं हृदि पद्मं प्रकीर्त्यते। हृत्पद्मवामतः प्लीहो दक्षिणे स्यात्तथायकृत्
मज्जातो मेदसश्चैव वसायाश्च तथा द्विज !। मूत्रस्य चैव पित्तस्यश्लेष्मणःशकृतस्तथा
रक्तस्य चरमस्याऽत्र गर्ता ह्यथञ्जलयःस्मृताः। तेभ्यः प्रवर्तमानास्ते देहंसंधारयन्त्युत
सीवन्यश्च तथा सप्त पञ्च मूर्धानमास्थिताः। एका मेढ्रं गताचैकातथाजिह्वांगता द्विज
नाड्यःसर्वाःप्रवर्तन्तेनाभिपद्मात्तथाऽत्रच। यासांश्रेष्ठाशिरोयातासुषुम्नेडाऽथपिङ्गला
नासिकाद्वारमासाद्य संस्थिते देहवर्धने। वायुरग्निश्चन्द्रमाश्च पञ्चधा पञ्चधाऽत्र च॥
प्राणापानसमानाश्च उदानो व्यान एवच। पञ्च भेदाःस्मृतावायोःकर्माण्येषांवदन्तिच
उच्छ्वासश्चैव निःश्वासो ह्यन्नपानप्रवेशनम्।
आकण्ठाच्छीर्षसंस्थाऽस्य प्राणकर्म प्रकीर्तितम्॥ १६॥
त्यागो विण्मूत्रशुक्राणां गर्भविस्रणं तथा। अपानकर्म निर्दिष्टं स्थानमस्य गुदोपरि
समानो धारयत्यन्नं विवेचयति चाऽप्यथ। रसयंश्चैव चरति सर्वश्रोणिष्ववारितः॥
वाक्प्रवृत्तिप्रदोद्गारे प्रयत्ने सर्वकर्मणाम्। आकण्ठसुरसंस्थानमुदानस्य प्रकीर्त्यते॥
व्यानो हृदि स्थितो नित्यंतथादेहचरोऽपिच। धातुवृद्धिप्रदःस्वेदलालोन्मेषनिमेषकृत्
पाचको रञ्जकश्चैव साधकालोचकौ तथा। भ्राजकश्च तथा देहे पञ्चधा पावकःस्थितः
पाचकस्तु पचत्यन्नंनित्यं पक्वाशये स्थितः। आमाशयस्थोऽपिरसंरञ्जकःकुरुतेत्वसृक्
साधकोहृदिसंस्थश्चबुद्ध्याद्युत्साहकारकः। आलोचकश्चदृक्संस्थोरूपदर्शनशक्तिकृत्
त्वक्संस्थोभ्राजकोदेहं भ्राजयेन्निर्मलीकृतः। क्लेदकोबोधकश्चैवतर्पणःश्लेष्मणस्तथा
आलम्बकस्तथा देहे पञ्चधा सोम उच्यते। क्लेदकःक्लेदयत्यन्नंनित्यंपक्वाशये स्थितः
बोधको रसनास्थश्च रसानामवबोधकः। शिरःस्थश्चक्षुरादीनां तर्पणात्तर्पणः स्मृतः॥
सर्वसन्धिगतश्चैवश्लेष्मणःश्लेष्मकृत्तथा। उरःस्थःसर्वगात्राणिसवै ह्यालम्बकःस्थितः
एवं वाय्वग्निसोमैश्च देहः सन्धारितस्त्वसौ।
आकाशजानि स्रोतांसि तथा कोष्ठविविक्तता॥ ३१॥

पार्थिवानीह जानीहि घ्राणकेशनखानिच । अस्थीनि धैर्यं गुरुता त्वङ्मांसं हृदयं
नाभिर्मेदो यकृन्मज्जा अन्त्रमामाशयःशिरा । स्नायुः पक्वाशयश्चैव प्राहुर्वेदविदो
नेत्रयोर्मण्डलं शुक्लं कफाद्भवति पैतृकम् । कृष्णंच मण्डलंवातात्तथाभवति
पक्ष्ममण्डलमेकं तु द्वितीयं चर्ममण्डलम् । शुक्लं तृतीयं कथितं चतुर्थंकृष्णम
दृङ्मण्डलं पंचमं तु नेत्रं स्यात्पञ्चमण्डलम् । अपरे नेत्रभागे द्वे उपाङ्गोऽपाङ्ग
उपाङ्गो नेत्रपर्यन्तो नासामूलमपाङ्गकः । वृषणौ च तथा प्रोक्तौ मेदोसृङ्कफमां
असृङ्मांसमयी जिह्वा सर्वेषामेवदेहिनाम् । हस्तयोरोष्ठयोर्मेढ्रे ग्रीवायांपद् च कू
एवमत्रस्थिते जीवो देहेऽस्मिन्सप्तसप्तके । पंचविंशतिको व्याप्य देहंवासोऽस्य

त्वगसृङ्मांसमित्याहुस्त्रिकं मातृसमुद्भवम् ।
मेदोमज्जास्थिकं प्रोक्तं पितृजं षट् च कौशिकम् ॥४० ॥

एवं भूतमयं देहं पञ्चभूतसमुद्भवैः । अन्नैर्यथा वृद्धिमेति तदहं वर्णयामि ते ॥
तदन्नं पिण्डकवलैर्ग्रासैर्भुक्तं च देहिभिः । पूर्वं स्थूलाशये वायुः प्राणः प्रकुरुते
सम्प्रविश्याऽन्नमध्येतु पृथगन्नं पृथग्जलम् । अग्नेरूर्ध्वं जलं स्थाप्य तदन्नं तज्जलं

जलस्याऽधः स्वयं प्राणः स्थित्वाऽग्निं धमते शनैः ।
वायुना धम्यमानोऽग्निरत्युष्णं कुरुते जलम् ॥ ४४ ॥

तदन्नमुष्णतोयेन समन्तात्पच्यते पुनः । द्विधा भवति तत्पक्वं पृथक्किट्टं पृथ

मलैर्द्वादशभिः किट्टं भिन्नं देहाद्बहिर्व्रजेत् ।
कर्णाक्षिनासिकाजिह्वादन्ताः शिश्नं गुदं नखाः ॥ ४६ ॥

रोमकूपाणि चैव स्युर्द्वादशैते मलाश्रयाः । हृत्पद्मप्रतिबद्धाश्च सर्वानाड्यः सम
तासां मुखेषु तं सूक्ष्मं व्यानः स्थापयतेरसम् । रसेन तेन तानाडीःसमानःपूरयेत्
ततः प्रयान्ति सम्पूर्णास्ताश्च देहं समन्ततः । ततःस्तनाडिमध्यस्थोरञ्जकेनोष्म
पच्यते पच्यमानस्तु रुधिरत्वंभजेत्पुनः । ततस्त्वग्लोमकेशाश्चमांसंस्नायुशिरा
नखा मज्जाखवैमल्यं शुक्रवृद्धिः क्रमाद्भवेत् । एवं द्वादशधाऽन्नस्य परिणामःप्रकी
एवमेतद्विनिष्पन्नं शरीरं पुण्यहेतवे । यथैव स्यन्दनः शुभ्रो भारसम्वाहनाय

तैलाभ्यङ्गादिभिर्यत्नैर्बहुभिःपाल्यतेनचेत् । किं कृत्यं साध्यते तेन यदि भारं वहेन्नहि
एवमेतेन देहेन किं कृत्यं भोजनोत्तमैः । वर्धितेन न चेत्पुण्यं कुरुते पशुवच्च तत् ॥५४

॥ भवन्ति चाऽत्र श्लोकाः ॥

यस्मिन्काले च देशे च वयसा यादृशेन च । कृतं शुभाशुभं कर्म तत्तथा तेन भुज्यते

तस्मात्सदा शुभं कार्यमविच्छिन्नसुखार्थिभिः ।
विच्छिद्यन्तेऽन्यथा भोगा ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ ५६ ॥
यस्म त्पापेन दुःखानि तीव्राणि सुबहून्यपि ।
तस्मात्पापं न कर्तव्यमात्मपीडाकरं हि तत् ॥ ५७ ॥

एवं ते वर्णितः साधो प्रश्नोऽयं शक्तितो मया । यथा सञ्जायतेप्राणीयथाश्रृणुप्रलीयते
आयुष्ये कर्मणि क्षीणे सम्प्राप्ते मरणेनृणाम् । स्वकर्मवशगो देही कृष्यते यमकिङ्करैः
पञ्चतन्मात्रहितः समनोवुद्ध्यहङ्कृतिः । पुण्यपापमयैः पाशैर्बद्धो जीवस्त्यजेद्वपुः ॥

शीर्षणश्च सप्तभिश्छिद्रैर्निर्गच्छेत्पुण्यकर्मणाम् ।
अधश्च पापिनां यान्ति योगिनां ब्रह्मरन्ध्रतः ॥ ६१ ॥

तत्क्षणात्सोऽथगृह्णातिशारीरंचातिवाहिकम् । अङ्गुष्ठपर्वमात्रं तु स्वप्राणैरेवनिर्मितम्
ततस्तस्मिंस्थितं जीवं देहेयमभटास्तदा । बद्ध्वानयन्ति मार्गेणयाम्येनातिव्यथावलम्
तप्ताम्बरीषतुल्येन अयोगुडनिभेन च । प्रतप्तसिकतेनाऽपि ताम्रपात्रनिभेन च ॥६४॥
षडशीतिसहस्राणि योजनानां महीतलात् । कृष्यमाणो यमपुरीं नीयते पापकृद्भटैः ॥
क्वचिच्छीतं महादुर्गमन्धकारं क्वचिन्महत् । अग्निसंस्पर्शवदनैः काककाकोलजम्बुकैः
मक्षिकादंशमशकैर्भक्ष्यते सर्पवृश्चिकैः । भक्ष्यमाणोऽपि तैर्जन्तुः क्रन्दते म्रियते न हि

क्वचिच्च भक्ष्यते घोरै राक्षसैः कृष्यतेऽस्यते ।
दह्यमानोऽतिघोरेण सैकतेन च नीयते ॥ ६८ ॥

मुहूर्तैर्दशभिर्याति तं मार्गमतिदुस्तरम् । तं कालं सुमहद्वेत्ति पुरुषो वर्षसम्मितम् ॥
तार्यते च नदीं घोरां पूयशोणितवाहिनीम् । नदीं वैतरणीं नाम केशशैवलशाद्वलाम्
ततो यमस्य पुरतः स्थाप्यते यमकिङ्करैः । पापी महाभयं पश्येत्कालान्तकमुखैर्वृतम्

पुण्यकर्मा सौम्यरूपं धर्मराजं तदाकिल । मनुष्या एव गच्छन्ति यमलोकं न
मरणानन्तरं तेषां जन्तूनां योनिपूरणम् । तथाहि प्रेता मनुजाः श्रूयन्ते नान्य
धार्मिकः पूज्यते तत्र पापः पाशगलो भवेत् । धार्मिकश्चयथायातितंमार्गंशृणु

आरामद्रुमदातारः फलपुष्पवता पथा ।
छायया च सुखं यान्ति तथा येच्छत्रदा नराः ॥ ७५ ॥

उपानहप्रदा यानैर्वितृषाः पूर्तधर्मिणः । विमानैर्यानदा यान्ति तथा शय्याप
भक्ष्यभोज्यैस्तथातृप्तायान्तिभोजनदायिनः । दीपप्रदाःप्रकाशेन गोप्रदास्तांन
श्रीसूर्यं श्रीमहादेवं भक्त्या ये पुरुषोत्तमम् । जन्मप्रभृति ते यान्ति पूज्यमाना
महीं गां काञ्चनंलोहं तिलान्कार्पासमेवच । लवणं सप्तधान्यंच दत्वा याति सु
तेषां तत्र गतानाञ्च पापिनां पुण्यकर्मिणाम् । चित्रगुप्तः प्रेतपाय निरूपयति
प्रेतलोके स वसति ततः सम्वत्सरं नरः । वत्सरेण च तेनाऽस्य शरीरमभिजा
सोदकुम्भमथाऽन्नाद्यं बान्धवैर्यत्प्रदीयते । दिने दिने स तद्भुक्त्वा तेन वृद्धिं प्रया
पूर्वदत्तमथाऽन्नाद्यं प्राप्नोति स्वयमेव च । स्वयं येन न दत्तञ्च तथा दाता न
न चाऽप्युदकदाताऽसौक्षुत्तृड्भ्यामतिपीड्यते । बान्धवैस्तूदकंदत्तंनदीभूत्वोप

मासि मासि च यच्छ्राद्धं षोडशश्राद्धपूर्वकम् ।
अत्र न क्रियते यस्य प्रेतत्वात्स न मुच्यते ॥ ८५ ॥

मानुषेण दिनेनैव प्रेतलोके दिनं स्मृतम् । तस्माद्दिने दिने देयं प्रेतायाऽन्नंच व
तं च स्माशानिकानाम गणायाम्याभयावहाः । शीतवातातपोपेतंतत्ररक्षन्तिपा
यथेह बन्धने कश्चिद्रक्ष्यते विषमैर्नरैः । प्रेतपिण्डा न दीयन्ते षोडशश्राद्धपूर्व
यस्य तस्य न मोक्षोऽस्ति प्रेतत्वाद्वैयुगैरपि । ततः सपिडीकरणे बान्धवैःसुक
पूर्णे सम्वत्सरे देहं सम्पूर्णं प्रतिपद्यते । पापात्मा घोररूपं तु धार्मिको दिव्य
ततः सनरकं याति स्वर्गंवा स्वेनकर्मणा । रौरवाद्याश्च नरकाः पातालतलसं

सुराद्याः सत्यपर्यन्ताः स्वर्लोकस्योर्ध्वमाश्रिताः ।
इतिहासपुराणेषु वेदस्मृतिषु यच्छ्रुतम् ॥ ९२ ॥

पुण्यं तेन भवेत्स्वर्गो नरकस्तद्विपर्ययात् । तत्रापि कालवसतिकर्मणामनुरूपतः ॥
अर्वाक्सपिण्डीकरणंयस्यवर्षाच्चवाकृतम् । प्रेतत्वमपितस्याऽपिप्रोक्तंसम्वत्सरंध्रुवम्
इष्टं च त्रिभिर्मेधैरर्चितं वा सुरत्रयम् । प्रेतलोकं न ते यान्ति तथा ये समरे हताः

शुद्धेन पुण्येन दिवञ्च शुद्धां पापेन शुद्धेन तथा तमोऽन्धम् ।
मिश्रेण स्वर्गं नरकञ्च याति देहस्तथैवाऽस्य भवेच्च तादृक् ॥ ६६ ॥
प्रश्नत्रयं चेति तव प्रणीतमुत्पत्तिमृत्यू परलोकवासः ।
यथा गुरुर्मे समुदाजहार किं भूय इच्छस्युत तद्वदामि ॥ ६७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे आदित्यकमठसम्वादे जीवस्य पारलौकिकगत्यादि-वर्णनंनाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सजयादित्यस्तवनं जयादित्यमाहात्म्यवर्णनम्

अतिथिरुवाच

यदेतत्परलोकस्य स्वरूपं व्याहृतं त्वया । आगमं समुपाश्रित्य तत्तथैव न संशयः ॥

किन्त्वत्र नास्तिकाः पापाः सन्दिह्यन्तेऽल्पचेतनाः ।
तेषां निःसंशयकृते वद कर्मफलं हि यत् ॥ २ ॥

इहैव कस्य कस्यैव कर्मणः पापकस्यच । प्रभावात्कीदृशो जायेत्कमठैतद्वदाऽस्तिचेत

कमठ उवाच

सर्वमेतत्प्रवक्ष्यामि स्थिरो भूत्वा श‍ृणुष्व तत् ।
यथा मम गुरुः प्राह यन्मे चेतसि संस्थितम् ॥ ४ ॥

ब्रह्महा क्षययोगी स्यात्सुरापः श्यावदन्तकः । सुवर्णचौरः कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः

कर्म विपाक

संसर्गीसर्वरोगीस्यात्पञ्चपातकिनस्त्वमी । निन्दामाकर्ण्य साधूनांवधिरः स
स्वयं प्रकीर्तयेच्चाऽपि मूकः पापोऽभिजायते । आज्ञालोपीगुरूणाञ्चअपस्मारी
अवज्ञाकारकस्तेषां कृमिरेवाऽभिजायते । उपेक्षतः पूज्यकार्यं दुष्प्रज्ञत्वं च
चौर्याय साधुद्रव्याणांदद्याद्यावत्पदानि च । तावद्वर्षाणि पङ्गुत्वं सम्प्राप्नोति
दत्त्वा हरति तद्भूयोजायतेकृकलासकः । कुपितानप्रसाद्यैवपूज्यान्स्याच्छीर्ष

रजस्वलामभिगच्छंश्च चण्डालः सम्प्रजायते ।
वस्त्रापहारी चित्री स्यात्कृष्णकुष्ठी तथाऽग्निदः ॥ ११ ॥

दर्दुरो रूप्यहारी स्यात्कूटसाक्षी मुखारुजः । परदारांश्च कामेनद्रष्टास्याद्धि
प्रतिज्ञायाप्रयच्छन्यो ह्यल्पायुर्जायते नरः । विप्रवृत्त्यपहारी स्यादजीर्णी सर्वदा
नैष्ठिकान्नाशनाद्भूयोनिवृत्तोरोगवान्सदा । पत्नीवहुत्वेत्वेकस्यांरतोमोक्षः

स्वामिना धर्मयुक्तो यस्त्वन्यायेन समाचरेत् ।
स्वयं वा भक्षयेद्द्रव्यं स मूढः स्याज्जलोदरी ॥ १५ ॥

दुर्वलं पीड्यमानं यो वलवान्समुपेक्षते । अङ्गहीनः स च भवेदन्नहृत्क्षुधितो
व्यवहारे पक्षपाती जिह्वारोगी भवेन्नरः । धर्मप्रवृत्तिं सञ्चार्य पत्न्यादीष्टवियोग
स्वयंपाकाग्रभोजी यो गलरोगमवाप्नुयात् । पञ्चयज्ञानकृत्वैव भुञ्जानो ग्राम
पर्वमैथुनकृन्मेही परित्यज्य स्वगेहिनीम् । वेश्यादिरक्तो मूढात्माखल्वाटो जा

परिक्षीणान्मित्रवन्धून्स्वामिनं दयितानुगान् ।
अवमन्य निवृत्तात्मा क्लिष्टवृत्तिः सदा भवेत् ॥ २० ॥

छद्मनोपचरेद्यस्तु पितरौस्वामिनंगुरून् । प्राप्तव्यार्थस्यातिकष्टात्परिभ्रंशोऽर्थं
विश्रब्धस्याऽपहारी तु दुःखानांभाजनंभवेत् । धार्मिकेक्षुद्रकारीयोनरःसवाम

दुर्वलवृषवाही यः कटिलूती भवेत्स च ॥ २३ ॥
जात्यन्धश्चाऽपि यो गोघ्नो निःपशुदुःखकृद्गवाम् ।
निर्दयो गोषु घाताद्यैः सदा सोऽध्वसु कष्टगः ॥ २४ ॥
निस्तेजकः सभार्यां यो गलगण्डी स जायते ।

सदा क्रोधी च चण्डालः पूतिवक्त्रश्च सूचकः ॥ २५ ॥
अजविक्रयकृद्व्याधः कुण्डाशी भृतको भवेत् ।
नास्तिकस्तिलपिण्डी स्यादश्रद्धो गीतजीवनः ॥ २६ ॥
अभक्ष्यादो गण्डमाली स्त्रीखादी चाऽऽसुतस्य कृत् ।
अन्यायतो ज्ञानग्राही मूर्खो भवति मानवः ॥ २७ ॥

शास्त्रचौरःकेकराक्षःकथास्पुण्याश्चद्वेष्टियः । कृमिवक्त्रः स च भवेद्विभ्रष्टोनरकात्कुधीः
देवद्विजगवां वृत्तिहारको वान्तभक्षकृत् । तडागारामभेत्ता यो भवेद्विकलपाणिकः
व्यवहारे च्छलग्राही भृत्यग्रस्तो भवेन्नरः । सदा पुरुषरोगी स्यात्परदाररतो नरः ॥
वातरोगी कुवैद्यः स्याद्दुश्चर्मा गुरुतल्पगः । मधुमेहीखरीगामीगोत्रस्त्रीमैथुनोऽप्रसूः
स्वसारं मातरं पुत्रवधूं गच्छन्नवीजवान् । कृतघ्नः सर्वकार्याणां वैफल्यं समुपाश्नुते
इत्येष लक्षणोद्देशः पापिनां परिकीर्तितः । चित्रगुप्तोऽपि मुह्येत सकलस्याऽनुवर्णने॥
एते नरकविभ्रष्टा भुक्त्वा योनीः सहस्रशः । एवंविधैश्चिह्निताश्च जायन्ते लक्षणैर्नराः
ये हि धर्मं न मन्यन्ते तथा ये व्यसनैर्जिताः । अनुमानेन बोद्धव्यं यदेते शेषपापिनः
येषां त्वन्तगतं पापं स्वर्गाद्वा ये समागताः । सर्वव्यसननिर्मुक्ता धर्ममेकं भजन्ति ते॥

॥ भवन्ति चाऽत्र श्लोकाः ॥

धर्मादनवमं सौख्यमधर्माद्दुःखसम्भवः । तस्माद्धर्मं सुखार्थाय कुर्यात्पापं विवर्जयेत्
लोकद्वयेऽपि यत्सौख्यं तद्धर्मात्प्रोच्यते यतः । धर्ममेकमतः कुर्यात्सर्वकार्यार्थसिद्धये
मुहूर्तमपि जीवेत नरः शुक्लेन कर्मणा । न कल्पमपि जीवेत लोकद्वयविरोधिना ॥
इति पृष्टं त्वया विप्र! यथाशक्त्यामयेरितम् । असूक्तंसूक्तमथवा क्षन्तव्यं किं वदामिच

नारद उवाच

कमठस्यैतदाकर्ण्य अष्टवर्षस्यभाषितम् । भगवान्भास्करः प्रीतोबभूवाऽतीव विस्मितः
प्रशशंस च तान्विप्रान्हारीतप्रमुखांस्तदा । अहो वसुमतीधन्या द्विजैरेवंविधोत्तमैः ॥
अथ प्रजापतिर्धन्यो यन्मर्यादाऽभिपाल्यते । अमीभिर्ब्राह्मणवरैर्धन्या वेदाश्च सम्प्रति
येषां मध्ये बालबुद्धिरियमेतादृशीस्फुटा । हारीतप्रमुखानांहि का वै बुद्धिर्भविष्यति॥

असंशयं त्रिलोकस्थमेषामविदितं न हि । यथैतान्नारदः प्राह भूयस्तस्मादमी
इति प्रशस्य तान्विप्रान्प्रहृष्टो रविरब्रवीत् । अहं सूर्यो विप्रमुख्यायुष्माकं दर्शना
समागतः सूर्यलोकात्प्राप्तं नेत्रफलञ्च मे । भवद्भिर्धैर्विप्रमुख्यैः सञ्जल्पनसहासन
अन्त्यजा अपि पूयन्ते किं पुनर्माद्दृशा द्विजाः ।
सर्वथा नारदो धन्यो योऽसौ त्रैलोक्यतत्त्ववित् ॥ ४८ ॥
युष्माभिर्वध्यतेश्रेयोयस्यवैधूतकिल्बिषैः । प्रणमामिच वः सर्वान्मनोबुद्धिसमा
तपो विद्या च वृत्तं च यतो वार्द्धक्यकारणम् ॥ ४६ ॥
वरं मत्तो वृणीध्वञ्चदुर्लभं यं हृदीच्छत । यूयं स्वयंहि वरदामत्सङ्गोमास्तु नि
देवतानांहि संसर्गो निष्फलो नोपजायते । तस्मान्मत्तोवरंकिञ्चिद्वृणुध्वं प्रद
श्रीनारद उवाच
इति सूर्यवचः श्रुत्वा प्रहृष्टास्ते द्विजोत्तमाः ॥ ५२ ॥
सम्पूज्यपरयाभक्त्यापाद्यार्घ्यस्तुतिवन्दनैः। मण्डलादीन्महाजप्यान्गृणन्तःप्रोचिरे
जयादित्य जय स्वामिञ्जय भानो जयाऽमल । जय वेदपदे शश्वत्तारयाऽस्माव
विप्राणां त्वं परोदेवोविप्रसर्गाऽपि त्वन्मयः । नितरां पूतमेतन्नःस्थानंदेवत्वयै
अद्य नः सफला वेदाअद्यनःसफलाः क्रियाः । अद्य नः सफलंगेहं त्वया स
वरं यदि प्रदाताऽसि तदेनं प्रवृणीमहे । आस्माकीनमिदं स्थानंन हि त्याज्यं
श्रीसूर्य उवाच
यस्माद्भवद्भिः पूर्वं हि जयादित्येति चोदितम् ।
जयादित्य इति ख्यातस्तस्मात्स्थास्येऽत्र सर्वदा ॥ ५८ ॥
यावन्महीसमुद्राश्चपर्वतानगराणि च । तावत्स्थानमिदं विप्रानहित्यक्ष्यामि
दारिद्र्यरोगसंघातान्दद्रवो मण्डलानिच । कुष्ठादीन्नाशयिष्यामिभजतामत्र
यो मामत्र स्थितंचापिपूजयिष्यति मानवः । सूर्यलोकमिवागम्यपूजांतस्य
श्रीनारद उवाच
एवमुक्ते भगवता हारीताद्या द्विजोत्तमाः । मूर्ति संस्थापयामासुर्वेदोदितवि

ततोद्विजाःप्राहुरेवंकमठंत्वत्कृतेरविः । अत्र स्वामीस्थितस्तस्मात्प्रथमंस्तुहित्वंरविम्
इत्युको ब्राह्मणैःसर्वैःकमठोवाग्मिनाम्वरः । प्रणिपत्यजयादित्यंमहास्तोत्रमिदंजगौ

न त्वं कृतः केवलसंश्रुतश्च यजुष्येवं व्याहरत्यादिदेव ! ।
चतुर्विधा भारती दूरदूरं धृष्टः स्तौमि स्वार्थकामः क्षमैतत् ॥ ६५ ॥
मार्तण्डसूर्यांशुरविस्तथेन्द्रो भानुर्भगश्चाऽर्यमा स्वर्णरेताः ॥ ६६ ॥
दिवाकरो मित्रविष्णुश्च देव ! ख्यातस्त्वं वै द्वादशात्मा नमस्ते ।
लोकत्रयं वै तव गर्भगेहं जलाधारः प्रोच्यसे खं समग्रम् ॥ ६७ ॥
नक्षत्रमाला कुसुमाभिमाला तस्मै नमो व्योमलिङ्गाय तुभ्यम् ॥ ६८ ॥
त्वं देवदेवस्त्वमनाथनाथस्त्वं प्राप्यपालः कृपणे कृपालुः ।
त्वं नेत्रनेत्रं जनबुद्धिबुद्धिराकाशकाशो जय जीवजीवः ॥ ६९ ॥
दारिद्र्यदारिद्र्य निधे निधीनाममङ्गलामङ्गल शर्मशर्म ।
रोगप्ररोगः प्रथितः पृथिव्यां चिरं जयाऽऽदित्य ! जयाऽऽप्रमेय !॥ ७० ॥
व्याधिग्रस्तं कुष्ठरोगाभिभूतं भग्नघ्राणं शीर्णदेहं विसञ्ज्ञम् ।
माता पिता बान्धवाः सन्त्यजन्ति सर्वैस्त्यक्तं पासि कोऽस्ति त्वदन्यः ॥
त्वं मे पिता त्वं जननी त्वमेव त्वं मे गुरुर्बान्धवाश्च त्वमेव ।
त्वं मे धर्मस्त्वञ्च मे मोक्षमार्गो दासस्तुभ्यं त्यज वा रक्ष देव ! ॥ ७२ ॥
पापोऽस्मि मूढोऽस्मि महोग्रकर्मा रौद्रोऽस्मि नाऽऽचारनिधानमस्मि ।
तथापि तुभ्यं प्रणिपत्य पादयोर्जयं भक्तानामर्पय श्रीजयार्क ! ॥ ७३ ॥

नारद उवाच

एवं स्तुतो जयादित्यः कमठेन महात्मना । स्निग्धगम्भीरयावाचा प्राह तं प्रहसन्निव
जयादित्याष्टकमिदं यत्त्वया परिकीर्तितम् । अनेनस्तोष्यते योमांभुवितस्यनदुर्लभम्
रविवारेविशेषेण मां समभ्यर्च्य यः पठेत् । तस्यरोगानशिष्यन्तिदारिद्र्यञ्चनसंशयः
त्वया च तोषितोवत्सतवदद्मिवरंत्वमुम् । सर्वज्ञोभुविभूत्वात्वंततोमुक्तिमवाप्स्यसि
त्वत्पिता स्मृतिकारश्च भविष्यति द्विजार्चितः ।

स्थानस्याऽस्य न नाशश्च कदाचित्प्रभविष्यति ॥ ७८ ॥

न चैतस्थानकंवत्सपरित्यक्ष्यामिकर्हिचित् । एवमुक्त्वासभगवान्ब्राह्मणैर्
अनुज्ञाप्य द्विजेद्रांस्तांस्तत्रैवाऽन्तर्दधे प्रभुः । एवं पार्थ समुत्पन्नोजयादित्यो
आश्विने मासि सम्प्राप्तेरविवारेच सुव्रत !। आश्विने भानुवारेणयो जयादि
कोटितीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति । पूजनाद्रक्तमाल्यैश्च रक्तचन्
लेपनाद्गन्धधूपाद्यैर्नैवेद्यैर्घृतपायसैः । ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः
मुच्यते सर्वपापेभ्यः सूर्यलोकञ्च गच्छति । पुत्रदारधनान्यायुःप्राप्यसांसारि
इष्टकामैः समायुक्तः सूर्यलोके चिरं वसेत् ॥ ८५ ॥

सर्वेषु रविवारेषु जयादित्यस्य दर्शनम् । कीर्तनं स्मरणं वापिसर्वरोगोपशा
अनादिनिधनं देवमव्यक्तं तेजसांनिधिम् । ये भक्तास्ते च लीयन्तेसौरस्थाने
सूर्योपरागे सम्प्राप्ते रविकूपे समाहितः । स्नानं यः कुरुते पार्थ! होमं कुर्यात
दानं चैवयथाशक्त्याजयादित्याग्रतःस्थितः । तस्यपुण्यस्यमाहात्म्यंशृणुष्वैक
कुरुक्षेत्रेषु यत्पुण्यं प्रभासे पुष्करेषुच । वाराणस्याञ्च यत्पुण्यं प्रयागे नैमिषे
तत्पुण्यं लभते मर्त्यो जयादित्यप्रसादतः ॥ ९० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहे
कौमारिकाखण्डे जयादित्यमाहात्म्यवर्णनंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारदार्जुनसम्वादे कोटितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

अर्जुन उवाच

कोटितीर्थं कथं जातं केन वा निर्मितं मुने । कस्माद्वाकोटितीर्थानांफलमत्र

नारद उवाच

यदामेस्थापितंस्थानंप्रसाद्याऽथमयाप्रभुः । ब्रह्मलोकात्समानीतःसाक्षाद्ब्रह्मा

ततो मध्याह्नसमयेस्नानार्थंभगवान्विधिः । सस्मारकोटितीर्थानांस्मृतान्यत्रागतानिच
स्वर्गात्त्रिदशलक्षाणि सप्ततिश्च महीतलात् ।
पातालाद्विंशलक्षाणि स्मृतान्यभ्यागतानि च ॥ ४ ॥
अनेन प्रविभागेन लिङ्गान्यपि कुरूद्वह !। आयातानि यथा पूजां विदधाति पितामहः
ततोऽभिषेचनं कृत्वा लिङ्गान्यभ्यर्च्य पद्मभूः । मध्याह्नकृत्यं संसाध्यममप्रेम्णावरंददौ
ततो भगवता ह्यत्र मनसा निर्मितं सरः । भगवानर्चितस्तीर्थैरिदमूचे प्रजापतिः ॥
किं कुर्म भगवन्धातरादेशं देहि नः प्रभो !। तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा प्राह प्रजापतिः
एतस्मिन्सरसि स्थेयं तीर्थैःसर्वैस्त्थाऽत्रच । एकस्मिंश्च तथालिङ्गेसर्वलिङ्गैर्ममार्चनात्
कोटीनामेव तीर्थानां लिङ्गानां स्नानपूजया । दानेन च फलं त्वत्र यदि सत्यंवचोमम्
यः श्राद्धं कुरुते चाऽत्र पिण्डदानंयथाविधि । पितॄणामक्षयातृप्तिर्जायतेनाऽत्रसंशयः
स्नात्वा योऽभ्यर्चयेद्देवंकोटीश्वरमनन्यधीः । कोटिलिङ्गार्चनफलंव्यक्तंतस्योपजायते
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।
तेषां स फलमाप्नोति कोटितीर्थावगाहनात् ॥ १३ ॥
एवं दत्त्वा वरं ब्रह्मा ब्रह्मलोकं ययौ प्रभुः । कोटितीर्थश्च सञ्जातं ततःप्रभृति विश्रुतम्
अस्य तीरे पुरा पार्थ! ब्रह्माद्यैर्देवसत्तमैः । यज्ञान्बहुविधान्कृत्वा ततः सिद्धिं परांययुः
वसिष्ठाद्यैर्मुनिवरैस्तपश्चीर्णं पुराऽनघ । मनसोऽभीप्सितान्कामान्प्रापुरन्ये तपोधनाः
अत्र तीर्थे पुरा पार्थअत्रिणाविहितं तपः । कोटितीर्थाद्दक्षिणतःस्थापितंलिङ्गमुत्तमम्
अत्रीश्वराभिसञ्ज्ञं तु महापापहरं परम् । स्थापयित्वा च तल्लिङ्गमग्रे चक्रे सरोवरम्
तत्र स्नात्वाच यो मर्त्यः श्राद्धं कुर्यात्प्रयत्नतः । अत्रीश्वरंसमभ्यर्च्यरुद्रलोकेवसेच्चिरम्
भरद्वाजेन मुनिना कोटितीर्थे सरोवरे । तपश्चीर्णं महाबाहो ! यज्ञाश्च विहिताः किल
भरद्वाजेश्वरं लिङ्गं स्थापितं सुमनोहरम् । तत्र कृत्वा सरो रम्यं परां मुदमवाप्तवान्
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या श्राद्धंकुर्याद्विधानतः । भरद्वाजेश्वरं पूज्य शिवलोकेमहीयते
ततश्च कोटितीर्थेऽस्मिन्गौतमो भगवानृषिः । अतप्यत तपो घोरमहल्यासङ्गमाशया
तं कामं प्राप्तवान्धीमान्परां मुदमुपागतः । अहल्यया समायोगमेतत्तीर्थप्रभावतः॥२४

अस्मिन्क्षेत्रे महालिङ्गं गौतमेश्वरसञ्ज्ञितम् । स्थापयामास भगवानहल्यासर

अर्जुन उवाच

अहल्यया कदा ब्रह्मन्खानितं वै महत्सरः । तन्मम ब्रूहि सकलमहल्यासरः

नारद उवाच

अहल्या शापमापन्ना गौतमात्किल फाल्गुन !। पुरा चेन्द्रसमायोगे परं दुःख

ततो दुःखार्तः स मुनिःकोटितीर्थेऽकरोत्तपः । तपसा तेन वै पार्थाऽहल्ययाश

ततः साध्वी परं हृष्टा अत्र क्षेत्रे सरोवरम् । चकार सुमहत्पुण्यं तीर्थोदैःपरि

अहल्यासरसि स्नानं पिण्डदानं समाचरेत् । गौतमेशञ्च सम्पूज्यब्रह्मलोकंस

कोटितीर्थे नरश्रेष्ठ!अनेके मुनयोऽमलाः । तपस्तप्त्वा सुघोरञ्च परांसिद्धिमु

राजभिर्बहुभिःपूर्वं तपोदानंतथाऽध्वराः । अस्मिंस्तीर्थेसुविहिताःपरांसिद्धिमु

अस्य तीरे द्विजं चैकं मृष्टान्नैर्यश्च तर्पयेत् । तेन श्रद्धासहायेन कोटिर्भवति

अस्य तीरे नरः पार्थ! रत्नानि विविधानि च ।

गोभूमितिलधान्यानि वासांसि विविधानि च ॥ ३४ ॥

श्रद्धया परया पार्थ! द्विजेभ्यःसम्प्रयच्छति । शतकोटिगुणं पुण्यं कोटितीर्थ

कोटितीर्थे प्रतिश्रुत्य द्विजेभ्यो न प्रयच्छति ॥ ३५ ॥

नरके पातयित्वा च कुलमेकोत्तरं शतम् । आत्मानं पातयेत्पश्चाद्दारुणं रौ

माघमासे तु सम्प्राप्ते प्रातःकालेतथाऽमले । यः स्नातिमकरादित्येतस्यपुण्य

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् । सर्वदानव्रतैर्यच्च कोटितीर्थे दि

तत्पुण्यं लभते मर्त्यो नाऽत्र कार्याविचारणा । कन्यागते सवितरि यः श्राद्धं

पितरस्तस्य तुष्यन्ति गयाश्राद्धशतैर्न तु । कार्तिके मासि सम्प्राप्तेस्नानादि

तदक्षयफलं सर्वं ब्रह्मणो वचनं यथा । इष्ट्वाऽत्र यज्ञमेकं तु कोटियज्ञफलं ल

कन्या ब्राह्मेण विधिनादत्त्वा कोटिगुणंफलम् । सर्वदानंकोटिगुणंकोटितीर्थे

कोटितीर्थेत्यजेत्प्राणान्हृदिकृत्वातुमाधवम् । तस्यपार्थचिरंस्वर्गोह्यक्षयाशा

कोटितीर्थे तीर्थवरे देहत्यागं करोति यः । तस्य पूजां प्रकुर्वन्ति ब्रह्माद्या दे

अस्य तीरे देहदाहो यस्य कस्य प्रजायते । अस्थिक्षेपो यस्य भवेन्महीसागरसङ्गमे
तत्फलं गदितुं पार्थ! वागीशोऽपि न वै क्षमः । एतज्ज्ञात्वा परं पार्थकोटितीर्थंप्रसेवते
दिनेदिने फलं तस्य कापिलंगोसहस्रकम् । स्वर्गे मर्त्येच पाताले तस्मादेतत्सुदुर्लभम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे कोटितीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कोटितीर्थादिमाहात्म्यवर्णनम्

नारद उवाच

अथाऽन्यत्सम्प्रवक्ष्यामि शालामाहात्म्यमुत्तमम् ।
संस्थापिते पुरा स्थाने प्रोक्तोऽहं द्विजपुङ्गवैः ॥ १ ॥

स्थानस्य रक्षणार्थाय उपायं कुरु सुव्रत ! । ततो मया प्रतिज्ञातं करिष्येस्थानरक्षणम्
आराधिता मया पश्चाद्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । त्रयस्त्वेकाग्रचित्तेनततस्तुष्टाःसुरोत्तमाः
समागम्याऽथमांप्रोचुर्नारदव्रियतांवरः । प्रोक्तंतानार्च्यंच मया व्रियतांस्थानरक्षणम्
अयमेव वरो मह्यं देयो देवैःसुतोषितैः । स्थानलोपो यथा न स्याद्यथाकीर्तिर्भवेन्मम
एवमस्त्विति देवेशैः प्रतिज्ञातं तदा मुने ! । स्वांशेन प्रकरिष्याम द्विजानांतवरक्षणम्
एवमुक्त्वा कला मुक्ता देवैस्त्रिपुरुषैः स्वयम् । अन्तर्धानं ततःप्राप्ताःसर्वेऽपिसुरसत्तमाः
ततो मया द्विजैःसार्धंशालाग्रेस्थानरक्षणम् । स्थापिताश्च पृथग्देवास्त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः

पीड्यमाना यदा विप्राः केनाऽपि च भवन्ति हि ।
पूर्वाह्णे चाऽपि ऋग्वेदं मध्याह्ने च यजूंष्यथ ॥ ६ ॥

यामे तृतीये सामानि तारस्वरमधीत्यच । शापं यस्यप्रदास्यन्तिशालाग्रे भृशरोषिताः
सप्ताहाद्वर्षमध्याद्वात्रिवर्षाद्भस्मतां व्रजेत् । प्रतिज्ञाता स्थानरक्षा यदि वो नारदाग्रतः

सत्येन तेन नो वैरी भस्मीभवतुह क्षणात् । अनेन शापमन्त्रेणभस्मीभवतिनिश्चि
शालां त्रिपुरुषां तत्र यः पश्यति दिनेदिने । अर्चयेत्तोषयेच्चाऽसौ स्वर्गलोके मही

॥ इति त्रिपुरुषशालामाहात्म्यम् ॥

नारद उवाच

अथाऽन्यत्सम्प्रवक्ष्यामि मदीयसरसो महत् ॥ १४ ॥

माहात्म्यमतुलं पार्थ! देवानामपि दुर्लभम् । मया पूर्वं सरः खातं दर्भाङ्कु
मृत्तिका ताम्रपात्रेणत्यक्ताबाह्ये ततः स्वयम् । सर्वेषामेवतीर्थानामाहृत्योदकमु
तत्तत्र सरसि क्षिप्तं तेन सम्पूरितं सरः । आश्विने मासि सम्प्राप्ते भानुवारेन

श्राद्धं यः कुरुते तत्र स्नात्वा दानं विशेषतः ।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ १८ ॥

नारदीयं सरो ह्येतद्विख्यातं जगतीतले । महता पुण्ययोगेन देवैरपि हि लभ्यं
यदत्र दीयते दानं हूयते यच्च पावके । सर्वं तदक्षयं विद्याज्जपानशनसाधनात्
नारदीये सरःश्रेष्ठे स्नात्वा यो नारदेश्वरम् । पूजयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमु
अत्र तीर्थे पुरा पार्थ सर्वनागैस्तपः कृतम् । कद्रूशापस्यमोक्षार्थमात्मनोहित
ततः सिद्धिं परां प्राप्ता एतत्तीर्थप्रभावतः । ततो नागेश्वरं लिङ्गंस्थापयामासु
नारदादुत्तरे भागे सर्वे नागाः प्रहर्षिताः । नारदीये सरःश्रेष्ठे यः स्नात्वा पूजये
नागेश्वरं महाभक्त्या तस्य पुण्यमनन्तकम् । तेषां सर्पभयं नास्ति नागानांवचनं

॥ इति नारदीयसरोमाहात्म्यम् ॥

नारद उवाच

अपरद्वारकानाम देवी चात्राऽस्ति पाण्डव ! ॥ २६ ॥

सा च ब्रह्माण्डद्वारे वै सदैव विहितालया । चतुर्विंशतिकोटीभिर्देवीभिः परि
ततो दीर्घं तपस्तप्त्वा मया नीताऽत्रतोषिता । अपरस्मिंस्ततोद्वारेस्थापितापर
पूर्वस्मिन्नगरद्वारे स्थापिता द्वारवासिनी । नवमी चैत्रमासस्य कृष्णपक्षे भवे
कुण्डे स्नानं नरः कृत्वा ताञ्च देवीं प्रपूजयेत् । वलिबाकुलनैवेद्यैर्गन्धधूपादिपूज

सप्तजन्मकृतं पापं नाशमायाति तत्क्षणात् ।
यान्यान्प्रार्थयते कामास्तांस्तानाप्नोति मानवः ॥ ३१ ॥
वन्ध्या च लभते पुत्रं स्नानमात्रेण तत्र वै । नवम्यां चैत्रमासस्य पुष्पधूपार्घ्यपूजया
विघ्नानि नाशयेद्देवी सर्वसिद्धिं प्रयच्छति । भक्तानां तत्क्षणादेव सत्यमेतन्न संशयः॥
उत्तरद्वारकाञ्चापि पूज्यैवं विधिवन्नरः । एतदेव फलं सोऽपि प्राप्नुयान्मानवोत्तमः
पूर्वद्वारेतुवै देवी या स्थिताद्वारवासिनी । तस्याःपूजनमात्रेणप्राप्नुयाद्वाञ्छितंफलम्
आश्विने मासि सम्प्राप्ते नवरात्रेविशेषतः । उपोष्यनवरात्रञ्चस्नात्वा कुण्डेसमाहितः
पूजयेद्देवतां भक्त्या पुष्पधूपान्नतर्पणैः । अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो लभते धनम् ॥
वन्ध्या प्रसूयते पार्थ ! नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे कोटितीर्थादिमाहात्म्यवर्णनं नाम
त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

———

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीनारदमाहात्म्यवणनम्

नारद उवाच

ममाऽपिपार्थ!तत्राऽस्तिमूर्तिर्ब्राह्मणकाम्यया।तत्रनाहंत्यजाम्यङ्ग!च्छत्रदण्डविभूषिताम्
कार्तिकस्य तु या शुक्ला भवत्येकादशीशुभा । तस्यांमदर्चनंकृत्वा कलिदोषैर्विमुच्यते

अर्जुन उवाच

बाल्यात्प्रभृति सन्देहो ममाऽयं हृदि वर्तते । पृच्छतस्तञ्च मे विप्र न क्रोधंकर्तुमर्हसि
सदा त्वं मोक्षधर्मेषु परिनिष्ठां परां गतः । सर्वभूतसमो दान्तो रागद्वेषविवर्जितः ॥
त्यक्तनिन्दास्तुतिर्मौनी मोक्षस्थः परिकीर्त्यसे । त्वं च नारदलोकेषुवायुवच्चपलोमुने!

सौदामिनीव विचरन्दृश्यसे प्राज्ञसम्मतः। सदा कलिकरो लोके निर्दयः सं...
बहूनां हि सहस्राणि देवगन्धर्वरक्षसाम्। राज्ञां मुनीन्द्रदैत्यानां कलेनं...
कस्मात्तदेषा चेष्टा ते सन्देहं मे हर द्विज!।
सन्देहान्न सुखं शेते बाणविद्धो मृगो यथा॥८॥

सूत उवाच

शौनकेदं वचःश्रुत्वा फाल्गुनान्नारदोमुनिः। प्रहसन्निव बाभ्रव्यवदनं स निरीक्ष्...
स च बाभ्रव्यनामा वै हारीतस्याऽन्वयोद्भवः। ब्राह्मणो नारदमुनेः समीपे वर्तते...
स च ज्ञात्वा महाबुद्धिर्नारदस्य मनीषितम्। प्रहसन्निवप्रोवाचफाल्गुनं...

बाभ्रव्य उवाच

सत्यमेतद्यथाऽऽत्थत्वंनारदंप्रतिपाण्डव!। सर्वोऽपि चात्रवृत्तान्तेसंशयं याति...
तदहं ते प्रवक्ष्यामि यथा कृष्णान्मया श्रुतम्।
स्तोककालान्तरे पूर्वं सर्वं यादवनन्दनः॥१३॥
महीसागरयात्रायां कृष्णस्तत्राऽऽययौ प्रभुः। उग्रसेनेन सहितो वसुदेवेन...
रामेण रौक्मिणेयेन युयुधानादिभिस्तदा। स च ज्ञात्वा ज्ञातिसमं महीसाग...
पिण्डदानादिकं कृत्वादत्त्वा दानानि भूरिशः। गुहेश्वरादिलिङ्गानि यत्न...
स्नानं कृत्वा कोटितीर्थे जयादित्यंसमर्च्यच। पूजयन्नारदमुनिं युक्तः कृष्णो...
उग्रसेनेन राज्ञा वै पूर्वजेन जटायुना। मदादिविप्रमुख्यानां बहूनां चोप...
उग्रसेनो महाराजः कृष्णं प्रोवाच संसदि॥१८॥

उग्रसेन उवाच

कृष्ण! प्रक्ष्यामि त्वामेकं संशयं वद तं मम॥१९॥
योऽयं नाम महाबुद्धिर्नारदोविश्ववन्दितः। कस्मादेषोऽतिचपलो वायुवद्...
कलिप्रियश्च कस्माद्वा कस्मात्त्वय्यतिप्रीतिमान्॥२०॥

श्रीकृष्ण उवाच

सत्यं राजंस्त्वया पृष्टमेतत्सर्वं वदामि ते। दक्षेण तु पुरा शप्तो नारदो मुनिस...

मार्गात्सुतान्वीक्ष्यनारदेनविचालितान् । नावस्थानंचलोकेषु भ्रमतस्तेभविष्यति
त्यवकान्तथाद्वितीयानां प्रचालनात् । इतिशापद्वयंप्राप्यद्विविधाऽऽत्मजचालनात्
कर्तुं समर्थोऽपिमुनिर्मेने तथैव तत् । एतावान्साधुवादो हि यतश्च क्षमते स्वयम्
शकालंचाऽवेक्ष्य कलिं वर्धयते यतः । सत्यं च वक्तितस्मात्सनचपापेनलिप्यते
तोऽपिच सर्वत्र नास्त्ययस्मात्पृथग्जनः । ध्येयाद्भवति नैवस्याद्भ्रमदोषस्ततोऽस्यच
यच्च प्रीतिर्मयि तस्य परमा तच्छृणुष्व च ॥ २६ ॥
हि सर्वदा स्तौमि नारदं देवदर्शनम् । महेन्द्रगदितेनैव स्तोत्रेण शृणु तन्नृप॥२७॥
चारित्रयोर्जाता यस्याऽहन्ता न विद्यते । अगुप्तश्रुतचारित्रं नारदं तं नमाम्यहम् ॥
तिक्रोधचापल्ये भयं नैतानि यस्य च । अदीर्घसूत्रं धीरं च नारदं तं नमाम्यहम् ॥

कामाद्वा यदि वा लोभाद्वाचं यो नान्यथा वदेत् ।
उपास्यं सर्वजन्तूनां नारदं तं नमाम्यहम् ॥ ३० ॥

यात्मगतितत्त्वज्ञं क्षान्तंशक्तंजितेन्द्रियम् । ऋजुं यथार्थवक्तारं नारदं तं नमाम्यहम्
सा यशसा बुद्ध्या नयेन विनयेन च । जन्मना तपसा वृद्धं नारदं तं नमाम्यहम्
शीलं सुखं वेषं सुभोजं स्वाचरंशुभम् । सुचक्षुषंसुवाक्यञ्च नारदं तं नमाम्यहम्
याणं कुरुते गाढं पापं यस्य न विद्यते । न प्रीयते परानर्थे योऽसौतंनौमिनारदम्
स्मृतिपुराणोक्तधर्मे यो नित्यमास्थितः । प्रियाप्रियविमुक्तं तं नारदं प्रणमाम्यहम्
वादिष्वलिप्तं च पण्डितं नालसं द्विजम् । बहुश्रुतं चित्रकथं नारदं प्रणमाम्यहम्

नार्थे क्रोधे च कामे च भूतपूर्वोऽस्य विभ्रमः ।
येनैते नाशिता दोषा नारदं तं नमाम्यहम् ॥ ३७ ॥

तसम्मोहदोषो यो दृढभक्तिश्च श्रेयसि । सुनयं सत्रपं तं च नारदं प्रणमाम्यहम् ॥
सक्तः सर्वसङ्गेषु यः सक्तात्मेतिलक्ष्यते । अदीर्घसंशयो वाग्मी नारदं तं नमाम्यहम्
त्यजत्यागमंकिञ्चिद्यस्तपोनोपजीवति । अवन्ध्यकालोयस्यात्मातमहंनौमिनारदम्
श्रमं कृतप्रज्ञं न च तृप्तं समाधितः । नित्यं यत्नात्प्रमत्तं च नारदं तं नमाम्यहम् ॥
हृष्यत्यर्थलाभेन योऽलाभे न व्यथत्यपि । स्थिरबुद्धिरसक्तात्मा तमहंनौमिनारदम्

तं सर्वगुणसम्पन्नं दक्षं शुचिमकातरम् । कालज्ञं च नयज्ञं च शरणं यामि
इमं स्तवं नारदस्य नित्यं राजन्पठाम्यहम् । तेन मे परमां प्रीतिं करोति मु
अन्योऽपियः शुचिर्भूत्वा नित्यमेतांस्तुतिंजपेत् । अचिरात्तस्यदेवर्षिःप्रसादं
एतान्गुणान्नारदस्यत्वमथाऽऽकर्ण्यपार्थिव !। जपनित्यंस्तवंपुण्यंप्रीतस्तेभ

वाभ्रव्य उवाच

इति कृष्णमुखाच्छ्रुत्वा नारदस्य गुणान्नृपः । वभूव परमप्रीतश्चक्रे तच्च तथा
ततो नारदमानर्च दत्त्वा दानं च पुष्कलम् । नारदीयद्विजाग्र्याणां नारदःप्री
ययौ द्वारवतींकृष्णःसभ्रातृज्ञातिबान्धवः । तीर्थयात्रामिमां कृत्वा विधिवत्पु
तथा त्वमपि कौरव्य! नारदस्य गुणानिमान् । श्रुत्वाश्रद्धामयोभूत्वाशृणु

कार्तिके शुक्लद्वादश्यां प्रवोधिन्यामसौ मुनिः ।
विष्णोर्ध्यानसमाधेश्च प्रवुद्धो जायते सदा ॥ ५१ ॥

तस्मिन्दिने नारदेन निर्मितेऽत्रैव कूपके । स्नानं कृत्वा प्रयत्नेन श्राद्धंकुर्यात्

तपो दानं जपश्चाऽत्र कूपे भवति चाऽक्षयम् ॥ ५३ ॥

इदं विष्णिवतिमन्त्रेण ततो विष्णुंप्रवोधयेत् । नारदंचमुनिं पश्चान्मन्त्रेणाने
योगनिद्रा यथा त्यक्ता हरिणा मुनिसत्तम !। तथा लोकोपकाराय भवान
इति मन्त्रेणचोत्थाप्य नारदंपरिपूजयेत् । कृष्णप्रोदितया स्तुत्याछत्रधो

शक्त्या द्विजानां देयं च छत्रं धोत्रं कमण्डलुम् ।
प्रणम्य ब्राह्मणान्भक्त्या नारदः प्रीयतामिति ॥ ५७ ॥

एवं कृते प्रसादात्स मुनेः पापेनमुच्यते । जायते न कलिस्तस्य न चाऽसौ
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहे
कौमारिकाखण्डे नारदमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गौतमेश्वरमाहात्म्ये योगस्याऽष्टाङ्गानांसविस्तरंवर्णनम्

सूत उवाच

ति बाभ्रव्यवचनमाकर्ण्य कुरुनन्दनः । प्रणमन्नारदं भक्त्या विस्मितः पुलकान्वितः
प्रशस्य च चिरं कालं पुनर्नारदमब्रवीत् ॥ २ ॥
क्षेत्रस्यमाहात्म्यंश्रृण्वानस्त्वन्मुखान्मुने । तृप्तिं नैवाधिगच्छामिभूयस्तद्वक्तुमर्हसि

नारद उवाच

हालिङ्गस्य वक्ष्यामि महिमानं कुरूद्वह । गौतमेश्वरलिङ्गस्य सावधानः श्रृणुष्व तत्
क्षपादो महायोगीगौतमाख्योऽभवन्मुनिः । गोदावरीसमानेताअहल्यायाःपतिःप्रभुः
क्षेत्रस्यमाहात्म्यं स च ज्ञात्वा महोत्तमम् । योगसंसाधनंकुर्वन्नत्र तेपे तपो महत्
गसिद्धिं ततः प्राप्य गौतमेन महात्मना । अत्र संस्थापितंलिङ्गं गौतमेश्वरसञ्ज्ञया
प्याप्यैतन्महालिङ्गं चन्दनेन विलिप्य च । सम्पूज्य पुष्पैर्विविधैर्गुग्गुलं दाहयेत्पुरः॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोके महीयते ॥ ८ ॥

अर्जुन उवाच

गस्वरूपमिच्छामि श्रोतुं नारद! तत्त्वतः । योगंसर्वेप्रशंसन्ति यतः सर्वोत्तमोत्तमम्

नारद उवाच

मासाच्च वक्ष्यामि योगतत्त्वं कुरूद्वह । श्रवणादपिनैर्मल्यं यस्यस्यात्सेवनात्किमु
त्तवृत्तिनिरोधाख्यं योगतत्त्वं प्रकीर्त्यते । तदष्टाङ्गप्रकारेण साधयन्तीह योगिनः॥
मश्च नियमश्चैव प्राणायामस्तृतीयकः । प्रत्याहारो धारणाचध्येयंध्यानं च सप्तमम्
समाधिरिति चाऽष्टाङ्गो योगःसम्परिकीर्तितः । प्रत्येकंलक्षणंतेषामष्टानांश्रृणुपाण्डव
नुक्रमान्नरो येषां साधनाद्योगमश्नुते । अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ॥१४
ते पञ्चयमाः प्रोक्ताः श्रृण्वेषामपि लक्षणम् । आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हिताय प्रवर्तते

अहिंसैषा समाख्याता वेदसम्विहिता च या । दृष्टंश्रुतंचानुमितं स्वानुभूतं
कथनं सत्यमित्युक्तं परपीडाविवर्जितम् । अनादानं परस्वानामापद्यपि
मनसा कर्मणा वाचा तदस्तेयं प्रकीर्तितम् । अमैथुनं यतीनां च मनोवाक्का
ऋतौ स्वदारगमनं गेहिनां ब्रह्मचर्यता । यतीनां सर्वसंन्यासो मनोवाक्काय
गृहस्थानां च मनसा स्मृत एषोऽपरिग्रहः । एते यमास्तवप्रोक्ताः पञ्चैवनिय

शौचं तुष्टिस्तपश्चैव जपो भक्तिर्गुरोस्तथा ।
एतेषामपि पञ्चानां पृथक्संश्शृणु लक्षणम् ॥ २१ ॥

बाह्यमाभ्यन्तरं चैव द्विविधं शौचमुच्यते । बाह्यं तु मृज्जलैः प्रोक्तमान्तरंशुद्ध
न्यायेनाऽऽगतयावृत्त्याभिक्षयावार्तयाऽपिच । सन्तोषोयस्यसततंसातुष्टिरि
चान्द्रायणादीनि पुनस्तपांसि विहितानि च । आहारलाघवपरः कुर्यात्तत्त

स्वाध्यायस्तु जपः प्रोक्तः प्रणवाभ्यसनादिकः ।
शिवे ज्ञाने गुरौ भक्तिर्गुरुभक्तिरिति स्मृता ॥ २५ ॥

एवंसंसाध्यनियमान्संयमांश्चविचक्षणः । प्राणायामायसन्दध्यान्नान्यथायोज
यतोऽशुचिशरीरस्य वायुकोपो महान्भवेत् । वायुकोपात्कुष्ठताचजडत्वादि
तस्माद्विचक्षणः शुद्धं कृत्वा देहं यतेत्परम् । प्राणायामस्यवक्ष्यामिलक्षणं
प्राणापाननिरोधश्च प्राणायामःप्रकीर्तितः । लघुमध्योत्तरीयाख्यःसचधीरै
लघुर्द्वादशमात्रस्तु मात्रानिमिषउन्मिषः । द्विगुणो मध्यमश्चोक्तस्त्रिगुणश्चोत्त
प्रथमेन जयेत्स्वेदं मध्यमेन तु वेपथुम् । विषादं च तृतीयेन जयेद्दोषानुक्रमा
पद्माख्यमासनंकृत्वा रेचकं पूरकंतथा । कुम्भकंचसुखासीनःप्राणायामंत्रिधा
प्राणानामुपसंरोधात्प्राणायाम इतिस्मृतः । यथा पर्वतधातूनां ध्मातानां दह्यं
तथेन्द्रियवृतो दोषः प्राणायामेन दह्यते । गोशतं कापिलं दत्त्वा यत्फलं तत्फ

प्राणायामेन योगज्ञस्तस्मात्प्राणं सदा यमेत् ।
प्राणायामेन सिद्ध्यन्ति दिव्याः शान्त्यादयः क्रमात् ॥ ३५ ॥

शान्तिः प्रशान्तिर्दीप्तिश्च प्रसादश्चयथाक्रमम् । सहजागन्तुकामानांपापानांक्ष

वासनाशान्तिरित्याख्यः प्रथमो जायते गुणः ।
लोभमोहात्मकान्दोषान्निराकृत्यैव कृत्स्नशः ॥ ३७ ॥

तपसां च यदा प्राप्तिः सा शान्तिरितिचोच्यते । सर्वेन्द्रियप्रसादश्च बुद्धेर्वै मरुतामपि
प्रसाद इति स प्रोक्तः प्राप्यमेवं चतुष्टयम् । एवम्फलं सदायोगीप्राणायामंसमभ्यसेत्

मृदुत्वं सेव्यमानस्तु सिंहशार्दूलकुञ्जराः ।
यथा यान्ति तथा प्राणो वश्यो भवति साधितः ॥ ४० ॥

प्राणायामस्त्वयं प्रोक्तः प्रत्याहारं ततः शृणु । विषयेषु प्रवृत्तस्य चेतसोविनिवर्तनम्
प्रत्याहारं विनिर्दिष्टं तस्य संयमनं हि यत् । प्रत्याहारस्त्वयंप्रोक्तोधारणालक्षणंशृणु
यथा तोयार्थिनस्तोयंपत्रनालादिभिः शनैः । आपिवेयुस्तथावायुंयोगीनयतिसाधितम्
प्राग्नाभ्यां हृदये वायुरथ तालौ भ्रुवोऽन्तरे । चतुर्दले षड्दशे च द्वादशे षोडशद्विके
आकुञ्चनेनैवमूद्र्ध्वमुन्नीय पवनं शनैः । मूर्धनि ब्रह्मरन्ध्रे तं प्राणं सन्धारयेत्कृती ॥४५

प्राणायामा दश द्वौ च धारणैषा प्रकीर्त्यते ।
दशैता धारणाः स्थाप्य प्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम् ॥ ४६ ॥
धारणास्थस्य यद्ध्येयं तस्य त्वं शृणु लक्षणम् ।
ध्येयं वहुविधं पार्थ! यस्याऽन्तो नोपलभ्यते ॥ ४७ ॥

केचिच्छिवं हरिं केचित्केचित्सूर्यं विधिम्परे । केचिद्देवीं महद्भूतामुतध्यायन्ति केचन
तत्र यो यच्च ध्यायेत स च तत्र प्रलीयते । तस्मात्सदा शिवं देवं पञ्चवक्त्रंहरंस्मरेत्
पद्मासनस्थं तं गौरं बीजपूरकरं स्थितम् । दशहस्तं सुप्रसन्नवदनं ध्यानमास्थितम्
ध्येयमेतत्तव प्रोक्तं तस्माद्ध्यानं समाचरेत् । ध्यानस्य लक्षणंचैतन्निमेषार्धमपिस्फुटम्
न पृथग्जायते ध्येयाद्धारणांयःसमास्थितः । एवमेतां दुरारोहांभूमिमास्थाययोगवित्
न किञ्चिच्चिन्तयेत्पश्चात्समाधिरिति कीर्त्यते । समाधेर्लक्षणं सम्यग्ब्रुवतोमेनिशामय
शब्दस्पर्शरसैर्हीनं गन्धरूपविवर्जितम् । परं पुरुषं सम्प्राप्तः समाधिस्थः प्रकीर्तितः ॥
तांतुप्राप्यनरोविघ्नैर्नाऽभिभूयेतकर्हिचित् । समाधिस्थश्चदुःखेन गुरुणाऽपिनचाल्यते
शङ्खाद्याः शतशस्तस्य वाद्यन्ते यद्विकर्णयोः । भेर्यश्च यदि हन्यन्ते शब्दंवाह्यंनविन्दति

कशाप्रहाराभिहतो वह्निदग्धतनुस्तथा । शीताढ्येचस्थितो घोरैस्पर्शं वाह्यं न
रूपे गन्धे रसे वाह्ये ताद्दृशस्यतुकाकथा । द्दृष्टा य आत्मनाऽऽत्मानंसमाधि
तृष्णा वाऽथ बुभुक्षा वा बाधेते तं न कर्हिचित् ॥ ५६ ॥
न स्वर्गेनचपातालेमानुष्ये क्व च तत्सुखम् । समाधिं निश्चलंप्राप्ययत्सुखं
एवमारूढयोगस्य तस्याऽपि कुरुनन्दन !। पञ्चोपसर्गाः कटुकाः प्रवर्तन्ते यथा
प्रातिभः श्रावणो दैवो भ्रमावर्तोऽथ भीषणः ।
प्रतिभा सर्वशास्त्राणां प्रातिभोऽयं च सात्त्विकः ॥ ६२ ॥
तेन यो मदमादद्याद्योगी शीघ्रं च चेतसः । योजनानां सहस्रेभ्यः श्रवणं श्राव
द्वितीयःसात्त्विकश्चाऽयमस्मान्मत्तोविनश्यति । अष्टौपश्यतियोनीश्चदेवानां
अयञ्च सात्त्विको दोषो मदादस्माद्विनश्यति । आवर्त इव तोयस्य जनावर्त
आवर्ताख्यस्त्वयं दोषो राजसः स महाभयः । भ्राम्यतेयन्निरालम्बंमनोदोषै
समस्ताधारविभ्रंशाद्भ्रमाख्यस्तामसो गुणः । एतैर्नाशितयोगाश्चसकलादेव
उपसर्गैर्महाघोरैरावर्त्यन्ते पुनःपुनः । प्रावृत्य कम्बलं शुक्लं योगी तस्मान्म
चिन्तयेत्परमं ब्रह्म कृत्वा तत्प्रवणं मनः ।
आहाराः सात्त्विकाश्चैव संसेव्याः सिद्धिमिच्छता ॥ ६६ ॥
राजसैस्तामसैश्चैवयोगी सिद्ध्येन्न कर्हिचित् । श्रद्दधानेषु दान्तेषुश्रोत्रियेषु
स्वधर्मादनपेतेषु भिक्षा याच्या च योगिना । भैक्षं यवान्नं तक्रं वा पयो याव
फलमूलंविपक्वंवा कणपिण्याकसक्तवः । श्रुता इत्येतआहारायोगिनांसिद्धि
मृत्युकालंविदित्वा च निमित्तैर्योगसाधकः । योगं युञ्जीतकालस्यवञ्चनार्थं
निमित्तानि च वक्ष्यामि मृत्युं यो वेत्ति योगवित् ।
रक्तकृष्णाम्बरधरा गायन्तीह सती च यम् ॥ ७४ ॥
दक्षिणाशां नयेन्नारी स्वप्ने सोऽपि न जीवति । नग्नं क्षपणकंस्वप्नेहसमानं
घनंचवीक्ष्यवलगन्तंतंविद्यान्मृत्युमागतम् । ऋक्षवानरयुग्यस्थोगायन्योदक्षिणां
याति मज्जेदधो पङ्के गोमये वा न जीवति । केशाङ्गारैस्तथा भस्मभुजगैर्निर्जल

एषामन्यतमैः पूर्णां दृष्ट्वा स्वप्ने न जीवति। करालैर्विकटै रूक्षैः पुरुषैरुद्यतायुधैः॥
पाषाणैस्ताडितः स्वप्ने सद्यो मृत्युं भजेन्नरः।
सूर्योदये यस्य शिवा क्रोशन्ती याति सम्मुखम्॥ ७६॥
विपरीतं परीतम्वा स सद्यो मृत्युमृच्छति। दीपाधिगन्धंनोवेत्तिवमत्यग्नितथानिशि
नाऽऽत्मानंपरनेत्रस्थं वीक्षते न स जीवति। शक्रायुधंचाऽर्धरात्रेदिवा वा ग्रहणंतथा
दृष्ट्वा मन्येत स क्षीणमात्मजीवितमाप्तवान्। नासिकावक्रतामेति कर्णयोर्न्नमनोन्नती
नेत्रञ्च वामंस्रवति यस्यतस्याऽऽयुरुद्गतम्। आरक्ततामेति मुखंजिह्वा चाप्यसितायदा
तदा प्राज्ञोविजानीयादासन्नंमृत्युमात्मनः। उष्ट्रासभयानेनस्वप्नेयोयातिदक्षिणाम्
दिशं कर्णौ पिधायाऽपिनिर्घोषंश्रृणुयान्नच। न स जीवेत्तथास्वप्नेपतितस्यपिधीयते
द्वारं न चोत्तिष्ठति च शुभ्राद्दृष्टिश्चलोहिता। स्वप्नेऽग्निप्रविशेद्यश्चनच निष्क्रमतेपुनः
जलप्रवेशादपि वा तदन्तं तस्य जीवितम्। यश्चाऽभिहन्यते दुष्टैर्भूतै रात्रावथोदिवा
प्रकृतैर्विकृतैर्वाऽपि तस्याऽऽसन्नौयमान्तकौ। देवतानां गुरूणाञ्चपित्रोर्ज्ञानविदांतथा
निन्दामवज्ञांकुरुते भक्तोभूत्वा न जीवति। एवं दृष्ट्वा निमित्तानिविपरीतानियोगवित्
धारणांसम्यगास्थायसमाधावचलो भवेत्। यदि नेच्छन्ति ते मृत्युंततोनासौप्रपद्यते
विमुक्तिमथवा वाञ्छेद्विसृजेद्ब्रह्ममूर्धनि। सन्ति देहे विमुक्ते च उपसर्गाश्च ये पुनः
योगिनं समुपायान्ति श्रृणु तानपि पाण्डव!। ऐशान्ये राक्षसपुरे यक्षोगन्धर्व एव च
ऐन्द्रे सौम्ये प्रजापत्ये ब्राह्मे चाऽष्टसु सिद्धयः।
भवन्ति चाऽष्टौ श्रृणु ताः पार्थिवी या च तैजसी॥ ६३॥
वायवी व्योमात्मिका चैव मानसाऽहम्भवा मतिः।
प्रत्येकमष्टधाभिन्ना द्विगुणा द्विगुणा क्रमात्॥ ६४॥
पूर्वं चाऽष्टौ चतुःषष्टिरन्ते श्रृणुष्वतद्यथा। स्थूलता ह्रस्वताबाल्यंवार्धक्यं यौवनंतथा
नानाजातिस्वरूपञ्च चतुर्भिर्देहधारणम्। पार्थिवांशं विना नित्यमष्टौपार्थिवसिद्धयः
विजिते पृथिवीतत्त्वे यदैशान्ये भवन्ति च। भूमाविव जलेवासोनातुरोऽर्णवमापिबेत्
सर्वत्र जलप्राप्तिश्च अपि शुष्कं द्रवं फलम्। त्रिभिर्देहस्य धरणं नदीर्वा स्थापयेत्करे

अव्रणत्वंशरीरस्यकान्तिश्चाथाऽष्टकंस्मृतम् । अष्टौपूर्वांइमाचाष्टौराक्षसानांपुरेस्
देहादग्निविनिर्माणं तत्तापभयवर्जनम् । शक्तिदत्वं च लोकानांजलमध्येऽग्निज्वा
अग्निग्रहश्च हस्तेन स्मृतिमात्रेण पावनम् । भस्मीभूतस्य निर्माणंद्वाभ्यांदेहस्य
पूर्वाः षोडश चाऽप्यष्टौ तेजसो यक्षसद्मनि । मनोगतित्वं भूतानामन्तर्निवेशनं
पर्वतादिमहाभारवहनं लीलयैव च । लघुत्वं गौरवत्वं च पाणिभ्यां वायुवार
अङ्गुल्यग्रनिपातेन भूमेः सर्वत्र कम्पनम् । एकेन देहनिष्पत्तिर्गान्धर्वे वान्ति सि
चतुर्विंशतिः पूर्वाश्चाप्यष्टावेताश्च सिद्धयः । गन्धर्वलोके द्वात्रिंशदत ऊर्ध्वं नि
छायाविहीननिष्पत्तिरिन्द्रियाणामदर्शनम् ।आकाशगमनंनित्यमिन्द्रियादिशमः
दूरे च शब्दग्रहणं सर्वशब्दावगाहनम् । तन्मात्रलिङ्गग्रहणं सर्वप्राणिनिदर्शनम्
अष्टौ वातात्मिकाश्चैन्द्रेद्वात्रिंशदपिपूर्वकाः । यथाकामोपलब्धिश्चयथाकामवि
सर्वत्राऽभिभवश्चैव सर्वगुह्यनिदर्शनम् । संसारदर्शनं चाऽपि मानस्योऽष्टौच सि

चत्वारिंशच्च पूर्वाश्च सोमलोके स्मृतास्त्विमाः ।
छेदनं तापनं वन्धः संसारपरिवर्तनम् ॥ ११० ॥

सर्वभूतप्रसादत्वं मृत्युकालजयस्तथा । अहङ्कारोद्भवश्चाऽष्टौ प्राजापत्ये च पू
आकारेण जगत्सृष्टिस्तथाऽनुग्रह एवच । प्रलयस्याऽधिकारश्च लोकचित्रप्रवर्त
असादृश्यमिदं व्यक्तंनिर्माणं च पृथक्पृथक् । शुभेतरस्यकर्तृत्वमष्टौवुद्धिभवास्त
षट्पंचाशत्तथा पूर्वाश्चतुःषष्टिरिमे गुणाः । ब्राह्मये पदे प्रवर्तन्ते गुह्यमेतत्त्ववे

जीवतो देहभेदे वा सिद्धयश्चैतास्तु योगिनाम् ।
सङ्गो नैव विधातव्यो भयात्पतनसम्भवात् ॥ ११५ ॥

एतान्गुणान्निराकृत्य युञ्जतोयोगिनस्तदा । सिद्धयोऽष्टौप्रवर्तन्तेयोगसंसिद्धिका
अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च । प्राकाम्यञ्च तथेशित्वं वशित्वञ्च

यत्र कामावसायित्वं माहेश्वरपदस्थिताः ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मत्वमणिमा शीघ्रत्वाल्लघिमा स्मृता ॥ ११८ ॥
महिमा शेषपूज्यत्वात्प्राप्तिर्नाऽप्राप्यमस्य यत् ।

प्राकाम्यमस्य व्यापित्वादीशित्वं चेश्वरो यतः ॥ ११६ ॥

वशित्वाद्वशितानामसप्तमीसिद्धिरुत्तमा । यत्रेच्छा तत्र च स्थानंतत्रकामावसायिता
ऐश्वरं पदमाप्तस्य भवन्त्येताश्च सिद्धयः । ततो न जायते नैव वर्धते न विनश्यति ॥
एष मुक्त इति प्रोक्तो य एवं मुक्तिमाप्नुयात् । यथा जलंजलेनैक्यंनिक्षिप्तमुपगच्छति

तथैवं सात्म्यमभ्येति योगेनाऽऽत्मा परात्मना ।

एवं ज्ञात्वा फलं योगी सदा योगं समभ्यसेत् ॥ १२३ ॥

अत्रोपमांव्याहरन्तियोगार्थेयोगिनोऽमलाः । शशाङ्करश्मिसंयोगादर्ककान्तोहुताशनम्
समुत्सृजतिनैकःसन्नुपमासाऽस्तियोगिनः । कपिञ्जलाखुनकुला वसन्तिस्वामिवद्गृहे
ध्वस्ते यान्त्यन्यतो दुःखं न तेषांसोपमा यतेः । मृद्देहकल्पदेहोऽपिमुखाग्रेणकनीयसा
करोति मृद्भागचयमुपदेशः स योगिनः । पशुपक्षिमनुष्याद्यैः पत्रपुष्पफलान्वितम् ॥

वृक्षं विलुप्यमानञ्च लब्ध्वा सिध्यन्ति योगिनः ।

रुरुगात्रविषाणाग्रमालक्ष्य तिलकाकृतिम् ॥ १२८ ॥

सह तेन विवर्धेत योगी सिद्धिमुपाश्नुते । द्रव्यं पूर्णमुपादाय पात्रमारोहते भुवः ॥
तुङ्गमार्गं विलोक्यैवं विज्ञातं किं न योगिनाम् । तद्गेहंयत्रवसति तद्भोज्यंयेनजीवति
येन निष्पाद्यतेचार्थःस्वयंस्याद्योगसिद्धये । तथा ज्ञानमुपासीतयोगीयत्कार्यसाधकम्
ज्ञानानां बहुता येयं योगविघ्नकरी हि सा । इदं ज्ञेयमिदं ज्ञेयमिति यस्तृषितश्चरेत् ॥
अपिकल्पसहस्रायुर्नैव ज्ञेयमवाप्नुयात् । त्यक्तसङ्गो जितक्रोधोलब्धाहारोजितेन्द्रियः
पिधाय बुद्ध्या द्वाराणि मनो ध्याने निवेशयेत् । आहारंसात्त्विकंसेवेन्नतंयेनविचेतनः
स्यादयं तञ्च भुञ्जानो रौरवस्यप्रियातिथिः । वाग्दण्डःकर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च तेत्रयः

यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी यतिः स्मृतः ।

अनुरागं जनो याति परोक्षे गुणकीर्तनम् ॥ १३६ ॥

न बिभ्यति च सत्त्वानि सिद्धेर्लक्षणमुच्यते ॥ १३७ ॥

अलौल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वं गन्धः शुभो मूत्रपुरीषयोश्च ।

कान्तिः प्रसादः स्वरसौम्यता च योगप्रवृत्तेः प्रथमं हि चिह्नम् ॥ १३८ ॥

समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी शुचिस्तथैकान्तरतिर्जितेन्द्रियः।
समाप्नुयाद्योगमिमं महामना विमुक्तिमाप्नोति ततश्च योगतः॥ १३९॥
कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा भाग्यवती च तेन।
अबाह्यमार्गे सुखसिन्धुमग्नं लग्नं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥ १४०॥
विशुद्धबुद्धिः समलोष्टकाञ्चनः समस्तभूतेषु वसन्समो हि यः।
स्थानं परं शाश्वतमव्ययं च यतिर्हि गत्वा न पुनः प्रजायते॥ १४१॥
इदं मया योगरहस्यमुक्तमेवम्विधं गौतमः प्राप योगम्।
तेनैतच्च स्थापितं पार्थ! लिङ्गं सन्दर्शनादर्चनात्कल्मषघ्नम्॥ १४२॥
यश्चाऽऽश्विने कृष्णचतुर्दशीदिने रात्रौ समभ्यर्चति लिङ्गमेतत्।
स्नात्वा अहल्यासरसि प्रधाने श्रद्धाय सर्वं प्रविधाय भक्तितः॥ १४३॥
महोपकारेण विमुक्तपापः स याति यत्राऽस्ति स गौतमो मुनिः॥१४४॥
इदं मया पार्थ! तव प्रणीतं गुप्तस्य क्षेत्रस्य समासयोगात्।
माहात्म्यमेतत्सकलं शृणोति यः स्याद्विशुद्धः किमु वच्मि भूयः॥१४५॥
य इदं शृणुयाद्भक्त्या गौतमाख्यानमुत्तमम्। पुत्रपौत्रप्रियं प्राप्य स याति पदमव्ययम्॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे गौतमेश्वरमाहात्म्ये सविस्तरंयोगलक्षणवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५५॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारदार्जुनसम्वादे ब्रह्मेश्वरमोक्षेश्वरगर्भेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

नारद उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मेशं लिङ्गमुत्तमम्। यस्य स्मरणमात्रेण वाजपेयफलं भवेत्।

एकदा तु पुरा पार्थ! सृष्टिकामेन ब्रह्मणा । तपः सुचरितं घोरं सार्धवर्षसहस्रकम् ॥२
तपसा तेन सन्तुष्टः पार्वतीपतिशङ्करः । वरमस्मै ततः प्रादाल्लोककर्त्रे स्ववाञ्छितम्
ततो हृष्टः प्रमुदितः कृतकृत्यःपितामहः । ज्ञात्वा क्षेत्रस्य माहात्म्यं स्वयंलिङ्गंचकारह
चखान च सरः पुण्यं नाम्ना ब्रह्मसरः शुभम् । महीनगरकात्पूर्वं महापातकनाशनम् ॥

अस्य तीरे महालिङ्गं स्थापयामास वै विभुः ।
तत्र देवः स्वयं साक्षाद्विद्यते किल शङ्करः ॥ ६ ॥

पुष्करादधिकंतीर्थं ब्रह्मेशं नाम फाल्गुन !। तत्र स्नात्वानरोभक्त्यापिण्डदानंसमाचरेत्
दानं चैव यथाशक्त्या कार्तिक्यां च विशेषतः । देवं प्रपूजयेद्भक्त्या ब्रह्मेशं हृष्टमानसः॥
पितरस्तस्य तुष्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् । पुष्करेषु च यत्पुण्यं कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ॥६
गङ्गादिपुण्यतीर्थेषुयत्फलंप्राप्यतेनरैः । तत्फलंसमवाप्नोतितीर्थस्याऽस्याऽवगाहनात्
मोक्षलिङ्गस्यमाहात्म्यं शृणुपार्थ!महाद्भुतम् । मया स्थानहितार्थंचसमाराध्यमहेश्वरम्
स्थापितं प्रवरं लिङ्गं नाम्ना मोक्षेश्वरं हरम् । दर्भाग्रेण ततः पार्थ कूपं खनितवानहम्
प्रसाद्य लोककर्तारं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् । कमण्डलोर्ब्रह्मणश्च समानीता सरस्वती ॥

कूपेऽस्मिन्मोक्षनाथस्य लोकानां प्रेतमुक्तये ।
कार्तिकस्य तु मासस्य शुक्लपक्षे चतुर्दशी ॥ १४ ॥

कूपे स्नात्वा नरस्तस्यां तिलपिण्डं समाचरेत् । प्रेतानुद्दिश्यनियतंमोक्षतीर्थफलंभवेत्
कुले न जायते तस्य प्रेतःपार्थ!नसंशयः । प्रेतामोक्षंप्रगच्छन्ति तीर्थस्याऽस्यप्रभावतः
जयादित्यकूपवरे नरः स्नात्वा प्रयत्नतः । गर्भेश्वरं नमस्कृत्य न स गर्भेषु मज्जति ॥१७

इदं मया पार्थ ! तव प्रणीतं गुप्तस्य क्षेत्रस्य समासयोगात् ।
माहात्म्यमेतत्सकलं शृणोति यः स्याद्विशुद्धः किमु वच्मि भूयः ॥ १८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे ब्रह्मेश्वरमोक्षेश्वरगर्भेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम
षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

———

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नीलकण्ठमाहात्म्यवणनम्

नारद उवाच

ततो विप्रा नारदश्च समाराध्य महेश्वरम् । महीनगरके पुण्ये स्थापयामास शङ्कर
लोकानां च हितार्थाय केदारं लिङ्गमुत्तमम् । अत्रीशादुत्तरे भागे महापातकनाशन
अत्रिकुण्डे नरः स्नात्वा श्राद्धंकृत्वायथाविधि । अत्रीशंच नमस्कृत्यकेदारंयःप्रपश्यति
मातुः स्तन्यं पुनर्नैव स पिबेन्मुक्तिभाग्भवेत् । ततो रुद्रो नीलकण्ठंनारदाय महात्मने
स्वयं दत्त्वा स्वयं तस्थौ महीनगरके शुभे । कोटितीर्थे नरःस्नात्वानीलकण्ठंप्रपश्यति
जयादित्यं नमस्कृत्य रुद्रलोकमवाप्नुयात् । जयादित्यंपूजयन्ति कूपेस्नात्वानरोत्तमाः
न तेषां वंशनाशोऽस्ति जयादित्यप्रसादतः । इदं ते कथितं पार्थ! महीनगरकस्य
आख्यानं सकलं श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे नीलकण्ठमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

महीसागरमाहात्म्यवर्णने तीर्थानांसर्वोत्तमत्वेनिर्णयायब्रह्मसमीपेगमनं ब्रह्मणा
सर्वश्रेष्ठतीर्थायार्घ्यप्रदानावसरेपुलस्त्यं स्वसुतम्प्रतिअर्घ्यपात्रानयनायकथनं
सर्वश्रेष्ठतीर्थकृते स्ववाचामहीसागरतीर्थद्वारास्वश्लाघावर्णन धर्मराजेन
महीसागरकृते श्रेष्ठताविषयेऽसहमतिप्रदर्शनं गुहसमागमनेनमहीसागर
स्थितस्यस्तम्भतीर्थस्यश्रेष्ठतास्वीकृतिरर्जुनस्ययात्रासमाप्तिश्च

अर्जुन उवाच

गुप्तक्षेत्रमिदं कस्मात्कस्माद्गुप्तश्च नारद । यस्यप्रभावः सुमहान्नैवकस्यापिसंस्थु

नारद उवाच

पुरातनीमत्र कथां गुप्तक्षेत्रस्य कारणे। शृणु पाण्डव! शापेन गुप्तमासीदिदं यथा ॥
पुरा निमित्ते कस्मिंश्चित्सर्वतीर्थाधिदेवताः। प्रणामायब्रह्मसदो ब्रह्माणं सहितायगुः
पुष्करस्य प्रभासस्य निमिषस्याऽर्बुदस्यच। कुरुक्षेत्रस्य क्षेत्रस्य धर्मारण्यस्य देवताः
वस्त्रापथस्य श्वेतस्य फल्गुतीर्थस्य चाऽपि याः।
केदारस्य तथाऽन्येषां क्षेत्राणां कोटिशोऽपि याः ॥ ५ ॥
सिन्धुसागरयोगस्य महीसागरकस्य च। गङ्गासागरयोगस्य अधिपाः शूकरस्य च
गङ्गारेवामुखीनां तु नदीनामधिदेवताः। शोणह्रदपुरोगाणां ह्रदानां चाधिदेवताः ॥
ते सर्वे सङ्घशो भूत्वा श्रैष्ठ्यज्ञानाय चाऽऽत्मनः।
समुपाजग्मुरमला महतीं ब्रह्मणः सभाम् ॥ ८ ॥
तत्र तीर्थानिसर्वाणिसमायातानिवीक्ष्यसः। उत्तस्थौसहितःसर्वैःसभासद्भिःपितामहः
प्रणम्य सर्वतीर्थेभ्यः प्रबद्धकरसम्पुटः। तीर्थानि भगवानाह विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥
अद्य नः सद्म सकलं युष्माभिरतिपावितम्। वयंच पाविता भूयो युष्माकंदर्शनादपि
तीर्थानां दर्शनं श्रेयः स्पर्शनं स्नानमेवच। कीर्तनं स्मरणं चापिनस्यात्पुण्यंविनापरम्
महापापान्वितारौद्रास्त्वपियेस्युःसुनिष्ठुराः। तेऽपितीर्थैःप्रपूयन्तेकिंपुनर्धर्मसंस्थिताः
एवमुक्त्वा पुलस्त्यं स पुत्रमभ्यादिदेश ह। शीघ्रमर्घ्यं तीर्थहेतोः समानय यथाऽर्चये॥

पुलस्त्य उवाच

असङ्ख्यानीह तीर्थानि दृश्यन्तेपद्मसम्भव!। यथा दिशसि मां तात! अर्घ्यमेकमुपानये
धर्मप्रवचने श्लोको यत एष प्रगीयते ॥ १६ ॥
भवेयुर्यद्यसंख्याता अर्घ्ययोग्याःसमर्चने। ततस्तेषां वरिष्ठाय दातव्योऽर्घ्यः किलैकतः

ब्रह्मोवाच

साभिप्रायं साधु वत्सत्वया प्रोक्तमिदं वचः। एवं कुरुष्वैकमर्घ्यमानय त्वं सुशीघ्रतः

नारद उवाच

ततः पुलस्त्यो वेगेनसमानिन्येऽर्घ्यमुत्तमम्। तच्च ब्रह्मा करे गृह्यतीर्थान्याहेतिभारतीम्

सर्वैर्भवद्भिः संहत्य मुख्यस्त्वेकः प्रकीर्त्यताम् ।
तस्मै चाऽर्घ्यं प्रयच्छामि नैवं मामनयः स्पृशेत् ॥ २० ॥

तीर्थान्यूचुः

न वयं श्रेष्ठतां विद्मः कथञ्चन परस्परम् । अस्माद्धेतोश्च सम्प्राप्ताज्ञात्वादेहित्वमेव

ब्रह्मोवाच

नाऽहं वेद्मि श्रेष्ठताम्वःकथञ्चन नमोऽस्तुवः । सर्वे चाऽपारमाहात्म्यंस्वयमेवक्तु
यत्र गङ्गा गया काशी पुष्करं नैमिषं तथा । कुरुक्षेत्रं तथा रेवा महीसागरसङ्गम
प्रभासाद्यानि शतशो यत्र नस्तत्र का मतिः ॥ २४ ॥

नारद उवाच

एवमुक्ते पद्मभुवा कोऽपि नोवाच किञ्चन । चिरेणेदं ततः प्राह महीसागरसङ्गम
ममैनमर्घ्यं त्वं यच्छ चतुरानन! शीघ्रतः । यतः कोटिकलायांवा मम कोऽपिन पूर्व
यतश्चेन्द्रद्युम्नराज्ञा ताप्यमाना वसुन्धरा । सर्वतीर्थद्रवीभूता महीनामाऽभवन्नदी
सा च सर्वाणि तीर्थानि संयुक्तानि मया सह ।
सर्वतीर्थमयस्तस्मादस्मि ख्यातो जगत्त्रये ॥ २८ ॥
गुहेन च महालिङ्गं कुमारेश्वरमीश्वरम् । संस्थाप्य तीर्थमुख्यत्वं मम दत्तं महात्म
नारदेनाऽपि मत्तीरेस्थानंसंस्थाप्यशोभनम् । सर्वेभ्यःपुण्यक्षेत्रेभ्योदत्तंश्रैष्ठ्यंपुरा
एवं त्रिभिर्हेतुवरैर्ममैवाऽर्घ्यः प्रदीयताम् । गुणैकदेशेऽपि समं मम तीर्थं न वै पश्य
इत्युक्ते वचने पार्थ तीर्थराजेनभारत !। सर्वे नोचुःकिञ्चनाऽपि किं ब्रह्मावक्ष्यतीति
ततो ब्रह्मसुतो ज्येष्ठः श्वेतमाल्यानुलेपनः । दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य धर्मो वचनमब्रवीत्
अहो कष्टमिदं कूक्तंतीर्थराजेनमोहतः । सन्तोऽपिन गुणावाच्याःस्वयंसद्भिःस्वका
स्वीयान्गुणान्स्वयं यो हि सम्पत्सु प्रक्षिपन्परान् ।
ब्रवीति राजसस्त्वेष ह्यहङ्कारो जुगुप्सितः ॥ ३५ ॥
तस्मादस्मादहङ्कारात्सतस्त्वप्येषु गुणेषु च । अप्रख्यातं ध्वस्तरूपमिदंतीर्थं भविष्य
स्तम्भतीर्थमितिख्यातं स्तम्भोगर्वःकृतोयतः । स्तम्भस्यहिफलंसद्योब्रह्मापिप्राप्

इत्युक्ते धर्मदेवेन हाहेति रव उत्थितः । ततः शीघ्रं समायातोयोगीशोऽहञ्च पाण्डव
गुहस्ततो वचः प्राह धर्मदेवसमागमे । अयुक्तमेतच्छापोऽयं दत्तो यद्धर्म! धाष्ट्यतः॥
ब्रवीतु कोऽपि सर्वेषां तीर्थानां तेषु वर्तताम् । यद्यैश्वर्यं नार्हतेऽसौ महीसागरसङ्गमः
तिष्ठत्वात्मगुणो यच्च तीर्थराजेनवर्णितः । तत्रको विगुणोनाम मिथ्यावादोयतोगुणः

अहो न युक्तं पालानां यदि तेऽप्यविमृश्य च ।
एवमर्थान्करिष्यन्ति कं यान्ति शरणं प्रजाः ॥ ४२ ॥

एवमुक्ते गुहेनाऽथ धर्मो वचनमब्रवीत् । सत्यमेतद्यदर्होऽयं महीसागरसङ्गमः ॥४३ ॥

मुख्यत्वं सर्वतीर्थानामर्घं चाऽपि पितामहात् ।
किन्तु नाऽत्मगुणा वाच्याः सतामेतत्सदा व्रतम् ॥
परोक्षेऽपि स्वप्रशंसा ब्रह्माणमपि चालयेत् ॥ ४४ ॥

स्वप्रशंसां प्रकुर्वाणः पराक्षेपसमन्विताम् । किं दिवः पृथिवीं पूर्वं ययातिर्न पपात ह

यानि पूर्वं प्रमाणानि कृतानीशेन धीमता ॥ ४५ ॥

तानिसम्पालनीयानितानिकोऽतिक्रमेद्बुधः । तवपित्रासमादिश्ययदर्थंस्थापितावयम्
पालयामास एतच्च त्वं पालयितुमर्हसि । ईश्वराः स्वप्रमाणेन भवन्तो यदि कुर्वते ॥
तदस्माभिरिदं युक्तं शासनं दिश्यतां परम् । एवमुक्त्वा स्वीयमुद्रां मोक्तुकामंवृषंतदा
अहं प्रस्तावमन्वीक्ष्य वाक्यमेतदुदैरयम् । नमो धर्माय महते विश्वधात्रे महात्मने ॥
ब्रह्मविष्णुशिवैर्नित्यंपूजितायाऽघनाशिने । यदिमुद्रांभवान्धर्म! परित्यक्ष्यतिकर्हिचित्
तदस्माकं कुतो भावो मा विश्वं नाशय प्रभो । योगीश्वरंगुहंचापिसम्मानयितुमर्हसि

शिववन्माननीयो हि यतः साक्षाच्छिवात्मजः ।
त्वां च देवो गुहः स्वामी सम्मानयितुमर्हति ॥ ५२ ॥

युवयोरैक्यभावेन सुखं जीवेदिदं जगत् । त्वया प्रदत्तःशापोऽयंमाप्रत्याख्यातिलक्षणः

अनुग्रहश्च क्रियतां तीर्थराजस्य मानद !॥ ५४ ॥

एवमुच्चरमाणं मां प्रशस्याऽऽहाऽपि पद्मभूः । साध्वेतन्नारदेनोक्तं धर्मैतद्वचनं कुरु ॥
सम्मानय गुहं चाऽपि गुहः स्वामी यतोहि नः । एवमुक्ते ब्रह्मणाचधर्मो वचनमब्रवीत्

नमो गुहाय सिद्धाय किङ्करायस्यतेवयम् । मदीयां स्कन्द ! विज्ञप्तिं नाथेनामयचा
स्तम्भादेतन्महातीर्थमप्रसिद्धं भविष्यति । स्तम्भतीर्थमिति ख्यातंसुप्रसिद्धंभविष्य
स्तम्भतीर्थमिति ख्यातं सर्वतीर्थफलप्रदम् । यश्चाऽत्र स्नानदानादिप्रकरिष्यतिमा

यथोक्तश्च फलं तस्य स्फुटं सर्वं भविष्यति ।
शनिवारे ह्यमावास्या भवेत्तस्याः फलं च यत् ॥ ६० ॥

महीसागरयात्रायां भवेत्तच्चाऽवधारय । प्रभासदशयात्राभिः सप्तभिः पुष्करस्य
अष्टाभिश्च प्रयागस्य तत्फलं प्रभविष्यति । पञ्चभिःकुरुक्षेत्रस्यनकुलीशस्य च त्रिभिः

अर्बुदस्य च यत्षड्भिस्तत्फलं च भविष्यति ।
वस्त्रापथस्य तिसृभिर्गङ्गायाः पञ्चभिश्च यत् ॥ ६३ ॥
कूपोदर्याश्चतुर्भिश्च तत्फलं प्रभविष्यति ।
काश्याः षड्भिस्तथा यत्स्याद्गोदावर्याश्च पञ्चभिः ॥ ६४ ॥

तत्फलं स्तम्भतीर्थे वै शनिदर्शे भविष्यति । एवं दत्ते वरे स्कन्दस्तदा प्रीतमना
ब्रह्माऽपि स्तम्भतीर्थाय ददावर्घं समाहितः । ददौ च सर्वतीर्थानां श्रेष्ठत्वममित
तीर्थानि च गुहं नाथं सम्मान्य विससर्ज सः । एवमेतत्पुरा वृत्तं गुप्तक्षेत्रस्यकार
भूयश्चाऽपि प्रसिद्धयर्थं प्रेषिताप्सरसोऽत्रमे । विमोक्षिता ग्राहरूपास्त्वया ताश्चकु
यतो धर्मस्य सर्वस्य नानारूपैः प्रवर्त्ततः । परित्राणाय भवतः कृष्णस्य च भवो
तदिदं वर्णितं तुभ्यं सर्वतीर्थफलं महत् । श्रुत्वैतदादितः पूर्वं पुमान्पापैः प्रमुच्यते

सूत उवाच

श्रुत्वेति विजयो धीमान्प्रशशंस सुविस्मितः ।
विसृष्टो नारदाद्यैश्च द्वारकां प्रति जग्मिवान् ॥ ७१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे महीसागरमाहात्म्यवर्णनेऽर्जुनतीर्थयात्रापरिसमाप्ति-
वर्णनंनामाष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

———

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

घटोत्कचस्यकृष्णसम्मत्याप्राग्ज्योतिष्पुरम्प्रतिगमनम्

शौनक उवाच

अत्यद्भुतमिदं सूत ! गुप्तक्षेत्रस्य पावनम् । महन्माहात्म्यमतुलं कीर्तितं हर्षवर्धनम् ॥
पुनर्यत्सिद्धलिङ्गस्य पूर्वं माहात्म्यकीर्तने । इत्युक्तं यत्प्रसादेन सिद्धमातुस्तुसेत्स्यति
विजयोनाम पुण्यात्मा साहाय्याच्चण्डिलस्य च ।
को न्वसौ चण्डिलोनाम विजयोनाम कस्तथा ॥ ३ ॥
कथं च प्राप्तवान्सिद्धिंसिद्धमातुःप्रसादतः । एतदाचक्ष्व तत्त्वेन श्रोतुं कौतूहलं हि नः
सतां चरित्रश्रवणे कौतुकं कस्य नो भवेत् ॥

उग्रश्रवा उवाच

साधु पृष्टमिदं विप्रा दूरान्तरितमप्युत ॥ ५ ॥
श्रुतां द्वैपायनमुखात्कथांवक्ष्यामिचाऽत्र वः । पुरा द्रुपदराजस्यपुत्रीमासाद्यपाण्डवाः
धृतराष्ट्रमते पश्चादिन्द्रप्रस्थं न्यवेशयन् । रक्षिता वासुदेवेन कदाचित्तत्र पाण्डवाः ॥
उपविष्टाः सभामध्ये कथाश्चक्रुः पृथग्विधाः । देवर्षिपितृभूतानां राज्ञाश्चापि प्रकीर्त्तने
क्रियमाणेऽथ तत्राऽगाद्भीमपुत्रो घटोत्कचः । तं दृष्ट्वा भ्रातरःपञ्च वासुदेवश्चवीर्यवान्
उत्थाय सहसा पीठादालिलिङ्गुर्मुदा युताः । स च तान्प्रणतः प्रह्वो ववन्दे भीमनन्दनः
साशिषं च ततोराज्ञास्वोत्सङ्गउपवेशितः । आघ्राय स्नेहतो मूर्ध्निप्रोक्तश्च जनसंसदि

युधिष्ठिर उवाच

कुत आगम्यतेपुत्र! क्व चाऽयंविह्रतस्त्वया । कालःकच्चित्सुखं राज्यं कुरुषे मातुलंतव
कच्चिद्देवेषु विप्रेषु गोषु साधुषु सर्वदा । हैडम्बे नाऽपकुरुषे प्रियमेतद्धरैश्च नः ॥१३॥
हिडम्बस्य वनंसर्वं तस्ययये सैन्यराक्षसाः । पाल्यमानास्त्वयासाधोवर्धन्तेजनक्षेमकाः
कच्चिन्नन्दति ते माता भृशं नः प्रियकारिणी ।

कन्यैव या पुरा भीमं त्यक्त्वा मानं पतिं श्रिता ॥ १५ ॥

इतिपृष्टोधर्मराज्ञास्मयन्हैडम्बिरब्रवीत् । हते तस्मिन्दुराचारैमातुलेऽस्मिनियोजि
तद्राज्यं शासनेस्थाप्यदुष्टान्निघ्नंश्चराम्यहम् । माताकुशलिनीदेवीतपोदिव्यमुपाश्रि
मामुवाच सदा पुत्र! पितॄणां भक्तिकृद्भव । सोऽहंमातुर्वचः श्रुत्वा मेरुपादात्समाग

प्रणामायैव भवतां भक्तिप्रह्वेण चेतसा ।

आत्मानं च महत्यर्थे कस्मिंश्चित्तु नियोजितम् ।

भवद्भिरहमिच्छामि फलं यस्मादिदं महत् ॥ १६ ॥

यदाज्ञापालनंपुत्रः पितॄणां सर्वदाचरेत् । अथोर्ध्वलोकान्स जयेदिहजायेतकीर्ति

सूत उवाच

इत्युक्तवन्तं तं राजा परिरभ्य पुनःपुनः । उवाच धर्मराट् पुत्रमानन्दाश्रुः सगद्गद

त्वमेव नो भक्तिकारी सहायश्चाऽपि वर्तसे ॥ २२ ॥

एतदर्थं च हैडम्बे! पुत्रानिच्छन्ति साधवः । इहामुत्र तारयन्ते तादृशाश्चापि पुत्र
अवश्यं यादृशी माता तादृशस्तनयो भवेत् । माताच ते भक्तिमती दृढंनस्त्वंचता
अहो सुदुष्करं देवी कुरुते मे प्रिया वधूः । या भर्तृश्रियमुल्लङ्घ्य तप एव समा
नूनं कामेनभोगैर्वाकृत्यंचध्वा न मे मनाक् । या पुत्रसुखमन्वीक्ष्यपरलोकार्थमा
दुष्कुलीनाऽपि या भक्ता सूतेऽपत्यञ्च भक्तिमत् । कुलीनमेव तन्मन्येममेदं मतमु
एवं बहूनि वाक्यानि तानि तानि वदन्नृपः । धर्मराजः समाभाष्यकेशवंवाक्यमब्र
पुण्डरीकाक्ष जानासि यथाभीमादभूदयम् । जातमात्रस्तुयश्चासीद्यौवनस्थोमहा
अष्टानांदेवयोनीनांयतोजन्मचयौवनम् । सद्य एव भवेत्तस्मात्सद्योऽस्यासीच्चयौव
तदस्योचितदारार्थेसदाचिन्ताऽस्ति कृष्ण मे । उचितंबतहैडम्बेः क्व कलत्रंकरो
तद्भवान्कृष्ण! सर्वज्ञ त्रिलोकीमपिवेत्सिच । हैडम्बे रुचितांदारान्वक्तुमर्हसि य

सूत उवाच

एवमुक्तो धर्मराज्ञा क्षणं ध्यात्वा जनार्दनः । धर्मराजमिदं वाक्यं पदान्तरितमब्र

अस्ति राजन्प्रवक्ष्यामि दारानस्योचितां शुभाम् ।

साम्प्रतं संस्थिता रम्ये प्राग्ज्योतिषपुरे वरे ॥ ३४ ॥
सा च पुत्री मुरोः पार्थ ! दैत्यस्याऽद्भुतकर्मणः ।
योऽसौ नरकदैत्यस्य प्राणतुल्यः सखाऽभवत् ॥ ३५ ॥

स च मे निहतो घोरः पाशदुर्गसमन्वितः । नरकश्च दुराचारस्त्वमेतद्वेत्सि सर्वशः ॥
ततो हते मुरौ दैत्ये मया तस्य सुताव्रजत् । योद्धुंमामतिवीर्यत्वाद्घोराकामकटङ्कटा
तां ततोऽहं महायुद्धे खड्गखेटकधारिणीम् । अयोधयं महाबाणैः सुशार्ङ्गधनुषश्च्युतैः
खड्गेनचिच्छेदबाणान्मम साच मुरोःसुता । समागम्यच खड्गेनगरुडंमूर्ध्न्यताडयत्
स च मोहसमाविष्टो गरुडोऽभूदचेतनः । ततस्तस्या वधार्थाय मया चक्रं समुद्यतम्

चक्रं समुद्यतं दृष्ट्वा मया तस्मिन्रणाजिरे ।
कामाख्या नाम मां देवी पुरः स्थित्वा वचोऽब्रवीत् ॥ ४१ ॥

नैनां हन्तुं भवानर्हो रक्षैतां पुरुषोत्तम !। अजेयत्वं मया ह्यस्य दत्तं खड्गं च खेटकम्
बुद्धिरप्रतिमाचापिशक्तिश्चपरमा रणे । ततस्त्वयात्रिरात्रेऽपिनजिताऽऽसीन्मुरोःसुता
एवमुक्ते तदा देवीं वचनं चाऽहमब्रवम् । अयमेष निवृत्तोऽस्मि वारयैनां च त्वं शुभे!
ततश्चालिङ्ग्यतांभक्तां कामाख्यांवाक्यमब्रवीत् । भद्रे रणान्निवर्तस्वनायंहन्तुंकथञ्चन
शक्यः केनाऽपि समरेमाधवोरणदुर्जयः । नाऽभूदस्तिभविष्यो वा य एनंसंयुगेजयेत्
अपि वा त्र्यम्बकः पुत्रि! नैनं शक्तःकुतोऽन्यकः । तस्मादेनंनमस्कृत्यभाविनंश्वशुरंशुभे
रणादस्मान्निवर्तस्वतवोचितमिदंस्फुटम् । अस्यभ्रातुर्हिभीमस्यस्नुषात्वंचभविष्यसि
तस्मात्त्वं श्वशुरं भद्रे ! सम्मानय जनार्दनम् । नच शोकस्त्वयाकार्यःपितरंप्रतिपण्डिते
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्ममृतस्यच । बहवश्चाऽस्य वेत्तारो वदकेनाऽपिवार्यते

ऋषींश्च देवांश्च महासुरांश्च त्रैविद्यविद्यान्पुरुषान्नृपांश्च ।
कान्मृत्युरेको न पतेत काले परावरज्ञोऽत्र न मुह्यते क्वचित् ॥ ५१ ॥

श्लाघ्यएवहितेमृत्युःपितुरस्माज्जनार्दनात् । सर्वपातकनिर्मुक्तोगतोऽसौधामवैष्णवम्

एवं कामाख्यया प्रोक्ता सा च कामकटङ्कटा ।
त्यक्त्वा क्रोधं च सम्वृत्य गात्राणि प्रणता च माम् ॥ ५३ ॥

तामहं साशिषं चाऽपि प्रावोचं भरतर्षभ ! । अस्मिन्नेव पुरे तिष्ठ भगदत्तप्रपूजि
मया देव्या पृथिव्या च भगदत्तःकृतोनृपः । स ते पूजांबहुविधांकरिष्यतिस्वसुत
वसन्ती चाऽत्र तंवीरं हैडिम्बं पतिमाप्स्यसि ।
एवमाश्वास्य तां देवीं मौर्वीचाहंव्यसर्जयम् ॥ ५६ ॥
सा स्थिता च पुरे तत्र गतोऽहं शक्रसद्म च । ततो द्वारवतीं प्राप्यत्वयासहसमाग
एवमेषोचिता दारा हैडम्बेर्विद्यते शुभा । कामाख्ये च रणे घोरा या विद्युदिव भा
न च रूपं वर्णितं मे श्वशुरस्योचितं यतः । साध्वोर्हि नैतदुचितं सर्वस्त्रीणांप्रवर्ण
पुनरैकश्च समयः कृतस्तं शृणु यस्तया । योमां निरुत्तरां प्रश्ने कृत्वैव विजयेतयु
यो मे प्रतिबलश्चाऽपि स मे भर्ता भविष्यति । एवञ्चसमयं श्रुत्वा बहवोदैत्यराक्ष
तस्या जयार्थमगमंस्तेऽपि जित्वा हतास्तया । यो न एनांगतःपूर्वं न स भूयोन्व
वह्नेरिव प्रभां दीप्तां पतङ्गानां समुच्चयः । एवमेतादृशीं मौर्वीं जेतुमुत्सहते य
घटोत्कचो महावीर्यो भार्याऽस्य नियतं भवेत् ॥ ६४ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अलं सर्वगुणैस्तस्या यस्यास्त्वेको गुणो महान् ।
क्रियते किं हि क्षीरेण यदि तद्विषमिश्रितम् ॥ ६५ ॥
प्राणाधिकं भैमसेनिंकथंकेवलसाहसात् । क्षिपेयंतववाक्यानांशुद्धानांचाऽथकोवि
अन्याअपिस्त्रियः सन्ति देशेदेशे जनार्दन !। बह्वयस्तासांवरां काञ्चिद्योपितंवकु

भीम उवाच

सम्यगुक्तं केशवेन वाक्यं बह्वर्थमुत्तमम् । राज्ञा पुनः स्नेहवशाद्यदुक्तं तन्न भाति
कार्ये दुःसाध्य एव स्यात्क्षत्रियस्य पराक्रमः । करीन्द्रस्येव यूथेषुगजानां न सुगे
आत्माप्रख्यातिमानेयःसर्वथावीरपुङ्गवैः । साच ख्यातिःकथंजायेद्दुःसाध्यकर
न ह्यात्मवशगं पार्थ! हैडम्बेरस्य रक्षणम् । येन दत्तस्त्वं धात्रा स एनं पालयि
सर्वथोच्चपदारोहे यतःकार्यो विजानता । तन्न सिध्यति चेद्दैवान्नाऽसौदोषोविजा
यथा देवव्रतस्त्वेको जह्रे काशिसुताः पुरा । तथैक एवहैडम्बिमौर्वींप्राप्नोतुमा

अर्जुन उवाच

केवलं पौरुषपरं भीमेनोक्तमिदं वचः । अबलं दैवहेतुत्वात्प्रबलं प्रतिभाति मे ॥७४॥

न मृषा हि वचो ब्रूते कामाख्या या पुराऽब्रवीत ।

भीमसेनसुतः पाणिं तव भद्रे ! ग्रहीष्यति ॥ ७५ ॥

अनेन हेतुना यातु शीघ्रं तत्र घटोत्कचः । इति मे रोचते कृष्ण! तव किं ब्रूहि रोचते

कृष्ण उवाच

रोचते मे वचस्तुभ्यं भीमस्य च महात्मनः ।

न हि तुल्यो भैमसेनेर्बुद्धौ वीर्ये च कश्चन ॥ ७७ ॥

अन्तरात्माचभे वेत्ति प्राप्तामेवमुरोःसुताम् । तच्छीघ्रंयातुहैडम्बिस्त्वंच किंपुत्रमन्यसे

घटोत्कच उवाच

नहिन्याय्याःस्वकावक्तुंपूज्यानामग्रतोगुणाः । प्रवृत्ताएवभासन्तेसद्गुणाश्च रवेःकराः

सर्वथातत्करिष्यामिपितरोयेनमेऽमलाः । लज्जिष्यन्ति न संसत्सुमयापुत्रेणपाण्डवाः

एवमुक्त्वा महाबाहुरुत्थाय प्रणनाम तान् ।

जयाशीर्भिश्च पितृभिर्वर्द्धितो गन्तुमैच्छत ॥ ८१ ॥

तं गन्तुकाममाहेदमभिनन्द्य जनार्दनः । कथाकथनकाले मां स्मरेथास्त्वं जयावहम्

यथाबुद्धिंसुदुर्भेद्यांवर्धयामिबलंचते। इत्युक्त्वाऽऽलिङ्ग्यतंकृष्णोव्यससर्जतसाशिषम्

ततोहिण्डम्बातनयो महौजाः सूर्याक्षकालाक्षमहोदरानुगः ।

वियत्पथं प्राप्य जगाम तत्पुरं प्राग्ज्योतिषं नाम दिनव्यपाये ॥ ८४

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशितिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे बर्बरिकोपाख्याने घटोत्कचस्य प्राग्ज्योतिषपुरं प्रति गमनवर्णनंनामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

षष्टितमोऽध्यायः

घटोत्कचद्व रामौर्व्यां बर्बरीकपुत्रोत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

सोऽथ प्राग्ज्योतिषाद्बाह्येमहोपवनसंस्थितम्। सहस्रभूमिकंगेहमपश्यतहिरण्म...
वेणुवीणामृदङ्गानांनिःस्वनैः परिपूरितम्। दशसाहस्रसंख्याभिश्चेटीभिः परिपूर्ण...
आयाद्भिःप्रतियाद्भिश्चभगदत्तस्यकिङ्करैः। किमिच्छन्तीतिभगिनीपृच्छकैरभिपूरि...
तदासाद्य सा हैडम्बिर्मेरोःशिखरवद्गृहम्। द्वारिस्थितांसन्ददर्शकर्णप्रावरणांसं...
तामाह ललितंवीरोभद्रेसा क मुरोःसुता। कामुकोद्रष्टुमिच्छामिदूरदेशागतोऽस्मि...

कर्णप्रावरणोवाच

कितवास्तिमहाबाहोतयामौर्व्याप्रयोजनम्। कोटिशोनिहताःपूर्वंतयाकामुककामुक...
तव रूपमहं दृष्ट्वा घटहासं सदोत्कचम्। प्रणम्य पादयोर्वीर स्थिता ते वचनर्द्धा...
तन्मयासहमोदस्वभुङ्क्ष्वभोगाँश्चकामुक!। दास्यास्म्यनुचराणांतेत्रयाणांचप्रियाव...

घटोत्कच उवाच

कल्याणि किम्वदन्ती ते प्रमुक्ता स्वोचिता शुभे!। पुनर्नैतद्वचस्तुभ्यंविशतेममचेत...
वामः कामो यतो भद्रे यस्मिन्नुपनिबद्ध्यते। सचाऽत्र नैव बध्नाति तद्वयंकिंप्रकु...
अद्य ते स्वामिनीदृष्टाजितावाक्रीडतेमया। तयावाविजितोयास्येपूर्वेषांकामिनांपरि...
कर्णप्रावरणे तस्माच्छीघ्रमेव निवेद्यताम्। यथादर्शनमात्रेण पूजयन्त्यतिथिं खलु...
इति भैमेर्वचः श्रुत्वा प्रस्खलन्तीनिशाचरी। प्रसादशिखरस्थांतांमौर्वीमेवंवचोऽब्र...
देवि!कोऽपियुवाश्रीमांस्त्रैलोक्येष्वमितप्रभः। कामातिथिस्तवद्वारिवर्तते दिशतस्...

कामकटङ्कटोवाच

मुच्यतां शीघ्रमेवाऽसौ किमर्थं वा विलम्बसे। कदाचिद्दैवसङ्गत्यासमयोमेऽभिपूर...
इत्युक्तवचनाच्चेटीप्राप्यावोचद्घटोत्कचम्। व्रजशीघ्रंकामुकत्वंतस्यास्मृत्योश्चसन्नि...

इत्युक्तः स प्रहस्यैव तत्रोत्सृज्य स्वकानुगान्। प्रविवेश गृहं भैमिःसिंहोमेरुगुहामिव
स पश्यञ्छुकसङ्घातान्पारावतगणांस्तथा।
सारिकाश्च मदोन्मत्ताश्चेटीस्तां चाऽप्यपश्यत ॥ १८ ॥
रूपेण वयसा चैव रतेरपि रतिङ्करीम्। आन्दोलकसुखासीनां सर्वाभरणभूषिताम् ॥
तां विद्युतमिवोन्नद्धांदृष्ट्वा भैमिरचिन्तयत्। अहो कृष्णेन पित्रा मेनिर्दिष्टेयंममोचिता
न्याय्यमेतत्कृते पूर्वं नष्टायत्कामिनां गणाः। शरीरक्षयपर्याप्तं क्षीयतेयदिकामिनाम् ॥
कामिनीनां कृते येषां क्षीयते गणनाऽत्रका। एवं बहुविधंकामी चिन्तयन्नाह भीमभूः
निष्ठुरैवज्रहृदये प्राप्तोऽहमतिथिस्तव। उचितां तत्सतां पूजां कुरु या ते स्थिता हृदि
इतिहैडम्बिवचनंश्रुत्वाकामकटङ्कटा। विस्मिताऽभूत्तस्य रूपात्स्वंनिनिन्दचबालिशम्
धिगहं यन्मया पूर्वं समयः स कृतोऽभवत्।
न कृतोऽभूद्यदि पुरा अभविष्यदसौ पतिः ॥ २५ ॥
इति सञ्चिन्तयन्तीसा भैमिं वचनमब्रवीत्। वृथा त्वमागतो भद्र!जीवन्याहिपुनःसुखी
अथ कामयसे मां त्वं तत्कथां शीघ्रमुच्चर। कथामाभाष्ययदिमांसन्देहेपातयिष्यसि
ततोऽहं वशगा जाता हतो वा स्वप्स्यसे मया ॥ २७ ॥

सूत उवाच

इत्युक्तवचनामेतां नेत्रोपान्तेन वीक्ष्य सः ॥ २८ ॥
स्मृत्वा चराचरगुरुं कृष्णमारब्धवान्कथाम्।
कस्याञ्चिदभवत्पत्न्यां युवा कोऽप्यजितेन्द्रियः ॥ २९ ॥
तस्यचैकासुताजज्ञेभार्यातस्यमृताऽभवत्। ततोबालकिकांपुत्रींररक्ष च पुपोष च ॥
सा यदाभूद्यौवनगा व्यञ्जितावयवा शुभा। प्रोल्लसत्कुचमध्याङ्गी प्रोल्लसन्मुखपङ्कजा
तदाऽस्य कामलुलितमालानंप्रजहौमनः। प्रोवाच तां च तनयां समालिङ्ग्यदुराशयः
प्रातिवेश्मकपुत्रीत्वंमयाऽऽनीयाऽत्रपोषिता। भार्यार्थंसुचिरं कालंतत्कार्यंसाधयप्रिये
इत्युक्ता सा च मेने च तत्तथैववचस्तदा। पतित्वेनच भेजे तं भार्यात्वेन स तां तथा
ततस्तस्यां सुता जज्ञे तस्मान्मदनरासभात। वदसातस्यभवतिकिंदौहित्रीसुताऽथवा

एनं प्रश्नं मम ब्रूहि शीघ्रं चेच्छक्तिरस्ति ते ॥३५॥

सूत उवाच

इति प्रश्नं सा च श्रुत्वाऽचिन्तयद्‍बहुधा हृदि ॥ ३६ ॥

न च पश्यतिनिर्द्धारं प्रश्नस्याऽस्यकथञ्चन । ततःप्रश्नेन विजिता स्वांशक्तिंसमुपाददे

अताडयद्रुकमरज्जुंकराभ्यांदोलकस्यच । ततोरक्षांसिनिष्पेतुः कोटिशो भीषणान्यपि

सिंहव्याघ्रवराहाश्चमहिषाश्चित्रकामृगाः । समीक्ष्यतानसंख्येयान्खादितुंधावतोरुषा

अवादयन्नखौ भैमिः कनिष्ठाङ्गुष्ठजौ हसन् । ततो विनिःसृतास्तत्रद्विगुणाराक्षसादयः

तैर्मौर्वीनिर्मिताः सर्वे क्षणादेव स्म भक्षिताः । विजितायांस्वशक्तौच वलशक्तिमथाददे

उत्थाय सहसा दोलात्खड्गमादातुमैच्छत । उत्तिष्ठन्तीं च तां भैमिरनुसृत्यजवाद्धि

केशेष्वादाय सव्येन पाणिनाऽपातयद्भुवि ।

ततः कण्ठे सव्यपादं दत्त्वाऽऽदाय च कर्तिकाम् ॥ ४३ ॥

दक्षिणेन करेणाऽस्याश्छेत्तुमैच्छत नासिकाम् ।

विस्फुरन्ती ततो मौर्वी मन्दमाह घटोत्कचम् ॥ ४४ ॥

प्रश्नेन शक्त्या च वलेन नाथ ! त्रिधा त्वयाऽहं विजिता नमस्ते ।

तन्मुञ्च मां कर्मकरी तवाऽस्मि समादिश त्वं प्रकरोमि तच्च ॥ ४५ ॥

घटोत्कच उवाच

यद्येवं तर्हि मुक्ताऽसि भूयोदर्शय यद्‍बलम् । एवमुक्त्वामुमोचैनांसुक्ताचाहप्रणम्यसा

जानामि त्वां महाबाहोवीरंशक्तिमतांवरम् । सर्वराक्षसभर्तारंत्रैलोक्येऽमितविक्रम

गुह्यकाधिपतिस्त्वं हि कालनाभ इति स्मृतः । षष्टिकोटिपतिर्जातो यक्षरक्षाकृतेभुवि

इति मां प्राहकामाख्या सर्वं तत्संस्मराम्यहम् । इदं गेहं सानुगंमेदत्तंमयाऽऽत्मनातव

समादिश प्राणनाथ ! कमादेशं करोमि ते ।

घटोत्कच उवाच

प्रच्छन्नस्तस्य घटते न विवाहः कथञ्चन ॥ ५० ॥

मौर्वि! यस्य हि वर्तन्ते पितरौ बान्धवास्तथा । तन्मांशीघ्रंवहशुभेशक्रप्रस्थायसम्प्रति

अयंकुलक्रमोऽस्माकंयद्भार्यापतिमुद्वहेत् । तत्रानुज्ञांसमासाद्य परिणेष्यामि त्वामहम्
भगदत्तमथो नाथं ततो मौर्वीन्यवेदयत् । समादाय बहुद्रव्यं विससर्जाऽथभ्रातरम् ॥
ततः पृष्ठिं समारोप्य घटोत्कचमनिन्दिता । नाना द्रव्यपरीवारा शक्रप्रस्थं समाव्रजत्
ततोऽसौ वासुदेवेन पाण्डवैश्चाऽभिनन्दितः । शुभेलग्नेपाणिमस्याजगृहेभीमनन्दनः॥

कुरूणां राक्षसानां च प्रोक्तोत्तमविधानतः ।
उद्वाह्य तां तद्धनैश्च तर्पयामास पाण्डवान् ॥ ५६ ॥

कुन्ती च द्रौपदी चोभे मुमुदाते नितान्ततः । मङ्गलान्यस्यचक्राते मौर्व्याश्चधनतर्पिते
ततो विवाहे निर्वृत्तेप्रतिपूज्यघटोत्कचम् । भार्ययासहितंराजास्वराज्यायसमादिशत्
मौर्व्याऽऽज्ञांशिरसागृह्यहैडम्बिभार्ययाऽन्वितः।शुभंहिडम्बस्यवनेस्वराज्यंसमुपाव्रजत्
ततो राक्षसयोषाभिर्वीरकांस्यैः प्रवर्धितः । महोत्सवेन महता स्वराज्ये प्रमुमोद सः
ततो वनेषु चित्रेषु निम्नगापुलिनेषु च । रेमे सह तया भैमिर्मन्दोदर्येव रावणः॥६१॥
एवं विक्रीडतस्तस्य गर्भो जज्ञे महाद्युतेः । हैडम्बैराक्षसव्याघ्राद्बालसूर्यसमप्रभः ॥

स जातमात्रो ववृधे क्षणाद्यौवनगोऽभवत् ।
नीलमेघचयप्रख्यो घटास्यो दीर्घलोचनः ॥ ६३ ॥

ऊर्ध्वकेशश्चोर्ध्वरोमा पितरौप्रणतोऽब्रवीत् । प्रणमामि युवांचोभौजातस्यपितरौगुरू
भवतोर्हिप्रियंकृत्वाअनृणःस्यांसदाह्यहम् । भवद्भ्यांदत्तमिच्छामिअभिधानंयथात्मनः
अतः परं तु यच्छ्रेयः कर्तव्यंप्रोन्नतिप्रदम् । ततो भैमिस्तमालिङ्ग्य पुत्रं वचनमब्रवीत्
बर्बराकारकेशत्वाद्बर्बरीकाभिधोभवान् । भविष्यतिमहाबाहो!कुलस्याऽऽनन्दवर्धनः

श्रेयश्च ते यत्परमं दृढं च तत्कीर्यते बहुधा विप्रमुख्यैः।
प्रक्ष्यावहे तद्यदुवंशनाथं गत्वा पुरीं द्वारकां वासुदेवम् ॥ ६८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे बर्बरिकोपाख्याने घटोत्कचस्य मौर्वीसकाशाद्बर्बरीको-
त्पत्ति वर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

महाविद्यासाधने गणेश्वरकल्पवर्णनम्

सूत उवाच

ततो घटोत्कचोमुक्त्वातत्रकामकटङ्कटाम् । पुत्रेणाऽनुगतोधीमान्वियताद्वारकांययौ
आगच्छन्तं च तं दृष्ट्वा राक्षसंराक्षानुगम् । द्वारकावासिनो योधाश्चक्रुरत्युल्बणंरवम्
ग्रामेग्रामेसुसन्नद्धा नवलक्षमिता रथाः । राक्षसौ द्वौ समायातौपात्येतांविशिखैरिति
तान्गृहीतायुधान्दृष्ट्वायदुवीरान्घटोत्कचः । प्रगृह्य विपुलं बाहुं जगौ तारस्वरेण सः
राक्षसं वित्त मां वीरा भीमपुत्रंघटोत्कचम् । सुप्रियंवासुदेवस्य प्रणामार्थमुपागतम्
निवेदयत मां प्राप्तं यादवेन्द्रायसात्मजम् । इति तस्यवचःश्रुत्वाते कृष्णाय न्यवेदयन्
आह देवः सभास्थश्चशीघ्रमत्राऽऽव्रजत्वसौ । ततः प्रवेशयामासुर्द्वारकांतेघटोत्कचम्
सपुत्रःसोऽपिरम्याणिवनान्युपवनानिच । क्रीडाशैलांश्चहर्म्याणिसम्पश्यन्नागतःसभाम्
स तत्र उग्रसेनं च वसुदेवं च सात्यकिम् । अक्रूररामप्रमुखान्ववन्दे कृष्णमेव चाथ

तं पादयोर्निपतितं समालिङ्ग्य सहाऽऽत्मजम् ।
साशिषं स्वसमीपस्थमुपवेश्येदमब्रवीत् ॥ १० ॥

पुत्र! राक्षसशार्दूल! कुरूणां कुलवर्धन !। कुशलं सर्वतः कच्चित्किमर्थस्ते समागमः।

घटोत्कच उवाच

देव युष्मत्प्रसादेन सर्वतः कुशलं मम । श्रूयतां कारणं स्वामिन्यदर्थमहमागतः।
देवोपदिष्टभार्यायां जातोऽयं तनयो मम । सचप्रश्नंवक्ष्यति त्वां श्रूयतामागतस्तव

श्रीकृष्ण उवाच

वत्स!मौर्वेय ब्रूहि त्वंसर्वंपृच्छयदिच्छसि । यथा घटोत्कचोमह्यंसुप्रियश्च तथाभवान्

बर्बरीक उवाच

प्रणम्यत्वामादिदेवंमनोबुद्धिसमाधिभिः । प्रक्ष्यामिकेनश्रेयःस्याज्जन्तोर्जातस्यमाधव

केचिच्छ्रेयो धर्ममाहुरैश्वर्यंत्यागभोजनम् । केचिद्दमं तपो द्रव्यं भोगान्मुक्तिञ्च केचन
तदेवं शतसंख्येषु श्रेयस्तु पुरुषोत्तम !। मम चैवं कुलस्याऽस्य श्रेयो यद्ब्रूहिनिश्चितम्

श्रीकृष्ण उवाच

वत्स पृथक्पृथक्प्रोक्तं वर्णानां श्रेय उत्तमम् । ब्राह्मणानां तपोमूलं दमोऽध्ययनमेवच
धर्मप्रकटनं चाऽपि श्रेय उक्तं मनीषिभिः । बलंसाध्यं पूर्वमेव क्षत्रियाणां प्रकीर्तितम्
दुष्टानां शासनं चाऽपि साधूनां परिपालनम्। पाशुपाल्यंचवैश्यानां कृषिर्विज्ञानमेवच
शूद्रस्यद्विजशुश्रूषातयाजीवन्वणिग्भवेत्। शिल्पैर्वा विविधैर्जीवेद्द्विजातिहितमाचरन्
भार्यारतिर्भृत्यपोष्टा शुचिः श्रद्धापरायणः । नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्न हापयेत् ॥
तद्भवान्क्षत्रियकुले जातोऽसि कुरु तच्छृणु । बलं साधय पूर्वं त्वमतुलं तेन शिक्षय
दुष्टान्पालय साधूंश्च स्वर्गमेवमवाप्स्यसि । बलं च लभ्यते पुत्र! देवीनां सुप्रसादतः
तद्भवान्बलप्राप्त्यर्थं देव्याराधनमाचर ॥ २५ ॥

वर्वरीक उवाच

कस्मिन्क्षेत्रे च कां देवीं कथमाराधयाम्यहम् । एतत्प्रसादप्रवणं मनः कृत्वा निवेदय

सूत उवाच

इति पृष्टः क्षणं ध्यात्वाप्राहदामोदरोविभुः । वत्स! क्षेत्रंप्रवक्ष्यामियत्रतप्स्यसितत्तपः
गुप्तक्षेत्रमिति ख्यातं महीसागरसङ्गमे ॥ २७ ॥
तत्र त्रिभुवने याश्च सन्ति देव्यःपृथग्विधाः । नारदेनसमानीतास्ताश्चैवयंसुमहात्मना
चतस्रस्तस्य दिग्देव्यो नवदुर्गाश्च सन्ति याः ।
समाधाराय ता गत्वा तासामैक्यं हि दुर्लभम् ॥ २९ ॥
नित्यं पूजय ताः पुत्र! पुष्पधूपविलेपनैः । स्तुतिभिश्चोपहारैश्च यथा तुष्यन्ति तास्तव
तुष्टासु देवीषु बलं धनञ्च कीर्तिश्च पुत्राः सुभगाश्च दाराः ।
स्वर्गस्तथा मुक्तिपदं च सत्सुखं न दुर्लभं सत्यमेतत्तवोक्तम् ॥ ३१ ॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वा वर्वरीकं कृष्णः प्राह घटोत्कचम् । घटोत्कचार्य!पुत्रस्ते दृढं सुहृदयोह्यसौ

तस्मात्सुहृदयेत्येवंदत्तंनाम मया द्विकम् । एवमुक्त्वासमालिङ्ग्यसन्तर्प्यविविधैर्धनैः
गुप्तक्षेत्राय भगवान्बर्बरीकं समादिशत् । सोऽथ कृष्णं नमस्कृत्यपितरंयादवांश्चतान्
अनुज्ञाप्य च तान्सर्वान्गुप्तक्षेत्रं समाव्रजत् । घटोत्कचोऽपिकृष्णेनविसृष्टःस्ववनंययौ

स्मरन्पुत्रगुणान्पत्न्या स्वराज्यं समपालयत् ।

ततः सुहृदयो धीमान्दग्धस्थल्यां कृताश्रमः ॥ ३६ ॥

त्रिकालं पूजयामास देवीः कर्मसमाधिभिः । नित्यं पुष्पैश्च धूपैश्च उपहारैःपृथग्विधैः
तस्याऽऽराधयतो देव्यस्तुतुषुर्हायनैस्त्रिभिः । ततःप्रत्यक्षतो भूत्वाबलात्तस्यमहात्मनः
बलं यत्त्रिषुलोकेषु कस्यचिन्नास्तिदुर्लभम् । ऊचुश्चकश्चित्कालंत्वंवसाऽत्रैवमहामते

सङ्गत्या विजयस्व त्वं भूयः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ।

इत्युक्तः सर्वदेवीभिः स तत्रैव व्यवस्थितः ॥ ४० ॥

आजगामाऽथविजयोनाम्नामागधब्राह्मणः । ससर्वांपृथिवींकृत्वापादाक्रान्तांद्विजोत्तमः
काश्यां विद्याबलं प्राप्य साधनार्थमुपाययौ । गुहेश्वरमुखान्येष सप्तलिङ्गान्यपूजयत्
आराधयामास चिरंदेवीर्विद्याफलाप्तये । ततस्तुष्टास्तस्य देव्यः स्वप्ने प्रोचुरिदंवचः
विद्यांसाधय त्वंसाधोसिद्धमातुःपुरोऽङ्गणे । अयं भक्तः सुहृदयःसाहाय्यंतेकरिष्यति

ततस्तद्वचनं श्रुत्वा विजयः स्वप्नमध्यतः ।

उत्थाय गत्वा देव्यास्तं वव्रे भीमात्मजात्मजम् ॥ ४५ ॥

सोऽपिदेवीवचःश्रुत्वामेनेसाहाय्यकारणम् । ततःकृष्णचतुर्दश्यामुपोष्यविजयःशुचिः

स्नात्वाऽभ्यर्च्यैव लिङ्गानि देवीश्चैवाऽर्चयत्पृथक् ।

कृत्वा स्नानमुपोष्यैव बर्बरीकोऽन्तिकेऽभवत् ॥ ४७ ॥

प्रथमायां ततो रात्रौययौसिद्धाम्बिकापुरः । मण्डलं तत्र कृत्वा च भगाकारं करान्वितम्
अष्टदिक्ष्वष्टकीलांश्च निखन्यैव ससूत्रकान् । कृष्णाजिनधरो भूत्वा बर्बरीकसमन्वितः
शिखामाबद्धयदिग्बन्धंकृत्वारेभेततोविधिम् । मध्येमण्डलस्याऽऽपिकुण्डेशुभ्रेत्रिमेखले
समर्प्यैच ततःखड्गं खादिरंमन्त्रतेजितम् । संस्थाप्यकीलानभितोबर्बरीकमथाऽब्रवीत्

शुचिर्विनिद्रः सन्तिष्ठ स्तवं देव्याः समुद्गिरन् ।

यावत्कर्म करोम्येष यथा विघ्नं न जायते ॥ ५२ ॥

इत्युक्ते संस्थिते तत्र बर्बरीके महाबले। विजयः शोषणं दाहं प्लावनं कृतवान्यमी ॥
ततः सुखासनो भूत्वा गुरुभ्यो नमः इति। मन्त्रमष्टोत्तरशतंजप्त्वागुरुभ्यःप्रणम्यच

ततो गणेश्वरविधानमारब्धवान् ॥ ५४ ॥

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं गणपतेः परम् ॥ ५५ ॥

सर्वकार्यकरं स्वल्पं महार्थं सर्वसिद्धिदम् ॥ ५६ ॥

ॐगांगींगूंगैंगौंगः सप्ताक्षरोऽयं महामन्त्रः। ॐगणपतिमन्त्रस्य गणको नाम ऋषिः विघ्नेश्वरो देवता गं बीजम् ॐशक्तिः पूजार्थे जपार्थे वा तिलकार्थे वा मनस ईप्सितार्थे होमार्थे वा विनियोग इति। साधकस्य पूर्वं तिलककरणम्।

ॐगां गणपतये नमः। इति तिलकस्योपरि अक्षतान्दद्यात् अनेन मन्त्रेण। ॐ गांगणपतये नमः। इति तिलकमन्त्रः। ॐगां गणपतये नमः। अनेन मन्त्रेण गणेशाय पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात्। मूलमन्त्रेणाऽत्रचन्दनगन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यपूगीफल ताम्बूलादिकं दद्यात्। अत ऊर्ध्वं मूलमन्त्रेण जपं कुर्यात्। अष्टोत्तरशतं सहस्रं लक्षं कोटिं चेति यथाशक्ति जप्त्वा दशांशहोमार्थे गणेशाग्नये आवाहयामीति अग्निमावाह्य। ॐगां गणपतये स्वाहेति मन्त्रेण गुग्गुलगुटिकाभिर्होमं विदध्याद्विनियोगं चेति गाणेश्वरो महाकल्पः।

य एवं सर्वविघ्नेषुसाधयेन्मन्त्रमुत्तमम्। सर्वविघ्नानिनश्यन्तिमनोऽभीष्टंच सिध्यति डाकिन्यो यातुधानाश्च प्रेताद्याश्च भयङ्कराः। शत्रूणां जायते नाशोवशीकरणमेव च

इमं गाणेश्वरं कल्पं विजानन्विजयोऽपि च।

तिलकं विधिना कृत्वा जप्त्वा चाऽष्टोत्तरं शतम् ॥ ५९ ॥

दशांशं गुटिकाहुत्वा पूज्य सिद्धिविनायकम्। सिद्धेयक्षेत्रपालस्य चक्रेपूजांततोनिशि

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे महाविद्यासाधने गणेश्वरकल्पवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

———

द्विषष्टितमोऽध्यायः

कालिकायारुद्राविर्भाववर्णनम्

शौनक उवाच

सूत! श्रुत्वा पुराऽस्माभिरुत्पत्तिर्गणपस्य च । क्षेत्रनाथः कथं जज्ञेवदैतच्छृण्वतांहि

सूत उवाच

यदा दारुकदैत्येन पीड्यमाना दिवौकसः । शिवं देव्या सहासीनंप्रणिपत्येदमब्रुवन्

देव दैत्येन घोरेणदुर्जयेनसुरासुरैः । पीडिता दारुकेणस्मःस्वस्थानाच्चापिच्याविताः

न विष्णुना न चन्द्रेण न चाऽन्येनाऽपि केनचित् ।
शक्यो हन्तुं स दुष्टात्मा अर्धनारीश्वरं विना ॥ ४ ॥

तेन सम्पीड्यमानानामस्माकं शरणं भव । इत्युक्त्वारुरुदुर्देवास्त्राहित्राहीतिचाऽब्रुवन्

ततोऽतिकृपयाविष्टहरकण्ठस्य कालिमाम् । गृहीत्वा पार्वतीचक्रे नारीमेकांमहाभयां

आत्मशक्तिं तत्र मुक्त्वा प्रोवाचेदं वचः शुभा ।
यस्मादतोव कालाऽसि नाम्नः त्वं कालिका भव ॥ ७ ॥

देवारिं च दुरात्मानं शीघ्रं नाशय शोभने । एवमुक्ता महारावा कालिका प्राप्यतं

रवेणैव मृतं चक्रे सानुगं स्फुटितहृदम् । ततोवन्तीश्मशानस्था महारावानमुञ्चत

यैरासन्विकला लोकास्त्रयोऽपि प्रमृता यथा । ततो रुद्रोबालरूपंकृत्वाविश्वकृतोवि

रुदंस्तस्याः समीपे चाप्यागताःप्रेतसद्मनि । रुदन्तं च ततोबालंकृत्वोत्सङ्गेकृपान्विता

कालिकाऽपाययत्स्तन्यं मा रुदेति प्रजल्पती ।
स्तन्यव्याजेन बालोऽपि पपौ क्रोधं तदङ्गजम् ॥ १२ ॥

योऽसौहरकण्ठभवविषादासीत्सुदुर्धरः । पीतक्रोधस्वभावेचसौम्यासीत्कालिकाद

बालोऽपि बालरूपं तत्त्यक्तुमैच्छत्कृतक्रियाः ॥ १४ ॥

ततो देवाः कालिकायाः शङ्कमानाःपुनर्भयम् । ऊचुर्मां बाल! बालत्वंपरित्यजक्षणांकुरु

बाल उवाच

न भेत्तव्यं कालिकायाः सौम्या देवी यतः कृता।
अस्ति चेद्भवतां भीतिरन्यान्स्रक्ष्यामि बालकान्।
चतुः षष्टिक्षेत्रपालानित्युक्त्वा सोऽसृजन्मुखात्॥ १६॥

प्राह तान्बालरूपांश्च बालरूपी महेश्वरः। स्वर्गेषु पञ्चविंशानां पातालेषु च तावताम्
चतुर्दशानां भूर्लोके वासो वः पालनं तथा। अयमेव श्मशानस्थोभवितायाचवाहनम्
नैवेद्यं भवतांराजमाषतन्दुलमिश्रकाः। अनभ्यर्च्यचयोयुष्मान्किञ्चित्कृत्यंविधास्यति
तस्य तन्निष्फलं भावि भुक्तं प्रेतैश्चराक्षसैः। इत्युक्त्वाभगवान्रुद्रस्तत्रैवाऽन्तरधीयत
क्षेत्रपालाःस्थिताश्चैवयथास्थानेनिरूपिता। इतिवःक्षेत्रपालानांसृष्टिःप्रोक्ता समासतः
आराधनं प्रवक्ष्यामि येन प्रीता भवन्ति ते॥ २२॥

ॐक्षां क्षेत्रपालाय नमः। इति नवाक्षरो महामन्त्रः॥ २३॥

अनेनाऽत्र चन्दनादिदत्त्वाराजमाषतण्डुलमिश्रकांश्च चतुः षष्टिकृतभागान्वटकान्निवेद्य
तावत्यो दीपिकास्तावन्ति पत्राणि पूगानि निवेद्यदण्डवत्प्रणम्यमहास्तुतिमेतांजपेत्

ॐऊर्ध्वकेशा विरूपाक्षा नित्यं ये घोररूपिणः।
रक्तनेत्राश्च पिङ्गाक्षाः क्षेत्रपालान्नमामि तान्॥ २५॥

अजरो ह्यापकुम्भश्च इडाचारस्तथैव यः। इन्द्रमूर्तिश्च कोलाक्ष उपपाद ऋतुंसनः॥
सिद्धेयश्चैव वलिको नीलपादेकदंष्ट्रिकः। इरापतिश्चाऽघहारी विघ्नहारी तथाऽन्तकः॥
ऊर्ध्वपादः कम्बलश्च खञ्जनः खर एव च। गोमुखश्चैव जङ्घालो गणनाथश्च वारणः॥
जटालोऽप्यजटालश्चनौमिस्वःक्षेत्रपालकान्। ऋकारोहठकारीचटंकपाणिःखणिस्तथा
ठंकणो जम्बरश्च स्फुलिङ्गास्यस्तडिद्रुचिः। दन्तुरो घननादश्च नन्दकश्च तथा परः
फेत्कारकारी पञ्चास्यो बर्बरी भीमरूपवान्। भग्नपक्षःकालमेघोयुवानोभास्करस्तथा

रौरवश्चाऽपि लम्बोष्ठो वणिजः सुजटालिकः।
सुगन्धो हुहुकश्चैव नौमि पातालरक्षकान्॥ ३२॥

सर्वलिङ्गेषु हुङ्कारः स्मशानेषु भयावहः। महालक्षो वने घोरे ज्वालाक्षोवसतौस्थितः

एकवृक्षश्च वृक्षेषु करालवदनो निशि। घण्टारवो गुहावासी पद्मखड्गो जले
चत्वरेषु दुरारोहः पर्वते कुरवस्तथा। निर्झरेषु प्रवाहाख्यो माणिभद्रो निधि
रसक्षेत्रे रसाध्यक्षो यज्ञवाटेषु कोटनः। चतुर्दश भुवं व्याप्य स्थिताश्चैवंनमा
एवं चतुःषष्टिमिताञ्छरणं यामि क्षेत्रपान्। प्रसीदन्तु प्रसीदन्तु तृप्यन्तु मम
सर्वकार्येषु यश्चैवंक्षेत्रपानर्चयेच्छुचिः। क्षेत्रपास्तस्य तुष्यन्ति यच्छन्तिचसर्वा
इमं क्षेत्रपकल्पञ्च विजानन्विजयस्तथा। यथोक्तविधिनाऽभ्यर्च्य सिद्धेयं तुष्ट
प्रणम्य च ततो देवीमानर्च वटयक्षिणीम्। पुरा यदा नारदेन कलापग्रामतो द्वि
समानीतास्तैश्च साकं सुनन्दा नाम ब्राह्मणी। विधवाऽभ्यागता तत्र तपस्त

सा कृच्छ्राणि पराकांश्च अतिकृच्छ्राणि कुर्वती।
ज्येष्ठे भाद्रपदे चक्रे सावित्र्या द्वे त्रिरात्रिके॥ ४२॥

मासोपवासञ्च तथा कार्तिके कुलनन्दिनी। सप्तलिङ्गानिसम्पूज्यदेवीपूजांसदा
दर्शे स्नानं यथा चक्रे महीसागरसङ्गमे। इत्यादिबहुभिस्तैस्तैर्नित्यं नियमपाल
धूतपापा ययौ लोकमुमायाः कृतस्वागता। अंशेन च तटे तस्मिन्सम्भूता वट
तस्यास्तुष्टो वरंप्रादात्सिद्धलिङ्गस्थितो हरः। अनभ्यर्च्य य एनाश्चमत्पूजांप्रकर

तस्य तन्निष्फलं सर्वमित्युक्तं पाल्यमेव मे।

तस्मात्प्रपूजयेन्नित्यं वटस्थां वटयक्षिणीम्। पुष्पैर्धूपैस्तु नैवेद्यैर्मन्त्रेणाऽनेन भ
सुनन्दे नन्दनीयाऽसि पूजामेतां गृहाण मे। प्रसीद सर्वकालेषु ममत्वं वटय
एवं सम्पूज्य तां नत्वाक्षमाप्यवटयक्षिणीम्। सर्वान्कामानवाप्नोतिनरोनारी

विजयश्चाऽपि माहात्म्यमिदं जानन्महामतिः।
आनर्च वटवृक्षस्थां भक्तितो वटयक्षिणीम्॥ ५०॥
ततः सिद्धाम्बिकां स्तुत्वा जप्तवानपराजिताम्।
महाविद्यां वैष्णवीं तु साधनेन समन्विताम्॥ ५१॥

यस्याः स्मरणमात्रेणसर्वदुःखक्षयोभवेत्। तां विद्यांकीर्तयिष्यामिश्रृणुध्वं
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमोऽनन्ताय सहस्रशीर्षाय, क्षीरोद

शायिने, शेषभोगपर्यङ्काय, गरुडवाहनाय, पीतवाससे, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्नानिरुद्ध हयशिरो, वराह नरसिंह वामन त्रिविक्रम राम राम वरप्रद नमोऽस्तु ते नमोऽस्तु ते, असुरदैत्यदानवयक्षराक्षसभूतप्रेतपिशाचकुम्भाण्डसिद्धयोगिनीडाकिनीस्कन्दपुरो - गमान्ग्रहान्नक्षत्रग्रहांश्चान्यांश्च हन २ दह २ पच २ मथ २ विध्वंसय २ विद्रावय २ शङ्खेन, चक्रेण, वज्रेण, गदया, मुशलेन, हलेन भस्मीकुरु. सहस्रवाहवे, सहस्रचरणायुध, जय २ विजय २ अपराजित अप्रतिहत सहस्रनेत्र ज्वल २ प्रज्वल २ विश्वरूप, बहुरूप, मधुसूदन, महावराह, महापुरुष, वैकुण्ठ, नारायण, पद्मनाभ, गोविन्द, दामोदर, हृषीकेश, सर्वासुरोत्सादन, सर्वभूतवशङ्कर, सर्वदुःखप्रभेदन, सर्वयन्त्रप्रभञ्जन, सर्वनागप्रमर्दन, सर्वदेवमहेश्वर, सर्वबन्धविमोक्षण, सर्वाहितप्रमर्दन, सर्वज्वरप्रणाशन, सर्वग्रहनिवारण, सर्वपापप्रशमन, जनार्दन जनानन्दकर नमोऽस्तु ते स्वाहा ॥ ५३ ॥ //

इमामपराजितां परमवैष्णवीं महाविद्यां जपति पठति शृणोति स्मरति धारयति कीर्तयति न च तस्य वाय्वग्निवज्रोपलाशनिवर्षभयं न समुद्रभयं न ग्रहभयं न च चौरभयं न च श्वापदभयं वा भवेत् ॥ ५४ ॥

(क्वचिद्रात्र्यन्धकारस्त्रीराजकुलविषोपविषगरदवशीकरणविद्वेषणोच्चाटन - वधबन्धभयं वा न भवेदेतैर्मन्त्रपदैरुदाहृतैर्हृदा बद्धैः संसिद्धपूजितैः ॥ ५५ ॥ तद्यथा ॥

नमो नमस्तेऽस्तु अभये, अनघे, अजिते, अत्रसिते, अमृते, अपराजिते, पठित- सिद्धे, स्मरितसिद्धे, एकानंशे, उमे, ध्रुवे, अरुन्धति, सावित्रि, गायत्रि, जातवेदसि, मानस्तोके, सरसि, सरस्वति, धरणि, धारिणि, सौदामिनि, अदिते, विनते, गौरि, गान्धारि, मातङ्गि, कृष्णे, यशोदे, सत्यवादिनि, ब्रह्मवादिनि, कालि, कपालिनि, सद्यो- पयवचनकरि, स्थलगतं जलगतमन्तरिक्षगतं वा रक्ष २ सर्वभूतभयोपद्रवेभ्यो रक्ष २ स्वाहा ॥ ५६ ॥ //

यस्याः प्रणश्यतेपुष्पंगर्भोवा पततेयदि । म्रियन्तेबालकायस्याःकाकवन्ध्याचयाभवेत्
धारयेत इमां विद्यामेभिर्दोषैर्न लिप्यते ॥ ५७ ॥ //

रणे राजकुले द्यूते नित्यं तस्य जयो भवेत् । शस्त्रं धारयतेह्येषां समरेकाण्डधारिणी

गुल्मशूलाक्षिरोगाणां नित्यं नाशकरी तथा ।
शिरोरोगज्वराणां च नाशनी सर्वदेहिनाम् ॥ ५९ ॥ तद्यथा ॥

हन २ कालि सर २ कालि सर २ गौरि धम २ गौरि धम २ विद्ये
ताले माले गन्धे वन्धे पच २ विद्ये नाशय पापं हन दुःस्वप्नं विनाशय
रजनि सन्ध्ये दुन्दुभिनादे मानसवेगे शङ्खिनि चक्रिणि वज्रिणि शूलिनि
विनाशिनि विश्वेश्वरि द्रविडि द्राविडि केशवदयिते पशुपतिमहिते
शर्वरि किराति मातङ्गि ॐह्राँह्रँह्रँक्राँक्रँक्रँ त्वर २ ये मां द्विषन्ति प्रत्यक्षं
वा सर्वान्दम २ मर्द २ तापय २ पातय २ शोषय २ उत्सादय २ ब्रह्माणि माहे
वाराहि विनायकि ऐन्द्रि आग्नेयि चामुण्डे वारुणि प्रचण्डविद्योते इन्द्रोपेन्द्र
विजये शान्तिस्वस्तिपुष्टिविवर्धिनि कामाङ्कुशे कामदुघे सर्वकामवरप्रदे सर्व
वासिनि प्रति विद्यां कुरु २ आकर्षिणि वेशिनि ज्वालामालिनि रमणि रा
धरणि धारिणि मानोन्मानिनि रक्ष २ वायव्ये ज्वालामालिनि तापनि
नीलपताकिनि महागौरि महाश्रये महामयूरि आदित्यरश्मि जाह्नवि यमघण्टे
चिन्तामणि सुरभि सुरोत्पन्ने कामदुघे यथा मनीषितं कार्यं तन्मम सिध्यतु
ॐस्वाहा ॐभूः स्वाहा ॐभुवः स्वाहा ॐस्वः स्वाहा ॐभूर्भुवःस्वः
यत्रैवाऽऽगतं पापं तत्रैव प्रतिगच्छतु स्वाहा ,ॐवले महाबले असिद्धसाधिनि

इतीमां साधयामास वैष्णवीमपराजिताम् ।
विजयः संयतो भूत्वा मनोबुद्धिसमाधिभिः ॥ ६१ ॥

य इमां पठतेनित्यं साधनेनविनाऽपिच । तस्याऽपि सर्वविघ्नानि नश्यन्तिद्धि

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वर
कौमारिकाखण्डे वर्वरिकोपाख्याने महाविद्यासाधनवर्णनं नाम
द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

वर्वरीक(सुहृदय) महाविद्याप्रसन्नकरणेनानाविघ्नानांरेपलादीनांसाहसेनाप - करणं नागैर्वरप्रदानं तत्र कार्यसिद्धिवर्णनम्

सूत उवाच

अश्वत्थलाक्षावह्नौ च सर्षपान्केसरप्लुतान्। जुह्वतो मन्त्रमुख्यैश्च वलातिवलसञ्ज्ञकैः।
यामे तु प्रथमे याते काचिन्नारी समाययौ। शोणिताक्तैकवसना महोच्चोर्ध्वशिरोरुहा
दारुणाक्षी शुक्लदन्ती भयस्याऽपिभयङ्करी। सा रुरोद महारावंप्राप्यतांहोमभूमिकाम्

तां दृष्ट्वा चुक्षुभे सद्यो विजयो भीतिमानिव।
वर्वरीकश्च निर्भीतिस्तस्याः सम्मुखमाययौ ॥ ४ ॥

ततः कण्ठं समाश्लिष्य तस्या मतिमताम्वरः। रुरोद द्विगुणं वीरो मेघवन्नादयन्वहु॥

तं दृष्ट्वा विस्मिता सा च यावन्मुञ्चति कर्तिकाम्।
तावन्निष्पीडते कण्ठे मोक्तुं तस्मिन्न चाऽशकत् ॥ ६ ॥

पीड्यमाने च वलिना कण्ठेतस्यामुहुर्मुहुः। मुमोचविविधाञ्छव्दान्वज्राहतइवाऽचलः
क्षणंरावांस्ततोमुक्त्वात्राहिमुञ्चेतिवक्त्यणु। ततःकृपालुनामुक्तापादयोःपतिताऽब्रवीत्
शरणं ते प्रपन्नाऽस्मिदासीकर्मकरी तव। महाजिह्वेतिमां विद्धिराक्षसींकामरूपिणीम्
काशीश्मशाननिलयां देवदानवदर्पहाम्। ददासि यदि मे वीर! दुर्लभां प्राणदक्षिणाम्
ततस्तपश्चरिष्यामि सर्वभूताभयप्रदा। अस्मिन्नर्थे स्वदेवस्य शपथा मे तथाऽऽत्मनः
यद्येतद्व्यत्ययं कुर्यां भस्मीभूयां ततःक्षणम्। एवं ब्रुवाणां तां वीरो निगृह्यशपथैर्दृढम्

मुमोच्र साऽपि संहृष्टा कृच्छ्रान्मुक्ता ययौ वनम्।
सोऽपि वीरः खड्गधारी तत्रैवाऽवस्थितोऽभवत् ॥ १३ ॥

ततो मध्यमरात्रौ च गर्जितं श्रूयते महत्। अन्धकारश्च सञ्जज्ञे तमोऽन्धनरकप्रभम् ॥
ददृशे च ततःशैलःशतशृङ्गोऽतिविस्तरः। नानाशिलाःप्रमुमुचेनानावृक्षांश्चसोच्छ्रयान्
नानानिर्झरसङ्घोषं ववृषे शोणितं वहु। तं तथा नगमालोक्य निर्भीतो भैमिनन्दनः

पर्वतो द्विगुणो भूत्वा पर्वतं सहसाप्लुतः । पदाऽभिजघ्ने संहृत्य पर्वतं स्वेन मु
तदा विशीर्णः सोऽभूच्च पर्वतो भूमिमण्डले । ततो योजनदेहात्मा शतशीर्षः
वक्त्रैर्मुञ्चन्महाज्वालां रैपलेन्द्रोऽभ्यधावत । तं धावमानं दृष्ट्वैव बर्बरीको मह
विधाय तादृशं रूपं नर्दन्तं चाऽप्यधावत । ततोमध्यमरात्रौ तौ लघु चित्रं च सु

युयुधाते बाणजालैर्यथा प्रावृषि तोयदौ ।
छिन्नपापौ च खड्गाभ्यां छिन्नखड्गौ च मुष्टिभिः ॥ २१ ॥

पर्वताविव सत्पक्षौ चिरंयुयुधतुःस्थिरम् । ततः कक्षेसमुत्पाट्यभ्रामयित्वामुहु
भूमौ प्रघर्षयामास प्रसृतं च मुमोच ह । चिक्षेप चाऽग्निकोणे तं महीसागरयो
तद्दूरे रैपलेन्द्राख्यं ग्राममद्यापि वर्तते । एवं स रैपलोनाम वृत्रतुल्यपराक्रमः।

नाथः श्मशानस्यावन्त्या विघ्नकृन्निहतोऽभवत् ।
तं निहत्य पुनर्वीरो बर्बरीकः स्थितोऽभवत् ॥ २५ ॥

ततस्तृतीययामे च प्रतीच्या दिश आययौ । पर्वताभा महानादा पादैः कम्पयन्
दुहद्रुहाख्याऽश्वतरी मेघभ्रष्टा तडिद्यथा । तमायान्तीं तथा दृष्ट्वा सूर्यवैश्वानरप्र
उपसृत्य जवाद्भैमी रुरोह प्रहसन्निव । वेगात्ततः प्रद्रवतीं तुण्डे प्राहत्य मुष्टि
स्थापयामास तत्रैवतस्थौ साचाऽतिपीडिता । ततः क्रुद्धामहारावंकृत्वाप्लुत्य
जगत्यामाशु चिक्षेप बर्बरीकं तथेच्छकम् । ततो नदित्वा चाऽतीव पादघातम
पादौ च वीरः संगृह्य चिक्षेपभुविलीलया । ततःपुनःसमुत्थाय धावन्तीं तां नि
मुष्टिना पातयित्वैवदन्तान्कण्ठमपीडयत् । क्लिन्नं वासइवापीड्यप्राणानत्याज
एवं सीकोत्तरस्थाने स्मशानैकपदोद्भवा । शाकिनीनामधीशा सा बर्बरीकेण
हत्वा तां चाऽपिचिक्षेप प्रतीच्यामेव लीलया । दुहद्रुहाख्यमद्यापि तत्र ग्राम
ततस्तथैव सन्तस्थौ बर्बरीकोऽभिरक्षणे । ततश्चतुर्थे यामे च प्राप्तः क्षपणको
मुण्डी नग्नो मयूराणां पिच्छधारीमहाव्रतः । प्रोवाच चेदं वचनं हाहा कष्टम
अहिंसा परमो धर्मस्तदग्निर्ज्वाल्यते कुतः । हूयमाने यतो वह्नौ सूक्ष्मजीवव
श्रुत्वेदं वचनं तस्य बर्बरीकोऽब्रवीत्स्मयन् । वदने सर्वदेवानां हूयमाने स्म

अनृतं भाषसे पाप ! शिक्षायोग्योऽसि दुर्मते ! ।
इत्युक्त्वा सहसोत्पत्य कक्षामध्ये स्थिरोऽस्य च ॥ ३६ ॥
दन्तान्मुष्टिप्रहारैश्च समाहत्याऽभ्यपातयत् । रुधिराविलवक्त्रन्तं मुमोच पतितं भुवि
स क्षणाच्चेतनां प्राप्य घोरदैत्यवपुर्धरः । भयाद्भैमेः प्रदुद्राव गुहाविवरमाविशत ॥
बहुप्रभेति नगरी षष्टियोजनमायता । तस्यां विवेश सहसा तं चाऽनु बर्बरीककः ॥
बर्बरीकं ततो दृष्ट्वा नादोऽभूच्च पलाशिनाम् । धावध्वं हन्यतामेष छिद्यतांभिद्यतामिति
तच्छ्रुत्वा दैत्यवीराणां कोटयो नव भीषणाः । नानायुधधरा वीरं बर्बरीकमुपाद्रवन्
दृष्ट्वा तान्कोटिशो दैत्यान्क्रुद्धो भीमात्मजात्मजः ।
निमील्य सहसा नेत्रे तेषां मध्यमधावत ॥ ४५ ॥
पादघातैस्ततःकांश्चिद्भुजाघातैस्तथापरान् । हृदयस्याऽभिघातैश्चक्षणान्निन्येयमक्षयम्
यथा नलवनं क्रुद्धः कुर्याद्भूमिसमं करी । नवकोटिस्तथा जघ्ने सह तेनपलाशिना ॥
ततो नागाः समागम्य वासुकिप्रमुखास्तदा । तुष्टुवुर्विविधैर्वाक्यैरूचुः सुहृदयश्च ते
नागानां परमं कृत्यं कृतं ते भैमिनन्दन !। पलाशीनामदैत्योऽयं नीतोयत्सानुगोयमम्
अनेन हि वयं वीर सानुगेन दुरात्मना । पीडिता विविधोपायैः पातालादप्यधःकृताः
वरं वृणीष्व त्वं तस्मान्नागेभ्योऽभिमतंपरम् । वरदाः सर्वएवस्मवयंतुभ्यंसुतोपिताः

सुहृदय उवाच

यदि देयो वरो मह्यं तदेनं प्रवृणोम्यहम् । सर्वविघ्नविनिर्मुक्तोविजयःसिद्धिमाप्नुयात्
ततस्तथेति तं प्रोचुः प्रहृष्टावायुभोजनाः । स च तेभ्यः पुरींदत्त्वानिवृत्तोनागपूजितः
विवरस्य च मध्येन समागच्छन्महाप्रभम् । सर्वरत्नमयं लिङ्गं स्थितं कल्पतरोरधः ॥
अर्च्यमानं सुवह्वीभिर्नागकन्याभिरैक्षत । ततोऽसौ विस्मयाविष्टेनागकन्याह्यपृच्छत
केनेदं स्थापितं लिङ्गं सूर्यवैश्वानरप्रभम् । लिङ्गादपि चतुर्दिक्षु मार्गाश्चेमे तु कीदृशाः
इतिवीरवचः श्रुत्वा बृहत्कटिपयोधरा । सव्रीडं सस्मितापाङ्गनिर्मोक्षमिदमब्रवीत् ॥
सर्वपन्नगराजेन शेषेण सुमहात्मना । तपस्तप्त्वा महालिङ्गमिदमत्र प्रतिष्ठितम् ॥
दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानादर्चनात्सर्वसिद्धिदम् । लिङ्गात्पूर्वेणमार्गोऽयंयातिश्रीपर्वतंभुवि

एलापत्रेण विहितो नागानां तत्र प्राप्तये ।
दक्षिणेन च मार्गोऽयं याति शूर्पारकं भुवि ॥ ६० ॥

कर्कोटकेन नागेन कृतोऽयं तत्र प्राप्तये । पश्चिमेन च मार्गोऽयं प्रभासं याति सुप्र
ऐरावतेन विहितो नागानां गमनाय च । उत्तरेण च मार्गोऽयं येन यातुं भवानिस्
गुप्तक्षेत्रे सिद्धलिङ्गं यातिशक्तिगुहाऽऽकृतः । विहितस्तक्षकेणाऽसौ यातुंतत्रमहाल
इतीदं वर्णितं वीर! विज्ञप्तिः श्रूयताम्मम । को भवानधुनैवेतो दैत्यपृष्ठ! गतोऽ

अधुनैव तथैकाकी समायातोऽत्र नो वद ॥ ६४ ॥

वयञ्च सर्वास्तेदास्यस्त्वांपतिम्प्रवृणीमहे । अस्माभिःसहितःक्रीडविविधास्वत्रभूमि

वर्बरीक उवाच

अहं कुरुकुलोत्पन्नः पाण्डुपुत्रस्य पौत्रकः । वर्बरीक इति ख्यातस्तं दैत्यं हन्तुमा

स च दैत्यो हतः पापः पुनर्यास्ये महीतलम् ।
भवतीभिश्च मे नास्ति कृत्यं भोभोः कथञ्चन ॥ ६७ ॥

ब्रह्मचारिव्रतं यस्मादहंसततमास्थितः । इत्युक्त्वाऽभ्यर्च्यतल्लिङ्गंप्रणिपत्यचदण्
ऊर्ध्वमाचक्रमे वीरः कातरं ताभिरीक्षितः । ततो बहिः समागत्य सप्रकाशं मुखं
प्रहर्षेणैव पूर्वस्या विजयं ददृशे दिशः । तस्मिन्काले च विजयः कर्म सर्वं समाप्त
कान्त्या सूर्यसमाभास ऊर्ध्वमाचक्रमे क्षणात् । ततो वियद्गतं देवैः पुष्पवर्षमभूत्
जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः । विजयो बर्बरीकञ्च ततो वचनमब्रवीत्
तव प्रसादाद्वीरेश सिद्धिः प्राप्ता मयाऽतुला । चिरञ्जीव चिरं नन्द चिरं वस चिरं
अत एवहिसाधूनां सङ्गमिच्छन्ति साधवः । औषधं सर्वदोषाणां भवेत्सत्सङ्गमो
त्वञ्च होमस्थितं भस्म सिन्दूरसदृशप्रभम् । निःशल्यं सविवरकं पूर्यमाणं गृहाण
अक्षय्यमेतत्संग्रामे प्रथमन्ते प्रमुञ्चतः । शत्रूणां स्थानकं मृत्योर्देहं ध्वस्तं करिष्य

एवं सुखेन विजयः शत्रूणां ते भविष्यति ॥ ७७ ॥

बर्बरीक उवाच

उपकुर्यान्निराकाङ्क्षोयःससाधुरितीर्यते । साकाङ्क्षमुपकुर्याद्यःसाधुत्वेतस्यकोगु

तद्देहि भस्म चाऽन्यस्मै केनाऽप्यर्थो न मेऽण्वपि ।
प्रसादसुमुखां दृष्टिं विना नाऽन्यद्वृणोमि ते ॥ ७९ ॥

देवा ऊचुः

कुरूणां पाण्डवानाञ्च भविष्यति महान्रणः ।
ततो भूमिस्थितं भस्म प्राप्स्यन्ति यदि कौरवाः ॥ ८० ॥

महाननर्थोभवितापाण्डवानांततःस्फुटम् । तस्माद्गृहाणत्वंभस्मसोऽपिचक्रेतथावचः
देवीभिः सहिता देवाः सम्मान्य विजयञ्च ते । सिद्धैश्वर्यंददुस्तस्मैसिद्धसेनेतिनामच
एवं स विजयो विप्रःसिद्धिं लेभे सुदुर्लभाम् । बर्बरीकश्चकृत्वैतद्देवीभक्तिरतोऽवसत्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे कार्यसिद्धिवर्णनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

भीमबर्बरीकविवादप्रसङ्गे भीमेश्वरलिङ्गप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उवाच

एवं तत्र स्थिते तीरे देव्याराधनतत्परे । सप्तलिङ्गार्चनरते भीमनन्दननन्दने ॥ १ ॥
ततः कालेनकेनाऽपिपाण्डवाद्यूतनिर्जिताः । तत्राऽऽजग्मुश्चक्रमतस्तीर्थस्नानकृतेभुवम्

प्रागेव चण्डिकां देवीं क्षेत्रादीशानतः स्थिताम् ।
आसेदुर्मार्गखिन्नास्ते द्रौपदीपञ्चमास्तदा ॥ ३ ॥

तत्रैव चोपविष्टोऽभूत्तदानीं चण्डिकागणः । बर्बरीकश्च तान्वीरान्समायातानपश्यत
परंनासौवेदपाण्डून्पाण्डवास्तञ्चनोविदुः । आजन्मयस्मान्नैवाभूत्पाण्डूनांचास्यसङ्गमः

ततः प्रविश्य वै तस्मिन्देवीमासाद्य पाण्डवाः ।
पिण्डकाद्यं तत्र मुक्त्वा तृषा प्रैक्षि जलं तदा ॥ ६ ॥

ततो भीमः कुण्डमध्यं जलं पातुं विवेश ह । प्रविशन्तं च तं प्राह युधिष्ठिरइदं वचः ।

उद्धृत्य भीम ! तोयं त्वं पादौ प्रक्षाल्य भो बहिः ।
ततः पिबाऽन्यथा दोषो महांस्त्वामुपपत्स्यते ॥ ८ ॥

एतद्राज्ञो वचोभीमस्तृषाव्याकुललोचनः । अश्रुत्वैवविवेशाऽसौकुण्डमध्यंजलेच्छया
स च दृष्ट्वा जलं पातुं तत्रैव कृतनिश्चयः । मुखं हस्तौ च चरणौ क्षालयामास शुद्धये
यतः पीतं जलं पुंसामप्रक्षाल्य च यद्भवेत् । प्रेताः पिशाचास्तद्रूपं संक्रम्यप्रपिबन्तिवै
एवं प्रक्षालयाने च पादौ तत्र वृकोदरे । उपरिस्थस्तदा प्राह सत्यं सुहृदयो वचः ।
दुर्मते भोः किमेतत्त्वं कुरुषे पापनिश्चयः । देवीकुण्डेक्षालयसि मुखंपादौकरौचयत् ।
यतो देवी सदाऽनेन जलेन स्नाप्यते मया । तदत्र प्रक्षिपंस्तोयं मलपापान्न बिभ्यसि
मलाक्ततोयं यन्नाम अस्पृश्यं तन्नरैरपि । कुतो देवैश्च तत्पापं स्पृश्यते तत्त्वतो वद ।

शीघ्रं च त्वं निःसराऽस्मात्कुण्डाद्धृत्वा बहिः पिब ।
यद्येवं पाप ! मूढोऽसौ तीर्थेषु भ्रमसे कुतः ॥ १६ ॥

भीम उवाच

किमेतद्भाषसे क्रूर! परुषं राक्षसाधम !। यतस्तोयानि जन्तूनामुपभोगार्थमेव हि ।
तीर्थेषु कार्यं स्नानं चेत्युक्तं मुनिवरैरपि । अङ्गप्रक्षालनं स्नानमुक्तं मां निन्दसे कुतः
यदि न क्रियते पानमङ्गप्रक्षालनं तथा । तत्किमर्थं पूर्तधर्माः क्रियन्ते धर्मशालिभिः

सुहृदय उवाच

स्नातव्यं तीर्थमुख्येषु सत्यमेतन्न संशयः । चरैषु किन्तुसम्विश्यस्थावरेषु बहिःस्थितैः
स्थावरेष्वपि सम्विश्य तन्न स्नानं विधीयते । न यत्र देवस्नानार्थं भक्तैः संगृह्यतेजलम्
यच्च हस्तशतादूर्ध्वं सरस्तत्र विधीयते । स वेशोऽपि क्रमश्चाऽयं पादौप्रक्षाल्ययद्बहिः

ततः स्नानं प्रकर्तव्यमन्यथा दोष उच्यते ।
किं न श्रुतस्त्वया प्रोक्तः श्लोकः पद्मभुवा पुरा ॥ २३ ॥

मलं मूत्रं पुरीषं च श्लेष्म निष्ठीवनाश्रुच । गण्डूषाञ्चैव मुञ्चन्ति ये ते ब्रह्महणैः समाः
तस्मान्निःसर शीघ्रं त्वं यद्येवमजितेन्द्रियः । तत्किमर्थं दुराचार! तीर्थेष्वटसि वार्य

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
निर्विकाराः क्रियाः सर्वाः स हि तीर्थफलं लभेत् ॥ २६ ॥

भीम उवाच

अधर्मो वाऽपि धर्मोऽस्तु निर्गन्तुं नैव शक्नुयाम् ।
क्षुधा तृषा मया नित्यं वारितुं नैव शक्यते ॥ २७ ॥

सुहृदय उवाच

जीवितार्थेभवान्कस्मात्पापंप्रकुरुतेवद । किंनश्रुतस्त्वयाश्लोकः शिविना यःसमीरितः
मुहूर्तमपि जीवेत नरः शुक्लेन कर्मणा । न कल्पमपि जीवेत लोकद्वयविरोधिना ॥

भीम उवाच

काकारवेण ते मह्यं कर्णौ बधिरतां गतौ । पास्याम्येव जलं चात्रकामंविलप शुष्यवा

सुहृदय उवाच

क्षत्रियाणांकुलेजातस्त्वहंधर्माभिरक्षिणाम् । तस्मात्तेपातकंकर्तुं न दास्यामिकथञ्चन
तद्बराकाऽथ शीघ्रं त्वमस्मात्कुण्डाद्विनिःसर ॥ ३२ ॥
इष्टकाशकलैः शीघ्रंचूर्णयिष्येऽन्यथा शिरः । इत्युक्त्वा चेष्टकांगृह्यमुमोचशिरसःप्रति
भीमश्चवञ्चयित्वातामुत्प्लुत्यबहिराव्रजत् । भर्त्सयन्तौततश्चोभावन्योन्यंभीमविक्रमौ
युयुधाते प्रलम्बाभ्यां बाहुभ्यां युद्धपारगौ । व्यूढोरस्कौदीर्घभुजौनियुद्धकुशलावुभौ
मुष्टिभिःपार्ष्णिघातैश्चजानुभिश्चाऽभिजघ्नतुः । ततो मुहूर्तात्कौरव्यःपर्यहीयतपाण्डवः
हीयमानस्ततो भीम उद्यतोऽभूत्पुनः पुनः । अहीयत ततोऽप्यङ्ग ववृधे बर्बरीककः ॥
ततो भीमं समुत्पाट्य बर्बरीको बलादिव । निष्पिपेष ततः क्रुद्धस्तदद्भुतमिवाऽभवत्
मूर्च्छितं चैवमादाय विस्फुरन्तं पुनःपुनः । सागराय प्रचलितः क्षेप्तुं तत्र महाम्भसि
दद्दशुः पाण्डवा नैतद्देव्या नयनयन्त्रिताः ॥ ४० ॥
तथा गृहीते कुरुवीरमुख्ये वीरेण तेनाऽद्भुतविक्रमेण ।
आश्चर्यमासीद्दिवि देवतानां देवीभिराकाशतले निरीक्ष्य तम् ॥ ४१ ॥
सागरस्य ततस्तीरे बर्बरीकं गतं तदा । निरीक्ष्य भगवान्रुद्रो वियत्स्थः समभाषत

भोभो राक्षसशार्दूल बर्बरीक महाबल ! मुञ्चैनं भरतश्रेष्ठं भीमं तव पितामहम् ॥४३॥
अयं हि तीर्थयात्रायां विचरन्भ्रातृभिर्युतः । कृष्णया चाप्यदस्तीर्थं स्नातुमेवाऽभ्युपागतः ॥
सम्मानं सर्वथा तस्मादर्हः कौरवनन्दनः । अपापो वा सपापो वा पूज्य एव पितामहः ॥

सूत उवाच

इति रुद्रवचः श्रुत्वा सहसा तं विमुच्य सः । न्यपतत्पादयोर्हा धिक्कष्टं कष्टं च प्राह सः ॥
क्षम्यतां क्षम्यतां चेति पुनः पुनरवोचत । शिरश्च ताडयन्स्वीयं रुरोद च मुहुर्मुहुः ॥
तं तथा परिशोचन्तं मुह्यमानं मुहुर्मुहुः । भीमसेनः समालिङ्ग्य आघ्राय च वचोऽब्रवीत् ॥

वयं त्वां नैव जानीमस्त्वं चाऽस्माञ्जन्मकालतः ।
अत्र वासश्च ते पुत्र ! भैमेः कृष्णाच्च संश्रुतः ॥ ४६ ॥

परं नो विस्मृतं सर्वं नानादुःखैः प्रमुह्यताम् । दुःखितानां यतः सर्वा स्मृतिर्लुप्ता भवेत्स्फुटम् ॥
तदस्माकमिदं दुःखं सर्वकालविधानतः । मा शोच त्वं च तनय ! न ते दोषोऽस्ति चाण्वपि ॥
यतः सर्वः क्षत्रियस्य दण्ड्यो विपथि संस्थितः । आत्मापि दण्ड्यः साधूनां प्रवृत्तः कुपथा यदि ॥
पितृमातृसुहृद्भ्रातृपुत्रादीनां किमुच्यते । अतीव मम हर्षोऽयं धन्योऽहं पूर्वजाश्च मे ॥
यस्य त्वीदृशकः पौत्रो धर्मज्ञो धर्मपालकः । वरार्हस्त्वं प्रशंसार्हो भवान्ये पांसतां ...

तस्माच्छोकं विहायेमं स्वस्थो भवितुमर्हसि ॥ ५५ ॥

बर्बरीक उवाच

पापं मां ताततात त्वं ब्रह्मघ्नादपि कुत्सितम् । अप्रशस्यं नार्हसीह द्रष्टुं स्प्रष्टुमपि प्रभो ॥
सर्वेषामेव पापानां निष्कृतिः प्रोच्यते बुधैः । पित्रोरभक्तस्य पुनर्निष्कृतिर्नैव विद्यते ॥
तद्येन देहेन मया ताततातोऽभिपीडितः । तत्स्वमेव समुत्स्रक्ष्ये महीसागरसङ्गमे ॥
मैवं भवेयमन्येषु अपि जन्मसु पातकी । न मामस्मादभिप्रायादर्हः कोऽपि निवर्तितुम् ॥
यतोंऽशेन विलुप्येत प्रायश्चित्तान्निवारकः । एवमुक्त्वा समुत्प्लुत्य ययौ चैवाऽर्णवं द्रुतम् ॥
समुद्रोऽपि चकम्पे च कथमेनं निहन्म्यहम् । ततः सिद्धाम्बिकायाश्च देव्यस्तत्र चतुर्दश ॥
समालिङ्ग्य च संस्थाप्य रुद्रेण सहिता जगुः । अज्ञातविहिते पापे नास्ति धीरेन्द्र कल्मषम् ॥

शास्त्रेषूक्तमिदं वाक्यं नाऽन्यथा कर्तुमर्हसि ।

अमुश्च पृष्ठलग्नं त्वं पश्य भोः स्वं पितामहम् ॥ ६३ ॥

पुत्रपुत्रेति भाषन्तमनुत्वा मरणोन्मुखम् । अधुना चेत्स्वकं देहं वीर त्वं परित्यक्ष्यसि ॥
ततस्त्यक्ष्यति भीमोऽपि पातकं तन्महत्तव । एवं ज्ञात्वा धारय त्वं स्वशरीरं महामते ॥
अथ चेत्त्यक्तुकामस्त्वं तत्राऽपि वचनं शृणु । स्वल्पेनैव च कालेन कृष्णाद्देवकिनन्दनात् ॥
देहपातस्तव प्रोक्तस्तं प्रतीक्ष यदीच्छसि । यतो विष्णुकराद्वत्स! देहपातो विशिष्यते ॥
तस्मात्प्रतीक्ष तं कालमस्माकं प्रार्थितेन च । एवमुक्तो निववृते बर्बरीकोऽपि दुर्मनाः ॥

रुद्रं देवीश्च चामुण्डां सोपालम्भं वचोऽब्रवीत् ।
त्वमेव देवि! जानासि रक्ष्यन्ते शार्ङ्गधन्विना ॥ ६९ ॥

पाण्डवा भूमिलाभार्थे तत्ते कस्मादुपेक्षितम् । त्वया च समुपागत्य रक्षितोऽयं वृकोदरः ॥

देव्युवाच

अहं च रक्षयिष्यामि स्वभक्तं कृष्णमृत्युतः । यस्माच्च चण्डिकाकृत्ये कृतोऽनेन महारणः ॥

तस्माच्च चण्डिलनाम्नाऽयं विश्वपूज्यो भविष्यति ॥ ७१ ॥
एवमुक्त्वा गताः सर्वे देवा देव्यस्त्वदृश्यताम् ।
भीमोऽपि तं समादाय पाण्डुभ्यः सर्वमूचिवान् ॥ ७२ ॥
विस्मिताः पाण्डवास्तं च पूजयित्वा पुनः पुनः ।
यथोक्तविधिना चक्रुस्तीर्थस्नानमतन्द्रिताः ॥ ७३ ॥

भीमोऽपि यत्र रुद्रेण मोक्षितस्तत्र सुप्रभम् । लिङ्गं संस्थापयामास भीमेश्वरमिति श्रुतम् ॥
ज्येष्ठमासे कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामुपोषितः । रात्रौ सम्पूज्य भीमेशं जन्मपापाद्विमुच्यते ॥

यथैव लिङ्गानि सुपूजितानि सप्ताऽत्र मुख्यानि महाफलानि ।
भीमेश्वरं लिङ्गमिदं तथैव समस्तपापापहरं सुपूज्यम् ॥ ७६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे भीमेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

युधिष्ठिरकृतं देवीस्तवनं तत्र युधिष्ठिरभीमयोर्विसम्वादः भीमद्वारा स्वनेत्रान्धत्वमपाकर्तुं प्रार्थनाकेलेश्वर्यादिदेवीस्थापनम्

सूत उवाच

उषित्वासप्तरात्राणितीर्थेऽस्मिन्भ्रातृभिःसह । युधिष्ठिरो महातेजा गमनायोपचक्रमे
प्रभाते विमलेस्नात्वादेवीर्लिंगान्यथाऽर्च्यच । कृत्वाप्रदक्षिणंक्षेत्रंदेवीस्तोत्रंजजापसः
प्रयाणकालेषु सदा जप्यं कृष्णेन कीर्तितम् ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

देवि पूज्ये महाशक्ते कृष्णस्यभगिनिप्रिये । नत्वा त्वां शरणंयामिमनोवाक्कायकर्मभिः
सङ्कर्षणाभयदाने कृष्णच्छविसमप्रभे । एकानंशे महादेवि पुत्रवत्त्राहि मां शिवे
त्वयाततमिदं विश्वंजगदव्यक्तरूपया । इति मत्वा त्वां गतोऽस्मि शरणं त्राहिमांशुभे
कार्यारम्भेषु सर्वेषु सानुगेनमयातव । स्व आत्माकल्पितोभद्रे ज्ञात्वैतदनुकम्प्यताम्

सूत उवाच

इति ब्रुवाणं राजानं शिरोबद्धाञ्जलिं तदा । वायुपुत्रः प्रहस्यैवसासूयमिदमब्रवीत् ।
ये त्वांराजन्वदन्त्येवंसर्वज्ञोऽयंयुधिष्ठिरः । वृथैववचनंतेषांयतस्त्वंवेत्सिनाऽण्वपि ।
कोहि प्रज्ञावतां मुख्यः सर्वशास्त्रविदाम्वरः । स्त्रीणांशरणमापद्येद्दृजुर्बुद्धिर्यथा भवान्
यतस्त्वमेव वेत्सीदं सर्वशास्त्रेषु कीर्त्यते । जडेयं प्रकृतिर्मूढा यया सम्मोह्यते जगत्
सचेतनञ्च पुरुषं प्रकृतिञ्च विचेतनाम् । प्राहुर्बुधा नराध्यक्ष ! पुंसश्च प्रकृतिःप्रिया ।
तत्स्वयं पुरुषोभूत्वा युधिष्ठिर वृथामते !। प्रकृतिं नौषि नत्वातां हासोमेऽतीवजायते
आरोहयेच्छिरो नैव कचिद्धित्वा उपानहौ । यथा स मूढोभवति देवोभक्तिरतस्तथा
यदिते बन्दिवत्पार्थ! तिष्ठेद्धाण्यनिवारिता । तत्किमर्थंमहादेवंनस्तौषि त्रिपुरान्तकम्
अलक्ष्यमिति वा मत्वा महेशानं महामते !। ततः किमर्थं दाशार्हंनस्तौषिपुरुषोत्तमम्
यस्य प्रसादादस्माभिः प्राप्ता द्रुपदनन्दिनी । इन्द्रप्रस्थे तथा राज्यं राजसूयस्त्वयाहृतः

विजयेन धनुर्लब्धं जरासन्धो मया हतः। प्रत्याहर्तुंतथेच्छामःकौरवेभ्यःस्वकांश्रियम्
यस्यप्रसादात्तंमुक्त्वाकृष्णंहास्तौषि यज्ञयी। अथ स्वयंकौरवाणामुत्पन्नंकुलसत्तमे
जानन्नात्मानमल्पत्वाद्बुद्धेर्न स्तौषि यादवम्।
तत्किमर्थं महावीर्यं न स्तौष्यर्जुनमुत्तमम् ॥ १९ ॥
येन विद्धं पुरा लक्ष्यं येन कर्णादयोजिताः। येन तत्खाण्डवं दग्धं यज्ञेयेननृपाजिताः
श्रूयतेयेनविक्रम्यमहेशानोऽपिनिर्जितः। स्वर्लोकसंस्थितस्यास्यशरणंयाहिस्तौषि च
अथवा तेन शक्रेण राज्यस्मे नाऽर्पितंकुतः। इतिमत्वा वृथैव त्वं न स्तौषिभ्रातरंमम
ततो मां वा कथं वीरं न स्तौषित्वंयुधिष्ठिर !। येनत्वंरक्षितःपूर्वंलाक्षागेहाग्निमध्यतः
वृक्षेणाहत्यमद्रेशो नदीं शुष्कां प्रसारितः। राजराजस्तथा येनजरासन्धोनिपातितः
पूर्वादिङ्निर्जितायेनयेनपूर्वंबको हतः। हिडम्बश्च महावीरः किर्मीरश्चाऽधुना वने ॥
कालेकालेच रक्षामित्वामेवाऽहंसदानुगः। नताम्पश्यामिरक्षन्तींनत्वायांस्तौषिभारत
अथ क्षुधाबलं ज्ञात्वामामौदरिकसत्तमम्। क्रूरंसाहसिकंचैव न स्तौषि क्षमिणांवरः
ततः सुसंयतो भूत्वा प्रणवं समुदीरयन्। कथंनयासिमार्गेत्वंवृथालापोहिदोषभाक्॥
प्रेताः पिशाचा रक्षांसिवृथालापरतं नरम्। आविशन्ति तदाविष्टोवक्तावद्धंपुनःपुनः ॥
वृथालापी यदश्नातियत्करोति शुभं क्वचित्। प्रेतादितृप्तये सर्वमिति शास्त्रविनिश्चयः
नाऽयंतस्यास्तिवैलोकःकुतएवपरोऽभवेत्। तस्माद्विजानतायत्नात्त्याज्यमेववृथावचः
एवं संस्मारितोऽपित्वंयदिभूयःप्रवर्तसे। भूताविष्टश्चिकित्स्योनोविविधैरौषधैर्भवान्

सूत उवाच

इति प्रवर्णितां श्रुत्वा भीमसेनेनभारतीम्। पटीमिव प्रविततां विहस्याऽऽहयुधिष्ठिरः
नूनं त्वमल्पविज्ञानो वेदाधीतास्त्वया वृथा। मातरं सर्वभूतानामम्बिकां यन्न मन्यसे
स्त्रीपक्ष इति मत्वा तामवजानासि भोः कथम्।
स्त्री सती न प्रणम्या किं त्वया कुन्ती वृकोदर ! ॥३५॥
यदि न स्यान्महामाया ब्रह्मविष्णुशिवार्चिता। तव देहोद्भवःपार्थकथंस्यात्तत्त्वतो वद
ईश्वरः परमात्मा तां त्यक्तुं शक्तः कथं न हि। पुनर्भेजे यतो देवींतेनमन्येमहोर्जिताम्

वासुदेवोऽपि नित्यं तां स्तौति शक्तिं परात्पराम् ।
अहं यदि चिकित्स्यः स्यां चिकित्स्यः सोऽपि किं भवान् ॥ ३८ ॥
नैवं भूयः प्रवक्तव्यंमौर्ख्यात्प्रति महेश्वरीम् । भूमौनिपत्यशरणंयाहिचेत्सुखमिच्छसि

भीम उवाच

सर्वोपायैर्वोधयन्ति चाटा हस्तगतं नरम् । इदमेवौषधं तत्र तैः सार्धं जल्पनं न हि ।
मुण्डेमुण्डेमतिर्भिन्नासत्यमेतन्नृप! स्फुटम् । स्वाभीष्टंकुरुते सर्वःकुर्मोऽभीष्टंवयंतथा
नागायुतसमप्राणो वायुपुत्रो वृकोदरः । न स्त्रियं शरणं गच्छेद्वाङ्मात्रेण कथञ्चन
इत्युक्त्वा वचनं भीमोह्यनुवव्राजतंनृपम् । राजाऽपिसानुगोयातोनसाध्वितिमुहुर्ब्रुवन्
ततः क्षणेनविकलस्त्वितश्चेतश्चप्रस्खलत् । उवाच वचनं भीमः सुसम्भ्रान्तोनृपंप्रति
धर्मराज महाबुद्धे पश्य मां नृपसत्तम । चक्षुभ्यांनैव पश्यामि वैकल्यं किमिदं मम ।

राजोवाच

भीमभीम ! ध्रुवं देवी कुपिता ते महेश्वरी । तेन नष्टे चक्षुषी ते महासाहसवल्लभ !
तत्साम्प्रतमभिप्रैहि शरणं परमेश्वरीम् । पुनः प्रसन्ना ते दद्यात्कदाचिन्नयने पुनः ।

भीम उवाच

अहमप्यङ्ग जानामिसमोदेव्या न कश्चन । प्रभावप्रत्ययार्थंहिसदा निन्दामि तां पुनः ।
तस्मात्प्रभावं दृष्ट्वैवं निपत्य वसुधातले । मनोवाग्बुद्धिभिर्नत्वाशरणंस्तौमिमातरम् ।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भ्रातरं ज्येष्ठं साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच । गत्वैवदेव्याःशरणंभीमस्तुष्टावमातरम्

भीम उवाच

सर्वभूताम्बिके देवि!ब्रह्माण्डशतपूरके । बालिशं बालकं स्वीयं त्राहित्राहिनमोऽस्तु ते
त्वंब्राह्मीब्रह्मणःशक्तिर्वैष्णवीत्वंचशाम्भवी । त्रिमूर्तिः शक्तिरूपात्वंरक्षरक्षनमोऽस्तु ते
त्वमैन्द्री च त्वमाग्नेयी त्वं याम्या त्वं च नैर्ऋती ।
त्वं वारुणी त्वं वायव्या त्वं कौबेरी नमोऽस्तु ते ॥ ५३ ॥
ऐशानि देवि वाराहि नारसिंहि जयप्रदे । कौमारि कुलकल्याणिक्षपेश्वरिनमोऽस्तु ते

त्वंसूर्यस्त्वंतथासोमेत्वंभौमेत्वंबुधेगुरौ । त्वंशुक्रेत्वंस्थितराहौत्वंकेतुपुनमोऽस्तुते ॥
वसुसिध्रुवचक्रे त्वं मुनिचक्रे च ते स्थितिः । भचक्रेषु खचक्रेषु भूचक्रेचनमोऽस्तु ते
सप्तद्वीपेषु त्वं देवि! समुद्रेषु च सप्तसु । सप्तस्वपि च पातालेष्ववसंस्थे नमोऽस्तु ते
त्वं देवि चाऽवतारेषु विष्णोः साहाय्यकारिणी ।
विष्णुनाऽभ्यर्थ्यसे तस्मात्त्राहि मातर्नमोऽस्तु ते ॥ ५८ ॥
चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रे फलदे चत्वरप्रिये । चराचरस्तुते देवि! चरणौ प्रणमामि ते ॥
महाघोरे कालरात्रि घण्टालि विकटोज्ज्वले!। सततं सप्तमीपूज्ये! नेत्रदे शरणं भव
मेरुवासिनि पिङ्गाक्षि नेत्रत्राणैककारिणि । हुंहुङ्कारध्वस्तदैत्ये शरण्ये शरणं भव ॥
महानादे महावीर्ये महामोहविनाशिनि । महावन्ध्यापहे देवि देहि नेत्रत्रयं मम ॥
सर्वमङ्गलमङ्गल्या यदि त्वं सत्यतोऽम्बिके । ततो मे मङ्गलंदेहि नेत्रदानान्नमोऽस्तु ते
यदि सर्वकृपालुभ्यः सत्यतस्त्वं कृपावती । ततः कृपां कुरु मयि देहि नेत्रेनमोऽस्तु ते
पापोऽयमितियद्देविप्रकुप्यसिवृथैवतत् । त्वं मां मोहयसि त्वेवंनतेतत्किंनमोऽस्तु ते
स्वयमुत्पाद्य यो रेणुं वेष्टितस्तेनकुप्यति । तथाकुप्यसि मे मातरनाथस्याऽस्यदर्शय॥
इति स्तुता पाण्डवेन देवी कृष्णच्छविच्छविः ।
रामा (रा)रमाभिवदना प्रत्यक्षा समजायत ॥ ६७ ॥
विद्युत्कोटिसभाभासमुकुटेनाऽतिशोभिता।सूर्यबिम्बप्रभाभ्यांचकुण्डलाभ्यांविभूषिता
प्रवाहेनेव हारेण सुरनद्या विराजिता । कल्पद्रुमप्रसूनैश्च पूर्णावतंसमण्डिता ॥ ६९ ॥
दन्तेन्दुकान्तिविध्वस्तभक्तमोहमहाभया । खड्गचर्मशूलपात्रचतुर्भुजविराजिता ॥७०
वाससा तडिदाभेनमेघलेखेव वेष्टिता । मालया सुममालिन्या भ्राजितासालिमालया
सतां शरणदाभ्यां च पद्भ्यां नूपुरराजिता । जयेति पुष्पवर्षैश्च शक्राद्यैरभिपूजिता ॥
गणैर्देवीभिराकीर्णाशतपद्मैर्महामलैः । तां तादृशींव्योम्निदृष्ट्वामातरं व्योमवाहिनीम् ॥
भूमौ निपत्य राजेन्द्रो नमोनम इति स्थितः ।
भीमोऽपि मातरं दृष्ट्वा यथा बालोऽभिधावति ॥ ७४॥
तथा सम्मुखमाधावज्जय मातरिति ब्रुवन् । दर्शनेनैव देव्याश्च शुभनेत्रत्रयस्तदा ॥७५॥

प्रणिपत्यनमस्तुभ्यंनमस्तुभ्यंमुहुर्जगौ । प्रसीद देवि पद्माक्षि पुनर्मातः प्रसीद मेऽङ्ग ।
पुनः प्रसीद पापस्य क्षमाशीले ! प्रसीद मे ॥ ७७ ॥
एवंस्तुता भगवती स्वयमुत्थाप्यपार्थिवम् । भीमश्चोत्सङ्गमारोप्यकृपयेदंवचोऽब्रवीत् ।

श्रीदेव्युवाच

यत्त्वयाऽभिहितं स्तोत्रं तेन तुष्टा तवोपरि । अतोनेत्रत्रयं दत्तं द्वे बाह्येचान्तरं परम् ।
नाऽहं कोपं यत्र तत्र दर्शयामि वृकोदर। त्वं तु प्रमाणपुरुषस्त्वत्तः क्रोधमदर्शयम् ।
नैतत्प्रियञ्च कृष्णस्यभ्रातुर्मेक्रोधमाचरम् । भवन्तो वासुदेवस्य यत्रप्राणा बहिश्चराः ।
त्वं च निन्दसि मां नित्यं तच्च जाने वृकोदर । मत्प्रभावपरिज्ञानहेतवे कीदृशस्त्विति ।
तदेवं नैवभूयस्ते प्रकर्तव्यं कथञ्चन । अक्षिक्षेपो हि पूज्यानामावहत्यधिकंतमः ।
तदिदानीं सर्वमेवं क्षन्तव्यं च परस्परम् । यच्चब्रवीमि त्वां वीर तन्निशामय भारत ।
यदा यदाहि धर्मस्यग्लानिराविर्भवेद्धरिः । तदातदावतीर्याऽहं विष्णोरस्य सहायिनी ।
इदानीं च हरिर्जातो वसुदेवसुतो भुवि । अहं च गोपनन्दस्य एकानंशाभिधासुता ।
तद्यथाभगवान्कृष्णोममभ्राताऽभिपूजितः । भवन्तोऽपितथामह्यंभ्रातरःपाण्डवाः ।
येभीमभगिनीत्येवंमांस्तोष्यन्तिनरोत्तमाः । आबाधानाशयिष्यामितेषांहर्षसमन्विता ।
त्वं च भ्रातुर्जयं वीर! प्रदास्यसि महारणे ।
भुजयोस्ते वसिष्यामि धार्तराष्ट्रनिपातने ॥ ८० ॥
कृत्वा राज्यंच वर्षाणि षट्त्रिंशत्तदनन्तरम् । महाप्रस्थानधर्मेणपृथिवीं परिचरिष्यथ ।
अस्मिन्नेव ततो देशे लोहोनाम महासुरः । भवतां न्यस्तशस्त्राणां वधार्थं प्रक्रमिष्यति ।
ततस्तं सर्वभूतानामवध्यं भवतां कृते । अन्धं कृत्वा पातयिष्ये ततो यूयं प्रयास्यथ ।
निस्तीर्य च हिमं सर्वं निमग्ना वालुकार्णवे । स्वर्गंयास्यतिराजैकःसशरीरोगमिष्यति ।
अन्धो यत्र कृतो लोहो लोहाणाभिधया पुरम् ।
भविष्यति च तत्रैव स्थास्येऽहं कलया सदा ॥ ८५ ॥
ततः कलियुगेप्राप्ते केलो नाम भविष्यति । ममभक्तस्तस्यनाम्नाभाव्याकेलेश्वरीति ।
वैलाकश्चाऽपरोभक्तोभविष्यतिममोत्तमः । तस्याराधनतःख्यातिंप्रयास्यामिवदान्यताम् ।

लोहाणासंस्थितांचैव येऽर्चयिष्यन्तिमां जनाः । श्रद्धयासितसप्तम्यांतैश्चसर्वत्रपूजिता
अन्धानाञ्चप्रदास्यामि भावीनिनयनान्यहम् । तस्मिन्दिनेतर्पिताऽहंभक्तिभावेनपाण्डव
पादाङ्गुष्ठेन च भवांस्तत्र कुण्डं विधास्यति । सर्वतीर्थस्नानतुल्यं तत्र स्नानञ्च तद्दिने
मत्स्यानां नेत्रनेत्रस्थतेजस्तन्मात्रमुत्तमम् । उद्धृत्य योजयिष्यामिप्रत्यक्षंतद्भविष्यति
एवं मम महास्थानं कलौ ख्यातं भविष्यति ॥१०२॥
लोहाणाख्यं महाबाहो नाम केलेश्वरीति च । दुर्गमाख्यंततोहत्वाअस्मिन्क्षेत्रेचभारत
दुर्गानाम भविष्यामि महीसागरपूर्वतः । धर्मारण्ये वसिष्यामि भवतांत्राणकारणात्
धर्मारण्ये स्थितां चैव येऽर्चयिष्यन्ति मानवाः ।
आश्विने मासि चैत्रे वा नवम्यां शुक्लपक्षके ॥ १०५ ॥
स्नात्वा महीसागरे च तेषां दास्यामि वाञ्छितम् ।
विधिना येऽर्चयिष्यन्ति माञ्च श्रद्धासमन्विताः ॥१०६ ॥
पुत्रपौत्रान्प्रदास्यामि स्वर्गं मोक्षं न संशयः । प्रवेशे च कलेः कालेभवतांवंशसम्भवः
वत्सराजः पाण्डवानां तोषयिष्यति यत्नतः ॥ १०७ ॥
वत्सनाम्वाततःख्याताभविष्यामिकलौयुगे । वत्सेश्वरीतिवत्सस्यराज्ञःसर्वार्थदायिनी
मत्प्रसादात्सराजा वै भवनोत्तापकारिणीम् । अट्टालयांनामतदाराक्षसींनिहनिष्यति
तस्याश्चाऽपिवधस्थानमट्टालजमितिस्थितम् । भविष्यतिपुरंतत्रमाञ्चसंस्थापयिष्यति
अट्टालयाजग्रामेमामर्चयिष्यन्ति ये जनाः । वत्सेश्वरींसिताष्टम्यामाश्विनेतैःसदार्चिता
वत्सेश्वरीञ्च ये देवीं पूजयिष्यन्ति मानवाः । तेषांसर्वफलावाप्तिर्भविष्यति न संशयः
सत्यमट्टालये वासो लोहाणे च भविष्यति । धर्मारण्ये महाक्षेत्रे महीसागरसन्निधौ
मम लोकहितार्थाय लोहस्यच निशम्यताम् । अधीकृतोमयालोहोवह्नीस्तप्तातपःसमाः
वृत्रासुर इवाऽजेयो लोकानुत्सादयिष्यति । तं च विश्वपतिर्धीमानवतीर्य बुधो हरिः
तत्र हन्ता तत्र ग्रामं लोहाटीति भविष्यति । गयोनाम महादैत्यो भवतां विघ्नकृत्तदा
तत्स्थाने लोहवद्भावी करिष्ये तं नपुंसकम् । गयत्राडेति मान्तत्रपूजयिष्यन्तिमानवाः
ग्रामं चापि गयत्राडं तत्रख्यातंभविष्यति । गयत्राडेगयत्राडांयेऽर्चयिष्यन्तिमानवाः

माघाष्टम्यां न शिष्यन्ति तस्य सर्वेऽप्युपद्रवाः ।
ये च मां कोपयिष्यन्ति पाण्डवाराधितां सदा ॥ ११६ ॥
तेषां पुंस्त्वं हरिष्यामि महारौद्राभ्रितिष्ठति । परिवारश्चमेचाऽत्रषण्डःसर्वोभविष्य
तस्मिन्कलियुगे घोरे रौद्रेरुद्रेऽतिनिर्घृणे । एवं तृतीयं तन्मह्यं स्थानमत्र भविष्यति
भवत्सु च स्वर्गतेषुगयोऽपिसुमहत्तपः । तप्त्वाप्राप्यपुनःपुंस्त्वंलोकान्सम्पीडयिष्य
गयातीर्थं गतं तं च गयाध्वंसनकाम्यया । बुध्र एव जगत्स्वामी तत्र तं सूदयिष्य
इत्थं श्रीमान्पीतवासाअवतीर्यबुध्रः प्रभुः । बहूनि कृत्वा कर्माणिस्वस्थानंप्रतिपत्स्य
इति संक्षेपतः प्रोक्तं भविष्यं पाण्डवा मया । भवतां चित्तनिर्वृत्यै श्रूयतां भूय एव
इदं तीर्थवरं मह्यं संसेव्यं सर्वदा प्रियम् । कृतं यदत्राऽऽगमनं तेन प्रीतिः परा कृ
भीमस्य चाऽपि पौत्रेण दृढं सन्तोषिताऽस्मि च ।
देव्यः सर्वाश्च मद्रूपं नैतज्ज्ञेयमतोऽन्यथा ॥ १२७ ॥
व्रजध्वं चाऽपि तीर्थानि यानि वो न कृतानि च ।
आबाधास्वस्मि सर्वासु स्मरणीया स्वसेव च ॥ १२८ ॥
आपृच्छे चाऽपि वः सर्वान्यूयं कृष्णसमा मम ॥ १२९ ॥

सूत उवाच

इति देव्यावचःश्रुत्वाविस्मयोत्फुल्ललोचनाः । पुनःपुनःप्रणम्यैनांनाऽपश्यन्दीपवज्ज
ततस्तेवर्बरीकञ्चसंस्थाप्याऽत्रैवनिष्ठितम्।आगच्छयोगेचोक्त्वेदंचक्रुस्तीर्थानिमुख्य

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे कौमारिकाखण्डे बर्बरीकोपाख्याने केलेश्वरी-वत्सेश्वरी-दुर्गादेवी-गयत्राडामाहात्म्यवर्णनंनाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

———

षट्षष्टितमोऽध्यायः

कुरुक्षेत्रे कौरवपाण्डवसैन्ययोर्युद्धायसज्जितयोर्भीमेनयुधिष्ठिरसम्वादस्तत्रपाण्डव पक्षीयैरर्जुनादिभिर्युद्धे सैन्यमंहारायसमयसीमानिर्धारणेबर्बरीकेण स्वहस्त- लाघवप्रदर्शनं कृष्णेनचक्रद्वारातच्छिरःकर्त्तनं तस्मैशिरसेदेवीवरदानेना ऽमरत्वप्रदानं गुप्तक्षेत्रमाहात्म्यपरिसमाप्तिः

सूत उवाच

ततस्त्रयोदशे वर्षे व्यतीते समये तदा । उपप्लवे सङ्गतेषु सर्वराजसु पाण्डवाः ॥ १ ॥
योद्धुमागत्य सन्तस्थुः कुरुक्षेत्रंमहारथाः । कौरवाश्चाऽपिसन्तस्थुर्दुर्योधनपुरोगमाः
ततो भीष्मेणप्रोक्ताश्चनरैःश्रुत्वायुधिष्ठिरः । रथातिरथसंख्यांतुराज्ञांमध्येवचोऽब्रवीत्
भीष्मेण विहिताकृष्णरथातिरथवर्णना । ततो दुर्योधनोऽपृच्छदिदंस्वीयान्महारथान्
ससैन्यान्पाण्डवानेतान्हन्यात्कालेन केन कः । मासेन तु प्रतिज्ञातंभीष्मेणच कृपेणच
पक्षं द्रोणेन चाऽह्ना च दशभिर्द्रौणिना रणे । षड्भिः कर्णेन च तथा सदाममभयंकृता
तदहं स्वांश्चपृच्छामिकेनकालेनहन्तिकः । एतच्छ्रुत्वावचोराज्ञःफाल्गुनोवाक्यमब्रवीत्
अयुक्तमेतद्भीष्माद्यैः प्रतिज्ञातं युधिष्ठिर !। ततो जये च विजये निश्चयो हि मृषैव तत्
तवाऽपियेसन्तिनृपाःसन्नद्धारणसंस्थिताः।पश्यैतान्पुरुषव्याघ्रान्कालकल्पान्दुरासदान्
द्रुपदश्च विराटञ्च धृष्टकेतुञ्च कैकयम् । सहदेवं सात्यकिं च चेकितानं च दुर्जयम् ॥
धृष्टद्युम्नं सपुत्रं च महावीर्यं घटोत्कचम् । भीमादींश्च महेष्वासान्केशवंचापराजितम्
मन्येऽहमेकस्त्वेतेषांहन्यात्कौरववाहिनीम् । सन्नद्धाःप्रतिदृश्यन्तेभीष्माद्यावहवोरथाः
तेभ्यो भयं न कार्यं ते फल्गवोऽमी मृगा इव ॥ १३ ॥
अस्माकं धनुषां घोषैरिदानीमेव भारत । कौरवाविद्रविष्यन्ति सिंहत्रस्ता मृगा इव
वृद्धाद्भीष्माद्द्विजाद्वृद्धाद्द्रोणादपिकृपादपि । बालिशात्किंभयंद्रौणेःसूतपुत्राच्चदुर्मतेः

अथवा चित्तनिर्वृत्यै ज्ञातुमिच्छसि भारत । शत्रूणां प्रत्यनीकेषु सन्धावच्छृणुमेवचः
एकोऽहमेवसङ्ग्रामे सर्वेतिष्ठन्तु ते रथाः । एकाह्नाक्षपयेसर्वान्कौरवान्सैन्यसंयुतान्
इत्यर्जुनवचः श्रुत्वा स्मयन्दामोदरोऽब्रवीत् । एवमेतद्यथा प्राहफाल्गुनोऽयंमृषानतत्
ततश्च शङ्खान्भेरीश्च शतशश्चैवपुष्करात् । निवार्यराजमध्यस्थो बर्बरीकोवचोऽब्रवीत्
येन तप्तं गुप्तक्षेत्रे येन देव्यः सुतोषिताः । यस्याऽतुलंबाहुबलं तेन चोक्तं निशम्यताम्
यद्ब्रवीमि वचः सत्यं श्रृणुध्वं तन्नराधिपाः । आत्मनो वीर्यसदृशंकेवलं न तु दर्पतः
यदार्येण प्रतिज्ञातमर्जुनेन महात्मना । न मर्षयामि तद्वाक्यं कालक्षेपो महानयम् ॥
सर्वे भवन्तस्तिष्ठन्तु सार्जुनाःसहकेशवाः । एकोमुहूर्ताद्भीष्मादीन्सर्वान्नेष्ये यमक्षयम्
मयि तिष्ठतिकेनाऽपिशस्त्रं ग्राह्यंन क्षत्रियैः । स्वधर्मशपथो वोऽस्तु मृतेग्राह्यंततोमयि

पश्यध्वं मे बलं बाह्वोर्देव्याराधनसम्भवम् ।
माहात्म्यं गुप्तक्षेत्रस्य तथा भक्तिं च पाण्डुषु ॥ २५ ॥

पश्यध्वम्मे धनुर्घोरंतूणीरावक्षयौतथा । खड्गंच देव्या यद्दत्तंततोवच्मिवचस्त्विदम्
इति तस्य वचः श्रुत्वा क्षत्रिया विस्मयं ययुः । अर्जुनश्च कटाक्षेपे लज्जितःकृष्णमैक्षत
तमाह ललितं कृष्णः फाल्गुनं परमं वचः । आत्मौपयिकमेवेदंभैमिपुत्रोऽभ्यभाषत॥
नवकोटियुतोऽनेन पलाशी निहतः पुरा । क्षणादेव च पाताले श्रूयते महदद्भुतम् ॥
पुनः प्रक्ष्यामहे त्वेनं केनोपायेनकौरवान् । मुहूर्ताद्धंसि ब्रूहीतिपृच्छ्यतांचाहतं जयः

ततः स्मयन्यादवेन्द्रो भैमिपुत्रमभाषत ॥ ३१ ॥
भीष्मद्रोणकृपद्रौणिकर्णदुर्योधनादिभिः ।
गुप्तां त्र्यम्बकदुर्जेयां सेनां हंसि कथं क्षणात् ॥ ३२ ॥

अयं महान्विस्मयस्ते वचसो भैमिनन्दन !। सम्भूतःसर्वराज्ञाञ्च फाल्गुनस्यचधीमतः
तद्ब्रूहि केनोपायेन मुहूर्ताद्धंसि कौरवान् । उपायवीर्यन्ते ज्ञात्वा मंस्यामोवयमप्युत

सूत उवाच

इत्युक्तो वासुदेवेन सर्वभूतेश्वरेण च । सिंहवक्षाः पर्वताभो नानाभूषणभूषितः ॥
घटास्योघटहासश्चऊर्ध्वकेशोऽतिदीप्तिमान् । विद्युदक्षोवायुजवोयश्चेच्छेन्नाशयेजगत्

देवीदत्तातुलबलो बर्बरीकोऽभ्यभाषत । यदि वो मानसं वीरा उपायस्य प्रदर्शने ॥
तदहं दर्शयाम्येष पश्यध्वं सहकेशवाः । इत्युक्त्वा धनुरारोप्य सन्दधे विशिखं त्वरन्
निःशल्यं चाऽपि सम्पूर्णं सिन्दूराभेण भस्मना ॥ ३८ ॥
आकर्णमाकृष्य च तं मुमोच मुखादथोद्भूतमभूच्च भस्म ॥ ३९ ॥
सेनाद्वये तच्च पपात शीघ्रं यस्यैव यत्राऽस्ति च मृत्युमर्म ।
सर्वरोमसु भीष्मस्य कण्ठे राधेयद्रोणयोः ॥ ४० ॥
ऊरौ दुर्योधनस्याऽपि शल्यस्याऽपिचवक्षसि । कण्ठेच शकुनेर्दीप्तंभगदत्तस्यचापतत
कृष्णस्य पादतलके कण्ठे द्रुपदमत्स्ययोः ।
शिखण्डिनस्तथा कट्यां कण्ठे सेनापतेस्तथा ॥ ४२ ॥
पपात रक्तं तद्भस्म यत्र येषां च मर्मंच । केवलं चैव पाण्डूनां कृपद्रौण्योश्च नास्पृशत्
इति कृत्वा ततो भूयो बर्बरीकोऽभ्यभाषत । दृष्टं भवद्भिरेवं यन्मया मर्म निरीक्षितम्
अधुना पातयिष्यामि मर्मस्वेषां शिताञ्छरान् ।
देवीदत्तानमोघाख्यान्यैर्मरिष्यन्त्यमी क्षणात् ॥ ४५ ॥
शपथावःस्वधर्मस्यशस्त्रंग्राह्यंन वःक्वचित् । मुहूर्तात्पातयिष्यामिशत्रूनेताञ्छितैः शरैः
ततो विस्मतचित्तानां युधिष्ठिरपुरोगिणाम् ।
आसीन्निनादः सुमहान्साधुसाध्विति शंसताम् ॥ ४७ ॥
वासुदेवश्च संक्रुद्धश्चक्रेण निशितेन च । एवं ब्रुवत एवाऽस्य शिरश्छित्त्वा न्यपातयत्
ततःक्षणात्सर्वमासीदाविग्नंराजमण्डलम् । व्यलोकयन्केशवन्तेविस्मिताश्चाभवन्भृशम्
किमेतदिति प्राहुश्च बर्बरीकः कुतो हतः । पाण्डवाश्चापि मुमुचुरश्रूणि सहपार्थिवाः॥
हाहा पुत्रेति च गृणन्प्रस्खलंश्च पदे पदे । घटोत्कचोऽपतद्दीनः पुत्रोपरि विमूर्च्छितः
एतस्मिन्नन्तरे देव्यश्चतुर्दश समाययुः ॥ ५१ ॥
सिद्धाम्बिका क्रोडमाता कपाली तारा सुवर्णा च त्रिलोकजेत्री ।
भाणेश्वरी चर्चिका चैकवीरा योगेश्वरी चण्डिका त्रैपुरा च ॥ ५२ ॥
भूताम्बिका हरसिद्धिस्तथाऽमूः सम्प्राप्य तस्थुर्नृपविस्मयङ्कराः ।

श्रीचण्डिकाऽऽश्वास्य ततो घटोत्कचं प्रोवाच वाक्यं महता स्वरेण॥५४॥
शृणुध्वं पार्थिवाः सर्वे कृष्णेन विदितात्मना। हेतुना येन निहतो बर्बरीकोमहाबलः
मेरुमूर्ध्निपुरापृथ्वीसमवेतान्दिवौकसः। भाराक्रान्ता जग दैतान्भारोऽपह्रियतांहिमे
ततो ब्रह्मा प्राह विष्णुं भगवंस्त्वमिदं शृणु। देवास्त्वानुगमिष्यन्तिभारंहरभुवःप्रभो!
ततस्तथेति तन्मेने वचनं विष्णुरव्ययः। एतस्मिन्नन्तरे बाहुमुद्धृत्योच्चैरभाषत॥५८
सूर्यवर्चेति यक्षेन्द्रश्चतुराशीतिकोटिपः। किमर्थं मानुषे लोके भवद्भिर्जन्म कार्यते॥५९
मयि तिष्ठति दोषाणामनेकानां महास्पदे। सर्वे भवन्तो मोदन्तु स्वर्गेषु सहविष्णुना
अहमेकोऽवतीर्यैतान्हनिष्यामिभुवोभरान्। स्वधर्मशपथा वो वैसन्तिचेज्जन्मप्राप्स्यथ
इत्युक्तवचने ब्रह्मा क्रुद्धस्तं समभाषत। दुर्मते सर्वदेवानामविषह्यं महाभरम्॥ ६२॥
स्वसाध्यं ब्रूषे मोहात्त्वं शापयोग्योऽसि बालिश!।
देशकालोचितं स्वीयं परस्य च बलं हृदा॥ ६३॥
अविचार्यैव प्रभुषु वक्ति सोऽर्हति दण्डनम्। तस्माद्भूभारहरणे युद्धस्योपक्रमे सति
शरीरनाशं कृष्णात्त्वमवाप्स्यसिन संशयः। एवं शप्तो ब्रह्मणाऽसौ विष्णुमेतदयाचत
यद्येवं भविता नाशस्तदेकं देव! प्रार्थये। जन्मप्रभृति मे देहि मतिं सर्वार्थसाधनीम्॥
ततस्तथेति तं प्राह केशवो देवसंसदि। शिरस्ते पूजयिष्यन्ति देव्याःपूज्योभविष्यसि
इत्युक्त्वाचाऽवतीर्णोऽसौसहदेवैर्हरिस्तदा। हरिर्नामसकृष्णोऽसौभवन्तस्तेतथासुराः
सूर्यवर्चाः स चाऽयंहि निहतोभैमिपुत्रकः। प्राक्छापंब्रह्मणःस्मृत्वाहतोऽनेनमहात्मना
तस्माद्दोषो न कृष्णेऽस्मिन्द्रष्टव्यः सर्वभूमिपैः॥ ६९॥

श्रीकृष्ण उवाच

यदुक्तं भूमिपा देव्या तत्तथैव न संशयः॥ ७०॥
यद्येनमधुना नैव हन्यां ब्रह्मवचोऽन्यथा। ततोभवेदिति स्मृत्वामयाऽसौविनिपातितः
गुप्तक्षेत्रे मयैवाऽसौ नियुक्तो देव्यनुस्मृतौ। पूर्वं दत्तं वरं स्वीयं स्मरता देवसंसदि॥
इत्युक्ते चण्डिकादेवीतदा भक्तशिरस्त्विदम्। अभ्युक्ष्यसुधयाशीघ्रमजरंचामरंव्यधात्
यथा राहुशिरस्तद्वत्तच्छिरः प्रणनाम तान्। उवाच च दिदृक्षामि युद्धं तदनुमन्यताम्

ततः कृष्णो वचः प्राह मेघगम्भीरवाक्प्रभुः । यावन्मही सनक्षत्रा यावच्चन्द्रदिवाकरौ
तावत्त्वं सर्वलोकानां वत्स! पूज्योभविष्यसि । देवीलोकेषुसर्वेषु देवीवद्विचरिष्यसि

स्वभक्तानां च लोकेषु देवीनां दास्यसे स्थितिम् ।
बालानां ये भविष्यन्ति वातपित्तकफोद्भवाः ।
पिटकास्ताः सुखेनैव शामयिष्यसि पूजनात् ॥ ७७ ॥
इदं च श्रृङ्गमारुह्य पश्य युद्धं यथा भवेत् ॥ ७८ ॥

यावन्तःकौरवास्त्वस्मान्वयंयामस्त्वमूनिति। इत्युक्तेवासुदेवेनदेव्योऽथाम्बरमाविशन्
बर्बरीकशिरश्चैव गिरिश्रृङ्गमवाप्य तत् । देहस्य भूमिसंस्काराश्चाभवञ्छिरसो नहि ॥

ततो युद्धं महदभूत्कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ८० ॥

अष्टादशाहेन हता ये च द्रोणवृषादयः । दुर्योधने हते क्रूरे अष्टादशदिनात्यये ॥ ८१ ॥
युधिष्ठिरो ज्ञातिमध्ये गोविन्दं समभाषत । पुरुषोत्तम संग्राममम‌ुं सन्तारिता वयम्
त्वयैव नाथेन हरे नमस्ते पुरुषोत्तम !। श्रुत्वातस्याऽपि सासूयमिदंभीमोवचोऽब्रवीत्
न ध्वस्ता धार्तराष्ट्रास्तं निराकृत्यमांनृप । पुरुषोत्तमं कृष्णमितिब्रवीषिकिमुमूढवत्
धृष्टद्युम्नंफाल्गुनंच सात्यकिंमांचपाण्डव !। निराकृत्यब्रवीष्येव सूतंधिक्त्वांयुधिष्ठिर

अर्जुन उवाच

मैवं ब्रूहि भीम न त्वं वेत्सि जनार्दनम् । नमयानत्वयापार्थनान्येनाप्यरयो हताः
हि सर्वदाऽग्रस्थं नरम्पश्यामिसंयुगे । निघ्नन्तं शात्रवांस्तत्रनजानेकोऽप्यसाविति

भीम उवाच

भ्रान्तोऽसिध्रुवंपार्थ नात्रहन्तानरोऽपरः । अथचेदस्तित्वत्पौत्रमुच्चस्थंवच्मिहन्तकः
सत्कृत्य ततो भीमो बर्बरीकमपृच्छत । ब्रूह्येते केन निहता धार्तराष्ट्रा हि शत्रवः ॥

बर्बरीक उवाच

एको मया पुमान्दृष्टो युध्यमानः परैः सह । सव्यतः पञ्चवक्त्रःसदक्षिणे चैकवक्त्रतः
सव्यतो दशहस्तश्च धृतशूलाद्युदायुधः । दक्षिणे च चतुर्हस्तो धृतचक्राद्युदायुधः ॥९१
सव्यतश्च जटाधारी दक्षिणे मुकुटोच्चयः । सव्यतो भस्मधारी च दक्षिणे धृतचन्दनः॥

सव्यतश्चन्द्रधारी च दक्षिणे कौस्तुभद्युतिः । ममाऽपि तद्दर्शनतो महद्भयमजायत ॥१३

ईदृशो मे नरो दृष्टो न चान्यो यो जघान तान् ।

इत्युक्ते पुष्पवर्षं तु खादासीत्सुमहाप्रभम् ॥ ९४ ॥

सस्वनुर्देवचाद्यानिसाधुसाध्विवतिवैजगुः। विस्मिताःपाण्डवाश्चासन्प्रणेमुःपुरुषोत्तमम्

विलक्षश्चाऽभवद्भीमो निश्वासांश्चाऽप्यमुञ्चत । तं ततःकेशवःस्वामी समादायकरेदृढे

कुरुशार्दूल एहीतिप्रोच्य सस्मारकाश्यपिम् । आरुह्यगरुडंपश्चात्स्मृतमात्रमुपस्थितम्

भीमेन सहितो व्योम्निप्रयातोदक्षिणांदिशम् । ततोऽर्णवमतीत्यैवसुवेलंचमहागिरिम्

लङ्कासमीपे दृष्ट्वैव सरः कृष्णोऽब्रवीद्वचः । कुरुशार्दूल पश्येदं सरो द्वादशयोजनम् ॥

यदि शूरोऽसितच्छीघ्रमानयाऽस्यतलान्मृदम् । इत्युक्तोगरुडाच्छीघ्रंन्यपतत्तज्जलेवली

योजनं वायुजवाद्गच्छन्नधो नान्तमपश्यत । ततोभीमोविनिःसृत्यभग्नवीर्योऽभ्यभाषत

अगाधमेतत्सुमहत्सरः कैश्चिन्महाबलैः । अहं खादितुमारब्धः कथञ्चिचाऽपि निर्गतः

एवमुक्तो हसन्कृष्ण उच्चिक्षेप महत्सरः । स्वेनाङ्गुष्ठेन तेजस्वी तदर्धाऽर्धमजायत ॥

तद्दृष्ट्वा विस्मितः प्राह किमिदं कृष्ण ! ब्रूहि मे ॥१०४ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

कुम्भकर्ण इति ख्यातः पूर्वमासीन्निशाचरः । रामबाणहतस्याभूच्छिरश्छिन्नं सुदुर्मतेः

शिरसस्तस्यतालुक्यखण्डमेतद्वृकोदर । योजनद्वादशायामं मृदु क्षिप्तं विचूर्णितम्

विधूतस्त्वं च यैस्ते तु सरोगेयाभिधाः सुराः ।

त्रिकूटस्य शिलाभिश्च चूर्णिता ये च कोटिशः ॥ १०७ ॥

एते हि विश्वरिपवोनिहताःस्युरुपायतः । गच्छामः पाण्डवान्भीमद्रौणिर्हित्वरतेदृढम्

ततो भीमः प्रणम्याह मनोवाक्कायबुद्धिभिः । कृतमाजन्मतः सर्वं कुकृतं क्षम केशव !॥

पुरुषोत्तम भवान्नाथ बालिशस्य प्रसीद मे । ततःक्षान्तमितिप्रोच्य भीमेनसहितोहरिः

रणाजिरं भूय एत्य बर्बरीकं वचोऽब्रवीत् । चरन्नेवं सुहृदय सर्वलोकेषु नित्यशः ॥

पूजितः सर्वलोकैस्त्वं यच्छंस्तेषांवरान्वृतान् । गुप्तक्षेत्रंचनत्याज्यंसर्वक्षेत्रोत्तमोत्तमम्

देहिस्थल्यां तथा वासी क्षमस्व दुष्कृतं च यत् ।

इत्युक्तस्तान्नमस्कृत्य भैमिः स्वैरं ययौ मुदा ॥ ११३ ॥
वासुदेवोऽपिकार्याणिसर्वाण्यूर्ध्वमकारयत् । इतिवोवर्णितोत्पत्तिर्बर्बरीकस्यवाडवाः
स्तवं चाऽस्यप्रवक्ष्यामि येन तुष्यति यक्षराट् ॥ ११४ ॥
जयजय चतुरशीतिकोटिपरिवार सूर्यवर्चाभिधान यक्षराज जय भूभारहरणप्रवृत्त लघुशापप्राप्तनैर्ऋतियोनिसम्भव जय कामकण्टकटाकुक्षिराजहंस जय घटोत्कचानन्दवर्धन बर्बरीकाभिधान जयकृष्णोपदिष्ट श्रीगुप्तक्षेत्र देवीसमाराधनप्राप्तातुलवीर्य जय विजय सिद्धिदायक जय पिङ्गलारेपलेन्द्रदुहद्रुहानवकोटीश्वरपलाशनदावानल जय भूपातालान्तराले नागकन्यापरिहारक जय भीममानमर्दन जय सकलकौरवसेनावधमुहूर्तप्रवृत्त जयश्रीकृष्णवरलब्धसर्ववरप्रदानसामर्थ्यजयजयकलिकालवन्दित नमोनमस्ते पाहिपाहीति ॥ ११५ ॥
अनेन यः सुहृद्यं श्रावणेऽभ्यर्च्य दर्शके । वैशाखेच त्रयोदश्यां कृष्णपक्षे द्विजोत्तमाः
शतदीपैः पूरिकाभिः संस्तवेत्तस्य तुष्यति ॥ ११६ ॥
ततो विप्रा नारदश्च समाराध्य महेश्वरम् । महीनगरकेपुण्ये स्थापयामास शङ्करम्
लोकानां च हितार्थाय केदारंलिङ्गमुत्तमम् । अत्रीशादुत्तरे भागे महापापप्रणाशनम्
अत्र कुण्डे नरः स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा यथाविधि । अत्रीशंचनमस्कृत्यकेदारंचप्रपश्यति
मातुः स्तन्यं पुनर्नैव स पिबेन्मुक्तिभाग्भवेत् । ततो रुद्रो नीलकण्ठोनारदायमहात्मने
वरं दत्त्वा स्वयं तस्थौ महीनगरके शुभे । कोटितीर्थे नरः स्नात्वानीलकण्ठंप्रपश्यति॥
जयादित्यं नमस्कृत्य रुद्रलोकमवाप्नुयात् । जयादित्यंपूजयन्तिकूपे स्नात्वानरोत्तमाः
नतेषांवंशनाशोऽस्तिजयादित्यप्रसादतः । तेषांकुलेनरोगःस्यान्नदारिद्र्यं नलाञ्छनम्
पुत्रपौत्रसमायुक्ता धनधान्यसमायुताः । भुक्त्वा भोगानिह बहून्सूर्यलोके वसन्ति ते
इति प्रोक्तं मया विप्रागुप्तक्षेत्रंसमासतः । सप्तक्रोशप्रमाणंचक्षेत्रस्याऽस्य पुरा द्विजाः
स्वयम्भुवा प्रोक्तमिदं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ १२५ ॥
इति वो वर्णितः पुण्यो महीसागरसम्भवः । शृण्वन्सङ्कीर्तयंश्चैवं सर्वपापैः प्रमुच्यते
य इदं श्रावयेद्विद्वान्महामाहात्म्यमुत्तमम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति

गुप्तक्षेत्रस्य माहात्म्यं सकलं श्रावयेद्यदि । सर्वैश्वर्यमवाप्नोति ब्रह्महत्यां व्यपोहति
कोटितीर्थस्य माहात्म्यं महीनगरकस्य च । शृणोति श्रावयेद्यस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते
कोटितीर्थेनरःस्नात्वाश्राद्धंकृत्वाप्रयत्नतः । दानंदद्याद्यथाशक्त्याशृणुध्वंतत्फलंहिमे
स्वर्गपातालमर्त्येषु यानि तीर्थानि सन्ति वै । तेषु दानेषु यत्पुण्यं तत्फलंप्राप्यतेनरैः
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरिष्टैश्चैवाऽऽप्तदक्षिणैः । सर्वव्रततपोभिश्च कृतैर्यत्पुण्यमाप्यते ॥

तत्पुण्यं प्राप्यते विप्राः कोटितीर्थे न संशयः ॥१३३ ॥

इदं पवित्रं खलु पुण्यदं सदा यशस्करं पापहरं परात्परम् ।

शृणोति भक्त्या पुरुषः स पुण्यभागसुक्षये रुद्रसलोकतां व्रजेत् ॥ १३४ ॥

धन्यं यशस्यं नियतं सुपुण्यं स्वर्मोक्षदं पापहरं नराणाम् ।

शृणोति नित्यं नियतः शुचिः पुमान्भित्त्वा रविं विष्णुपदं प्रयाति ॥१३५॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
कौमारिकाखण्डे गुप्तक्षेत्रमाहात्म्यपरिसमाप्तिवर्णनं नाम
षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

अतऊर्ध्वं कापिलस्थानोपाख्यानं भविष्यति ॥ (!)

इति श्रीस्कान्दपुराणीयप्रथममाहेश्वरखण्डान्तर्गतो द्वितीयः कौमारिकाखण्डः
समाप्तः मूलखण्डः (१) अन्तर्गतः खण्डः (२) ॥

इति कौमारिकाखण्डः समाप्तः

शुभम्भूयात्

* श्रीगणेशाय नमः *

अथ स्कान्देमहापुराणे प्रथमे माहेश्वरखण्डे

तृतीयमरुणाचलमाहात्म्यम्

तत्र पूर्वार्धः प्रारभ्यते

—*०*—

प्रथमोऽध्यायः

ब्रह्मसनकसम्वादे लिङ्गप्रादुर्भाववर्णनम्

ललाटे त्रैपुण्ड्री निटिलकृतकस्तूरितिलकःस्फुरन्मालाधारःस्फुरितकटिकौपीनवसनः
दधानो दुस्तारं शिरसि फणिराजं शशिकलां प्रदीपःसर्वेषामरुणगिरियोगीविजयते

व्यास उवाचः

अथाऽऽहुर्मुनयः सूतं नैमिषारण्यवासिनः। अरुणाचलमाहात्म्यं त्वत्तःशुश्रूषवोवयम्
तन्माहात्म्यं वदेत्युक्तः सूतः प्रोवाच तान्मुनीन्।

श्रीसूत उवाच

एतदर्थं चतुर्वक्त्रं पप्रच्छ सनकः पुरा॥ ३॥

शृणुताऽवहितायूयंतद्वोवक्ष्यामिसाम्प्रतम्। यदाकर्णयतांभक्त्यानराणांपापनाशनम्
सत्यलोके स्थितं पूर्वं ब्रह्माणं कमलासनम्। सनकःपरिपप्रच्छप्रणतःप्राञ्जलिःस्थितः

सनक उवाच

भुवनाधार ! देवेश ! वेदवेद्य चतुर्मुख । आसीदशेषविज्ञानं प्रसादाद्भवतो मम ॥ ६ ॥
भवद्भक्तिविभूत्या मे शोधिते चित्तदर्पणे । विम्बते सकलं ज्ञानं सकृद्देवोपदेशतः
साराथं वेदवेदानां शिवज्ञानमनाकुलम् । लब्धवानहमत्यन्तं कटाक्षैस्ते जगद्गुरोः
लिङ्गानि भुवि शैवानि दिव्यानिचकृपानिधे । मानुषाणिचसैद्धानिभौतानिसुरनायक
यल्लिङ्गममलं दिव्यमरिच्छेदनवैभवम् । स्वयम्भु जाम्बवे द्वीपे तैजसं तद्वदस्व मे
नामस्मरणमात्रेण यत्पातकविनाशनम् । शिवसारूप्यदं नित्यं मह्यं वद दयानिधे! ॥
अनादिजगदाधारं यत्तेजः शैवमव्ययम् । यच्च दृष्ट्वा कृतार्थः स्यात्तन्मह्यमुपदिश्यताम्
इति भक्तिमतस्तस्य कौतूहलसमन्वितम् । वाक्यमाकर्ण्यभगवान्प्रससादतपोनिधिः

दध्यौ च सुचिरं शम्भुं पङ्कजासनसंस्थितः ।
अन्तरङ्गसुखाम्भोधिमग्नचेताश्चतुर्मुखः ॥ १४ ॥

दृष्ट्वा यदापुरादृष्टं तेजःस्तम्भमयं शिवम् । उत्तीर्णसकलाधारं नकिञ्चित्यप्रत्यवुध्यत
पुनराज्ञां शिवाल्लब्ध्वामनुपालयितुं प्रभुः । निर्वर्त्त्य हृदयं योगात्सस्मार सुतमानतम्
शिवदर्शनसञ्जातपुलकाङ्कितविग्रहः । आनन्दवाष्पवन्नेत्रः सगद्गदमभाषत ॥ १७ ॥

ब्रह्मोवाच

अन्तः संस्मारितःपुत्र भवताऽहंपुरातनम् । शिवयोगमनुध्यायन्नस्मार्षंतवचाऽऽदरात्
शिवभक्तिः परा जाता तपोभिर्बहुभिस्तव । तया मदीयं हृदयं व्यावर्त्तितमिवक्षणात्
पावयन्तिजगत्सर्वं चरितैस्ते निराकुले । येषां सदाशिवे भक्तिर्वर्द्धते सार्वकालिकी
सम्भाषणं सहावासः क्रीडा चैव विमिश्रणम् । दर्शनंशिवभक्तानांस्मरणंचाघनाशनम्
श्रूयतामद्भुतं शैवमाविर्भूतं यथा पुरा । अव्याजकरुणापूर्णमरुणाद्र्यभिधंमहः ॥२२॥

अहं नारायणश्चोभौ जातौ विश्वाधिकोदयात् ।
वहुस्यामिति सङ्कल्पं वितन्वानात्सदाशिवात् ॥ २३ ॥

स्वभावेनसमुद्भूतौविवदन्तौ परस्परम् । नच श्रान्तौ नियुध्यन्तौ साहङ्कारौकदाचन
परस्परं रणोत्साहमावयोरतिभीषणम् । आलोक्य करुणामूर्तिरचिन्तयदथेश्वरः ॥

किमर्थमनयोर्युद्धं जायते लोकनाशनम् । मया सृष्टमहं पातेति विवादमधितस्थुषोः
समयेऽस्मिन्स्वयंलक्ष्योमुग्धयोरनयोर्भृशम् । यदियुद्धंनरोत्स्यामितदास्याद्भुवनक्षयः
वेदेषु ममसाहात्म्यं विश्वाधिकतया श्रुतम् । नजानातेइमौमुग्धौक्रोधतोगलितस्मृती
सर्वोऽपि जन्तुरात्मानमधिकंमन्यतेभृशम् । अमतान्यसमाधिक्यस्त्वधःपततिदुर्मतिः
यद्यहंक्वापिभुवनेदास्यामिमितिमात्मनः। तदातद्रूपविज्ञानात्सआत्मासोऽपिमामियात्
इति निश्चित्य मनसा स्वयमेव सदाशिवः । आवयोर्युध्यतोर्मध्ये वह्निस्तम्भःसमुद्यतः
अतीत्य सकलाँल्लोकान्सर्वतोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ ३२ ॥
अनाद्यन्ततयाद्याथद्भुगारतौसम्व्यतिष्ठताम्। तेजःस्तम्भंज्वलन्तंतमालोक्यशिथिलाशयौ
आवयोः पुरतोजाता वाणीचाप्यशरीरिणी । किमर्थं बालकौयुद्धंकल्प्यतेमूढमानसौ
युवयोर्बलवैषम्यंशिव एव विवेक्ष्यते । तेजःस्तम्भमयं रूपमिदं शम्भोर्व्यवस्थितम् ॥
आद्यन्तयोर्यदि युवामीक्षिषाथांबलाधिकौ । इतितांगिरमाकर्ण्यनियुद्धाद्विरतौतदा ॥
अहं विष्णुश्चगतिमान्विचेतुंतद्व्यवस्थितौ । अग्निस्तम्भमयं रूपंशम्भोराद्यन्तवर्जितम्
अलोकिंतुंव्यवसितावावामाद्यन्तभागतः । विम्बितंव्योमगंचन्द्रंयथाबालौजिघृक्षतः ॥
तथैवाऽऽवांसमुद्युक्तौपरिच्छेत्तुंचतन्महः। अथविष्णुर्महोत्साहात्क्रोडोऽभूत्सुमहावपुः
तन्मूलविचयाऽयाञ्चभूमिगर्भंव्यदारयत् । अहं च हंसतां प्राप्तो महावेगं समुत्पतन्
दिदृक्षुस्तच्छिरोभागं वियदूर्ध्वमगाहिषम् ।
अधोधो दारयन्क्षोणिमशेषामपि माधवः ॥ ४१ ॥
आविर्भूतमिवाधस्तादग्निस्तम्भवैक्षत । अनेककोटिवर्षाणि विचिन्वन्नपि तेजसः ॥
अपश्यन्नादिमक्षय्यमार्त्तरूपः स विह्वलः । विशीर्णदंष्ट्रवलयो विगलत्सन्धिबन्धनः ॥
श्रमातुरस्तृषाक्रान्तो नो यातुमशकद्धरिः । वाराहं रूपमतुलं सन्धारयितुमक्षमः ॥
वोढुमपि विश्रान्तो विषसाद रमापतिः । अचिन्तयदमेयात्मा परिश्रान्तशरीरवान्
गलितश्रीःक्रियाश्रान्तःशरण्यंशिवमाश्रयन् । धिङ्ममेदं महन्मौढ्यमहङ्कारसमुद्भवम्
येनाऽहमात्मनो नाथमात्मानं नावबुद्धवान्। अयं हि सर्ववेदानां देवानां जगतामपि
मूलभूतः शिवः साक्षान्मूलमस्य कथं भवेत् ।

अस्मादेव समुद्भूतोऽस्म्यहमाद्यन्तवर्जितात् ॥ ४८ ॥
यन्मयाऽन्वेष्टुमारब्धं शिवं पशुवपुर्धृता । अव्याजकरुणाबन्धोः पितुःशम्भोःप्रसादतः
पुनरेवेदृशी लब्धा मतिर्मेस्वात्मबोधिना । स्वयमेव महादेवः शम्भुर्यं पातुमिच्छति
तस्य सद्यो भवेज्ज्ञानमनहङ्कारमात्मजम् । न शक्नोमि पुनः कर्तुं पूजामस्यजगद्गुरोः
निवेदयामिचात्मानंशरणंयामि शङ्करम् । इति दध्यौशिवंविष्णुःस्तुत्यामर्पितचेतनः॥
सत्प्रसादाद्भूतपतेः पुनरेवोद्धृतः क्षितौ । अहं च गगने ऽभ्राम्यमनेकानपिवत्सरान्
आघूर्णमाननयनः श्लथपक्षः श्रमं गतः । उपर्युपरि चाऽपश्यं ज्वलनं पुरतः स्थितम् ॥
तेजः स्तम्भं स्थूललिङ्गाभं शैवं तेजः सुरार्चितम् ।
आहुः स्म केचिदालोक्य सिद्धास्तेजोऽशसंभवाः ॥ ५० ॥
नित्यांशम्भोःपरांकोटिंदिदृक्षुं मांकृतोद्यमम् । अहोऽयंसत्यंमुग्धत्वमद्यापिचचिकीर्षति
आसन्नदेहपातोऽपिनाहङ्कारोऽस्यवैगतः । विशीर्यमाणपक्षोऽयंश्रान्त्वाविभ्रान्तलोचनः
अपारतेजसि व्यर्थो विमोहोऽयं भविष्यति । एवंव्याकुलचित्तोऽयंक्रोडरूपीजनार्दनः
व्यावर्त्तितः शिवेनैव निर्व्याजकरुणाजुषा । ईदृशां ब्रह्ममुख्यानां सुराणांकोटिसम्भवः
यत्तेजः परमाणुभ्यस्तस्य पारं दिदृक्षते । स्वात्मनोयोगतोध्यात्वासमयेभगवाञ्छिवः
यदि बुद्धिंददात्यस्मै तस्यनश्येदहंक्रिया । इत्येवं वदतां तेषां सिद्धानां सदयं वचः
आकर्ण्यशीर्णाहङ्कारोह्यहमात्मन्यचिन्तयम् । नवेदराशिविज्ञानात्तपस्तीर्थनिषेवणात्
सञ्जायते शिवज्ञानमस्यैवानुग्रहादृते । शीर्णेऽपि पक्षयुगले सीदत्यङ्गे ह्यचञ्चले ॥
पुनरुत्सहते चेतः स्वाहङ्कारस्य सङ्ग्रहे ।
धिङ्मामहंक्रियाक्रान्तमनात्मबलवेदिनम् ॥ ६४ ॥
शिवार्पितमनस्केभ्यः सिद्धेभ्यः सततं नमः । येषां संसर्गलब्धेन विभवेन समन्विताः
देवाःसर्वे भविष्यन्ति सततं शमितारयः । यस्य वेदा न जानन्ति परमार्थमहागमैः॥
तमेव शरणं यामि शम्भुंविश्वविलक्षणम् । अवादिषमथाभाष्यं विष्णुं कमललोचनम्
लब्धदेहः शिवंभक्त्यासंश्रितश्चन्द्रशेखरम् । अहोकिमिदमाश्चर्यमागतंशौर्यशालिनाम्
शम्भुनायत्समुद्भूतमहङ्कारमुपाश्रितौ । आवांपरस्परंयुद्धमाकर्ण्यविपुलं महत् ॥६६॥

त एव शङ्करः सर्वमहङ्कारमथाऽऽवयोः । अपाहरदमेयात्मा स्वमाहात्म्यप्रकाशनात्
इममीश्वरमानतं सुरैरनलस्तम्भमयं सदाशिवम् ।
अभिपूजयितुं प्रवर्तते स भवेद्वै भवसागरस्य नौः ॥ ७२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धे ब्रह्मसनकसम्वादे लिङ्गप्रादुर्भाववर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्मविष्णुस्तुतिपूर्वकमरुणाचलेश्वरशङ्करस्यस्थावरलिङ्गमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अथाऽहमुच्चरन्वेदानशेषैर्वदनैः शिवम् । अस्तौषं भक्तिसंपूर्णं कृत्वामानसमर्चनम् ॥१
नमः शिवाय महते सर्वलोकैकहेतवे । येन प्रकाश्यते सर्वं ध्रियते सततं नमः ॥ २ ॥
त्वव्याप्तमिदं तेजः प्रकाशयतिसन्ततम् । नेक्षन्तेत्वद्दयाहीनाजात्यन्धाभास्करंयथा
लिङ्गममलंह्येतद्दृश्यमध्यात्मचक्षुषा । अन्तःस्थं वा वहिःस्थं वा त्वद्भक्तैरनुभूयते ॥
अपरिच्छेद्यमाकारमन्तरात्मनि योगिनः । तदेतत्तव देवेश ज्वलितं दर्पणो यथा ॥
अथवाशाङ्करीशक्तिःसत्याऽणोरप्यणीयसी । मत्तोनान्यतरःकश्चिद्यन्मय्यपिविलीयते
अणुस्तेकरुणापात्रंमहत्त्वंध्रुवमश्नुते । नाधिकोऽस्तिपरस्त्वत्तोनमत्तोऽपित्वदाश्रयात्
त्वय्यर्पितं मनस्त्वत्तो न वियोगमपेक्षते । वाचः कथं प्रवृत्तिः स्यात्तववैभवकीर्त्तने
त्वयमीशमहादेव प्रसीद भुवनाधिक । आदिश प्रयतं भक्तमपेक्षितनियुक्तिषु ॥ ६॥
इदं विज्ञाप्य विनयान्नमस्कृत्वा पुनः पुनः । प्राञ्जलिर्देवदेवेशं न्यषीदं सविधे विभोः॥
अथविष्णुर्नवाम्भोदगम्भीरध्वनिरभ्यधात् । वाचः कृतार्थयन्भूयः शुक्लाःशङ्करकीर्त्तनैः
जय त्रिभुवनाधीश जय गङ्गाधर प्रभो ! । जय नाथ विरूपाक्ष जय चन्द्रार्द्धशेखर !॥

---

६५ तम श्लोके "विभवेन समन्विताः" इति पाठात्पूर्वं तपसा शोधिताशयः॥६५
शिवमेनं विजानामि आत्महेतुं पुरःस्थितम् । यत्प्रसादोपलब्धेन "इति पाठः पठनीयः"

अव्याजममितं शम्भो कारुण्यं तव वर्द्धते। येननिर्धूतमखिलं भक्तेषु ज्ञानमाहितम्॥
पालनं सर्वविद्यानां प्रापणं भूतिसञ्चयः। पुराणं च सुपुत्राणां पितुरेव प्रवर्धनम्
शतानामपि मूर्तीनामेकामपिनवैः स्तवैः। स्तोतुं न शक्नुमेशान समवायस्तुकिम्पुनः
त्वमेव त्वामलं वेत्तु यदि वा त्वत्प्रसादतः।
भ्रमरः कीटमाकृष्य स्वात्मानं किं न चाऽऽनयेत्॥ १६॥
देवास्त्वदंशसम्भूतिप्रभवोनभवन्तिकिम्। अप्यायस्याग्निकीलस्यदाहशक्तिर्नकिंभवेत्
देशकालक्रियायोगाद्यथाऽग्नेर्भेदसम्भवः। तथाविषयभेदेनत्वमेकोऽपि विभिद्यसे॥
अनुग्रहपरो देव मूर्तिं दर्शय शङ्कर। आवयोरखिलाधार नयनानन्ददायिनीम्॥ १९॥
एवं प्रणमतोर्देवः श्रद्धाभक्तिसमन्वितम्। प्रससाद परं शम्भुः स्तुवतोरावयोर्द्वयोः॥
तेजस्तस्मात्पुनस्तस्माद्देवश्चन्द्रार्द्धशेखरः। आविर्बभूवपुरुषःकपिलः कालकन्धरः॥२१
परशुं वालहरिणं करैरभयविश्रमौ। दधानः पुरुषोऽवादीत्पुत्रावावामिति प्रभुः॥२२॥
परितुष्टोऽस्मि युवयोर्भक्त्या युक्तात्मनोर्मयि।
भवतं सर्वलोकानां सृष्टिरक्षाधिपौ युवाम्॥ २३॥
युवयोरिष्टसिद्ध्यर्थमाविर्भूतोऽस्म्यहं यतः। वरंवृणु तन्मयञ्च वरदोऽहमुपागतः॥२४
इति देवस्य वचनात्सुप्रीतौ च कृताञ्जली। विज्ञापयामासिवतौस्वंस्वमर्थंपृथक्पृथक्
अहं मन्त्रैः शिशुप्रायजगत्त्रयविधायकः। संस्तुवन्वैदिकैर्मन्त्रैरीशानमपराजितम्॥
नमस्येऽहमिदं रूपं शश्वद्वरदमीश्वरम्। तेजोमयं महादेवं योगिध्येयं निरञ्जनम्॥२७
आपूर्यमाणंभवता तेजसा गगनान्तरम्। परिपृच्छ्यः सुरावासः क्षणाद्देव भविष्यति
सिद्धचारणगन्धर्वा देवाश्च परमर्षयः। नावसन्दिवि सञ्चारं लभेरंस्तेजसा तव॥
पृथ्वी च सकला चैव तप्यमाना तवौजसा।
चराचरसमुत्पत्तिक्षमा नैव भविष्यति॥ ३०॥
उपसंहृत्य तेजः स्वमरुणाचलसञ्ज्ञया। भवस्थावरलिङ्गं त्वं लोकानुग्रहकारणात्
ज्योतिर्मयमिदंरूपमरुणाचलसञ्ज्ञितम्। ये नमन्तिनरा भक्त्यातेभवन्त्यमराधिकाः
सेवन्तांसकलालोकाःसिद्धाश्चपरमर्षयः। गणाश्चविविधाभूमौमानुषं भावमास्थिताः

व्यारामसमुद्भूतकल्पकाद्याः सुरद्रुमाः । सेविनस्त्वांप्ररोहन्तुभरिता विविधैःफलैः
व्यौषधिगणास्सर्वे सिंहाद्यामृगजातयः । प्रशान्ताःपरिवर्त्तन्तां पापकल्मषनाशनम्
अयनद्वयभिन्नेन गमनेनाऽपि संयुतः । न लङ्घयिष्यति रविः शृङ्गं लिङ्गतनोस्तव ॥

दिव्यदुन्दुभिशङ्खानां घोषैः पुष्पौघवृष्टिभिः ।
सेवितो भव देव ! त्वमप्सरोनृत्यगीतिभिः ॥ ३७ ॥

मरत्वञ्चसिद्धत्वंरससिद्धीश्चनिर्वृतिम् । लभन्तांमानुषानित्यंत्वत्सन्निधिमुपागताः
शत्वञ्च वशित्वञ्चसौभाग्यंकालवञ्चनम् । त्वामाश्रित्यनरास्सर्वे लभन्तामरुणाचल
र्वावयवदानेन सर्वव्याधिविनाशनात् । सर्वाभीष्टप्रदानेन दृश्यो भव महीतले ॥४०
थेति वरदं देवमरुणाद्रिपतिंशिवम् । प्रणम्य कमलानाथः प्रार्थयन्निदमब्रवीत् ॥४१॥
सीद करुणापूर्ण शोणशैलेश्वर प्रभो !। महेश सर्वलोकानां हिताय प्रकटोदय॥४२॥
दाऽहं त्वामुपाश्रित्यजगद्रक्षणदक्षिणः । श्रीपतित्वमनुप्राप्तस्तदा भक्ता भवन्तु ते ॥

नाल्पपुण्यैरुपास्येत त्वद्रूपं महदद्भुतम् ।
मया च ब्रह्मणा चैवमदृष्टपदशेखरः ॥ ४४ ॥

दक्षिणानमस्कारैर्नृत्यगीतैश्च पूजनैः । त्वामर्चयन्ति ये मर्त्याः कृतार्थास्तेगतांहसः
पवासैर्व्रतैः सत्रैरुपहारैस्तथाऽर्चनैः । त्वामर्चयन्ति मनुजाः सार्वभौमा भवन्तु ते॥
रामं मण्डपञ्चाऽपि कूपं विधिविशोधनम् । कुर्वतामरुणाद्रीशसन्निधाने पुनर्भव ॥
प्रदक्षिणं कुर्वन्नष्टैश्वर्यसमन्वितः । अशेषपातकैः सद्यो विमुक्तो निर्मलाशयः ॥
वामप्यविमुञ्चन्तो सदा त्वत्पादपङ्कजम् । ध्यातव्यंमनुजैःसर्वैस्तव सन्निधिमागतैः
थाऽस्त्विति वरं दत्त्वाविष्णवे चन्द्रशेखरः । अरुणाचलरूपेणप्राप्तःस्थावरलिङ्गताम्
जसं लिङ्गमेतद्धि सर्वलोकैककारणम् । अरुणाद्रिरिति ख्यातं दृश्यते वसुधातले ॥
युगान्तसमये क्षुब्धैश्चतुर्भिरपि सागरैः । अपि निर्मग्नलोकान्तैरस्पृष्टान्तिकभूतलम् ॥
जप्रमाणैः पृषतैः पूरयन्तो जगत्त्रयम् । पुष्कराद्या महामेघा विश्रान्ता यस्यसानुनि
वृत्ते भूतसंहारे प्रकृतौ प्रतिसञ्चरे । भविष्यत्सर्वबीजानि निषेदुर्यत्र निश्चयम् ॥
था चाहूयमानेभ्यः प्रलयानन्तरं पुनः । यत्पादसेविविप्रेभ्यो वेदाध्ययनसंग्रहः॥५५॥

सर्वासामपि विद्यानां कलानां शास्त्रसम्पदाम् ।
आगमानाञ्च वेदानां यत्र सत्यव्यवस्थितिः ॥ ५९ ॥

यद्गुहागह्वरान्तस्था मुनयः शंसितव्रताः । जटिनः सम्प्रकाशन्ते कोटिसूर्याग्नितेजसः
पञ्चब्रह्ममयैर्मन्त्रैः पञ्चाक्षरवपुर्धरैः । अकारपीठिकारूढो नादात्मा यः सदाशिवः ॥
अष्टभिश्च सदा लिङ्गैरष्टदिक्पालपूजितः । अष्टमूर्त्तितया योऽयमष्टसिद्धिप्रदायकः ॥

यत्र सिद्धास्तथालोकान्स्वान्स्वान्मुक्त्वा सुरेश्वराः ।
अपेक्षन्ते स्थिता मुक्तिं विहाय कनकाचलम् ॥ ६० ॥

एवं वसुन्धरापुण्यपरिपाकसमुच्चयः । अरुणाद्रिरिति ख्यातो भक्तभक्तिवरप्रदः॥६१॥
कैलासान्मेरुशिखरादागतैर्देवसञ्चयैः । पूज्यते शोणशैलात्मा शम्भुः सर्ववरप्रदः ॥

इति कमलजवक्त्रपद्मजातं मुदितमनाः सनको निशम्य भक्त्या ।
विरचितविनयः प्रणम्य पुत्रः पितरमपृच्छदशेषवेदसारम् ॥ ६३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धे ब्रह्मविष्णुस्तुतिपूर्वकं शङ्करस्य
स्थावरलिङ्गमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२ ॥

तृतीयोऽध्यायः

पार्वत्याः शिवनेत्रनिमीलनेन तमसाक्षुब्धलोकपापभयेनकाञ्च्यांकम्पास्थिते-काम्रतलेतपश्चर्याकरणार्थमागमनं शिवविरहश्च

सनक उवाच

भगवन्नरुणाद्रीशमाहात्म्यमिदमद्भुतम् । श्रुतं शिवप्रसादेन दयया ते जगद्गुरोः ॥१॥
आश्चर्यमेतन्माहात्म्यं सर्वपापविनाशनम् । आराधयन्पुनः के वा वरदं शोणपर्वतम्

अनादिरन्तरहितः शिवः शोणाचलाकृतिः । युवयोस्तपसा देव वरदानाय संस्थितः
सकृत्सङ्कीर्तितेनाम्निशोणाद्रिरिति मुक्तिदे । सन्निधिःसर्वकामानांजायतेचाघनाशनम्
शिवशब्दामृतास्वादः शिवार्चनकथाक्रमः । इति तद्वचनं श्रुत्वा देवदेवः पितामहः ॥
उवाच करुणामूर्तिररुणाद्रीशमानमन् ।

ब्रह्मोवाच

श्रूयतां वत्स ! पार्वत्याश्चरितं यत्पुरातनम् ॥ ६ ॥
अरुणाद्रीशमाश्रित्ययथा सा निर्वृताऽभवत् । आससादमहादेवःकदाचित्पार्वतीपतिः
रत्नसिंहासनं दिव्यं रत्नतोरणसंयुतम् । रत्नपुष्पफलोपेतकल्पद्रुममनोहरम् ॥ ८ ॥
पराघ्र्यदृषदास्तीर्णं वद्धमुक्तावितानकम् । विमुक्तपुष्पप्रकरदिव्यधूपोरुसौरभम् ॥ ६॥
लम्बमालिकाजालनिनदद्भृङ्गसङ्कुलम् । दिव्यतूर्यघनारावप्रनृत्यद्गुहवाहनम् ॥१०॥
पार्वतींसिंहसंचारपरित्रस्तमहागजम् । अप्सरोभिः प्रनर्त्ताभिर्गायन्तीभिश्च केवलम् ॥
आसेवितपुरोरङ्गं दिक्पालकनिषेवितम् । ऋग्यजुःसामजैर्मन्त्रैः स्तुवद्भिर्मुनिपुङ्गवैः ॥
ब्रह्मर्षिभिस्तथा देवैः सिद्धै राजर्षिभिर्वृतम् । गणैश्चविविधाकारैर्भस्मालङ्कृतविग्रहैः
रुद्राक्षधारसुभगैरापूर्णं शिवतत्परैः । वीणावेणुमृदङ्गादितौर्यत्रिकजनिस्वनैः ॥१४॥
घण्टाटङ्कारसुभगैर्वेदध्वनिविमिश्रितैः । मनोहरं महादिव्यमासनं पार्वतीसखः ॥१५॥
अलञ्चकार भगवान्भक्तानुग्रहकाम्यया । आस्थाय विमलं रूपं सर्वतेजोमयं शिवम्
अम्बिका सहितः श्रीमान्विजहार दयानिधिः ।
सङ्गीतेन कथाभेदैर्द्यूतक्रीडाविकल्पनैः ॥ १७ ॥
गणानां विकटैर्नृत्यै रमयामास पार्वतीम् । विसृज्यसकलान्देवानृषींश्चापिसभासदः
वरान्प्रदाय विविधान्भक्तलोकाय वाञ्छितान् । आगमेषु विचित्रेषु सर्वर्तुकुसुमेषु च
विजहारोमया सार्द्धं रत्नप्रासादपङ्क्तिषु । वापिकासु मनोज्ञासु रत्नसोपानपङ्क्तिषु
कलिपर्वतश्रृङ्गेषु हेमरम्भावनान्तरे । गङ्गातरङ्गशीतेन फुल्लपङ्कजगन्धिना ॥ २१ ॥
वातेन मन्दगतिना विहारविहतश्रमः । स्वकामतः स्वयं देवः प्रेयसीमभ्यनन्दयत् ॥
रतिरूपां शिवां देवीं सर्वसौभाग्यसुन्दरीम् ।

कदाचिद्रहसि प्रीता निजाज्ञावशवर्त्तिनम् ॥ २३ ॥

रमणंजानतीमुग्धापश्चादभ्येत्यसादरम् । कराभ्यांकमलाभाभ्यांत्रिनेत्राणिजगद्गुरोः

पिदधे लीलया शम्भोः किमेतदिति कौतुकात् ।

चन्द्रादित्याग्निरूपेण पिहितेष्वक्षिषु क्रमात् ॥ २५ ॥

अन्धकारोऽभवत्तत्र चिरकालं भयङ्करः । निमिषार्द्धेन देवस्य जग्मुर्वत्सरकोटयः ॥

देवीलीलासमुत्थेन तमसाऽभूज्जगत्क्षयः । तमसा पूरितं विश्वमपारेण समन्ततः॥२७॥

शून्यं ज्योतिःप्रचारेण विनाशं प्रत्यपद्यत । न व्यजृम्भन्त विबुधा न च वेदाश्चकाशिरे

नाऽपि जीवाः समभवन्नव्यक्तं केवलंस्थितम् । जगतामपिसर्वेषामकालेवीक्ष्यसंक्षयम्

तपसा लब्धस्फूर्तीनां विचारः समपद्यत । किमेतमत्तमसो जन्म भुवनक्षयकारणम् ॥

भगवानपि सर्वात्मा न नूनं कालमाक्षिपत् । देवी विनोदरूपेण पिधत्ते पुरजिद्दृशः

तेनेदमखिलं जातं निस्तेजो भुवनत्रयम् । अकालतमसा व्याप्ते सकले भुवनत्रये ॥

का गतिर्लब्धराज्यानां तपसा देवजन्मनाम् । न यज्ञाःसम्प्रवर्तन्ते न पूज्यन्तेसुराभुवि

इति निश्चित्य मनसा वीक्ष्य ते ज्ञानचक्षुषा ।

नित्यास्ते सूरयो भक्त्या शम्भुमानम्य तुष्टुवुः ॥ ३४ ॥

नमः सर्वजगत्कर्त्रे शिवाय परमात्मने । मायया शक्तिरूपेण पृथग्भावमुपेयुषे ॥३५॥

अविनाभाविनी शक्तिराद्यैका शिवरूपिणी ।

लीलया जगदुत्पत्तिरक्षासंहृतिकारिणी ॥ ३६ ॥

अर्धाङ्गी सा तवदेवशिवशक्त्यात्मकं वपुः । एक एव महादेवो न परे त्वद्विना विभो

लीलया तव लोकोऽयमकाले प्रलयं गतः । करुणा तव निर्व्याजा वर्द्धतां लोकवर्द्धनी

भवतो निमिषार्द्धेन तेजसामुपसंहृतेः । गतान्यनेकवर्षाणि जगतां नाशहेतवे ॥३९॥

ततः प्रसीद करुणामूर्त्ते काल! सदाशिव । विरम प्रणयारब्धादमुष्माल्लोकसङ्क्षयात्

इति तेषां वचः श्रुत्वा भक्तानां सिद्धिशालिनाम् ।

विसृजाऽक्षीणि गौरीति करुणामूर्त्तिरब्रवीत् ॥ ४१ ॥

विससर्ज च सा देवी पिधानं हरचक्षुषाम् । सोमसूर्याग्निरूपाणां प्रकाशमभवज्जगत्

कियान्कालो गतश्चेतिपृष्टैः सिद्धैश्च वै नतैः। उक्तंत्वन्निमिषार्द्धेनजग्मुर्वत्सरकोटयः
अथ देवः कृपामूर्त्तिरालोक्य विहसन्प्रियाम्। अब्रवीत्परमोदारः परं धर्मार्थसंग्रहम्
अविचार्य कृतं मुग्धे भुवनक्षयकारणात्। अयुक्तमिह पश्यामि जगन्मातुस्तवैव हि॥
अहमप्यखिलाँल्लोकान्संहरिष्यामिसङ्क्षये। प्राप्तेकालेत्वयामौग्ध्यादकालेप्रलयंगताः
ईदृशं वा त्वादृशी कुर्यादीदृशं सद्भिगर्हितम्। कर्म नर्मण्यपि सदा कृपामूर्तिर्न बाधते
इति शम्भोर्वचःश्रुत्वा धर्मलोपभयाकुला।
किं करिष्यामि तच्छान्त्या इत्यपृच्छत्स्म तं प्रिया॥ ४८॥
अथदेव प्रसन्नात्माव्याजहारदयानिधिः। देव्यास्तेनानुतापेनभक्त्याचतोषितःशिवः॥
मूर्तेस्तत्र केयं वा प्रायश्चित्तिरिहोच्यते। अथाऽपि धर्ममार्गोऽयं त्वयैवपरिपाल्यते
श्रुतिस्मृतिक्रियाकल्पा विद्याश्च विबुधादयः। त्वद्रूपमेतदखिलं महदर्थोऽस्मि तन्मयः
मान्ययाभिन्नया देव्या भाव्यं लोकसिसृक्षया।॥ ५२॥
तस्माल्लोकानुरूपन्ते प्रायश्चित्तंविधीयते। षड्विधो गदितोधर्मःश्रुतिस्मृतिविचारतः
स्वामिना नाऽनुपाल्येत यदि त्याज्योऽनुजीविभिः।
न त्वां विहाय शक्नोमि क्षणमप्यासितुं क्वचित्॥ ५४॥
अहमेव तपः सर्वं करिष्याम्यात्मनि स्थितः। पृथ्वी च सकलाभूयात्तपसासफलातव
त्वत्पादपद्मसंस्पर्शात्त्वत्तपोदर्शनादपि। निरस्यन्ति स्वसान्निध्याद्दुष्टजातमुपद्रवम्
धर्मभूमेस्त्वमाधिक्यहेतवेपुण्यमाचर। त्वत्तपश्चरणं लोके वीक्ष्य सर्वोऽपि सन्ततम्
धर्मे दृढतरां बुद्धिं निबध्नीयान्न संशयः। कृतार्थयिष्यति महीं दया ते धर्मपालनैः॥
नमेवैतत्सकलंप्रोक्तावेदैर्देवि सनातनैः। अस्ति काञ्चीपुरीख्यातासर्वभूतिसमन्विता
या दिवं देवसम्पूर्णां प्रत्यक्षयति भूतले। यत्र क्लृप्तं तपः किञ्चिदनन्तफलमुच्यते॥ ६०॥
देवाश्चमुनयःसर्वेवासंवाञ्छन्तिसन्ततम्। तत्र कम्पेतिविख्यातामहापातकनाशिनी॥
तत्र स्थितानां मर्त्यानां कम्पन्ते पापकोटयः। तत्र चूतद्रुमश्चैको राजते नित्यपल्लवः
सम्पूर्णशीतलच्छायः प्रसूनफलपल्लवैः। तत्र जप्तं हुतं दत्तमनन्तफलदं भवेत्॥ ६३॥
गणाश्च विविधाकारा डाकिन्यो योगिनीगणाः।

परितस्त्वां निषेवन्तां विष्णुमुख्यास्तथा पराः ॥ ६४ ॥
अहं च निष्कलोभूत्वातवमानसपङ्कजे । सन्निधास्यामि मा भूस्त्वं देवि!मद्विरहाकुला
इत्युक्ता देवदेवेन देवी कम्पान्तिकं ययौ । तपः कर्तुं सखीयुक्ताविस्मयाक्रान्तलोचना
कम्पाञ्च विमलां सिन्धुमुनिसङ्घनिषेविताम् । आलोक्यकोमलदलमेकाम्रंद्रुष्टिवारणम्
फलपुष्पसमाकीर्णं कोकिलालापसङ्कुलम् । प्रससाद पुनर्देवं सस्मार च महेश्वरम् ॥
कामाग्निपरिवीताङ्गीतपःक्षामेवसाऽभवत् । अभ्यभाषतसागौरीविजयांपार्श्ववर्त्तिनीम्
कामशोकपरीताङ्गी पुरारिविरहाकुला ॥ ७० ॥
इममग्रहरमागतानिशं स्वयमपि पूजयितुं तपोभिरीशम् ।
अयमभिनवपल्लवप्रसूनः स्मरयति मां स्मरबन्धुरेकचूतः ॥ ७१ ॥
कथमिव विरहः शिवस्य सह्यः क्षुभितधियाऽत्र भृशं मनोभवेन ।
तदपि च तरुणेन्दुचूडपादस्मरणमहौषधमेकमेव दृष्टम् ॥ ७२ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्द्धे पार्वत्याः शिवनेत्रमीलनेन तमसा क्षुब्धलोकपापभयेन काञ्च्यां कम्पास्थितैकाम्रतले तपश्चर्यार्थमागमनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

विजयासान्त्वनयापार्वत्यातपःकरणं आकाशवाण्यागौतमऋषेराश्रमगमनाय प्रेरणं देव्यास्तत्रगमनम्

ब्रह्मोवाच

अथाऽभ्यधत्त विजयाप्रणम्यजगदम्बिकाम् । सान्त्वयन्तीस्तुतिशतैरुपायैःशिवदर्शनैः
देवि त्वमविनाभूता सदा देवेन शम्भुना । प्राणेश्वरीत्वमेकाऽसिशक्तिस्तस्यपरात्मनः

तथा मायां त्वमात्मीयां सन्दर्शयितुमीहसे । पृथग्भावमिवेशानःप्रकाशयतिनस्वयम्
आदेशं प्रतिगृह्यैव समुपेताऽसि पार्वति !। अलङ्घनीया सेवाज्ञा शाम्भवी सर्वदात्वया

विधातव्यं तपः प्राप्तं स्थानेऽस्मिञ्छिवकल्पिते ।
निवृत्त्य निखिलान्कामाञ्छम्भुमाश्रितया त्वया ॥५ ॥

अन्यथाऽपि जगद्रक्षा त्वदधीना जगन्मयि !। धर्मसंरक्षणं भूयः शिवेन सहितं तव ॥

निष्कलं शिवमत्यन्तं ध्यायन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
वियोगदुःखं कच्चित्त्वं न स्मरिष्यसि पार्वति !॥ ७ ॥

भक्तानां तव मुख्यानां तवैवाऽऽचारसंग्रहः । उपदेशितया लोके प्रथतां धर्मवत्सले!॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा गौरी सुस्थिरमानसा । तपः कर्त्तुं समारेभेकम्पानद्यास्तटेशुभे
विमुच्य विविधा भूषा रुद्राक्षगणभूषिता । विसृज्य दिव्यं वसनं पर्यधाद्वल्कलेशुभे॥
अलकैः सहसा शिल्पमनयच्च कपर्दताम् । अलिम्पत तनूं सर्वां भस्मना मुक्तकुङ्कुमा ॥
मृगेषु कृतसन्तोषा शिलोञ्छीकृतवृत्तिषु । जजाप नियमोपेता शिवपञ्चाक्षरं परम् ॥
कृत्वा त्रिषवणं स्नानं कम्पापयसि निर्मले । कृत्वा च सैकतं लिङ्गंपूजयामाससादरम्
वृक्षप्ररोपणैर्दानैरशेषातिथिपूजनैः । श्रान्तिं हरन्ती जीवानां देवी धर्ममपालयत् ॥
ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यस्थावर्षासुस्थण्डिलेशया । हेमन्तेजलमध्यस्थाशिशिरेचाऽकरोत्तपः
पुण्यात्मनां महर्षीणां दर्शनार्थमुपेयुषाम् । विस्मयं जनयामास पूजयामास सादरम्

कदाचित्स्वयमुच्चित्य वनान्तात्पल्लवान्वितम् ।
पुष्पोत्करं विशेषेण शोधितुं समुपाविशत् ॥ १७ ॥

कृत्वा च सैकतं लिङ्गं कम्पारोधसि पावने । सम्पूजयितुमारेभे न्यासावाहनपूर्वकम्
पूर्वमभ्यर्च्य विधिवद्भक्तैः पुष्पैश्च चन्दनैः । पञ्चावरणसंयुक्तं क्रमादानर्च शङ्करम् ॥
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्भक्तिभावसमन्वितैः । अपरोक्षितमीशानमालुलोके पुरोहितम् ॥२०॥
अथ देवः शिवःसाक्षात्संशोधयितुमम्बिकाम् । कम्पानद्याःप्रवाहेणमहतापर्यवेष्टयत्

अतिवृद्धं प्रवाहं तं कम्पायाः समुपस्थितम् ।
आलोक्य नियमासीनामाहुः सख्यस्तदाम्बिकाम् ॥ २२ ॥

उत्तिष्ठ देवि वहुलः प्रवाहोऽयंविजृम्भते । दिशां मुखानि सम्पूर्य तरसा प्लावयिष्यति
इति तद्वचनं श्रुत्वा ध्यायन्ती मीलितेक्षणा । उन्मील्य वेगमतुलं नद्यास्तं समवैक्षत
अचिन्तयच्च सा देवी पूजाविघ्नसमाकुला । किं करोमि न शक्नोमिहातुमारब्धमर्चनम्
श्रेयः प्राप्तुमविघ्नेन प्रायः पुण्यात्मनाम्भुवि । घटते धर्मसंयोगोमनोरथफलप्रदः ॥
सैकतं लिङ्गमतुलप्रवाहाल्लयमेष्यति । लिङ्गनाशे विमोक्तव्यः सङ्गक्तैः प्राणसंग्रहः ॥
प्रवाहोऽयं समायाति शिवमायाविनिर्मितः । विशोधयितुमात्मानं भक्तियुक्तंनिजेपदे
आलिङ्ग्यसुदृढंदोर्भ्यामेतल्लिङ्गमनाकुलम् । अहंवत्स्यामियाताऽऽशुसख्योयूयंविदूरतः
इत्युक्ता सैकतंलिङ्गंगाढमालिङ्ग्यसाम्बिका । न मुमोचप्रवाहेणवेष्ट्यमानापिवेगतः
स्तनचूचुकनिर्मग्नमुद्रादर्शितलाञ्छनम् । महालिङ्गं स्वसंयुक्तं प्रणनाम तदादरात् ॥

निमीलितेक्षणा ध्याननिष्ठैकहृदया स्थिता ।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गी सा स्मरन्ती सदाशिवम् ॥ ३२ ॥

कम्पस्वेदपरित्राणलज्जाप्रणयकेलिदात् । क्षणमप्यचला लिङ्गाद्य वियोगमपेक्षते ॥
अथ तामब्रवीत्काऽपि दैवीवागशरीरिणी । विमुञ्चबालिके लिङ्गंप्रवाहोऽयंगतोमहान्
त्वयाऽर्चितमिदं लिङ्गं सैकतं स्थिरमैरवम् । भविष्यति महाभागे वरदं सुरपूजितम्
तपश्चर्यां तवाऽऽलोक्यरचितंधर्मपालनम् । लिङ्गं चैतन्नमस्कृत्य कृतार्थाःसन्तुमानवाः
अहं हि तैजसं रूपमास्थाय वसुधातले । वसामि चाऽत्र सिद्ध्यर्थमरुणाचलसञ्ज्ञया
रुणद्धि सर्वलोकेभ्यः परुषं पापसञ्चयम् । रुणो न विद्यते यस्मिन्दृष्टेतेनाऽरुणाचलः
ऋषयः सिद्धगन्धर्वा महात्मानश्च योगिनः । मुक्त्वा कैलासशिखरं मेरुञ्चैनमुपासते
मदंशजातयोः पूर्वं युध्यतोर्ब्रह्मकृष्णयोः । अहं मोहमपाकर्त्तुन्तेजोरूपो व्यवस्थितः॥
ब्रह्मणा हंसरूपेण विष्णुना क्रोडरूपिणा । अदृष्टशेखरपदः प्रणतो भक्तियोगतः ॥

ततः प्रसन्नः प्रत्यक्षस्ताभ्यां वरमभीप्सितम् ।
प्रादां जगत्त्रयस्याऽस्य संरक्षायान्तु कौशलम् ॥ ४२ ॥

प्रार्थितश्च पुनस्ताभ्यामरुणाचलसञ्ज्ञया । अनैषि तैजसं रूपमहं स्थावरलिङ्गताम् ॥
गत्वा पृच्छ महाभागं मद्भक्तिं गौतमं मुनिम् । अरुणाचलमाहात्म्यं श्रुत्वातत्रतपश्चर

तत्र ते दर्शयिष्यामि तैजसं रूपमात्मनः। सर्वपापनिवृत्त्यर्थं सर्वलोकहिताय च ॥
इति वाचं समाकर्ण्य निष्कलात्कथितां शिवात्। तथेति सहसादेवीगन्तुंसमुपचक्रमे
अथ देवानृषीन्सर्वान्पश्चात्सेवार्थमागतान्। अवादीदम्बिकालोक्यस्नेहपूर्णेन चक्षुषा
तिष्ठताऽत्रैव वै देवा मुनयश्च दृढव्रताः। नियमांश्चाऽधितिष्ठन्तः कम्पारोधसिपावने
सर्वपापक्षयकरं सर्वसौभाग्यवर्द्धनम्। पूज्यतां सैकतं लिङ्गं कुचकङ्कणलाञ्छनम् ॥
अहं च निष्कलं रूपमास्थायैतद्दिवानिशम्। आराधयामि मन्त्रेण शोणेश्वरंवरप्रदम्
मत्तपश्चरणाल्लोके मद्धर्मपरिपालनात्। मल्लिङ्गदर्शनाच्चैव सिध्यन्त्विष्टविभूतयः ॥
सर्वकामप्रदानेन कामाक्षीमितिकामतः। मां प्रणम्याऽत्रमद्भक्ताल्लभन्तांवाञ्छितंवरम्
अहं हि देवदेवस्य शम्भोरव्याहतो जनः। आदेशं पालयिष्यामिगत्वाऽरुणमहीधरम्

तत्र गत्वा तपस्तीव्रं कृत्वा शम्भुं प्रसाद्य च।
मान्तु लब्धवरां यूयं पश्चाद्द्रक्ष्यथ सङ्गताः ॥ ५४ ॥

इति सर्वान्विसृज्याऽऽशु सद्भक्तान्पादसेविनः। अरुणाद्रिंगतावालातपसे शङ्कराज्ञया

नित्याभिसेविताऽकारि सखीभिरभियोगतः।
आससादाऽरुणाद्रीशं दिव्यदुन्दुभिनादितम् ॥ ५६ ॥

अन्तस्तेजोमयं शान्तमरुणाचलनायकम्। अप्सरोनृत्यगीतैश्च पूजितं पुष्पवृष्टिभिः
प्रणम्य स्थावरं लिङ्गंकौतूहलसमन्विता। सिद्धानां योगिनांसार्थमृषीणाञ्चान्वचैक्षत
अत्रिर्भृगुर्भरद्वाजः कश्यपश्चाङ्गिरास्तथा। कुत्सश्चगौतमश्चाऽन्ये सिद्धविद्याधरामराः
तपः कुर्वन्ति सततमपेक्षितवराप्तये। गङ्गाद्याः सरितश्चान्याः परितः पर्युपासते ॥
दिव्यलिङ्गमिदं पूज्यमरुणाद्रिरिति स्मृतम्। वन्दस्वेति सुरैः प्रोक्ता प्रणनामपुनःपुनः
अभ्यर्थिता पुनः सर्वैरातिथ्यार्थे महर्षिभिः। शिवाज्ञयागौतमोमे द्रष्टव्यइतिसाऽवदत्
अयमत्रर्षिभिर्भक्तैर्निर्दिष्टं तमथाभ्यगात्। स मुनिः शिवभक्तानां प्रथमस्तपसांनिधिः
वनान्तरं गतः प्रातः समित्कुशलफलाहृतेः। अतिथीनाश्रमं प्राप्तानर्चयेति दृढव्रतान्
शिष्यानादिश्यधर्मात्मागतश्चविपिनान्तरम्। अथसागौतमंद्रष्टुमागतापर्णशालिकाम्

क्व गतो मुनिरित्युक्तैरित आयास्यति क्षणात्।

शिष्यैरभ्यर्थितेत्युक्त्वा फलमूलैस्सुगन्धिभिः ॥ ६६ ॥
अभ्युत्थानेनाऽऽसनेन पाद्येनाऽर्घ्येणसूनृतैः । वचनैःफलमूलैनसाऽर्चिताशिष्यसम्पदा
क्षणं क्षमस्वेत्यूचुस्तामन्ये जग्मुस्तदन्तिकम् । देव्यांप्रविष्टमात्रायांमहर्षेराश्रमोमहान्
अभवत्कल्पबहुलो मणिप्रासादसङ्कुलः । वनान्तरादुपावृत्त्य समित्कुशफलाहरः ॥
अपश्यत्स्वाश्रमं दूरे विमानशतशोभितम् । किमेतदिति साश्चर्यं चिन्तयन्मुनिपुङ्गवः
गौर्याः समागमं सर्वमपश्यज्ज्ञानचक्षुषा । शीघ्रं निवर्तमानोऽसौद्रष्टुंतांलोकमातरम्
शिष्यैः शीघ्रचरैर्वृत्तमावेदितमथाऽशृणोत् ॥ ७२ ॥
अथ महर्षिरुपागतकौतुको निजतपःफलमेव तदागमम् ।
शिवदयाकलितं परिचिन्तयन्नभजदाश्रममाश्रितवत्सलः ॥ ७३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धे पार्वत्याः कम्पाया अरुणाचले गौतमाश्रमागमनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

अरुणाचलशिवाविर्भावेब्रह्मपुष्करमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अरण्याद्गौतमं शान्तमुटजद्वार आगतम् । प्रत्याधातुं प्रववृते शिवभक्तिर्जगन्मयी ॥१॥
आलुलोके समायातं गौतमंशिष्यसेवितम् । लम्बमानशिरःश्मश्रुसम्पूर्णमुखमण्डलम्
जटाभिरतिताम्राभिस्तीर्थस्नानविशुद्धिभिः ।
न्यस्तरुद्राक्षमणिभिर्ज्वालाभिरिव पावकम् ॥ ३ ॥
भस्मत्रिपुण्ड्रकोपेतविशालनिटिलोज्ज्वलम् । शुक्लयज्ञोपवीतेन पूर्णं रुद्राक्षदामभिः ॥
दधानं वल्कले रक्ते तपःकृशितविग्रहम् । जपन्तं वैदिकान्मन्त्रान्रुद्रप्रीतिकरान्बहून्

शम्भुनावसितोदात्तसारूप्यमिव भासितम् । तेजोनिधिं दयापूर्णंप्रत्यक्षमिवभास्करम्
आलोक्य तं महात्मानं वृद्धं शम्भुपदाश्रयम् । कृताञ्जलिपुटा गौरी प्रणन्तुमुपचक्रमे
कृताञ्जलिं मुनिर्वीक्ष्य समस्तजगदम्बिकाम् । किमेतदिति साश्चर्यं वारयन्प्रणनामसः
स्वागतं गौरि सुभगे लोकमातर्दयानिधे ! व्याजेन भक्तसंरक्षां कर्तुमत्रागतास्यहो॥

अहो मान्ये ! मान्यमर्थं विज्ञायैव पुरा वयम् ।
पृथग्भावमिवाऽऽलम्ब्य शिष्यादिभिः समागताः ॥ १० ॥

यद्देवि ते न चेत्किञ्चिन्मायाविलसितन्निजम् । ततः प्रपञ्चसंसिद्धिःकथमेवभविष्यति
तिष्ठत्वशेषं मे वक्तुं मायाविलसितं तव । न शक्यते यन्निर्णेतुं त्वदीयैश्च कदाचन ॥
आस्यतां पावने शुद्ध आसने कुशनिर्मिते । गृह्यतां पाद्यमर्घ्यं च दत्तं च विधिवन्मया
इति शिष्यैः समानीते दर्भाङ्के परमासने । आसीनामम्बिकांवृद्धोमुनिरानर्चभक्तिमान्
निवेद्य सकलां पूजां भक्तिभावसमन्वितः । गौर्यासमभ्यनुज्ञातःस्वयमप्यासनेस्थितः
उवाच दशनज्योत्स्नापरिधौतदिशामुखः । पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः सानन्दाश्रु सगद्गदम्

अहो देवस्य माहात्म्यं शम्भोरमिततेजसः ।
सद्भक्तरक्षणाय त्वामादिशद्भक्तवत्सलः ॥ १७ ॥

असिद्धमन्यल्लब्धव्यं किं वाऽन्यत्तव विद्यते । अम्बैतद्भक्तिमाहात्म्यं सन्दर्शयितुमीश्वरः
कैलासशैलवृत्तान्तः कम्पातटतपःस्थितः । अरुणाद्रिसमादेशः सर्वं ज्ञातमिदं मया ॥
आगताऽसि महाभागे भक्ताश्रममिमंस्वयम् । स्नेहेन करुणामूर्ते कर्त्तव्यमुपदिश्यताम्

इति तस्य वचः श्रुत्वा महर्षेः सर्ववेदिनः ।
अम्बिका प्राह कुतुकात्स्तुवन्ती तं महामुनिम् ॥ २१ ॥

महावैभवमेतत्ते देवदेवः स्वयं शिवः । मध्ये तपस्विनांत्वांतु द्रष्टव्य इति चाऽऽदिशत्
आगमानां शिवोक्तानां वेदानामपि पारगः । तपसा शम्भुभक्तानां त्वमेवशिवसम्मतः

अरुणाचलनाम्नाऽहं तिष्ठामीत्यब्रवीच्छिवः ।
अस्याऽचलस्य माहात्म्यं श्रोतव्यं च भवन्मुखात् ॥ २४ ॥

यत्राऽस्म्यहं तपः कर्त्तुमरुणाचलसन्निधौ । भवतां दर्शनादेव स्वयमीशः प्रसीदति ॥

शिवभक्तेन सम्भाषा शिवसङ्कीर्त्तनश्रवः । शिवलिङ्गार्चनं लोके वपुर्ग्रहफलोदयः ॥२६
तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं श्रोतव्यं भवतो मुखात् । सुव्यक्तमुपदेशेनज्ञानतोऽसिपितामम
इति तस्या वचः श्रुत्वा गौतमस्तपसां निधिः ।
आचख्यौ गिरिशं ध्यायन्नरुणाचलवैभवम् ॥ २८ ॥
अज्ञातमिव यत्किञ्चित्पृच्छ्यतेच पुनस्त्वया । अवैमिसर्वविद्यानांमायाशैवीत्वमेवसा
अथवा भक्तवक्त्रेण शिववैभवसंश्रवः । शिक्षणं शाम्भवं तेषां तव तुष्टेश्च कारणम्
पठितानाञ्च वेदानां यदावृत्तफलावहम् । वदतां शृण्वतां लोके शिवसङ्कीर्त्तनं तथा
सफलान्यद्य सर्वाणि तपांसिचरितानि मे । यदहं शम्भुनादिष्टंमाहात्म्यंकीर्त्तयेश्रुतम्
शिवाशिवप्रसादेन माहात्म्यमिदमद्भुतम् ॥ ३३ ॥
अरुणाचलमाहात्म्यं दुरितक्षयकारणम् । श्रूयतामनवद्याङ्गि पुरावृत्तमिदं महत् ॥
अरुणाद्रिमयं लिङ्गमाविर्भूतं यथा पुरा । न शक्यते पुनर्वक्तुमशेषं वक्त्रकोटिभिः ॥
अरुणाचलमाहात्म्यं ब्रह्मणामपिकोटिभिः । ब्रह्मणाविष्णुनापूर्वंसोमभास्करवह्निभिः
इन्द्रादिभिश्च दिक्पालैः पूजितश्चाऽष्टसिद्धये । सिद्धचारणगन्धर्वयक्षविद्याधरोरगैः ॥
खगैश्च मुनिभिर्दिव्यैः सिद्धयोगिभिरर्चितः । तत्तत्पापनिवृत्त्यर्थं तत्तदीप्सितसिद्धये
आराधितोऽयं भगवानरुणाद्रिपतिः शिवः । दृष्टो हरति पापानिसेवितोवाञ्छितप्रदः
कीर्तितोऽपि जनैर्दूरैः शोणाद्रिरिति मुक्तिदः । तेजः स्तम्भमयंरूपमरुणाद्रिरितिश्रुतम्
ध्यायन्तो योगिनश्चित्ते शिवसायुज्यमाप्नुयुः ।
दत्तं हुतञ्च यत्किञ्चिज्जप्तं चाऽन्यत्तपः कृतम् ॥ ४१ ॥
अक्षय्यं भवति प्राप्तमरुणाचलसन्निधौ । पुरा ब्रह्मा च विष्णुश्चशिवतेजोंऽशसम्भवौ
साहङ्कारौ युयुधतुः परस्परजिगीषया । तथा तयोर्गर्वशान्त्यै योगिध्येयः सदाशिवः
अग्नितेजोमयं रूपमादिमध्यान्तवर्जितम् । सम्प्राप्यतस्थौतन्मध्येदिशोदशविभासयन्
तेजःस्तम्भस्य तस्याऽथ द्रष्टुमाद्यन्तभागयोः । हंसक्रोडतनूकृत्वाजग्मतुर्द्यांरसातलम्
तौ विषण्णमुखौदृष्ट्वाभगवान्करुणानिधिः । आविर्बभूव च तयोर्वरंप्रादादभीप्सितम्
तत्प्राथितश्च देवेशोयातःस्थावरलिङ्गताम् । अरुणाद्रिरितिख्यातःप्रशान्तःसम्प्रकाशते

दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषैरप्सरोगीतनर्त्तनैः । पूज्यते तैजसं लिङ्गं पुष्पवृष्टिशतैः सदा ॥४८
ब्रह्मणामप्यतीतानां पुरा षण्णवतेः प्रभुः । विष्णुनाभिसमुद्भूतोब्रह्मालोकान्ससर्जहि
स कदाचित्तपोविघ्नं कर्तुकामेनयोगिनाम् । इन्द्रेणप्रार्थितोब्रह्माससर्जललितांस्त्रियम्
लावण्यगुणसम्पूर्णामालोक्य कमलेक्षणाम् । मुमोह कन्दर्पशरैःस विद्धहृदयो विधिः
स्रष्टुकामंतमालोक्यब्रह्माणंकमलासनम् । नत्वा प्रदक्षिणव्याजाद्गन्तुमैच्छद्वराप्सराः

अस्यां प्रदक्षिणां भक्त्या कुर्वाणायां प्रजापतेः ।
चतसृभ्योऽपि दिग्भ्योऽस्य मुखान्युदभवन्क्षणात् ॥ ५३ ॥

बावालापक्षिणी भूत्वा गगनं समगाहत । पुनश्च खगरूपेण समायान्तं समीक्ष्य सा
शरणं याचमाना सा शोणाद्रिमिममाश्रयत् । ब्रह्मणा विष्णुना च त्वमदृष्टपदशेखरः
रक्ष मामरुणाद्रीश शरण्यशरणागताम् । इति तस्यांभयार्त्तायांक्रोशन्त्यामरुणाचलात्
अभूत्स्थावरालिङ्गाद्व्याधः कश्चिद्धनुर्द्धरः । सन्धाय सायकं चापे समेघगगनद्युतिः
निषादे पुरतो दृष्टे मोहस्तस्य ननाश हि । ततः प्रसन्नहृदयोऽतिनम्रः कमलोद्भवः ॥
नमश्चक्रे शरण्याय शोणाद्रिपतये तदा । सर्वपापक्षयकृते नमस्तुभ्यं पिनाकिने !॥५६
अरुणाचलरूपाय भक्तवश्याय शम्भवे !॥ अजानतां स्वभक्तानामकर्मविनिवर्त्तने ॥६०॥

त्वदन्यः कः प्रभुः कर्तुमशक्यं चाऽपि देहिनाम् ।
उपसंहर मे देहं तेजसा पापनिश्चयम् ॥ ६१ ॥

न्यं वा सृज विश्वात्मन्ब्रह्माणंलोकसृष्टये । अथ तस्यवचःश्रुत्वाशिवोर्दीनस्यवेधसः
वाच करुणामूर्तिर्भूत्वा चन्द्रार्द्धशेखरः । दत्तः कालस्तव मया पुरैव न निवर्त्यते ॥

कं वा रागाद्यो दोषा न बाधेरन्प्रभुस्थितम् ।
तस्माद्दूरस्थितोऽप्येतदरुणाचलसञ्ज्ञितम् ॥ ६४ ॥

भजस्व तैजसं लिङ्गं सर्वदोषनिवृत्तये । वाचिकं मानसं पापं कायिकं वा च यद्भवेत्
नश्यति क्षणात्सर्वमरुणाचलदर्शनात् । प्रदक्षिणानमस्कारैः स्मरणैरर्चनैः स्तवैः ॥
अरुणाद्रिरयं नृणां सर्वकल्मषनाशनः । कैलासे मेरुशृङ्गे वा स्वस्थानेषु कलाद्रिषु ॥
ईदृशः कश्चिदेवाहमरुणाद्रिरयं स्वयम् । यच्छृङ्गदर्शनान्नृणां चक्षुर्लाभेनकेवलम् ॥

भवेत्सर्वाघनाशश्च लाभश्च ज्ञानचक्षुषः । मदंशसम्भवो ब्रह्मा स्वनाम्ना ब्रह्मपुष्करे ॥
अत्र स्नातःपुरा ब्रह्मन्मोहोऽगाज्जगतीपतेः । स्नात्वात्वंब्रह्मतीर्थेमांसमभ्यर्च्यकृताञ्जलिः
मौनी प्रदक्षिणं कृत्वा विश्वात्मन्भव विज्वरः ॥ ७१ ॥
इति वचनमुदीर्य विश्वनाथं स्थितमरुणाचलरूपतो महेशम् ।
अथ सरसि निमज्ज्य पद्मजन्मा दुरितहरं समपूजयत्क्रमेण ॥ ७२ ॥
इममरुणगिरीशमेष वेधा यमनियमादिविशुद्धचित्तयोगः ।
स्फुटतरमभिपूज्य सोपचारं गतदुरितोऽथ जगाम चाऽऽधिपत्यम् ॥७३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धे ब्रह्मपुष्करमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

अरुणाचलस्थविविभतीर्थमाहात्म्यवणनम्

गौतम उवाच

पुरा नारायणः कल्पे शयानः सलिलार्णवे । शेषपर्यङ्कशयने कदाचिन्नैव बुध्यत ॥१॥
तमसा पूरितं विश्वमप्रज्ञातमलक्षणम् । वीक्ष्य कल्पावसानेऽपि विषेदुर्नित्यसूरयः ॥
अहो कष्टमिदं रूपं तमसाविश्वमोहनम् । येन कल्पावसानेऽपि विष्णुर्नाद्याऽपिवुध्यते
ज्योतिषः पुरुषं पूर्णमपश्यन्तं सुरा अपि । कथं वा तमसः शान्तिं लभेरन्परिभाविनः
इति निश्चित्य मनसा देवदेवमुमापतिम् । चिन्तयामासुरात्मस्थं तेजोराशिंनिरञ्जनम्
ततःप्रसन्नो भगवांस्तेजोराशिर्महेश्वरः । विश्वावनाय विज्ञप्तः प्रणतैर्नित्यसूरिभिः ॥६
ततस्तेजोमयाच्छम्भोः स्फुलिङ्गांशुसमुद्भवाः । उदस्तम्भन्त देवानांत्रयस्त्रिंशच्चकोटयः
वोधितः सकलैर्देवैः समुत्थाय रमापतिः ।
प्रभातं वीक्ष्य सकलं मनस्येवमचिन्तयत ॥ ८ ॥

या तमसि उद्रेकादकाले शयनं कृतम्। प्रबोधाय परं ज्योतिः स्वयं दृष्टः सदाशिवः
गदुत्पत्तिकृत्यानि स्वयं कर्तुं व्यवस्यति। किं मयाऽत्र पुनः कार्यं ब्रह्मणा वा स्वयम्भुवा
धिङ्मां स्थितमनात्मज्ञं निद्रया हृतचेतसम्। अथवा सर्वकर्तारं शरणं यामि शङ्करम्
सर्वदोषप्रशमनं सर्वाभीष्टफलप्रदम्। पवित्रमल्पपुण्यानां दुर्लभं शम्भुदर्शनम् ॥१२॥
चिन्तयन्नेवमात्मस्थं ज्योतिर्लिङ्गं सदाशिवम्। प्रणनाम हरिर्भक्त्या देवमष्टाङ्गतो मुहुः
विश्वस्रष्टारमीशानं तुष्टाव दुरितच्छिदम्। अथ तेजोमयः शम्भुः शरण्यः शरणागतम्
अनुगृह्य कटाक्षैस्तं समुत्तिष्ठेत्यभाषत। उत्थाय करुणापूर्णं शम्भुं चन्द्रार्द्धशेखरम् ॥
नमस्त्रिभुवनेशाय त्रिमूर्तिगुणधारिणे। त्रिदेववपुषे तुभ्यं त्रिदृशे त्रिपुरद्रुहे ॥ १६ ॥
त्वमेव जगतामीशो निजांशैर्देवतामयैः। कार्यकारणरूपेण करोषि स्वेच्छया क्रियाः
मां नियुज्य जगद्गुप्तौ परिमोह्य च मायया। न दोषमुत सङ्कल्पं विहातुमपि नेच्छसि

किं करोमि जगन्मूर्त्तौ न्यस्तभारोऽस्म्यहं त्वयि।
न दोषमीहसे नूनमकालशयनेन माम् ॥ १६ ॥

र शम्भो हरेरार्तिमनुतापं समीक्ष्य सः। आदिदेश हरः श्रीमान्प्रायश्चित्तं हरेरिदम् ॥
अरुणाचलरूपेण तिष्ठामि वसुधातले। तस्य दर्शनमात्रेण भविता ते तमःक्षयः ॥२१
पूर्वंस्मै विष्णवे तत्र वरो दत्तो मया पुरा। तदेव तैजसं लिङ्गमरुणानलसञ्ज्ञितम् ॥
तेजोमयमिदं रूपं प्रशान्तं लोकरक्षणात्। यदग्निमयमव्यक्तमपारगुणवैभवम् ॥२३॥
नदीनां निर्झराणां च मेघमुक्ताम्भसामपि। अन्तर्ज्योतिर्मयत्वेन लयस्तत्रैव दृश्यते ॥
अन्धानां दृष्टिलाभेन पङ्गूनां पादसञ्चरैः। अपुत्राणां च पुत्राप्त्या मूकानां वाक्प्रवृत्तिभिः
सर्वसिद्धिप्रदानेन सर्वव्याधिविमोचनैः। सर्वपापप्रशमनैर्यत्सर्ववरदं स्थितम् ॥२६॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे शम्भुर्हरिश्चैवारुणाचलम्। आगत्य तप आस्थाय शोणाचलमुपास्त च

तमद्रिं परितो दृष्ट्वा सुरान्काननसंश्रयान्।
ऋषीणामाश्रमान्पुण्यान्स्थापयामास वै हरिः ॥
वेदान्साङ्गोपनिषदान्समन्तान्मूर्तिधारिणः ॥ २८ ॥

सर्ज दिव्यरूपाणां शतमप्सरसां कुलम्। नृत्यैर्गीतैश्च वादित्रैस्सेवध्वमिति चादिशत्

स्नात्वा ब्रह्मसरस्यस्मिन्विष्णुःकमललोचनः। प्रदक्षिणंचकारामुमरुणाद्रिं समर्चितम्
अपापः सर्वलोकानामाधिपत्यञ्च लब्धवान्। रमया सहितो नित्यमभिरूपसुरूपया
भास्करस्तेजसां राशिरसुरैरपि पीडितः। ब्रह्मोपदेशादानर्च भक्त्याऽरुणगिरीश्वरम्
निमज्ज्य विमले तीर्थे पावने ब्रह्मनिर्मिते। प्रदक्षिणं चकारैनमरुणाद्रिं स्वयम्प्रभुम्॥
अशेषदैत्यविजयं लब्ध्वा मेरुप्रदक्षिणम्। लेभे च परमं तेजः परतेजःप्रणाशनम्॥३४
दक्षशापानलाक्रान्तः सोमः शिववचोबलात्। अरुणाचलमभ्यर्च्यलब्धरूपोऽभवत्पुनः
अग्निर्ब्रह्मर्षिशापेन यक्ष्मरोगप्रपीडितः। अपूतोऽपि पवित्रोऽभूदरुणाचलसेवया॥

शक्रो वृत्रं बलं पाकं नमुचिं जम्भमुद्धतम्।
शिवलब्धवरान्दैत्यान्पुरा हत्वा जगत्पतीन्॥ ३७॥

पातकैश्च परिक्षीणस्तथा लोकान्तमाश्रितः। शम्भुं प्रसाद्य तपसा शिवेनपरिचोदितः
अरुणाद्रिं समभ्यर्च्य विपापोऽभूत्सुराधिपः। इष्ट्वा च हयमेधेन प्रीणयामासशङ्करम्
लब्ध्वा चेन्द्रपदं शक्रःशतमप्सरसांकुलम्। सेवार्थमादिशच्छ्रीमान्दिव्यन्दुदुभिसेवय

पुष्पमेघान्समादिश्य दिव्याभिः पुष्पवृष्टिभिः।
समर्चयति शोणाद्रिं दिवि नित्यं च वन्दते॥ ४१॥

शेषोऽपि शोणशैलेशं समभ्यर्च्य शिवाज्ञया। अभजत्कामरूपत्वं महीमण्डलधारकः

अन्ये नागाश्च गन्धर्वाः सिद्धाश्चाऽप्सरसाङ्गणाः।
दिक्पालाश्च तमभ्यर्च्य लेभिरेऽपेक्षितान्वरान्॥॥ ४३॥

देवैरशेषैर्दैत्यादीञ्जेतुकामैः समुद्यतैः। प्रार्थितः सर्वतोऽभीष्टवरदोऽरुणभूधरः॥४४॥
त्वष्ट्रा विरचिताकारआदित्यस्तेजसा तपन्। ग्रहनाथस्तुशोणाद्रिम्विलङ्घयितुमुद्यतः

रथवाहाः पुनस्तस्य शक्तिहीनाः श्रमं गताः।
सोऽपि श्रिया विहीनश्च जातः शोणाद्रितेजसा॥ ४६॥

नाऽशक्नोच्च दिवं गन्तुं सर्वगत्यांशुमालिनः। स तु ब्रह्मोपदेशेनसमाराध्यारुणाचलम्

प्रीत्या तस्माद्विभोर्लेभे मार्गं व्योम्नो हयाञ्छुभान्।
ततः प्रभृति दिग्मांशुः स हि शोणाख्यपर्वतम्॥ ४८॥

न लङ्घयति किं त्वस्य प्रदक्षिणपरिक्रमैः । दक्षयागपरिध्वस्ता हीनाङ्गास्त्रिदशाः पुरा
अरुणाचलमाराध्यनवान्यङ्गानिलेभेरे । पूषा दन्तं शिखीहस्तं भगो नेत्रं त्वखण्डितम्
घ्राणंवाणीचलेभेसाशोणाचलनिषेवणात् । भार्गवः क्षीणनेत्रस्सविष्णुहस्तकुशाग्रतः
बलिदत्तावनीदानजलधारानिरोधतः । स तु शोणाचलं गत्वा तपःकृत्वाऽतिदुष्करम्
लेभे नेत्रं च पूतात्माभास्कराख्येगिरौस्थितः । अरुणाचलनाथस्यसेवयासूर्यसारथिः
प्रतर्दनाख्यो नृपतिर्ग्रहीतुं देवकन्यकाम् । अरुणाद्रिपतेर्गानं कुर्वन्तीं सादरोऽभवत् ॥
शापात्कपिमुखो जातोमन्त्रिभिश्चोदितोनृपः । प्रत्यर्प्यतांपुनश्चान्याःप्रादादरुणभूभृते
ततश्चारुमुखो जातः प्रसादादरुणेशितुः । सायुज्यमस्मै सकलं दत्तवान्भक्तिभावतः ॥
अरुणाचलनाथस्य सन्निधौ ज्ञानदुर्वलः । गन्धर्वः पुष्पकाख्यस्तुभक्तिहीनोह्यगात्पुरा
ततो व्याघ्रमुखं दृष्ट्वा गन्धर्वपरिचारकाः । किमेतदिति साश्चर्यं पप्रच्छुस्ते परस्परम्
अथ नारदनिर्दिष्टमवज्ञाफलमात्मनः । बुद्ध्वारुणाद्रिं सम्पूज्य पुनश्च सुमुखोऽभवत्
शिवभूमिरियं ख्याता परितो योजनद्वयम् । मुक्तिस्तत्रप्रमीतानां कदापिविलयो नहि
सप्तर्षयः पुराभूमौशापदोषसमन्विताः । सिषेविरेऽरुणाद्रिंस्वै नाथोज्ञात्वाविनिश्चयम्

शापमोक्षं ददौ श्रीमान्सप्तर्षीणां महात्मनाम् ।
सप्तर्षिभिः कृतं तीर्थं सर्वपापविनाशनम् ॥ ६२ ॥

शोणाचलस्य निकटे दृश्यते पावनं शुभम् । पङ्गुर्मुनिः शोणशैलात्पादौलब्धुंसमागतः
अन्तर्हितप्रार्थितार्थो दारुहस्तपुटे वहन् । जानुचङ्क्रमणव्यग्रः शोणनद्यास्तटं गतः ॥
दारुहस्तपुटे तीर्थे निचिक्षेप पिपासतः । जानुचङ्क्रमणे तस्मिन्धूर्तस्तोयं पिपासति
अथ शोणाचलं प्राप्तःकथं वा दारुहस्तकः । किमेतदिति तं पृच्छन्नाधावत्कलितत्परः
लब्धपादश्च सहसा जगाम च निजालयम् । नाद्राक्षीत्पुरुषं तत्र दारुहस्तौ पुरोगमौ
स्वयं गृहीत्वा चालोक्य ववन्देऽरुणपर्वतम् । ननन्द लब्धचरणो लब्धरूपोमहामुनिः

विस्मयोत्फुल्लनयनैः शिवभक्तैर्महात्मभिः ।
पूजितो लब्धपादः सञ्जगाम च यथागतम् ॥ ६६ ॥

वाली शक्रसुतः श्रीमाञ्छृङ्गादुदयभूभृतः । अस्ताचलस्य शिखरं प्रतिगन्तुं समुद्यतः ॥

आलुलोकेऽरुणगिरिं मध्ये देवनमस्कृतम् । ऊर्ध्वं गन्तुं समुद्युक्तःक्षीणवीर्योऽपतद्भुवि
पित्रा शक्रेण संगम्यचोदितःशोणपर्वतम् । लिङ्गं तैजसमभ्यर्च्यलब्धवीर्योऽभवत्पुनः
नलः पूर्वं समभ्यर्च्य स्वसृष्टामानवप्रियाः । पालयामासधर्मात्मानीतिसारसमन्वितः
इलः प्रविश्य सहसा गौरीवनमखण्डितम् । स्त्रीभावंसमनुप्राप्तःपप्रच्छ स्वं पुरोधसम्
वशिष्ठेन समादिष्टः शोणाद्रिंसमपूजयत् । तपसाऽऽराध्य देवेशंपुनः पुंस्त्वमुपागतः
सोमोपदेशाद्भक्त्याऽथ सस्माराऽरुणपर्वतम् । ईशानुग्रहतोलेभे शापमोक्षंतपोऽधिकः
लेभेच परमं स्थानमप्राप्यममरैरपि । भरतो मृगशावस्यस्मरणादायुषोऽत्यये ॥७७॥
न मुक्तिं प्राप योगेन मृगजन्मनि सङ्गतः । पत्नीविरहजं दुःखं प्राप्तवानमितं हरिः ॥
पुनर्भृगूपदेशेनशोणाद्रिमिममर्चयन् । अवतारेषु सर्वेषु सर्वदुःखान्यपाकरोत् ॥ ७९ ॥
सरस्वती च सावित्री श्रीर्भूमिःसरितस्तथा । अभ्यर्च्यशोणशैलेशमापदो निरतारिषुः
भास्करः पूर्वदिग्भागेविश्वामित्रस्तु दक्षिणे । पश्चिमेवरुणोभागेत्रिशूलं चोत्तराश्रयम्
योजनद्वयपर्यन्तेसीमाः शैलेषु संस्थिताः । चतस्रो देवतास्त्वेताः सेवन्तेशोणपर्वतम्

स्थिताः सीमावसानेषु शोणाद्रीशमवस्थितम् ।
नमन्ति देवाश्चत्वारः शिवं शोणाचलाकृतिम् ॥ ८३ ॥

अस्योत्तरस्मिञ्छिखरे दृश्यते वटभूरुहः । सिद्धवेषः सदैवाऽऽस्ते यस्य मूले महेश्वरः
यस्यच्छायातिमहती सर्वदा मण्डलाकृतिः । लक्ष्यते विस्मयोपेतैः सर्वदा देवमानवैः
अष्टभिः परितो लिङ्गैरष्टदिक्पालपूजितैः । अष्टासु संस्थितैर्दिक्षु शोभते ह्युपसेवितः॥
नृपाणां शम्भुभक्तानां शङ्कराज्ञानुपालिनाम् । अत्रैवमहदास्थानमादिदेवेन निर्मितम्
बकुलश्च महांस्तत्र सदार्थितफलप्रदः । आगमार्थविदा मूले वामदेवेन सेव्यते ॥८८॥
अगस्त्यश्च वशिष्ठश्च सम्पूज्याऽरुणभूधरम् । संस्थाप्य लिङ्गे विमले तेपातेतादृशंतपः

हिरण्यगर्भतनयः पुरा शोणनदः पुमान् ।
अत्र तीव्रं तपस्तप्त्वा गङ्गाभिमुखगोऽभवत् ॥ ९० ॥

अत्र शोणनदी पुण्या प्रवहत्यमलोदका । वेणा च पुण्यतटिनी परितः सेवतेऽचलम्
वायव्याश्चदिशोभागेवायुतीर्थं चशोभते । तत्र स्नात्वा मरुत्पूर्वंजगत्प्राणत्वमाप्तवान्

तोऽस्यगिरेस्तीर्थंसुवर्णकमलोज्ज्वलम्। दिव्यसौगन्धिकाकीर्णहंसभृङ्गमनोहरम्
कौबेरं तीर्थमैशान्यामैशान्यं तीर्थमुत्तमम्।
तस्यैव पश्चिमे भागे विष्णुः कमललोचनः।
स्नात्वा विष्णुत्वमभजत्कमलालालिताकृतिः॥ ९५॥
ग्रहाः पुरा तत्र स्नात्वा ग्रहपदं गताः। नवग्रहप्रसादश्च जायते तत्र मज्जताम्॥
विनायकस्कन्दौ क्षेत्रपालः सरस्वती। रक्षन्ति परितस्तीर्थंब्राह्ममेतदनन्तरम्॥
चयमुनाचैव गोदावरी सरस्वती। नर्मदासिन्धुकावेर्यःशोणः शोणनदी च सा
गूढा निषेवन्ते पूर्वाद्याशासु सन्ततम्। नश्यन्त्यः सकलंपापमात्मक्षेत्रसमुद्भवम्
याश्चसरितोदिव्याः पार्थिव्यश्चशुभोदकाः। उदजृम्भन्तसहसाशोणाद्रीशप्रसादतः
गस्त्यं दक्षिणे भागे तीर्थं महदुदाहृतम्। सर्वभाषार्थसंसिद्धिर्जायते तत्र मज्जताम्
गस्त्यः समागत्य स्नात्वामुनिगणावृतः। अभ्यर्चयतिशोणाद्रिंमासिभाद्रपदेसदा
शिष्ठमुत्तरेभागेतीर्थं दिव्यं शुभोदयम्। सर्ववेदार्थसंसिद्धिर्जायते तत्र मज्जनात्॥
अत्र मेरोः समागत्य वशिष्ठो भगवानृषिः।
करोत्याश्वयुजे मासि शोणाद्रीशनिषेवणम्॥ १०४॥
नाम महत्तीर्थं पूर्वोत्तरदिशि स्थितम्। तत्र स्नानाद्भवेन्नृणां सर्वपातकनाशनम्॥
द्याःसरितःसर्वाःकार्त्तिकेमासिसङ्गताः। अत्रारुणाद्रिनाथस्यसेवांकुर्वन्तिसादरम्
यं नाम महातीर्थमरुणाद्रीशसन्निधौ। तस्योपसङ्गमात्सद्यो ब्रह्महत्यादिनश्यति
मासिसमागत्य ब्रह्मलोकात्पितामहः। स्नात्वा तत्प्रत्यहंदेवमर्चयत्यरुणाचलम्
मासि समागत्य स्नात्वा तीर्थे निजैःसुरैः। महेन्द्रःशोणशैलेशमभ्यर्चयतिशङ्करम्
नाम महातीर्थं सन्निधौ तत्र वर्तते। रुद्रो ब्रह्मकपालेन सह तत्र न्यमज्जत॥११०॥
शम्भुर्गणैः सार्द्धंमाघेमासिप्रसीदति। प्रायश्चित्तानि सर्वाणिनृणां सफलयन्भुवि
यमग्निदिग्भागेतीर्थंसौभाग्यदायकम्। अग्निरत्रपुरास्नात्वास्वाहयासङ्गतःसुखी
अनङ्गोऽपि स्मरः स्नात्वा फाल्गुने मासि सङ्गतः।
अभ्यर्च्य शोणशैलेशमभूत्सर्वसुखाधिपः॥ ११३॥

दिशि दक्षिणपूर्वस्यां वैष्णवं तीर्थमद्भुतम्। ब्रह्मर्षयःसदातत्रवसन्ति कृतकौतुकाः॥
चैत्रेमासिसमागत्यविष्णुस्तत्ररमापतिः। स्नात्वाऽभ्यर्च्यारुणाद्रीशमभवल्लोकनायकः
सौरंनाम महातीर्थं कौवेरदिशि जृम्भितम्। सर्वरोगोपशान्तिश्चजायते तत्रमज्जनात्
वैशाखेमासि दिनकृत्स्नात्वाऽत्रेशंनिषेवते। वालखिल्यैः समं श्रीमान्वेदैश्चसह सङ्गतः
आश्विनंपावनंतीर्थमीशब्रह्मोत्तरेस्थितम्। आप्लुतौभिषजौदस्रौपूजावत्रनिमज्जनात्
अत्राश्विनौसमागत्यस्नात्वाऽभ्यर्च्यचशङ्करम्। दक्षिणे शोणशैलस्यनिकटेवर्त्ततेशुभम्

कामदं मोक्षदं चैव तीर्थं पाण्डवसञ्ज्ञितम्।
पुरा हि पाण्डवास्तत्र मज्जनात्क्षितिनायकाः॥ १२०॥

अत्र धात्री समागत्यसर्वौषधिफलान्विता। ज्येष्ठेमासिसमं देवैरार्चयच्चारुणाचलम्
आषाढेमासिसंत्यक्ताविश्वेदेवामहाबलाः। अभ्यर्च्यशोणशैलेशमागच्छन्मखराध्यताम्
वैश्वदेवं महातीर्थं सोमसूर्योत्तराश्रयम्। विश्वाधिपत्यमतुलं लभ्यते तत्र मज्जनात्
परितो लक्ष्यते तीर्थं पूर्वस्यां दिशि शोभने। अत्रलक्ष्मीः पुरास्नात्वालेभेपुरुषमुत्तमम्

उत्तरस्यां दिशि पुरा पुण्या स्कन्दनदी स्थिता।
अत्र स्नात्वा पुरा स्कन्दः सम्प्राप्तो विपुलं बलम्॥ १२५॥
पश्चिमस्यां दिशि ख्याता परा कुम्भनदी शुभा।
अगस्त्यः कुम्भकः कुम्भस्तत्र नित्यं व्यवस्थितः॥ १२६॥

गङ्गा च मूलभागस्था यमुना गगनेस्थिता। सोमोद्भवाशिरोभागेसेवन्तेशोणपर्वतम्
वह्न्यपि च तीर्थानि सम्भूतानि समन्ततः। तेषां भेदान्पुरावेत्तुंमार्कण्डेयस्तुनाशकत्
तपोभिर्बहुभिस्सोऽयंशोणाद्रीशमतोषयत्। प्रार्थयामासचवरंप्रीतात्तस्मान्मुनीश्वरः॥

मार्कण्डेय उवाच

भगवन्नरुणाद्रीश तीर्थभेदाः सहस्रशः। प्रख्याताश्च प्रकाशन्ते दुर्बोधास्त्वल्पचेतसाम्
कथमेकत्र सान्निध्यं लभेरन्भुवि मानवाः। अपर्याप्तश्च भवति पृथगेषांनिषेवणे॥
अन्तर्निगूढतेजास्त्वं गत्वा यःसकलैःसुरैः। आराध्यसेकुरुतथाशोणाद्रिस्पर्शभीरुभिः
अहं च शम्भुमभ्यर्च्य तपसारुणपर्वतम्। सर्वलोकोपकारार्थं सूक्ष्मलिङ्गमपूजयम्॥

[व]िश्वकर्मकृतं दिव्यं विमानं विविधोत्सवम् । सङ्कल्प्य सकलान्भोगान्नित्यानजनयत्पुनः
[ध]र्मशास्त्राणि विविधान्यवःपुर्मुनिपुङ्गवाः । शिवकार्याणि सर्वाणि चक्रुर्भक्तिसमन्विताः
[त]थावशम्भुमभ्यर्च्य कृताग्न्याहुतिसम्भवाः । सप्तकन्यावरारोहाःपूजार्थं विनियोजिताः
[ह]तशत्रुगणैर्भूपैर्लब्धराज्यैः पुरा नृपैः । प्रत्येकं विविधैर्भोगैः शोणशैलाधिपोऽर्चितः ॥

इदमनुभववैभवं विचित्रं दुरितहरं शिवलिङ्गमद्रिरूपम् ।
अमलमनभिगम्यनामधेयं वरमरुणाद्रिनायकं भजस्व ॥ १३८ ॥
अवनतजनरक्षणोचितस्य स्मरणनिराकृतविश्वकल्मषस्य ।
भजनममितपुण्यराशियोगादरुणगिरेः कृतिनः परं लभस्व ॥ १३९ ॥

[इ]ति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धेऽरुणाचलस्थविविधतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

— ——

सप्तमोऽध्यायः

अरुणाचलस्थितनानातीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

पार्वत्युवाच

[क]थमग्निमयं लिङ्गमभिगम्यमभूद्भुवि । प्राणिनामपि सर्वेषामुपशान्तिं कथं गतः ॥
[त]ीर्थानामुद्भवः पुण्यात्कथं चारुणपर्वतात् । उपसंहृतसर्वाङ्गः कथं वा वद मेऽचलः ॥

गौतम उवाच

[कृ]ते त्वग्निमयः शैलस्त्रेतायां मणिपर्वतः । द्वापरे हाटकगिरिः कलौ मरकताचलः
[ब]हुयोजनपर्यन्तं कृते वह्निमये स्थिते । बहिः प्रदक्षिणं चक्रुः प्रशाम्यति महर्षयः ॥
[श]नैः शान्तोऽरुणाद्रीशः श्रीमानभ्यर्थितः सुरैः । लोकगुप्त्यर्थमत्यर्थमुपशान्तोऽरुणाचलः
अथ गौरी मुनिं प्राह कथं शान्तोऽरुणाचलः । कथं वा प्रार्थयामासुर्देवेशं त्रिदशा इमम्

इतितस्यावचःश्रुत्वागौतमस्त्वभ्यभाषत । प्रशस्यभक्तिमतुलांतस्यास्तत्त्वार्थवेदिनीम्
गौतम उवाच
अग्निरूपं पुरा शैलमासादयितुमक्षमाः । पुरा सुराः स्तुतिं चक्रुरभ्यर्च्य क्रतुसम्भवैः॥
भगवन्नरुणाद्रीश सर्वलोकहितावह । अग्निरूपोऽपि संशान्तः प्रकाशस्व महीतले ॥१॥
असौयस्ताम्रो अरुण उतबभ्रुः सुमङ्गलः । इतित्वांसकला वेदाःस्तुवन्तिशिवविग्रहम्
नमस्ताम्रायाऽरुणाय शिवाय परमात्मने । वेदवेद्यस्वरूपाय सोमायसुखरूपिणे॥११॥
त्वद्रूपमखिलं देव जगदेतच्चराचरम् । निधानमिव ते रूपं देवानामिदमीक्ष्यते ॥ १२॥
वर्षतां च पयोदानां निर्झराणां च भूयसाम् । सलिलोपायसंहारो युक्तस्ते युगसंक्षये
अग्नेरापः समुद्भूतास्त्वत्तो हि परमात्मनः ।
विश्वसृष्टिं वितन्वन्ति विचित्रगुणवैभवात् ॥ १४ ॥
शीतोभव महादेव शोणाचल कृपानिधे !। सर्वेषामपि जीवानामभिगम्यो भव प्रभो॥
इति स्तुतः सुरैः सर्वैरानतैर्भक्तवत्सलः । सद्यः शीतलतां गच्छन्नभिगम्योऽभवत्प्रभुः
प्रावर्त्तन्त पुनर्नद्यो निर्झराश्च बहूदकाः । वर्षतामिव मेघानां न जग्राह जलं बहु॥१७॥
तथापि तरुणार्कौद्यत्कालाग्निशतकोटिभिः । समानदीप्तिरभजज्जीवानामभिगम्यताम्
विसृज्य विश्वसलिलं नदीश्च रसविक्षरैः । सम्पूर्यः सकलैर्देवः सर्वदा सम्प्रकाशते ॥
तीर्थानि तानि तान्यासन्परितः प्रार्थनावशात् ।
दिक्पालानां सुराणां च महर्षीणां महात्मनाम् ॥ २० ॥
ब्रह्मोवाच
इति तस्य वचः श्रुत्वा गौरी कुतुकसंयुता । तीर्थानामुद्भवं सर्वं श्रोतुं समुपचक्रमे ॥
पार्वत्युवाच
कानि तीर्थानि जातानि शोणाद्रेर्लोकगुप्तये । भगवन्ब्रूहि सकलं तीर्थानामुद्भवं मम ॥
इति तस्यावचःश्रृण्वन्गिरीशात्संश्रुतंपुरा । तीर्थानामुद्भवं सर्वं व्याख्यातुमुपचक्रमे ॥
गौतम उवाच
ऐन्द्रंनाम महातीर्थमिन्द्रभागे समुत्थितम् । तत्रस्नात्वापुराशक्रोब्रह्महत्यांव्यपोहयत

ब्रह्मतीर्थं पुनर्दिव्यं वह्निकोणेसमुत्थितम् । परस्त्रीसङ्गमात्पापंवह्निःस्नात्वात्रचात्यजत्
याम्यंनाममहातीर्थंयमभागेविजृम्भते । अत्र स्नात्वायमोऽत्याक्षीद्वयं ब्रह्मास्त्रसम्भवम्
नैर्ऋतन्तु महातीर्थं नैर्ऋत्यां दिशि शोभते । भूतवेतालविजयं तत्र स्नात्वर्षयो गताः
पश्चिमे वारुणं तीर्थंदिग्भागेच प्रकाशते । शल्यकोपं पुरालेभेस्नात्वाऽत्रवरुणो निजम्
वायव्ये वायवीयं च तीर्थमत्र प्रकाशते । तत्र स्नात्वा ययौ वायुर्जगत्प्राणत्ववैभवम्
उत्तरेचाऽत्र दिग्भागे सोमतीर्थमितिस्मृतम् । तत्र स्नात्वापुरासोमोयक्ष्मरोगादमुञ्चत
ऐशानेचाऽत्रदिग्भागेविष्णुतीर्थमितिस्मृतम् । तत्रस्नात्वापुराविष्णुःश्रियाचसहसङ्गतः
मार्कण्डेयः पुरा देवि प्रार्थयामास शङ्करम् । सदाशिव महादेव देवदेव जगत्पते ॥

बहूनामिह तीर्थानामेकत्र स्यात्समागमः ।
केनोपायेन भगवन्कृपया वद शङ्कर ! ॥ ३३ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवदेव उमापतिः । उपायं दर्शयामास मुनये प्रीतमानसः ॥

महेश्वर उवाच

सदोपहारवेलायां सर्वतीर्थसमुच्चयः । सन्निधिं मम सम्प्राप्तः सेवते गूढरूपतः ॥
नान्यदन्वेषणीयं ते तीर्थमत्र महामुने । ममोपहारवेलायांदृश्यते तीर्थसञ्चयः ॥ ३६ ॥
तस्माद्भक्तियुतैर्नित्यं सर्वतीर्थसमागमः । मुनिभिश्च सुरैःसर्वैर्नैवेद्यान्तेविलोक्यताम्
इति देवि पुरा देवो मार्कण्डेयाय शङ्करः । उपादिशदमेयात्मा तीर्थसन्दर्शनक्रमम् ॥

गौतम उवाच

सर्वाण्यपि च पुण्यानि तीर्थानिशिवसन्निधौ । सदोपहारवेलायांदृश्यानिकिलमानवैः
व्रतं तीर्थं तपो वेदा यज्ञाश्चनियमादयः । योगाश्च शोणशैलेशदर्शनाद्दृष्टसञ्चराः ॥४०॥

निशम्य वाक्यं मुनिपुङ्गवस्य प्रसेदुषी पर्वतराजपुत्री ।
अवोचदत्यद्भुतमेतदत्र त्वयोपदिष्टं भुवि तीर्थजालम् ॥ ४१ ॥
अहं कृतार्था तपतां वरिष्ठ ! त्वत्सङ्गमात्सम्प्रति तीर्थजालम् ।
प्राप्ता नमस्तेऽस्तु तपोविशेषं शिवोऽपिमेऽत्रादिशदेव कर्तुम् ॥४२ ॥
कथं गिरीशः पुनरत्र देवः स्फुरन्महावह्निवपुर्धरोऽपि ।

प्रशान्तरूपः परमेश्वरोऽयमभ्यर्चनीयो भुवि मर्त्यवर्गैः ॥ ४३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धेऽरुणाचलस्थविविधतीर्थवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

पार्वतीगौतमसम्वादेऽरुणाचलेस्थापिताऽरुणेश्वराराधनमाहात्म्यवर्णनम्

गौतम उवाच

शृणु देवि पुरावृत्तं कैलासे मेरुधन्विना । आदिष्टस्तीर्थयात्रार्थमहंलिङ्गानिवीक्षितुम्
रुद्रक्षेत्रे च केदारे तथा बदरिकाश्रमे । काश्यां पुण्येषु देशेषु तथा श्रीपर्वते शिवे ॥
काञ्चीमुख्यासु पुण्यासु पुरीष्वप्यगमं तदा । ऋषिभिर्विबुधैःसार्थैर्गणैर्योगिभिरुत्तमैः
स्थापितानि च लिङ्गानि स्वयम्भूनिचदृष्टवान् । तत्रतत्रमहाभागेतीर्थानिशिवसन्निधौ
सेवमानः सशिष्योऽहंपर्यटन्पृथिवीमिमाम् । एवंतीर्थानिसर्वाणिगाहमानोव्रतान्वितः
तपांसि यज्ञकर्माणिकुर्वन्भूमिं समाचरन् । शिवस्मरणसंयुक्तः शिवलिङ्गानिसन्नमन्

सर्वाणि भुवि पुण्यानि देशमेतमुपाश्रयम् ।
अत्र देवं महादेवमंविकेशंत्रियम्बकम् ॥ ७ ॥

अरुणाद्रिरितिख्यातं पर्वतं लिङ्गमैक्षिषि । अत्र सिद्धा महात्मानो मुनयश्च दृढव्रताः
कन्दमूलफलाहारा दृष्टाः शोणाद्रिसेवकाः । अस्तौषमादिमं लिङ्गमरुणाद्रिमयं महत्
आद्येन ब्रह्मणा पूर्वमर्चितं दिव्यचक्षुषा । असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः॥

इति वेदाः स्तुवन्ति त्वामरुणाद्रीश ! सन्ततम् ।
नमस्ताम्राय चारुणाय शिवाय परमात्मने ॥ ११ ॥

सर्ववेदस्वरूपाय नित्यायामृतमूर्त्तये । कालाय करुणार्द्राय दृष्टिपेयामृताब्धये ॥

भक्तवात्सल्यपूर्णाय पुण्याय पुरभेदिने। दर्शनं तव देवेश सर्वधर्मफलप्रदम् ॥ १३ ॥
भुवि लब्धवतां भूयो नान्यत्कार्यं तपः क्वचित्। भवता कर्मभूरेषावर्ततेऽद्य निरोधिता
प्रार्थयन्ते स्वयं वासान्देवाश्चाऽत्रत्वदाश्रये। कालसंग्रहसञ्जातं फलं लब्धंमयाऽधुना
अन्यत्कृतं तपः सर्वं त्वद्दर्शनफलं मम। ईदृशं तव देवेश रूपमत्यद्भुतोदयम् ॥ १६ ॥
एकमद्रिमयं लिङ्गं न क्वचिद्दृष्टवान्भुवि। सूर्येन्द्वग्निसुसंयुक्तकोणत्रयमनोहरम् ॥
त्रिमूर्तिरूप देवेश दृश्यते ते वपुर्महत्। शक्तित्रयस्वरूपेण कालत्रयविधानकम् ॥१८॥

त्रिवेदात्मं त्रिकोणाङ्गं लिङ्गं ते दृष्टमद्भुतम्।
त्रैलोक्यरक्षणार्थाय विततं रूपमास्थितः ॥ १९ ॥

दृश्यते वसुधाभागे शोणाद्रिरितिविश्रुतः। अजानताञ्च मर्त्यानां समालोकनमात्रतः
वितरत्यखिलान्भोगानव्याजकरुणानिधिः। अर्चया रहितं लिङ्गमन्यं शून्यमुदाहृतम्
इदन्तु पूजितं देवैः सदा सर्ववरप्रदम्। प्रसीद करुणापूर्ण शोणाचल महेश्वर ॥२२॥
त्रायस्व भवभीतं मां प्रपन्नं भक्तवत्सल। द्रष्टव्यं द्रष्टुमेतत्ते रूपमत्यद्भुतं महत् ॥
कृतार्थय कृपासिन्धो शरण्य शरणागतम्। इति संस्तूयमानो मे देवः शोणाचलेश्वरः

अदर्शयत्परं रूपं दिव्यमेहीत्युवाच माम्।
प्रीतोऽस्मि भवतः स्तोत्रैर्भक्त्या च परया भृशम् ॥ २५ ॥

अत्रैव भवतो वासोनित्यमस्तुममान्तिके। सम्पूजय च मां नित्यंभुविभोगैःसनातनैः
तपसा तप सर्वेषां महत्त्वमिह दर्शय। पूर्वं कैलासशिखरे वसन्तं त्वां तपोऽन्वितम्
आदिशं पृथिवीभागे शोणाद्रौपूजयेति माम्। सप्तर्षिपूजितापूजा दिविमे सम्प्रकाशते
तथा नित्यार्चनायुक्त प्रकाशय धरातले। सर्वेषामेव जन्तूनां हिताय त्वं तपोऽधिकः

भुवि मां पूजयाऽर्चाभिरागमोक्ताभिरादरात्।
दिव्या मम महापूजा दृश्या हि दिवि दैवतैः ॥ ३० ॥

प्रकाशनीया भवता पार्थिवी वसुधातले। माहात्म्यं पूर्वमेवोक्तं यथाऽहमरुणाचलः॥

स्थितो वसुन्धराभागे मया प्रीतं तु ते भृशम्।
ये वा सम्पूजयन्ति स्म पूर्वं मां सुकृताधिकाः ॥ ३२ ॥

तेभ्यस्त्वमधिकोभूमौप्रकाशस्वशिवार्चनम् । इत्यादिष्टो हि देवेशंप्रणम्यभवभक्तिमान्
अन्वपृच्छं दयापूर्णमरुणाद्रीशमानमन् । अनासाद्यमिदं रूपमग्निरूपं महेश्वरम् ॥३४॥
कथमद्यार्चयाम्येनं मर्त्यलोकोचितार्चनैः । आदेशमिममन्वर्थं कथं वा कल्पयाम्यहम्
उपायमादिश श्रीमन्नभिगम्योयथाभवान् । इति विज्ञापितोदेवःश्रीमाञ्छोणाचलेश्वरः
अन्वग्रहीदशेषात्मा प्रणतं मां दयानिधिः । अहन्तु सूक्ष्मलिङ्गानि प्रकाशिष्येमहीतले
आगमोक्तक्रियाभेदैः पूजां मे प्रतिपादय । पञ्चावरणसंयुक्तं लिङ्गं मे सूक्ष्ममद्भुतम् ॥
अरुणाद्रीश्वराभिख्यं सम्पूजय तपोबलैः । इत्यादिश्य महादेवः स्वयम्भु विमलं महत्

रूपं मे दर्शयामास सूक्ष्मलिङ्गात्मना शिवः ।
आलोक्य विमलं लिङ्गं सूक्ष्मं तत्स्वयमुच्छ्रितम् ॥ ४० ॥

अशेषाऽऽवरणोपेतं कृतार्थहृदयोऽभवम् । पुनर्व्यज्ञापयं देवं शम्भुमाश्रितवत्सलम् ॥
आगमोक्तप्रकाराणामनिरीक्ष्यत्वमागतम् । कथन्तुतवरूपाणांनामभेदान्वियोजितान्
जानीयां करुणामूर्त्तेस्वयमीश्वर मत्प्रभो । पूजकास्तवके वा स्युर्मन्दिरंवाऽत्रकीदृशम्
कथं स्तोत्रं कथं पूजाकेवात्रपरिचारकाः । स्थानरक्षाकथंवास्यात्केवात्मपरिरक्षकाः
कथं वा मानुषी पूजा नित्या सम्वर्धते तव । आगता वहवो देवाःश्रद्धेयंमनुजैःकथम्
प्रसीद परमेशान स्वयमाज्ञापयाखिलम् । एवं विज्ञापितो देवः शोणाद्रीशःस्वयं प्रभुः
आज्ञापयत्तदा देवोविश्वकर्माणमागतम् । सृज त्वं नगरं दिव्यमरुणाख्यंगुणाधिकम्
मन्दिरं मम दिव्यञ्च महामणिगणोज्ज्वलम् । तौर्यत्रिकं सपर्याङ्गं तन्मे सर्वं प्रकल्पय
आवभाषे शिवः श्रीमान्नामभेदार्चनक्रमम् । व्रतं च करुणामूर्त्तिररुणाद्रीश्वरःशिवः ॥
शृणु तन्मे च ये सृष्टाः पूजार्थं परिचारकाः । शृणु गौतम सर्वं मे मानुषं पूजनक्रमम्
य एष सर्वलोकानां क्षेमाय प्रथते भुवि । इदं तेजोमयं लिङ्गमतुलं दृश्यते महत् ॥
अरुणाद्रीश्वराभिख्यं पूज्यतां सततं त्वया । शक्तिर्ममोत्तरे भागे पूज्यानित्योदयामुदा

दधती स्थानमाहात्म्यमपीतकुचनामिका ।
अरुणाचलराजोऽयमविभागः प्रियान्वितः ॥ ५३ ॥

उत्सवार्थो महादेवः पूज्यो भोगसुतावृतः । बोधदो भक्तलोकस्यदत्ताभयकरःशिवः

सारङ्गं परशुं विभ्रत्प्रसन्नवदनः सदा । उमास्कन्देश्वरः शम्भुर्दिव्यरत्नविभूषणः ॥५५॥
आभया भासयँल्लोकानविकुण्ठश्रियान्वितः । शक्तेरुत्सवभद्रे च सम्पूज्यासुन्दरेश्वरी
सर्वभूषणसंयुक्ता श्रृङ्गाररसवर्द्धनी । बालो गणपतिः पूज्यः पुरस्ताद्भूतिनन्दनः ॥
मदन्तिकमलङ्कुर्वन्भक्ष्यैर्भोज्यैर्वहृदयैः । मत्पार्श्वमतिमुञ्चन्ती शोणरेखाश्रितेक्षणा ॥

उत्सवार्था परा शक्तिरन्तिकस्थैव पूज्यताम् ।
मुखराङ्घ्रिपतिः श्रीमान्नृत्यंस्ताण्डवपण्डितः ॥ ५६ ॥

उत्सवार्थंसमभ्यर्च्यश्चक्षुरग्रेऽमृतेश्वरः । शक्तिश्चान्यामहाभागासम्पूज्या भूविनायका
द्वारे नन्दी महाकालः पुरस्तात्सूर्यसन्निभः । भक्तानां ममसर्वेषांपूजनंचापिकल्प्यताम्
दक्षिणेमातरःपूज्याविघ्नशास्तृसमन्विताः । सम्पूज्योनैर्ऋतेकोणेविघ्ननाशोविनायकाः
स्कन्दःशक्तिधरश्चैवैशानकोणेसमर्च्यताम् । लिङ्गानि च मनोज्ञानिपूजनीयान्यनन्तरम्
मन्दिरं मम सम्पूज्य दक्षिणामूर्ति दक्षिणम् । पश्चिमेविष्णुरूपाङ्कमग्निरूपान्वितंतथा
उत्तरे ब्रह्मरूपाङ्कं पूर्वे सारङ्गभूयुतम् । सर्वदेवगुणोपेतं सर्वशक्तिसमन्वितम् ॥ ६५ ॥
अपीतकुचनाथायाः सर्वसक्तिसमन्वितम् । मन्दिरं गुरु सम्पूज्य दिक्पालकवधूवृतम्

मन्दिरस्याऽवनार्थाय देवीर्वैभवनायकाः ॥ ६७ ॥

क्षेत्रपालं तु सम्पूज्य सर्वावरणसंयुतम् । पुत्रस्य त्राणमायाता पूज्यारुणगिरीश्वरी

काली वहुविधाश्चान्या देवता विधिपालकाः ।
उत्सवा विविधाः कल्प्याः प्रतिमासमहोदयाः ॥ ६६ ॥

सृजस्व कन्यका दिव्याःशिवदेवार्हणे रताः । नृत्तगीतकलाभिज्ञारूपसौभाग्यसंयुताः

चारुविभ्रमसंयुक्ताः कामदा नित्यपावनाः ।
शिष्यानादिश वेदज्ञान्सदाचारसमुज्ज्वलान् ॥ ७१ ॥

दिव्योपचारसंसिद्ध्यैसुभगाञ्छुद्धचेतसः।दीक्षितान्विमलाञ्छुद्धाञ्छैवागमविशारदान्

शैलाचारप्रसिद्ध्यर्थमादिशाऽभ्यर्चने मम ।
मार्द्दलाञ्छाङ्खिकान्वैणान्स्तालिकान्वेणुवादकान् ॥ ७२ ॥
शौल्विकान्सृज सद्विद्यांश्चतुर्विद्याविशारदान् ।

क्षत्रियान्विविधान्वैश्याञ्छूद्रांश्च शिवसम्मतान् ॥ ७४ ॥
चत्वारश्चमठाःकल्प्याश्चतुर्दिक्षुतीर्थवासिनाम् ।मुनीनांशिवभक्तानांनिराशानांनिवासतः
तेषु स्थिता मुनीन्द्रा मे रक्षन्तुशिवपूजनम् । भिक्षमाणाःपुनःशैवाभक्ताःपाशुपताअपि
पालयन्तुसदाऽन्येचयुक्ताःकापालिकाअपि। सर्वेषांजायमानानांजातानांसंभविष्यताम्
अव्याहताज्ञमारक्ष्यमिदं स्थानं महीभृताम् । बकुलश्च महानत्रदृश्यतेदिव्यभूरुहः ॥७८
अत्र भक्ता वितन्वन्तु शिवकार्यविनिश्चयम् । अत्र मे दीयते द्रव्यमप्रेक्षितपराप्तये ॥
यत्तदक्षय्यफलदमारक्ष्यं शिवसेवकैः । भक्तैर्विज्ञापितं चार्थं श्रोष्यामि पुरतः स्थितैः
सर्वंसम्पादयिष्यामि तेषांचित्तानुकूलकम् । अपराधसहस्राणि क्षंस्येमांस्वर्चतामहम्
आगमोक्ता च पूजेयं मानुषी निर्मिता यतः । ग्रहीष्ये तामहंसर्वामर्चांसर्वागमोदिताम्
सङ्कल्पितंभवेत्कर्मप्रीतिकृन्ममसेवकैः । आगमार्थानशेषांस्त्वमालोक्यसमयोचितान्
विधायाभ्यर्चनाभेदाँल्लोकरक्षाकृते मुने । कर्तव्या महती पूजा पौर्णमास्यान्तुसादरम्

सत्राणि विविधान्यत्र कर्तव्यानि सहस्रशः ।
विविधानि च दानानि शक्त्या चैवाऽस्य सन्निधौ ॥ ८५ ॥

अव्युच्छिन्नप्रदीपस्य दातारो मम सन्निधौ । तेजोमयमिदं रूपं मम यान्ति न संशयः
जलजं तरुगं पुष्पं कक्षजं च लतोद्भवम् । ददते ये च भक्त्या मे ते भविष्यन्ति भूभृतः
तेषांपुरोगतःसाक्षादहंजेष्यामिविद्विषः । यस्ययस्य तु देशस्य योयोराजातपोधिकः
तत्तत्समर्द्धितं रम्यं सम्भवं ददतेऽत्र मे । मत्सन्निधिमुपागत्यदुरात्मानोऽपिभूमिपाः

शिवभक्ता भृशं पूर्णा भविष्यन्ति न संशयः ॥ ९० ॥
इति शम्भुमुखोत्थितं वचः समुपश्रुत्य विधूतकल्मषः ।
अहमानतवान्व्यजिज्ञपं कुतुकाच्छोणगिरीश्वरं शिवम् ॥ ९१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धेऽरुणेश्वराराधनामाहात्म्यवर्णनं
नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

गौतमायश्रीशङ्करेणशिवमुख्यनाम्नांपरिगणनपुरःसरं पार्वतीकृते गौतमप्रश्नेऽरुणेश्वरप्रदक्षिणामाहात्म्यवर्णनम्

गौतम उवाच

भगवन्नरुणाद्रीशनामधेयानितेभृशम् । विशेषाच्छ्रोतुमिच्छामिस्थानेऽस्मिन्सुरपूजिते

माहेश्वर उवाच

नमामि शृणु मे ब्रह्मन्मुख्यानिद्विजसत्तम । दुर्लभान्यल्पपुण्यानां कामदानिसदाभुवि
शोणाद्रीशोऽरुणाद्रीशो देवाधीशो जनप्रियः । प्रपन्नरक्षको धीरः शिवसेवकवर्धकः
अक्षिपेयामृतेशानः स्त्रीपुम्भावप्रदायकः । भक्तिविज्ञप्तिसन्धाता दीनवन्दिविमोचकः॥
मुखराङ्घ्रिपतिः श्रीमान्मृडो मृगमदेश्वरः । भक्तप्रेक्षणकृत्साक्षी भक्तदोषनिवर्तकः ॥
ज्ञानसम्बन्धनाथश्च श्रीहलाहलसुन्दकः । आहवैश्वर्यदाता च स्मर्तृसर्वाघनाशनः ॥
व्यत्यस्तनृत्यद्ध्वजधृक्सकान्तिर्नटनेश्वरः । सामप्रियः कलिध्वंसी वेदमूर्तिर्निरञ्जनः

जगन्नाथो महादेवस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तकः ।
भक्तापराधसोढा च योगीशो भोगनायकः ॥ ८ ॥

बालमूर्त्तिः क्षमारूपी धर्मरक्षो वृषध्वजः । हरो गिरीश्वरो भर्गश्चन्द्ररेखावतंसकः ॥
स्मरान्तकोऽन्धकरिपुःसिद्धराजो दिगम्बरः । आगमप्रियईशानोभस्मरुद्राक्षलाञ्छनः
श्रीपतिः शङ्करः स्रष्टा सर्वविद्येश्वरोऽनघः । गङ्गाधरः क्रतुध्वंसो विमलो नागभूषणः
अरुणो बहुरूपश्च विरूपाक्षोऽक्षराकृतिः । अनादिरन्तरहितः शिवकामः स्वयम्प्रभुः॥
सच्चिदानन्दरूपश्च सर्वात्मा जीवधारकः । स्त्रीसङ्गवामसुभगो विधिर्विहितसुन्दरः ॥
ज्ञानप्रदो मुक्तिदश्च भक्तवाञ्छितदायकः । आश्चर्यवैभवः कामी निरवद्यो निधिप्रदः ॥

शूली पशुपतिः शम्भुः स्वयम्भुर्गिरिशो मृडः ।
एतानि मम मुख्यानि नामान्यत्र महामुने ॥ १५ ॥

अन्यानि दिव्यनामानि पुराणोक्तानि संस्मर । प्रदक्षिणेनमांनित्यंविशेषात्त्वं समर्चय
प्रदक्षिणप्रियो यस्मादहं शोणाचलाकृतिः । इत्याज्ञप्तो महादेवमर्चयन्नरुणाचलम् ॥
अविमुञ्चन्निहावासं कृतवानहमद्रिजे ! ॥ १७ ॥

गौर्युवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ गौतमार्घ्य मुनीश्वर !। प्रदक्षिणस्य माहात्म्यं ब्रूहि मे शोणभूभृतः ॥
कस्मिन्काले कथं कार्यं कैर्वा पूर्वं प्रदक्षिणम् ।
कृतं शोणाद्रिनाथस्य प्राप्तमिष्टं परं पदम् ॥ १६ ॥

ब्रह्मोवाच

इति पृष्टो मुनिःप्राह गौतमः शैलकन्यकाम् । श्रूयतां देविमाहात्म्यमादिशन्मे महेश्वरः

महादेव उवाच

अहं हि शोणशैलात्मा प्रकाशो वसुधातले ॥ २१ ॥
परितो मां सुराः सर्वे वर्तन्ते मुनिभिः सह ॥ २२ ॥
यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च । तानि तानिविनश्यन्तिप्रदक्षिणपदेपदे
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयायुतानि च । सिद्ध्यन्ति सर्वतीर्थानि प्रदक्षिणपदे पदे ॥
अपि प्रहीणस्य समस्तलक्षणैः क्रियाविहीनस्य निकृष्टजन्मनः ।
प्रदक्षिणीकृत्य शशाङ्कशेखरं प्रयास्यतः कस्य न सिद्धिरग्रतः ॥ २५ ॥
समस्ततीर्थाभिगमेषु पुण्यं समस्तयज्ञागमधर्मजातम् ।
अवाप्यते शोणमहीधरस्य प्रदक्षिणाप्रक्रमणेन सत्यम् ॥ २६ ॥
पदेनैकेन भूलोकं द्वितीयेनान्तरिक्षकम् । तृतीयेन दिवं मर्त्यो जयत्यस्य प्रदक्षिणे ॥
एकेन मानसं पापं द्वितीयेन तु वाचिकम् । कायिकन्तु तृतीयेन पदेन क्षीयते नृणाम्
पातकानि च सर्वाणि पदेनैकेन मार्जयेत् । द्वितीयेन तपःसर्वंप्राप्नोत्यस्यप्रदक्षिणात्
पर्णशाला महर्षीणांसिद्धानाञ्चसहस्रशः । सुराणाञ्चतथाऽऽवासाविद्यन्तेऽत्रसहस्रशः
अत्र सिद्धः पुनर्नित्यंवसाम्यग्रेसुरार्चितः । ममान्तरे गुहा दिव्याध्यातव्याभोगसंयुता
अग्निस्तम्भमयं रूपमरुणादिरिति श्रुतम् । ध्यायल्लिङ्गं मम बृहत्मन्दंकुर्यात्प्रदक्षिणम्

अष्टमूर्तिमयं लिङ्गमिदं यैस्तैजसं भृशम् ।
ध्यात्वा प्रदक्षिणं कुर्वन्पातकानि विनिर्दहेत् ॥ ३३ ॥

न पुनःसम्भवस्तस्य यःकरोतिप्रदक्षिणाम् । शोणाचलाकृतेर्नित्यंनित्यत्वंध्रुवमश्नुते॥
अस्य पादरजःस्पर्शात्पूयते सकला मही । पदमेकन्तु धत्ते यः शोणाद्रीशप्रदक्षिणे ॥
नमस्कुर्वन्प्रतिदिशंध्यायन्स्तौतिकृताञ्जलिः । असंस्पृष्टकरःकैश्चिन्मन्दंकुर्यात्प्रदक्षिणम्
आसन्नप्रसवा नारी यथा गच्छेदनाकुलम् । तथा प्रदक्षिणं कुर्यादशृण्वंश्च पदध्वनिम्
स्नातो विशुद्धवेषः सन्भस्मरुद्राक्षभूषितः । शिवस्मरणसंसृष्टो मन्दं दद्यात्पदं बुधः
मनूनां चरतामग्रे देवानाञ्च सहस्रशः । अदृश्यानाञ्च सिद्धानां नान्येषांवायुरूपिणाम्
संघट्टमतिसम्मर्दं मार्गरोधं विचिन्तयन् । अनुकूलेन भक्तः सञ्छनैर्दद्यात्पदं बुधः ॥
अथवा शिवनामानि सङ्कीर्त्य वरगीतिभिः । शिवनृत्यञ्च रचयन्भक्तैःसार्द्धं परिक्रमेत्
माहात्म्यं मम वा शृण्वन्ननन्यमतिरादरात् । शनैः प्रदक्षिणं कुर्यादानन्दरसनिर्भरः ॥
दानैश्च विविधैःपुण्यैरुपकारैस्तथार्थिनाम् । यथामति दयापूर्णआस्तिकःपरितोव्रजेत्
कृते त्वग्निमयं लिङ्गं त्रेतायां मणिपर्वतम् । द्वापरे चिन्तयेद्धैमं कलौ मरकताचलम् ॥
अथवा स्फाटिकं रूपमरुणं तु स्वयंप्रभुम् । ध्यायन्विमुक्तः सकलैःपापैःशिवपुरंव्रजेत्

अवाङ्मनसगम्यत्वादप्रमेयतया स्वयम् ।
अग्नित्वाच्च परं लिङ्गमनासाद्याचलाभिधम् ॥ ४६ ॥

ध्यात्वा प्रदक्षिणं कर्तुरभिगम्योऽहमञ्जसा । तस्य पादरजो नृणामजरामरकारणम्
पदमेकन्तु धत्ते यः शोणाद्रीशप्रदक्षिणे । वाहनानि सुरौघाणां प्रार्थयन्ते परस्परम्
कुर्वतां चरणं वोढुमरुणाद्रिप्रदक्षिणाम् । छायाप्रदानं कुर्वन्ति कल्पकाद्याःसुरद्रुमाः
कुर्वतां भुवि मर्त्यानामरुणाद्रिप्रदक्षिणाम् । देवगन्धर्वकाद्यानां सहस्रेण समावृताः
सेवन्ते ते गणाकीर्णा विमानशतकोटयः । मम प्रदक्षिणं भूमौ कुर्वतां पादपांसुभिः
पाविता महती वीथी दृष्टा शिवपदप्रदा । अङ्गप्रदक्षिणं कुर्वन्क्षणात्स्वर्ग्यतनुर्भवेत् ॥
असौ वज्रशरीरत्वं न धृष्येत महीतले । व्योमयानोत्सुका देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः

अदृश्याः सञ्चरन्यत्र पश्यन्ते मम सन्निधम् ।

विनयं मम भक्तिश्च प्रदक्षिणपरिक्रमे ॥ ५४ ॥
दृष्ट्वा हर्षसमायुक्ता मर्त्येभ्यो ददते वरम् । अत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत्पुराकृत्वा प्रदक्षिणाम्
प्रत्यहंमार्गमासीनाःप्रत्येकंकोटिताङ्किताः । आदित्याद्याग्रहाःसर्वेपुराकृत्वाप्रदक्षिणाम्
सम्पूर्णजगतीभागे सर्वे ग्रहपताङ्किताः । यः करोति नरो भूमौ सूर्यवारे प्रदक्षिणाम् ॥
स सूर्यमण्डलं भित्त्वा मुक्तः शिवपुरं व्रजेत् । सोमवारे नरः कुर्वन्नरुणाद्रिप्रदक्षिणाम्
अजरामरतां प्राप्तो नाऽसौम्यो भवतिक्षितौ । भौमवारे नरः कुर्वन्नरुणाद्रिप्रदक्षिणाम्
आनृण्यमखिलं प्राप्य सार्वभौमो भवेद्ध्रुवम् ।
बुधवारे नरः कुर्वञ्छोणाद्रीशप्रदक्षिणाम् ॥ ६० ॥
सर्वज्ञतामनुप्राप्तः स वाचां पतितामियात् । गुरुवारे नरः कुर्वन्सर्वदेवनमस्कृतः ॥
प्रदक्षिणेन शोणाद्रेः स तु लोकगुरुर्भवेत् । भृगुवारे नरः कुर्वन्नरुणाद्रिप्रदक्षिणाम् ॥
सम्प्राप्य महतीं लक्ष्मींलभतेवैष्णवं पदम् । मन्दवारेनरःकृत्वाशोणाद्रीशप्रदक्षिणाम्
विमुक्तो ग्रहपीडाभिः स विश्वविजयी भवेत् । नक्षत्राणि च सर्वाणिपुरातद्दैवतैःसह
मम प्रदक्षिणां कर्तुः पुण्यानि सहसा व्रजेत् । तिथयः करणानीहयोगाश्चममसंमताः
अभीष्टफलदा जाताः कुर्वतां मत्प्रदक्षिणाम् ।
मुहूर्ता विविधा होराः सौम्याश्च सततोदयाः ॥ ६६ ॥
मत्प्रदक्षिणकर्तॄणां जायन्तेसततंशुभाः । प्रच्छिनत्ति प्रकारोऽघं दकारो वाञ्छितप्रदः
क्षिकारात्क्षीयते कर्म णकारो मुक्तिदायकः ।
दुर्बलाः कार्श्यसंयुक्ता आधिव्याधिविजृम्भिताः ॥ ६८ ॥
मम प्रदक्षिणं कृत्वा मुच्यन्ते सर्वदुष्कृतैः । मम प्रदक्षिणं कर्तुर्भक्त्या पादेन सन्ततम्
क्षणेन साध्वीं पश्यामि त्रैलोक्यस्य प्रदक्षिणाम् ।
लोकेशाश्च दिगीशाश्च ये चाऽन्ये कारणेश्वराः ॥ ७० ॥
मम प्रदक्षिणां कृत्वा स्थिरा राज्ये पुराऽभवन् । अहञ्च गणसंयुक्तः सर्वदेवर्षिसंयुतः
उत्तरायणसंयोगे करोमि स्वप्रदक्षिणाम् । मद्रूपं तैजसं लिङ्गमरुणाद्रिरिति श्रुतम् ॥
त्रैलोक्यस्यहितार्थायकरिष्यामिप्रदक्षिणाम् । आगता च परान्तेचगौरीतपइहात्द्रुम्

कर्तुं प्रदक्षिणं कृत्वा मामेष्यत्यनघा पुनः। कार्तिके मासि नक्षत्रेकृत्तिकाख्येमहातपाः
मम प्रदक्षिणां गौरी प्रदोषे रचयिष्यति। नराणामल्पपुण्यानां दुर्लभं तत्प्रदक्षिणम्
ज्योतिर्लिङ्गस्य दृष्टस्य देवीप्रार्थनया तथा। मया समेतादेवीसाप्राप्ताऽपीतकुचाभिधा
आश्वास्यति सुरान्सर्वानुत्तरायणसङ्गमे। देवगन्धर्वयक्षाणां सिद्धानामपि रक्षसाम्
सर्वेषां देवयोनीनां भविता तत्र सङ्गमः। ये तदा मां समागत्य पूजयन्तितपोधिकाः
सर्वजन्मकृताघौघप्रायश्चित्तं व्रजन्ति ते। दुर्ल्लभं तद्दिनं पुंसामुत्तरायणसङ्गमे ॥
तदा मद्रूपमभ्यर्च्य कृतार्थाःसन्तुमानवाः। प्रदक्षिणं तु मे दिव्यं कुर्वन्तिच महीभुजः
तेषां पुरोगतःसाक्षादहंजेष्यामिविद्विषः। राजायस्य तु देशस्य योयोराजातपोधिकः
स कारयेद्विप्रमुख्यैः श्रोत्रियैर्मेप्रदक्षिणाम्। मण्डलंमण्डलार्द्धम्वासङ्कल्पविधिपूर्वकम्
तस्य तस्य स्थिरंराज्यंशत्रूणाञ्च पराहतिम्। करिष्यामि मुनेनित्यमहमेवपुरःस्थितः
न वाहनेन कुर्वीत मम जातु प्रदक्षिणाम्। धर्मलुब्धमना जानञ्छिवाचारपरिप्लुतिम्
धर्मकेतुः पुरा राजा यमलोकादुपागतः। मम प्रदक्षिणां कर्त्तुं तुरगेणाऽभ्यरोचयत् ॥
क्षणेन तुरगो जातो गणनाथः सुरार्चितः। प्रतिपेदे पदं शैवं विमुच्य धरणीपतिम् ॥
वीक्ष्य तं वाहनं भूयो गणनाथवपुर्द्धरम्। पादप्रदक्षिणांकृत्वा स्वयञ्च गणपोऽभवत्
तदाप्रभृति शक्राद्याः सुराविष्णुसमन्विताः। पादाभ्यामेव कुर्वन्तिममसर्वेप्रदक्षिणाम्

स्वर्गान्निपातितः कोऽपि सिद्धः काले तपःक्षयात्।
प्रदक्षिणां ततः कृत्वा पुनर्लब्धपदोऽभवत् ॥ ८६ ॥

स्खलितं पादजं रक्तं मम कर्तुः प्रदक्षिणम्। मार्ज्यते तस्य देवेन्द्रमौलिमन्दारकेसरैः
प्रदक्षिणमहावीथी शिलाशकलघट्टितम्। पदं सन्धार्यते पुंसां श्रीपयोधरकुङ्कुमैः ॥
मणिपर्वतशृङ्गेषु कल्पद्रुमवनान्तरे। सञ्चरन्ति सदा मर्त्या मम कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥

गौर्युवाच

उपचारप्रवृत्तानां फलं मे शंस सुव्रत। यैर्वै जनः कृतार्थः स्याद्यथाशक्ति कृता दरः

मुनिरुवाच

उपचारफलं देवि! शृणु वक्ष्याम्यहं तव। यन्मह्यं कृपया पूर्वमुक्तवान्परमेश्वरः॥ ९७॥

लूतीतन्तुकजालानिसंसृज्यक्वचिदेषमे। जातिस्मरोमहीध्रेऽस्मिन्सोंऽशुकैर्मांव्यवेष्टयत्
गजः कश्चित्तृषाक्रान्तोविमुच्यच मधु क्वचित्। वनपल्लवमुत्कीर्यमुक्तोऽभूद्गणनायकः
कृमयो विलुठन्तो मे पार्श्वे दुरितवर्जिताः। सिद्धवेषाः पुनः सर्वे मम लोकंव्रजन्तिते
अव्युच्छिन्नप्रदीपार्चिः क्षणमप्यादधातियः। स्वयम्प्रकाशः स भवन्ममसारूप्यमश्नुते
हारीतः कोऽपिसंप्राप्तःशाखानीडोममान्तिके। खद्योतोदीपवन्नक्तंतावन्मुक्तिसमागतः

गावः प्रस्रवणैः सिक्ता वत्सस्मरणसम्भवैः।
मत्पार्श्वे मुक्तिमापुस्ता मम लोकं समाश्रयन् ॥ १०० ॥

काकः पक्षजवातेन बलिग्रहणलोलुपः। मार्जयन्मत्पुरोभागं मुक्तिं प्रापद्यत क्षणात् ॥
मूषको मद्गुहाभागं मणिसङ्घविकर्षणैः। प्रकाशयन्वितिमिरं मम रूपमपद्यत ॥१०२
छायावृक्षत्वमास्थातुं मुनयस्त्रिदशा अपि। प्रार्थयन्त्येव मत्पार्श्वे नपुनःसम्भवेच्छया
गोपुरं शिखरं शालां मण्डपं वापिकामपि। कुर्वतांमत्पुरोभागेसिध्यन्तीष्टार्थसम्पदः
सदा मर्त्यैरनासाद्यमग्निलिङ्गमिदं मम। अनासाद्याचलेशाख्यं पूज्यतां वसुधातले ॥

वीक्षणस्पर्शनध्यानैः स्वभूतं निखिलं जगत्।
पोषयन्ती परा शक्तिः पूज्याऽपीतकुचाभिधा ॥ १०६ ॥

सर्वलोकैकजननीसम्प्राप्तानित्ययौवनम्। यौवनप्रार्थिभिःसेव्यास्सदाऽपीतकुचाभिधा
क्षणात्तस्य पुरोभागे वसतां प्राणिनामिह। परत्र वाऽत्र दुष्प्राप्यमिष्टवस्तु न विद्यते
अप्रमेयगुणाधारमपेक्षितवरप्रदम्। अशेषभोगनिलयं शोणाद्रीशं समर्चय ॥ १०९ ॥
लब्धकामा पुनः शम्भुमाश्रयिष्यसि सुव्रते। तपश्चरणमप्येतत्तव लोकहितावहम् ॥
न केवलं तव तपःस्ववाञ्छितफलप्रदम्। तपस्यताम्रृषीणाञ्च क्षेमायैव भविष्यति ॥
कारणान्तरमाशङ्क्य तपः कुर्वन्ति देवताः। रहस्यं देवतानान्तु फलेनैवाऽनुमीयते॥
वयञ्च सहसम्वासास्तवव्रतनिरीक्षणात्। कृतार्थाः स्याम देवेशितपसा नः कृतार्थता
इति तस्य मुनेर्वाक्यमर्थगर्भं निशम्य सा। गौरी कौतुकसंयुक्ता प्रशशंस महामुनिम्
तपः किमन्यत्कर्तव्यं लब्धं तव तु दर्शनम्। अरुणाद्रिरयं दृष्टः श्रुतं माहात्म्यमस्य च
अहो भूमेस्तु वैचित्र्यं यतो दृष्टा दिवोऽधिका। यत्रैव तैजसं लिङ्गं देवतानां वरप्रदः

शिवः प्रसादसिद्धो मे दर्शितं स्थानमात्मनः । अत्रैवशिवमाराध्यवशीकुर्यांजगद्गुरुम्
अविनाभूतमैक्यं मे देवेन भवतात्सदा । त्वया कृतेन साह्येन भवेयं शिवनायिका ॥

इति गौतमसन्निधौ तदानीं कृतसम्वित्तप आदरेण कर्तुम् ।
अभजद्रुचिराञ्च पर्णशालां मुनिना चानुमता तथेति भक्त्या ॥ ११६ ॥
सुकुमारतनुः सरोरुहाक्षी घनतुङ्गस्तनकल्पितोत्तरीया ।
जटिला हरिनीलरत्नकान्तिर्गिरिजा राजति देहवत्तपःश्रीः ॥ १२० ॥
नियमैर्बहुभिस्तपोविशेषैः क्रतुषु प्राप्तविचित्रयोगवन्धैः ।
निगमागमदृष्टधर्ममार्गं सकलं सा तु कृतार्थतामनैषीत् ॥ १२१ ॥
तपसा विविधेन तप्यमाना न कदाचित्परिखेदमाप तन्वी ।
हरिरत्नमयी च काऽपि वल्ली नितरां दीप्तिमती बभूव बाला ॥ १२२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धेऽरुणेश्वरप्रदक्षिणामाहात्म्यवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दशमोऽध्यायः

देव्यास्तपश्चर्यायांमहिषासुरेणसहयुद्धवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अथ देवा महीं हित्वामहिषासुरपीडिताः । नत्वा गौरींतपस्यन्तींजग्मुःशरणमाकुलाः
अथ तानभयंदेहिदेवीतिभयविह्वलान् । अमरान्वीक्ष्यसादेवीकिंकार्यमितिचाभ्यधात्
ततो विज्ञापयामासुर्दैत्येन्द्राद्भयमात्मनाम् । देव्यै बद्धाञ्जलिपुटा देवा इन्द्रपुरोगमाः

देवा ऊचुः

अप्सरोभिः परिवृतः सुखं क्रीडति नन्दने । ऐरावतमुखान्सर्वान्दिङ्नागान्निजमन्दिरे

आवासयन्विनोदार्थमङ्गनाभिः सहागतान् । उच्चैःश्रवःपुरोगानामुपभोगंकरोत्यसौ
मन्दुरास्वस्य रम्यासु दृश्यन्ते लक्षकोटयः । हुताशवाहनं मेषं पुत्रारोहार्थमीप्सति ॥
यान्यं महिषमानीय शकटे सोऽभ्यवाहयत् ।
सिद्धीराकृष्य सकला गृहकर्मणि चाऽऽदिशत् ॥ ७ ॥
अप्सरःसङ्घमखिलमात्मसेवार्थमानयत् । अन्यत्किमपि यद्वस्तु रत्नभूतं जगत्त्रये ॥
अनाहृतं पुनर्हर्तुं न विश्राम्यति कोपवान् । वयञ्च सेवकाभूत्वानित्यभीतिसमन्विताः
पूजयन्तश्च तस्याऽऽज्ञां नान्यांवीक्षामहेगतिम् । शरणागतसन्त्राणंतपःफलमुदाहृतम्
दुर्जयोऽयं वरो दैत्यः सर्वेषांबलिनामपि । सुराणामपि दैत्यानां शिवाल्लब्धवरोदयः
अस्य श्रृङ्गाहतः सिन्धुर्व्यावर्जितमिति ब्रुवन् । रत्नोपहारदानेननित्यंतत्प्रीतिमिच्छति
पर्वतांश्च समुत्क्षिप्य श्रृङ्गाग्रेण महोद्धतः । क्रीडति क्षोदिताशेषधातुधूलिविलेपनैः ॥
न शक्यमतुलं तस्य बलमन्यदुरासदम् । स्वयमेव विजानीहि हत्वा ते निजतेजसा
शम्भुशक्तिः परा सेयंस्त्रीरूपेणाऽत्रदृश्यते । त्वयैवाऽयंनिहन्तव्यः शिवाल्लब्धवरोह्ययम्
न जानीमो वयं देवि ! किञ्चिच्छम्भुविचेष्टितम् ।
केवलं पालनीयाः स्म जगन्मात्रा सदा त्वया ॥ १६ ॥
इति तेषां भयार्तानामाकर्ण्य वचनंशुभम् । व्याजहार प्रसन्नात्मा देवी दत्त्वाऽभयंतदा
शरणागतसन्त्राणं तपसि स्थितया मया । कर्त्तव्यममराः कालात्क्षीणःशत्रुर्भविष्यति
उपायेन समाकृष्य हनिष्यामि महासुरम् । निरागसस्तु हननमद्य मे न हि युज्यते ॥
धर्मगेधर्मभेत्तारः शलभत्वं व्रजन्ति हि । देवास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य गिरिकन्यकाम्
जग्मुर्यथागतं सर्वे निर्भया हृष्टचेतसः ॥ २१ ॥
गतेषु तेषु देवेषु गौरी कमललोचना । बभूव मोहिनी शक्तिः कान्तियुक्ता ततोदरी ॥
सा देवी दिक्षु शैलेषु चतुर्ष्वरुणभूभृतः । रक्षार्थं स्थापितवती चतुरो बटुकान्वरान्
यदा कैलासशिखरादागता शैलकन्यका । अन्वगच्छन्सेवमानाश्चतस्रो मातरस्तदा
दुन्दुभिःसत्यवत्याख्यातथाचाऽनवमीपरा । सुन्दरीतिचतस्रस्तामन्वयुःपरिचारिकाः
विमुञ्चताऽतिथिं श्रान्तं क्षुत्पिपासासमन्वितम् ।

अरुणाद्रिमिमं द्रष्टुं नान्यमित्यब्रवीच्च तान् ॥ २६ ॥
सीमाशैलस्थितान्वीरांस्तानादिश्य बलाधिकान् ।
तपश्चचाराऽद्रिकन्या गौतमाश्रमसन्निधौ ॥ २७ ॥

तस्यां तपन्त्यांतन्वङ्ग्यांनतापःकश्चिदप्यभूत् । ववर्षकालेजलदःसफलाश्चाभवन्द्रुमाः
विरोधीनि च सत्त्वानि मुमुचुः पूर्वमत्सरम् । आश्रमःसर्वजन्तूनांशरण्योऽभूद्भयापहः
योजनद्वयपर्यन्तं सीमाशैलेषु संस्थितैः । चतुर्भिर्वटुकैः शूरै रक्षितश्चाऽरुणाचलः ॥
नोदभूत्कश्चन त्रासो न च दृष्टोभयोदयः । न व्याधिपीडनंचासीत्तत्रनारिविजृम्भणम्
कृतार्था मुनयःसर्वेप्रशंसन्तोनगात्मजाम् । शिवलोकपदंकेचित्प्रत्यशंसंस्तथाश्रमम् ॥
सा च गौरी तपोघोरंकुर्वतीचदिवानिशम् । न तृप्तिमाययौबालाशिवसन्तोषकारकम्
महिषश्च महावीर्यो मृगयां कर्तुमुद्यतः । चचार काननं सर्वं विदूरे शोणभूभृतः ॥
दैत्यसैन्यसमायुक्तो मृगयूथान्यनेकशः । वनेषु निघ्नंस्तरसा विचचाराऽऽशु भक्षयन्
धन्विभिर्बलिभिर्वीरैर्मृगाः केचिदनुद्रुताः । भयार्त्ताः परिधावन्तःप्राविशंस्तंतथाश्रमम्
अनुव्रजन्तो दितिजा मृगांस्तान्हन्तुमुद्यताः । वारितावटुकैर्वीरैर्मायाताऽत्रेतिसत्वरैः
किमत्रेति तदा पृष्टा बटुका दुष्टदानवैः । तपस्यति वरारोहा कन्याऽत्रेत्याहुरञ्जसा ॥
न केनचित्प्रवेष्टव्यं बलिना मुनिसेवितम् । तपःस्थानमिदं देव्याः शरणागतरक्षकम्
इति तेषां वचः श्रुत्वा बलिनो दुष्टदानवाः । तथेतिविनिवृत्त्याशुकर्त्तव्यंसमचिन्तयन्

मायया पक्षिरूपास्ते प्रविश्याऽऽश्रममादरात् ।
आरामवृक्षशाखासु निषेदुःखादिहेक्षितुम् ॥ ४१ ॥

सा पुनर्ल्लसितारण्ये सर्वर्तुकुसुमान्विते । तपस्यन्ती तदा दृष्टा मायादैत्यस्यसैनिकैः
रूपलावण्यतेतस्यानिश्चयंतपसिस्थितम् । वीक्ष्य ते विस्मयोपेतागत्वातस्मैन्यवेदयन्
सस्मरार्त्तोवृद्धरूपःप्रविवेशाऽऽश्रमंतदा। पूजितोऽस्याःसखीभिश्चगतश्रान्तिरिवस्थितः
वृद्धोऽपृच्छत्किमर्थन्तुतपोऽस्याइतितास्तथा । बालाकान्तप्रसादार्थंचिरमत्रतपस्यति
परं स बलवान्कान्तो न कदापि प्रसीदति । कार्यं विवाहसमये मनोरथं यथोचितम्
अपूर्वप्रभुणां तेन नवोपकरणं महत् । सद्योजातकुलालेन सद्यःसृष्टैर्विपाचितैः ॥४७॥

भाजनैरपि साद्यस्कैर्न्यस्तैः पक्वैश्च शालिभिः ।
तादृशैः साधनैः सर्वैस्तादृशैर्द्रव्यसञ्चयैः ॥ ४८ ॥

अपूर्वदृष्टविभवैःकार्यंस्यादुपकारणम् । सिद्धे तथोपकरणेऽस्याः सद्योऽस्तुस्वयम्वरः
इतितासांवचःश्रुत्वाविहसन्महिषोऽभ्यधात् । तपःफलमहंप्राप्तःसत्यमस्याइतिस्थितम्

मदीयां सकलां मूर्तिं शृणु बाले तपस्विनि ! ॥ ५० ॥

महिषोऽहं महावीरो दैत्येन्द्रः सुरवन्दितः । जगत्त्रयमिदं सर्वं मयैव परिगृह्यते ॥
अनन्यवीरसद्भावो मय्येव भुजशुष्मणा । कामरूपोऽस्म्यहं बाले सर्वभोगप्रदायकः ॥
भज मां तव भर्त्तारं प्राणिनां तपसः फलम् । सर्वंसम्पादयिष्यामिकल्पवृक्षैःसमाहृतैः
सृजामितपसा चाऽहं विश्वकर्माणमादितः । कामधेनुसहस्राणिसृजामितपसाक्षणात्
नवभिर्निधिभिः प्राप्तैः पार्श्वस्थैर्नित्यदा मम । अपेक्षितार्थसंसिद्धिः सहसैवोपपाद्यते
इति तस्य वचः श्रुत्वा स्मृतदेवाभवत्क्रमात् । विसृज्यमौनंशनकैर्विहसन्तीतमब्रवीत्

अहं बलवतो भार्या भविष्यामि तपश्चिरम् ।
करोमि यद्यसि बली बलं दर्शय मे निजम् ॥ ५७ ॥

विरच स्त्रीस्वभावंस्वंश्रुत्वातद्वाक्यमुत्थितम् । हतेकोऽयमितिक्रोधान्ननर्दमहिषासुरः
जिघृक्षन्तंसमायान्तंवीक्ष्य तं महिषासुरम् । अभूद्दुरासदादुर्गाकन्यासाज्वलनाकृतिः
महामायांसमालोक्य ज्वलन्तींपुरतःस्थिताम् । स्वयं समहिषाकारोववृधेमेरुसन्निभः
कुलभूधरशृङ्गाणि शृङ्गाभ्यां मुहुराक्षिपन् । आजुहाव निजां सेनामापूरितदिगन्तराम्
अथ ब्रह्ममुखा देवाः प्रणम्यविविधायुधैः । पूजयामासुरात्मीयैर्दुर्गांकालाग्निरूपिणीम्
पञ्चहेतीर्हरिः प्रादादृश चाऽपिसदाशिवः । ब्रह्मा चतस्रश्च तदा तस्यै मायातिरोहिताः
दिक्पालाश्च सुराश्चान्ये पर्वताश्चपयोधयः । स्वीयैराभरणैःशस्त्रैरधृष्यास्तामपूजयन्
माया सा बहुभिर्हस्तैर्ज्वलदायुधसञ्चयैः । आबद्धकवचा तूर्णं दुर्गाऽभूत्सिंहवाहना ॥
आपूरितदिशाभोगा तेजस्तत्सोढुमक्षमः । दुर्गाया घोरमालोक्य महिषस्तुपलायितः
अथ तेजो निजं घोरंप्रज्वलत्सोढुमक्षमम् । पलायमानमालोक्य महिषंसाव्यचिन्तयत्
उपायेन निहन्तव्यो दुष्टोऽयं महिषासुरः । मदपूर्वं निवृत्यन्ते मृगा मृगयुभिर्वने ॥

दूतोक्तिभिःसमाकृष्यमृद्वीभिर्मर्मवृत्तिभिः। कोपमस्यसमुद्भाव्यकरिष्येऽभिमुखंक्षणात्
अधर्मवृत्तियुक्तानां धर्मवाक्यपरिश्रवात्। कोपः समुद्भवेत्सद्यः स्वजीवक्षयकारणम्
अथवा धर्मबुद्धिस्सन्यदि शान्तो भविष्यति।
तदा हितोपदेशेन धर्मलोपो न सम्भवेत्॥ ७१॥
तपस्यद्भिःसदाकार्यःकोपत्यागःफलान्वितः। धर्महानिर्नसोढव्यातत्कोपोहितपःपरम्
इति सञ्चिन्त्य सा गौरी नाम्नासुरगुरुं मुनिम्। सङ्कल्प्यवानरमुखंप्राहिणोदसुरंप्रति
गच्छ त्वं मायया युक्तो महर्षे वानरानन। महिषं बोधयित्वा च वचनं शीघ्रमाव्रज
मैव त्वमरुणाद्रीशमुपपीडय दुर्मते। अत्र दुर्मनसां वीर्यमदृश्यं भवति क्षणात्॥७५॥
न कलेरुपतापोऽत्र नाऽसुरैरपि पीडनम्। न साहसं च शुभदं शिवभक्तिमतामपि॥
पूर्वजन्मकृतैः पुण्यैर्लब्धवीर्यमहोदयः। मा त्वं शोणाचलेशाग्नौ शलभत्वं भजाऽसुर!
शिवेन दत्ता विभवास्तव पूर्वतपोबलात्। दह्येरन्यत्र तरसा दाववह्नौ यथा द्रुमाः॥
अत्र धर्मात्मनां वासः शिवभक्तिमतां सदा। परपीडाप्रसक्तानां भवेद्रोगशतावृतः॥
ऐश्वर्यमतुलं प्राप्तो बलमन्यद्दुरासदम्। किमर्थं स्वल्पबुद्धिःसन्स्वदोषैर्नाशमेष्यसि
मया कन्या पुनर्दृष्टा विशेषादबलामता। अन्तर्गतोऽरुणाद्रीशएतस्मात्साविशिष्यते
अथवा युक्तिभेदैस्त्वं शास्त्रैर्वा शिवसम्मतैः। अनिग्राह्यमनोवृत्तिरात्मसैन्यं समानय
येन लोकान्समस्तांस्त्वंबाधसेबलगर्वितः। तत्सैन्यं तव वृद्धंचक्षणाद्धक्ष्यामितेजसा
आनीय सकलं सैन्यमग्रे स्थापय सायुधम्।
सद्यस्त्वात्मबलैः सृष्टैः संहरिष्यामि तत्क्षणात्॥ ८४॥
मच्छस्त्रपरिकृत्तस्य ससैन्यस्यतवाऽऽयुषः। मुक्तिरत्रैवभविताको जानातिशिवेहितम्
वार्यमाणोऽपि पूर्वेण कर्मणा प्रेरितो जनः। अवशः कर्म कुरुते भुङ्क्ते च सदृशंफलम्
त्वयाऽपि करुणावाक्यं वक्तव्यंकिलभूरिभिः। अकार्यविनिवृत्त्यर्थंनित्यधर्मानुपालने
इति गौर्या समादिष्टांवाचांकपिमुखोमुनिः। दूतःसन्सर्वमाचष्टमहिषस्याग्रतः स्थितः
सोऽपि सर्वं समाकर्ण्य क्रोधवेगसमाकुलः। तं भक्षयितुमारेभेसोऽपिमायाबलाद्ययौ
अथ सैन्यं निजं सर्वं समाहूयदुराशयः। सन्नद्धंसायुधंयोद्धुमादिशल्लोकभीषणम्॥

युगान्तसमयोद्वेलचतुरर्णवसन्निभम् । सैन्यानां सैन्यमतुलं शोणाद्रिं पर्यवेष्टयत् ॥
अथ गौरीसमालोक्यदैत्यानांसैन्यमद्भुतम् । ससर्जतैजसाः क्रूराःघोराःभूतगणान्बहून्
एकपादाक्षिचरणा लम्बकर्णपयोधराः । पाणिपादशिरःकुक्षिवक्त्राः केचिद्विनिर्गताः
अहं ग्रसामि सकलमपर्याप्तमिदं मम । अहमेव हनिष्यामि दैत्यसैन्यमशेषतः ॥६४॥

किं त्वयाऽत्र पुनः कार्यं वीक्ष्य त्वं तिष्ठ केवलम् ।
अहमेवाऽत्र योत्स्यामीत्यभाषन्त परस्परम् ॥ ६५ ॥

तेषां कथयतां शङ्कं गणानां योगिनीगणैः । अधमत्सा भगवती हन्तुंतद्दैत्यमण्डलम्
आलोक्यतांतथारूपामापतंस्तस्यसैनिकाः।दर्शयन्तःस्ववीर्याणिस्वामिनोऽग्रेधृतायुधाः
ववृषुः शस्त्रवर्षाणिदैत्याःप्रतिदिगन्तरम् । बाणैःकार्मुकनिर्मुक्तैस्तानिसातुन्यवारयत्
रथानां वारणेन्द्राणां हयानां लक्षकोटिभिः । युयुधुर्भूतवेतालादेव्या सृष्टास्तुदुर्जयाः
मातरोविविधाकाराडाकिन्योयोगिनीगणाः।सृष्टाश्चतेजसाभूयःपिशाचाःप्रेतराक्षसाः
देव्या सृष्टेन सैन्येन दुर्जयेनमहासुराः । भक्षिताश्चूर्णिताभिन्नादारितानिहताःक्षणात्

देवी च सायुधा दृष्टा ज्वलन्ती निहतासुरैः ।
नृत्यद्भूतगणैर्भुक्तै रक्तैर्मांसैश्च तोषितैः ॥ १०२ ॥

यदा कैलासशिखरात्प्राप्ताकर्त्तुं तपोभुवम् । तदा समागताः काश्चिन्मातृकादेहगुप्तये
दुन्दुभिःसत्यवत्याख्यातथाचान्तवतीपरा । सुन्दरीतिचतस्रस्ताअन्वयुःपरिचारिकाः
देव्या सृष्टा च चामुण्डा दंष्ट्रावलयभीषणा । दैत्यकृत्तिवसामांसरक्ततृप्ताचचार सा॥

असुरं कञ्चिदाक्रम्य नटनं सा चकार ह ॥ १०६ ॥
अथ तां समवेक्ष्य दुर्मदो हि ज्वलयामास च कोपवह्निना सः ।
अतितीव्रविवृत्तभीष्मनेत्रश्रुति-शृङ्गाग्रविभिन्न-मेघजालः ॥ १०७ ॥
ज्वलदग्निशिखाभदीर्घजिह्वा-परिलीढोन्नतशैलशृङ्गभागः ।
अवनिं दलयन्खुराभिघातैरसकृत्पांसुभिरास्वनन्दिगन्तान् ॥ १०८ ॥
अतिघर्घरदीर्घघोरनादस्फुटदण्डभ्रममोहितामरो यः ।
धृतवालधिदण्डताड्यमानप्रतिशीर्णामितशस्त्रवर्षसङ्घः ॥ १०६ ॥

मृतये व्यगमद्बलित्रयाढ्यां मृगराजस्थितिभासुरां भवानीम् ॥ ११० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धे देव्यास्तपश्चर्यायांमहिषासुरेण सह युद्धवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

महिषासुरवधोत्तरंदेवीहस्तेमहिषासुरशिरःसँल्लग्नतावर्णनमरुणाचलमाहात्म्यञ्च

ब्रह्मोवाच

सतुसिंहस्थितां गौरीं ज्वलन्तीं विविधायुधाम् । शैलवर्षेणमहताकुपितः समपूरयत्
शरवर्षेण महता तन्निवार्य विदूरतः । बिभेद निशितैः शस्त्रैरशेषं तस्य विग्रहम् ॥२॥
भिद्यमानोऽपि दैत्येन्द्रः शैलसारप्रदुर्धरः । विषादं नागमत्किञ्चिद्युधे युद्धदुर्म्मदः
भिद्यमानःस खड्गेन चक्रैरसिभिर्ऋष्टिभिः । शूलेन चाऽऽयुधैश्चान्यैरन्तर्धानमगाहत
ततः सिंहाकृतिर्भीमः प्रचण्डनिनदाननः । तीक्ष्णदंष्ट्रः शितनखः परिबभ्राम केसरी ॥
देवीसिंहश्चपेटेनताडयामास पाणिना । दैत्यसिंहस्य च नखैस्तस्य वक्षो व्यदारयत्
अथ व्याघ्रतया प्राप्तः स्फुटव्यात्ताननोमहान् । तं हन्तुं च बलाद्देवी वेगेनकरमक्षिपत्
दीर्घाभिर्नीलरेखाभिः पूर्णःपिङ्गलविग्रहः । यानावलिभिराकीर्णःस्वर्णाद्रिरिवसञ्चरन्

मृगैरिव परित्रातुं मुच्यमानोऽग्रतो बली ।
ज्वलन्तमिव रोषाग्निं जिह्वाहेतिभिरावहन् ॥ ६ ॥

आगच्छन्तं रयाद्देवी भल्लेन शशिवर्चसा । प्रतिविव्याध तं व्याघ्रं पुरत्रयमिवेश्वरः॥
स बाणस्तन्मुखेमग्नस्तद्रक्तेन समुक्षितः । जगाहे गगनं भित्त्वादेहमस्यविनिर्गतः ॥११

स दैत्यो वारणो भूत्वा देवीमाश्वभ्युपागमत् ।
बलिभिः पशुभिर्भिन्नैस्तस्याः प्रीतिमिवाऽवहन् ॥ १२ ॥

तं गजेन्द्रं समायान्तं मदक्लिन्नमहीतलम् । देवीसिंहस्तदा दृष्ट्वा ननर्द च जघान च
अथ खड्गधरो वीरश्चर्मपाणिःसमुद्गतः । वक्त्रं दधानो बभ्राम दंष्ट्राभ्रूकुटिभीषणम् ॥
देवी च विलसत्खड्गचक्रचक्रलसत्करा । युयोध तेन वीरेण भग्नशीर्षाभ्यपद्यत ॥
भूयः स माहिषं रूपमास्थायासुरमायया । देव्या योद्धुं प्रववृते यथापूर्वमनाकुलम् ॥
अथदेवैर्मुनीन्द्रैश्चचोदितो गौतमोमुनिः । प्रबोधयितुमारेभे स्तुतिभिर्जगदम्बिकाम् ॥
त्वयि सर्वस्य जगतः प्राणशक्तिः परा मता । ओजःशक्तिर्ज्ञानशक्तिर्बलशक्तिश्चगम्यते
किमेतदद्य मोहाय युद्धमारभ्यते त्वया । उपसंह्रियतामेष दैत्यो भुवनगुप्तये ॥ १९ ॥
भिन्नानामस्य देहानामुपसंहरणात्तव । वलयश्चोपदिश्यन्ते निगमोक्ता वरप्रदाः ॥
अन्यथा तृणकल्पस्य शत्रोरस्य निवर्हणे ।
कालाग्निवर्चसो देवि! किमर्थं सम्भ्रमस्त्वियान् ॥ २१ ॥
स्वशक्तिमवसंस्तस्य समाकर्षयतां रिपोः । प्राणशक्तिं त्रिशूलेन गुणत्रयवपुर्धृता ॥
इति स्म बोधिता तेन पुरा भगवती तदा । महिषासुरमाक्रम्यत्रिशूलेनाऽभ्यधारयत्
अनेकगिरिसङ्काशं देव्या विग्रहमात्मना । अशक्तस्तं धारयितुं ससाद महिषासुरः ॥
निष्पिष्टो विलुठन्क्रोशन्नाक्रान्तश्चपरिस्फुरन् । निर्गन्तुमुद्गतशिरानशशाकासुराधिपः
त्रिशूलमुखभिन्नाङ्गरक्तधारासमुद्गतः । समुद्र इव सञ्जातः सन्ध्यारुणकलेवरः ॥२६॥
अथ खड्गेन तीक्ष्णेन कर्तयित्वाचतच्छिरः । ननर्त्त तस्य शिरसितिष्ठन्तीमहिषार्दिनी
दुर्गां सिद्धाश्च गन्धर्वाः प्रशशंसुर्महर्षयः । पुष्पवृष्टिश्च महती देवैर्मुक्ता समन्ततः ॥
प्रणतः प्राञ्जलिर्देवीं तुष्टाव विबुधाधिपः ।

इन्द्र उवाच

नमस्ते जगतां मात्रे भूतानां बीजसम्विदे ! ॥२९ ॥
भक्तिःश्रद्धाचभजतांशक्तिश्चासित्वमम्बिके । कारणंपरमाकीर्तिःशान्तिर्दान्तिःकलाक्षमा
एकैव विश्वरूपा त्वं नामभेदैर्निगद्यसे । तेषुतेषु पदेष्वस्मांस्तपोऽनुगुणसिद्धिषु ॥
नियुज्य शत्रुंनिर्भिद्य शिवा ज्ञेयाप्रकाशसे । हतोऽयंमहिषोदुष्टो विनिकृत्तश्चशाम्भवि
छिन्नमेतस्यतु शिरः सजीवमिव लक्ष्यते । रक्तनेत्रं तीक्ष्णशृङ्गं ज्वलज्जिह्वं चलं शिरः

आक्रम्य तव तिष्ठन्त्या रूपमेव सदाऽस्तु नः । चक्रशङ्खधनुर्बाणखड्गचर्मवराभयैः ॥
शूलघण्टाङ्कुशकशाकपालकुलिशादिभिः । अशेषदेवतामूर्तिरशेषैर्देवतायुधैः ॥ ३५ ॥
आपूरिता त्वमेवाऽम्बसर्वशत्रून्निहंसि नः । आयुधानां सहस्राणितन्मयास्तेविभूतयः
त्वज्जितारातयः सर्वे विविधायुधवाहनाः । रथनागहयैर्युक्ताः ससैन्या अपि भूभृतः
क्षणेन दग्धवीर्याः स्युस्त्वत्प्रसादविवर्जिताः ।
अपदोऽप्यल्पवीर्योऽपि त्वत्पादाम्बुजसेवकः ॥ ३८ ॥
त्रिलोकनाथतां प्राप्तः प्रथते कीर्तिमण्डितः । तद्रूपमिदमत्युग्रं ध्यायतामर्चतां सदा ॥
न शत्रुभ्यो भयं किञ्चिद्भवेद्विजयशालिनाम् । ईदृशं सर्वलोकेषु रूपं ते देववन्दितम् ॥
पूज्यतामिष्टसिद्ध्यर्थं देवैर्भृत्यैश्च सर्वदा । मातरश्च त्वया सृष्टाः सर्वाभीष्टफलप्रदाः
सगणाः प्रतिपूज्यन्तां सर्वस्थानेषु सर्वदा । अयं च निहतोदैत्यस्त्वत्पादकृतलाञ्छनः
तव भक्तैः सदा पूज्यस्त्वत्प्रसादात्त्वदग्रतः । इत्थं सुरेन्द्रप्रणुता सुर्वर्षिसुरसेविता ॥
तथेति वरदा देवी ससर्ज च दिवं प्रति । स्वयमप्यात्मनस्तत्र तद्रूपं विविधायुधम्
संस्थाप्य मातृभिः सार्धं स्थानरक्षणमातनोत् । सङ्गृह्यविमलंरूपंसखीजनसमावृता
महिषस्य शिरोऽपश्यिद्धिकृतं खड्गधारया । कथयन्तीपुनस्तस्यचित्रंलोकविभूषणम्
सखीभिःसहसाबालाकण्ठंतस्यव्यलोकयत् । अपश्यच्चतदालिङ्गंकर्त्तुं तस्य च पूजनम्
आदत्त सहसा गौरी लिङ्गं तस्यगलेस्थितम् । आलोकयच्चसुचिरंरक्तधारापरिप्लुतम्
आसज्जत पुनर्लिङ्गमस्याः पाणितलं गतम् ।
विमोचयितुमुद्युक्ता नाशक्नोल्लग्नमञ्जसा ॥ ४६ ॥
अचिन्तयच्च सा देवी किमेतदितिविस्मयात् । विषादेनच संयुक्तामहर्षीणांपुरःस्थिता
आहतःशिवभक्तोऽयमितिशोकंसमाविशत् । अगर्हतभृशंमौढ्यमात्मनःस्त्रीस्वभावजम्
अविचारसमारब्धं शिवभक्तनिबर्हणम् । उपतापपरीताङ्गी गौतमं मुनिसत्तमम् ॥
उपगम्याऽब्रवीद्बाला साहसं कृतमात्मना । भगवन्सर्वधर्मज्ञ गौतमार्यमुनीश्वर! ॥
नान्यथा धर्मरूपेण कोऽप्यधर्मः प्रकल्पितः । देवानां रक्षणं कर्तुमभयं दातुमुद्यता ॥
अज्ञानान्महिषं दैत्यं शिवभक्तिममर्दयम् । रजसाक्रान्तबुद्धीनां न भवेद्धर्मसंग्रहः ॥

गुरुप्रसादसुलभः स्फुरद्विघ्नशताकुलः । सुदुर्धर्षा निराचारदुर्दमाः शिवसंश्रयाः ॥

विशेषतो लिङ्गधराः शिवस्तान्वहु मन्यते ।

पुरा पुरत्रयावासा दैतेया लिङ्गधारकाः ॥ ५७ ॥

अजिताः शम्भुनापूर्वंमुक्तलिङ्गानिषूदिताः । अस्यकण्ठस्थितंलिङ्गं मम पाणिं नमुञ्चति
कथंपापंनिरस्यामिशिवभक्तवधाश्रितम् । अस्यकण्ठस्थितं लिङ्गंधारयन्तीतपोन्विता
तीर्थयात्रांकरिष्यामियावच्छम्भुःप्रसीदति । पुनः कैलासमुख्येषु शम्भुस्थानेषु भूरिषु
तीर्थेषुरचितस्नाना लप्स्ये पापविशोधनम् । इति तस्याः परिश्रान्तिं दुर्धर्मपरिशङ्कया
आकर्ण्यशिवधर्मज्ञो भयार्त्तां तामवोचत । माभैषीर्गिरिजेमोहाच्छिवभक्तोहतस्त्वति
धर्मसूक्ष्मार्थवेत्तारो दुर्लभा गिरिकन्यके । सदा शिवस्य वदनैः सद्योजातादिसंश्रितैः
आगमाःपञ्चभिःप्रोक्ताअष्टाविंशतिकोटयः । निर्णयाःशिवभक्तानांशिवमार्गस्यशोभनाः
तेषुतेषु मुनीन्द्रैश्च नत्वैव प्रतिपद्यते । कालो मुखं च कङ्कालं शैवं पाशुपतं तथा ॥

महाव्रतं पञ्च चैताः शिवमार्गप्रवृत्तयः ।

भेदाश्चवहवस्तेषामन्योन्यस्य शिवे रताः ॥ ६६ ॥

साध्य एको हि वलवान्सर्वैस्तैरनिशं शिवः । सर्वं एवसदापूज्याःस्वधर्मपरिनिष्ठितैः
अमत्सरैः शिवे भक्तः शिवाज्ञापरिपालकैः । वेदैश्च वहुभिर्यज्ञैर्भक्त्या च परयाशिवः
आराध्यते महादेवः सर्वदा सर्वदायकः । जीवहिंसा न कर्त्तव्या विशेषण तपस्विभिः
शिवधर्मस्य भेत्तारो निहन्तव्यास्तथाऽञ्जसा । न वेषजुषिवीक्षेतन लिङ्गं नैव सम्भवम्
शिवधर्मस्य भेत्तारं हन्यादेवाऽविचारयन् । वहुभिः स्फूर्तयावुद्धयाधर्मविद्भिर्निरूपिते
शिवधर्मस्य विलये सद्यः शक्तिः प्रवर्तते । अस्य कर्म पुनर्दिष्टं लिङ्गमैश्वर्यचर्चितम्
न जेतुं शक्यते देवि तेनाऽसौ सर्वदैवतैः । यदयं निहतो देवि त्वया शङ्करमान्यया ॥

आक्रान्तः शापदोषेण महर्षीणां शिवाश्रयात् ।

अथ ते कुपितास्तस्य वैषम्यादवमानतः ॥ ७४ ॥

शेपुर्महिषवद्दुष्टो महिषोऽयं भवत्विति । ततस्तद्वचनात्सद्यो महिषोऽभूत्क्षणात्तथा
प्रणम्य तोषयामास ययाचे शापमोचनम् । दत्वा प्रकामरूपत्वं ददुरस्मै प्रसादिताः

महिषत्वेऽपि संहारस्त्वयं देव्या शिवाज्ञया । विषादो न च कर्त्तव्योअङ्गदर्शनतस्त्वया
सिद्धानां शिवरूपाणामवज्ञा कं न बाधते । महिषत्वे समुत्पन्ने दोषेण समुपस्थिते
सिद्धप्रसादाल्लब्धोऽयंशापनाशस्त्वयाकृतः । सर्वैलोकाश्चसन्त्राताद्दुष्टोऽयंपरिरक्षितः
शापदोषसमुत्पन्ने महिषत्वे विमोचिते । त्वया च गिरिशप्रीत्यै तपः कुर्वाणयाऽद्रिजे
द्रष्टव्यं तैजसं लिङ्गमरुणाचलसञ्ज्ञितम् । पूर्वजन्मनिभक्तोऽयमरुणाद्रिपतेः स्फुटम् ॥
महिषत्वे मदाक्रान्तः परं लिङ्गेन सङ्गतः । भक्त्या लिङ्गधरं हन्तुं कः समर्थो जगत्त्रये
दृष्टाः पुरत्रये पूर्वं रुद्रेण पूजितास्त्रयः । त्वत्खड्गपरिकृत्तेन कण्ठेनाऽस्य वरानने॥८३

दीक्षादिरहितं लिङ्गं दत्तं हन्तीति चोदितम् ।
कृतं हि महिषेणाऽपि भक्तितो लिङ्गधारणम् ॥ ८४ ॥

कदाचित्क्षपणोक्तानांविभाषात्प्रत्ययंगतः । पूर्वजन्मतपोयोगात्स्मरणोलिङ्गधारणात्
त्वत्पादपद्मसंस्पर्शादयं मुक्तो न संशयः । मदुक्तनिष्कृतीनान्तु पातकानाञ्च नाशनम्
दर्शनं शैलवर्यस्यप्रायश्चित्तंपरंमतम् । संस्थाप्य विविधाञ्छैवाञ्छिवसिद्धान्तवेदिनः
आवाह्य सर्वतीर्थानि सर्वदोषनिवृत्तये । सरः किमपि सम्पाद्य स्नात्वा तत्र वरानने
अघमर्षणसंयुक्ता सलिङ्गा स्नानमाचर । त्रिसन्ध्यं चैव मासान्ते देवयागमहोत्सवे ॥

आराधयोपचारैस्त्वमरुणाद्रिमयं शिवम् ॥ ९० ॥

एवं तस्य मुनेर्निशम्य वचनं शैवार्थसम्भावितं-
प्रीता देवनमस्कृता गिरिसुता देवीजगद्रक्षिका ।
शैवं धर्ममिमं विधातुमुचितं शोणाचलस्याऽग्रत-
स्तीर्थागाहनबुद्धिमाशुविदधे कर्तुं त्वघक्षालनम् ॥ ९१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धे महिषासुरवधोत्तरंदेवीपाणौ महिषासुर-
शिरःसँल्लग्नतावृत्तान्तवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥११ ॥

———

द्वादशोऽध्यायः

सनवतीर्थप्रतिष्ठापनं देव्याशिवसमागमवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इति सम्भाषमाणे तु महर्षौ मुनिसेविते । विजहौ गिरिजा शङ्कांशिवभक्तवधाश्रिताम्
अथान्तरिक्षादुदभूद्वाणी कर्णमनोहरा । माऽगमः शैलकन्ये त्वं पापनिष्कृतिकारणात्

गङ्गा च यमुना सिन्धुर्गोदाऽपि च सरस्वती ।
नर्मदा सा च कावेरी शोणः शोणनदी च सा ॥ ३ ॥

अत्रैव नवतीर्थानि सम्भवन्तु शिलातले । त्वत्खड्गदारिते देवि कुरु तत्राऽघमर्षणम्
अस्मिन्नाश्वियुजेमासिज्येष्ठानक्षत्रआगते । निमज्ज्यखड्गतीर्थेत्वंसलिङ्गामासमावस

निवर्त्य सावनं मासमत्र दिक्पालसम्मितम् ।
ततः पाणिस्थितं लिङ्गं लब्ध्वा पापविशोधनम् ॥ ६ ॥

प्रतिष्ठापय तीर्थाग्रेलोकानुग्रहकारणात् । उत्तीर्यतीर्थवर्येऽस्मिन्स्नात्वालिङ्गेऽर्चितेशिवे
तापत्रयोपशान्तिश्च त्रैलोक्यस्य न संशयः । सर्वपापहरं लिङ्गं स्थावरं तीर्थसन्निधौ
स्थापय स्थिरया भक्त्या सदालोकहिताय च । नक्षत्रे वैश्वदैवत्येदेवक्याःसङ्गमाचर॥
महोत्सवसमायुक्तं यावद्दशदिनावधि । कृत्वा चाऽवभृथं पुण्यनक्षत्रे वह्निदैवते॥१०॥
सायमभ्यर्च्य विधिवच्छोणाचलवपुर्मम । ततस्ते दर्शयिष्यामि तैजसं रूपमात्मनः ॥
एतत्कृतन्ते लोकानां रक्षायै सम्भविष्यति । इति तद्वचनं श्रुत्वा महर्षिवचनं च सा
उभयं कर्तुमारेभे तपसा शैलकन्यका । खड्गेन दारयामास शिलातलमनाकुला ॥
उदजृम्भत तीर्थानां नवकंतत्रतत्क्षणात् । तस्य कण्ठस्थितंलिंगंध्यायन्तीपर्वतात्मजा
तीर्थे ममज्ज तस्मिन्सा मुनीनामभ्यनुज्ञया । तीर्थानां नवकं तत्र सञ्जातंस्फटिकप्रभम्
अन्तर्वसतितः कान्त्या मेचकी कृतमञ्जसा । वसन्त्यां शैलकन्यायांतीर्थेत्रिंशद्दिनंत्वथ
शम्भोर्विरहसन्तप्तं मनश्चञ्चलतां ययौ । तत्र श्रिया सरोजानि चक्षुषोत्पलकाननम् ॥

मन्दस्मितेन कुमुदं ससर्ज सलिलस्य सा। देव्यास्तेनोदवासेन लोकास्तु निरुपद्रवाः
कृतार्थास्सहसा जातास्तत्तत्कालफलान्विताः।
मासान्ते सा समुत्तीर्य कृत्वा देव्युत्सवं तथा॥ १९॥
कार्तिके मासि नक्षत्रे कृत्तिकाख्ये निशोदये। पूजयित्वा तपः सिद्धैरुपचारैर्यहृदयैः
अरुणाद्रिमयं लिङ्गं तुष्टाव जगदम्बिका। नमस्ते विश्वरूपाय शोणाचलवपुर्भृते॥२१॥
तेजोमयाद्रिलिङ्गाय सर्वपातकनाशिने। ब्रह्मणा विष्णुना च त्वं दुष्परिच्छेद्यवैभवः॥
अग्निरूपोऽपि सञ्छान्तो लोकानुग्रहक्लृप्तये।
शक्त्या च तत्त्वसङ्घातकरः कालानलाकृतिः॥ २३॥
अद्रिश्रेष्ठारुणाद्रीश रूपलावण्यवारिधे। विचित्ररूपमेतत्ते वेदवेद्यं सुरार्चितम्॥२४॥
तेजसां देव सर्वेषां बीजभूतं निगद्यसे। दिव्यं हि परमं तेजस्तव देव महेश्वर॥२५॥
यत्पुरा ब्रह्मणा दृष्टं विष्णुनाच विचिन्वता। अद्य पूताऽस्मि देवेशतवसन्दर्शनादहम्
तेजो दर्शय मे दिव्यं सर्वदोषहरं परम्। प्रार्थयन्त्यां तदा देव्यामरुणाद्रिमयःशिवः
आविर्बभूव तेजोभिरापूर्य भुवनान्तरम्। कोटिसूर्योदयप्रख्यं तुल्यं पूर्णेन्दुकोटिभिः
कालाग्निकोटिसङ्काशं तेजः परमदृश्यत। प्रणम्य परया भक्त्या मुनिभिःसार्धमम्बिका
विस्मयाक्रान्तहृदया ननन्द नलिनेक्षणा। अथ तेजोनिधेस्तस्मादरुणाद्रिः समुत्थितः
हिरण्मयोऽब्रवीद्वाचंपुरुषः कालकन्धरः। प्रसन्नोऽस्मितपोभिस्तेस्थानेषुममकल्पितैः
तेजोमयमिदं रूपमीक्षितं च त्वयाऽधुना। कारणैर्बहुभिर्लोकान्रक्षेथास्त्वं जगन्मयि
तपांसि कुरुषे भूमौ किमन्यत्प्रार्थितंतव। मल्लोचनत्विषातेऽद्यतमोराशिःसमुत्थितः
अशेषोहि प्रशान्तोऽभूत्तेजसोऽस्यनिरीक्षणात्। अयं तु महिषोदुष्टोमद्भक्तिलिङ्गपूजकः
जग्राह सहसा ह्येतत्तस्य लिङ्गं गले स्थितम्।
अनेन भक्षितं तच्च नास्तिकस्योपदेशतः॥ ३५॥
अकरोन्मय्यविश्वासं लिङ्गरूपे गलेस्थिते। क्रमेण सोऽपिसम्प्राप्तोमुनिजन्ममनोहरम्
मामेवाभ्यर्चयन्ध्यायन्गणनाथत्वमावसन्। पूर्वजन्मनि भक्तोऽयंमहिषोऽपित्वयाहतः
परंमलिंगधृग्यस्मात्सिद्धिरस्याऽपिदेव्यतः। शिवलिङ्गेष्वविश्वासःशिवभक्तावमाननम्

न कर्त्तव्यं सदा भक्तैस्तस्माद्वै मुक्तिकाङ्क्षिभिः ।
दीक्षया रहितं लिङ्गं येन सन्धार्य्यते बलात् ॥ ३६ ॥
न तादृशं फलं दत्ते वज्रवत्तं निहन्ति च । न दोषस्तत्र किञ्चित्तेशोणाचलनिरीक्षणात्
सफला नयनावाप्तिः सर्वदोषविनाशनात् । त्वत्पुत्रस्तन्यदानेन धात्र्योपकृतमात्मजे
त्वामपीतकुचां चक्रे वत्सलांभक्तरक्षिणीम् । नक्षत्रे कृत्तिकाख्येऽत्रतवसन्निधिलोभतः
प्रायश्चित्ताभिधानेन भवाऽपीतकुचाभिधा । पूजाशेषं समाधायभक्तानुग्रहहेतवे॥४३॥
भज मां करुणामूर्तिरपीतकुचनायिका । इति देवस्य वचनमाकर्ण्याऽत्यन्तशीतलम्
प्रणम्य प्रार्थितवती प्रोवाच च तमम्बिका । देवदेव प्रसादेन त्वयाऽनुग्रहशालिना ॥
एतत्ते दर्शितं तेजो दृष्टं देवैश्च मानवैः । प्रत्यक्षं कृत्तिकामासि मद्व्रतान्तमहोत्सवे॥
नक्षत्रे कृत्तिकाख्येऽस्मिंस्तेजस्ते दृश्यतां परम् । तद्वीक्षितमिदं तेजःपरमं प्रतिवत्सरम्
दृष्ट्वा समस्तैर्दुरितैर्मुच्यन्तां सर्वजन्तवः । तथेति देवदेवेन प्रोचेऽथाऽन्तर्दधे गिरौ ॥
प्रदक्षिणं चकारैनं सखीभिः सा ततोऽम्बिका ।
घनश्यामलया कान्त्या परितो जृम्भमाणया ॥ ४६ ॥
अरुणाद्रिमयं लिङ्गं चक्रे मरकतप्रभम् । मन्दं चरन्ती जाताभिः प्रभाभिः पादपद्मयोः
तस्तार परितो भूमिं पद्मपत्रैः सपल्लवैः । प्रफुल्लकनकाम्भोजनीलोत्पलदलोत्करैः ॥
अर्चयन्तीव शोणाद्रिमभितोदृष्टिकान्तिभिः । इन्द्रादिलोकपालानामङ्गनाभिर्निषेविता
प्रसादिता मातृगणैर्गन्धदानविभूषणैः । छत्रचामरभृङ्गारतालवृन्तफलाचिकाः ॥५३॥
वहन्तीभिः सुरस्त्रीभिर्वृता मुनिवधूयुता । प्रदक्षिणं चकारैनमरुणाद्रिं स्वयम्प्रभम् ॥
काङ्क्षन्ती शिवसायुज्यं विवाहाग्निमिवाऽद्रिजा ।
तस्यां प्रदक्षिणं भक्त्या कुर्वाणायां पदे पदे ॥ ५५ ॥
प्रेषिता शम्भुना देवाः परिवव्रुः सुरेश्वराः । सरस्वतीसमं धात्रा विष्णुनाच समं रमा
सर्वदिक्पालकान्ताभिः समेता शैलबालिका । निरुन्धतीव देवेन्द्रं सलिलैर्वरदानतः
अद्रिनाथस्वरूपस्य शीतत्वमिव कुर्वती । तपस्ययाऽविनाभावाद्देवस्येव कृतस्मृतिः ॥
दुष्करस्योदवासस्य बोधयन्तीव साधुताम् । ऋषीणांदेवमानानामुपदेष्टुमिव क्रमात्

क्रीडामिवपुराभ्यस्तांतपसाऽपिच सङ्गत। आत्मानंविरहोत्तप्तामात्मस्थंतादृशंशिवम्
सञ्चिन्त्य चोभयोःकर्तुंशीतलत्वंजलेस्थिता। तीर्थानामिवसर्वेषामुद्भूतानांशिलातले
आधिक्यमथ लोकस्य वक्तुकामा स्वयं स्थिता।
दुरितघ्नं च पञ्चाग्निमर्थावासं सुदुष्करम्॥ ६२॥
अधिगम्य तपस्तस्यशान्तिकर्तुमिवस्थिता। महिषासुरकण्ठोत्थरक्तधारापरिप्लुतम्
क्षालयन्तीव लिङ्गं तदमलैस्तीर्थवारिभिः। अरुणाख्यं पुरं रम्यं निर्मितं विश्वकर्मणा
अपीतकुचनाथेशशोणाद्रीश्वरतुष्टये। शृङ्गेषु यस्य सौधेषु वसन्त्यो वारयोषितः॥
अधःकृताभ्रतडितो जिगीषन्तीव चामरीः। यत्तुङ्गसौधशृङ्गाग्रे गायन्तीर्वारयोषितः॥
सिद्धचारणगन्धर्वविद्याधरविराजितम्। अष्टापदरथाक्रान्तमष्टवीथिविराजितम्॥६७
अष्टापदयथाकारमष्टदिक्पालपूजितम्। अष्टसिद्धियुतैः सिद्धैरष्टमूर्तिपदाश्रयैः॥६८॥
अष्टाङ्गभक्तियुक्तैस्तैर्युक्तमष्टाङ्गबुद्धिभिः। चातुर्वर्ण्यगुणोपेतमुपवर्णपरिष्कृतम्॥ ६९॥
लसत्सुवर्णदुर्वर्णशालामालासमास्थितम्। शङ्खदुन्दुभिनिस्साणमृदङ्गमुरजादिभिः॥
वीणावेणुमुखैस्तालैः सालापैरुपरञ्जितम्।
ब्रह्मघोषनिनादेन महर्षीणां शिवात्मनाम्॥ ७१॥
सेवितव्यं दिने दिव्यसमदर्शवृषध्वजम्। नवरत्नप्रभाजालैर्नवग्रहसमोदयैः॥ ७२॥
निशादिवसयोरेवं दर्शयन्निव सर्वदा। विष्णुः स्थितश्च तं प्रीत्यासिषेवेपुरतोविभुम्
शक्रः सुरगणैः सार्धं सहस्राक्षः समाययौ। पपात दिव्यगन्धाढ्यापुष्पवृष्टिःसमन्ततः
व्योमगङ्गाजलोत्सङ्गशीतलो मरुदाववौ। अतीव सौरभामोदवासिताखिलदिङ्मुखः
कनकाङ्कितशृङ्गाग्रपरिधूतवनावलिः। दर्पसम्भ्रमसन्नद्धो ननाद वृषभो मुहुः॥ ७६॥
वसन्तप्रमुखाः सर्वे सहर्षमृतवः पुरः। असेवन्त प्रियकरैः पुष्पैः स्वयमथोचितैः॥
गणैश्च विविधाकाराः सिद्धाश्च परमर्षयः। सुराश्च कुतुकोपेताः समागच्छन्दिदृक्षवः
कुङ्कुमक्षोदसम्मिश्रकर्पूररजसान्वितः। चर्यामुष्टिमहासारः समकीर्यत सर्वतः॥७९॥
अथ मृदङ्गकमर्दलझल्लरीपटहदुन्दुभितालसमन्वितैः।
जलजकीचककाहलनिःस्वनैः सुरकृतैर्भुवनं समपूरयन्॥ ८०॥

सुरवधूजननृत्यनिरन्तरोल्लुलिततुम्बरुगायनगीतिभिः ।
अभिवृतो मुनिदेवगणान्वितो वृषगतः समदर्शि वृषध्वजः ॥ ८१ ॥
सरसमेत्य शिवः करुणानिधिर्नतमुखीमपि तामपलज्जया ।
ललितमङ्कमनङ्गरिपुः शिवां धृतिमहानधिरोप्य जहर्ष सः ॥ ८२ ॥
ललितया निजया प्रियया ऽन्वितः सुरमुनीन्द्रसमाजसमावृतः ।
ललितमप्सरसां मुहुरादरान्नटनमैक्षत गीतिसमन्वितम् ॥ ८३ ॥
अथ शिवः सुरराजसमर्पिताञ्छुभपटीरमुखानिलसौरभान् ।
हिमगिरिप्रहितांश्च समग्रहीन्मृगमदैः सह गन्धसमुच्चयान् ॥८४ ॥
समनुलेपितहारसुमण्डितावभिगतौ सिततां समलङ्कृतौ ।
स्वयमपीतकुचाकुचकुड्मलावरणरम्भणचञ्चलसत्करौ ॥ ८५ ॥
कठिनतुङ्गघनस्तनकोरकस्थगितमङ्गलगन्धमनोहराम् ।
गिरिसुतामधिगम्य शिवः स्वयं विरहतापमशेषमपाकरोत् ॥ ८६ ॥
अथ विनोदशतैरुपलक्षितां निजवियोगजतापकृशान्विताम् ।
अरुणशैलपतिः स्वयमद्रिजां वरमभीप्सितमर्थय चेत्यशात् ॥ ८७ ॥
सकुतुकं प्रणिपत्य नगात्मजा पुररिपुं भुवनत्रयगुप्तये ।
इममयाचत शोणगिरीश्वरं वरमुदारमनुग्रहसम्मुदम् ॥ ८८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धे देव्याः शिवसमागमवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

शिवेनाऽरुणाचलस्यसर्वश्रेष्ठत्वायवरप्रदानवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अथ गौरी पुरारातिं प्रणम्य जगदम्बिका। अयाचत्ताद्दृशा शम्भुमविनाभावमात्मनः
इदं विज्ञापयामास लोकानुग्रहकारणात्। कृपया परया पूर्णा गौरी सम्वादसुन्दरी
न त्याज्यमेतत्तेरूपमत्रदृष्टिमनोहरम्। अहंत्वया न च त्याज्या सापराधाऽपि सर्वदा
मनोहरमिदं रूपमेतत्ते लोकमङ्गलम् ॥ ३ ॥
आलोक्यतां सदा सर्वैर्दिव्यगन्धसमन्वितम्। भुजङ्गगरलब्रह्मकपालशिवभस्मभिः॥
भीषणैरलमीशान जय वेषपरिग्रहैः। सुकुमारो भवेर्दिव्यमाल्यगन्धाम्बरादिभिः ॥५॥
भूषितो रत्नभूषाभिर्विहरस्व महेश्वर। आगता नित्यमीशान देवगन्धर्वकन्यकाः
सेवन्तामत्र देवेशंनृत्यवादित्रगीतिभिः। गणाश्च मानुषाभूत्वासेवन्तां त्वामहर्निशम्
त्वत्प्रसादादयं देव सुगन्धिः पुष्टिवर्द्धनः। आवयोः सङ्गमो दृष्टोभूयात्सर्वार्थदायकः
गृहीतमत्र देवेश सर्वमन्त्रात्मकं वपुः। चरितं तव कैङ्कर्यमस्तु भक्तिःसदा तव ॥
ज्ञानाज्ञानकृतं नित्यमपराधसहस्रकम्। क्षम्यतां तव भक्तानामनन्यशरणेक्षणात् ॥
इतिदेव्या वचः श्रुत्वा शम्भुः शोणाचलेश्वरः। तमेव वरदः प्रादाद्वरंसर्वमभीप्सितम्
आभाष्यगौरीं कुतुकाद्गन्तुकामः स्वयं शिवः। धारय त्वं मृगमदंमनोज्ञमिदमूचिवान्

महादेव उवाच

पुलकाख्यो महान्दैत्योमृगरूपी तपोधिकम्। कृत्वाप्रापवरंमत्तःसौगन्ध्यंपरमाद्भुतम्
लब्ध्वा वरं स्वगन्धेनामोहयत्सुरयोषितः। तथैवाधर्मसम्प्राप्तो ववाधे सकलं जगत्
दैवैरभ्यर्थितः सोऽहमाहूयाऽसुरनायकम्। विमुञ्च लोकरक्षार्थमासुरं देहमित्यशाम् ॥

पुलक उवाच

त्यक्ष्यामि देवदेवेश देहमेतं त्वदाज्ञया। प्रणम्य भक्तिमनसा मामभ्यर्चैदमूचिवान् ॥

मदङ्गसम्भवं दिव्यं सौरभं विश्वमोहनम् । धार्यतां देवदेवेश सदा सादरचेतसा
पुलकस्वेदजातो हि सदा प्रख्यायतां तव । अयं मृगमदो लोके शृङ्गाररसवर्द्धनः ॥
त्वत्प्रियः कान्तिसौभाग्यरूपलावण्यदायकः । विसृजामि निजं देहं देवदेवजगत्पते
सदा बहुमतो देव्या दिव्यसौरभलुब्धया । मदंशसम्भवा ये स्युर्मत्तपोलब्धसौरभाः
लीयन्तां तव देवेश मूर्तावालेपनच्छलात् । तथेति मय्युक्तवति स दैत्यःपुलकाभिधः
विससर्ज निजं देहं मयि सन्यस्तजीवितः । ततस्तदङ्गसम्भूतं मदं बहुलसौरभम् ॥
अधारयमहं प्रेम्णा शतशृङ्गारवर्द्धनम् । तपसा देवदेवेशि तप्तं तव वपुःकृशम् ॥२३ ॥
मदङ्गं च वियोगात्त इदं निर्वापयाऽधुना । इति प्रशस्य बहुधा पुलकस्नेहमद्भुतम् ॥

आलिलिम्प महादेवः पार्वतीं प्रेमसन्दिरम् ।
अपृच्छच्च हसन्देवः पार्वतीं ललनाकृतिम् ॥ २५ ॥

किमेतदिति हस्तोत्थं दृष्ट्वा तं जगदम्बिका । अब्रवीदरुणाद्रीशमानम्य जगदम्बिका ॥

आगतिं तस्य पुष्पस्य सदा स्वकरवर्तिनः ॥ २७ ॥

देव्युवाच

अहं कैलासशिखराद्देवदेव त्वदाज्ञया । तपः कर्तुमनुप्राप्ता काञ्चीं कनकतोरणाम् ॥
अवाप्यमानसोद्भूतं कह्लारमिदमुत्तमम् । आराधयं महादेवमम्लानगुरुसौरभम् ॥२६
यदक्षयमविश्रान्तमर्चनायोजितं मया । अविच्छिन्नमहादीप्तिः कामधेनुघृताप्लुतः ॥
अवेक्षणीयो भूपालैरनुपाल्यश्च सर्वदा । धर्मलक्षणमाधेयं लोकरक्षार्थमादरात् ॥
सर्वाभीप्सितसिद्ध्यर्थं मत्प्रीतिकरणायच । मया संस्थापिताधर्माद्वात्रिंशल्लोकगुप्तये
रक्षणीया प्रयत्नेन तत्सन्निधिमुपागतैः । सर्वालङ्कारसंयुक्तं सर्वभोगकृतोत्सवम् ॥

आलोक्यतामिदं रूपं कन्यायां मम कान्तिमत् ॥ ३३ ॥

ब्रह्मोवाच

इति देव्या वचः श्रुत्वा शम्भुः शोणाचलेश्वरः ॥ ३४ ॥

तथेति वरदः प्रादाद्वरं सर्वमभीप्सितम् । एष शोणाचलः श्रीमान्दृश्यते लोकपूजितः
सर्वदा वरदागौर्या सर्वभोगैश्च सम्वृतः । य एतच्छाम्भवं रूपमरुणाद्रितयास्थितम्

सम्पश्यन्ति नमस्यन्ति कृतार्थाः सर्वएवते । अरुणाचलमाहात्म्यमेतच्छृण्वन्तियेभुवि
भवन्ति सततं तेषां समग्राः सर्वसम्पदः । श्रीमत्त्वं वाक्पतित्वञ्च रूपमव्याहतं बलम्
लभन्तेपापनाशञ्चमाहात्म्यस्याऽस्यधारणात् । सर्वतीर्थाभिषवणंसर्वयज्ञक्रियाफलम्
सदाशिवप्रसादश्च दत्ते शोणाद्रिदर्शनम् ॥ ४० ॥

इति कैलासशिखरात्प्राप्ता देवी शिवाज्ञया । शापमोक्षं गतवतीशोणाचलनिरीक्षणात्
स्थानेष्वन्येषु देवस्य विद्यमानेषु च क्षितौ । दिविचात्यन्तपुण्येषुशम्भुरत्र प्रसेदिवान्
अयं सदाशिवः साक्षादरुणाचलरूपतः । दृश्यते परमन्तेजः सर्गस्थित्यन्तकारणम् ॥
एतत्तु तैजसं लिङ्गं सर्वदेवनमस्कृतम् । दृश्यते कर्मभूरेषा तेन धर्माधिका मता ॥४४॥
अरुणाचलनाथस्य तेजसा धूतकल्मषाः । भक्तिमन्तोनरालोकेसुखमाप्स्यन्तिसर्वतः
प्रदक्षिणैर्नमस्कारैस्तपोभिर्नियमैरपि । येऽर्चयन्त्यरुणाद्रीशं तेषां शम्भुर्वशङ्गतः ॥
न तथा तपसा योगैर्दानैः प्रीणाति शङ्करः । यथा सकृदपि प्राप्तादरुणाचलदर्शनात्
स्वयम्भुवःसदावेदाःसेतिहासादिविस्थिताः । परितोगिरिरूपास्तेस्तुवन्त्यरुणपर्वतम्
एतस्य वैभवं सर्वं न मया न च शार्ङ्गिणा । वचसा शक्यते वक्तुं वर्षकोटिशतैरपि ॥
देवाश्च हरिमुख्यास्ते कल्पकाद्याःसुरद्रुमाः । प्रच्छन्नरूपाःसेवन्तेसर्वदैवाऽरुणाचलम्
नतस्यकलिदोषःस्यान्नाधिव्याधिविजृम्भणा । यत्रसम्पूज्यतेलिङ्गमरुणाचलसञ्ज्ञितम्
इत्येतत्कथितं सर्वं तव शम्भुपदाश्रयम् । चरितंह्यरुणस्याऽस्य कल्पपुण्यदुरासदम् ॥

सूत उवाच

इति विधिमुखनिःसृतामुदारामरुणगिरिशकथासुधापगां हि ।
श्रुतिपुटयुगलात्पिबन्मनोज्ञां सनकमुनिस्तपसां फलं स लेभे ॥ ५३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये पूर्वार्धे शिवेनाऽरुणाचलस्य सर्वश्रैष्ठ्यवरप्रदानवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३ ॥

इत्यरुणाचलमाहात्म्यम्पूर्वार्धं समाप्तम्

---

* श्रीगणेशाय नमः *

अथ स्कान्देमहापुराणे प्रथमे माहेश्वरखण्डे

तृतीयमरुणाचलमाहात्म्यम्

तत्र उत्तरार्धः प्रारभ्यते

——*०*——

प्रथमोऽध्यायः

स्थानमाहात्म्यप्रस्तावर्णनम्

व्यास उवाच

वसन्तो नैमिषारण्ये मुनयः सूतमब्रुवन् ।

मुनय ऊचुः

स्थानानामुत्तमं शैवं यत्स्थलं तद्वदस्व नः ॥ १ ॥

सूत उवाच

यूयं शृणुत यत्पूर्वं नन्दीश्वरमुखाच्छ्रुतम् । मार्कण्डेयेन तद्वक्ष्ये मुनयः शृणुताऽऽदरात्

मार्कण्डेय उवाच

नन्दीश्वर त्वया प्रोक्तो महिमा माध्यमेश्वरः । मयाऽप्यवधृतः सर्वो भक्तिश्रद्धार्द्रचेतसा

तथापि वद मे भूयो देवदेव दयानिधे । अहं यत्परिपृच्छामि भवन्तं विहितादरः ॥

त्वयाऽप्यविदितं किञ्चिन्नास्त्यत्र भुवनत्रये । सर्वागमपुराणेषु बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च॥

स्वर्गापवर्गयोः पुंसां भूमिरेव विशिष्यते। सर्वकर्माणि निर्मातुं तत्तत्फलपरायणैः
फलं च त्रिविधं पुंसां त्वयैव कथितं पुरा। भूमौ सुखं स्वर्गभोगःकैवल्यमितिभेदतः
पुण्यक्षयेण क्षीयेत प्रायः प्राथमिकं द्वयम्। क्षीयते न तृतीयन्तु कर्मणामेव नाश्रयात्
तत्सिद्धिस्तु त्वया प्रोक्ता विशुद्धज्ञानगोचरा। सर्वेषां दुर्लभं शुद्धज्ञानं देहभृताम्पुनः
तज्ज्ञानंकुत्र वा क्षेत्रे शास्त्रादिपठनम्विना। शिवपूजनमात्रेणसिद्ध्येत्सर्वशरीरिणाम्
ज्ञानयोगक्रियाचर्यास्वशेषाणां शरीरिणाम्। अपिशैवागमोक्तासु न बुद्धिःसम्प्रवर्त्तते

यस्य स्थानस्य माहात्म्यादल्पैरपि शरीरिणः।
लप्स्यन्ते नियमैः शुद्धज्ञानं तन्मम कथ्यताम्॥ १२॥

भस्मरुद्राक्षवहनादीश्वरस्मरणात्सकृत्। यत्र मुग्धैरपि श्रेयो लभ्यंतत्स्थानमुच्यताम्
अबुद्धिपूर्वकेणाऽपियत्रवासेनदेहिनाम्। अविघ्नंसेत्स्यते श्रेयःस्थानंतन्मेऽनुगृह्यताम्
जातानांवर्णसाङ्कर्य्येतैरश्रीयोनिमीयुषाम्। स्थावराणामपिश्रेयोयत्रतत्क्षेत्रमुच्यताम्

इतीरयित्वा स मृकण्डुनन्दनः समं मुनीन्द्रैरपरैर्महात्मभिः।
पपात तस्याऽङ्घ्रिसरोरुहद्वये शिलादसूनोरखिलागमाब्धेः॥ १६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे स्थानमाहात्म्यप्रस्ताववर्णनं नाम
प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

द्वितीयोऽध्यायः

नन्दिकेश्वरमार्कण्डेयसम्वादे महीमण्डलस्थितानाम्विविधशिवक्षेत्राणां शक्तिसहितानाम्वर्णनम्

नन्दिकेश्वर उवाच

स्थानं त्वया मुने पृष्टमस्ति माहेश्वराग्रणि। चराचराणां सर्वेषां भूतानामपिशर्मणे॥
कल्पितं हि देवेन तत्तत्कर्मानुगुण्यतः। शरीरभाजां जननं तासुतास्वपि योनिषु॥

त्वया शुश्रूषितं तेषां हिताय महते ह्यलम् । अन्यथा संसृतेर्हानिः कल्पकोटिशतैर्नहि
स्वल्पैर्हि कर्मभिर्ज्ञानैरपि प्राप्ता पुनःपुनः । घटीयन्त्रनयाज्जन्ममरणे नैव शाम्यतः ॥
कथं नु विरतो देही गर्भमोकसमागमात् । विश्रान्तये प्रकल्पेत विशुद्धज्ञानतो विना
प्रदेशाः कथिताः पूर्वं प्रसङ्गवशतो मया । ऋषिभेदादिकं तेषु निवासः कृत्तिवाससः
केचित्तीरेषु गङ्गायाः केचित्सारस्वतेतटे । कालिन्दीतीरयोरन्येकतिचिच्छोणरोधसि
अपरे नर्मदातीरे परे गोदावरीतटे । कतिचिद्गोमतीतीरेष्वन्ये हैमवतीतटे ॥ ८ ॥
समुद्रपार्श्वेष्वितरे द्वीपेष्वन्ये सरस्वताम् । मुखेषु केचित्सिन्धूनां सम्भेदेष्वपि केचन
कृष्णवेणीतटे केचित्तुङ्गभद्रान्तिके परे । उपवेण्यां कतिपये परे शक्त्यापगान्तिके ॥
कावेरीतीर इतरे केचिद्वेगवतीतटे । अन्ये तु ताम्रपर्ण्याश्च कतिचिन्मुरलातटे ॥११ ॥

केचिदैरावतीतीरे त्वितरे यातुकाङ्क्षिके ॥ १२ ॥
कन्यातटेषु कतिचित्कतिचित्कुमारीतीरे परे च तमसावरुणान्तिकेऽन्ये ।
मन्दाकिनीसविधयोरितरे परेऽपि शिप्रातटे परिसरेषु परे सरय्वाः ॥१३॥

विपासाभ्याश इतरे शतद्रुतितटे परे । चर्मण्वत्युपकण्टेऽन्ये केचिद्भीमरथीतटे ॥१४॥
केचिद्बुविन्दुसरोऽभ्यर्णेपरेपम्पासरस्तटे । अभ्यर्णकेऽपिभैरव्याःकतिचित्कौशिकीतटे
अपरे मालिनीतीरे परे गन्धवतीतटे । कतिचिन्मानसोपान्ते केचिदच्छोदरोधसि ॥
इन्द्रद्युम्नसरस्यन्य एके तु मणिकर्णिके । परे तु वरदातीरे ताप्यां कतिचनाऽपरे ॥

पातालगङ्गासविधे शरावत्यन्तिके परे ॥ १७ ॥
लोहित्याकूलयोः केचित्कतिचित्कालमातटे ।
वितस्तोपान्तिके त्वन्ये चन्द्रभागान्तिके परे ॥ १८ ॥

सुरलोपान्तिके केचित्पयोष्णीतीरयोःपरे । केचिन्मधुमतीतीरेकेचनाऽनुपिनाकिनीम्
उक्तंवाराणसीक्षेत्रं क्रोशपञ्चकपावनम् । देवस्तत्राऽविमुक्ताख्योविशालाक्ष्यासमर्चितः
कपालमोचनं यत्रयत्राऽऽस्तेकालभैरवः । मृतानांयत्र रुद्रत्वं काशींविद्धि हि तां मुने
गयाप्रयागावपि ते कथितौ सर्वसिद्धिदौ । यत्र पिण्डप्रदानेन तुष्यन्ति पितरः किल
आकर्णितं च केदारं यस्मिन्महिषरूपधृक् । देवोऽपिच हतोदेव्यासर्वश्रेयस्करोनृणाम्

सर्वसिद्धकरं पुंसां क्षेत्रंवदरिकाश्रमम् । यत्राऽऽस्ते त्र्यम्बको देव्या नरनारायणर्चितः
श्रुतं हि नैमिषं क्षेत्रं त्वया यत्र महेश्वरः । देवदेवाभिधः पुण्यो देवी सारङ्गधारिणी
अमरेशमिति स्थानं प्रोक्तंसर्वार्थसाधकम् । ॐकारनामातत्रेशश्चण्डिकाख्यामहेश्वरी
पुष्कराख्यं महास्थानं श्रुतं ते कथितं मया । यत्र देवो रुजोगन्धिः पुरुहूता महेश्वरी
आषाढीनाम ते स्थानं पावनं कथितं मया । आषाढेशो हरस्तत्र रतीशा परमेश्वरी

दण्डिमुण्डीसमाख्यां च स्थानं ते कथितं मया ।
यत्र मुण्डी महादेवो दण्डिका परमेश्वरी ॥ २९ ॥

लाकुलंनाम ते स्थानं संशुद्धं कथितंमया । लाकुलीशो हरोयस्मिन्ननङ्गा सर्वमङ्गला
भारभूतिरितिस्थानं भवतोऽभिहितंमया । यत्रभाराभिधःशम्भुर्भूत्याख्याभूधरात्मजा
अरालकेश्वरंनाम स्थानं ते कथितंमया । यत्रसूक्ष्माभिधःशूलीसूक्ष्माख्याशैलनन्दिनी
गयानाम महाक्षेत्रं तव प्रस्तावितं मया । मङ्गलाख्या शिवा यत्र शङ्करः प्रपितामहः ॥
कुरुक्षेत्रमिति स्थानं भवते विनिवेदितम् । यत्र स्थाणुप्रियादेवीदेवः स्थाणुसमाह्वयः
उक्तं कनखलं नाम मया ते स्थानमुत्तमम् । उग्रो यत्र पुरारातिरुग्रा गिरिवरात्मजा॥
तालकाख्यं महाक्षेत्रं मार्कण्डेयमयोदितम् । देवी स्वायम्भुवी यत्र स्वयम्भूःपरमेश्वरः
अट्टहासमिति प्रोक्तं महास्थानं मया तव । यत्राऽर्कः पूजयित्वेशमासीत्पूर्णमनोरथः
कृत्तिवासाभिधं क्षेत्रमुक्तंतेवेदवित्तम ! । यःकैलासादपिश्लाघ्योनिवासःकृत्तिवाससः
भ्रमराम्बिकया देव्या महेशो मल्लिकार्जुनः । श्रीशैले सृष्टिसिद्ध्यर्थंपूजितःपरमेष्ठिना
सुवर्णमुखरीतीरे कालहस्तीति शङ्करः । व्यासेनाराधितोभृङ्गमुखरालकयाऽम्बया ॥

काञ्च्यामेकाम्रमूलस्थः कामाक्ष्या कामशासनः ।
तपस्यन्त्याऽभिसंश्लिष्टो वलयेनाऽङ्कितोऽभवत् ॥ ४१ ॥

अस्ति व्याघ्रपुरंनाम तिल्लिकाननमध्यगम् । यत्र नृत्यन्तमीशानं पर्युपास्ते पतञ्जलिः
श्वेतारण्यमिति स्थानमुक्तं तव मया पुरा । भग्नमैरावतोदन्तं भेजे यत्र शिवार्चनात्
सेतुबन्धमिति स्थानमवोचं तत्र राघवः । रामनाथाख्यया देवमंहोघ्नं प्रत्यतिष्ठिपत्
गतप्रत्याह्वयस्थानं विद्यते वृषभध्वजः । यत्र जम्बूतरोर्मूले जगद्रक्षार्थमाश्रितः ॥४५॥

मणिमुक्तानदीमन्वक्क्षेत्रे वृद्धाचलाह्वये। नित्यं सन्निहितो देव इत्याकर्णित एव ते॥
श्रीमन्मध्यार्जुनंनाम श्रुतं स्थानमनुत्तमम्। यस्मिन्वरप्रदो नित्यं गौरीसहचरो हरः॥

आस्थितं सोमनाथेन सोमतीर्थं त्वया श्रुतम्।
यत्र त्यक्तवतां देहं न भूयो भवबन्धनम्॥ ४८॥

आकर्णितंहि भवताक्षेत्रं सिद्धवटाह्वयम्। यत्र सिद्धाः समर्चन्तिज्योतिर्लिङ्गमनुत्तमम्
अश्रावि खलु ते क्षेत्रं कमलालयसञ्ज्ञकम्। वल्मीकेशार्चनाल्लेभेयत्रश्रीर्जीविता हरेः
श्रुतवानसि कङ्काद्रिं यत्र सन्निहितो हरः। इदानीमप्युपासाते मोक्षाय ब्रह्मकेशवौ॥
श्रीमद्द्रोणपुरं वेत्सि यस्मिन्कलियुगक्षये। नौकामारूढवानब्धौक्षुभिते पार्वतीपतिः
श्रुतं ब्रह्मपुरंनाम क्षेत्रं यत्रेन्द्रजित्पुरा। आर्यपुष्करिणीतीरे स्थापयामास धूर्जटिम्॥
श्रीकोटिकाख्यं ज्ञानाभिक्षेत्रं यत्रेन्दुशेखरः। समाराधयतां पुंसां पापकोटीर्व्यपोहति

आकर्णितं च गोकर्णं शिवं यत्सन्निधानतः।
आरिराधयिषुः स्वर्गं जामदग्न्यो न काङ्क्षति॥ ५५॥

त्रिपुरान्तकमुक्तं ते क्षेत्रं यत्र त्रियम्बकः। निराकरोति निरयाद्भयं दृष्टवतां नृणाम्॥
उक्तं कालाञ्जनं क्षेत्रं यद्वासीकालकन्धरः। निर्वापयति भक्तानां घोरसंसारसंज्वरम्
प्रियालवणमाख्यातं क्षेत्रं यत्राऽम्बिकापतिः। पयोऽर्थिनेपयःसिन्धुं वितताारोपमन्यवे
क्षेत्रं प्रभासमुक्तं ते यत्र खण्डेन्दुशेखरः। पूजितः शौरिसीरिभ्यां दत्तवानक्षयं फलम्
वेदारण्यं विजानीयेयस्मिन्प्रमथनायकः। अभ्यर्थितोऽभून्मोक्षार्थंदक्षेणप्राक्कृतागसा
हेमकूटं त्वमश्रौषीः स्थानं विषमचक्षुषः। पुंसां तपस्यतां यत्र पुनर्जननतो न भीः॥
क्षेत्रं वेणुवनंनाम विद्यते पापनाशनम्। यत्र वंशलतागर्भाज्जातो मुक्तामणिः शिवा॥
जालन्धरमिति स्थानमन्धकारेस्त्वयाश्रुतम्। लेभे गणपतां तत्र तपस्याभिर्जलन्धरः

ज्वालामुखमिति स्थानमज्ञासीः कथितं मया।
यत्र ज्वालामुखी देवी कालरुद्रमपूजयत्॥ ६४॥

अस्ति भद्रवटोनाम क्षेत्रमुक्तं श्रुतं त्वया। त्र्यम्बकं यत्र हेरम्बः सम्पदे पर्यपूजयत्॥
न्यग्रोधारण्यमुक्तं ते यत्रोग्रोनिर्ममे किल। उच्चण्डताण्डवंकाल्यासाकंसङ्गर्वमेयिवान्

गन्धमादनसञ्ज्ञं तत्क्षेत्रमाकर्णितं त्वया । आञ्जनेयेन रचितं यत्र मृत्युञ्जयार्चनम् ॥
गोपर्वतमिति स्थानं शम्भोः प्रख्यापितंमया । यत्रपाणिनिनालेभेवैयाकरणिकाग्र्यता
वीरकोष्ठमिति क्षेत्रस्थानं नन्ववधारितम् । यत्र प्रचेतसा लेभे तपसा कविमुख्यता ॥
महातीर्थमिति प्रोक्तं जानीषेयत्र शम्भुना । अध्यापितास्सुपर्वाणःसर्वेऽपिद्रुहिणादयः
मयूरपुरमुक्तं ते क्षेत्रं माहेश्वरं मया । लेभे यत्र व्रतस्थेन ह्लादिनी वज्रपाणिना ॥६१॥
श्रीसुन्दरमिति क्षेत्रमुक्तं वेगवतीतटे । कलावपि युगे यस्मिन्देवदेवेन दीप्यते ॥६२॥

कुम्भकोणमिति स्थानं शम्भोर्वेत्सि हि यत्र सा ।
गङ्गाऽपि माघे सान्निध्यं कुरुते स्वाघशान्तये ॥ ७३ ॥

अनुगोदावरीतीरं त्र्यम्बकंनाम ते श्रुतम् । शक्तिं यत्र गुहो लेभे तारकासुरघातिनीम्
श्रीपाटलं व्याघ्रपुरमाख्यातं वेदवित्तम । त्रिशङ्कुना जातिशुद्ध्यै यत्र गङ्गाधरोऽर्चितः
क्षेत्रं कदम्बपुर्य्याख्यंभवता चाऽवधारितम् । त्वत्कृतेयत्रशूलेन कृतान्तंशम्भुरक्षिणोत्
अविनाशाख्यमुक्तं ते क्षेत्रं यत्र वृषध्वजः । सान्निध्यं पडिकण्ठायवितताऱप्रसेदिवान्

रक्तकाननमाख्यातं मया क्षेत्रं तवाऽनघ ! ।
मित्रावरुणयोर्यत्र रुद्रोऽजनि वरप्रदः ॥ ७८ ॥

श्रीहाटकेश्वरं क्षेत्रं पातालस्थं त्वया श्रुतम् । यत्र वैरोचनिर्देवं स्वपदप्राप्तयेऽर्चति ॥
वेत्सि शम्भोः प्रियावासंकैलासंनित्यसेवकः । यत्रयक्षेश्वरस्त्र्यक्षमभ्यर्चयतिभक्तितः
स्थानानिखण्डपरशोरित्युक्तानिमयापुरा । त्वयाप्यवधृतान्येवकिम्भूयःश्रोतुमिच्छसि

इत्यूचिवानेष शिलादनन्दनो मुनेर्मृकण्डोस्तनयं मुनीश्वरम् ।
भक्त्यानमन्तं पदयोः करेण पस्पर्श मौलौ करुणारसार्द्रः ॥ ८२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे महीमण्डलस्थविवधशिवक्षेत्रवर्णनंनाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

अरुणाचलस्यरहस्यस्थानवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

भगवन्वञ्चनेनाऽलंत्वदेकप्रवणेमयि । किंमादृशोऽस्तितेशिष्यस्तत्कृपैवाऽत्रसाक्षिणी
स्थानेषु प्राक्त्वदुक्तेषु फलानिचपृथक्पृथक् । यत्र सर्वफलप्राप्तिः स्थानंतद्वदमेविभो
चराचराणां भूतानां जानतामप्यजानताम् । यस्य स्मरणमात्रेण मुक्तिस्तद्वद देशिक
पश्यैतेन मयैकेन भगवान्नानुराध्यसे । सर्वैरप्येतदर्थं हि मुनिभिः परिवार्यसे ॥ ४ ॥
पुलहेन पुलस्त्येन वशिष्ठेन मरीचिना । अगस्त्येन दधीचेन नक्रुणा भृगुणाऽत्रिणा
जावालिना जैमिनिना धौम्येन जमदग्निना । उपयाजेन याजेन भरतेनार्वरीवता ॥६॥
पिप्पलादेन कण्वेन कुमुदेनोपमन्युना । कुमुदाक्षेण कुत्सेन वत्सेन वरतन्तुना ॥७ ॥
विभाण्डकेन व्यासेन कण्वरीषेण कण्डुना । माण्डव्येनमतङ्गेनकुक्षिणामाण्डकर्णिना
चण्डकौशिकशाण्डिल्यशाकटायनकौशिकैः । शातातपमधुच्छन्दोगर्गसौभरिरोमशैः
आपस्तम्वपृथुस्तम्वभार्गवोदङ्कपर्वतैः । भारद्वाजेन दाल्भ्येन दान्तेन श्वेतकेतुना॥१०॥

कौण्डिन्यपुण्डरीकाभ्यां रैभ्येण तृणबिन्दुना ।
वाल्मीकिना नारदेन वह्निना दृढमन्युना ॥ ११ ॥

वोधायनसुबोधाभ्यां हारीतेन मृकण्डुना । दुर्वाससातितीक्ष्णेन जलपादेन शक्तिना॥
कांकार्येण नदन्तेन देवदत्तेन न्यङ्कुना । सुश्रुता चाऽग्निवेश्येन गालवेन मरुत्वता॥१३
लोकाक्षिणा विश्रवसा सैन्धवेन सुमन्तुना । शिशुपायनमौद्गल्यपथ्यचावनमातुरैः॥
ऋष्यश्रृङ्गैकपात्क्रौञ्चदृढगोमुखदेवलैः । अङ्गिरोवामदेवौर्वपतञ्जलिकपिञ्जलैः ॥ १५ ॥
सनत्कुमारसनकसनन्दनसनातनैः । हिरण्यनाभसत्याख्यवाताशनसुहोतृभिः ॥ १६ ॥
मैत्रेयपुष्पजित्सत्यतपःशालीष्यशैशिरैः । निदाघोतथ्यसम्वर्त्तशौल्कायनिपराशरैः ॥
वैशम्पायनकौशल्यशारद्वतकपिध्वजैः । कुशस्वार्चिककैवल्ययाज्ञवल्क्याश्वलायनैः ॥

कृष्णातपोत्तमानन्तकरुणामलकप्रियैः । चरकेण पवित्रेण कपिलेन कणाशिना ॥१९॥
नरनारायणाभ्यां च दिव्यैश्चान्यैर्महर्षिभिः । मत्प्रश्नोत्तरशुश्रूषातत्परैः प्रत्यवेक्ष्यसे ॥
माहेश्वराग्रगण्यस्त्वं समस्यागमपारगः । व्याप्तश्च सर्वलोकेषु यस्मात्तदनुसाधि नः
त्वन्मुखादेव भगवन्वयमेते सुशिक्षिताः । पूर्वमेव त्वया देव किं वाऽन्यदुपपद्यते ॥२२
दिव्यागमपुराणानि द्रष्टव्यःपरमेश्वरः । कात्यायनीवास्कन्दोवाभगवान्वाथवाभवान्

त्वयि यद्यस्ति नो भक्तिर्दया चाऽस्मासु ते यदि ।
रहस्यमिदमुद्धाट्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २४ ॥

इत्थं मृकण्डुतनयेन स नन्दिकेशो विज्ञापितः सविनयं स्मयमानवक्त्रम् ।
तं प्राह चोन्नततरं शिवभक्तिमत्सु प्राग्भक्तितोषितशिवाप्तशरीरसिद्धिम् ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धेऽरुणाचलाख्यरहस्यस्थानप्रश्नवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

अरुणाचलस्थानमाहात्म्यवर्णनम्

नन्दिकेश्वर उवाच

मुनेमनःपरीक्षार्थं तथा त्वं भाषितोमया । तवचेन्नाभिधास्यामिकस्यवान्यस्यकथ्यते
त्वादृगन्योऽस्तिकिंलोकेशिवधर्मपरायणः । येनस्वल्पायुषाऽप्येवंनित्येनाभाविभक्तितः
कस्यान्यस्यकृतेदेवःस्वस्यैवाज्ञाकरंयमम् । क्रुद्धो नियन्त्रयामास चरणाङ्गुष्ठपीडितम्
त्वमेवशाङ्करान्धर्मान्सर्वान्विद्धिरहस्यतः।योऽग्रेऽसिकालवद्भ्रान्तःपरिपक्वोऽसिचेतसा
त्वयैवाऽन्येनकेनाऽहमेवंशुश्रूषितश्चिरम् । त्वयीवकस्मिन्नन्यस्मिन्समापिप्रीतिरीदृशी
उपदेक्ष्यामिते क्षेत्रं गुप्तं तद्धर्मशासनैः । भक्त्याऽवधारणीयं यद्भक्तिकैवल्यकाङ्क्षिभिः

आदरादनुयुञ्जानंशिष्यंयोदेशिकः स्वयम् । उपदेशेन सन्तुष्टं न करोति स किंगुरुः
समाहितमनाभूत्वा विश्वासं कुरु शाश्वतम् । मयोपदिश्यमानेऽस्मिन्रहस्ये पारमेश्वरे
स्मर स्मरान्तकं देवं वन्दस्वाध्याय शाङ्करीम् ।
उपांशूच्चारयोङ्कारं श्रेयस्ते महदागतम् ॥ ६ ॥
अस्ति दक्षिणदिग्भागे द्राविडेषु तपोधन । अरुणाख्यं महाक्षेत्रं तरुणेन्दुशिखामणेः
योजनत्रयविस्तीर्णमुपास्यं शिवयोगिभिः । तद्भूमेर्हृदयं विद्धि शिवस्य हृदयङ्गमम् ॥
तत्र देवः स्वयं शम्भुः पर्वताकारतां गतः । अरुणाचलसञ्ज्ञावानस्तिलोकहितावहः
आवासःसर्वसिद्धानांमहर्षीणांसुपर्वणाम् । विद्याधराणांयक्षाणांगन्धर्वाप्सरसामपि
सुमेरोरपि कैलासादप्यसौ मन्दरादपि । माननीयो महर्षीणां यः स्वयं परमेश्वरः ॥
स्पृहयन्तियदीयेभ्योजन्तुभ्योऽपिदिवौकसः।अयत्नलभ्यमुक्तिभ्योदिवावासप्रवञ्चिताः
न कल्पवृक्षाःसदृशा यत्रत्यानाम्महीरुहाम् । पत्रपुष्पफलैर्नित्यं येऽर्चयन्तिगिरीश्वरम्
हिंसैकरुचयो व्याधा अपि रूपानुसारतः । अनन्ता यत्र देवस्य प्रादक्षिण्यफलास्पदम्
यदुद्देशचरामेघाः शिखराण्यभिवन्धकाः । गङ्गावतो हिमवतोऽप्यधिकंस्वं विजानते
कलारावाः खगा यत्र क्वणन्ते कीचका अपि । यक्षकिन्नरगन्धर्वैर्लभ्यते दुर्लभं पदम्
स्मरन्तो यत्र खद्योताः कृष्णपक्षेनिशागमे । आरार्तिकप्रदातॄणां देवस्याऽश्नुवते पदम्
निष्प्रत्यूहकृताश्लेषा नित्यं यत्तटिनीरुहाः ।
सौभाग्यगर्वतो देवीमपर्णामवमन्वते ॥ २१ ॥
यस्योत्तुङ्गस्य शृङ्गाग्रसङ्गमाअपितारकाः । आत्मनोलब्धसामान्याश्चन्द्रेण बहुमन्वते
मृगाः सर्वेऽपि सततं चरन्तो यत्र सानुषु । पाणिप्रणयिनं शम्भोरेणमप्यवजानते ॥
यस्य पादान्तिकचरैः प्रायेण शबरैरपि । निकुम्भकुम्भसादृश्यमयत्नादुपलभ्यते ॥
किं बह्वक्त्याभ्यसूयन्ते द्वैमातुरकुमारयोः । यदङ्गरूढास्तरवस्तिर्यञ्चः शबरा अपि ॥
सिंहव्याघ्रद्विपायस्मिन्कालेत्यक्तकलेवराः । वासप्रदत्वान्मान्यन्तेभ्रुवंशोणाद्रिशम्भुना
अस्त्यभास्करनामाद्रिः पूर्वस्यां दिशि दृश्यते । यत्रस्थितःसदावज्रीसेवतेशोणपर्वतम्
प्रतीच्यां दिशि दण्डाद्रिरिति कश्चिन्महीधरः । प्राचेतसस्तदगगः सेवतेऽरुणपर्वतम्

दक्षिणस्यां च शोणाद्रेरद्रिरस्त्यमराचलः ।
कालः शोणाद्रिसेवार्थमध्यास्ते तदधित्यकाम् ॥ २९ ॥

उत्तरेऽस्मिन्हरिद्भागे सिद्धाध्यासितकन्दरः । विराजतेत्रिशूलाद्रिः श्रीदेनपरिपालितः
तत्पर्यन्तप्रभूतानामन्येषामपि भूभृताम् । तटकेष्वपरे चैव दिक्पालाः पर्युपासते ॥
धारिता येन सततं सर्वेऽपि धरणीरुहाः । आराधनादप्यधिकमधिगच्छन्ति वैभवम्
यस्मिन्गिरीशेसंदृष्टे मेनातुहिनभूभृतोः । समानसम्बन्धतया प्रमोदो वर्द्धतेतराम् ॥
तरुपल्लवलक्षेण लक्ष्यमाणजटाधरः । स्थावरोऽयं स्वयं शम्भुरिहेश इव जङ्गमः॥३४॥

ज्योतिष्मत्तोयश्रृङ्गस्य द्विपार्श्वस्थेन्दुभास्करः ।
व्यनक्ति स्वस्य लोकेभ्यस्तेजस्त्रितयनेत्रताम् ॥ ३५ ॥

वर्षांसुशिखराधस्तादभिनीलवलाहकः । विराजते यः कण्ठेन कालकूटमिवोद्वहन् ॥
सहस्रपादः साहस्रशीर्षो यः पर्वतेश्वरः । उक्तो न केवलं श्रुत्या साक्षादप्युपलक्ष्यते॥

शिरोलीनामरसरित्स्रोताः प्रागिति नाद्भुतम् ।
गिरीशोऽद्याऽपि यः श्रृङ्गलीनानेकसरिद्गणः ॥ ३८ ॥

आसादितापकटकः शारदैर्यः पयोधरैः । विडम्बयति गोश्रेष्ठमारूढवृषपुङ्गवम् ॥३९॥
यत्र श्रृङ्गाग्रसँल्लग्नसँल्लग्ननीललोहितः । स्थाणुत्वं स्थावरत्वेन गहनत्वेन भीमताम्
सुदुर्गमत्वादुग्रत्वमपि धत्ते न नामतः । क्षुद्रा सरीसृपा यत्र कटकेषु कृतास्पदाः ॥
तक्षकानन्तसर्पाद्यैः स्पर्धन्तेभुजगेश्वरैः । अष्टाभिर्योऽभितः कोणैराविर्भूतोविभूतिभिः

सुस्पष्टं विशिनष्टीव स्वकीयामष्टमूर्तिताम् ।
येण्यां(आद्या)शक्तितरङ्गिण्योरिडापिङ्गलयोः स्वयम् ॥ ४२ ॥

शिवस्यश्रृङ्गतो मध्येसुषुम्नाकमलापगा । ज्योतिःस्तम्भस्वरूपस्यमूलाग्रेयस्यवीक्षतुम्
कोलहंसाकृतीनालंब्रह्मविष्णूबभूवतुः ।ताभ्यांचप्रार्थितःशम्भुस्तस्मिन्सांनिध्यवानभूत्
अरुणाचलनाथाख्यं प्रपन्नः प्रमदैः समम् । गौतमस्तत्र योगीन्द्रः सहस्रं परिवत्सरान्
कृत्वा तपांसि तीव्राणिसाक्षाच्चक्रेसदाशिवम् । प्रालेयशैलकन्यापितत्रकृत्वातपःपुरा
लब्धवामदेहार्द्धं मन्मथारेः प्रसेदुषः । गौर्या प्रतिष्ठितं तत्र प्रवालाद्रीश्वराभिधम्

लिङ्गं भोगप्रदं पुंसां कैवल्याय प्रकल्पते। तत्र गौरीनिदेशेन दुर्गा महिषमर्दिनी॥
साक्षाद्भूय सतां दत्ते मन्त्रसिद्धिमविघ्नतः। खड्गतीर्थमितिख्यातं तत्र गौर्याश्रमेनवम्
सकृन्निमज्जनान्नृणां पञ्चपातकनाशनम्। दुर्गया चार्चितं लिङ्गं पापनाशननामकम्॥
सकृत्प्रणाममात्रेण सर्वपापप्रणाशनम्। तत्र वज्राङ्गदो राजा वित्तसारो व्यतिक्रमात्
पुनस्तद्भक्तिमाहात्म्याच्छिवसायुज्यमाप्तवान्। तस्यप्रदक्षिणेनैवकान्तिशालिकलाधरौ

विद्याधरेश्वरौ मुक्तौ दुर्वासःशापबन्धनात्।
नास्ति शोणाद्रितः क्षेत्रं नास्ति पञ्चाक्षरान्मनुः॥ ५४॥
नास्ति माहेश्वराद्धर्मो नास्ति देवो महेश्वरात्।
नास्ति ज्ञानं शिवज्ञानान्नास्ति श्रीरुद्रतः श्रुतिः॥ ५५॥
नास्ति शैवाग्रणीर्विष्णोर्नास्ति रक्षा विभूतितः।
नास्ति भक्तेः सदाचारो नास्ति रक्षाकराद्गुरुः॥ ५६॥
नास्ति रुद्राक्षतो भूषा नास्ति शास्त्रं शिवागमात्।
नास्ति विल्वदलात्पत्रं नास्ति पुष्पं सुवर्णकात्॥ ५७॥
नास्ति वैराग्यतः सौख्यं नास्ति मुक्तेः परं पदम्।
नारुणाद्रेः समो मेरुर्न कैलासो न मन्दरः॥ ५८॥
ते निवासा गिरिव्याप्ताः सोऽयन्तु गिरीशः स्वयम्॥ ५९॥
इति वदति शिलादनन्दने मुदितमनाः स मृकण्डुनन्दनः।
पुनरपि बहुशः प्रणम्य तं चकितमना भवतो व्यजिज्ञपत्॥ ६०॥
किं किं नृणां कर्म भवाय जायते कथं नु तत्तन्नरकाय श्रूयते।
तेषां च तेषां च कथं प्रतिक्रिया कथं नु तत्तन्मम कथ्यतामिति॥ ६१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धेऽरुणाचलस्थानमाहात्म्यवर्णनं
नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

———

पञ्चमोऽध्यायः

कर्मविपाकवर्णनम्

नन्दिकेश्वर उवाच

शुद्धसत्त्वगुणोपेतो लोकेऽस्मिन्दुर्लभःपुमान् । रजस्तमोगुणोपेताभवन्तिसुलभानराः
सात्त्विकःपुण्यशीलत्वान्निःश्रेयसमवाप्नुयात् । वैचित्र्यात्कर्मणामेषामनुभोगायवेधसा
वैचित्र्याण्येव सृष्टानिनरकाण्यत्रतत्र च । महारौरवभाग्भूत्वा खरःश्वाःशूकरोऽपिवा
चण्डालो वा भवेत्प्रेत्य पुरुषो ब्रह्महत्यया । चिरं रौरवसंरुद्धः कृमिकीटपतङ्गताम् ॥
प्राप्नुयात्कर्मकर्तृत्वं सुरापानेन च द्विजः । ब्रह्मस्वहरणाद्ब्रह्मराक्षससत्वमवाप्नुयात्
यद्यत्तु चोरयेत्तत्तच्छून्यं स्यादन्यजन्मनि । असिपत्रवने पीडामवाप्य सुचिरं पुनः ॥
नपुंसकत्वं सङ्गच्छेत्पुरुषो गुरुतल्पगः । तत्तैः कालायसैर्दण्डैः पीडितो यमकिङ्करैः ॥
नरके कालसूत्राख्ये निवसेत्परदारगः । अग्निदो निवसेद्घोरे सुघोरे गरदायकः ॥८॥

महाघोरे च पिशुनोऽवीच्यां धर्मविनिन्दकः ।
वसेत्कराले मित्रध्रुग्भीमे हिंसैकतत्परः ॥ ९ ॥

संहारे छन्नपापिष्ठो मृषावादी भयानके । असिघोरे वसेद्वाऽपि कूपक्षेत्रनरादिहृत् ॥
वज्रे परद्रोहरतो मांसाशी तरले द्विज । तीक्ष्णे मातृपितृद्रोही तापने जपदूषकः॥११॥
अश्वघ्नोऽपिनिरुच्छ्वासे वसेद्गोघ्नश्चदारुणे । भ्रूणहा निवसेच्चण्डेस्त्रीहत्याकृत्कुकूलके
देवस्वहारी दहने घोरघोरे परस्वहृत् । कृतान्तदूता नरके सर्वानेव हि पापिनः ॥१३॥
बध्नन्तिपाशैर्निघ्नन्तिदण्डैर्विध्यन्तिशङ्कुभिः । तीक्ष्णायश्चश्ववःकङ्काःक्रूरदंष्ट्रामहोरगाः

कालेयकाश्च व्याघ्राश्च हिंस्राश्चाऽन्ये दशन्त्यमून् ।
शकलीकुर्वते शस्त्रैर्दहन्ति देहमेव च ॥ १५ ॥

घ्नन्ति गहनेश्वभ्रेकशाभिस्ताडयन्तिच । तैलद्रोण्यां विपचयन्तेतुद्यन्तेसूक्ष्मसूचिभिः
वाह्यन्ते दुर्वहान्भारान्यमदूतैर्हिपापिनः । ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात्सुरापः श्यावदन्तकः

स्वर्णापहारी कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः । अपस्मारी गुरुद्रोही चण्डालो वेददूषकः
कूटसाक्षी चाक्षिरोगी मन्दाग्निश्चाग्रभोजनः ।
विद्यापहारी मूकः स्यादन्धः पुस्तकचोरकः ॥ १६ ॥
परदाररतः पङ्गुर्बधिरः परनिन्दकः । विड्वराहो निराचारो जिह्वारोगी च तस्करः ॥
अभ्यागतातिथित्यागीकपोलकण्टकोभवेत् । पर्वसुस्त्रीरतोमेहीपूत्यास्योऽभक्ष्यभक्षकः
मर्यादाभेदको दासस्तटाकारामहृत्खरः । प्रतिश्रुताप्रदातास्याद्दल्पायुः श्वा विकत्थनः
विष्णुद्रोही च सरठः शिवद्रोही च मूषकः । एवं पापफलं ज्ञात्वा प्रायश्चित्तंसमाचरेत्
तच्चाऽस्मिन्नरुणक्षेत्रे कर्तव्यं सम्यगास्तिकैः ॥ २४ ॥
इति निशम्य स दुष्कृतकारिणां बहुविधां नरकेषु नृणां व्यथाम् ।
चरणयोः पतितश्च तदा पुनःपुनरयाचत तच्छमनक्रियाम् ॥ २५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे कर्मविपाकवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

पापापनोदकप्रायश्चित्तवर्णनम्

नन्दिकेश्वर उवाच

विस्तरात्कथयाम्यद्य प्रायश्चित्तं महांहसाम् ।
सर्वेषामवधत्स्व त्वमवलम्ब्याऽऽस्तिकीं धियम् ॥ १ ॥
ब्रह्महा प्राप्य शोणाद्रिं निमग्नः खड्गतीर्थके । जपन्पञ्चाक्षरं मन्त्रं भस्मरुद्राक्षधारकः
कृतोपवासः सम्पूज्य प्रयतः परमेश्वरम् । ब्राह्मणान्भोजयेद्वर्षं भिक्षाशीनियतेन्द्रियः॥
विशेषपूजाशुश्रूषां कुर्याद्देवस्य भक्तितः । ब्रह्महत्या विनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥

सुरापोऽप्यरुणक्षेत्रे वर्षमेकं वसन्प्रति । प्राग्वत्कृतसमाचारः सम्पूज्यैवं महेश्वरम् ॥
क्षीरेण स्नापयेद्देवं शतरुद्रीयमुच्चरन् । सुरापानोद्भवेनाऽऽशु पापेन परिमुच्यते ॥६॥
सुवर्णस्तेयकृच्छोणक्षेत्रे विल्वदलैर्हरम् । अभ्यर्च्यभोजयेद्विप्रान्पापान्मुच्येतदुष्करात्
गुरुदाररतिर्गत्वा कृत्तिकास्वरुणाचलम् । यथापूर्वं व्रती भूत्वा सहस्रेण प्रदीपकैः ॥
मासत्रयं समाराध्य श्रीशोणाचलशङ्करम् । प्रदद्याद्भूषितां कन्यां ब्राह्मणायसुधीमते
षडक्षरं जपेन्नित्यं तेन मुच्येत पाप्मना । शिवलोके च निवसेदासंसारं न संशयः ॥
परदारापहर्त्ता च क्षेत्रेऽस्मिन्नियतेन्द्रियः । मासमेकं नवैः पुष्पैरभ्यर्च्याऽरुणशङ्करम्
माहेश्वराय वितरेद्धनं शक्त्यानुगुण्यतः । तत्क्षणेन विनिर्मुक्तस्तस्मात्पापाद्भविष्यति॥
गरदोऽप्यरुणक्षेत्रे व्रती भूत्वा यथापुरा। क्षीरोपहारं देवाय दत्त्वा दोषेण मुच्यते

पिशुनोऽप्यरुणक्षेत्रे व्रती वेदरतो नरः ।
अध्यापयेद्द्विजान्मुख्यांस्ततो निष्कल्मषो भवेत् ॥ १४ ॥

अग्निदोऽप्यरुणक्षेत्रे त्रीन्मासान्पूर्ववद्व्रती । दद्याच्छैवाय निर्माय गृहं तत्पापशान्तये
धर्मनिन्दाकरः शोणक्षेत्रे वर्षं व्रती वसन् । सत्रादिकं प्रकुर्वीत यथाशक्त्यघशान्तये ॥
पितृद्रोह्यरुणक्षेत्रे तिष्ठन्मासमतन्द्रितः । गिरीशाय द्विजेभ्योऽपि प्रदद्याद्गाः सहस्रशः
ग्रहोपरागकालेषु भोजयित्वा द्विजान्बहून् । विमुञ्चेद्वृषभं नीलं विमुच्येततोंऽहसः

स्त्रीघ्नश्चाऽपि शिशुघ्नोऽपि शोणक्षेत्रमुपेयिवान् ।
व्यतिपाते तिलान्दद्याद्द्विजेभ्योदुरितच्छिदे ॥ १६ ॥

प्रच्छन्नपापकृच्छोणक्षेत्रेऽस्मिन्नियतेन्द्रियः । गुप्तदानानि कुर्वीत भवेद्वै गतकल्मषः ॥
मृषाभाष्यरुणक्षेत्रे षण्मासान्निवसन्व्रती । शोणाचलेश्वरस्तोत्रपाठेन स्यादकल्मषः
कूपादिभेदकृच्छोणक्षेत्रमासाद्य भक्तितः । तटाकान्खानयेत्तत्र भुवं निर्वृजिनो भवेत्
क्षेत्रापहारी देवाय क्षेत्रं दद्यान्महाफलम् । आरामकण्टकोऽप्यस्मै दद्यादुद्यानमुत्तमम्
गृहापहारी कुर्वीत देवस्यायतनं नवम् । अंहसा तेन निर्मुक्तः शिवसायुज्यमाप्नुयात्
परद्रोही वसञ्छोणक्षेत्रेमाहेश्वरान्धनैः । प्रीणयित्वापरांल्लोकान्निःसंशयमवाप्नुयात्
पश्वादिमांसभुक्छोणक्षेत्रे पक्षत्रयं व्रती । प्रीणयेदरुणेशानं सोपहारैर्मनोहरैः ॥२६॥

त्रिःशोणाचलनाथेति निनदन्ननघो भवेत् । निवसन्नरुणक्षेत्रे पूजयेदरुणेश्वरम् ॥२७॥
अरुणेश्वरमन्त्रञ्च जपेन्मोक्षेच्छुरादरात् । यद्यस्याऽभिहितं तेन पद्भ्यामेव प्रदक्षिणाम्
कुर्वतारुणशैलस्य तत्प्राप्यं शुभमञ्जसा । क्षुतेषु स्खलितेष्वत्याहिते दुःस्वप्नदर्शने ॥
प्रीत्युत्कर्षेऽपि च बुधैरुच्चार्योऽरुणशङ्करः । अपि वर्णाश्रमभ्रष्टः शिवद्रोहरतोऽपि वा
त्रीण्यहान्यरुणक्षेत्रे वसन्मुच्येत पातकैः । पार्थिवः शिवलोकोऽयंमूर्त्तमेतत्त्रयीशिरः
एष दक्षिणकैलासो योसावरुणपर्वतः । अन्येषु सिद्धक्षेत्रेषु तपोभिः सिद्धयो नृणाम्

अस्मिन्स्मरणमात्रेण तारतम्यं विचिन्त्यताम् ।

यद्गङ्गायां प्रयागे यत्काश्यां वै पुष्करेषु यत् ॥ ३३ ॥

कर्म सेतौ च यत्पुंसां शोणक्षेत्रे ततोऽधिकम् । अग्निष्टोमं वाजपेयंवैराजंसर्वतोमुखम्
राजसूयाश्वमेधौ च कुर्याच्छोणाचलेबुधः ।-एकाहं वाऽरुणक्षेत्रे नरोयत्स्यादुपोषितः
तस्य चान्द्रायणशतं भवेत्सान्तपनायुतम् । षोडशापि महादानान्यरुणक्षेत्रसन्निधौ ॥

अनुष्ठितानि कल्पोक्तं कुर्वन्ति द्विगुणं फलम् ॥ ३७ ॥

इति नन्दिकेश्वरमुखेन शुश्रुवान्मुनिनन्दनोऽथ निरयप्रतिक्रियाम् ।

अभिनन्द्य तं वद दिनर्तुवत्सरप्रमुखार्हणक्रममिति व्यजिज्ञपत् ॥ ३८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्द्धे पापापनोदकप्रायश्चित्तवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

काम्यकर्मवर्णनम्

नन्दिकेश्वरउवाच

रक्तोत्पलैरर्कवारे यः शोणाद्रीशमर्चयेत् । अवश्यं तस्य सिध्यन्ति सार्वभौममहर्द्धयः

सौम्यवारेऽरुणाद्रीशं कस्तूरीकरवीरकैः। यः पूजयतितस्यस्यात्सत्यलोकेसुखासिका
गुरुवारे सिताम्भोजैः शोणेशं वरिवस्यतः। जनलोके चिरं वासःसिद्धैःसहभविष्यति
चम्पकैर्मल्लिकाभिश्च शुक्रवारे समर्चयेत्। तपोलोकं प्रपद्येत ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः ॥४॥

सौरिवारे च जातीभिस्समाराध्याऽरुणेश्वरम्।
न जातु यमलोकानां पापीयानपि कल्पते ॥ ५ ॥

प्रथमायां तिथौ देवस्योपहारं समर्पयेत्। यः पायसेन स भवेद्धनधान्यसमृद्धिमान्

द्वितीयस्यां तिथौ भक्त्या यो दध्यन्नं निवेदयेत्।
स भवेद्भाग्यवाञ्छ्रेष्ठः सोमपाश्च भवेद्ध्रुवम् ॥ ७ ॥

तृतीयायाञ्च योऽपूपैः शोणेशं परितर्पयेत्। तस्याऽव्याहतमारोग्यमाशरीरं भविष्यति
चतुर्थ्यामरुणेशाय पूर्वकुम्भोत्करादिकम्। निवेदयति यस्तस्य भवेत्पूर्णमनोरथः ॥
मुद्गौदनञ्च पञ्चम्यामुपहारंप्रकल्पयेत्। शोणेश्वराय भक्त्या यः स स्यादक्षय्यवैभवः
षष्ठ्यां गुडौदनंदद्यादरुणाचलशम्भवे। भक्त्या यस्तस्य सन्तानो न कदाचित्प्रहीयते
तिलौदनं यस्सप्तम्यां शोणेशाय समर्पयेत्। स दीनोऽप्यधमर्णत्वमयत्नेन व्यपोहति

अष्टम्यां राजशाल्यन्नं यो दद्याच्छोणशम्भवे।
तस्य सेवां विनाऽपि स्याद्राजलोको वशीकृतः ॥ १३ ॥

गोधूमान्नंनवम्याञ्चशोणाद्रीशाययोऽर्पयेत्। राजयक्ष्मादयस्तस्यनभविष्यन्तिजातु च
दशम्यां शोणनाथाय यः करम्भंनिवेदयेत्। स भवेत्सर्वलोकानां सदैवप्रीतिभाजनम्
पृथुकैरुपहारान्य एकादश्यां प्रकल्पयेत्। अरुणाचलनाथस्य स भवेदकुतोभयः॥१६॥
द्वादश्यां शोणनाथाय सूपौदननिवेदनम्। यः करोति भवेत्तस्य निर्विघातो मनोरथः
यः सक्तूनरुणेशाय त्रयोदश्यां समर्पयेत्। तस्याव्याकुलचित्तत्वमश्रान्तमपि जायते
अर्पयेच्छोणनाथायफलानिविविधानियः। चतुर्दश्यांसमूढोऽपिसिद्धसारस्वतोभवेत्
यः पौर्णमास्यां शोणाद्रिनाथाय विनिवेदयेत्। पनसस्य फलंतस्यचक्षूरोगोनजायते

कुहाञ्च सङ्गमे भक्त्या कन्दमूलादि योऽर्पयेत्।
शोणाचलेश्वरायाऽस्य तुष्यन्ति पितरः किल ॥ २१ ॥

अश्विन्यामरुणेशाय दद्याद्वासांसि भक्तिमान् । भरण्यामरुणेशायदद्यादाभरणान्यपि॥
कृत्तिकासु प्रदीपांश्च रोहिण्यां रौप्यमर्पयेत् । मृगशीर्षे मलयजमार्द्रायां हरिचन्दनम्
पुनर्वसौ मृगमदं पुष्ये कर्पूरमर्पयेत् । काश्मीरोद्भवमाश्लेषे मघायां तुहिनोदकम् ॥
ताम्बूलं पूर्वफाल्गुन्यां धूपमुत्तरफाल्गुने । कालागुरूंश्च हस्तर्क्षे चित्रायां यक्षकर्दमम्
स्वात्यांसुवासिनीवृन्दं विशाखायांप्रकीर्णकम् । मैत्रेमुक्तातपत्रंचज्येष्ठायांधेनुकान्यपि
मूलेमुक्तासरान्पूर्वाषाढे मुकुटमर्पयेत । रत्नानि चोत्तराषाढे श्रवणे भद्रपीठिकाम् ॥
अष्टापदं धनिष्ठायां वासः शतभिषज्यपि । पूर्वाभाद्रपदे भोगानुत्तरायां तुरङ्गमान् ॥
रेवत्याश्च रथं हैमं प्रदद्याच्छोणशम्भवे । दद्यात्कृत्वामहापूजां तत एवाऽर्पयेन्नरः॥२९
पूज्यो राशिषु मेषादिष्वरुणेशो विशेषतः । सिन्दुवारैः कुरवकैःककुभैःपाटलैःक्रमात्
कुटजैर्नीपकुसुमैर्जीवन्तीमल्लिकादिभिः । सरोरुहैर्दमनकैर्नन्द्यावर्तसरोरुहैः ॥ ३१ ॥
पञ्चामृतेनस्नपयन्नुभयोरुपरागयोः । पञ्चाक्षरेण कुर्वीत शोणनाथस्य भक्तितः ॥३२॥
स्नपनं पञ्चगव्येन द्वयोरयनयोरपि । षडक्षरेण कुर्वीत गव्येन स्नपनक्रियाम् ॥ ३३ ॥
प्रणवेनैव कुर्वीत क्षीरेण स्नपनक्रियाम् । अरुणाचलनाथस्य भक्त्या विषुवयोर्द्वयोः
प्राह्ले स्याद्रुद्रतुलसी मध्याह्नेकृतमालकम् । अपराह्ले मल्लिका च शोणाद्रीशस्यशस्यते
अर्द्धोदये च स्नपयेत्सहस्रकलशोदकैः । शतरुद्रीयमुच्चार्य श्रीशोणाचलशम्भवे ॥३६॥

शिवरात्रौ विशेषेण त्रिशिखैर्बिल्वपत्रकैः ।
कमलैः कर्णिकारैश्च जागरूको यतेन्द्रियः ॥ ३७ ॥

गीतवादित्रनृत्यैश्च दिव्यागमविधानतः । पूजयेपदवर्गार्थं शोणशैले महेश्वरम् ॥३८॥
मासि पौषे च देवस्य कुर्यादाग्नेयमुत्सवम् । नवान्नैरुपदंशाद्यैर्व्याहृतीरुच्चरन्बुधः ॥
वैशाखेचविशाखायांशिवतन्त्रानुसारतः । शोणाचलेश्वरस्याऽस्यकुर्याद्दमनकोत्सवम्
प्राबोधिकं मार्गशीर्षे प्रातर्निर्माय सामभिः । महापूजां प्रकुर्वीतशोणशैलस्यभक्तिमान्
शनिप्रदोषेष्वार्द्रासु व्यतीपातेषु पर्वसु । सोमार्कवारयोश्चार्चेच्छोणाद्रीशं यथागमम्
दीक्षोपनयनोद्वाहपुत्रजन्मादिकेष्वपि । विशेषपूजां कुर्वीत शोणनाथस्य भक्तिमान् ॥
अपि स्वजन्मनक्षत्रे सम्पत्स्वापत्सु भीतिषु । प्रवेशनिर्गमनयोश्चार्चनीयोऽरुणेश्वरः ॥

त्रतिचक्रागमे पादबन्धने नववैभवे । अरुणेशार्चनं कुर्यादभियानेषु च द्विषाम् ॥ ४५॥
स्मरेदतिदवीयांश्चेत्पश्येत्पर्यन्तगो यदि । स्थितश्चेदरुणक्षेत्रे त्रिकालं पूजयेच्छिवम्
किमन्यद्वद वत्सेति उद्धृत्य भुजमुच्यते । अरुणक्षेत्रतो नाऽन्यदलं स्वर्गापवर्गयोः
स्मरणेन मनःश्रोत्रे श्रवणाद्दर्शनाद्दृशोः । जिह्वाञ्च कीर्त्तनाच्छोणक्षेत्रंसद्यःपुनात्यलम्
अरुणेऽस्मिन्महाक्षेत्रेदेहिभिर्लब्धजन्मभिः । जीवद्भिर्लभ्यतेभोगोमोक्षश्चोन्मुक्तजीवितैः
अन्यत्र मुक्तदेहानामप्यत्र श्राद्धकर्मणा । अपि पापात्मनां पुंसामपवर्गो भविष्यति ॥

अयोध्यां मथुरां मायां काशीं काञ्चीमवन्तिकाम् ।
द्वारकां चाऽरुणक्षेत्रमतिशेते न संशयः ॥ ५१ ॥
इत्युक्तवन्तं च शिलादपुत्रं मृकण्डुसूनुः पुनरप्युवाच ।
माहात्म्यमेतन्महनीयकीर्ते ! भूयोऽपि पृच्छामि वदस्व मह्यम् ॥५२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे काम्यकर्मवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

सृष्टिवर्णनम्

नन्दिकेश्वर उवाच

अरुणाचलमाहात्म्यं विस्तरात्परिपृच्छता । मार्कण्डेयत्वयामन्येमयिन्यस्तोमहान्भरः
स्थाने कुतूहलाक्षिप्तं मनस्तव महामते !। यः शोणाद्रीशचरितं न वेत्ति स नरः पशुः॥

कथं वा शक्यते वक्तुं जानानैरपि कात्स्न्येतः ।
शोणाचलजुषःशम्भोर्माहात्म्यं महितोदयम् ॥ ३ ॥

कथं वा श्रुतमप्येतदाश्चर्यरसभावितैः । अशेषमवधार्येत प्रज्ञावत्प्रवरैरपि ॥ ४ ॥

इदानीं स्मर चित्रं तु चरित्रं स्मरवैरिणः। परामृतानुभूत्यैव सत्यं नृत्यति मे मनः॥
अद्भुतं शिवचारित्रमास्कन्दितमनोहरम्। मम वर्णयितुं कार्त्स्न्यान्नैव शक्नोति शेमुषी
तथाप्येष प्रवक्ष्येऽहमंशांशेन यथामति। पुण्यं शोणाद्रिनाथस्य माहात्म्यं श्रूयतांमुने
पुरादिदेवकल्पादौ निर्विकल्पो महेश्वरः। स्वेच्छया सकलं विश्वं पुनरप्युदभावयत्
उद्भावितश्च तद्विश्वं स्रष्टुं पातुश्च सर्वदा। अन्विच्छन्नादिदेवोऽसौब्रह्मविष्णूविनिर्ममे
असृजद्दक्षिणाङ्गेन त्र्यम्बकः परमेष्ठिनम्। विष्टरश्रवसं देवो वामाङ्गेन च सृष्टवान्॥
ब्रह्माणं रजसा विष्णुं सत्त्वेन समयूयुजत्। नियुक्तौ देवदेवेनतौ विरञ्च्यच्युतावुभौ
ईशाते सर्वजगतां सृष्टिरक्षाविधानयोः। मनसैव मरीच्यादीन्ससर्ज ब्राह्मणान्दश॥

दक्षं च दक्षिणाङ्गुष्ठात्सृष्ट्यै प्रावर्तयद्विधिः।
मुखेन ब्राह्मणान्दोर्भ्यां क्षत्रियानूरुतो विशः॥ १३॥

शूद्रांश्च पद्भ्यां निरमात्स्वयश्च कमलासनः। मरीचितनयाज्जज्ञुः कश्यपादसुरासुराः
मरुतः फणिनो गृध्रा गन्धर्वाप्सरसोऽपि च। मनुश्चयस्यसन्तानोमानवोऽयं प्रवर्त्तते
नानाज्ञातित्वमापाद्य नानाकर्मप्रवर्त्तकाः। अत्रेश्च समभूदार्षं क्षात्रं च द्विविधं कुलम्
पुलस्त्यपुलहाभ्यां च जज्ञिरे यक्षराक्षसाः। उतथ्यगीष्पतिमुखाजज्ञिरेऽङ्गिरसो मुनेः
भृगोरग्निः संमुदभूच्च्यवनाद्यास्तथर्षयः। वसिष्ठप्रमुखेभ्यश्च सम्बभूवुर्महर्षयः॥

यत्पुत्रपौत्रैर्भुवनमिदमापूर्यतेऽखिलम्॥ १८॥

एवं ब्रह्माऽऽत्मजैः स्वीयैरिदमापूरयज्जगत्। कालेन वैभवेनाऽपि विसस्मारमहेश्वरम्
अच्युतोऽपिभृगोःपुत्रीमुद्वाह्यकमलालयाम्। मत्स्यादिरूपोजगतिभवन्नास्मरदीश्वरम्

सृष्टिस्थितिभ्यां द्रुहिणाब्जनाभौ स्वाधीनतां नूनमुपागताभ्याम्।
अतीव गर्वं दधतुर्न कस्य मदोऽधिकारेण भवेन्नरस्य॥ २१॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे सृष्टिवर्णनंनामाऽष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

नवमोऽध्यायः

ब्रह्मविष्णुविवादवर्णनम्

नन्दिकेश्वर उवाच

अहमेव प्रभुरिति प्ररूढाधिकगर्वयोः । विरञ्च्यच्युतयोरासीद्विवादो मोहसम्भवः ॥
रजोविकाराभ्यधिकोवाह्येनीलङ्घोत्थितः । विश्वसृष्टिकरोविष्णुंविरञ्च्योऽब्रूतगर्वतः

ब्रह्मोवाच

कथं त्वमधिकश्चासि विष्णो जनयितुर्मम । पितामहस्य लोकानांकिमेवमतिमोहितः
त्वत्त एवोदितौ दैत्यौ निहत्य मधुकैटभौ । दैत्यारिरिति मुग्ध त्वं गर्वंवहसि केशव
त्वामेव सृजतो नित्यं वहुधामम वेधसः । अद्याप्यायासजां पीडां न परित्यजतःकरौ
मम श्रमाम्भसोद्भूते महाम्भोधौ निमज्जतः ।
नैयग्रोधं न चोत्पन्नं कुतस्तेऽस्त्ववलम्वनम् ॥ ६ ॥
मद्रुपङ्गे महाम्भोधौ स्रवते कोऽपि पन्नगः । तदाश्रयस्त्वमूर्ध्वं ते पद्मं तच्चासनं मम ॥
कुतस्तमोमये ब्रूहि त्वयि सत्त्वगुणोदयः । स वेत्सि किंत्वं प्रकृतिंनिद्राजडिमनिर्भरः
जलाशये प्रस्वपता दैत्यभीत्या जनार्दन !। कथं त्वया रक्षिताऽसौ मदधीना जगत्त्रयी
चतुर्भ्यो मम वक्त्रेभ्यो वेदा. समुदयं गताः । चैतन्यरूपिणीशक्तिःकलत्रं मे सरस्वती
यया हि सृज्यते विश्वमिदं स्थावरजङ्गमम् । रक्ष्यते च तदिन्द्राद्यैर्मामकैःपुत्रपौत्रकैः
अतः कथय वैकुण्ठ मन्नियोज्येषु कश्चन । जगतामीश्वरान्मत्तः कथंनामातिरिच्यसे॥

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्थं सरोषसंरम्भे विधौ पौरुषभाषिणि । नारायणोऽपि सासूयंस्मित्वैवंसमभाषत

विष्णुरुवाच

विरञ्चे! मुञ्च संरम्भं वृथा खलु विकत्थसे । नाभीसरोजसञ्जातो मम त्वमवधारय
योगनिद्रां मयोन्मुच्य पुराह मधुकैटभौ । नचेद्यन्मथितौ ताभ्यां तथैवस्याःप्रणाशितः

सोमकप्रमुखान्दैत्यान्हन्तुमात्मेच्छया मम ।
धृतमत्स्यादिरूपस्य को वाऽन्यः सृष्टिकारणम् ॥ १६ ॥
न किञ्चिदपि पश्यन्ति रजसारूढदृष्टयः । रजोमयेन भवता किं निरूपयितुं क्षमम् ॥
अविनाभाविनी शक्तिर्ननु मे पद्मवासिनी । यस्याः कटाक्षमात्रेण जगत्त्रितयमेधते
भूतान्यमूनि कालोऽयमात्मनोऽप्यहमेव हि । मया विरहितं किंस्वात्रिषु लोकेषु विद्यते
आदित्या वसवो रुद्रा दिक्पाला मनवोऽप्यहम् । भूर्भुवःस्वस्त्रयीमेनां मदधीनां विचिन्तय
ममैव विनियोगेन सृष्टिशक्तिः स्वयं स्थिता ।
तन्मे त्रैलोक्यनाथस्य किं त्वं ज्येष्ठः समोऽथवा ॥ २१ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

एवं मोहान्धमनसोरन्योन्यं प्रतिगर्जतोः । ययावनल्पसमयः सम्वर्तसदृशस्तयोः ॥
उदयास्तमयौ स्यातां न तदा चन्द्रसूर्ययोः । नक्षत्राणि च ताराश्च ग्रहाश्च क्षीणतां ययुः
नाववुर्मरुतो वा न जज्वलुर्जातवेदसः । नान्तरिक्षं न च क्षोणी न दिशोऽपि चकाशिरे
समुद्राश्चुक्षुभुस्सर्वे पर्वताश्च चकम्पिरे । औषध्यः शोषमासेदुखसेदुश्च जन्तवः ॥२५
पक्षमासर्तुवर्षादिकालस्य नियमो गतः । अहोरात्रव्यवस्थाऽपि प्रणाशं समुपाययौ ॥
इन्द्रादयो लोकपाला मरीच्याद्या महर्षयः । सर्वेऽप्यकालेसम्प्राप्तं कल्पान्तंमेनिरे तदा
एवं जाते महाक्षोभे भूताक्रन्दप्रचोदितः । भूतनाथो जगज्ज्ञातमविद्यायामबुध्यत ॥२८
व्यचिन्तयच्च विश्वात्मा विश्वसंरक्षणोद्यतः ।
अवाह्ययादृशाऽपश्यदनयोर्मोहकारणम् ॥ २६ ॥
स्वामिनं सकलैश्वर्यदातारं मां मदोद्धतौ । विस्मृत्य स्वं स्वमेवैतावमंसेतां जगत्प्रभु
अहो मोहस्यमाहात्म्यं यदिमौ द्रुहिणाच्युतौ । जानानावपि मां सम्यगभूतामेवमुद्धतौ
अज्ञानतिमिरोद्भूतिदूषिताशयलोचनः । जनः प्राप्तं स्तुतमपि प्रायो वस्तु न पश्यति
कृतापराधावप्येतौ निमग्नौ मोहसागरे । मया नोपक्षणीयौ हि लोकानां हितकाम्यया
इति निश्चित्य मनसा मायावैवश्यमेतयोः । देवो दयामहाम्भोधिर्व्यपोहयितुमैहत ॥
अहोऽनुकम्पातरुणेन्दुमौलेः स्वभावसिद्धा भुवनत्रयेऽस्मिन् ।

असौ प्रमोहाम्बुधिमध्यतोऽभूदाविर्निरस्तावपि धातृविष्णू ॥ ३५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे शिवविष्णुविवादवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

युध्यतोर्ब्रह्मविष्ण्वोर्मध्येतेजोमयलिङ्गप्रादुर्भाववर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

आज्ञापय विभो मह्यं यथा शम्भुः सनातनः । अनुजग्राह मोहान्धौ वैकुण्ठपरमेष्ठिनौ

नन्दिकेश्वर उवाच

शृणुष्व सर्वं वक्ष्यामि विस्तरेण यथातथम् । यदेव देवो विदधे दयया भक्तवत्सलः
अथोदस्थात्तयोर्मध्येतथाविवदमानयोः । ज्योतिःस्तम्भत्वमभ्येत्यरोदोरन्ध्रनिरोधकः
महता जृम्भमाणेन तस्य ब्रह्माण्डभेदिनः । अन्तरिक्षमतिश्यामं समुत्क्षिप्तमिवाभवत्
विष्वग्विवर्णता तस्यज्योतिर्लिङ्गस्य तेजसा । दिशो विरेजिरेसद्योदूरविस्तारिताइव
तीव्रैस्तस्यमहाज्वालैःशोषिता इवसागराः । विमुक्तवीचिसंक्षोभाःस्वामेवप्रकृतिययुः
व्यद्योतन्तदिविप्राग्वद्ग्रहास्तारागणैःसह । तेजःस्तम्भात्समुद्भिन्नाःस्फुलिङ्गाइवकेचन
तेजसा तस्य शोणेन गैरिकेणेव रञ्जिताः । भौमरविश्रियं सर्वेऽप्यवहन्नवनीभृतः ॥
समुद्रास्तत्प्रतिच्छायानिर्भराश्लिष्ट यादसः । पद्मरागशिलाखण्डे घटिता इव रेजिरे
प्रवालगुच्छैः प्रत्यग्रैर्लम्बिता इव पादपाः । नद्यश्च निर्भरोत्फुल्लकह्लारा इव रेजिरे ॥
मही कुङ्कुमलिप्तेव दिशः सिन्दूरिता इव । सर्वारुणमिव व्योम समन्तात्प्रत्यदृश्यत ॥
ब्रह्माण्डकर्परमभूत्तन्महःपूरितान्तरम् । शोणितेनेव सम्पूर्णं कपालं कृत्तिवाससः॥१२॥
एवंप्रवर्द्धमानेन तेजःस्तम्भेन तेन च । अरुणाकारतां भेजे विश्वं स्थावरजङ्गमम् ॥

तेजोलिङ्गं तदाश्चर्यं दृष्ट्वा त्यक्तमिथःक्रुधौ। अचिन्तयेतामेकैकं चतुर्मुखचतुर्भुजौ॥

किमेष वसुधां भित्त्वा शेषादीनांफणाभृताम्।
फणामाणिक्यमहसां राशिरुन्मुखतां गतः॥ १५॥

किं वा कल्पान्तसुलभप्रादुर्भावाःप्रभाकराः। द्वादशापिनभोभूम्योर्मध्येयुगपदुत्थिताः
आहोस्विन्मेघसंघर्षाद्विततान्व्योममध्यतः। अन्योन्यं मिलिताःक्षिप्रानिपतन्त्यवनीतले
प्रतिघ्नन्नेष तेजोभिरक्ष्णोः शक्तिमनुक्षणम्। स्वनिर्विशेषिता शेषभूतजालः प्रवर्द्धते॥
एष उद्दीप्यमानोऽपि सन्तापायन कल्पते। नेदीयांस्यपि भूतानि न निर्दहति वह्निवत्
एतस्य कान्तिसङ्क्रान्त्या जगदेव न केवलम्। मदीयमपि शोणत्वमनुप्राप्तमहोवपुः
कस्मादेषसमुत्पन्नःकिंमूलःकिमुपाधिकः। कुतस्त्यःकिमुपादानःकयाशक्त्याप्रकाशते
कियानवधिरेतस्य विष्वक्तिर्यगधोर्ध्वतः। अवगाढश्च पातालं कियन्मात्रमसाविति
तदेतदखिलं ज्ञातुं मनः पर्युत्सुकं मुहुः। इच्छत्युत्पतितुं व्योम प्रवेष्टुं च रसातलम्
इति चिन्ताभराक्रान्तौ तेजःस्तम्भावलोकनात्। उभावप्यवकुलितौ वैकुण्ठपरमेष्ठिनौ
अभाषत च गोविन्दः सुतरामेव गर्वितम्। हिरण्यगर्भमालोक्य स्मयमानमुखाम्बुजः॥

विष्णुरुवाच

अयमेवावयोर्ब्रह्मन्नन्योन्यौत्कर्षकाङ्क्षिणोः। सत्यमेव परीक्षायै निकषःसमुपस्थितः
अमुष्य तेजसां राशेरपरिच्छेद्यसम्पदः। आद्यन्तौ ज्ञातुमेकेन न शक्यं ध्रुवमावयोः॥
यः पश्येन्मूलमग्रंवातेजसोऽस्यस्वयम्भुवः। सएव नावभ्यधिकोजगतांनाथकोऽपिसः

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्युभावपि विनिश्चिताशयौ मूलमग्रमपि तस्य वीक्षितुम्।
तेजसोऽतिमहतो बभूवतुः स्पर्धया विरचितोद्यमौ मिथः॥ २६॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे ब्रह्मविष्णवोर्मध्ये तेजोमयलिङ्गप्रादुर्भाव-
वर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

एकादशोऽध्यायः

विष्णुनालिङ्गाधोभागशोधनवर्णनम्

नन्दिकेश्वर उवाच

अथ हंसाकृतिं व्योमपदवीलङ्घनक्षमाम्। भेजे विरञ्चिस्तस्याग्रं द्रक्ष्यामीति कृतोद्यमः
जग्राह विष्णुर्वाराहं विग्रहं दृढविग्रहः। विश्वम्भराविनिर्भेदक्रीडासुलभवैभवम् ॥२॥
मूलं तस्य परिज्ञाय प्रत्यावर्तितुमुत्सुकः। कृत्रिमस्तब्धरोमैष दंष्ट्राभ्यामभिनन्महीम्
विदारयन्स पोत्रेण भूतधात्रीमवाङ्मुखः। महावराहो ददृशे तेजःस्तम्भंनमन्निव ॥४॥
क्रीडाक्रोडकठोरेण कण्ठघोषेण पूरयन्। पातालं बहुलोत्साहः प्रवेष्टुमुपचक्रमे ॥५॥
विवेश यत्रयत्राऽसौ तत्र तत्र तथास्थितम्। अवेक्षिष्टानलस्तम्भं तमेव कुहनाकिटिः
विदारितान्महीरन्ध्रात्प्रत्यदृश्यन्तभोगिनः। प्ररोहा इव शेषाद्यास्तेजःस्तम्भस्यकेचन
प्रत्यदृश्यत हेमाद्रेर्मूलकन्द इव स्थितः। आधारतां गतो दृष्टोह्यच्युतेनाऽऽदिकच्छपः
आराद्वसुन्धरागुल्फे धुरन्धरतया स्थिताः। दिक्सिन्धुराश्चदृश्यन्तेमंदमन्थरवन्धुराः

मधुद्विषा च स महान्मण्डूकोऽपि विलोकितः।
अखण्डमण्डलं भूमेर्यस्य पृष्ठे प्रतिष्ठितम् ॥ १० ॥

आधारशक्तिमपि तामभ्यपश्यदधोक्षजः। यदनुग्रहतः शेषकूर्माद्या अपि धूर्वहाः॥११॥
अतलं वितलं चैव सुतलं नितलं तथा। तलातलं च प्रतलं महातलमिति क्रमात् ॥
ददर्श सप्त पातालानपि वारिजलोचनः। तत्रत्यान्विविधाकारान्सर्वानपि सविस्मयः
अत्यगाद्भोगवत्याख्यांपुरींवैरोचनीमपि। जगाहेऽन्यांश्चदैत्यानामावासानतिगह्वरान्
इदं दृष्टमिदं दृष्टमित्युपारूढकौतुकः। मूलं मुग्धाशयस्तस्य विचिनोति स्म माधवः
अधस्तादपि गाढेन पयोधेस्तेनपोत्रिणा। तथैव तेजःस्तम्भः स निर्विकारमवैक्ष्यत॥

दलिता केवलं पृथ्वी पाथोराशिर्विलोलितः।
नैवाऽलोक्यत तन्मूलं कोलरूपेण विष्णुना ॥ १७ ॥

इत्थंवर्षसहस्राणिभ्रान्त्यासम्भ्रान्तमानसः। नालम्बभूवतन्मूलंलीलाक्रोडोविलोकितुम्
अवरुग्णखुरः क्षुण्णदंष्ट्रो विध्वस्तविग्रहः । भग्नपोत्रः स भूदारो जगाहे बहुलं श्रमम्
श्रान्त्यानिश्वसतस्तस्यताद्दृग्दर्पोविशृङ्खलः । ननाशतत्क्षणात्साकंतन्मूलावेक्षणेच्छया
अनिर्व्यूढप्रतिज्ञोऽपि प्रत्यावर्तितुमुत्सुकः । न चक्षमे सरोजाक्षश्चलितुं च पदात्पदम्
श्रमान्धचक्षुषस्तस्य पातालान्तरवर्त्तिनः । तत्तेज एव पन्थानं पुनरप्युदभावयत् ॥२२
कथंकथञ्चिदुत्तीर्णोऽप्यकूपाराद्पारतः । स्वेदाम्भःसागरस्रावे मग्नोऽभूच्छद्मशूकरः ॥
रज्ज्वेव तेजःस्तम्भस्य प्रभया सानुबद्धया । लब्ध्वाचलं वनं कष्टंन्यवर्त्तिष्ट जनार्दनः
नावैक्षि यन्मया मूलममुष्य महसां निधे । ततः स्रष्ट्राऽपि नो दृष्टःशिरोभागःकथञ्चन
अमुष्य महसां राशेः प्रागभूद्यत्रसम्भवः । ततो निवृत्त्य यास्यामिशरणंशिवमीश्वरम्

स हि विश्वाधिको देवश्चिरं मोहान्धचक्षुषा ।
यद्विस्मृतो मया तस्माद्दुर्विपाकोऽजनीदृशः ॥ २७ ॥
एवं विनिर्धार्य विमुक्तदर्पो निवृत्तवानाशु सरोरुहाक्षः ।
तमेव देशं प्रबभूव यत्र स्तम्भः स तेजोमयतां दधानः ॥ २८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे विष्णुना लिङ्गाधोभागशोधन-वर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

— ——

द्वादशोऽध्यायः

ब्रह्मणालिङ्गोपरिभागशोधनवर्णनम्

नन्दिकेश्वर उवाच

ततस्तेजोमयं स्तम्भमनुसृत्य पितामहः । उत्पपातोन्मुखो वेगान्निरालम्बे नभस्तले ॥
द्रुतमुत्पततस्तस्य पक्षावेगेन वारिताः । व्यशीर्यन्त समुद्धर्त्ताः प्रणुन्ना इव वायुभिः ॥

स वेगादुत्पतन्दूरं नाक्ष्णोर्विषयतामगात् । केवलं दीर्घदीर्घैव रेखा व्योम्निव्यभाव्यत
मायामरालो दद्दृशे तेजःस्तम्भस्य पार्श्वतः । संध्यापयोधराभ्यर्णचारीव रजनीकरः॥
प्रागत्यगादुत्पतत्तां ततोऽध्वानं पयोमुचाम् । विमानपदवीं पश्चात्ताराचत्वं ततः परम्
तेजसां यानिधामानिह्यत्युच्चान्यूर्ध्वचारिणाम् । अतिचक्रामवेगेनतान्यसौकुहनाखगः
मरुतो मनसो वापि जवः सूक्ष्मतराकृतेः । सोऽभूदधःकृतस्तेन हंसेन गमनाद्दिना ॥
यथा यथा चोत्पपात सुदूरं श्रमितच्छदः । तथा तथा च दद्दृशे तेजःस्तम्भः समुन्नतः
अतीत्य मरुतां स्कन्धान्सप्त सम्प्राप्तविस्मयः । विभेदाऽण्डकटाहंच ज्वलन्तंतमुदैक्षत
कथं वाऽदृष्टमूलस्य स्थातव्यं पुरतो हरेः । अविमोचयतः शौरेरसमासमशीर्षताम् ॥
अनिर्व्यूढप्रतिज्ञस्य दीर्घैः किंवाममाऽसुभिः । तदत्रौपयिकंकिंस्यात्कार्यंकावागतिर्मम
अतिसन्धित्सतो विष्णुं कस्सहायो भविष्यति । आर्जवंनैवनिर्जेतुंप्रतिवादिनमक्षमः
छद्मनावातिरस्कुर्यान्मानोहि महतांधनम् । इतिसञ्चिन्तयत्येवविरिञ्चौव्याकुलात्मनि
आकाशे दद्दृशे नाऽतिदूरे किमपिनिर्मलम् । ऐन्दवी किमियंरेखातस्याःकथमिहागमः
यद्वामृणालंतत्सिंधौवियत्यस्यां कुतस्तु सः । इति तस्मिन्ससंदेहेनेदीयस्तंतदागतम्
अबोधि केतकीबर्हमिति राजीवजन्मना । तत्पर्युषितमप्युद्यत्सौरभं वस्तुशक्तितः ॥
हिरण्यगर्भो विमलमगृह्णात्केतकच्छदम् । गृहीतमात्रं तेनैतत्सचैतन्यं किलाऽब्रवीत्॥

केतक उवाच

भो गृह्णासि किमर्थंत्वं मुञ्च मां विश्रमोद्यतम् । वर्षाणांशतसाहस्रमुत्पत्यैवंविहायसा

नन्दीश उवाच

तथा समेधमानं तं दृष्ट्वा श्रममखिद्यत । अचिन्तयत्पद्मसूतिरत्यन्तं विहताशयः ॥१६॥
अनिर्व्यूढप्रतिज्ञावान्नीचतामपि संश्रितः । आक्रान्तरोदोविवरः क्व राशिस्तेजसामसौ
अहमेतत्परीक्षायां क्व परिच्छिन्नपौरुषः । भज्येते इव मे पक्षौ दृशा चान्धायते इव ॥
प्रध्वंसन्त इवाङ्गानि पतामीवाऽहमप्यधः ॥२१ ॥
किंवाऽन्यद्बहुनोक्तेनसहनिश्वासवायुभिः । ममप्राणाश्चनियतंनिर्गच्छन्तीवसाम्प्रतम्
अहङ्कारमदग्रन्थिरयं त्रुट्यतु चित्ततः । मुकुन्देन सह स्पर्धा सा च शीघ्रं प्रणश्यतु ॥

यद्वेष रोदःकुहरपरिणाहाधिकोद्यमः । औन्नत्यमयतेऽद्यापि तेजःस्तम्भो यथा पुरा ॥
तदस्य तेजसां राशेर्नाऽहं नारायणोऽथवा । कारणं दूरतश्चान्ये महेन्द्रप्रमुखाःसुराः ॥
इतो नोत्पतितुं शक्तिरस्ति मे तन्निवर्त्तये । इति निश्चित्यमनसाविधाताजातविस्मयः
प्रत्यभाषत तं कस्त्वं कुतो वा प्राप्तवानिति । स च प्रत्यब्रवीदेनं वेधसं केतकच्छदः
केतकच्छदएवाऽऽसंसचैतन्यःशिवाज्ञया। तेजःस्तम्भात्मनःशम्भोरस्यमूर्ध्निचिरंस्थितः

भूलोक इच्छया वस्तुं ततः सम्प्राप्तवानहम् ॥ २९ ॥

इत्थं श्रुत्वा केतकीवर्हवाचं लब्ध्वाऽऽश्वासं तं किलाऽम्भोजभूतिः ।

ब्रूहि त्वं मे तत्कियत्यन्तरे वा तेजःस्तम्भस्याऽग्रमित्याबभाषे ॥३० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे ब्रह्मणा लिङ्गोपरिभागशोधनवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

लिङ्गोपरिभागशोधनगमनकालेऽध्वखेदखिन्नेनब्रह्मणाऽसत्यसाक्ष्याथ-केतकच्छदप्रार्थनावर्णनम्

नन्दिकेश्वर उवाच

केतकीवर्हमप्येनं विहस्य पुनरब्रवीत् ।

केतक्युवाच

अपि मूढ ! न किञ्चित्त्वं वेत्सि कस्त्वं कुतो न तत् ॥ १ ॥

ईदृश्यः परितोलग्ना यस्मिन्ब्रह्माण्डकोटयः । तस्य प्रमाणमेतावदिति को वेदितुं क्षमः
चतुर्युगायुतैर्यातं ततो निपततो मम ।इदानीमपि नाप्नोति तन्मध्यं किल भूतलम् ॥
इति ब्रुवाणमेनं च नमस्कृत्य सरोजभूः । हित्वा निजमहङ्कारमभाषत कृताञ्जलिः ॥

ब्रह्मोवाच

महात्मन्सत्यमेवाऽस्मिमूढोऽहंकेतकच्छद !। ब्रह्मणाहिमयास्पर्द्धाविष्णुनासहनिर्मिता

द्वाभ्यामपीदमावाभ्यां विस्मृतं शिववैभवम् । यन्नौ महानभूद्गर्वस्सर्गसन्त्राणमात्रतः
ह्रेपणी संकथा तावदास्तामद्याऽप्यहंयतः । स्पर्द्धयान विमुक्तोऽस्मिवद्धयागरुडध्वजे
सख्यं साप्तपदीनं हि कथ्यते तद्भवान्मयि ॥ ८ ॥
असंस्तुतधियंहित्वाकर्तुमर्हस्यनुग्रहम् । अहंविष्णुश्चमोहान्धौतेजःस्तम्भस्यवीक्षणात्
हंसकोलाकृती दध्वो मिथःसाम्यंव्यपोहितुम् । मूलंदिदृक्षुःसदशांकीदृशींयातवानिति
न जाने मम चाऽस्याऽग्रं दिदृक्षोरीदृशी दशा । गतमुड्डीयमानस्य मे सहस्रेण हायनः
जातश्रमोऽस्मि नितरां वियुज्य इव चाऽसुभिः ।
दिष्ट्याऽद्य भद्र ! लब्धस्त्वं मयाऽऽलम्बोऽवसीदताम् ॥ १२ ॥
तन्मेकुरूष्वमित्रस्यसफलांयाचनामिमाम् ।सखाऽहंसहसञ्जल्पादस्मिदासोऽनुषञ्जनात्
तत्त्वया करणीयैवं प्रार्थनैषा कृताञ्जलिः । यदि पश्यति मूलं स जितोऽहममुना तदा
यद्वा न पश्यति तदाऽप्यस्मिसाम्यमुपेयिवान् । इदंद्वयमपिप्रायो ममाऽतिह्रेपणंसखे!
त्वयैवपरिहार्यत्वमिदानीं समुपागतम् । अनृतामभिभाष त्वमुचितां च सुहृत्कृते ॥
गिरमेकामिमामग्रे चक्रपाणेरुदीरय । एष हंसाकृतिर्ब्रह्मा तेजःस्तम्भस्वरूपिणः ॥१७॥
अत्युच्चं दृष्टवानग्रमत्र साक्ष्ये स्थितोऽस्म्यहम् ।
तेनाऽपि तेजःस्तम्भत्वमेयुषा चन्द्रमौलिना ॥ १८ ॥
सम्भावितोऽयं सुतरां पित्रेवहि पितामहः । अतोऽयमेवाऽभ्यधिकोभवतोविष्टरश्रवाः
इत्युक्त्वा मम साहाय्यं सुमहत्क्रियतां त्वया ॥ २० ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

एवं भूयः प्रार्थितोऽयं विधात्रा दाक्षिण्यार्द्रः केतकीवर्हकोऽपि ।
तेजःस्तम्भाभ्यर्णभाजे तथैव प्राहाऽशेषं विष्णवे ब्रह्मवाक्यम् ॥ २१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे ब्रह्मणाऽसत्यसाक्ष्यार्थं केतकच्छद-
प्रार्थनावर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

शङ्करप्रादुर्भाववर्णनम्

नन्दिकेश्वर उवाच

सोऽपि ब्रह्माणमुद्वीक्ष्यतावताद्विगुणंस्मयन् । नाग्रं दृष्टमनेनेति निश्चिकायविवेकवान्
अनुग्रहीतुं मां मुग्धं हन्तुं चाऽस्य विधेर्मदम् । देवदेवः स एवाऽलं भूतभर्तेत्यमन्यत॥
मूलसन्दर्शनाशक्त्यातेजःस्तम्भस्यमे मदः । व्यपेत एव मन्येऽद्ययद्भक्तिस्त्र्यम्बकेऽजनि
स्तूयते वीतगर्वत्वात्स इदानीं महेश्वरः । यस्यदक्षिणवामाभ्यामङ्गाभ्यां नौ समुद्भवौ
अद्याप्यवीतगर्वत्वाल्लब्ध्वाऽसौकूटसाक्षिणम् ।हिरण्यगर्भोमामेवमतिसन्धातुमिच्छति
तदद्य सकलस्याऽपि दुःखस्याऽपनये क्षमः । स एव शरणत्वेन प्राप्तव्यः शङ्करो मया
तथा कृतापराधस्य कृतघ्नस्य गुरुद्रुहः । तमृते रक्षिता कोऽन्यस्तमेव स्तौमिशङ्करम्

विष्णुरुवाच

जय पृथ्वीमयाकार जय चापोमयाकृते !। जय प्रभाकराकार जयामृतकराकृते ॥ ८ ॥
जय वैश्वानराकार जय गन्धवहाकृते । जय होतृमयाकार जयाकाशमयाकृते ॥ ९ ॥
रक्ष मां त्रिगुणातीत रक्ष मां कालविग्रह !। रक्ष मामक्षयैश्वर्य रक्ष मां करुणाकर॥
स्रष्टा त्वं सर्वजगतांरक्षितासर्वदेहिनाम् । हर्ता च सर्वभूतानांत्वांविनैवास्तिकोऽपरः
अणूनामप्यणीयांस्त्वं महांस्त्वं महतामपि । अन्तर्बहिस्त्वमेवैतज्जगदाक्रम्य वर्तसे॥

निगमास्तव निःश्वासा विश्वं ते शिल्पवैभवम् ।
स त्वं त्वदीय एवाऽसि ज्ञानमात्मा तव प्रभो !॥ १३ ॥
अमरा दानवा दैत्याः सिद्धा विद्याधरा नराः ।
प्राणिनः पक्षिणः शैलाः शिखिनोऽपि त्वमेव हि ॥ १४ ॥

स्वर्गस्त्वमपवर्गस्त्वंत्वमोङ्कारस्त्वमध्वरः। त्वंयोगस्त्वंपरासम्वित्किंत्वंनभवसीश्वर
त्वमादिर्मध्यमन्तश्च तस्थुषां जगमुषामपि । कालस्वरूपतांप्राप्यकलयस्यखिलं जगत्

परेशः परतः शास्ता सर्वानुग्राहकःशिवः । स एष मे कथङ्कारं साक्षाद्भवति धूर्जटिः
यं दृष्ट्वा शरणं प्राप्तो निःश्रेयसमवाप्नुयात् । अथवास्तौमि तद्धामजातमात्रंयथामति
तच्छ्रुत्वैष कृपां कुर्यादवश्यं सर्वतःश्रुतिः । इति निश्चित्य वैकुण्ठः स्तोतुं समुपचक्रमे
तमेव तैजसं स्तम्भं प्रणम्य परमेश्वरम् । आदिमध्यान्तरहितं मत्वा त्वं जगदीश्वरम्
हठात्तेन विरञ्चेन वार्यमाणोऽपि सस्मितम् ॥ २० ॥

श्रीविष्णुरुवाच

जय देव महादेव वामदेव वृषध्वज । कालान्तक क्रतुध्वंसिन्नीलकण्ठेन्दुशेखर ॥२१॥
जय शम्भो शिवेशान शर्व त्र्यम्बकधूर्जटे । स्मरवैरिन्पुराराते स्थाणो भव महेश्वर ॥
जयेश खण्डपरशो शूलिन्पशुपते हर । सर्वज्ञ भर्ग भूतेश कपालिन्नीललोहित ॥ २३ ॥
जय रुद्र मखाराते पिनाकिन्प्रमथाधिप । गङ्गाधर व्योमकेश गिरीश परमेश्वर ॥२४॥
जय भीम मृगव्याध कृत्तिवासः कृपानिधे । कृशानुरेतः कैलासे नित्यमेव हि वर्तसे
त्वदाज्ञया मरुद्वाति फणी वहति भूभरम् । दीप्यतः सूर्यशशिनौ ब्रह्माण्डं प्लवतेऽम्बुधौ
ज्योतींषि सञ्चरन्तेखे सर्वंत्वच्छासनात्प्रभो । अहं ब्रह्माच जगतांसर्गसन्त्राणयोरलम्
विधाय कल्पसे पुष्ट्यैसूतेसस्यानिमेदिनी । नाक्रामन्त्यब्धयःसीमांयच्चत्वन्महिरेवसः
अणिमादिमहासिद्धिनिःसाधारणवैभवः । कथं त्वाममरैरन्यैरुपेक्षे समभिष्टुतम् ॥
विशुक्त्वे विस्मरामस्त्वां स्मरामः सङ्कटेऽपि च ।
न रोषो जातु भक्तेषु प्रसादः सर्वदैव ते ॥ ३० ॥
यदाविधित्सेर्भक्तिंत्वंयदाचप्रावृणोषिताम् । मोहबोधौ तदापुंसांकल्पेतेबन्धमोक्षयोः
इति स्तुतस्साञ्जलिबद्धपाणिना पतिः पशूनामथ चक्रपाणिना ।
कृतापहासे च सरोजसम्भवे मदोद्धते प्रादुरभूद्दयानिधिः ॥ ३२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे शङ्करप्रादुर्भाववर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

———

पञ्चदशोऽध्यायः

ज्योतिर्लिङ्गादाविर्भूताय शङ्कराय विष्णुकृता प्रार्थना शङ्करद्वारा ब्रह्मणे चछत्र-करणेऽसन्तुष्टिः ब्रह्मणा शिवस्तुत्युद्यमवर्णनञ्च

नन्दिकेश्वर उवाच

तेजःस्तम्भं विनिर्भिद्य सन्ध्याभ्रमिव चन्द्रमाः । कैलासकूटधवलं वृषेन्द्रमधितस्थिवान्
जटाजूटवता वालचन्द्रचूडेन मौलिना । कपालमालिकां वैधीं स्रजं चारग्वधीं दधत्
नागकुण्डलिभिः फालफलकोद्भासिलोचनैः । पञ्चभिर्वदनैर्दीप्तैः क्ष्वेडकल्माषकन्धरैः
शूलं कपालं डमरुं सारङ्गं परशुं धनुः । खट्वाङ्गममलं खड्गं दोर्भिर्नागञ्च धारयन् ॥
श्वसितोद्धूलिताकारो गजचर्मोत्तरीयवान् । सर्वालङ्कारसम्पन्नः सर्वदेवैरभिष्टुतः ॥
परिधानीकृतव्याघ्रचर्मा ताभ्यामदर्शि सः । रूपं दृष्ट्वा स आनन्दं ननर्त्त नलिनेक्षणः ॥
न किञ्चिदपि जानानो मुमोह च सरोजभूः ॥ ७ ॥
दृशाऽभिनन्द्य माधवं प्रसन्नया महेश्वरः । अथोदतिष्ठिपच्च तं सहुङ्क्रियश्चतुर्मुखम् ॥
जगाद चाधिकारितामदाद्युवांसमुद्धतौ । न लज्जितव्यमत्रवामयं क्रमोऽधिकारिणाम्
परीक्ष्य वैभवं मम प्रबोधवानभूद्धरिः । अयं न जातु पद्मभूश्छलन्मनो दुरात्मवान् ॥
अशासि पञ्चवक्त्रता यदोपहासितो ह्यहम् । पुनःस्वपुत्रिकारतिर्मयैष शिक्षितोऽभवत्
तृतीय एष मन्तुरप्यहो कथं नु सह्यते । तदस्य तु प्रतिष्ठया क्वचिन्न भूयतां विधेः ॥
अयं च केतकच्छदो यदाप कूटसाक्षिताम् । अतःपरंनजातुतन्ममैतु मूर्ध्नि संस्थितिम्
शप्त्वैवमेतौ गिरिशः प्रीत्या विष्णुमभाषत ॥ १४ ॥

श्रीमहेश्वर उवाच

वत्स ! मा भैः प्रसन्नोऽस्मि भवते भक्तिशालिने ।
ननु त्वमङ्गान्मे जातस्सात्त्विकोऽसि विशेषतः ॥
माहेश्वराग्रगण्योऽसि जगत्यां हि यथा पुरा ॥ १५ ॥
न तथाऽतः परं जातु भक्तिहानिर्भवेन्मयि । प्रतिक्षणं वर्द्धमाना कल्पते च विमुक्तये ॥

इत्यनुग्रहकृतं त्रिलोचनं भक्तिभाजि निरहङ्क्रिये हरौ ।
भीतिमानवनतः स्वयं विधिः स्तोतुमारभत कल्मवन्दनः ॥ १७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्ये उत्तरार्धे ब्रह्मकृतशिवस्तुत्युपक्रमवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

ब्रह्मकृतस्तवमनुशिवप्रसादेनब्रह्मविष्णुभ्यांवरप्रदानं शिवाज्ञयाऽरुणाचलेश-मन्दिरनिर्मापणम्

ब्रह्मोवाच

देवदेव तवैश्वर्यं केन शक्येत वेदितुम् । विना भाग्यैक्यसुलभं भवदीयमनुग्रहम् ॥ १ ॥
अकर्तृकाणि वाक्यानि ऐश्वर्यन्ते निरत्ययम् । नस्तोतुंशक्यतेकिन्तुनमस्कुर्वन्तिदूरतः
को विष्णुः कोऽहमेते वा दिक्पाला वासवादयः ।
त्वमेव देव कर्त्ताऽसि जगत्सृजनरक्षयोः ॥ ३ ॥
पतिस्त्वं पार्वतीनाथपशवोवयमप्यमी । बद्धुंपाशेन मोक्तुम्वात्वमेवास्मान्प्रगल्भसे
षड्विंशत्तत्त्वरूपस्त्वमभितश्चाभिवर्त्तसे । कोविदःको विनिर्णेतुंतवयाथात्म्यमीश्वरः
किरातः किल देवस्त्वंसारमेयैःकिलागमैः । षड्वर्गहिंस्रान्संहतुंकरोष्याखेटकौतुकम्
देव दक्षाध्वरे पूर्वं वीरभद्रस्त्वदाज्ञया । कांकां शिक्षामकार्षीन्नइतिकाऽपि विडम्बना
तव कालाग्निरूपस्य सर्वब्रह्माण्डदाहिनः । पोषणात्पुष्पचापस्य प्रायो जिह्रेति शेमुषी
कृतापराधः शूलेन त्वयादीर्णोजलन्धरः । अन्तकोऽन्धकदैत्यश्च प्रतिवीरश्चकोऽस्तिते
अधारयिष्यत्कण्ठेन कालकूटं न चेद्भवान् । कथंच धारयिष्यामोवयंसर्वेऽपिजीवितम्
देवदारुवने पूर्वं मुनीन्केवलकर्मठान् । प्रक्षोभ्य धूर्तवेषस्त्वं दययाऽन्वग्रहीस्तथा॥११॥
अङ्घ्रिणाक्रान्तवान्नो चेदत्युग्रां त्वमपस्मृतिम् ।
तयाक्रान्तमिदं कृत्स्नमन्धकारायते जगत् ॥ १२ ॥

अर्धनारीश्वरं रूपं त्वया चेन्न प्रकाशितम् । प्रभवामि कथं स्रष्टुं जगदेतच्चराचरम् ॥
भवता स्तम्भितःशम्भोसंरम्भाज्जम्भजिद्भुजः । कियन्तंहन्तकालन्तेजयस्तम्भइवस्थितः
भिक्षोः कपालमापूर्य रुधिरेणाऽऽत्मनो हरिः । शूलेनोक्षिप्य मुमुहे ह्येतत्त्वमवधारय
न चेदशिक्षयः सर्वशस्त्रास्त्राण्यनुकम्पया । निर्वापयेत्कथं वैरं क्रुद्धोऽपि जमदग्निभूः ॥
नृहरिं शरभाकारः समहार्षीन्न चेद्भवान् । स एव संहरेद्विश्वं हिरण्यकशिपोरपि ॥
त्वमाचकृक्षःकल्पाब्धौ कैवर्त्तोमत्स्यकच्छपौ । हरिं बद्धाऽहिराट्सूत्रैर्नृसिंहमथसूकरम्
एकोने पद्मसाहस्रे स्वनेत्रेण कृतार्चनम् । शूलिन्सुदर्शनं दत्त्वा दैत्यद्विषमतूतुषः ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

स्तुत्यैवमस्य विष्णोश्च प्रार्थनेन प्रसेदिवान् । धूर्जटिःसृष्टिकर्तृत्वंपुनरस्याऽभ्यमन्यंत
समज्यासु द्विजानांच पूजनं चाऽनुशिष्टवान् । उभावप्यब्रवीदेतौवात्सल्याच्चन्द्रशेखरः

श्रीशिव उवाच

वत्सौ युवां न ज्ञात्वैवं भूयो भवतमुद्धतौ । गुरुं स्मरन्तौमामेव जाग्रतं सृष्टिरक्षयोः
इह प्रदेशे युवयोर्यन्मयाऽनुग्रहः कृतः । पुण्यक्षेत्रमिदं पुंसां ततो मोक्षाय कल्पताम् ॥
योजनत्रयमात्रेऽस्मिन्क्षेत्रेनिवसतांनृणाम् । दीक्षादिकंविनाप्यस्तुमत्सायुज्यंममाज्ञया
यद्वा तिरश्चामप्यत्र स्थावराणां च देहिनाम् । अबुद्धिपूर्विकाबुद्धिरपवर्गस्यजायताम्
नृणां च दर्शनाद्दूरे कैवल्यं स्मरणेन वा । अस्तु वेदान्तविज्ञानं नसाध्यंनिष्प्रयासतः
शुभाय तैजसीमूर्तिःस्थावराममशाश्वती । अरुणाद्रिरितिख्यातानित्यमेवाऽत्रवर्त्तताम्
युगात्ययेऽपि नैनं तु मज्जयेयुर्महाब्धयः । न चालयेयुर्मरुतो न दहेयुश्च वह्नयः ॥ २८॥

ज्योतिर्मयमिदं लिङ्गं ज्योतिःष्वपि न जातुचित् ।
क्रमन्तां निर्गमागत्या खेचराणि समन्ततः ॥ २९ ॥

यस्यानुग्रहमिच्छामिजन्तोस्तस्याऽत्रसम्भवः । देहान्तेकल्पतांमुक्त्यैविनौपनिषदींगिरः
एष दूरात्प्रणामेन निकर्षाच्च प्रदक्षिणात् । अपि पापात्मनां पुंसामस्तुनिश्रेयसप्रदः ॥
अत्रैव नियतंवासाः सम्भवन्तिमहात्मनाम् । तस्मात्स्थलमिदंहित्वानगन्तव्यंकदाचन
शोणाचलमनादृत्य क्वचित्स्थित्वाऽपिमुक्तये । तस्माद्युवांविधिहरीवसतंचात्रनित्यशः

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्युक्तवन्तं कामारिं प्रणम्य विधिमाधवौ । तौ व्यज्ञापयतां देवं दूरीभवदहङ्क्रियौ

विधिमाधवावूचतुः

एवमेतज्जगदाधार जगदाधारतांगतः । आस्तां गिरिरसौ किंतु तेजोह्यस्यसुदुस्सहम्

अतोऽयमुत्तमो रुद्र तेजः सामान्यशैलवत् । तिष्ठत्वमेयमहिमा निश्रेयसमहाखनिः ॥

विवृणोति निजं ज्योतिर्विश्वस्याऽस्य समृद्धये ।

प्रत्यब्दं कार्त्तिके मासि कृत्तिकासु दिनात्यये ॥ ३७ ॥

शर्मदोऽपिनृणांदेवशोणाद्रिस्तवशासनात्।महत्त्वादर्चितुंशक्योनस्याद्भक्तस्यकस्यचित्

एतस्योपत्यकायां तदद्यारभ्यास्मदर्थनात् । देवेन सन्निधातव्यमवन्यां लिङ्गरूपिणा

तच्चारुणगिरीशानमावामाराधयावहे । अभिषेकानुलेपाद्यैरुपचारैर्यथाविधि ॥ ४० ॥

सन्त्यत्र केशराश्चूता नागपुन्नागकेसराः । आरग्वधाः कुरवका मालूराः पाटला अपि

अत्रैव सन्निधातव्यं देवदेव दयानिधे । यतस्त्वद्भक्तिदार्ढ्यं नौ भवतात्त्वदुपासनात् ॥

नान्यथा चित्तशुद्धिर्नौ देवेऽप्येवं प्रसेदुषि । अनाद्यविद्यावृतये यो भविष्यतिनित्यशः

शोणाद्रेः पूर्वदिग्भागे स एष भृशमुन्नतः । स एवाऽलं निवासाय देवस्य हृदयङ्गमः ॥

साङ्गवेदा धर्मशास्त्रं पुराणानि शिवागमाः । कृत्वाच सकलाःप्रोक्ताभवतैवभवावयोः

निःश्रेयसाय भक्तानांत्वयैव गुरुरूपिणा । अष्टाविंशतिराख्याताआगमाःशैवसञ्ज्ञिताः

तेषुकस्य प्रकारेणकुर्वाणौत्वदुपासनाम् । कदाप्यज्ञानजामार्तिनाऽधिगच्छाव शङ्कर!

नन्दिकेश्वर उवाच

इति तौ धातृगोविन्दौ पादपद्मावलम्बिनौ । जगाद करुणामूर्त्तिर्जगतीभृत्सुतापतिः

श्रीमहादेव उवाच

युक्तमुक्तमिदं भद्रौ मयाऽप्येवं मनीषितम् । कामिकोक्तेन मार्गेण मामर्चयितुमर्हथः॥

मोहतो विस्मृता मन्ये भवद्भ्यां शैवसंहिता । अधुना मत्प्रसादेन पुनरुल्लासतां हृदि ॥

नन्दीश उवाच

इत्युक्त्वा श्रीशवागीशौ गिरिशोऽन्तरधादथ । तदा प्रादुरभूत्तत्रलिङ्गं किमपि मङ्गलम्

तत्राऽवलोक्यसाश्चर्यौमुकुन्दकमलासनौ। मुहुः प्रणम्यसानन्दंप्रार्च्यतुष्टुवतुश्चिरम्
तावकारयतां शोणगिरिनाथस्य चाऽऽलयम्। नानाशिल्पाद्भुतंविश्वकर्मणा प्रचयेनच
खानयामासतुस्तत्र सरः किमपि पावनम्। अभिषेकाय देवस्य सर्वतीर्थमयं नवम्॥

अरुणाख्यं पुरं चारात्कल्पयामासतुश्चिरम्।
सिद्ध्यै नोत्कण्ठते लब्ध्वा कैलासायाऽपि धूर्जटिः॥ ५५॥

तस्यां ब्रह्मर्षयो देवा गन्धर्वादिव्ययोषितः। सिद्धविद्याधरा यक्षाःपौरत्वंसमुपाययुः
तीर्थानि धार्य कूपत्वं गङ्गाद्याःसरितस्तथा। नन्दनादीनि च वनान्यभवन्निष्कुटत्वतः
गोलोको गोगोष्ठतयानैगमत्वंकिलागमाः। शैलाश्चगोपुरादित्वंस्मृतयोविधितांययुः
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च वेतालाः कटपूतनाः। प्रपन्ना मानुषं देहंतस्यांकिलपृथग्जनाः

देवोऽपि धूर्जटिस्तस्यां कौतुकी सिद्धरूपधृक्।
योगित्वंसमुपास्थाय मात्राकौपीनमुण्डधृक्॥ ६०॥

न केनचिदविज्ञातः सदा सर्वत्र दीप्यति। तौ च केशवलोकेशौजटिलौभस्मगुण्ठितौ
दान्तौ शोणाद्रिनाथं तमर्चयामासतुश्चिरम्। तत्रत्यानाश्च सर्वेषांवर्णानामानुगुण्यतः
दीक्षादिकानि चक्राते स्वयमाचार्यतां गतौ। क्रमेण हृतनिर्माल्यौ सर्वागमरहोविदौ
प्रातः स्नात्वा समाहृत्य पुष्पपत्रादिकं फलम्। मन्त्रंचारुणनाथस्यततएव रहः श्रुतम्
जञ्जल्पाकौ जजपतुः सर्वमन्त्राधिकं सदा। धूपप्रदीपनैवेद्यैर्गीतवादित्रनर्तनैः॥ ६५॥
प्रदक्षिणानमस्कारैर्मुद्राबन्धैर्नवैर्नवैः। आसनेन च मूर्त्या च मूलेन च यथाविधि॥
पञ्चब्रह्मषडङ्गाद्यैरर्चयामासतुः शिवम्। एवं वर्षसहस्राणि षोडशारुणशङ्करम्॥६७॥

वेधोविष्णू समाराध्य शिवज्ञानमवापतुः॥ ६८॥
इतीदमश्रावि मया रहस्यं पितुः शिलादस्य मुखात्पुरा यत्।
निवेदितं चाऽद्य तदेव तुभ्यं किमन्यदाकर्णयितुं मनीषा॥ ६९॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे ब्रह्मविष्णुकृतारुणाचलेशमन्दिर-
वर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

सप्तदशोऽध्यायः

शिवपार्वतीविहारवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वाऽस्य वचनं मार्कण्डेयोऽभ्यभाषत ।

मार्कण्डेय उवाच

श्रुतमेव मया देव! श्रोतव्यं भवतो मुखात् ॥ १ ॥

-तथापिकौतुकेनाहमाक्रान्तोमुनयोऽप्यमी । गौर्याकथंतपस्तप्तंमहादेव्याऽत्रकथ्यताम्

नन्दिकेश्वर उवाच

कथयामि तदप्येतद्यथाऽधिगतमात्मना । शृणु त्वमवधानेन मार्कण्डेय महामते॥३॥
ननु जानासि तत्पूर्वं यथा दाक्षायणीं शिवः । उपयेमेसतीं नाम सतीनामधिदेवताम्
यथा च सा क्रुधा भर्तुर्द्रुहि दक्षप्रजापतौ । योगादहासीदात्मीयंवपुरित्यपि ते श्रुतम्
तदा हराज्ञानिघ्नेन वीरभद्रेण यत्कृतम् । अध्वरध्वंसनं दक्षस्याऽपि ते विदितं महत्
अश्रौषीस्तस्यदक्षस्यगणैःशीर्षासखण्डनम्।ब्रह्माच्युतेन्द्रमुख्यानांदेवानामपिशिक्षणम्
दन्तघातं रवेः पाणिपाटनं जातवेदसः । अदितिप्रभृतीनाञ्च दिव्यस्त्रीणां पराभवम्
सा च देवी पुनर्जन्म लेभे हिमवतो गृहे । उमेति पार्वतीत्याख्यां द्वितीयां बिभ्रतीपुनः
देवः स्थाणुवने ताञ्च परिचर्यापरां रहः । अरुरोचयिषुः काममधाक्षीत्कालवह्निना ॥
जितेन्द्रियश्च तं देवं काऽपियातंगणैःसह । तपोभिस्तोषयामास गौरी शिखरवासिनी

उपयम्याऽथ तां देवो वृत्तान्तैश्चित्तखण्डिभिः ।

रमयामास चैकान्ते मोदस्वेति विलासिनीम् ॥ १२ ॥

वैधव्यखिन्नयारत्याप्रार्थिताशैलनन्दिनी । कामपीठेतपस्यन्तीकामंप्रत्युद्दीपयत् ॥
पुनश्च मेनया मात्रा पित्रा च हिमभूभृता । आनीता भवनं भर्त्रा साकंचिरमरंस्तसा
तदाशुम्भनिशुम्भाख्यौ लेभाते वेधसो वरम् । देववदानवमर्त्येषुमास्तु नौ पुरुषान्मृतिः

इति तद्वचनं श्रुत्वा जातत्रासैः सुपर्वभिः । अभ्यर्थितोऽवदद्देवो रुद्रश्चक्रधरादिभिः ॥
माभैष्ट भद्र कालेन तथा प्रतिविधीयते । यथा निषूदितौ स्यातां तादृशौ दानवाविति
दत्ताऽभयान्मुकुन्दादीन्विसृज्याऽन्धकसूदनः । अन्तःपुरगतो रेमे देव्या सह यथापुरा

कदाचिन्मर्मलक्ष्येण प्रीत्या कालीति निन्दिता ।
तस्य प्रीत्यै कालिका च त्वचमेवाऽजहान्निजाम् ॥ १९ ॥

यत्रोत्क्षिप्तवती चर्म स्वेच्छया परमेश्वरी । महाकाशीप्रपाताख्यं तद्भूत्क्षेत्रमुत्तमम् ॥

सा च त्वक्कौशिकी नाम्ना काली विन्ध्याद्रिवासिनी ।
तपस्यन्ती वृषस्यन्तौ तौ जघान महासुरौ ॥ २१ ॥

देवी च गौरी शिखरे तस्मिन्नेव मनोहरे । तपोभिर्लब्धगौरीत्वाद्भर्त्तारं समतोषयत्
क्रमेण दौर्हृदवती भूत्वा प्रासूत पार्वती । गजाननं च हेरम्बं सेनान्यं च षडाननम् ॥
तौ चागमविदः प्राहुर्नारायणचतुर्मुखौ । पूर्वापराधशुद्ध्यर्थं देवीगर्भसमुद्भवौ ॥२४॥
वर्धमानौ च तौ बालौ पित्रोरालोकमानयोः । मग्नयोरिववर्षाब्धौ प्रेमग्रन्थिरभूद्दृढा
जातु वीणानिनादेन कदाचिच्चित्रलेखनैः । विजह्रतुश्शिवौ स्वैरमेकदा मण्डनैर्मिथः॥
जातुविद्यागमालापैःकदाचिच्चित्रवस्तुभिः। एकदालोकवृत्तान्तैर्दम्पतिभ्यांविनोदितम्
पुष्पावचयनैर्जातु कदाचिद्वारिखेलनैः । अदीव्यताञ्च रागार्द्रौ दोलाकेलिभिरेकदा ॥
मैनाकेनाऽर्चितौजातु मेनया जातु पूजितौ । जात्वर्हितौ हिमवतादम्पतीतौविनोदितौ
जातु द्यूतविनोदेन गीतगोष्ठ्या कदाचन । एकदादानलीलाभिःशिवौचिक्रीडतुश्चिरम्
द्यूतनिर्जितमाच्छिद्य पत्युरुत्सङ्गतां गतम् । वलयीकृतमेणाङ्कं ताटङ्कीकृतवत्युमा ॥

इति तौ पितरौ चराचराणां निवसन्तौ कनकाचलादिकेषु ।
रुचिरेषु पदेषु कामभोगानतिहृद्यान्सुचिरं किलाऽन्वभूताम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे शिवपार्वतीविहारवर्णनं
नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

———

अष्टादशोऽध्यायः

पार्वतीकृतारुणाचलेश्वरपरिचरणवर्णनम्

नन्दिकेश्वर उवाच

गार्हस्थ्यं बिभ्रती भर्तुरेकाम्रतलवासिनः । पक्वान्नपानैस्सा तत्र पर्य्यतर्पयत प्रजाः ॥
जातु सन्ध्यानुसन्धानमुकुलीकृतलोचनम् । बद्धाञ्जलिपुटं देवमद्राक्षीदद्रिनन्दिनी ॥२॥
ध्यायते नूनमधुनाकाऽपि सौभाग्यशालिनी । क्रियते यन्मयि प्रेम तन्मन्ये वञ्चनंमहत्
कथंविज्ञायतेपुंसांकुटिलामानसीस्थितिः । मिथ्योपचाराद्दक्षेणवञ्चितास्म्यमुनाभृशम्
मयिदाक्षिण्यमेवाऽस्यमन्येमनसि चेद्ग्रहः । जनःसौभाग्यवान्यस्माद्भवतिस्नेहभाजनम्
अद्यप्रभृति ते दासस्तपोभिःक्रीतइत्यपि । मुग्धेन्दुशेखरेणाऽस्मिविप्रलब्धास्मरारिणा
असमानानुरागेषु नारीणां मूढचेतसाम् । सौभाग्यगर्वो लोकेषु परिहासाय केवलम्
इति प्रणयरोषेण देव्याः कलुषचेतसः । हव्यवाहातपालीढमिवाननमलक्ष्यत ॥ ८ ॥
बाष्पवारिप्लुवे तस्या आताम्रे च विलोचने । नीलोत्पले जलापूर्णे इव भृङ्गा विरेजतुः
यत्तस्याधीनतिलकं भ्रुवोर्युगमभज्यत । द्वेधाकृतमिवाऽदर्शि मन्मथस्य शरासनम् ॥
अन्तर्मन्युभरेणाऽस्याःकम्पतेस्माऽधरच्छदः । मुहुःप्रवालस्थायीवरक्ताशोकस्यपल्लवः
अतीव रज्यमानं तत्पार्वत्या गण्डमण्डलम् । शाणावघर्षमाणिक्यदर्पणप्रतिमं बभौ
अन्तर्वेपथुतौ तस्याश्चकम्पाते पयोधरौ । पद्मकोशाविवान्तःस्थचञ्चरीकप्रचालितौ॥
अचिन्तयच्च सम्भूय सौभाग्याभावतो ननु । ममायमन्यस्त्रीचिन्तां कुरुते चन्द्रभूषणः
तदेषाकाऽपियास्यामिकिमत्राऽस्त्येकयामम। तपस्यन्तेचसौभाग्यमर्जनीयंमयाऽधुना
निमीलिताक्षिण्येवाऽस्य गन्तव्यंनिभृतंमया । न चेन्मांवारयत्येषकण्ठादुपरिभाषितैः
वत्सौ तु वर्धयत्येव गङ्गेयमतिवत्सला । देवस्तु न स्मरन्त्येव मामन्यस्त्रीपरायणः ॥

इति निश्चित्य देवस्य पार्श्वादाशु निवृत्त्य सा ।
अनिर्दिश्य दिशं काञ्चिद्यातुं व्यग्रा प्रचक्रमे ॥ १८ ॥

चलावती माल्यवती मालिनी विजया जया ।
वारिताअपिसंरम्भात्स्वामिनीमन्वयुःस्वयम् ॥ १६ ॥
तत्र साऽपि गिरीन्पुण्यान्वनानि नगराणिच । सरांसि सरितश्चैषाविचचारसमन्ततः
भ्रमन्ती सह्यपादेषु द्राविडाख्ये सुनीवृति । तीर्त्वा शक्त्यापगां देवीविजयांसमभाषत
दृश्योऽयंनातिदूरेणपुरस्तात्सकलारुणः ।शृङ्गैस्सँल्लक्ष्यतेऽष्टाभिर्नूनंमाहात्म्यवान्गिरिः
उपत्यकासु चैतस्य दृश्यन्ते तापसाश्रमाः । अतीव पावनःशान्ताःपुण्यारण्यमनोहराः
गत्वा निरूपयामस्तानिमान्पुण्याश्रमान्वयम् । प्रसीदतितरां चेत एषां सन्दर्शनेन मे
एवमाह्लादयत्यालिं क्रमेण गिरिनन्दिनी । तस्याद्रेर्जग्मुषा पार्श्वमपश्यत्कश्चिदाश्रमम्
लूतास्तंतूनयन्त्यत्रकुम्भीराः शैवलान्यपि । पिशून्पुष्णन्तिनीवारैःसफरान्भूरिमायवः
हरन्त्यवकरान्वालैश्चमराःस्फीतरोमभिः । समीकुर्वन्ति चोद्भूतैर्विषाणैर्यत्र सैरिभाः
वानराः फलपुष्पाणि मधुपत्राणि भल्लुकाः ।
क्रोडाः स्नानीयमृत्स्नां च यत्रर्षिभ्यो नयन्त्यहो ॥ २८ ॥
काकोलूकैः शुकश्येनैर्मृगव्याघ्रैर्हरिद्विपैः । कलापिसर्पैर्यत्राखुमार्जारैः सौहृदं श्रितम्
हूयमानपुरोडाशद्रव्यसौरभ्यहारिणी । यत्र द्रुमान्तरालेभ्योधूम्या निर्याति पावनी ॥
पठन्ति शतरुद्रीयंयत्रवायसवैरिणः । गृणन्तिकाकाःस्तोत्राणिसामगायन्तिसारिकाः
शाकशालिषु शार्दूलाश्चरन्ति च तथैव गाः ।
सिञ्चन्ति पुष्कराम्भोभिः कुम्भिनो यत्र पादपान् ॥ ३२ ॥
क्वचिच्च शोभने देशे पुण्ये पुण्यमनोहरे । ददर्श सा तपस्यन्तं यं कश्चिदृषिसत्तमम् ॥
अधस्तात्सप्तपर्णस्य चित्रव्याघ्रत्वगासने । बद्धवीरासनं सम्यक्पावने कुशविष्टरे ॥
शालिशूकारुणाभाभिर्जटाभिर्भस्मपाण्डुरम् । अचञ्चलाभिर्विद्युद्भिरिव शारदवारिदम्
नासाग्रनिश्चलदृशं समप्रस्फुरिताधरम् । आवर्त्तयन्तं रुद्राक्षमालिकामग्रपाणिना ॥
प्रत्यग्रनिर्णेजनतो ह्यत्यश्यानदशाञ्चले । वसानं वल्कलयुगे सन्ध्याभ्रे भूभृतां यथा ॥
षड्वर्गहिंस्रबन्धाय स्थापितां वागुरामिव । उपवीतत्रयीमाराद्गुरोगर्तस्य विभ्रतम्
कृतोचितोपचारा सा तमप्राक्षीत्तपोधनम् ॥ ३८ ॥

पार्वत्युवाच

कस्त्वं कोऽयं गिरिवरो यत्र त्वं कुरुषे तपः ॥ ३९ ॥

स चाऽऽहाऽरुणशैलोऽयं पुण्यक्षेत्रेषु पूजितः ।

गौतमोऽहं मुनिर्मुक्त्यै तपसाऽऽराधये शिवम् ॥ ४० ॥

इत्युक्त्वा विजयादीनां मुखेनैनामुमांविदन् । प्रणम्यभक्त्यावहुशोनीतवानुटजंनिजम्
कन्दमूलफलादैश्च कृतातिथ्यामिमां मुनिः । जगन्मङ्गलमूलाय तपसे चाऽन्वमन्यत ॥
ज्योतिःस्तम्भस्यसम्भूतिमारभ्याऽनुक्रमेणसः । जगादचास्यैशोणाद्रेर्महिमानमशेषतः

शोणाद्रेः पूर्वदिग्भागे स्थलीश्वरमितिस्थलम् ।

यत्र सन्निहितः शम्भुर्ज्योतिर्लिङ्गात्मतां गतः ॥ ४४ ॥

वैकुण्ठपरमेष्ठ्यादिगीर्वाणनिविडीकृते । न तत्र मे तपः कर्तुमन्याक्षेपेण शक्यते ॥४५॥
अयं शोणगिरेः पादः प्रवालाचलनामवान् । पुण्यारण्योपरुद्धत्वाद्रहस्यत्वं विगाहते
तत एवाहमत्रैव प्रतिष्ठाप्य त्रिलोचनम् । आराधये यथाशक्ति तपोभिःकल्पितात्मभिः
ममाऽऽश्रमसमीपेऽस्मिन्पुण्यक्षेत्रमिदंमहत् । क्रियतामाश्रमोदेव्याकर्त्तव्यंहितपश्चिरम्
मुनेरेवमनुज्ञानात्कृताश्रमपरिग्रहा । उदयुङ्क्त तपः कर्त्तुं सुमहत्पर्वतात्मजा ॥ ४६ ॥
आश्रमं रक्षितुं सत्यवतींकाननवासिनीम् । शुभगांधुन्धुमारिंचप्रागाद्याशास्वतिष्ठिपत्
तपोवनस्य सर्वस्य रक्षार्थं सा समादिशत् । दुर्गामनर्गलस्फूर्तिमाज्ञानिर्वाहणक्षमाम्
अनन्तरं सा धम्मिल्लं मन्दारप्रसवोचितम् । जटाभरत्वं तपसे गमयामास पार्वती
हंसचिह्नदशं हित्वा दुकूलं मिहकालघु । परुषं सुकुमाराङ्गी परिधत्तेस्म वल्कलम् ॥
अपि प्रसूनावचयनिस्सहाङ्गुलिपल्लवा । अलावीदतितीक्ष्णाग्राण्यविकारं कुशानि सा
वज्रसूचिनिर्भराङ्गैरवच्छिन्नानि कण्टकैः । शिरीषमृद्वीशाण्डिल्यपल्लवान्युच्चिकाय या
पावन्यां कमलानद्यां प्रातर्विहितमज्जना । अर्चयामास रक्ताब्जैर्यथाविधि विभाकरम्
दर्भाक्षततिलोन्मिश्रैर्गौरी श्रीनदिवारिभिः । देवी निर्वर्त्तयामास देवर्षिपितृतर्पणम् ॥
वालुकामण्डले सूर्यमावाह्याऽभ्यर्च्य पङ्कजैः । कृतप्रदक्षिणा गौरी प्रणनाम सहस्रशः ॥
स्वयमेव प्रतिष्ठाप्य लिङ्गं किमपि शङ्करम् । आगमोक्तेन विधिना पूजयामास पार्वती

आसनेनच मूर्त्याचमूलेनाङ्गैश्चसारविम् । दण्डिपिङ्गलमुख्यांश्च शक्तीर्दीप्तादिकाअपि
तत्तद्दिक्षुचसोमादीन्ग्रहान्धेन्वादिमुद्रया । तेजश्चण्डेचाऽर्चयित्वानिर्माल्यश्चन्यवेदयत्
अर्घ्येणाऽतीवशुद्धेन सम्प्रोक्ष्यचसमन्ततः । द्वारवास्तु समभ्यर्च्यन्यासानपिचकारसा
भूतशुद्धिंविधायाऽन्वगन्तर्यागंचकारसा । हृदिपद्मासनेचाऽर्च्यज्ञानधर्मादिकान्क्रमात्
शक्तीर्दलेषु वामादीर्दलाऽग्रे सूर्यवेधसौ । केसराऽग्रे सोमविष्णू कर्णिकाग्रेऽग्निधूर्जटी
तदूर्ध्वे शक्तिचक्रं च विन्यस्तब्रह्मपञ्चका । अङ्गैर्दत्त्वा च पाद्यादीनुपचर्याभिषिच्य सा
प्रादाच्चन्दनपुष्पादि धूपदीपप्रदायिनी । भूयोऽपि पञ्चब्रह्माणि षडङ्गान्यप्यपूजयत् ॥
तत्तद्दिक्षुचशक्रादीन्वज्रादींश्चविधानतः । कृत्वा सर्वोपचारांश्चवितताराऽष्टपुष्पिकाम्
पञ्चवक्त्राणि चाऽभ्यर्च्यकृतचण्डेश्वराऽर्चना । प्रदक्षिणाप्रणामाद्यैर्नित्यंशिवमपूजयत्
शिवागमोक्तविधिना द्रव्यैःसौभाग्यदायिभिः । सा जुहावचपूजान्तेप्रणीतेजातवेदसि
परिकल्पितोपचारा च कन्दमूलफलादिकैः । स्वयं कृतोपचारैयमतिथीनभ्यपूजयत् ॥
अङ्गुष्ठाऽग्रेण तिष्ठन्तीग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यतः । ह्रदेचशिशिरैचन्द्रपीयूषाप्यायिताऽभवत्॥
वर्षरात्रीषु धाराभिः सह वारिधरा पुनः । सौदामिनीव ददृशे तमसि स्तिमिताकृतिः
पाणिपादेन पद्मानि मुखेन च कलानिधिम् । प्रदर्शयत्यनायासान्निन्येसाहैमनीनिशाः
नीवारबीजदानेन सा मृगानप्यपोषयत् । अज्ञातहिंसाभिभवानाश्रमोपान्तवर्तिनः ॥
कृतालवालसलिलैः सुवालाकलशाहृतैः । वात्सल्याद्वर्द्धयामासपूर्णानाऽऽश्रमपादपान्
प्रदक्षिणां कृतवती शोणशैलं गिरीन्द्रजा । सा मनोरथसंसिद्ध्यैनित्यंसह सखीजनैः
पञ्चाक्षरीं जजापैषा शिवस्तोत्राण्युदैरयत् । दध्यौ च देवं मनसा शोणपर्वतरूपिणम्

अनुदिनमरुणाचलेश्वरं सा प्रणतवती विहितप्रदक्षिणाद्यैः ।
शिवनिगमविधानवेदिनी सा व्यरचयदद्रिसुता चिरं तपस्याम् ॥ ७८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे पार्वतीकृतारुणाचलेश्वरपरिचरणवर्णनं
नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

देव्यास्तपश्चर्यायांदुर्गाकृतमहिषासुरवधवर्णनम्

नन्दिकेश्वर उवाच

तावत्कुतश्चिदाकर्ण्य तत्रस्थां महिषासुरः । अवज्ञातसुराराातिर्विध्वंसितपुरन्दरः॥१॥
सर्वलोकजयी सिद्धविद्याधरभयावहः । दुर्निग्रहो वरादासीच्छस्त्रास्त्रैरखिलैरपि ॥
तीक्ष्णानामपि शापानामप्यगोचरतां गतः । दर्पद्भिर्दानवैर्दैत्यैः कौणपैश्च निषेवितः
दूषको मुनिपत्नीनां धर्ममार्गोपघातकः । बलात्पुलोम्नो नमुचेर्वृत्रादपि बलाधिकः ॥

हिरण्यकशिपोर्वंश्यो हिरण्याक्ष इवाऽपरः ।
तां विलोभयितुं काञ्चित्प्राहिणोत्किल दूतिकाम् ॥ ५ ॥

ततः सा तापसीवेषधारिणी गिरिजां प्रति । सखीसमक्ष एवेदमुवाचाऽनुचितं वचः
अरारु भीषणे भीरो निवसस्यत्र किं वने । विहर्तुमुचिता रम्येष्ववरोधनवेश्मसु ॥
किमर्थं वाऽद्य चित्तं ते यौवने भोगनिःस्पृहम् । निवेशितं तपसिच दैवतैरपि दुष्करे
हंसतूलमयीं शय्यां मुक्तामयवितानिकाम् । हित्वा किमितिमृद्वङ्गिसुप्यतेपरुपाश्मसु
तपोजडोमृडोदिष्ट्याप्रागेवास्तित्वयोज्झितः। तवानुरूपोनैवान्योविद्यतेदिविषत्सुच

किन्तु त्रैलोक्यनाथोऽस्ति महिषो दानवेश्वरः ।
यदि द्रक्ष्यसि तं सुभ्रु ! त्यक्ष्यस्येव क्षणात्तपः ॥ ११ ॥

किं निह्नवेन नन्वेष श्रुत्वा सर्वं चिरात्प्रभुः । स प्राहिणोदुपानेतुं दूतिकांमांस्मरातुरः
इत्यत्यन्तविरुद्धंतांब्रुवाणामसमञ्जसम् । देव्याश्चित्तस्थितिंज्ञात्वाविजयानिरकासयत्
सा चातिरोषेण कृतप्रतिज्ञा दैत्यरूपिका । गत्वा विदितवृत्तान्तमकरोन्महिषासुरम्
सोऽपि तत्सर्वमाकर्ण्यरुषाऽतीवारुणेक्षणः । देवींजिघृक्षुरभ्यागाद्वृतोदैतेयकोटिभिः
स्यन्दनैर्द्विरदैरश्वैः पत्तिभिश्च समन्ततः । भुवमाच्छादयामास ध्वजैश्च गगनान्तरम्
क्ष्वेलितैर्वाद्यघोषैश्च नभःस्फुटदिवाऽभवत् । पादाघातैश्च दैत्यानांविदद्रे वसुधातलम्

करालो दुर्द्धरस्तस्यविचष्णुर्विकरालकः । बाष्कलोदुर्मुखश्चण्डःप्रचण्डश्चाऽमरासुरः
महाहनुर्महामौलिरुग्रास्यो विकटेक्षणः । ज्वालास्यो दहनश्चेमे सेनान्योऽपिप्रतस्थिरे
कोलाहलमिमं श्रुत्वा देवी नियमविघ्नतः । शङ्किता दैत्यसंहत्यै दुर्गामादिशतिस्मसा
साऽरुणाद्रिरहोद्रोण्यामधिरूढा मृगाधिपम् । दीप्तायुधधरैर्दोर्भिःकालिकेव महीं गता
घनाघनरवोदग्रं सिंहनादमचीकरत् । स्फुरद्दन्तच्छदोपान्तं वल्गदङ्गुलिपल्लवा ॥ २२ ॥
स्वाङ्गेभ्यो योगिनीचक्रंमातरोऽप्यसृजन्रुषा । देव्याः प्रियायदैतेयसंहारार्हाःसहस्रशः
काश्चित्तत्राऽरुणच्छायादण्डिन्योहंसवाहनाः। मुखैश्चतुर्भिराजग्मुःकोपप्रस्फुरिताधरैः
निर्ययुः काश्चन क्रुद्धा ज्वलत्त्रिशिखपाणयः । निस्वनद्भूषणाःपंसल्ललाटा वृषवाहनाः
निर्जग्मुरपराः सेनासहिताः शिखिवाहनैः । शक्तिदण्डाभयकराः शतशः षड्भिराननैः
निश्चक्रमुः परास्तार्क्ष्यमधिरुह्याधिकक्रुधा । शङ्खचक्रधराः सूर्यचन्द्रमोभ्यां दिवोयथा
प्रतिष्ठन्ते तथा व्याघ्रवाहाः कुवलयत्विषः । पोत्रैः सद्धर्घरारावैर्बिभ्रत्यो मुसलं हलम्
रोषाऽरुणसहस्राक्ष्यो वलक्षद्विपवाहनाः । प्रतस्थिरे शातकोटिशतकोटिधराः पराः॥

अश्वारूढाः समापेतुरेकाः सौदामिनीनिभाः ।
खड्गखेटकधारिण्यः कोपेन कपिलाननाः ॥ ३० ॥

ताश्च कोटिचतुःषष्टिमसुरानाश्रमाद्बहिः । अरुन्धन्प्रसभं ध्वान्तराशीनिवरवेस्त्विषः
ततश्च योगिनीचक्रदानवानीकयोर्मिथः । प्रावर्त्तत रणं घोरं मुष्टामुष्टि कचाकचि ॥
सायकैर्योगिनीमुक्तैर्दलिता दैत्यमौलयः । आच्छादयन्महीपृष्ठं स्थलजानीव सर्वतः॥
प्रसस्रू रक्तसरितो लगत्कैशिकशैवलाः । लुठद्द्विपाठपाठीनाः स्मेरैर्देवीमुखाम्बुजैः ॥
वेतण्डतुण्डान्यारुह्य सौधानिवपिशाचिकाः । प्रचण्डताण्डवाःपीतरक्तमद्याश्चकाशिरे
कपालैर्दैत्यवीराणामघासुरसृगासवान् । क्रीडड्डमरुकाकारैर्डामरैर्योगिनीगणाः ॥३६
परिजहुस्तथान्त्राणिकङ्कौघाःपाशशङ्कया । क्षुधिताअपिमांसानिसशल्यान्यजहुःशिवाः
सिद्धविद्याधरोन्मुक्तमन्दारप्रसवासवैः । इयाय शान्तिं भूरेणुः सङ्ग्रामे क्षोभसम्भवः
विरेजुर्योगिनीमुक्तैर्देहलग्नैर्द्विषां हयाः । अमर्षातिशयोत्क्षिप्तैः शल्यैः शल्यमृगा इव ॥

दण्डैः केचित्परे शूलैर्निशितैः केऽपि शक्तिभिः ।

चक्रैरन्ये हलैरेके कतिचिच्छतकोटिभिः ॥ ४० ॥
योगिनीनां परे खड्गैर्दलितादानवेश्वराः । निःशेषतामुपाजग्मुर्विनासेनाधिपान्निजान्
ब्राह्मीस्वयमुपागम्यविहितायोधनाऽवधीत्। करालंविकरालेनदण्डेनज्वलिताचिरात्
माहेश्वरी त्रिशूलेन सुचिरं कृतसङ्गरा । चकर्त दुर्द्धरस्याऽऽशु मूर्द्धानमतिरोषणा॥४४
शक्त्यालुलावकौमारीचिक्षुरासुरमस्तकम्। चक्रेणचालुनान्मौलिंविकरालस्यवैष्णवी
वाष्कलस्याऽऽशु वाराही मुसलेनाऽलुनाच्छिरः ।
दुर्मुखंचाऽऽशुवज्रेणव्यधादैन्द्रीगतायुषम् ॥ ४५ ॥
ख्यातंयस्याश्चनामेदंतयोरेवनिदूषनात् । चामुण्डाचण्डमुण्डौचमण्डलाग्रेणचिच्छिदे
प्रचण्डचामरौ वीरौ महामौलिं महाहनुम् । उग्रास्यविकटाक्षौच ज्वालास्यदहनावपि
अनुजग्मुः क्रुधा यान्तं युद्धाय महिषासुरम् । कालनेमिप्रभृतयोविप्रचित्तिमिवासुराः
शिरस्त्रवन्तो रथिनः सुनिषङ्गा धनुर्धराः । उद्धूतकटकाः प्रापुर्युद्धभूमिं चलद्ध्वजाः
समन्तात्पूरितदिशः सिंहनादैर्भयङ्करैः । पृषत्कवर्षिणो मातृमण्डलान्यभिदुद्रुवुः ॥५०
ताश्च तैर्वलिभिः कृत्वा सङ्ग्रामं निस्सहत्ववतः ।
दुर्गां प्रपेदिरे देवीं शरणं सिंहवाहनाम् ॥ ५१ ॥
उक्त्वा मायालुलायस्य दुर्जयत्वं दुरात्मनः । देवीं तां तुष्टुवुर्दुर्गामेवं सप्ताऽपिमातरः
योगनिद्रेतिरूपेण विष्णोर्नयनपद्मयोः । त्वया निलीयते देवि मधुकार्येव लीलया ॥
अमूमुहस्तं न तथा मातश्च मधुकैटभौ । कथं जघान तौ विष्णुस्तयोरेवाभ्यनुज्ञया ॥
त्वं कौशिकी न चेज्जाता मृत्युः शुम्भनिशुम्भयोः ।
कथं तु लोकपालानामैश्वर्यं देवि एष्यति ॥ ५५ ॥
विन्ध्यवासिनिविन्ध्येनकिमवन्ध्यंकृतंतपः। यत्र मैत्रीकिरातीभिरपिलभ्यात्वयासमम्
कापिशायनमापीतं धनदोपायनीकृतम् । त्वयाऽम्ब नीतं दैत्यानां रसैर्नियतमानवैः ॥
ब्रह्मणः सृष्टिशक्तिस्त्वं स्थितिशक्तिर्मधुद्विषः । अम्ब संहारशक्तिश्चरुद्रस्यापिप्रगल्भसे
यशोदानन्दजाता त्वमेकानंशेति नामतः । कंसाद्यसुरसंहारे हरेः साह्यं करिष्यसि ॥
त्वं विद्या त्वं महामाया त्वं लक्ष्मीस्त्वं सरस्वती ।

त्वं देवी पार्वतीशाऽपि दुर्गे किं वा न जायसे ॥ ६० ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

स्तोत्रेणाऽनेन मातृभ्यो दुर्गा दत्ताभयास्वयम् । महिषासुरयुद्धायसन्तुष्टानिर्ययौतदा
प्रचण्डमण्डलाग्रेण भिण्डिपालेन चामरम् । महामौलिं क्षुरिकया कर्परेण महाहनुम्
उग्रवक्त्रं कुठारेण शक्त्या विकटचक्षुषम् । ज्वालामुखं मुद्गरेण दहनं मुसलेन च ॥६३
निहत्य महिषस्याग्रे सरोषं युध्यती स्वयम् । सिंहनादंमहाघोरं चक्रेण मुदिताशया॥
अथात्यमर्षितो दुर्गां विशिखैर्महिषासुरः । विव्याध फालफलके स्तनयोर्गण्डयोरपि
ततो दुर्गाऽथ संरम्भात्प्रजहाराऽसुरेश्वरम् । बाह्वोर्वक्षसि वक्त्रेचक्षुरप्रैःप्रज्वलत्फलैः
ततो दैत्यस्त्रिभिर्दुर्गांजघानविशिखैर्मुखे । पञ्चभिः पञ्चभिर्बाह्वोर्द्वाभ्यांद्वाभ्यांचनेत्रयोः
एकेन सारथिं रथ्यानष्टभिः कार्मुकं त्रिभिः । चतुर्भिश्चध्वजंतस्यदुर्गाचिच्छेदसायकैः
पदातिरथ दैत्येन्द्रः शतघ्नींज्वलदाकृतिम् । कालदण्डप्रतीकाशां दुर्गांप्रतिविमुक्तवान्
हाहाकुर्वत्सु देवेषु विद्राणे मातृमण्डले । तामापतन्तीमादाय दुर्गा जग्राह लीलया ॥
कृपाणमङ्कुशं पाशंभुशुण्डींकरवालिकाम् । शङ्कुं शक्तिं गदांचक्रंतोमरंफलकंसृणिम्
परश्वधं भिण्डिपालं पट्टिशं लगुडंचसः । दुर्गां प्रति विचिक्षेपक्षयाम्भोदइवाऽशनिम्

आपतन्त्येव शस्त्राणि क्षिप्तान्यादाय वैरिणाम् ।
बभञ्ज पाणिभिः स्वैरं करिणीवेक्षुकाण्डकम् ॥ ७३ ॥

दुर्गोपवाह्यः सिंहोऽपि लाङ्गूलाग्रेण मुद्रितम् । दंष्ट्रया दारयामास प्रहरन्नखपङ्क्तिजैः ॥
क्षणं सिंहःक्षणंक्रोडःक्षणंव्याघ्रःक्षणंगजः । क्षणं च महिषीभूत्वादैत्योदुर्गामयोधयत्
महिषोऽथविषाणाभ्यां तीक्ष्णाभ्यामत्यमर्षितः । ताडयामाससिंहंचदेवीमपिमुहुर्मुहुः
क्षणं गगनमध्यस्थः क्षणं प्राप्तोमहीतले । क्षणं दिक्षु भ्रमन्प्राप्तःक्षणं चाऽदृश्यतांगतः
प्रार्थिता मातृचक्रेण दुर्गा महिषदानवम् । अमोघेन त्रिशूलेन दारयामाससस्मिता ॥
मुक्तघर्घरनिर्घोषो यावत्पतति दानवः । तावदस्य हठेनाङ्घ्रिं स्कन्धपीठे न्यवेशयत्॥
कण्ठपीडनतो यातजीवितस्याऽमरद्रुहः । छिन्नं मूर्द्धानमादाय पाणिनाऽथ ननर्त्त सा

इति दुर्गया समिति कासरासुरे दलिते समस्तभुवनैककण्टके ।

ननृतुः सुराः प्रजहृषुर्महर्षयो ववृषुश्च दिव्यकुसुमानि वारिदाः ॥ ८१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे देव्यास्तपश्चर्यायां दुर्गाकृतमहिषासुर-वध वर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

विंशतितमोऽध्यायः

पार्वतीकृतारुणाचलेश्वरस्तुतिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अहो महिषदैत्यस्य दुराचारत्वमीदृशम् । अहो दुरितहारिण्या दुर्गायाश्च पराक्रमः
एवं तया भद्रकाल्या निहते महिषासुरे । किं चकारगिरीन्द्रस्यनन्दिनीतपसिस्थिता

नन्दिकेश्वर उवाच

अनन्तरं सा हस्तेन दधतीदैत्यमस्तकम् । ननाम गौरीमन्येन पाणिना खड्गधारिणा
अथ हर्षेण नृत्यन्तीं तामालोक्यदयार्द्रया । दृष्टया देवी जगादैनांदन्तांशुद्योतिताम्बरा
त्वयाऽतिदुष्करंकर्म निर्मितं विन्ध्यवासिनि । जातं तव प्रभावेण निष्प्रत्यूहंचमे तपः
अथैतन्माहिषं शीर्षमपवित्रं भयङ्करम् । जगत्पवित्रचारित्रे त्यक्तुमर्हसि हस्ततः ॥

इति गौर्योदिता दुर्गा जुगुप्साकुलमानसा ।
मूर्ध्नस्तस्य निपाताय व्यधुनोद्बहुशः करम् ॥ ७ ॥

तीर्थमुत्पाद्यतां देवि नवं पापविनाशनम् । तस्मिन्निमज्जनाद्दुर्गेप्रायश्चित्तं भविष्यति
इतीरिता गौतमेन दुर्गा दुरितशङ्किनी । पाटयामास खड्गेन शिलापट्टम्पटीयसा ॥ ९ ॥
पातालावधि निर्भिन्नात्पाषाणतलतस्ततः । उदजृम्भत्तरङ्गाम्भः सच्चित्तमिव निर्मलम्
ममज्जसाऽपिगम्भीरे तस्मिन्नम्भसिपावने । नमःशोणाद्रिनाथायेत्युक्त्वामन्त्रमनुत्तमम्
तावन्महिषकण्ठस्थं लिङ्गं तद्गलितं तले । तटे प्रतिष्ठितं जातं पापनाशनसञ्ज्ञया ॥ १२ ॥

उन्ममज्ज ततो दुर्गा तीर्थाम्भोधूतकल्मषा। निपपाताऽथ तत्पाणेर्महिषासुरमस्तकम्
कृतप्रदक्षिणा नत्वापापनाशनमीश्वरम्। पुरस्तादस्ति सा गौर्या गौतमेनाभिनन्दिता
एवं प्रत्यक्षनिरस्तपापां तां वीक्ष्य पार्वती। जगाद दीर्घतपसं जगतीधरनन्दिनी॥१५॥
महिषासुरसंहारेऽञ्जसा स्वनुमतिः कृता। विन्ध्यवासिनीयमहो दुष्टमाहिषविग्रहम्
गृहीत्वा भक्षयामास तस्यलिङ्गमिदंशिवम्। प्रायश्चित्तं ततो ब्रूहि ममाऽपिमुनिसत्तम

गौतम उवाच

देवि सर्वजगत्सर्गस्थितिसंहारकारिणी। त्वद्ध्यानमेव जगतां सर्वपातकनाशनम्॥
अथापि लौकिकं वृत्तमवलम्ब्य त्वयेरितम्। स्वकृतापि हि मर्यादानमहद्भिर्विलङ्घ्यते
अन्तःकरणकालुष्यक्षालिनी काचनक्रिया। कथ्यतेऽद्य मया मातरवधानंविधीयताम्
अरुणाद्रिरयंसाक्षादनलाद्रिस्तिरोहितः। ज्वलतिज्योतिषास्वेनकृत्तिकापूर्णिमानिशि
तत्सपर्यातपश्चर्याकार्याकात्यायनि! त्वया। तज्ज्योतिर्दर्शनात्सर्वमभीष्टंतवसिध्यति
इत्युक्ता गौतमेनाम्बा तदाप्रभृतिदारुणा। इयं च शिवभक्ता ह शिवपूजारता तदा॥
तपश्चचार पञ्चानामग्नीनांमध्यमाश्रिता। चतुर्णांशिखिनांमध्येस्थितासूर्यनिविष्टदृक्
रेजे हैमी शलाकेव द्योतमाना गिरीन्द्रजा। अथाकृष्टेवपार्वत्याः प्रेमपाशैर्निरायतैः॥
साकार्त्तिकीपौर्णमासीसमापेदेशुभा तिथिः। ततस्तस्यदिनस्यान्तेशृङ्गेशोणमहीभृतः
अदर्शि किमपि ज्योतिरनुपाधिकवैभवम्। तदर्थोपगतैर्ब्रह्ममधुभिद्वासवादिभिः॥
उपास्यमानमभितो देवैर्दिव्यर्षिसङ्घतैः। तदनिन्धनमस्नेहमदशावर्तिसम्भवम्॥२८॥
महाप्रदीपमालोक्य विस्मयम्प्राप पार्वती। कृतप्रदक्षिणा साऽथ प्रणमन्ती पदेपदे॥
अरुणाद्रीश्वरं नाथं तुष्टा तुष्टाव शैलजा॥ २६॥
नमस्ते मेरुचापाय कैलाशाचलवासिने। नीहारशैलजामात्रे शोणक्ष्माधररूपिणे॥
वरुणादिसुरार्च्याय तरुणादित्यवर्चसे। अरुणाचलनाथाय करुणामूर्त्तयेनमः॥
जय जह्नुसुताचन्द्रलेखालङ्कृतशेखर। सौन्दर्यमोहिताशेषमुनिपत्नीजनाशय॥ ३२॥
जय शैलसुतासङ्गसम्भूतानङ्गवैभव। मायानारायणाभोगक्रीडाम्रेडनपण्डित॥ ३३॥
जयसन्ध्यासमोपेतसम्भूतानन्दताण्डव। जयगीर्वाणगन्धर्वसिद्धविद्याधरार्चित॥३४॥

जय हेरम्बजनक जय षण्मुखवत्सल । जय हैमवतीप्रार्थ्य जय पार्थिवदुर्लभ ॥ ३५ ॥

इति स्तुत्वा मुहुस्तस्मिञ्ज्योतिषि न्यस्तलोचनाम् ।

दृष्ट्वा देवीं दयाव्याजाद्विलिल्ये वृषभध्वजः ॥ ३६ ॥

लयित्वा निजमास्थाय रूपमुत्कटसुन्दरम् । आस्थायवृषभंदिव्यममूंदृष्ट्वाशिवांशुभाम

मानातिरेकादपहाय सर्वमैश्वर्यमेवं तपसि प्रवृत्ताम् ।

मुग्धां पुनः सान्त्वयितुं गिरीशः प्रचक्रमे पर्वतराजपुत्रीम् ॥ ३८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथममाहेश्वरखण्डान्तर्गते द्वितीये कौमारिकाखण्डे अरुणाचलमाहात्य उत्तरार्धे पार्वतीकृतारुणाचलेश्वर-स्तुतिवर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशतितमोऽध्यायः

शिवकृतंपार्वतीप्रशंसनवर्णनम्

नन्दिकेश्वर उवाच

तदा ब्रह्म सरस्वत्या महाविष्णुश्च पद्मया । शक्रः पुलोमसुतया परे दिक्पालकाअपि

गन्धर्वाप्सरसांसङ्घा वसवोऽपि सुरा अपि । त्रयस्त्रिंशत्कोटिगणाःपरेमुनिगणाअपि

एकादशमहारुद्रा आदित्या द्वादशाऽपिच । भैरवाश्च पिशाचाश्च वेतालाः कटपूतनाः

यक्षरक्षोरगा भूता ये चाऽन्येशिवकिङ्कराः । सन्तोषभाजःसर्वेऽपिविकटाकारवेष्टिताः

परिवार्य महेशानं समाजग्मुः सहस्रशः । तद्गीराशंसनं दृष्ट्वा योगिनीदानवैः कृतम् ॥

अतीव विस्मयंभेजुःसर्वे कल्पान्तभीषणम् । कृतसान्निध्यमालोक्यदेवमानन्दयन्त्युमा

चिररात्रप्ररूढां च तद्वियोगव्यथां जहौ । रोमाञ्चिता स्विन्नमुखी वेपमाना घनस्तनी

पादाङ्गुलीषु नयने विनिवेशयति स्म सा । वृषभादवरुह्याऽथ गृहीत्वैनां करे शिवः॥

स्मितशारीरकण्ठश्रीप्रणयेनैवमब्रवीत् ॥ ८ ॥

शिव उवाच

व्याकुलीक्रियते देवि ! किमेवं कारणं विना ॥ ९ ॥

सर्वैराराधनीयेतिमयाऽऽपिघटितोऽञ्जलिः। किंनवेत्स्यावयोरैक्यंज्योत्स्नाचन्द्रमसोरिव

अनादिसिद्धंदेवेशि तवेदं मौग्ध्यमीदृशम् । क्वेदं शिरीषमृद्वङ्गि ! शरीरं ते गिरीन्द्रजे

तपः समाधयश्चेति क कर्कशजनोचिताः ।

नारायणोऽहं लक्ष्मीस्त्वं ब्रह्माऽस्मि त्वं सरस्वती ॥ १२ ॥

वारुणीत्वंफणीन्द्रोऽहंरोहिणीत्वमहंशशी ।स्वाहात्वंहव्यवाहोऽहंसूर्योऽहंत्वंसुवर्चला

जाह्नवी त्वं समुद्रोऽहंमेरुरस्मित्वमुर्वरा । पुलोमजा त्वं शक्रोऽहं त्वं रतिश्चित्तभूरहम्

बुद्धिस्त्वं राजराजोऽहं त्वं शमाऽहं समीरणः ।

पाथोधिपोऽहं वीचिस्त्वं प्रकृतिस्त्वं पुमानहम् ॥ १५ ॥

विद्यात्वंवेदितव्योऽहंवाक्त्वमर्थोऽपिपार्वती।ईश्वरोऽहंमदंशाऽसित्वयैवाज्ञास्वरूपया

सृष्टिस्थित्युपसंहारविधानानुग्रहेश्वरै । न भेदोऽतस्त्वया कार्यः पृथग्जनवदावयोः॥

चित्प्रकाशात्मनोर्देवि स्वेच्छाधृतशरीरया । व्याकुली कुरुषेशश्वद्वृथैवेर्ष्यायसेहिमाम्

दृष्टाप्रतिक्रियातस्यक्रियतेयाऽधुनामया । इत्युक्त्वेशोनिषण्णस्तांपार्श्वदेशेन्यवेशयत्

गौरीं स्वकीय एवाङ्के गूहमानामिव ह्रिया । अङ्गद्वयंतयोरैक्यमगात्प्रेम्णा च लीनयोः

अर्धद्वयमिवाऽह्नाय सन्निकर्षोपलम्भतः । अर्धेकर्पूरधवलमर्धे सिन्धूरपाटलम् ॥ २१ ॥

तद्विचित्रमभूदङ्गं शिवयोरैकतां गतम् । अर्धे कुन्तलदामार्धेहारमध्ये तु कुञ्चिका॥

अङ्गादर्धेन्दुचूडस्य वपुरर्न्धेन्दुकूलितम् । एकनूपुरताटङ्कपरिहार्यं मनोहरम् ॥ २३ ॥

एकपिङ्गलसध्रीचो गात्रमेकस्तनं बभौ । देव्यै दत्त्वाच धामार्धं वामदेवो जगादताम्

अवकाशो रुषो देवि मा भूरतः परंतव । स्तन्यार्थिनं गुहं हित्वा याताऽसितपसेयतः

तदपीतस्तनीनाम्ना निवसाऽत्र ममान्तिके । त्वामपीतस्तनींदेवींशोणाद्रीशं च मामपि

जनाः सर्वे समाराध्य रमन्तां भोगमोक्षयोः । इयं त्वदंशजा देवी दुर्गामहिषसूदिनी

अत्रैव सन्निधत्तां तु मन्त्रसिद्धिप्रदा नृणाम् । खड्गतीर्थमिदंपुण्यंसकृदेवनिमज्जनात्

सर्वरोगहरं पुंसामस्तुसर्वाघनाशनम् । प्रवालगिरिनाथश्च देवोऽयं पापनाशनः ॥२६॥

भक्तिश्रद्धावतां नृणां भूयास्तां भूतये भृशम् । अयं च गौतमो देवित्वदनुग्रहभाजनम्
तपोनुरूपं भजतां लोकेष्वाचन्द्रतारकम् । इमाश्च मातरः सप्त सप्तलोकैकमातरः ॥३१
अद्यप्रभृति कुर्वन्तु सान्निध्यं जगतां श्रियै । शास्तारो भैरवाःक्षेत्रपालका वटुकाअपि
अरुणक्षेत्र एवाऽत्र नित्यं कुर्वन्तु सन्निधिम् । अत्राऽहमरुणक्षेत्रे निवसाम्यरुणाह्वयः

त्वयाऽप्यरुणया देव्या स्थातव्यं करुणार्द्रया ।
ईप्सिनामरुणादेवौ सान्निध्यं कुरुतो यतः ॥ ३४ ॥
तदस्मिन्नरुणक्षेत्रे सुलभाः सर्वसिद्धयः ॥ ३५ ॥
इदं कृतं पर्वतराजपुत्र्या प्रसादनं शोणगिरीश्वरस्य ।
श्टणोति यः स द्विषतो विधूय स्वर्गापवर्गौ सुलभावुपेयात् ॥ ३६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे शिवकृतपार्वतीप्रशंसावर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशतितमोऽध्यायः

वज्राङ्गदस्यराज्ञोवृत्तान्तवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

स्वामिन्नित्यशिवानन्दभगवन्नन्दिकेश्वर ।
आह्लादितोऽस्मि शोणेशमाहात्म्यसुधया त्वया ॥ १ ॥

कथंवज्राङ्गदः पाण्ड्यराजः शोणव्यतिक्रमम् । चक्रे कथं तद्भक्त्यैव प्राप्तवान्सम्पदंपुनः
कथंविद्याधराधीशौकान्तिशालिकलाधरौ । दुर्वासःशापनिर्विद्धाववितौशोणशम्भुना

नन्दिकेश्वर उवाच

दीर्घायुष्यत्वसाफल्यं लब्धवांस्त्वं मृकण्डुज । यदियं स्थेयसी भक्तिर्भवतोभूतनायके

वक्ष्ये वज्राङ्गदोदन्तं वृत्तं विद्याभृतोरपि । यतोऽभून्महितो लोके शोणाद्रीश्वरवैभवः
आसीद्वज्राङ्गदोनामपुरापाण्ड्येषुपार्थिवः । आस्ते यस्यभुजस्तम्भेवसुधासालभञ्जिका

धार्मिको न्यायविज्ज्ञाता गम्भीरो दक्षिणः क्षमः ।
शान्तो विनयवान्धीमानेकदारव्रतः कृती ॥ ७ ॥

शिवपूजार्चनरतः श्रीमाञ्छीलवतां वरः । पृथ्वीमासेतुकेदाराच्छशास जितशात्रवः ॥
कदाचिन्मृगयाव्याजात्स चरन्सुतुरङ्गमः । अरुणाचलपर्यन्तं कान्तारं समगाहत ॥
स तत्र ब्रहलामोदं कञ्चित्कस्तूरिकामृगम् । दृष्ट्वा तमन्वक्तुरगं प्रावर्तयत कौतुकात्
स मृगोऽनुद्रुतस्तेन अभितः शोणपर्वतम् । प्रादक्षिण्यात्परीयाय पपात च मनोजवः
ततःस भग्नसारोऽपि राजा जातश्रमश्चरन् । पपात वाहाच्छिन्नच्छायः क्षीणपुण्यइवद्युतः
अज्ञातकारणेनैवं मातङ्गेनेव पीडितः । नाज्ञासीत्क्षणमात्मानं राजाग्रहगृहीतवत् ॥
अचिन्तयच्च कोऽयंमे निर्हेतुः सत्त्वविप्लवः । क्व गतः स ह्यकस्मान्मे उपवाह्यस्तुरङ्गमः
इति चिन्ताकुले तस्मिंस्तज्ज्ञानेऽप्यपटीयसि । तडित्तटजटालेव सहसा द्यौरदृश्यत ॥
निरीक्षमाण एवाऽस्मिन्हित्वा तिर्यक्कलेवरम् । तूर्णं तुरङ्गसारङ्गौ खेचरत्वमुपागतौ॥
किरीटिनौ कुण्डलिनौ हारकेयूरधारिणौ । क्षौमान्तरीयोत्तरीयौस्रग्विणौचविरेजतुः
अवोचताञ्च नृपतिमाश्चर्याक्रान्तमानसम् । हरन्ताविव दन्तांशुजालैस्त्वस्यार्त्तिजं तमः
राजन्नलं विषादेन शोणाद्रीशप्रभावतः । एतां जानीहि सञ्जातां नवां नौ चेद्दृशींदशाम्

तदोवाच तयोः किञ्चिदाश्वस्तइव पार्थिवः ।
कृताञ्जलिरभाषिष्ट तावुभौ विनयान्वितः ॥ २० ॥

कौ युवां निर्मितो याभ्याममिषङ्गोममेदृशः । भद्रौभणतमार्त्तानांत्राणं हि महतांगुणः
इति तेन कृते प्रश्ने तमुवाच कलाधरः । राजानं जनिताश्चर्यं निर्दिष्टः कान्तिशालिना
अवेहि राजन्नावां हि पुरा विद्याधरेश्वरौ । परस्परातिसौहार्दौ वसन्तमदनाविव ॥
एकदा तु सुवर्णाद्रेः पार्श्वे दुर्वाससोमुनेः । तपोवनमगच्छाव मनसोऽपि दुरासदम्

क्रोशोद्धां तपसस्तस्य शिवाराधनसाधनीम् ।
पुष्पोज्ज्वलामपश्याव पुण्यामारामवाटिकाम् ॥ २५ ॥

विनीतावप्यसञ्जातौ तत्त्वोचितसुधीगणौ । प्राविशाव तदुद्यानं प्रसूनावचयोत्सुकौ
स्थलस्यतस्यसौहार्दात्कान्तिशाल्यतिगर्वितः । सञ्चचारमुहुःपादन्यासैराघट्टयन्महीम्
अहन्तु तत्र पुष्पाणां गन्धातिशयमोहितः । विकस्वरेषु पुष्पेषु न्यस्तहस्तो दुराशयः
ततःशाण्डिल्यमूलस्थोऽव्याघ्रचर्मासनेस्थितः । दुर्वासास्तपसांराशिर्ज्वलन्निवहुताशनः
अमर्षोत्कर्षनीरन्ध्रस्पन्दमानाधरच्छदः । करालभृकुटीवन्धसारालितविशालभूः ॥
सरोषोऽभूत्तेजसाढ्योघर्मतन्तुरविग्रहः । दहन्निव दृशा पश्यन्नभर्त्सयत नौ मुनिः ॥
आः पापौ प्रच्युताचारौ कौ युवामतिगर्वितौ । ज्वलतः कोपवह्नेर्मेशलभत्वमुपागतौ
तपोवनमिदं मत्कं पावनं भूतभावनम् । पादैर्न स्पृशतः क्वाऽपि सूर्याचन्द्रमसावपि ॥
पुरवैरिसपर्यायाः पर्यायकमिदंवनम् । न स्पन्दतेऽत्रवातोऽपि न लिप्यन्तेऽत्रषट्पदाः
तदेतत्पादसञ्चारैर्दूषयन्नेषपातकी । हयो भवन्तु भूलोके परवाह्यत्वपीडितः ॥३५॥
अपरोऽप्ययमत्युग्र पथत्वचलकन्दरे । प्रसूनगन्धलोभाद्यो गन्धसारङ्गतां गतः ॥३६॥
इति तेनोग्ररोषेण शापव्रजे निपातिते । तत्क्षणाद्विगलद्गर्वावावां तं शरणं गतौ ॥
अभिधाय च तं देवमाहिताङ्घ्रिपरिग्रहैः । अमोघ एषत्वच्छापस्तदस्यान्तोनिवेद्यताम्

अथाऽतिदीनमनसावावामालोक्य पार्थिव ! ।
सानुग्रहोऽभून्मुनिराट् कारुण्यादतिशीतलः ॥ ३९ ॥

अभाषतच मैवं भो भवतोःक्वाऽपिदुर्धियोः । शापस्यभविताशान्तिररुणाद्रेःप्रदक्षिणात्
पुरा खलु पुरारातिरध्यतिष्ठच्छुभांसभाम् । पर्युपास्यतदिक्पालैरिन्द्रोपेन्द्रयमादिभिः
तदा च देवदेवाय नन्दनारण्यदेवता । उपायनीकृतवती फलं किमपि पाटलम् ॥४२॥
बाल्यात्कुतूहलाक्रान्तौ गजाननषडाननौ । पितरं तदयाचेतां लोभनीयतरं फलम् ॥
अथ ताववददेवस्तनयौ फलतर्षितौ । गोपयित्वा फलं पाणिसम्पुटेन कुमारकौ ॥

इमां समस्तां पृथिवीं लोकालोकेन वेष्टिताम् ।
यो वां प्रदक्षिणीकर्तुमीष्टे तस्मै ददाम्यहम् ॥ ४५ ॥

इत्युक्ते पार्वतीशेन स्मयमानमुखेन्दुना । स्कन्दः प्रदक्षिणीकर्तुं मेदिनीमुपचक्रमे ॥
लम्बोदरस्तु देवस्य शोणशैलाकृतेः पितुः । प्रदक्षिणं ततः कृत्वापुरस्तादेवतत्क्षणात्

तद्दृष्ट्वा तस्य चातुर्यं हेरम्बाय त्रियम्बकः । फलं वितीर्णवानस्मै प्रणयाघ्रातमस्तकः
अद्यप्रभृति सर्वेषां फलानामधिनायकः । भवेत्यस्मै वरं दत्त्वा ह्येकदन्ताय शङ्करः ॥
बभाषे च सभास्तारान्सर्वानपि सुरासुरान् । प्रसरद्दशनज्योत्स्नाकर्बुरीकृतमन्दिरः

स्थावरोऽयं ममाकारः शोणाद्रिर्योऽस्य भक्तितः ।
प्रदक्षिणां वितनुते स मे सारूप्यभाग्भवेत् ॥ ५१ ॥

गिरेः प्रदक्षिणेनाऽस्ययस्यधत्तः पदेरजम् । स सम्राट् सकलोत्कृष्टं लभतेशाश्वतंपदम्
इतिशासनत शम्भोःशोणशैलप्रदक्षिणम् । विधायसर्वगीर्वाणालेभिरेस्वंस्वमीप्सितम्
युवामपिमदोद्भूतमालिन्यौशिक्षितौमया । प्रदक्षिणेनशोणाद्रेः शापान्तोवांभविष्यति
तिरश्चोरपि वां सिध्येदरुणाद्रेः प्रदक्षिणा । वज्राङ्गदस्य पाण्ड्यस्य नृपतेरनुबन्धतः

इत्यमर्षणमहर्षिमहाब्धेः शापहालहलशोषितगात्रौ ।
पातितौ बहुलपातकभारात्क्षिप्रमश्वमृगजातिषु जातौ ॥ ५६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धेऽरुणाचलप्रदक्षिणामाहात्म्ये वज्राङ्गद-वृत्तान्तवर्णनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

कलाधरकान्तिशालिवृत्तान्तवर्णनम्

कलाधर उवाच

काम्बोजेषु हयो भूत्वा कान्तिशाली सुहृन्मम । अयासीदौपवाह्यत्वं भवतोराजपुङ्गव
अहं च गन्धमृगतांगतः स्वाङ्गप्रसूतिना । सुगन्धिनामदेनाऽस्यसञ्चारं चाऽऽचरंगिरेः

धर्मात्मन्मृगयाव्याजादागतेन त्वयाऽधुना ।
आवां शोणाद्रिनाथस्य प्रापितौ हि प्रदक्षिणाम् ॥ ३ ॥

वाहारोहणदोषेण तवाऽऽसीदीदृशी दशा। पादप्रचारपुण्येन प्राप्तं तौ प्राक्तनं पदम् ॥६

राजेन्द्र! तव सम्बन्धादस्मात्तिर्यक्त्वबन्धनात्।

मुक्तावावां स्वकं धाम प्राप्तौ स्वस्त्यस्तु ते सदा ॥ ५ ॥

इत्युदीर्यनिजं धाम यियासन्तंकलाधरम्। कान्तिशालिनं चराजाजगादरचिताञ्जलिः

एवं युवां शोणशैलशङ्करस्य प्रभावतः। शापार्णवं समुत्तीर्णौ कथं मे पुनरुद्धयः

भ्राम्यतीव मम स्वांतमाधाय तदवेक्षणम्। निर्यान्तीव मम प्राणास्तत्रदैवंवलोत्तरम्

कलाधरकान्तिशालिनावूचतुः

अवधारय निस्तारं कथयाव तवाऽऽस्पदम् ॥ ८ ॥

समाहितेन मनसा निर्धूतनिखिलाधिना ॥ ६ ॥

जगत्सर्गस्थितिध्वंसविधानानुग्रहेश्वरे। अरुणाद्रीश्वरे चित्तं निधेहि करुणानिधौ

प्रत्यक्षितं त्वयेदानीमस्य देवस्य वैभवम्। तिरश्चोरावयोरेतदीदृशत्वं वितन्वतः॥

कुरु प्रदक्षिणां पादचारी मृगमदाद्धृतैः। कल्हारैः पूजयेशानं देवं मृगमदप्रियम् ॥१३॥

यावती तव सम्पत्तिस्तावतीमखिलां विभो। प्रकारगोपुरागारनवीकाराय कल्पय ॥

अचिरादेवसिद्धिस्ते भविष्यति गरीयसी। मनुमान्धातृनाभागभगीरथवदाधिका ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्थं निशम्य च तयोर्निजमेव धाम विद्याभृतोः सपदि संश्रुतयोर्नरेन्द्रः।

निःसंशयेन मनसा निरतस्तदानीं भक्तिं बबन्ध भगवत्यरुणाद्रिनाथे ॥१५

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे कलाधरकान्तिशालिवृत्तान्तवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

स्वपुत्रायराज्यंसमर्प्यशिवभक्तोवज्राङ्गदराजासद्गतिंजगामेतिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

भगवन्भवमाहात्म्यरत्नाकरसुधाकरम् । नन्दीश चित्रं चारित्रं श्रुतं विद्याभृतोर्द्वयोः
कदा वज्राङ्गदः सिद्धः कथं देवमपूजयत् । कथं चान्वग्रहोत्प्रह्वं देवस्तमरुणेश्वरः ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

निवर्त्तनेच्छां हित्वाऽथ नृपो निजपुरं प्रति । तस्यैव पादपर्यन्तेस्वस्य वासमरोचयत्
अथाऽस्य महती सेना वाहमार्गानुसारिणी । प्राप्ता शताङ्गमातङ्गतुरङ्गभटसङ्कुला ॥
समदृश्यत भूपालस्तादृशो धैर्यसागरः । पुरोधोमन्त्रिसामन्तसेनापतिसुहृत्तमैः ॥
ततस्तामागतां सेनामवनीपतिरादृतः । अरुणाद्रेश्च सीमाया बहिरेव न्यवेशयत् ॥
स्वकीयमखिलंकोशंदेशानपिमहाफलान् । शोणाद्रिनाथपूजायैकल्पयामासभक्तिमान्
गौतमस्याऽऽश्रमाभ्याशेस्वयंकृततपोवनः । पुरोधोक्तः ससचिवःशिवार्चनरतोऽभवत्
रत्नाङ्गदाख्यं तनयं स्थापयित्वा निजे पदे । तत्प्रेषितैरपर्याप्तैः शोणेशं पर्यतर्पयत् ॥
परितः शोणशैलस्य परिपूर्णजलाशयान् । अग्रहारान्बहुफलान्ब्राह्मणेभ्योऽतिसृष्टवान्

तेजसाऽरुणनाथस्य ज्वलनस्तम्भरूपिणः ।
धन्वप्रायेऽपि देशेऽस्मिन्दीर्घिकाः शतशो व्यधात् ॥ ११ ॥

सौन्दर्यशालिनीरात्मपरिवारवराङ्गनाः । सेवार्थं शोणनाथस्य दत्तवान्दीर्घदर्शनः॥१२
अथागतेनाऽगस्त्येन लोपामुद्रासखेन सः । अभ्यनन्द्यत शोणाद्रिनाथपूजापरायणः॥
प्रत्यहं नवतीर्थाख्ये सरसि स्नानमाचरन् । पापनाशप्रवालेशौ प्रयतः पर्यपूजयत् ॥
महिषासुरसंहारकारिणीं मानवेश्वरः । नित्यमाराधयामास दुर्गां दुर्गार्तिहारिणीम्
प्रतिक्षणं ब्रह्मविष्णुपूज्यस्य लिङ्गरूपिणः । आदिदेवस्य विविधाःसपर्याःपर्यकल्पयत्
प्रत्युषस्युत्थितःस्नातःपादाभ्यामेवपार्थिवः।जपन्पञ्चाक्षरीमन्त्रमकार्षीत्त्रिप्रदक्षिणाम्
पौर्णमास्यांस कार्तिक्यां पार्वतीवल्लभप्रियाम् । महादीपोत्सवं चक्रे महितं भुवनत्रये
सुगन्धसारकह्लारकर्पूरजलपूरितैः । सहस्रैः स्वर्णकुम्भानामभ्यषिञ्चत्त्रियम्बकम् ॥१६

प्रतिमासध्वजारोहपूर्वंतीर्थोत्सवादिकम् । त्रैलोक्याभ्यर्हितं चक्रे रथासेहंमहोत्सवम्
अङ्गं प्रदक्षिणं चाऽस्य विदधे विशदाशयः । योजनत्रितयायामव्यापिनः शोणभूभृतः
अरुणाचलनाथेति करुणामृतसागरः । अरुणाम्बासनाथेति तुष्टाव च मुहुर्मुहुः॥२२॥
संलिप्य विविधैर्द्रव्यैर्नित्यं पञ्चामृतादिभिः । आचर्चयद्गन्धसारपङ्कैः कर्पूरपाण्डुरैः
अपूजयत कल्हारैः स्रवन्मृगमदद्रवैः । प्रातरारभ्यशोणाद्रिनायकं गणरूपिणम् ॥२४॥
इतिवर्षत्रयं तस्य वशिनो वरिवस्यया । अरुणाद्रीश्वरस्तुष्टः प्रत्यक्षत्वमगाहत ॥२५॥
नीहाराचलसङ्काशमारूढो वृषपुङ्गवम् । अन्वगासीनया देव्याकृतगाढोपगूहनः ॥२६॥
ब्रह्मर्षिभिर्वसिष्ठाद्यैर्नारदाद्यैर्महर्षिभिः । गणैर्निकुम्भकुम्भाद्यैः क्रियमाणजयस्तुतिः ॥
करुणासिन्धुकल्लोलैः कमलावासवेश्मभिः । कटाक्षपातैर्जगतां कालुष्यमिव वारयन्
दृष्ट्वा च देवदेवं तमष्टाङ्गं न्यस्य भूतले । प्रणनाम परं हृष्टो वज्राङ्गदमहीपतिः ॥२९॥
व्यज्ञापयच्च भूपालो मौलीकृतशताञ्जलिः । क्षालयन्निव दन्तांशुजालैस्तत्पादपङ्कजे ॥

वज्राङ्गद उवाच

देवेश यदहं मोहाद्बहुपातकसञ्चयम् । अचारिषं स एकोऽयंक्षम्यतांमेव्यतिक्रमः ॥
इतिवादिनमत्यन्तंदीनमेव दयानिधिः । जगाद जगतीनाथो देवः शोणाचलेश्वरः ॥

श्रीमहेश्वर उवाच

मा भैषीर्वत्स भद्रं ते सन्त्यष्टौ ममसूर्त्तयः । ताःसर्वाः सर्वजन्तूनामत्यर्थंपरिकल्पिताः
पुरापुरन्दरस्त्वं हि कैलासशिखरेस्थितम् । गर्वितो मामवामंस्थाःस्तम्भितश्चतदामया
क्षणं गलितगर्वस्त्वं स्तम्भनाव्रीडितस्तदा । अयाचिष्ठाःशिवज्ञानमखिलैश्वर्यकारणम्
आदिष्टस्त्वं मया वज्रिन्नवतीर्याऽवनिं भवान् ।
राजा वज्राङ्गदो भूत्वा लप्स्यसे मत्कृपामिति ॥ ३६ ॥
जातं ततःप्रभावेणक्षेत्रमेतन्मदास्पदम् । शिक्षितोऽतीवमुग्धस्त्वंभक्तोऽसिच परं मयि
अधुनाऽतिसपर्याभिस्त्वत्कृताभिरहर्निशम् ।परितुष्टोऽस्म्यहंराजन्नतस्त्वांबोधयाम्यहम्
खंवायुरनलो वारि भूः सूर्यशशिनौ पुमान् । इतिमन्मूर्त्तिभिर्विश्वंभासतेसचराचरम्
कालोहिकालयाम्यर्थान्सत्त्वानध्वनपचच ।तत्त्वातीतःशिवश्चाऽहंनमत्तोऽस्तीहकिञ्चन

अपर्यन्तचिदानन्दसिन्धोर्मे केचिदूर्मयः । केचोमुकुन्दरुद्रेन्द्रमुखानाहुरुदित्वराः ॥४१॥
वाणीलक्ष्मीक्षमाश्रद्धाप्रज्ञास्वाहास्वधादयः । असङ्ख्येय महाशक्तेर्मम विसृष्टिशक्तयः ॥

इयं मम महाशक्तिर्गौरी माया जगत्प्रसूः ।
अनयाऽऽच्छाद्यते विश्वं शश्वद्विस्तार्यतेऽपि च ॥ ४३ ॥

शक्त्याऽनयान्वितःसर्गरक्षासंहृतिविभ्रमः । विचित्रमेतत्पश्यामि जगच्चित्रंनिजेच्छया
अपवाहितमोहस्त्वं महिम्ना मे विचारय । आत्मानमविभिन्नं मे तरङ्गमिव वारिधेः
ततोमद्रूपशालिन्याआधिपत्यंक्षितेर्गतः । मत्प्रसादेन राजेन्द्रभुङ्क्ष्वभोगान्यथासुखम्
पुनः पुरन्दरत्वेन भुक्तदिव्यसुखश्चिरम् । मदेकरूपतां राजन्निश्चयात्त्वमवाप्स्यसि ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्युक्त्वाऽन्तर्हिते देवे राजा वज्राङ्गदःकृती । शोणेशं पूजयन्नेवसर्वान्भोगानवाप्तवान्
इत्थं ते कथितं साधोशिवभक्तविजृम्भणम् । प्रदक्षिणाफलंचैवशोणशैलस्यशाश्वतम्
किं वाचां विस्तरेणाऽत्र शोणशैलप्रदक्षिणा । महतामश्वमेधानां शतादपि विशिष्यते
विषुवायनसंक्रान्तिव्यतीपातादिपर्वसु । प्रदक्षिणाच्छोणगिरेरसंख्येयं फलं लभेत्
न क्षेत्रमरुणादस्तिनास्तिदेवोऽरुणेश्वरात् । नापि प्रदक्षिणादन्यद्विद्यतेऽभ्यधिकं तपः

इति कथयति नन्दिकेश्वरेऽस्मिन्पुलकितसर्ववपुर्मृकण्डुपुत्रः ।
मुहुरधिगतहर्षवाष्पवृष्टिर्महति निमग्न इवाऽभवत्सुधाब्धौ ॥ ५३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां प्रथमे माहेश्वरखण्डे
अरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धे वज्राङ्गदसद्गतिवर्णनंनाम
चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ इत्यरुणाचलमाहात्म्य उत्तरार्धः समाप्तः ॥

इत्यरुणाचलमाहात्म्यं सम्पूर्णम्

शुभम्भूयात्







सत्य सत्यम् सुखम् शिवम्